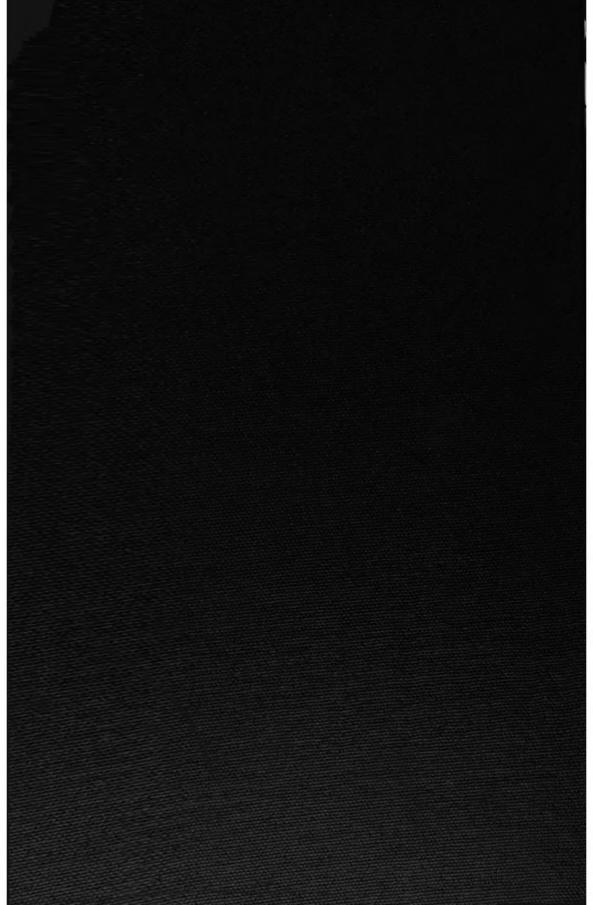
This is a reproduction of a library book that was digitized by Google as part of an ongoing effort to preserve the information in books and make it universally accessible.



http://books.google.com







HARVARD COLLEGE LIBRARY

Ind L 212.172

BIBLIOTHECA INDICA:

LECTION OF GRIENTAL WORKS

PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL

NEW SERIES, No. 1181.

योगशास्त्रम्।

सोपचिवरचरकितम्।

THE YOGASĀSTRA,

With the commentary called SVOPAJNAVIVARANA.



BY

Henro andia

BRI HEMACHANDRACHARYA.

EDITED BY

MUNI MAHĀRĀJA ŠRI' DHARMAVIJAYA.

VOL. I., PASCICULUS I.

Calcutta

PRINTED BY UPENDRA NATHA CHARRAVARTI, AT THE SANSKRIT PRESS.

AND PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY, 57, PARK STREET.

1907.

LIST OF BOOKS FOR SA.

AT THE LIBRARY OF THE

ASIATIC SOCIETY OF BENC

No. 57, PARK STREET, CACUTTA,

AND OBTAINABLE FROM

THE SOCIETY'S AGENTS, Mr. BERNARD QUARIT 11, GRAPTON STREET, NEW BOND STREET, LONDON, W., AND I. HARRASSOWITZ, BOOKSELLER, LEIPZIG, GERMA

Complete copies of those works marked with an asterisk a cannot be supplied.

of the Fasciculi being out of stock.

BIBLIOTHECA INDICA.

Sanskrit Series

| Advaita Brahma Siddhi, Fasc. 2, 4 @ /10/ each | ••• | ••• | Ra. | 1 | |
|--|---------------|-------------|-------|------------|----|
| Advaitachints Kaustubha, Fasc. 1-3 @ /10/ each | | ••• | ••• | 1 | 1. |
| *Agni Purāņa, Fasc. \$-14 @ /16/ each | ••• | ••• | | 7 | 8 |
| Aftarēya Brāhmaņa, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. | II, Fasc. 1 | -5; Vol. 1 | 11. | • | ٠ |
| Fasc. 1-5, Vol. IV, Fasc. 1-8 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | 14 | 6 |
| Aitereya Cochana. | ••• | *** | ••• | 2 | 0 |
| • Anu Bhashya, Fasc. 2-5 @ /10/ each | | ••• | ••• | ` 2 | 8 |
| Aphorisms of Sändilya, (English) Fasc. 1@1/- | ••• | ••• | ••• | î | ő |
| Aştasühasrikā Prajūāpāramitā, Fasc. 1-6 @ /10/ | | •••••• | ••• | 8 | 12 |
| *Atharvana Upanishad, Fasc 2-5 @ /10/ each | | ••• | ••• | 2 | |
| *Atharvana Upaminiau, rasc 2-0 (as /10/ each | ••• | ••• | ••• | - | 8 |
| Atmatattaviveks, Fasc. I. @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | 0 | 10 |
| Acvavaidyaka, Fasc. 1-5 @ /10/ each | 1 6 . 1 | Ir 10- | ••• | 8 | 2 |
| Avadana Kalpalata, (Sans. and Tibetan) Vol. J, Fo | nuc. 1-0; v | OI. II. FR | DC. | | |
| 1-5 @ 1/ each | ä1/ 1 | ••• | ••• | 71 | .0 |
| A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1-3 | (03 1/- each | ••• | ••• | 3 | .0 |
| Balam Bhatti, Vol. I, Fasc. 1-2, Vol 2, Fasc. I @ | /10/ each | | • • • | 1 | 14 |
| Baudhāyana S'rauta Sutra, Fasc. Vol. I. 1-3 Vol. I | 1, Fase 1 (4 | § /10/ each | ••• | 2 | ä |
| *Bliamati, Fasc 4-8 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | 3 | 2 |
| Bhatta Dipika Vol. I, Fasc. 1-5 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | 3 | 2 |
| Brahma Sutra, Fasc. 1 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | 0 | 10 |
| Brhaddovata Fasc. 1-4 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | 2 | 8 |
| Brhaddharma Purāņa Fasc 1-6@/10/each | ••• | ••• | ••• | 8 | 12 |
| Bodhicaryāvatāra of Cāntideva, Fasc. 1-5 @ /10/ | each | ••• | | 3 | 2 |
| Catadusani, Fasc. 1-2 @ /10/ ench | | ••• | ••• | 1 | 4 |
| Cutalogue of Sanskrit Books and MSS., Fasc. 1-4 | @ 2/ each | ••• | ••• | 8 | Ö |
| | II, Fasc. | | | - | |
| Fasc. 1-7 Vol. 5, Fasc. 1-4 @ /10/ each | | | | 14 | 65 |
| Catasahasrika Prajnaparamita Part, I. Fasc. I-12 | @ /10/ eac | h | | 7 | 8 |
| *Caturyarga Chintamani, Vol. 11, Fasc. 1-25; | | | | • | • |
| 1-18. Part II, Fasc. 1-10. Vol. IV. Fasc. 1-6 @ | | •• | | 36 | 14 |
| Qlockavartika, (English) Fasc. 1-6 @ 1/4/ each | *** | ••• | | 7 | 8 |
| Braddha Kriya Kaumudi Fasc. 1-6 @ /6/ each | | ••• | | 2 | 4 |
| *Qrauta Sūtra of Apastamba, Fasc. 6-17 @ /10/ e | ach | ••• | ••• | 7 | 8 |
| Ditto Çankhāyana, Vol. I, Fasc. 1- | | T | | • | 0 |
| Vol. III, Fasc. 1-4 @ /10/ each; Vol 4, Fasc. | 1 | | • | 10 | ^ |
| Qri Bhashyam, Fasc. 1-3 @ /10/ each | • | ••• | ••• | 10 | .0 |
| Dāna Kriyā kaumudī, Fasc. 1-2 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | 1 | 14 |
| | A | ••• | ••• | 1 | 4 |
| Gadadhara Paddhati Kālasāra Vol. J, Fasc. 1-7 (| | ••• | • • • | 4 | 6 |
| Ditto Achārasāralı Vols. II, Fasc. 1-8 (| g) /10/ each | ••• | | 1 | 14 |
| Gobhiliya Grihya Sutra, Fasc. 3-12 @ /10/ each | ••• | •••• | ••• | б | 4 |
| Kala Viveka, Fasc. 1-7 @ /10/ each | ••• | • • • | • • • | 4 | б |
| Kātantra, Fasc. 1-6 @ /12/ each | ••• | ••• | ••• | 4 | 8 |
| Katha Sarit Sagara, (English) Fasc. 1-14 @ 1/4/ | each | ••• | ••• | 17 | 8 |
| Kūrma Purāņa, Fasc. 1-9 @ /10/ each | ••• | ••• | | 5 | 10 |
| Lalitz-Vistara, (English) Fasc. 1-3 @ 1/- each | ••• | ••• | | 3 | 0 |
| *Lalitavistara, Fasc. 3-6 @ /10/ each | | ••• | | 2 | 8 |
| Madana Pārijāta, Fasc. 1-11 @ /10/ each | | | | 6 | 14 |
| Mahā-bhāsya-pradīpödyöta, Vol. I, Fasc. 1-9; Vo | ol. II. Fasc. | 1-12 Vol. I | H. | - | |
| Fasc. 1-6 @ /10/ each | , | ••• | , | 16 | 14 |
| Manutika Sangraha, Fasc. 1-8 @ /10/ each | ••• | ••• | | ì | 14 |
| Markandeya Purana, (English) Fasc. 1-9 @ 1/- es | | ••• | | 9 | 0 |
| • Markandeya Purana, Fasc. 4-7 @ /10/ each | | | ••• | 2 | 8 |
| *Mimāinsā Darçana, Fasc. 3-19 @ /10/ each | ••• | ••• | • • • | 10 | 10 |
| Nyāyavārtika, Fasc. 1-6 @ /10/ each | | ••• | ••• | 3 | 12 |
| 1 1 | • • • | ••• | • • • | U | 14 |

श्रईम्

त्रीवृद्धिचन्द्रगुक्स्यो नमः।

कलिकालसर्वज्ञश्री हमचन्द्राचार्थ्यप्रणीतं

योगशास्त्रम्।

खोपज्जविवरणसङ्गतम्।

प्रचम्य सिंबाद्गुतयोगसम्पदे त्रीवीरनायाय विसुत्तिप्राणिने । स्वयोगगास्त्रार्थविश्रेषनिर्णयो भव्यावबीधाय मया विधास्त्रते ॥१॥

तस्य चायमादिश्लोकः-

नमो दुर्वाररागादिवैरिवारनिवारिणे। यर्इते योगिनाथाय महावीराय तायिने॥ १॥

मत महावीरायेति विशेषपदम्। विशेषे ईरयति चिपति कभाषीति वीर:।

विदारयित यला भै तपसा च विराजते।
तपोवीर्येण युक्तय तस्मादीर दित स्मृतः ॥ १ ॥
दित लचणात्रिक्तादा वीरः महांयासावितरवीरापेचया वीरस्य
महावीरः ददं च जन्ममहोत्सवसमये तनुशरीरोऽयं कथं
जन्मप्रामारभारं सोढेति शक्तग्रद्धाश्रद्धसमुद्दरणाय भगवता वाम-

चरवाङ्ग्रष्टनियीडितसुमैर्वाशखरप्रकम्पमानमङ्गीतकोक्वसितसरित्-पतिचीभग्रक्षितव्रद्वारकभारकोदरदर्भनप्रशुक्तावधिज्ञानज्ञातप्रभावा-तिशयविधातेन वास्तोष्पतिना नाम निर्मेम महावीरोऽयमिति। तत्पुनरनादिपभवप्रकृतपीत्वनम् । ससुन्धूलनवलेन यथार्घीकतच मगवता। वर्षमान इति तु नाम मातरपितराभ्यां कतम्। यमणी देवार्य इति च जनपदेन। तस्मै नम इति सम्बन्धः। भेषाणि विशेषवानि । तेसु सङ्गूराधेप्रतिपादनपरेखलारो भगवदतिश्रयाः प्रकाश्यन्ते तत्र पूर्वार्देनापायापगमातिष्ययः। प्रपायभूता हि रागादयस्तदपगमेन भगवतः खरूपलाभः । १। पर्हते इत्यनेन च सक्त सुरासरमनुजनितपूजाप्रकर्षवाचिना पूजातिमयः। २। योगिनावायेत्वनेन तु ज्ञानातिष्रयः योगिनोऽविधिजिनादयस्तेषां नायी विमलक्षेवलबलावलीकितलीकालीकस्वभावी भगवानेव ।३। तायिने इत्यनेन तु वचनातिययः । ४। तायी सकलसुरासुर-मनुजितर्यां पालकः । पालकत्वं च सकसभुवनाभयदानसमर्थ-भस्यभाषापरिचामिषसैदेशनाद्वारेच भगवत एव। पासकल-मात्रं तु खापत्यादेर्श्वाचादीनामपि सभावति। तदेवं चतुरति-भगवतो मद्रावीरस्य पारमार्थिकी **भयप्रतिपादनहारिण** स्तुतिरभिष्टितेति॥१॥

पुनर्यौगगर्भा सुतिमा -

⁽२) खग-खर्व-।

पत्रगे च सुरेन्द्रे च कौशिक पादसंस्प्रशि। निर्विशेषमनस्काय श्रीवीरखामिने नमः॥ २॥

पनगस्य की धिकालं पूर्वभव'स्थितकी धिकगी व्रत्वेन। बुध्यस्य की धि-कीति भगवता तथैव भाषितत्वेन च सुरेन्द्रस्य तु की धिकालं की धिका भिधानात्। पादस्पर्भस्य पनगस्य दश्यन बुद्धा सुरेन्द्रस्य च भक्त्यतिश्येन। निर्विशेषमनस्कलं च भगवती देषरागविशेष-रहितत्वेन माध्यस्थात्॥

समादायगम्यसायमधस्त्रवाहि-

यीवीरः प्राणतस्वर्गपुष्पोत्तरविमानतः ।

पूर्वजन्मार्क्कितीजस्तितीर्वजन्नामकर्मकः ॥ १ ॥

प्रान्तयपवित्रात्मा सिंदार्थन्नपवित्रमनि ।

विय्यलाकुची सरस्यां राजदंस द्वागमत् ॥ २ ॥ (युग्मं)

सिंद्रो गजी द्वषः साभिषेकयीः स्वक् य्रायो रिवः ।

महाध्वजः पूर्वकुषः पद्मसरः सरित्पतिः ॥ ३ ॥

विमानं रत्नपुष्मय निर्दूमाग्निरिति कमात् ।

देवी चतुर्द्यस्वप्रानपश्चत्तत्र गर्भगे ॥ ४ ॥

वैलोक्योद्योतकद्देवदानवासनकम्पजत् ।

प्राप नारकजन्तृनां चणदत्तसुखासिकम् ॥ ५ ॥

प्रभः सुखं सुखेनैव जन्म प्राप ग्रभे दिने ।

तत्कालं दिक्मार्थस स्तिकन्माणि चिक्करे ॥ ६ ॥

⁽१) खग-भूत-।

षय जवाभिषेकाय सत्वीकक्षे जगव्यभुम्। मेरमूर्दि सुधर्मोन्द्रः सिंहासनमगित्रियत्॥ ७॥ इयन्तं वारिसकारं कथं खामी सिंडिं चते। द्रत्यागगद्धे मन्नेण भक्तिकोमन्दितसा ॥ ८॥ तदाशकानिरासाय जीलया परमेखर:। मिर्ग्येतं वामपादाङ्गुष्ठाग्रेण न्यपीडयत् ॥ ८ ॥ शिरांसि मेरोरनमबमकार्त्तुमिव प्रभुम्। तदन्तिकमिवायातुमचलं स क्रुलाचलाः ॥ १०॥ षतुच्छमुच्छलन्तिस्र स्नातं कर्त्तुमिवार्षवाः। विवेपे सलरं तच नर्जनाभिमुखेव भूः॥ ११ ॥ किमेतदिति सिचन्याविधिज्ञानप्रयोगतः। सीसायितं भगवती विदासको विदीनसा ॥ १२॥ खामिननयसामान्यं सामान्यो माहशो जनः। विदासरोतु माचालां कयसारं तवेहशम्॥ १३॥ तिवाच्यादुष्कृतं भूयाचिन्तितं यवायाऽन्यथा । दतीन्द्रेष झ्वापेन प्रपेम परमेम्बर: ॥ १४ ॥ सानन्दं वादितातीयं चन्ने मन्ने कंगन्त्री:। तीर्थगन्धोदकीः पुर्धौरभिषेकमहोत्सवः ॥ १५॥ पभिषेकजलं तत्तु सुरासुरनरोरगाः। ववन्दिर सुद्धः सर्वोङ्गीणं च परिचिच्चिपुः ॥ १६॥ प्रभुद्धावजनानीटा वन्दनीया सदप्यभूत । गुरूणां किल संसर्गाहीरवं स्थालघीरिय ॥ १७॥

निविद्यागानाकाके सीधर्मोन्द्रोऽप्यय प्रभुम्। स्रपयिला'ऽर्श्वयिलाराचिकं कलेति तृष्ट्वे॥ १८॥ नमोऽर्हते भगवते खयम्बुहाय वेधसे। तीर्धक्ररायादिकते पुरुषेषूत्तमाय ते ॥ १८ ॥ नमो सोकपदीपाय सोकप्रद्योतकारिषे। लोकोत्तमाय लोकाधीयाय लोकहिताय ते ॥ २०॥ नमस्ते पुरुषवरपुष्डरीकाय शक्यवे। पुरुषसिंचाय पुरुषेकगन्धदिपाय ते ॥ २१ ॥ चन्नदीयाभयदाय बीधिदायाध्वदायिने । भर्मदाय भर्मदेष्टे नमः शरबदाय ते ॥ २२ ॥ धनीसार्यये धनीने धनीं कचित्रणे। व्याहत्तच्छत्रने सम्यक्तानदर्भनधारिषे ॥ २३ ॥ जिनाय ते जापकाय तीर्णीय तारकाय च। विमुत्ताय मीचकाय नमी बुद्दाय बोधिने ॥ २४ ॥ सर्वन्नाय नमसुभ्यं खामिने सर्वदर्शिने। सर्व्वातिभयपात्राय कर्याष्ट्रकनिष्दिने ॥ २५॥ तुभ्यं चेत्राय पात्राय तीर्याय परमात्मने । स्वाद्वादिने वीतरागाय मुनये नमः ॥ २६ ॥ पूच्यानामपि पूच्याय महद्भ्योऽपि महीय्से। पाचार्याचामाचार्याय च्येष्ठानां च्यायसे नमः ॥ २०॥

⁽१) क ख ग व्यर्वित्वाच क्रतारात्रिकमस्तरीत्।

•

नमो विष्वभुवे तुभ्यं योगिनाद्याय योगिने। ःपावनाय पविषायानुत्तरायोत्तराय 🛪 ॥ २८ ॥ योगाचार्याय सम्प्रचालनाय प्रवराय च। षयाय वाचस्रतये 'मङ्गस्याय नमीऽसु ते ॥ २८ ॥ नमः पुरस्तादुदितायैकवौराय भास्तते। ् अभूर्भुवः खरिति वाक् स्तवनीयाय ते नमः॥ ३०॥ नमः सर्वजनीनाय सर्वार्थायास्ताय च । चदितब्रज्जाचर्यासाय पारगताय ते ॥ ३१ N नमस्ते दिचवीयाय निर्व्विकाराय तायिने। वज्रक्रमनाराचवपुषे तत्त्वहम्बने ॥ १२ ॥ नमः कालत्रयत्राय जिनेन्द्राय खयभुवे। ज्ञानवसवीर्यतेज:ग्रत्येष्वयं मयाय ते ॥ २३ ॥ षादिष्वं नमलुभ्यं नमस्ते परमेष्ठिने। ्नमसुभ्यं महिशाय च्योतिस्तस्वाय ते नमः ॥ ३४ ॥ तुभ्यं सिद्यार्थराजिन्द्रकुलंचीरोदधीन्दवे। मञ्चावीराय धौराय विजगत्स्वामिने नमः ॥ ३५ ॥ इति सुला नमस्क्रत्य ग्टडीला परमेखरम्। चानीय तत्वणं मातुरप्ययामास वासवः ॥ १६ ॥ स्तवंशविकरणाद्यवाधं पितरी तदा। नामधेयं विद्धतुर्वेद्देमान इति प्रभी: ॥ ३७ ॥

⁽१) ख माङ्गल्याय।

प्रथम: प्रकाश:।

सीऽइंपूर्विकया भक्ते: विव्यमान: सुरासुरै:। हमा पीयुषवर्षिन्छा सिश्वविव वसुत्थराम् ॥ ३८ ॥ श्रष्टोत्तरसङ्ख्रेष लच्चे रुपलचितः। निसर्गेष गुणैर्वृद्धी वयसा वहचे क्रमात्॥ ३८॥ राजपत्नैः सवयोभिः समं निःसीमविक्रमः । वयोऽनुक्पक्रीडाभि: कदाचित्क्रीडितं ययौ ॥ ४० ॥ तदा जालावधिजानामध्येसरसभं हरि:। 'धीरा पनुमद्यावीरमिति वीरमवर्णयत्॥ ४१ ॥ चोभियामि तं 'धौरमेषोऽइमिति मसरौ। चाजगामामरः कोऽपि यत्र क्रीडनभूहिसः ॥ ४२ ॥ कुर्व्वत्यामनकोकोडां राजपुर्नैः सद्द प्रभी। सो रववेष्ट दिटपिनं भुजगीभूय मायया ॥ ४३ ॥ तलालं राजपुनेषु विवस्तेषु दिशोदिशि। क्षित्वा रक्तुमिवोत्चित्वा तं चिचेप चितौ विभुः॥ ४४॥ सबीडाः क्रीडितं तन कुमाराः पुनराययुः। कुमारीभूय सीऽप्यागातार्वेऽप्याक्त इस्त क्म ॥ ४५॥ पादपायं कुमारिभ्यः प्राप प्रथमतः प्रभुः। यहा कियदमुखे इं यो सोकागं गमिखति ॥ ४६ ॥ ग्रह्मी भगवांस्तव मेरुशक्त द्वायमाः। सम्बमाना बभु: प्राखास्त्रनी प्राखासगा रव ॥ ४० ॥

⁽¹⁾ व व वीरा।

⁽२) ख वीरम्।

^{् (}३) ख स्वविष्टत्।

जिग्ये भगवता तत्र कतवासीद्यं पणः। जयेदार्ड स द्याना एडमार्ड्य वाड्येत्॥ ४८॥ षाबञ्चावाद्यदाद्यानिव वीरः कुमारकान्। पावरोइ सुरखापि एष्ठं एष्ठी महीजसाम् ॥ ४८ ॥ ततः करासं वेतासक्पमाधाय दुष्टधीः। भूधरानप्यधरयन् प्रारन्धी विधितुं सुरः ॥ ५०॥ वक्को पातासकाखेऽस्य जिक्कया तक्षकायितम्। विद्वौत्तक्के घिर: ग्रेले केगैर्दावानलायितम् ॥ ५१ ॥ तस्वातिदाव्ये दंष्ट्रे पभूतां क्रवचाकती। जाज्यस्यमाने पद्भारमक्याविव सीचने ॥ ५२ ॥ घोणारसे महाघोरे महीधरगुहे दव। स्कुटीभद्गरे भीमे महोरग्याविव स्वी ॥ ५३ ॥ व्यवंसीदर्धनात्रासी यावत्तावत्राष्ट्रीजसा । षाइत्य सृष्टिना एष्ठे खामिना वामनीकतः ॥ ५४ ॥ एवं च भगवडें धें साचात् कार्येन्द्रवर्णितम्। प्रभुं नलाव्यक्षेप निजं धाम जगाम सः॥ ५५॥ मातापित्रभ्यामन्येषुः प्रारम्धेऽध्यापनीत्सवे। भाः सर्वेत्रस्य शिष्यत्विमतीन्द्रस्तमुपास्थितः ॥ ५६ ॥ चपाध्यायासने तिस्मन्वासवेनीपवेशितः। प्रणम्य प्रार्थितः स्वामी मन्दपारायणं जगी ॥ ५०॥

⁽१) कम इन्वीयं।

⁽१) क व छ -हाले-।

इदं भगवतेन्द्राय प्रोत्तं शब्दानुशासनम्। उपाध्यायेन तच्छ्ला सोनेषेम्द्रमितीरितम् ॥ ५८ ॥ मातापित्रोरनुरोधादष्टाविंगतिवसरीम्। कविच्रिट्रहवासेऽस्थात्रवच्योकािरहतः प्रभुः ॥ ५८ ॥ षय पूर्णीयुषीः पित्रोदेवभूयसुपेयुषीः । र्ष्रशास्त्रके परिव्रक्यां निरीष्टी राज्यसम्पदः ॥ ६०॥ भगवया चते चारं चैपीरिति सगद्रदम्। भावीशा ज्यायसा मन्दिवर्द्धनेनीपरीधितः ॥ ६१ ॥ भावती यतिरेवाई नानाभरणभूषितः। कायोत्सर्गे त्रयंधिकगालिकायामवस्थितः ॥ ६२ ॥ एवणीयप्रासुकाचपानहित्तर्भशामनाः। वर्षमेकं क्रयमपि भगवानत्यवास्यत्॥ ६३॥ तीर्थं प्रवर्त्तरीत्यभ्यर्थिती लोकान्तिकासरै: i यद्याकामीनमर्थिभ्यो दानं दातुं प्रवक्षमे ॥ ६४ ॥ दैतीयीकेन वर्षेण विनिर्मायातृणां भुवन्। भौरुफद्राज्ययियं खामी मन्यमानस्तृषाय ताम् ॥ ६५ ॥ सर्वेदेवनिकायैच ज्ञतनिष्ममणोत्सवः। सहस्रवाद्यामारुष्ट शिबी चन्द्रप्रभाभिधाम् ॥ ६६ ॥ न्नातखण्डवने गला सर्वसावद्यवर्ज्जनात्। प्रवच्चामग्रहीदऋचतुर्धप्रदर प्रभुः ॥ ६० ॥ जगनानीगतान् भावान् प्रकाशयद्य प्रभी:। जानं तुरीयं संजन्ने मन:पर्ययसंज्ञकम् ॥ ६८ ॥

तत्रव गला सन्यायां वर्षारगासस्त्रिधी। गिरीन्द्र इव निष्कम्यः कायोसर्गं व्यधादिभुः ॥ ६८ ॥ गोपालेनाय यामिन्यां निष्कारणकतक्षुधा। उपद्रोतुं समारिभे भगवानाव्यवैरिचा ॥ ७० ॥ षयेन्द्रेबाविधन्नानाच्चन्ने प्रभुमुपद्रवन् । स दु:शीलो महाशैलमाखुबैष निखनिव ॥ ७१ ॥ कस्याचीभितारागाच शकः प्रभुपदान्तिकम्। नष्टो मल्लागनामं च स गोपइतकः कचित्॥ ७२॥ ततः प्रदिचिषीक्षत्य विर्मुद्दी प्रिषपत्य च । द्रति विज्ञापयाच्यक्षे प्रभुः प्राचीनवर्षिषा ॥ ७१ ॥ भविष्वति द्वादमान्दान्युपसर्गपरम्परा। तां निवेधितुमिच्छामि भगवन् पारिपार्घिकः॥ ७४॥ समाधि पारयिलेन्द्रं भगवानूचिवानिति । नापेचाचिकिरेऽर्हन्तः परसाहायिकं कचित्॥ ७५॥ ततो जगहुर: भीतसेम्य: भीतमयूखवत्। तपसीजीदुरालीकोऽधिपतिस्तेजसामिव ॥ ०६ ॥ मीक्डीर्यवान् गज इव सुमेर्दिव नियसः। सर्व्यसर्मान् सिष्णुय यथैव षि वसुत्थरा ॥ ७० ॥ षको धिरिव गन्भीरो स्गेन्द्र इव निर्भय:। मियाद्यां दुरालोक: सुहुतो ह्यावाडिव ॥ ७८ ॥ खिष्टकुरियेकाकी जातस्थामा महोचवत्। गुप्तेन्द्रियः कुर्मा द्वाचिरिवैकाम्तदसदक् ॥ ७८ ॥

प्रथम: प्रकाश:।

निरञ्जनः शङ्क इव जातक्यः सुवर्णवत् । विप्रमुक्त: खग इव जीव इवाख्वलहति: ॥ ८० ॥ व्योमेवानात्रयो भारुखपद्यीवाप्रमहरः। प्रकाजिनीदसमिवीपसपपिवर्ज्जितः ॥ ८१ ॥ गती मिने द्वेष स्त्रेष स्त्रेष स्त्रां स्त्रां मही सहि। रहामुत्र सुखे दुःखे भवे मीचे समागयः ॥ ८२ ॥ निष्कारणैककारुखपरायणमनस्तया। मळाइवोदधी मुग्धमुहिधीर्षुरिदं जगत्॥ ८३॥ प्रभुः प्रभुष्त्रन द्वाप्रतिवद्योऽव्यिमेखलाम् । नानायामपुरारच्यां विजञ्चार वसुन्धराम् ॥ ८४ ॥ देशं दिचणचावासमवाप्य प्रभुरन्यदा। म्बेतम्बी नगरीं गच्छ वित्यूचे गीपदारकै: ॥ ८५ ॥ देवार्यायस्जुः पन्याः खेतस्बीसुपतिष्ठते । किम्बन्तरेऽस्य कनकखलास्यस्तापसात्रमः ॥ ८६ ॥ स हि दृग्विषस्पेणाधिष्ठितो वर्त्ततेऽधना। वाबुमानैकसञ्चारीऽप्रचारः पश्चिषामपि ॥ ८० ॥ विहाय तदमुं मार्गे वक्रीणाप्यसुना वज । सुवर्णेनापि किं तेन कर्षच्छेदो भवेद्यत: ॥ ८८ ॥ तं चाहिं प्रभुरज्ञासीदादसी पूर्वजकाति। चपकः पारचकार्थं विष्ठर्तुं वसतेरगात् ॥ ८८ ॥ गच्छता तेन मच्छ्की पादपाता दिराधिता। पालीचनार्धमेतस्य दर्शिता चुक्कनेन सा ॥ ८०॥

सोध्य प्रत्युतमस्कृकीर्दर्भयन् सोकमारिताः। জব चुन्नं मया चुद्र किमेता प्रपि मारिता: ॥ এং ॥ तृश्वीकोऽभूत्ततः श्वकोऽमंस्त चैवं विश्वष्ठधीः। महानुभावी यदसी सायमालीचियाचित ॥ ८२ ॥ पावस्वकेऽव्यनासोच्य यावदेव निवेदिवान । चुक्कोऽचिन्तयत्तावहिच्युतास्य विराधना ॥ ८३ ॥ चस्रारयच तां भेकीमालोचयसि किं निष्ट । चपकोऽपि क्षेशियाय चुनं इसीति धावित: ॥ ८४ ॥ कोपाश्वय ततः स्तको प्रतिपद्ध व्यपद्यत । विराधितत्रामस्योऽसौ ज्योतिष्केषूदपद्यत ॥ ८५ ॥ स चुला कनकखले सहस्राईतपस्तिनाम्। पत्युः कु बपतेः पद्माः पुत्रोऽभूत्की शिकाद्वयः ॥ ८६ ॥ तत्र की शिक्षगी त्रलादासवन्येऽपि की शिकाः। पत्यन्तकोपनत्वाच स स्थातसण्डकीशिकः ॥ ८० ॥ याददेवातिथिलं च तिसान् कुलपती गते। चरी कुलपतिस्तव तापसानामजायत ॥ ८८ ॥ मुच्छेया वनखण्डस्य सीऽन्तर्भाग्यवहर्निशम्। पदाकास्यापि नादातुं पुषं मूलं फलं दलम् ॥ ८८ ॥ विशीर्षमपि योऽग्रहाइने तत फलादिकम्। चत्पाद्य परशुं यष्टिं सीष्टं वा तं जघान सः ॥ १०० ॥ फलाचसभमानास सीदनास्ते तपस्तिनः। पतिते लगुडे काका इव जग्मु हिंगोदिशम् ॥ १ ॥

प्रन्येयुः वाण्टिकाईतोः वौधिके बहिरीयुधि । " चभाङ्चप्रीङ्च राजन्याः खेतस्वा एख तदनम् ॥ २ ॥ भव व्यावर्त्तमानस्य गोपास्तस्य न्यवीविदन्। पग्य पाय वनं के बिद्धक्यते भज्यते तव ॥ ३ ॥ जाञ्चल्यमानः क्रोधेन इविषेव इताग्रनः। चकुग्रहधारमुद्यम्य कुठारं सोऽभ्यधावत ॥ ४ ॥ राजप्रवास्ततो नेगः खेनादिव प्रकुरायः। खबलिता च पपातायं यमवन्ना इवावटे ॥ ५ ॥ पततः पतितस्तस्य समाखः परशः शितः। शिरो हिधाक्ततं तेन ही विपातः क्रुकर्मणाम् ॥ ६ ॥ स विषय वनेऽचैव चच्छोऽहिर्दृन्विषीऽभवत् । क्रीधस्तीवात्वस्थी हि सह याति भवान्तरे॥ ७॥ भवर्थ चैष बोधाई इति बुद्या जगहुतः। ' चालापी डासगणय वृज्ञ नेव पथा ययी ॥ ८ ॥ प्रभवत्यदसचारसुखमीभूतवालुकम्। चदपानाव इल्बुखं ग्रन्क जर्भरपादपम् ॥ ८ ॥ जीर्षपर्यवयास्तीर्धं कीर्सं वस्मीकपर्वते:। खलीभूतोटजं जीखीरखं न्यवियत प्रभु: ॥ १०॥ तव चाय जगवायी यचमण्डिपकान्तरे। तस्वी प्रतिमया नासाप्रान्तवित्रान्तलोचन: ॥ ११ ॥ ततो दृष्टिविषः सप्पः सद्पी भ्रमितुं बन्धः। बिलाविरसरिकाषा कालरातिसुखादिव ॥ १२ ॥

भ्रमन् सोऽनुवनं रेणुसंक्रामद्गीगलेखया। खाचालेखामिव लिखनीचाचने जगद्गुरम् ॥ १३ ॥ प्रव्र मां किमविज्ञाय किमवज्ञाय कोऽप्यसी। 💛 **घा: प्रविष्टो निरागर्ष निष्कम्य: ग्रह्मवत् स्थित: ॥ १४ ॥** तदेनं भक्तसादद्य करोमीति विचिन्तयन्। षाधायमानं कोपेन फटाटोपं चकार सः ॥ १५ ॥ ज्वालामालामुद्दमन्या निर्देषन्या लताहुमान्। भगवन्तं दृशापश्यत्स्मारमृत्कारदावयः ॥ १६॥ दृष्टिच्याचास्ततस्तस्य व्यवस्थो भगवत्तनी। विनिपेतुर्दुरास्रोका उस्का इव दिवी गिरी ॥ १० ॥ प्रभोमें हाप्रभावस्य प्रभवन्ति स्म नैव ताः। महानिप मक्सेवं किं कम्पयितुमीखरः ॥ १८॥ दाबदाएं न दन्धीऽसावदापीति क्रुधा ज्वलन्। दर्भ दर्भ दिनकरं दृग्वानाः सीऽसुचत्प्नः ॥ १८ ॥ सम्पन्नास प्रभी वारिधाराप्रायास तास्त्रि। ददंश दन्दशुकोऽसी नि:शुकाः पादपङ्कते ॥ २०॥ दष्टा दष्टापचकाम खिवषोद्रेकदुर्कादः। युत्पतवादिषाकान्तो ग्रहीयादेष मामपि ॥ २१ ॥ टग्रतोऽप्यसकत्तस्य न विषं प्राभवसभी। ्गोचीरधाराधवलं कीवलं रक्तमचरत् ॥ २२ ॥ ततच पुरतः ख़िला किमेतदिति चिन्तयन्। ्वीचाचक्रे जगनायं वीचापनः स पनगः ॥ २३ ॥

तती निक्ष्य क्यं तदनुक्यं जगद्दरी:। कान्तिसीम्यतया मङ्च विध्याते तहिलोचने ॥ २४॥ उपसन्नं च तं चाला बभाषे भगवानिति। चण्डकोशिक बुद्धाख बुद्धाख ननु मासुष्टः ॥ २५ ॥ शुला तद्भगवद्याक्यमृहापोष्टं वितन्वतः । पत्रगस्य समुत्पेदे सारणं पूर्वजनामाम् ॥ २६ ॥ स तिः प्रदिचिणीकत्य ततस परमेष्वरम्। निष्मवायः समनसारमधनं प्रत्यपद्यतः ॥ २०॥ क्तानप्रनक्षां चिष्ककीयं महोरगम्। प्रश्मापनमञ्जासीदन्वज्ञासीच तं प्रभुः ॥ २८ ॥ क्रवाप्यस्यव मा यासीइष्टिमें विषमीषणा। इति तुन्हं विसे चिप्ला पपी स समतास्तम् ॥ २८ ॥ तस्यी तथैव तभैव खामी तदन्तमया। · परेषासुपकाराय महतां हि प्रवृत्तय: ॥ ३० ॥ भगवन्तं तथा दृष्टा विद्यायस्रोरलोचनाः । गोपाला वसपालाय तत्रोपसच्छपुर्तुतम् ॥ ३१ ॥ हचान्तरे तिरोभूय यथेष्टं पावलोष्ट्रिः। प्रशिजन्नुरनिन्नास्ते पद्मगस्य महात्मनः ॥ ३२ ॥ तवाप्यविचलनां तं वीच्य विश्वभागाजिनः। यष्टिभिर्घद्यामासुनिकटीभूय तत्तनुम् ॥ ३३ ॥ पास्यन जनानां ते गोपास्ततस्तवागमन् जनाः। ववन्दिर महावीरममहंख महोरगम् ॥ ३४ ॥

ष्टतिकयकारिक्यो गच्छन्त्यस्तेन वर्णना । नागं चैयक्वीनेनाम्बयन् पस्यस्य तम् ॥ ३५ ॥ पागत्य ष्टतगन्धेन तीच्चतुष्टाः पिपीलिकाः । पित्र तित्र प्रायमचेस्तस्य कलेवरम् ॥ ३६ ॥ सल्तमीषां कियदेतदित्यात्मानं विबोधयन् । वेदनामधिसे तां दुःसचां सोऽचिपुक्वः ॥ ३० ॥ वराक्यो मास्र पीष्यन्त स्वस्मसाराः पिपीलिकाः । चत्यचीचलदक्षं न मनागपि मचोरगः ॥ ३८ ॥ सिक्तः लपास्थात्रध्या दृष्ट्या भगवतीरगः । पद्मान्ते पद्मतां प्राप्य सदसारदिवं ययो ॥ ३८ ॥

विद्धति विविधोपसर्गबाधां
पाचिस्ति दृष्टिविषे हरी तु भिक्तम् ।
इति तुस्यमनस्कता ग्रांथे
चरमजिनस्य जगस्यैकवन्योः ॥ १४० ॥ २ ॥

प्रकाराकारेच पुनर्योगगभीमेव सुतिमाइ—

क्ततापराधेऽपि जने क्तपामन्यरतारयोः। ईषद्याषार्द्रयोर्भद्रं श्रीवीरजिननेत्रयोः॥ ३॥

विदित्तविप्रियेऽपि जने सङ्गमकादी क्रपया मन्दरे दवबते तारे कनीनिके ययोः देवदाष्यसञ्जले स च कर्चाक्रत एव तेन पार्ट्रे क्रिन्ने भगवतो नेचे तयोभेद्रमिति सामध्याचमस्कारप्रतीतिः। तथाडि—

चनुपाममनुपुरं विश्वरन् विभुरम्बदा । टढभूमिमनुप्राप बहुक्केच्छकुलाकुलाम् ॥ १ ॥ पेढालगामं निकवा पेढालाराममन्तरा। क्ताष्ट्रमतपः कथा पोलासं चेत्वमाविशतः ॥ २ ॥ जम्परीधरहितमधिष्ठाय शिलातलम्। पाजानुस्रव्यातभुजी दरावनतविग्रष्टः ॥ ३ ॥ स्थिरीक्रतान्तः करणो निर्निमेषविणोचनः। तस्यी तत्रैकरानिका महाप्रतिमया प्रभुः ॥ ४ ॥ तटा ग्रजः सधनावां सभायां परिवारितः। सङ्ख्रेयत्रश्रीत्या सामानिकदिवीकसाम् ॥ ५ ॥ वयस्वित्रस्वायस्वित्रेः पर्विद्वस्तिस्तिस्तया । चत्रभिर्जीकपासैय संख्यातीतेः प्रकीर्धकैः॥ ६ ॥ प्रत्येवं चत्रशीत्या सहस्रीरकरचर्वः। हुटावदपरिकरें: बाबुष् चतस्यपि ॥ ७॥ मेनाधियतिभिः सेनापरिवीतेस सप्तभिः। हेबहेबीमचैराभियोग्यै: कि खिविषकादिभि: ॥ ८ ॥ तुर्खेवयादिभि: कालं विनोदेरतिवाह्यम्। गोप्ता टिचिन्सोकाई यक्तः सिंहासने स्थितः ॥ ८ ॥ पविश्वानती जाला भगवन्तं तथास्वितम्। ः जलाय पादुकी त्यक्कोत्तरासक्तं विधाय च ॥ १० ॥ जान्यसम्बं भुवि न्यस्य सम्यं च न्यस्य किसन। मक्सराविनावन्दिष्ट भूतलन्यस्तमस्तकः ॥ ११ ॥

समुखाय च सर्व्वाकोदश्वद्रोमाञ्चकश्वकः। भचीपतिकवाचेदमुहिन्य सकलां सभाम् ॥ १२ ॥ भी भीः सर्वेऽपि सौधर्यवासिनस्त्रिद्योत्तमाः। श्रुत श्रीमहावीरस्वामिनी महिमाइतम्॥ १२॥ दधानः पश्चसमितीर्गृप्तिवयपविवितः। कोधसानमायालोभानभिभूतो निरास्नव:॥ १८॥ द्रव्ये चित्रे च काले च भावे चाप्रतिबद्धधी:। वचैकपुरलन्यस्तनयनी ध्यानमास्थित: ॥ १५ ॥ प्रमरेरसुरैयंचैरचोभिद्रगैनरै:। चैलोक्येनापि भक्येत ध्यानाचालयितुं नहि॥ १६॥ रत्यावार्ये वदः यात्रं यत्रसामानिकः सुरः। सताटपद्दचटितशक्तरीभक्तभीषय: ॥ १० ॥ कम्पमानाधरः कोपाञ्चोडितायितलोचनः। प्रभयो गाढमियात्वसङ्गः सङ्गमकोऽवदत् ॥ १८॥ मर्त्यः समजमानीऽयं यदेवं देव वर्ष्यते। खच्छन्दं सदसदादे प्रभुत्वं तत्र कारचम् ॥ १८ ॥ देवैरपि न चास्त्रोऽयं ध्वानादिखुद्गटं प्रभो:। 📖 📝 कर्य भार्येत हृदये धते वा प्रोचित कथम् ॥ २०॥ बद्दान्तरिचः द्विशाखरै मू लैबदरसातलः। यै: किलोदस्वते दोष्णा सुमेरलीष्ट् बीलया ॥ २१ ॥ सकुलाचलमेदिन्याः प्रावनव्यक्तवेभवः। येषामेषोऽपि गण्डूषसुकरो सकराकरः ॥ २२ ॥

प्रायेकमुजद्खेन प्रचच्हाञ्कतलीलया। उदरित सहानेकभूधरां ये वसुन्धराम् ॥ २३ ॥ तेवामसमऋदीनां सुराचाममितीजसाम्। इच्छासम्पन्नसिनीनां मर्त्यमातः वियानयम् ॥ २४॥ एषोऽइं चालयिचामि तं ध्यानादित्युदीयं सः। करेच भूमिमाइलोदसादासानमख्यात्॥ २५॥ पर्दन्तः परसाद्रायात्तपः कुर्वन्वखण्डितम्। मान्नासीदिति दुर्वेषिः शक्तेष स उपेचितः ॥ २६ ॥ तती वेगानिलोत्पातपतापतघनाघन:। रौद्राक्तिर्दरालोको भयापसरदसराः॥ २०॥ विकटोरखनाघातपुज्जितयस्म खनः। स पापस्तव गतवान् यवासीत्परमेखरः ॥ २८ ॥ निष्कारचनगद्यमुं निरावाधं तथास्थितम्। त्रीवीरं पर्यतस्तस्य मसरो वहचेऽधिकम् ॥ २८॥ गीळीाचपांसनः पांश्वष्टिं दुष्टीऽतनिष्ट सः। पकाण्डचिटतारिष्टास्परिष्ठाज्जगत्रभोः ॥ ३०॥ विधुविधुन्तुदेनेव दुर्दिनेनेव भास्तर:। पिद्धे पांग्रपूरिण सर्व्वाङ्गीणं जगन्त्रभुः ॥ ३१ ॥ समन्ततोऽपि पूर्वानि तथा त्रोतांसि पांश्वभि:। यथा समभवत्स्वामी निम्बासीच्छासवर्ज्जित:॥ ३२ ॥ तिसमात्रमपि ध्यानात्र चचास सगह्रकः । कुला चलयलति किंगजै: परिणतैरिप ॥ ३३ ॥

भपनीय ततः पांग्रं वचतुन्हाः पिपीलिकाः । स समुत्पादयामास प्रभोः सर्व्वाङ्कपौलिकाः ॥ १४ ॥ प्राक्तिमनेकतोऽङ्गेषु खैरं निययुरन्यतः। विध्यन्तस्तीच्यतुष्कार्यः सूच्यो निवसनिष्विव ॥ ३५ ॥ निर्भाग्यस्थेव वाञ्हासु मोघीभूतासु तास्विप। :स दंशान् रचयामास नाकत्यान्तो दुराव्यनाम् ॥ ३६ ॥ तेषामिकप्रशारेण रक्तेंगीचीरसीदरैं:। चरित्रसम्बद्धायः सनिर्मार द्वाद्रिराट् ॥ १०॥ तैरप्यचीभ्यमाणेऽय जगवाधे स दुसैति:। चक्रे प्रचण्कतुण्डाया दुर्विवारा घतेलिकाः ॥ १८ ॥ गरीरे परमेगस्य निमम्नसुखमस्ताः। ततस्ताः समलचाना रोमाणीव सन्नोत्यिताः ॥ ३८ ॥ ततोऽप्यविचलचित्ते योगचित्ते जगदुरौ । स महाद्वसिकां सक्ते ध्यानव्रसन्निसयी ॥ ४०॥ प्रबयाम्बस्फ्बिङ्गाभास्त्रप्ततोमरदाव्यै:। तिऽभिन्दन् भगवद्देषं लाष्ट्रलाषुरकपटकै: ॥ ४१ ॥ तैरप्यनाकुले नाथे क्टसङ्ख्यसङ्खः। सीऽनन्पान् कल्पयामास नक्तनान् दयनाक्तनान् ॥ ४२ ॥ खिखीति रसमानास्ते दंषाभिर्भगवत्तनुम्। खक्कबक्केकोटयस्ती मांसखकान्यपातयन् ॥ ४३॥ तैरप्यक्ततक्षां श्री यमदोई गडदाक्णान्। ष्यत्युक्तरफरारोपान् कोपाग्रायुङ्क्त पद्मगान् ॥ ४४ ॥

चाचिर: पादमापीच महावीरं महीरगाः। भवेष्टयमञ्चाद्यचं कपिकच्छुसता इव ॥ ४५ ॥ 📑 प्रजन्नुस्ते तथा तब स्मुटन्ति सा फटा यथा। तवा दमन्ति सा यवाऽभज्यना दमना पपि ॥ ४६ ॥ चदान्तगरतीचेषु सम्बमानेषु रज्ञवत्। स वज्जदग्रनामाश्च मूचकानुदपीपदत् ॥ ४० ॥ खाम्बद्गं खनकायएनुर्नेखैर्दन्तेर्मुखेः खरैः। मोमूब्रामाचास्त्रवैव चते चारं निचित्तिषुः ॥ ४५ ॥ तेष्वप्यक्तिषिज्ञृतेषु भूतीभूत इव क्रुधा। ः चह्न्फदन्तमुसलं इस्तिक्पं ससर्च्च सः ॥ ४८ ॥ ः सोऽधावत्पाद्यातेन मेदिनीं नमयिवव। चडुम्पुदसाइसीन नभसास्त्रीटयविव ॥ ५० ॥ कराग्रेण ग्रहीत्वा च दुर्वरिण स वारणः। ष्ट्रसुद्धालयामास भगवनां नभस्तले ॥ ५१ ॥ विशीर्य क्रमशी गच्छलसाविति दुराशयः। दन्तावुक्रस्य स ब्योकः पतन्तं सा प्रतीक्कृति ॥ ५२ ॥ पतितं दन्तवातेन विध्यति स सुदुर्मुद्धः। वचसी वव्यकितगत् समुत्तस्यः स्मुलिङ्गकाः ॥ ५३ ॥ न ग्रामान वराकोऽसी कर्त्तुं किचिदिपि दिप:। ्यावत्तावसुरस्रको करियों वैरियोमिव ॥ ५४ ॥ प्रखण्डग्रण्डदन्ताभ्यां भगवन्तं विभेद सा । ः खैरं ग्ररीरनीरेख विषेश्वेव सिषेच च ॥ ५५ ॥

करेषो रेणुसाइते तस्याः सारे सुराधमः। पिशाचकपमकरोवाकरोत्कटदंषुकम्॥ ५६॥ व्यासाजासाकुसं व्यात्तं व्यायतं वक्कवीटरम्। चभवद्गीषयं तस्य विद्वतुष्डमिव व्यसत् ॥ ५०॥ यमीकस्तोरकस्तकाविव प्रोक्तकिती भुजी। षभूच तस्य जङ्गोव तुङ्गं तालहमोपमम् ॥ ५८ ॥ स साष्ट्रहासः फेल्मुर्वेन् स्फूर्ज्जिललिनारवः। . कत्तिवासाः कर्तृकास्द्रगवन्तमुपाद्रवत् ॥ ५८ ॥ 🔻 तिकाविप हि विध्वाति चीचते सपदीपवत्। व्याचक्पं क्षुधाचातः शीघं चक्रे स निर्वेषः ॥ ६० ॥ पय पुच्छच्छटाच्छोटैः पाटयविव मेदिनीम् । वूकारप्रतिशब्देय रोदसीं रोदयनिव ॥ ६१ ॥ दंष्ट्राभिवेष्यसाराभिनेखरैः शूलसोदरैः। पयमं व्यापिपर्त्ति स्न व्यान्नी भुवनभर्त्तरि ॥ ६२ ॥ तत विच्छायतां प्राप्ते दवदन्ध इव हमे। सिवार्थराजनिमलादेव्यो क्यं व्यथत्त सः ॥ ६३ ॥ किमेतद्भवता तात प्रकान्तमतिदुष्करम्। प्रवच्यां सुच सामाकं प्रार्थनासवजीगणः॥ ६४॥ वृद्धावगरणावावां त्यक्तवान्नन्दिवर्दनः । वायखेति खरेहीनदीनैर्थेलपतां च ती ॥ ६५ ॥ (युग्मं) ततस्तयोविं लापेरप्यलिप्तमनसि प्रभी। षावासितं दुराचारः स्त्रन्थावारमकस्ययत् ॥ ६६ ॥

तवानासाद्य दृषदं सुदः सादर घोदने। पुनीपरे प्रभो: पारी कता खानीमकत्पयत् ॥ ६० ॥ तलालं ज्वालितस्तेन जन्वास ज्वलनीऽधिकम्। पादमूले जगइर्नुगिरिरिव दवानलः ॥ ६८ ॥ तप्तस्वापि प्रभोः स्वर्षस्थेव न श्रीरष्टीयत । ततः सुराधमस्त्री पक्षचं दाक्चक्रणम् ॥ ६८ ॥ पक्तचीऽपि प्रभीः कच्छे कचिंगोर्भुजदच्हयोः। जक्तयोस सुद्रपत्तिपन्तराणि व्यलस्वयत्॥ ७०॥ खगैवसुनसाघातैसाघा दट्टे प्रभोसातुः। यया च्छिट्रग्रताकीर्णा तत्पन्तरनिभाभवत्॥ ७१॥ तवाप्यसारतां प्राप्ते पक्क पक्कपनवत्। उत्पादितमहोत्पातं खरवातमजीजनत् ॥ ७२ ॥ भन्तरिचे महाव्रचांस्तृषोरचेपं समुत्चिपन्। 🗀 विचिपन् पांग्रविचेपं दिसुं च गावकर्षरान्॥ ०२ ॥ सर्वतो रोदसीगर्भ भस्तापूरं च पूरवन्। चलाचीत्पाच वातोऽसी भगवन्तमपातयत् ॥ ७४ ॥ (युग्मं) तेनापि खरवातेनापूर्णकामी विनिग्धम । युसल्तुलकसङ्घीऽसी द्राक्त्यं कलिकानिसम् ॥ ७५ ॥ भूशतोऽपि भ्रमयितुमलक्क्यीचवित्रमः। भ्रमयामास चन्नस्यस्तिष्डमिव स प्रभुम् ॥ ७६ ॥ भ्रम्यमाणीऽर्णवावर्त्तेनेव तेन नभस्रता। तदेकतानी न ध्वानं मनागपि जड़ी प्रभुः ॥ ७० ॥

वच्चसारसनस्कोऽयं बहुधाऽपि वदर्थितः। 'न चीभ्यते क्यमचं भन्नागूर्यामि तां सभाम् ॥ ७८ ॥ तदस्य प्राचनाग्रेन ध्यानं नस्रति नान्यया । चिनायिखेति चन्ने स कालचन्नं सराधमः॥ ७८॥ षक्राय तदयोभारसहस्रघटितं ततः। चहुधार सुर: ग्रेसं वैसासमिव रावय: ॥ ८० ॥ प्रथिवीं सम्मुटीकर्त्तं क्रतं मन्ये पुटान्तरम्। चत्पत्त्व कासचर्मा स प्रचिचेपीपरि प्रभी: ॥ ८१ ॥ ज्यासाजासेव च्छलद्विदिंगः सर्वाः करासयन् । । छत्पपात जनइर्सर्यौर्वानस स्वार्षवे ॥ ८२ ॥ कुसचितिधरचीदचमस्यास्य प्रभावतः। समजाजानुभगवाननार्वसुमतीतसम् ॥ ८१ ॥ एवस्तोऽपि भगवानंगीचदिदमस्य यत्। तितार्यिषवी विष्यं वर्यं संसारकार्यम् ॥ ८४ ॥ कासचक्रकतोऽप्येव प्रपेदे पचतां न यत्। ्यगोषरस्तदस्राचासुपायः व द्रशपरः ॥ ८५ ॥ चनुक्तेदपसर्गेः चुश्येदादि कचचन । इति बुद्या विमानसः स पुरोऽस्वादुवाच च ॥ ८६ ॥ महर्षे तत तुष्टोऽस्मि सखेन तपसीअसा । प्राचानपेजभावेनारस्थनिर्देष्ट्वेन च ॥ ८० ॥ पर्याप्तं तपसानेन गरीरक्रेमकारिका। . ब्रूडि याचस्य माकार्षीः ग्रङ्कां यच्छामि क्लिं तव ॥ ८८ ॥

प्रथमः प्रकाशः।

रच्छामानेच पूर्यन्ते यत्र नित्यं मनोरयाः। ं किमनेमैव देष्ट्रेन लां खर्ग प्रापयामि तम् ॥ ८८ ॥ प्रनादिभवसंक्टकस्रीनमीचलचल्म । एकान्तपरमानन्दं मीचं वा त्वां नयामि किम् ॥ ८० ॥ प्रशेषमञ्जलाधीयमीलिलालितयासनम्। भववाचैव वच्छामि साम्त्राच्यं प्राच्यस्डिभिः ॥ ८१ ॥ इत्यं प्रलोभनावाक्यरचोभ्यमनिस प्रभी। अप्राप्तप्रतिवाक्यापः पुनरेवमचिन्तयत् ॥ ८२ ॥... मोघोक्तसन्नेतयास शक्तिविज्ञितम्। तदिदानीममोघं स्थायचेकं कामगासनम् ॥ ८३ ॥ यतः कामास्त्रभूताभिः कामिनीभिः कटाचिताः। हष्टा महापुमांसोऽपि लुम्पन्तः पुरुषव्रतम् ॥ ८४ ॥ इति निवित्य चित्तेन निर्दिदेश सुराष्ट्रनाः। ति चिमसहायान् षट् प्रायुक्त स भरत्निपि ॥ ८५ ॥ क्ततप्रसावना मत्तको किलाक क्रिकेटी:। कन्दर्पनाटकनटी वसन्तत्रीरयोभत ॥ ८६ ॥ मुखवासं सळ्यन्ती विकसबीपरेश्विः। सैरन्त्रीव दिम्बधूनां शीषसम्भीरजृश्वत ॥ ८० ॥ राज्याभिषेके कामस्य मङ्ग्यतिसकानिव। सर्वाष्ट्रं वेतकषाजात्नुर्व्वती प्राष्ट्रजावभी ॥ ८८ ॥ सइस्रनयनीभूय नवनीस्रोत्पसच्छसात्। ः स्त्रम्यद्भिवीहामां प्रसन्तीः ग्रन्तभ गरत् ॥ ८८ ॥

जयप्रशस्तिं कामस्य खेताचरसहोदरैः। देममात्री विवेखेव प्रत्यमे: कुन्दकुड्मने: ॥ १०० ॥ गणिकेवीपजीवन्ती ईमन्तसुरभीसमम्। कुन्देव सिन्दुवारेव शिशिरत्रीरचीयत ॥ १ ॥ एवसुजुश्रमाचेषु सर्वेत्तुंषु समन्ततः । मीनध्वजपताकिन्यः प्रादुरासन् सुराङ्गनाः ॥ २ ॥ सङ्गीतमिव गीताष्ट्राः पुरी भगवतस्ततः । ता: प्रचक्रमिरे जैवं मन्त्रास्त्रमिव मानायम् ॥ ३ ॥ 'तवाधिस्चितलयं गान्धारगाम'बन्ध्रम्। काभिसिदुदगीयन्त जातयः ग्रह्मवेसराः ॥ ४ ॥ क्रमब्युल्यमगैस्तानैर्थेत्तैर्वेष्मनभातुभिः। प्रवीणावादयहीयां काचियाकलनिष्यलाम् ॥ ५ ॥ स्मुटत्तकारधोषारप्रकारमेघनिखनान्। काश्विच वादयामासुर्मृदङ्गांस्त्रविधानपि ॥ ६॥ नभोभूगतचारीकं विचित्रकरणोद्गटम्। दृष्टिभावैनेवनवै: काखिदप्यनरीतृत:॥०॥ ्र दृढाङ्गन्नाराभिनयैः सद्यस्तुटितकञ्चका । बभ्रती स्रथधियानं दोर्मूनं काप्यदीदयत् ॥ ८ ॥ दण्डपादाभिनयनच्छलालापि सुडुर्म्डः। चारगोरोचनागौरमूरमूलमदर्भयत् ॥ ८ ॥

⁽१) च तलातिस्त्रिलतस्यम्।

⁽१) च शन्दरम्।

स्वयचण्डातकप्रस्थिहटीकरणलीलया। कापि प्राकाश्यदापीसनाभिं नाभिमण्डलम् ॥ १० ॥ व्यपदिग्रीभदन्तास्य इस्तकाभिनयं सुदुः। गाढमक्रपरिष्यक्रसंज्ञा काचिच निर्मेंने ॥ ११ ॥ सञ्चारयन्त्यन्तरीयं नीवीनिविडनच्छलात्। नितम्बबिम्बफलकं काचिदाविरभावयत्॥ १२॥ यङ्गभङ्गापदेशेन वच्चःपीनीवतस्तनम्। सुचिरं रोचयामास काचिद् रुचिरलोचना ॥ १३ ॥ यदि लं वीतरागीऽसि रागं तत्रस्तनीषि किम्। शरीरनिरपेचबेहले वचीऽपि किंन नः ॥ १४॥ दयात्तर्यदि वासि त्वं तदानीं विषमायुधात्। भकाण्डाक्रष्टकोदण्डादस्मात्र वायसे क्यम् ॥ १५ ॥ उपेचरे कीतुकेन यदि नः प्रेमलालसाः। किचिनावं हि तद्युतं मरचानां न युज्यते ॥ १६ ॥ स्वामिन् कठिनतां सुच पूरयास्मनारियान्। प्रार्थनाविमुखी माभू: कािबदित्यं चिरे चिरम् ॥ १७॥ एवं गीतातीचानृत्तै'विकारैराङ्गिकैरपि। चाट्भिय सुरस्त्रीणां न चुच्चीभ जगत्रभुः ॥ १८ ॥ एवं रात्री व्यतीतायां तती विइरतः प्रभी:। निराष्ट्रारस्य षयमासान् सुराधम उपाद्रवत् ॥ १८ ॥

⁽१' क च कलैः।

भद्दारक सुखं तिष्ठ खेरं क्रम गतोऽकारहम्।

प्रकासान्ते मुवनेवं खिनः सङ्गमकोऽगमत् ॥ २०॥
कर्षाचैवंनिधेनायं क वराको व्रजिष्यति।

न शकाते तार्यितुमस्माभिरपि तारकोः ॥ २१॥

एवं भगवतिसन्तां तन्वतस्त्रभ गष्कति।

हशावभूतां क्रपयोद्यासे मन्यरतारके ॥ १२२॥ ३॥

एवं देवतां नमस्त्रत्य सित्तमार्गं योगमभिधित्युस्तच्छास्तं प्रस्तीति ।

श्रुतास्रोधेरिधगम्य सम्प्रदायाच सहरोः। खसम्वेदनतसापि योगशास्त्रं विरच्यते॥ ४॥

इह नानिणीतस्य योगस्य पदवाक्यप्रवन्धेन शास्त्रविरचना कर्त्तु-मुचितिति। योगस्य निहेतुको निर्णयः स्थाप्यते। शास्त्रतो गुक-पारम्पर्यात् स्वानुभवाच तं त्रिविधमपि क्रमेणाच। स्रुताक्षोधेः सकाग्रादिधगम्य निर्णीय योगमिति श्रेषः। तथा गुक्पारम्पर्यात् तथा स्वसन्वेदनादेवं तिथा योगं निसित्य तच्छास्तं विरचते। एतदेव निर्व्यक्षये वच्चति।

या शास्त्रात्स्वगुरोर्मुखादनुभवाचात्रायि किश्वित् कचित् योगस्योपनिषदिवेकिपरिषचेतसमकारिणी। श्रीचीनुस्यकुमारपासन्द्रपतेरत्यर्थमभ्यर्थना-दाचार्य्येण निवेशिता पथि गिरां श्रीहेमचन्द्रेण सा॥१॥४॥

योगस्वैव भाषाकामाष्ट्र--

योगः सर्व्वविपद्वत्तीविताने परशः शितः। यमूलमन्त्रतन्तं च कार्माणं निर्हतिश्रियः॥ ५॥

सर्वा विपद पाधालिक-पाधिभौतिक पाधिदैविकत्तवाः ताचातिविततत्वाद्वतीकपास्तामां वितानः समूहस्तत्र तीष्यः परश्चर्यीग रत्वनर्थपरिष्ठारो योगस्य फलम्। उत्तरार्धेनार्थप्राप्ति-मौजलक्षाः परमपुरुषार्थकपाया मूलमन्त्रतन्त्रपरिष्ठारेष कार्येषं संवननं योगः कार्येषं हि मूलमन्त्रतन्त्रेविधीयते। योगसु मूलादिरहित एव मोजलक्षीवयीकरणहेतुरिति॥ ५॥

कारबोच्छेदमन्तरेष न विपन्नचषस्य कार्यस्योच्छेदः प्रकाः क्रियतः

इति विपत्नारणपापनिर्घातहतुत्वं योगखाइ — े

भूयांसोऽपि हि पाप्रानः प्रलयं यान्ति योगतः । चण्डवाताह्वनघना घनाघनघटा दव ॥ ६ ॥

बह्मस्यिप पापानि योगात्रसयसुपयान्ति प्रचण्डवाती हूता स्रति-घना मेवघटा इव ॥ ६॥

> स्वाहेतहेकजकोपार्कितं पापं योगः चित्रयादिष चनेकभवपरम्परोपात्तपापस्य तु निर्मूलनं योगादसन्भावनीयमित्याच-

चिगोति योगः पापानि चिरकालार्ज्जितान्यपि । प्रचितानि यथैधांसि चगादेवाशुश्रचिशः॥ ७॥ यद्या चिरकासमीलितान्यपीत्यनानि चणमात्रप्रचितोऽप्यक्षणः क्षणानुभैद्यसालारीति। एवं योगः चणमात्रेणैव चिरसचितपाप-संचयचमी भवतीति॥ ७॥

योगस्य फलान्तरमाइ—

क्षफविष्रुग्सलामर्श्वसर्व्वीषधिमञ्ज्वेयः। सिमान्नश्रीतीलब्धिय यौगं ताग्डवडम्बरम्॥ ८॥

महर्षि ग्रन्दः प्रत्येकमपि सम्बध्यते । कफ सेषा विमुष्ट्रसारः पुरीषनिति यावत् । मलः कर्णदम्तनासिकानयनजिङ्कोद्धवः ग्ररीरसभावस । षामग्री इस्तादिना सर्गः सब्वे विष्मूत्रकेगनखादय
एका षत्रकास पौषधयो योगप्रभावानाइदेयो भवन्ति । षयवा
महर्षयो विभिन्ना एवास्तवादयः । तथा स्रोतांसीन्द्रियाणि
संभिन्नानि सङ्गतानि एकैकगः सर्व्वविषयैस्तेषां लिस्योगस्थेदं
यौगं तास्क्रवडस्वरं 'दर्शितम् ।

तयाचि योगमाचात्मगाचोगिनां कपविन्दवः ।
सनत्तुमारादेरिव जायन्ते सर्व्वरक्षिदः ॥ १ ॥
सनत्तुमारो चि पुरा चतुर्थयक्षवर्त्त्वंभृत् ।
षद्खण्डपृथिवीभोक्षा नगरे चिस्तनापुरे ॥ २ ॥
कदाचित्र सुधनीयां सभायां जातविस्मयः ।
कपं तस्वापृतिकृपं वर्षयामास वासवः ॥ ३ ॥

⁽१) खगच विवस्तिम्।

प्रथमः प्रकाशः।

राषः सनल्मारस्य कुरुवंगगिरोमणेः। यदूपं न तदन्यत्र देवेषु मनुजेषु वा ॥ ४ ॥ इति प्रयंसां कपस्यात्रह्थानावुभी सुरी। विजयो वैजयन्तच प्रशिष्यामवतेरतः ॥ ५ ॥ ततस्ती विप्रकृपेष कृपान्वेषणहतवे। प्रासाददारि तृपतेस्तस्यतुद्दीस्यसिवधी ॥ ६ ॥ पासीत् सनल्मारोऽपि तदा प्रारव्यमक्जनः। मुक्तनि:प्रेषनेपष्यः सर्वाङ्गाभ्यङ्गमुद्दद्यन् ॥ ७ ॥ द्वारस्वी द्वारपालेन दिजाती ती निवेदिती। न्यायवर्त्ती चक्रवर्त्ती तदानीमप्यवीविशत्॥ ८॥ सनलुमारमालोका विस्मयसीरमानसी। धूनयामासतुर्मी सिं चिन्तयामासतुत्र ती ॥ ८ ॥ सलाटपद्दः पर्यस्ताष्टमीरजनिजानिकः। नेत्रे कर्षान्तवित्रान्ते जितनीसोत्पस्तिमी ॥ १०॥ दन्तक्टदी पराभूतपक्षविम्बीफलक्कवी। निरस्तश्रक्तिकी कर्णी कर्णोऽयं पाच्चजन्यजित्॥ ११ ॥ करिराजकराकारितरस्तारकरी भजी। खर्षे ग्रैल गिलालकी विलुग्टाक सुरस्थलम् ॥ १२ ॥ मध्यभागी सगारातिकिशोरीदरसोदर:। किमन्यदस्य सर्वाष्ट्रसमीर्वाचां न गोचरः ॥ १३॥ भन्नो कोऽप्यस्य सावस्यसरित्यूरी निरर्गस:। येनाभ्यक्तं न जानीमी ज्योत्स्वयोड्प्रभामिव ॥ १४ ॥

यथेन्द्री वर्षयामास तथेदं भाति नान्यया । : मिया न खल् भाषने महाबान: कदाचन ॥ १५॥ विं निमित्तमिष्ठायाती भवन्ती डिजसत्तमी। प्रयं सनल्मारेष पृष्टी तावेवमूचतुः ॥ १६॥ सोकोत्तरचमलारकारकं सचराचर । भुवने भवती रूपं नरमार्दूस गीयते ॥ १० ॥ दूरतोऽपि तदाकर्षं तरक्वितक्कतूक्सी। विस्रोक्तयितुमायातावावामवनिवासव ॥ १८ ॥ वर्ष्यमानं यथा जोके श्रुविध्याभिरज्ञतम्। क्यं ऋप ततोऽप्येतवाविश्रेषं निरीश्वते ॥ १८ ॥ जरे सनल्मारोऽपि स्नितविस्कृरिताधर: । इयं इ कियती कान्तिरक्रेश्यक्तरिकृते ॥ २०॥ इतो भूला प्रतीचेयां चलमानं दिजीसमी। । याविववर्यवेऽसाभिरेष मक्जनवच्यः ॥ २१ ॥ विचित्ररचितावाचां भूरिभूषणभूषितम्। ा इपं पुनर्निरीचेयां सरक्रमिव काञ्चनम् ॥ २२ ॥ ततीऽवनिपतिः साला कल्पिताकल्पभूषवः। साडम्बर: सदीऽध्यास्ताम्बररद्वमिवाम्बरम् ॥ २३ ॥ चतुत्राती तती विप्री पुरीभूय महीपती:। निदध्यतुष तद्रुपं विषषी दध्यतुष ती ॥ २४ ॥ क तद्र्यं का सा कान्तिः का तकावच्यमप्यगात्। ः चर्वनाप्यस्व मर्त्वानां चर्विकं सर्वमेव हि ॥ २५ ॥

प्रथमः प्रकाशः।

तृपः प्रोवाच ती कस्मादृष्टद्वा मां मुदिती पुरा । कस्मादकस्मादधुना विषादमिलनाननी ॥ २६ ॥ ततस्तावृचतुरिदं सुधामधुरया गिरा। महाभाग सुरावावां सौधर्माखर्गवासिनौ ॥ २०॥ मध्येसुरसभं धक्रसक्रे खद्रूपवर्णनम्। पत्रह्थानी तर्रष्टुं मर्त्वमूर्त्वागताविष्ठ ॥ २८ ॥ मनीय वर्षितं याद्वन् 'तादृशं वपुरीचितम् । रूपं कृप तवेदानीसन्यादृशसन्तायत ॥ २८ ॥ पधुना व्याधिभिरयं कान्तिसर्व्वस्वतस्वरै:। देश: समन्तादाकान्तो नि:म्बासैरिव दर्पण: ॥ ३० ॥ यवार्षमभिधायेति द्राक्तिरोहितयोस्तयोः। विच्छायं सं स्पोऽपछा विमयस्त्रामित हुमम् ॥ ३१ ॥ पचिन्तयच धिगिदं सदा गदपदं वपः। मुधेव मुग्धाः कुर्व्वन्ति तन्त्रूक्षं तुच्छबुद्वयः ॥ १२ ॥ यरीरमन्तर्त्यवैद्यीधिभिविविधैरिदम् । दीर्थिते दावणैदीव दावकीटगणैरिव ॥ ३३ ॥ बहिः क्षयश्चिययोतल्योचीत तयापि हि। नैययोधं फलमिव मध्ये क्रमिकुलाकुलम् ॥ ३४ ॥ रजा तुम्पति कायस्य तलालं रूपसम्पदम्। महासरीवरस्थेव वारिसेवालवज्ञरी ॥ ३५॥

⁽१) ख ग तांडगेंव पुरेश्चितम्।

बरीरं स्वयते नामा रूपं याति न पापधी:। जरा स्फ़्रित न ज्ञानं धिग् खरूपं गरीरियाम् ॥ ३५ ॥ रूपं सविसमा कान्ति: ग्रदीरं द्रविचान्यपि। संसारे तरलं सर्वे सुग्रायजलविन्दवत् ॥ ३० ॥ पदामीनविनाशस्य गरीरस्य गरीरियाम्। सकामनिर्ज्ञरासारं तप एव महत्पलम् ॥ ३८ ॥ इति सम्बातवैराग्यभावनः प्रथिवीपतिः। प्रवच्यां खयमादिलाः सतं राज्ये न्यवीविधत् ॥ ३८ ॥ गलोद्याने सविनयं विनयस्यस्त्रितः। सर्वेशावदाविरतिप्रधानं सोऽयञ्जीत्तपः ॥ ४०॥ महाव्रतधरस्वास्य दधानस्वीत्तरान् गुषान्। यामाद्वामं विश्वरतः समतैकायचेतसः ॥ ४१ ॥ गाठानुरागवयोन सबी प्रक्रतिमच्हलम् । पष्ठतीऽगात्करिकुसं महायूयपतिरिव ॥ ४२ ॥ (शुरमं) निष्कषायसुदासोनं निर्ममं निष्परिग्रहम्। तं पर्युपास्य वस्मासान् कयश्वित्तवावर्त्तत ॥ ४३ ॥ वयाविध्यात्तभित्राभिरवासापयभोजनै:। व्याधयोऽस्य वहधिरे सम्पूर्वेदी इदैरिव ॥ ४४ ॥ कच्छूगोवव्यरखासार्विकुच्चचिवेदनाः। सप्ताधिवेड पुर्याका सप्तववैद्यतानि सः ॥ ४५ ॥ दु:सन्तान् सन्तानस्य तस्यामेषपरीषन्तान् । छपायनिरपेचस्य समपदान्त सन्धयः ॥ ४६ ॥

प्रवानारे सुरपति: समुह्य दिवीकस:। प्रदि जातचमलारयकारियस्य वर्षनम् ॥ ४० ॥ चक्रवर्त्तित्रियं त्यक्का प्रव्यक्तत्तुषपूरवत्। पड़ी सनलुमारीऽयं तप्यते दुस्तपं तपः॥ ४८॥ तपोमाहाकास्यास सर्वास्विप हि सथिषु। मरौरनिरपेचोऽयं खरोगान चिकिसति ॥ ४८ ॥ भन्नइधानी तदाकां वैद्यक्षपधरी सरी। विजयो वैजयन्तव तसमीपसुपेयतुः ॥ ५०॥ जचतुब महाभाग किं रोगै: परिताम्यसि । वैद्यावावां चिकित्सावी विश्वं स्वेरेव भेषजे: ॥ ५१ ॥ यदि त्वमनुजानासि रोगप्रसाम्रीरकः। तदक्राय निग्दन्तीवी रोगानुपचितांस्तव ॥ ५२ ॥ ततः सनलुमारोऽपि प्रस्तृचे 'भोविकिसकी । दिविधा देखिनां रोगा द्रव्यतो भावतोऽपि च ॥ ५३ ॥ क्रोधमानमायालोभा भावरीगाः घरीरिचान्। षयान्तरसङ्खानुगामिनोऽनन्तदुःखदाः ॥ ५४ ॥ तांचिकित्तातुमीयी चेव्वां तर्डि चिकितातम्। पवो चिकितायो द्रव्यरोगांस्तदत पप्यतम् ॥ ५५ ॥ ततोऽङ्गुर्सी गस्तत्पामां शीर्षां स्वस्पविपुषा । सिया ग्रस्थं रसेनेव द्राक् सुवर्णीचकार सः ॥ ५६ ॥

⁽१) कच सौ।

ततस्तामङ्गृलीं खर्णेयलाकामिव भाखतीम्। पालोका पादयोस्तस्य पेततुः प्रोचतुम ती ॥ ५० ॥ निरुक्पयिषु रूपं यी लामायातपूर्व्विषी। तावेव विद्यावावां सम्प्रत्यपि समागती ॥ ५८ ॥ सिडलब्धिरपि व्याधिबाधां सीटा तपस्यति। सनलुमारो भगवानितीन्द्रस्वामवर्षयत्॥ ५८॥ षावाभ्यां तदिशागत्य प्रत्यचेण परीचितम्। इत्युदिला च नला च विदशी ती तिरोहिती॥ ६०॥ एतविदर्भनमाचं कफलब्धेः प्रदर्भितम्। लुक्यान्तरकथा नीक्ता ग्रन्थगीरवभीवभिः ॥ ६१॥ योगिनां योगमाञ्चाकारात्पुरीषमपि कत्यते। रीगिषां रीगनाशाय कुसुदामीदशालि च ॥ ६२ ॥ मल: किल समान्नाती दिविध: सर्वदेशिनाम्। कर्णनेवादिजसौकी दितीयसु वपुर्भवः ॥ ६३ ॥ योगिनां योगसम्पत्तिमाञ्चालगाहिविधोऽपि सः। कस्त्रिकापरिमली रोगहा सर्व्वरोगिणाम् ॥ ६४ ॥ योगिनां कायसंखर्भः सिच्चविव सुधारसै:। चिषोति तत्चर्षं सर्वानामयानामयाविनाम् ॥ ६५ ॥ नखाः केमा रहासान्यदपि योगिमरीरगम्। भजते भेषजीभावमिति सर्व्वीषिधिः स्मृता ॥ ६६ ॥ तथाहि तीर्थनाथानां योगभ्रचन्नवर्त्तानाम् । देशास्त्रियननस्तोम: सर्व्स्वर्गेषु पूच्यते ॥ ६०॥

विच--

मेघमुक्तमपि वारि यदक्रमङ्गमात्रावदीवाप्यादिगतमपि सर्व्यरोगहरं भवति। तथा विषमू च्छिता प्रपि यदीयाङ्गसिङ्गवात-स्यर्थादेव निर्विषा भवन्ति। विषसंप्रक्तमप्यत्रं यनुस्वप्रविष्टमविषं भवति। महाविषम्याधिवाधिता प्रपि यहचः त्रवषमात्राखहर्थ-नाच वीतविकारा भवन्ति। एष सर्वोऽपि सर्वोषधिप्रकारः। एते कपादयो महर्षिक्पाः। प्रयवा महर्षयो विभिन्ना एव। वैकियासम्ययोऽनेकधा चणुत्व-महत्त्व-सञ्चल-सञ्चल-प्राति-प्राकाम्य-ईशिल-विभिन्न-प्रतिद्यातिल-प्रनाहीन-कामक्पिलादिभेदात्।

पण्रतमण्यरीरिवकरणम्। येन विसच्चिद्रमिप प्रवियति
तत्र च चक्रवर्त्तिभोगानिप भुङ्के। मङ्खं नेरोरिप मङ्तरयरीरकरणसामर्थम्। लघुलं वायोरिप लघुतरयरीरता। गुद्खं
वचादिप गुद्दत्रयरीरतया इन्द्रादिभिरिप प्रक्रष्टवलेदुःसङ्ता।
प्राप्तिभूमिस्यस्य पङ्गुल्यपेष नेदपर्व्वतायमिप प्रभाकरादिस्यर्थसामर्थम्। प्राकाम्यमपु भूमाविव प्रवियतो गमनयिः
तथा पिस्तव भूमानुन्यव्जननिम्जने। ईशिलं त्रेलोक्यस्य प्रभुता
तोर्थकरितद्येष्वरच्यदिविकरणम्। विश्वलं सर्वजीववयीकरणस्विः। चप्रतिचातिलं पद्रिमध्येऽपि निःसङ्गमनम्। प्रनार्वानमद्य्यरूपता। कामरूपिलं युगपदेव नानाकाररूपविकरण्यतिः। इत्येवमादयो मङ्क्यः। प्रथवा प्रकष्टज्ञतावरणवीर्यान्तरायचयोपयमाविभूतासाधारणमङ्गपञ्चित्ताभा प्रनधीतदाद्याङ्गचतुर्द्वयपूर्वी प्रपि सन्तो यमर्थं चतुर्द्वयपूर्वी निरूपयित

तिखान् विचारक्षच्छेऽप्यचेंऽतिनियुचप्रज्ञाः प्राज्ञत्रमणाः। चन्धेऽधीत-दगपूर्वाः रोडिबीपन्नप्तरादिमङाविद्यादिभिरङ्ग्ष्टप्रवेनिकाभि-रस्यविद्यादिभियोपनतानां भूयसीनास्द्रीनां पवमगा विद्यावेग-धारवात् विचाधरयमचाः । वेचिद्यौजकोष्ठपदानुसारिवृद्धिविश्रेष-र्षियुत्ताः । सुज्ञष्टवसुमतीकते चेत्रे चित्युदकाद्यनेककारचित्रीवा-पैचं बीजमनुपद्दतं यथानेकबीजकोटीप्रदं भवति तथैव ज्ञानावर-चादिचयोपमातिमयप्रतिस्थादेकार्यवीजयवर्षे सति चनेकार्य-बीजानां प्रतिपत्तारो बीजवुदयः। कीष्ठागारिकस्थापितानाम-सङ्गीर्चनामविनष्टानां भूयसां धान्यबीत्रानां यथा कोष्ठेऽवस्थानं तया परोपदेशावधारितानां श्रीतानामर्धयत्यबीजानां भूयसामनु-स्मरचमन्तरेचाविनष्टानामवस्मानाकोडबुषयः। पदानुसारिचीऽनु-त्रोत:पदानुसारिय: प्रतित्रोत:पदानुसारिय उभयपदानुसारि-चव । ततादिपदस्तार्थं चन्यं च परत उपश्रत्य चाचम्यपदादर्थयन्य-विचारचासमर्थपटुतरमतयो ऽनुत्रोतःपदानुसारिबुद्यः । चन्त्यपद-आर्थे ग्रन्थं च परत छपत्रुत्य ततः प्रातिकूत्र्येनादिपदादा चर्षग्रविचारपटवः प्रतित्रोतःपदानुसारिबुद्धयः । मध्यपदस्यार्धे ग्रतं च परकीयोपदेशादिभगन्याद्यन्ताविधपरिच्छित्रपदसमू इ-प्रतिनियतार्थयम्बोदिधसमुत्तरचसमर्थासाधारचातिग्रयपटुविज्ञान-नियता उभयपदानुसारिब्दय:। बीजबुद्धिरकपदार्थावगमादने-कार्यानामवगन्ता पदानुसारी लेकपदावगमात्पदान्तराचामव-मन्तिति विभेष:। तथा मनोवाकायबलिन:। तत्र प्रक्रष्टन्नानावरण-वीर्यानारायच्योपममिविषेष वस्तूषृत्यानार्मुक्रचेन सकलत्रुतो-

दध्यवगाइनावदातमनसो मनोबिसनः। प्रम्तर्मुइत्तेन सक्तस्युत-वस्त्वार जसमधी वाग्वलिन:। भधवा पदवाकालकारोपितां वाचमुचैदवारयन्ती ऽविरदितवाक्कमादीनकच्छा वाग्वसिन:। वीर्यान्तरायचयोपममाविर्भृतासाधारचकायवस्रतायतिमयावतिष्ठ-मानाः त्रमक्कमविरिहता वर्षमात्रप्रतिमाधरा बाहुबलिप्रश्वतयः कायबलिनः । तथा चीरमध्सपिरसतास्रविची येषां पात्रपतितं कदकमपि चौरमधुसप्पिरसृतरसवीर्यविपाकं जायते वचनं वा यरीरमानसदु:खप्राप्तानां देशिनां चौरादिवसानार्थेकं भवति ते चौरास्वविचो मध्यास्रविचः सर्परास्रविचोऽस्तास्रविचय । केचिदचीवर्षियुक्तासी च दिविधा पचीवमदानसा पचीव-महासयास । वेषामसाधारपान्तरायच्योपश्रमाटसमात्रमपि पानपतितमनं गौतमादीनामिव बहुभ्यो दीयमानमपि न चीयते तेऽचीणमहानसाः। प्रचीणमहासयर्षिपाप्तासं यत परि-मितभूपदेगेऽवितष्ठको तवासंस्थाता पपि देवास्तिर्यश्वी मनुश्राय सपरिवाराः परस्ररवाधारिकतास्तीर्थकरपर्वदीव सुस्रमासते। इति प्रचात्रमचादिषु महाप्रचादयो महर्षयो दर्भिताः।

> सर्वेन्द्रियाचां विषयान् ग्रह्मात्येकमपीन्द्रियम्। यत्रभावेन सम्भिनत्रोतोसम्बन्धः सा मता ॥ १॥ ८॥

> > तथा---

चारबाशीविषाविधमनःपर्यायसम्पदः । योगकल्पदुमस्यैता विकासिकुसुमित्रयः ॥ ६ ॥ पतिशयचरणाचारणा पतिशयगमनादित्यर्थः । तसम्पवलिश्वितित्यर्थः । पाश्चीविषलिश्वितिष्ठानुष्यस्मामर्थम् । पविधिन्नानलिश्वमूर्त्तद्रव्यविषयं न्नानम् । मनःपर्थ्यायन्नानलिश्वमेनोद्रव्यप्रत्यचीकरणशितः । एता लक्ष्यो योगकत्यव्यस्य कुसुमभूताः । फलं
तु वेवलन्नानं मोचो वा । भरतमन्देव्युदाष्टरणाभ्यां वद्यते ।
तथाहि—

दिविधायारणा ज्ञेया जङ्गाविद्योत्यमिततः। तवादा रचनदीपं यान्येकीत्पातसीसया ॥ १ ॥ यसनो वचकडीपादेवेनोत्पतनेन ते। नन्दीखरे समायान्ति दितीयेन यती गताः ॥ २ ॥ ते चोध्वगत्यामेकेन समुत्यतनकर्भणा। गच्छन्ति पाण्डुकवनं मेक्ग्रैलिशिर:स्थितम् ॥ ३ ॥ ततोऽपि विता एकोत्पातेनायान्ति नम्दनम्। उत्पातिन दितौयेन प्रथमीत्पातभूमिकाम् ॥ ४ ॥ विद्याचारणासु गच्छन्येकेनीत्पातकर्भणा। मातुषोत्तरमन्धेन होपं नन्दीम्बराह्मयम् ॥ ५ ॥ तसादायान्ति चैकेनीत्पार्तनीत्पतिता यतः। यान्यायान्यूर्धमार्गेऽपि तिर्यम्यानक्रमेच ते ॥ ६ ॥ चन्धेऽपि बचुमेदासारचा भवन्ति। तद्यया पाकाश्रगामिनः पर्याक्वावस्थानिषसाः कायोत्सर्गश्ररीरा वा पादोत्त्रीपनिचेपक्रमाः हिना व्योमचारिषः। केचित्तु जलजङ्गाफलपुष्पपत्रश्रेष्यम्निधिखाः भूमनी हारावध्यायमे घवारिधारामकेटकतन्तुच्योतीरध्मिपवनादाा- लम्बनगतिपरिचामकुग्रलाः । जलमुपेत्व वापीनिच्नगासमुद्रादिष्य-प्कायिकजीवानविराधयन्तो जले भूमाविव पादोरचेपनिचेप-कुथला जलचारणाः। भुव उपरि चतुरङ्गुलप्रमिते भाकाची जङ्गा-निचेपोरचेपनिपुचा जङ्गाचारचाः । नानाद्रमफलान्युपादाय फला-त्रयप्रास्यविरोधेन फलतले पादोत्चिपनिचेपकुशलाः फलचारकाः। नानाह्मसतागुस्रापुषान्यपादाय पुष्पस्त्राजीवानविराधयन्तः कुसुमतलदलावलस्थनसङ्गगतयः पुष्पचारणाः। नानावचगुलावीत-क्रताविताननानाप्रवासतर्यपक्षवासम्बनेन पर्यसूच्याजीवानविरा-धयन्तवरकोरचेपनिचेपपटवः पत्रचारकाः। चतुर्योजनशतीच्छितस्य निषधस्य नीलस्य चाद्रेष्टक्षच्छित्रां श्रेषिसुपादायोपर्यक्षे वा पाद-पूर्वकमुत्तरवावतरवनिपुषाः वेविचारणाः । प्रामिषिखामुपादाय त्तेज:कायिकानविराधयन्तः स्वयमदश्चमानाः पादविष्ठारनिपुचा षमित्रिखाचारणाः । धूमवित्तं तिरसीमामूर्द्वगां वा पालस्वा-चत्रसितगमनास्कन्दिनी धूमचारणाः। नीश्वारमवष्टभ्याप्कायिक-पीडामजनयन्तो गतिमसङ्गमामत्रुवाना नीहारचारणाः । भव-यायमात्रित्व तदात्रयजीवानुपरोधेन यान्तीऽवय्यायचारचाः। नभीवर्मनि प्रविततज्ञसधरपटसपटास्तर्षे जीवानुपचातिचङ्क-सणप्रभवो मेघचारणाः। प्रावृषेखादिजलधरादिविनिर्गतवारि-धारावलम्बनेन प्राणिपीडामन्तरेण यान्ती वारिधाराचारणाः। कुबहचान्तरासभाविनभः प्रदेशेषु कुबहचादिसम्बद्धमकेटकतन्त्वा-सम्मनपादोद्दरपनिचेपावदाता मर्कटकतन्तूनच्छिन्दन्ती यान्ती मर्कटकतन्तुचारचाः । चन्द्राक्षेत्रचनचत्राचन्यतमच्योतीरश्मिसम्ब- स्वेन भुवीव पादविष्ठारक्षण्यकाः ज्योतीरिक्षणारणः। पवने-ष्वनेकदिग्मुखीन्युखेषु प्रतिलोमानुलोमवर्त्तिषु तत्त्रदेशावलीमुपा-दाय गतिमक्तिकत्परपविन्यासामास्कन्दन्ती वायुचारणाः।

तपसरसमाद्दानागुनादितरतोऽपि वा।
पाणीविषाः समर्थाः स्युर्निग्रन्देऽनुग्रन्देऽपि च॥१॥
द्रव्याणि मूर्त्तिमन्धेव विषयो यस्य सन्धेतः।
नैयत्यरहितं ज्ञानं तत्यादविधनचणम्॥२॥
स्यात्मनःपर्ययो ज्ञानं मनुष्यचेतवर्त्तिनाम्।
प्राणिनां समनस्कानां मनोद्रव्यप्रकाणकम्॥१॥
प्रस्तु विषु स्विति स्यात्मनःपर्ययो हिधा।
विश्व स्वाप्तिपाताभ्यां विषु सत्तु विण्यते॥४॥८॥

चहो योगस्य साहात्म्यं प्राज्यं साम्राज्यसृहहन्। चवाप केवलज्ञानं भरतो भरताधिप:॥ १०॥

वैवलज्ञानलचणपलीपदर्भनेन योगमेव स्तीति—

पदी दलायथें प्राच्यं पुष्पालं साम्त्राच्यं चक्रवर्त्तिलसुदद्ववेव न पुनस्यक्तराज्यसम्पत्। भरताधिपः षट्खक्यभरतचेत्रस्वामी। तथादि—

ष्तस्वामवसिष्यामिकान्तस्वमारते । सागरीपमकोटीनां चतुःकोटिमिते गते ॥ १ ॥ सागरीपमकोटीनां तिस्भिः कोटिभिर्मिते । ... चरके सुवमानानि हितीयेऽपि गते सति ॥ २ ॥ त्रहिकोटाकोटिमिते सुषमदःषमारके । पन्नाष्टमां ग्रोपे च दिच चार्वस्य भारते ॥ ३ ॥ सप्ताभूवन कुलकरा इमे विमलवाइनः। चक्कांब यमसी चाभिचन्द्रोऽव प्रसेनजित ॥ ४ ॥ मन्दैवच नाभिच तत्र नाभगृं दिख्यभूत्। मर्वदेविति सच्छीलपविवित्रजगत्त्रया ॥ ५ ॥ द्वतीयारस्य भेषेषु पर्वसचेषु संस्थया। चत्रयोती सार्चाष्टमारे वर्षनयेऽपि च ॥ ६ ॥ तस्याय क्षची सर्वार्धविमानाद्वतीर्णवान्। चतुर्ध्यमहास्त्रप्रदितः प्रथमो जिनः ॥ ७ ॥ नाभेय मर्देव्याय तदा सम्यगजानतो:। खप्रार्धिमन्द्राः सर्वेऽपि व्याचक् : प्रमदोन्मदाः ॥ ८ ॥ तत: सुखेन जातस्य ग्रुभेऽक्रि परमेशित:। षट्पचाशत्दिक्मार्थः स्तिकर्भं प्रचित्रिरे ॥ ८ ॥ मेरमृष्टि विभं नीला कलोलाके दिवस्रति:। तीर्घीटकेरभ्यविद्यत्सं च हर्षात्रवारिभिः ॥ १०॥ वासवेन तती मातुरिपतस्य जगद्गुरो:। धातीक भाषा सर्वाचि विदध्विवधस्त्रयः ॥ ११ ॥ निरीच्य ऋषभावारं सद्योरी दिचेषे प्रभी:। चक्रतः पितरी नाम ऋषभेति प्रमोदतः ॥ १२ ॥ चमन्द्रं टटटानन्द्रं सधारश्मिरिव प्रभः। विद्याचारयोगेन पोषितो वहधे क्रमात्॥ १३ ॥

ष्मविद्युर्दुसदामीय चपासित्सुपागतः। पचिन्तयद्वगंवती वंशः व इइ कल्पताम् ॥ १४ ॥ घवगत्य तदाकूतमवधिज्ञानतो विशुः। तत्करिच्चसतां सातुं करीव करमचिपत्॥ १५॥ तां समर्प्यं जगइन्तुः प्रषम्य च बिडीजसा । चुच्चाकुरिति वंगस्य तदा नाम प्रतिष्ठितम् ॥ १६ ॥ बाखं क्रस्यसिवीक्षण्य सध्यन्दिनसिवार्थमा । विभुविभक्तावयवं दितीयं शित्रिये वयः ॥ १७ ॥ यीवनेऽपि सदू रत्ती कमलोदरसोदरी। चचावकमावसेदी पादी समतनी प्रभी: ॥ १८ ॥ नतार्त्तिच्छेदनायेव प्रपेदे चक्रमीशितुः। ः सदास्त्रितत्रौकरेणोरिव दामाङ्गप्रध्वजाः ॥ १८ ॥ खामिनः पादयोर्जस्मीसीसासदनयोरिव। शक्काभी तले पार्णी खस्तिक व विरेजिरे ॥ २०॥ मांससी वर्त्तुसलुक्की भुजक्कमफणीपमः। प्रकृष्ठ: स्वामिनी वता इव त्रीवतालाव्हित:॥ २१॥ प्रभोनिर्वातनिष्कम्याः स्निम्धदीपशिखोपमाः । नीरस्या ऋजवोऽङ्गुच्यो दलानीव पदास्रयोः॥ २२॥ नन्धावर्ता जगद्रनुः पादाङ्गुलितलेष्यभान् । यं विस्थानि चितौ धर्मप्रतिष्ठा हेतुतां ययुः ॥ २३ ॥ यवाः पर्वस्वकृतीनामधीवापीभिरावभुः। लप्ता इव जगन्नचीविवाद्याय जगन्मभोः ॥ २४ ॥

कन्दः पादाम्बुजस्वेव पार्चिर्वृत्तायतः प्रयुः। चनुष्ठानुसिफणिनां फणामणिनिभा नखाः ॥ २५ ॥ हैमारविन्द्सुकुलकर्षिकागोलकत्रियम्। गूढी गुरूपी वितेनाते नितान्तं स्वामिपादयी: ॥ २६ ॥ प्रभी: पादावुपर्यानुपूर्व्या नुर्वेवदुवती। पप्रकाशसिरी स्निम्धच्छवी सोमविवर्जिती ॥ २०॥ भनाभैमास्विपिशितपुष्कते क्रमवर्त्तुते। एकीजकु विडम्बिकी जके गीर्यो जगत्वते: ॥ २८ ॥ जानुनी स्वामिनीऽधातां वर्त्तुंसे मांसपूरिते। त्सपूर्विपधानान्तः चिप्तदर्पेषकपताम् ॥ २८ ॥ अरू च सहुती क्रिग्धावानुपूर्वेष पीवरी। विभराचन्नतः प्रीठनदशीस्तश्चविश्वमम् ॥ ३० ॥ स्वामिनः कुष्परस्वेव सुष्की गूढी समस्विती। पतिगूढं च पुंचिक्नं कुसीमस्येव वाजिन: ॥ ३१ ॥ तवासिरमिननोचमऋखादीर्घमस्रयम्। सरलं खदु निर्लोम वर्त्तुलं सरभी न्द्रियम् ॥ १२ ॥ गीतप्रदिचावर्त्तप्रव्युत्तेकधारकम्। पबीभव्यावर्त्तावारकोगस्यं पिन्नरं तथा ॥ ३३ ॥ षायता मांससा स्यूसा विद्यासा कठिना कटि:। मध्यभागस्तनुत्वेन कुलिगोदरसोदरः ॥ ३४ ॥ नाभिवभार गभीरा सरिदावर्त्तविश्वमम्। कुची खिन्धी मांसवन्ती कोमली सरली सभी ॥ ३५ ॥

प्रधादच:खलं खर्चित्रवाष्ट्रय्वसुवतम् । त्रीवसरद्वपीठाइं त्रीसीसावेदिकात्रियम् ॥ २६ ॥ दृढपीनोबती स्तन्धी कक्षमक्रक्रदोपमी। चलारीमोचते कचे गम्बल्लेटमलोजिभते॥ १०॥ पीनी पाचिकविच्छ्यो भुजावाजानुसम्बती। चचनाया नियमने नागपात्राविव त्रियः ॥ १८ ॥ नवास्त्रपत्तवातास्त्रतसी निष्कर्भवर्षेशी। अस्रेदनावपच्छिद्रावुषी पाषी जगत्पतेः ॥ ३८ ॥ दण्डचक्रधनुमें ब्यत्रीवसक् लिया दुगै:। ध्वजाजवामरच्छवग्रङ्कुकाबिमन्दरै: ॥ ४० ॥ मकर्षभसिंडाम्बरयस्तरिकटिगानै:। प्रासादतीरचडीपै: पाची पादाविवासिती ॥ ४१ ॥ षङ्ग्डाङ्खयः गीयाः सरसाः गीयपायिताः। प्ररोष्टा दव कराड़ी: प्रान्तमाचिकापुचिता: ॥ ४२ ॥ यवाः सप्टमगोभना सामिनोऽङ्ग्रहपर्वेसु । यग्रीवरतुरक्रस्य पुष्टिवैशिष्टाईतवः ॥ ४३ ॥ पङ्गुलीमूर्वेस विभोः सर्वसम्पत्तिर्गसनः । द्धुः प्रदिचवावत्ती दिचवावत्तीप्रकृताम् ॥ ४४ ॥ क्रकादुदरवीयानि जगन्ति त्रीक्षपीत्यभान् । संख्यालेखा इव तिस्री लेखा मूले कराजयी: ॥ ४५ ॥ वर्त्तुंबोऽनितदीर्घेष लेखाव्यपविवित:। गभीरध्वनिराधत्ते काएः कम्ब्विडम्बनाम् ॥ ४६ ॥

विमर्ख वर्त्तुलं कान्तित्रक्तिः वदनं विभी:। पीयूषदीधितिरिवापरी साम्बनवर्ज्जित: ॥ ४० ॥ मख्यी मांसली खिल्धी कपोलपलकी प्रभी:। दर्पणाविव सीवर्षी वाम्बद्धारी: सहवासयी: ॥ ४८ ॥ चन्तरावर्तसभगी कर्णी स्कन्धान्तसंख्विती। प्रभोर्मुखप्रभासिन्धुतीरस्थे ग्रुक्तिके दव ॥ ४८ ॥ षोष्ठी विम्बोपमी दन्ता दाविधलुन्दसोदराः। क्रमस्कारा क्रमोत्तुङ्गवंगा नासा महेगितुः॥ ५०॥ पक्रसदीवें चितुवं मांसलं वर्त्तलं सदु। मैचकं बहुलं खिन्धं को मलं समञ्जतायिनः ॥ ५१ ॥ प्रत्ययक्यविटिपप्रवालाक्यकोमला। प्रभी किंद्रानितखूला दादगाद्वागमार्थसः ॥ ५२ ॥ चन्तरा क्षणधवले प्रान्तरक्ते विसोचने । नोलस्फटिकशोणास्ममणिन्यासमये इव ॥ ५३ ॥ ते च कर्णान्तवित्रान्ते कळलाखामपद्माणी। विकखरे तामरचे निसीना लिक्क से इव ॥ ५४ ॥ विभराश्वनतुर्भर्तुः ग्यामले कुटिले भुवी। दृष्टिपुष्करिषीतीरसमुद्रिवलतात्रियम् ॥ ५५ ॥ विशालं मांसलं हत्तं मस्यं कठिनं समम । भानस्वतं जगद्वर्त्तरष्टमीसीमसीदरम् ॥ ५६ ॥ भुवनस्वामिनो मीसिरानुपूर्वी समुचत:। दधावधीमुखीभूतच्यवसम्बद्धाचारिताम्॥ ५०॥

मीलिक्द्रने महेशस्य जगदीयत्यंसिनि। वत्तमुत्तुक्रमुखीषं प्रित्रिये कलगत्रियम् ॥ ५८ ॥ विशायकाशिर सृद्धि प्रभोर्भमरमेचकाः। क्रिया: कोमसा: स्रिग्धा: कालिन्धा इव वीचय: ॥५८॥ गोरोचनागर्भगौरी सिम्धसच्छा खगावभौ। स्तर्षद्रविवित्तिव तनी विजगदीशितः ॥ ६०॥ चट्टनि भ्रमरम्बामान्यदितीयोद्गमानि च। विसतन्तुतनीयांसि सोमानि स्वामिनस्तनी ॥ ६१ ॥ उत्प्रवासुदामीदः मांसी विस्तेतरत्वसम्। गोचीरधाराधवलं रुधिरं च जगत्पते: ॥ ६२ ॥ द्रत्यसाधारपेनीनास्वर्णेसीचतः प्रभः। रते रताकर इव सेव्यः कस्येष्ठ नाभवत् ॥ ६३ ॥ प्रन्येयुः क्रीड्या क्रीड्यास्मावानुक्पया । मियो मियुनकं कि चित्तकी तालतरीरगात् ॥ ६४ ॥ तदैव दैवदुर्यीगात्तकाष्यावरमूर्वनि । ति इच्छ दवैरच्छेऽपतसालपालं महत्॥ ६५॥ प्रकृतः काकतासीयन्यायेनाम्बेव समापि। विपन्नो दारकस्तत्र प्रथमेनापस्त्युना ॥ ६६ ॥ कालध्यां गते तिसांस्तहितीया नितम्बिनी। यूयभाष्टा कुरक्रीव किंकर्त्तव्यज्ञडाभवत् ॥ ६० ॥ भकाण्डमुद्रराघातेनैव तेनापसःखुना । बभूतुर्मू चिकेतानीव मिधुनान्यपराख्यपि ॥ ६८ ॥

तानि तामपतः कला नारीं पुरुषविकताम्। किंकर्राव्यविमृढानि श्रीनाभेरपनिन्यिरे ॥ ६८ ॥ एवा व्रवभनायस्य धर्मापत्नी भवत्विति । प्रतिजयाह तां नाभिनें वर्करवकी सुदीम् ॥ ७० ॥ प्रन्यदा तु 'विभोद्यवाग्भोगपत्वक्षेण:। षागादिन्द्री विवाहाधें हन्दारकगणान्वितः॥ ७१॥ ततः खर्षमयस्तभाकाजिणुमणिपुविकम्। चनिकनिर्गमद्वारमकार्त्तुर्मग्डपं सुराः ॥ ७२ ॥ खेतदिव्यांग्रको हो चक्छ लेन गगनस्थया। गङ्गयेवात्रितः सोऽभूद्गृरियोभादिहस्वया ॥ ७३ ॥ तोरणानि चतुर्दिन्त सन्तानतरपन्नवैः। तत्राभूवन् धर्म्षीव सिक्कतानि मनोभुवा ॥ ७४ ॥ चतस्री रतकलग्रश्रेणयो देशं लिहापगाः। पर्यस्थाप्यन्त देवीभिनिधानानि रतिरव ॥ ७५ ॥ वहयुर्भेष्डपद्वारे चेलोत्चेपं पयोमुचः। चक्रे मध्ये सुरीभिर्भूः पिङ्गला यचकर्रमैः ॥ ७६ ॥ वाबमानेषु तूर्येषु गीयमाने च मङ्गले। पवादयवगायंच प्रतिश्रन्देदिंगक्रनाः॥ ७०॥ सुमङ्गलासुनन्दाभ्यां कुमारीभ्यामकारयत्। वासवः परमेशस्य पाणियद्यमहोत्सवम् ॥ ७८ ॥

⁽१) च व विभोरभ्युदादुभोगफनकर्माचः। (१) च ग च श्र्वं सिङ्गयकाः।

ततः सुमक्रसादेवी देवैः प्रस्तमङ्गसा । चपत्थे भरतब्राष्ट्रागी युग्मक्षे प्रजीजनत्॥ ७८ ॥ भैलोक्यजनितानन्दा सुनन्दा सुवृवे युगम्। सुवार्ड वाडुवलिनं सुन्दरीं चातिसुन्दरीम् ॥ ८०॥ पुनरिकोनपचात्रत्यंयुगानि सुमङ्गला। षस्त बलिनो सूर्त्तीन् हैक्योबिव मानतान्॥ ८१॥ चन्येयुरन्याय इति पूलारोषृतवाह्यभः। नाभिन्धेन्त्रपि सभूय सर्वेभिधुनकेरिदम्॥ ८२॥ तिस्रो इकारमकारिकारास्थाः सुनीतयः। न मस्यनोऽधुना पुन्धिः कुर्व्वज्ञिरसमस्त्रसम्॥ ८३॥ ततः कुसकरोऽप्यूचे चातास्मादसमञ्जसात्। एव वो व्रवभः स्वामी तद्दर्भधं तदात्रया ॥ ८४ ॥ तदा कुलकराचात: कर्त्तुं राज्यस्थितिं स्पुटाम् । प्रभुजीनवयमयी मियुनान्येवसन्बद्यात् ॥ ८५ ॥ राजा भवति मर्खादाव्यतिक्रमनिरीधकः। तस्वीचासनदानेनाभिषेकः क्रियते जलैः ॥ ८६ ॥ भावन्यं वचनं भर्तुस्ते सब्वें युग्मधर्मिषः। तिक्छचया ययुः पनपुरैर्जननिष्ठचया ॥ ८० ॥ तदा चासनकम्पेनावधिज्ञानप्रयोगतः। विज्ञातभगवद्राज्यसमयः यज्ञ षाययी ॥ ८८:॥ रत्नसिंड्।सनैऽध्यास्य वासवः परमेष्वरम् । साम्राज्येऽभिषिषेचालच्छेतं च सुकुटादिभिः ॥ ८८ ॥

प्रथम: प्रकाश: ।

इतवाभोजिनीपनपुटैरस्रसिधारितै:। निजं मन इव खच्छमानिन्धे मिघुनैर्जसम् ॥ ८० ॥ उदयाद्रिमिवार्षेच मुकुटेमोपशोभितम्। पत्यन्तविमसेवेकोच्चीमेव गरदम्बुदै: ॥ ८१ ॥ इंसेरिव यरलालं सचरचारचामरे:। क्रताभिषेकं नाभेयं ददृशस्तानि विस्मयात् ॥ ८२ ॥ (युग्मं) नैतयुत्रं प्रभोर्मू ह्वि चेतुमैवंविमर्शिभः। विनीतैर्मिय्नैर्वारि निद्धे पादपश्चयोः ॥ ८३ ॥ योजनान्यय विस्तीर्णां नव दादम चायताम्। विनीतास्थां पुरीं कर्त्तुं त्रीदमुक्ता इरियंयी ॥ ८४ ॥ सोऽपि रवमयौं भूमेर्माणिक्यसुकुटोपमाम्। व्यधात दिवामयोध्येति तामयोध्यापराभिधाम् ॥ ८५ ॥ तां च निर्माय निर्माय: पुरयामास यचराट। प्रचयरत्वसमधनधान्धेर्निरन्तरम् ॥ ८६ ॥ वचेन्द्रनीसवैडूर्यं इर्म्यविन्धीररस्मिभः। भित्तिं विनापि खे तत्र चित्रकर्मं विर्चते ॥ ८७ ॥ तहप्रे दीप्रमाणिकाकपिशीषपरम्पराः। भयबादर्भतां यान्ति चिरं खेचरयोषिताम् ॥ ८८ ॥ तस्यां ग्रहाकृषभ्वि सस्तिकन्यस्तमी क्रिकै:। स्वैरं कर्करककीडां कुरुते वासिकाजन: ॥ ८८ ॥ तवीदानीचहचापस्तस्यमानान्यइर्विशम्। खेचरीषां विमानानि चणं यान्ति कुलायताम् ॥ १००॥

तव दृष्टाऽदृष्ट्रस्येषु रवराशीन् ससुच्छितान्। तदवकरक्टोऽयं तक्षेते रोष्ट्रणाचलः ॥ १ ॥ जलकेलिरतस्त्रीणां चुटितेर्चारमी क्रिकेः। ताम्मपर्षीत्रियं तत्र दधते रहदीर्घिकाः ॥ २ ॥ त्रवेभ्याः सन्ति ते येषां कस्याप्येकतमस्य सः। व्यवहर्सुं गतो मन्ये विषक्षमुत्री धनाधिपः ॥ ३ ॥ नक्तमिन्दृद्वविज्ञित्तमिन्दरस्यन्दिवारिभिः। प्रशास्त्रपांश्रवी रथाः क्रियन्ते तत्र सर्वेतः ॥ ४ ॥ वापीकूपसरोसचै: सुधासोदरवारिभि:। नागसीकं नवसुधाकुण्डं परिबभूव सा ॥ ५ ॥ नगरीं तामसङ्ख्येनरेन्द्रो हषभध्यजः। चपत्यानि निजानीव प्रजासिरमपासयत्॥ ६॥ तत उत्पादयामास लोकानुगहकाम्यया। एकैक्मी विंगतिधा पश्च शिल्पानि नाभिभू:॥ ७॥ राज्यस्थितिनिमित्तं चाऽयद्वीद्वासुरगान् गजान्। सामासुपायसारां च नीतिरीतिमदर्भयत्॥ ८॥ द्वासप्तिकसाकाण्डं भरतं चाध्यजीगपत्। भरतोऽपि निजान् भातृंस्तनयानितरानपि ॥ ८ ॥ नाभेयो बाइबलिनं भिद्यमानान्यनेक्यः। लचवानि च इस्यमस्त्रीपुंसानामजित्रपत्॥ १०॥ प्रष्टाटग्रसिपीर्जाधारा प्रपस्त्येन पाणिना। दर्भयामास सर्व्यन सुन्दर्या गणितं पुनः ॥ ११ ॥

वर्षेव्यवस्थां रचयन् न्यायमार्गे प्रवर्त्तयन् । त्राघीतिं पूर्वेलचाचि नाभिभूरत्यवाष्ट्रयत्॥ १२ ॥ प्रभुः सारकतावारी मधुमारी समेगुंषि । पगादन्येयुक्याने. परिवारानुरोधतः ॥ १२ ॥ गुषाञ्जः पुत्रमाकन्दमकरन्दीन्यदासिभिः। मधुनचीर्वभूव खागतिकीव जगवाभी: ॥ १४ ॥ पूर्व्वरङ्ग दवारखे पश्चमोत्रारिभिः पिकैः। पदर्भयक्षतालास्यं मलयानिललासकः ॥ १५ ॥ प्रतिथाखं विसम्माभिः पुष्पोचयकुतृहसात्। 💎 🖰 स्त्रीभिस्तत्राभवन् हचाः सस्त्रातस्त्रीफला दव ॥ १६ ॥ पुष्पवासग्रहासीनः पुष्पाभरवभूवितः। प्रवागन्दुकासस्तीऽभाषाधुर्मूत्तं सव प्रभुः ॥ १७ ॥ तत्र 'खेलायमानेषु निर्भरं भरतादिषु। दधी सामी किमीहचा कीडा दोगुन्दगेषपि ॥ १८॥ जन्ने ज्याविधना खामी खः सुखान्यु तरी त्तरम्। पनुत्तरस्वर्गसुखं भुक्तपूर्वः स्वयं च तत् ॥ १८ ॥ भूयोऽप्यचिन्तयदिदं विगससो इबन्धनः । धिगेष विषयाकान्ती वेत्ति नात्महितं जनः ॥ २०॥ पद्यो संसारकूपिऽस्मिन् जीवाः कुर्वन्ति क्ष्मैभिः। भरवद्दवटीन्यायेनैहिरैयाहिरां क्रियाम् ॥ २१ ॥

⁽१) क होबावमानेषु।

इत्यासीवानसा यावहिसुर्भवपरासुख:। तावक्रीकान्तिका देवा एयुः सारस्रतादयः ॥ २२ ॥ वर्षेरचालिभिर्मूष्ट्रि कतान्यमुकुटा ९व। प्रबन्ध ते व्यज्ञपयन् स्नामिस्तीर्थं प्रवर्त्तय ॥ २३ ॥ गतेषु तेषु भगवातुद्यानाचन्द्रनाभिधात्। व्याहत्त्व गला नगरीमाजुडावावनीपतीन ॥ २४ ॥ राज्येऽभ्यविश्वत्ररतं ज्येष्ठपुत्रं तती विशु:। बाडुसस्यादिपुत्राचां विभन्य विषयान् ददी ॥ २५ ॥ सांव्यवारिकदानेन ततोऽतर्पीत्तवा भुवन्। ं देशीत दीनवाकाय कविदासीदाया निष् ॥ २६ ॥ भवासनप्रकम्पेन सर्वेऽप्यभ्येत्य वासवाः। प्रभिषेतं प्रभीयक्र्तिरेरिव प्रयोसुत्रः ॥ २०॥ मास्यान्नरागेरें वेशन्यसीर्वासितविष्टपै:। 🖟 स्वयंग्रीभिरिवाग्रीभि परितः परमेखरः ॥ २८ ॥ विचित्रैरचिंतो वस्त्रेरतकृतेय भूषणे:। विभुर्बभावे सन्धामधिचौरिव महत्त्वयः ॥ २८ ॥ दिवि दुन्द्भिनादं च कारयामास वासवः। । जगती दददानन्दमसमान्तमिवासनि ॥ ३० ॥ सरासरनरोडाचामारोडच्छिविकां विस:। जर्बसोकगतेर्मागं जगतो दर्भयविव ॥ ११ ॥ एवं सदेवेदेंवेशेयक्रे निष्क्रमणोत्सवः। यं प्रश्निक्तिज्ञह्यां नैनिम्यं क्रतार्थितम् ॥ ३२ ॥

प्रथम: प्रकाश: ।

गला सिदार्वकीयानि सुमीच प्रमेखर:। क्रसमाभरकादीनि क्रवायानिव सर्वतः ॥ ३३ ॥ चतुर्भिर्मुष्टिभिः नेगानुइधार जगदृगुनः। जिष्टत्तुः पचमीं सुष्टिं वासवेनेति याचितः ॥ ३४ ॥ देवांचयो: सर्ववचीर्वाचातीतातियोभते। केशवद्ययंसावास्तामिति तां स्वाम्यधारयत्॥ ३५॥ प्रतीच्छतव सीधवाधिपतेः सिचयाचले । स्वामिनेशा दध्रदेत्तवर्षान्तरगुषत्रियम् ॥ १६ ॥ ं चौरोदधी सुधर्मेगः केगान् चिद्वाभ्युपेत्व च । रङ्गाचार्य दवारचत्तुमुखं मुष्टिसंद्वया ॥ ३७ ॥ 😁 सम्बं सावधं प्रत्यास्थामीति चारित्रसुचनै:। मोचाध्वनी रयमिवाध्यादरी इं जगत्यति: ॥ ३८ ॥ सर्वतः सर्वेजन्तुनां मनीद्रस्याचि दर्भयत् । जन्ने ज्ञानं प्रभोसुर्यं मन:पर्ययसंज्ञतम् ॥ ३८ ॥ राचा सङ्काखलारीऽनुयान्तस् निजप्रभुम्। वतमाददिरे भक्तवा कुलीनानां क्रमी ग्रासी ॥ ४०॥ ततः सर्वेष्वपौन्द्रेषु गतेषु सं समासयम्। व्यक्रतीर्वृत्तः खामी यूचनाय रव हिपै: ॥ ४१ ॥ सोवैभिषासक्याज्ञैभिषाधं भमतः प्रभीः। भठौकि कर्मभाषादि धिगार्जवमपि कचित्॥ ४२॥ गायामप्राप्तवन् भिचां सहमानः परीवहान्। पदीनमानसः सामी मीनवतमुपात्रितः ॥ ४३ ॥

त्रमणानां सप्तसैसीयतुर्भिरपि नाभिभू: । चुधार्तेर्मुसुचे की वा 'ससच्ची भगवानिव ॥ ४४ ॥ वने मूलफलाङारा जित्तरे ते तु तापसाः। भवाटवीपयस्त्रवी धिक्ताकीस्वपयस्तान् ॥ ४५ ॥ पव कच्छमहाकच्छपुत्रावाज्ञागती कचित्। ईयतुर्नमिविनमी खामिनं प्रतिमाखितम् ॥ ४६ ॥ प्रणम्य तौ विज्ञपयाम्बभूवतुरिति प्रभुम् । पावयोगीपरः खामी खामिन राज्यपदो भव ॥ ४० ॥ न किचिद्रचे भगवांस्तदा ती सेवकावपि। निर्ममा डि.न लिप्यन्ते कस्याप्यैडिकचिन्तया ॥ ४८ ॥ ती क्रष्टासी सिवेवाते स्वामिनं पारिपार्श्विकी। प्रहर्नियं मेर्नारिं सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ४८ ॥ षय तौ धरपेन्द्रेच प्रभुं वन्दित्मियुषा । की युवासिए को हित्रित्यक्ताविवसूचतु: ॥ ५०॥ श्रत्यावावामसी भर्त्ता कचिद्यादिदेश च। ्राच्यं विभव्य सर्वेषां खपुत्राचामदत्त च ॥ ५१ ॥ पपि प्रदत्तसर्वस्वो दातासी राज्यमावयोः। पस्ति नास्तीति का चिन्ता कार्या सेवैव सेवकै: ॥ ॥२ ॥ यावेषां भरतं खासी निर्मेसी निष्परियण्यः। किमदा दद्यादिति ती तेनोक्तावित्यवीचताम ॥ ५३॥

⁽१) खगच सच्चवान्।

विष्वसामिनमाप्यामं क्वरे: स्वाम्यनारं निष्ठ । कल्पपादपमासाद्य कः करीरं निषेवते ॥ ५४ ॥ भावां याचावहे नाम्यं विश्वाय परमेश्वरम् । पयोसुचं विसुचान्धं याचते चातकोऽपि किम् ॥ ५५ ॥ खस्यस् भरतादिभ्यः विं तवास्त्रिहिन्तया। स्वामिनीऽस्राचन्नवति तद्भवलपरेष किम् ॥ ५६॥ तदुक्तिसुदितोऽवादीदवेदं पवगेषारः। पातासपतिरेषोऽस्मि स्वामिनोऽस्मैव कि इर: ॥ ५० ॥ बेब्य: खाम्ययमेवेति प्रतिचा साधु साधु वः। स्वामिसेवाफलं विद्याधरैखयं ददामि तत् ॥ ५८ ॥ स्वामिनेवाप्तमेवैतद्धीयां हन्त नान्यया । सम्बोधीत ददी विद्याः प्रज्ञतीप्रमुखास्तयोः ॥ ५८ ॥ र्यतस्तदनुषाती पद्मायबीननीप्रयुम् । ती वैताच्याद्रमुत्सेधं पश्चविंग्रतियोजनम् ॥ ६ • ॥ दगयोजनविस्तारदिष्ठपत्रेषिमध्यगाः। तत्र विद्यावसाचने निमः पद्मायतं पुरीः ॥ ६१ ॥ दगवीजनविस्तारीत्तरत्रेस्यां न्यवीविशत्। विद्याधरपति: षष्टिं पुराषि विनमि: पुन: ॥ ६२ ॥ चकाते चक्रवर्त्तिलं 'चिराट् विद्याधरेषु ती। ताहमः स्वामिसेवायाः विं नाम स्वाह्रासदम् ॥ ६३॥

⁽१) सगय विरम्।

वर्षं मीनी निराष्ट्रारी विषरन् भगवानपि। पुरं गजपुरं नाम प्रययी पारशेष्ट्या ॥ ६४ ॥ तदा चःसोमयशसः श्रेयांसः स्वप्नमैचत । मिवं ग्यामं सुधाकुकीः चालियत्वीठ्यलं व्यधात् ॥ ६५ ॥ सुबुद्धियेष्ठिनाप्यैचि गोस्यसं रवेसुरतम्। श्रेयांचेनाचितं तत्र ततोऽसी भासरोऽभवत् ॥ ६६ ॥ चद्यि सोमयगसा राजेको बहुभि: प्रै:। ं इत्तः समन्ताच्छ्यांससाद्वायाळ्यमौयिवान् ॥ ६० ॥ वयस्ते सदसि खप्रानान्योऽन्यस्य न्यवीविदन्। ति निर्णयमजानमाः सं स्वं स्थानं पुनर्ययुः ॥ ६८ ॥ प्रादुर्भावयितुमिव तदा तत्स्त्रप्रनिर्थयम् । : खेयांसस्य ययी वेम्म भिचार्थी भगवानपि ॥ ६८ ॥ भगवन्तं समायान्तं ग्रशाङ्गमिव साग्रः। पासोका श्रेयसां पातं श्रेयांसः श्रित्रिये सुदम् ॥ ७० ॥ खडापोचं वितन्नानः त्रेयांचः खामिदर्भनात्। षवाप जातिसारणं पूर्वेनष्टनिधानवत् ॥ ७१ ॥ चन्नभ्रहणनाभोऽसी प्राग्भवेऽस्थास्मि सार्घः। अनुप्रव्रजितसामुं तदेखादि विवेद सः॥ ७२॥ ततो विज्ञातनिर्दीषभिज्ञादानविधिः सुधीः। खासिन प्रासुकायातेषुरसं सुदितो ददी ॥ ७३ ॥ : भूयानपि रसः पाणिपात्रे भगवतो ममी। चेयांसस्य तु द्वदये मसुनेहि सुदस्तदा ॥ ०४ ॥

स्वानी तुस्तिकाती त्वासी द् व्योनि सन्नि प्रिसी रस:। चन्नली स्वामिनोऽचिन्त्यप्रभावाः प्रभवः खल् ॥ ७५ ॥ तती भगवता तेन रचेनाकारि पारचम्। सुरासुरतृषां नेतै: पुनस्तइर्प्यनासतै: ॥ ७६ ॥ क्षर्विद्वर्द्धभाषानं देवेदिवि घनैरिव। हुएयो रत्नपुष्पाचां चित्रिरे वारिहृष्टिवत् ॥ ७७ ॥ भव तचित्रकां स्वामी ययी बादुबले: पुरीम्। बाच्चीबाने प्रपेदे च प्रतिमानेकराचिकीम् ॥ ७८ ॥ प्रभाते पावयिचामि सं सोनं सामिद्रभैनात्। . इतीच्छतो वाहुवले: साभूसासीपमा निया ॥ ७८ ॥ स प्रातः प्रययौ यावत्तावत्स्वाम्यन्यतोऽगमत्। त्रवास्त्रामिकसुद्यानं व्योमेवाचन्द्रमेचत ॥ ८० ॥ मनोरयो विलीनो में इदि बीजिमिवीवरे। हा धिक प्रमहरोऽस्रीति बद्वालानं निनिन्द सः ॥ ८१॥ यवास्थातां प्रभी: पादौ रवैस्तवार्षभिर्श्वधात्। धनीचन्नं सङ्कारं सङ्काग्रमिवापरम् ॥ ८२ ॥ विवधाभिग्रहः खामी क्लेच्छदेगेष्वधर्मसु । विज्ञहार यथायेषु समभावा हि योगिनः ॥ ८३ ॥ तदा प्रश्लानार्याचामपि पापैककसंगाम्। धर्मास्तिकाधिया जन्ने हठानुष्ठानचेष्टितम् ॥ ८४ ॥ एवं विश्वरमाणस्य सहस्रे प्ररदो गते। पुरं पुरिमतानाख्यमाजगाम जगहुरः ॥ ८५ ॥

🕟 तत्पूर्वीत्तरदिग्शागे कानने ग्रकटानने । वटखाधीऽष्टमभन्नेनाखायतिमया प्रभुः ॥ 🖂 ॥ भावम् चपकत्रीविमपूर्वकरवक्रमात्। ग्रताधानान्तरं ग्रहमध्यासीच जगत्पति:॥ ८०॥ ततस चातिककाचि व्यक्षीयमा चना दव। स्नामिन: वेवसन्नानरविराविर्वभूव च ॥ ८८॥ विमानान्यतिसमादीद् चद्यन्तः परस्परम्। " एयुरिन्द्रासतु:षष्टि: समं देवग**र्वेस्त**दा ॥ ८८ ॥ नैसोक्यभर्तुः समवसरक्त्यानभृतसम्। 🖟 चस्त्रन्वायुकुमाराः स्वयं मार्जितमानिनः ॥ ८० ॥ गत्थाम्बुद्दष्टिभिर्मेचकुमाराः विविचुः चितिम्। सुगन्धिबाषी: सोत्चिप्तधूपांचेवैचतः प्रभी: ॥ ८१ ॥ पुष्पोपशारसतवी जानुदम्नं व्यप्तभुवि । चायेषस्पृच्यसंसर्गः पूजाये खतु जायते ॥ ८२ ॥ चिन्धपूर्मायखास्तोमवासितव्योममण्डलाः । चमुर्भूपघटीस्तव तच विष्ठकुमारकाः॥ ८३॥ दुन्द्रचापश्रतासीढिसिव नानामिषितिया। ततः समवसरणं चन्ने प्रकादिभिः सरैः ॥ ८४ ॥ रजतस्वर्षमाणिकावप्रास्तत्र वयी क्युः। भुवनाधिपतिज्योतिर्वेमानिकसुरै: क्रता: ॥ ८५ ॥ चसी खर्गमसी मोचं गच्छत्यध्वेति देशिनाम्। ग्रंसन्य दव वलास्य: पताकास्तेषु रेजिरे ॥ ८६ ॥

विद्याधयी रहमयो वपीपरि चकाशिरे। स्ततप्रवेशनिष्काशा विमानाश्वया सुरै: ॥ ८० ॥ माचिकाकपिगीर्वाचि मुग्धामरवधूजनै:। पालोकामा विरं प्रवीद्रवतालक्ष्मप्रस्या ॥ ८८ ॥ प्रतिवर्षं च चलारि गीपुराचि वभासिरे। ं चतुर्विषस्य धर्मस्य क्रीडावातायना इव ॥ ८८ ॥ चन्ने समवसरणान्तरिध्योकतदः सुरैः। क्रोमवयोदयो रब्रवयोदयमिवोहिमन् ॥ २०० ॥ तस्वाधःपूर्वदिग्भागे रत्नसिंडासनं सुराः। सपादपीठं विद्धः सारं सर्गवियामिव ॥ १ ॥ प्रविद्या पूर्वेदारेच नला तीर्थे तमस्चिदे। स्नामी सिंहासनं भेजे पूर्वाचलमिवार्यमा ॥ २ ॥ रब्रसिंशासनस्थानि दिस्तन्थास्त्रपि तत्त्रचम्। भगवलतिबिम्बानि भीचि देवा विचित्रिरे॥ ३॥ वराकीस्तराकेन्द्रमण्डलं परमिश्रितः। वैनोकासामिताचिक्रमिवच्छववयं वभी ॥ ४ ॥ भगवानिक एवायं खामीत्युद्धींततो भुजः। रकेष च प्रभोरपे रेजे रहमयी ध्वज: ॥ ५ ॥ चनाग्रेः नेवसन्नानिचन्नवर्त्तित्वसूचनम् । पत्यद्रतप्रभाचनं धर्भचनं प्रभीः पुरः ॥ ६ ॥ रेजतुर्जाक्रवीवीचिसोदरे चावचामरे। इंसाविवानुधावस्ती खामिनी सुखपक्कम् ॥ ७ ॥ .

षाविर्वभूवानुवपुस्तदा भामकलं विभीः। खबीतपीतवद्यस्य पुरी मार्त्तव्हमक्तम् ॥ ८ ॥ प्रतिधानैसतस्रोऽपि दिशो सुखरयन् भूपम्। प्रभोद रव गभौरो दिवि दध्वान दुन्दुभि: ॥ ८ ॥ प्रधीवन्ताः सुमनसी विष्वववविदि सुरैः। मानीभृते जने स्वजान्यकाचीव मनीभुवा ॥ १०॥ पश्चित्रंग्रहतिग्रयान्वितया भगवान् गिरा। तेलोक्यानुप्रचायाय प्रारेभे धर्मदेशनाम् ॥ ११ ॥ भगवलेवसञ्चानीसर्वं चारा पचीक्यन्। भरतस्य तदा चक्ररत्मप्युदपचत ॥ १२ ॥ चलाबवेवसस्तात रतयक्रमितीऽभ्यगात्। पादी करोमि कस्राचीमिति दधी चर्च दृपः ॥ १३॥ क विम्वाभयदस्तातः क चर्कं प्राणिघातकम्। तिस्योति स्नामिपूजाहेतोः स्नानादिदेग सः ॥ १४॥ स्नोः परीषष्टोदन्तदुःखात्रृत्पबद्युजम् । मबदेवामधोपेत्वं नत्वा चासी व्यजिज्ञपत् ॥ १५॥ पाटियः सर्वदापीदं यसे सुनुस्तपात्वये । पद्मखुष्ड इव सदुः सङ्ते वारिविद्रवम् ॥ १६ ॥ । हिमत्ती हिमचन्यातपरिक्रीयवर्या दशाम्। घरची मासतीस्तम्ब इवं याति निरन्तरम् ॥ १७॥ उचार्त्तावुचािकरचिकरगैरितदावगैः! सन्तापं चातुभवति स्तस्वेरम द्वाधिकम् ॥ १८ ॥

तदेवं सर्व्यकासेषु वनवासी निरात्रयः। एयग्जन रवेकाकी वत्ती में दुःखभाजनम् ॥ १८ ॥ चैलोकासामिताभाजः सम्नीसस्य सम्मति । 🥣 पथ्य सम्पद्मित्युक्तारोष्ट्यामास तां गजे॥ २०॥ सुवर्षवत्रमाचिक्यभूषचैसुरगैरजै:। पत्तिभिः खन्दनैर्मूर्तत्रीमयैः सोऽचलत्ततः ॥ २१ ॥ सैन्येर्भूवचभाःपुञ्जकतजङ्गमतोरणेः। ा मच्छन् दूरादपि तृपीऽपछाद्रत्नध्वनं पुरः ॥ २२ ॥ मर्दवामयावादीद्वरतः पुरती श्वदः। प्रभी: सम्वसरणं देवि देवैविनिर्मितम् ॥ २२:॥... त्रयं जयजयारावतुमुसस्त्रिदिवीकसाम्। त्रूयते तातपादान्ते चेवीत्रावसुपेयुवाम् ॥ २४ ॥ 💛 मालवनेशिकीसुर्ययामरागपविविता। कर्णास्त्रतिमयं वाषी स्वामिनी देशनाकृति: ॥ २५ ॥ मय्रसारसकी चर्चसाबैः खखराधिका । पाकर्याते दत्तकर्थें: स्वामिनी गी: सविवायम् ॥ २६ ॥ तातस्व तीयदस्येव धनावायीजनादिसः। त्रुते मनीबसाबेब बसवहेवि धावति ॥ २०॥ 🔑 चैसोक्यभर्त्तुर्गश्रीरां वाचीं संसारतारिचीम्। निर्वातदीपनियन्ता महदेवा मुदाध्यकोत्॥ २८॥ मुखन्यासां गिरं देव्या मब्देव्या व्यक्षीयत । भानन्दाञ्चपयःपूरैः पश्चवत्पटलं दृशोः ॥ २८ ॥

साऽपयात्तीर्वेकक्कीं तस्वाऽतिययमासिनीन्। तस्यास्तर्धमानन्दस्यैयां लाभ स्यभीर्यंत ॥ ३०॥ भगवहर्मनानन्दयोगस्येयमुपयुषी । वेवसञ्चानमन्त्रानमाससाद तदैव सा ॥ ३१ ॥ करिस्कर्याधिक्टैव प्राप्तायःकर्मसङ्घया । चन्तकलोवसिलेन निर्वाणं मब्देव्यगात् ॥ ३२ ॥ एतस्यामवस्पिष्यां सिद्योऽसी प्रथमस्ततः। चौरासी तहप: चिम्रा चन्ने मोचोखव: सरै: ॥ ३१ ॥ ततो विचाततचीची इर्षश्रम्थां समं कृपः। प्रभन्तव्हायार्कतापाभ्यां भरत्काल इवानमे ॥ ३४ ॥ सन्यच्य राज्यचिक्रानि पदातिः सपरिच्छदः। ततः, समवसरणं प्रविवेश विशाम्पतिः ॥ ३५ ॥ चत्रभिर्देवनिकायै: खामी परिवृतस्तदा । दृह्य भरतेयेन द्वचकोरनियाकरः ॥ ३६॥ विस प्रटिचिषीक्रस भगवनां प्रचम्य च । मूर्वि वदाश्वितः स्तोतुमिति त्रकी प्रवक्तमे ॥ ३० ॥ जयाखिसजगनाथ जय विम्हाभयप्रट । जय प्रथमतीर्धेम जय संसारतार्च ॥ ३८ ॥ श्रद्यावसिंपश्रीसीवापश्रावरिवाकर । त्वयि दृष्टे प्रभातं मे प्रनष्टतमसीऽभवत् ॥ ३८ ॥ 🗸 भव्यजीवमनीवारिनिर्मलीकारकर्मेचि । वाकी जयित ते नाथ कतकचोटसोटरा ॥ ४० ॥

तेवां दूरे न सोकायं कारु खचीरसागर। समारोइन्ति ये नाथ लच्छायनमहारयम् ॥ ४१ ॥ **सोकायतोऽपि संसारमियमं देव मन्मई।** निष्कारणजगद्रसुर्यत साचात्त्वमी स्वसे ॥ ४२ ॥ लहर्भनमहानन्दस्यन्दनिष्यन्दसोचनै:। स्वामिन् मोचसुखास्वादः संसारेऽप्यनुभूयते ॥ ४३ ॥ रागहेवकवायाची बदं जगदरातिभिः। दरमुद्देकाते नाच त्वयैवाभयस्तिणा ॥ ४४ ॥ खयं जापयसे तत्त्वं मार्गे दर्शयसि स्वयम्। खयं च व्रायसे विष्यं लत्ती नाघामि नाघ किम्॥ ४५॥ रति खुला जगवायं महीनायशिरोमणिः। 🖰 देगनावाक्सुधां पूर्षं कर्षान्त्रसिपुटं पपी ॥ ४६ ॥ तदा ऋषभयेनादीन् भगवान्वृषभध्वजः। दीचयामास चतुरशीतिं गणधरान् स्वयम् ॥ ४० ॥ पदीचयत्ततो ब्राह्मी भरतस्य च नन्दनान्। यतानि पच्च नप्तृंच यतानि सप्त नाभिभू: ॥ ४८ ॥ साधवः पुण्डरीकाद्याः साध्वत्रो ब्राह्मत्रादयोऽभवन् । त्रेयांसाद्याः त्रावकाय त्राविकाः सुन्दरीसुखाः ॥ ४८ ॥ एवं चतुर्विध: सङ्घ: स्थापित: स्वामिना तदा। ततःप्रभृति सङ्ख्य तथैवेयं व्यवस्थितः ॥ ५० ॥ स्वाम्यथो भव्यबोधायान्यतोऽगात्मपरिच्छदः। तं नता भरताधीशोऽप्ययोध्यां नगरीं ययौ ॥ ५१ ॥

तत नाभ्यक्रभूवंशरताकरनियाकर:। यद्याविधि जुगोपोव्यीं न्यायो वियष्टवानिव ॥ ५२ ॥ चतुःषष्टिः सइस्राचि बभूवस्तस्य वद्गभाः। घनुचर्यः त्रियो यासां अज्ञिरे रूपसम्पदा ॥ ५३ ॥ तिस्मवर्षासनासीने वासवस्य दिवीकसः। ह्योभेंदमजानन्तः पेतुः प्रचतिसंश्ये ॥ ५४ ॥ प्रारब्धदिग्जयः पूर्वं पूर्वस्त्रां भानुमानिव । सीऽगाळितान्यतेजीभिस्तेजीभिर्यीतयन् जगत् ॥ ५५ ॥ चित्वतार्धीमवोद्दीचिष्ठस्तविन्यस्तविद्वमैः। गङ्गासकोदसुभगं स प्रापत् पूर्वसागरम् ॥ ५६ ॥ मागधतीर्धेकुमारं देवं मनसिकत्य च। प्रपेदेऽष्टमभन्नं सोऽर्घसिन्ने होरमादिमम् ॥ ५०॥ यादांसि नासयनाय रधनावद्य रंचसा। जलिं मन्द्रेषेव जगाहे स महाभुजः ॥ ५८ ॥ रयनाभ्युदये तोये खिला हादशयोजनीम्। बाचं दूतमिव ग्रैषीचामासं मागधाय सः॥ ५८॥ चय मागधतीर्थस्य पतिनिपतिते गरे। चुकीप विकटाटीपश्रकुटीभन्नभीषणम् ॥ ६०॥ गरी सन्दाचराचीव तस्य नामाचरास्त्रसी। दृष्टा नागकुमारोऽभूकितासं शान्तमानसः ॥ ६१ ॥ ं प्रथमसम्बद्धाव स्टापन इति सिन्तयन्। उपतस्ये स भरतं विजयो मृर्त्तिमानिव ॥ ६२ ॥

नरचूडामधरपे निजं चूडामणिं फणी। चिरार्कितं तेज द्वीपानयत्तक्तरं च सः ॥ ६३ ॥ तवाई पूर्वदिक्पालः किङ्करः करवाणि किम्। दति विजयवन् राजा सीऽनुजन्ने महीजसा ॥ ६४ ॥ जयस्तकामिवारीच्य तत्र तं मागधाधिपम्। पूर्वनीरनिधेस्तीरावरदेवी न्यवर्त्तत ॥ ६५ ॥ चर्चीमनुर्वी कुर्वाषयसयम्बनानपि । चतुरक्रवलेनाच प्रपेदे दिचानोदिधम् ॥ ६६ ॥ एलासवङ्गलवलीककोलबङ्गले तटे । सैन्यान्यावासयामास सदोवीर्यपुरन्दरः ॥ ४० ॥ तेजसा स दुरासोकी दितीयदव भास्करः। महावारं महाबाहुरावरीह महारयम् ॥ ६८ ॥ तरक्वेरिव रक्वक्किस्ततसुक्वेसुरक्वमैः। रवनाभ्युदयं तीयं ससक्षे स महीदिधम् ॥ ६८ ॥ वरदामाभिसुखं च सळीक्ततप्ररासनः। धनुवेंदीशारमिव च्याभिर्घीषं ततान सः ॥ ७० ॥ सीवर्षकर्षताडङ्कपद्मनासतुसास्व्यम् । काचनं सन्दर्ध बाजमाकर्जाक्षणकार्मुके ॥ ७१ ॥ वरदामाख्यतीर्थेयमभि त्रीभरतस्तत:। मुमीच नमुचिद्देषिस्थामा नामाद्वितं शरम् ॥ ७२ ॥ वरदामपतिर्वाचं प्रेच्य च प्रतिग्रम् च। भरतं प्रत्युपायन्न उपायनसुपानयत् ॥ ७३ ॥

जरे च भरताधीयं धन्योऽस्मि यदिशागमः। नाधेन भवता नाथ सनाथीऽइसत: परम ॥ ७४ ॥ ततस्तमाबसालाता जत्यविद्वरतेखरः। प्रति प्रतीचीमचलचलयवचलां बलै: ॥ ०५ ॥ षवरार्षवमासाद्य प्रभासाभिसुखं गरम्। जाञ्चल्यमानं भरतस्त्र डिइग्ड मिवाचिपत् ॥ ७६ ॥ दण्डं प्रयच्छ कुर्वीज्ञां जिजीविषसि चेत्र्खम्। द्रत्यचराणि तदापे प्रभासपतिरैचत ॥ ७० ॥ प्राज्यानि प्रगुणीकत्य प्रास्तान्यज्ञतानि सः। चचाल गरमादाय प्रसादयितुमाविभिम् ॥ ७८ ॥ श्वारावीशारप्ररिषानाजशारातिशारिषः। चिरकासार्क्कितानामयभोराभीनिवाखिसान्॥ ७८ ॥ येवामये द्वलल्यो रमारमण्डमणः। तांस्तान्वित्राणयामास मणीवरियरीमपे: ॥ ५०॥ कटकानि कटीस्चं चूडामिस्रोमिसम्। निष्कादि चार्पयद्रान्ने मूर्त्तं तेज इव खकम् ॥ ८१ ॥ इति प्रसादितस्तेनाच्छश्रना भक्तिसञ्जना । भरतोऽगावदी सिन्ध्सुत्तरदारदेवलीम् ॥ ८२ ॥ निकषा सिन्धुभवनं निद्धे शिविरं तृप:। सिन्धदेवीं समुहिष्य विदधे चाष्टमं तपः ॥ ८३ ॥ सिन्धुसासनकम्पेन जाला चिक्रणमागतम्। 💚 चपित्योपायनैदिं यौरानर्च पृथिवीपतिम्॥ ८४॥

तासुरीकतसेवां च विस्वच्य क्रतपारणः। **प**ष्टाक्रिकोत्सवं तस्या विदधे 'वसुधाधवः ॥ ८५ ॥ सीऽय चन्नानुगी गच्छन् कन्नुभीत्तरपूर्वया। भरताबेदयाचाटं वैताक्वाद्विमवाप च ॥ ८६ ॥ ः नितम्बे दिचेषे तस्य विन्यस्त्रशिविरस्ततः। पिवेताका समारं कृपतिविद्धे हिमम्॥ ८०॥ विज्ञायाविधना सोऽपि दिव्यस्तैस्तैकपायनैः। उपतस्य महीपालं सेवां च प्रत्यपदात ॥ ८८ ॥ तं विस्चय तृपस्रक्षेऽष्टमभन्नान्तपारसम्। पष्टाक्रिकोत्सवं तस्य विदधे च यद्याविधि ॥ ८८ ॥ गुइां तमिस्नामभितस्तमिस्नारिरिव लिषा। जगाम तददूरे च स्कन्धावारं न्यधावृषः ॥ ८० ॥ कतमालामरं तप स उहिच्याष्टमं व्यधात। सोऽपि जालासनकम्पादार्नेचेंपित्व भूपतिम् ॥ ८१ ॥ विस्व तमि स्मापः कला चाष्टमपार्यम्। विद्धेऽष्टाक्किकां तस्य महोत्सवपुर:सरम् ॥ ८२ ॥ सुवेषो भरतादेशासिन्धसुत्तीर्य चर्मणा। तरसा साधयामास दिचणं सिन्धुनिष्कुटम् ॥ ८३ ॥ करं ततस्यक्षेक्छानामादाय खेळ्याय सः। उत्तीर्यं चर्मणा सिन्धमाययी भरतेष्वरम् ॥ ८४ ॥

⁽१) ऋ व वसुधाधियः।

वैताकी तमिस्रां वचकपाटपिहितां गुहाम्। चहाटयितुमादिचत् 'सुषेचस्वभावाज: ॥ ८५ ॥ सुषेषोऽपि प्रभीराज्ञां श्रेषावसूर्त्वि धारयन्। प्रदेगेश्गात्तमिस्राया गुष्ठाया षदवीयसि ॥ ८६ ॥ तद्धिष्ठाढदेवं च क्रतमासमनुसारन्। तस्यो पीषध्यासायासष्टमेन विश्वच्योः ॥ ८० ॥ खाला चाष्टमभक्तान्ते बाचाभ्यन्तरशीचभत । पर्यधाच्छ्रविवस्नाचि विविधाभरचानि च ॥ ८८ ॥ षोमकुष्डोपमे घूपदद्दने ज्वलदिनिकी। भूपसृष्टी: चिपन् खार्यसाधनीराइतीरिव ॥ ८८ ॥ ततः स्वानादसी तस्वा गुंडाया द्वारमभ्यगात्। की गहारं तदायुक्त इवीद्घाटियतुं खरी ॥ ३०० ॥ दृष्टमात्रं तलपाटयुगलं प्रचनाम च। नितारमिव तदन्तः प्रवेशः स्वात्नुती ब्याया ॥ १ ॥ गुहाहारे ततोऽष्टाष्टमङ्गलालेखपूर्वेकम् । सोऽष्टाक्रिकामहिमानं चन्ने खमहिमीचितम् ॥ २ ॥ दक्दां वजसारं सर्वेशनुविनाशनम्। प्यय सेनापितवैष्यं वष्यपाचिरिवाददे ॥ ३॥ पटानि कतिचिकोपस्त्य वक्र इव ग्रहः। दण्डरबेन भटिति कपाटी विरताख्यत् ॥ ४ ॥

⁽१) च च ततक्तक्षयभाक्षकः।

पचाविवाद्वेरवेचे च दक्षरत्नेन ताडिती। तडसडिति कुर्वाची विश्विष्टी ती बभूवतुः ॥ ५ ॥ तहु हा दारवलाचाः सविकाशमुखी स्थाम्। सुवेची भरतायेदं गला नला व्यजिज्ञपत् ॥ ६ ॥ पद्माभूखसभावेच गुहादारमपार्गलम्। यतिनिश्चेयसद्वारं तपसेवातिभूयसा ॥ ७ ॥ मचवैरावणमिवाधिक्टी गत्धवारणम्। तलासं भरताधीयो गुडाडारस्पाययौ ॥ ८ ॥ प्रश्वकारापद्वाराय मिक्स न्यधानुपः। दिचिषे कुश्चिन: कुश्चे पूर्वीद्राविव भास्तरम् ॥ ८ ॥ ततीऽनुगचमूचक्रचक्रमार्गानुगी गुहाम्। प्रविवेश विशासीशो मेघसध्यमिवार्यमा ॥ १०॥ गोमू तिकाक्रमेचानुयोजनान्तं तमन्छिदे। पार्खयोः काकिणीरबेनालिखनाण्डलानि सः ॥ ११ ॥ दीप्रैरेकोनपञ्चाश्रमाक्रलैः काकिणीक्रतैः। मार्त्तक्षमक्कलोचीतैस्तदाहिन्चीऽवहन्युखम् ॥ १२ ॥ भूषोऽघापखदुमामनिममने निम्त्रगे ययो: । एक नी साजाति यावान्यस्यां माजात्यसा ब्विपि ॥ १३ ॥ पतिदुस्तरताभाजीरपि सारणिलीलया। तयोर्नद्योरनवद्यां पद्यां व्यक्षित वर्षकः ॥ १४ ॥ पद्मया ते समुत्तीर्यं तहु हाकु हरा कृषः। निरगच्छनाडामेघमण्डलादिव भास्तरः ॥ १५ ॥

भरती भरतचेबीत्तरखखं प्रविष्टवान । भग्रध्यत ततो स्त्रेच्छेर्दानवैरिव वासव: ॥ १६ ॥ जिता राजा 'महेशेन कोच्छा: प्रतिजयेच्छव:। उपासाचिकिर मेघमुखान खक्कसदेवता: ॥ १० ॥ सुसलाकारधाराभिरारादासारदारुणम्। ते प्रावर्त्तन्त संवर्त्त इव विष्वक् प्रविवेत्तम् ॥ १८ ॥ चर्मरत्रमधस्तेने राजा दादमयोजनीम्। तहर्षुं क्रवरतं मध्ये च निद्धे चसू: ॥ १८ ॥ मणिरवस्त्रधान्तध्वंसाय वसुधाधिप:। पूर्वीचल द्वादित्यं क्षत्रदण्डे न्ययोजयत्॥ २०॥ तरदण्ड दवाराजत्तद्रबद्दयसम्प्टम् । ततस्तदादिसोकेऽभूष्रश्चाण्डमिति क्रस्पना ॥ २१ ॥ पूर्वीके वापितान् शासीनपराक्के च पक्तिमान्। ्प्रत्यावासं ग्रह्मपतिभीजनाधैमपूरयत् ॥ २२ ॥ वर्षं वर्षं च निर्व्विषैक्चे मेचकुमारकै:। ं विरातासमवर्त्येष न साध्यीऽस्नादृशामपि ॥ २३ ॥ भमेक्सास्तिरा केक्सः ग्ररणं भरतं ययुः। ः पिनिना विस दन्धानामन्तिरेव महौवधम् ॥ २४ ॥ ततवाजयमजयिक्यभेक्तरनिष्क्टम्। स्वान्यादेशेन सेनानी: संसारमिव योगवित् ॥ २५ ॥

3 6

⁽१) खग च महेच्हेन।

के वित्रयाणके गेच्छन् गजेन्द्र इव सीसया। नितम्बं दिचणं चुद्रहिमाद्रेः प्राप भूपतिः ॥ २६ ॥ चहित्र चुद्रहिमवल्मारं तत्र चार्षभि:। चक्रेड्यं कार्यसिद्देखपोमङ्गलमादिमम् ॥ २०॥ गलाष्ट्रमान्ते हिमवत्पर्वतं तिरताडयत् । साटोपो रयशीर्षेण शीर्षण्यः प्रथिवीभुजाम् ॥ २८ ॥ भरतेशस्ततः चुद्रचिमवद्गिरिमूर्देनि । हासप्ततिं योजनानि नामाहं बाणमजिपत् ॥ २८ ॥ बागमालीका हिमवल्यमारी 'अप्येख सलरम्। भरताज्ञां स्विधिरसा थिरस्ताणिमवायहीत् ॥ ३०॥ गला ऋषभक्टाद्रिम्षभस्वामिभूस्तृतः। जघान रयशीवेंग तिर्देम्तेनेव दन्तिराट् ॥ ३१ ॥ भवसर्पिखां हतीयारप्रान्ते भरतोऽस्मरहम्। चन्नीति वर्षान् काकिच्या तत्पूर्वकटकेऽलिखत्॥ १२॥ ततो व्याव्यसम्बद्धाः स्क्रम्यावारं निजं ययौ। चकाराष्ट्रमभक्तान्तपारणं च महीपति: ॥ ३३ ॥ ततस चुद्रहिमवल्पुमारस्य नरेखरः। प्रष्टाहिकोतावं चन्नीऽनुरूपं चिन्नसम्पदः ॥ ३४ ॥ ततो निवहते चन्नवर्त्ती चन्नपयानुगः। सिन्धगङ्गान्तरं कुर्वन सङ्घटं विपुलैबेलै: ॥ ३५ ॥

⁽१) क स सम्बेख।

नितम्बसुत्तरमथ वैताक्वाद्भरवाप सः। तत खखपरीवारं कान्यावारं न्यथत्त च ॥ ३६ ॥ ततो नमिवनम्याखी विद्याधरपती प्रति। षादिदेश विशामीशो मार्गणं दक्डमार्गणम् ॥ ३०॥ बैताग्रयन्त्रादुत्तीयं कुपिती दण्डयाचनात्। षाजग्मतुर्युयुस् ती विद्याधरबलाहती ॥ ३८ ॥ क्षवंद्याणिविमानैदीं बहुत्तूर्यमयीमिव। प्रज्यलक्षिः प्रहर्गेस्तिङ्मालामयीमिव ॥ ३८ ॥ उद्दामदुन्दुभिध्वानैमें घघोषमयौमिव। विद्याधरवलं व्योमन्यपम्बद्धरतस्ततः ॥ ४०॥ दक्डार्थिन् दक्कमस्रक्तस्यं ग्रह्मासीति भाषिषौ। पाइवायाद्वयेतां ती विद्यादृती महीपतिम् ॥ ४१ ॥ षय ताभ्यां ससैन्याभ्यां प्रत्येकं युगपच सः। युग्रंधे विविधेर्युंदेर्युद्धाच्या यक्तयत्रियः ॥ ४२ ॥ युधा द्वादशवार्षिका विद्याधरपती जिती। प्राञ्जली प्रणिपत्यैवं भरताधीयमूचतुः ॥ ४३ ॥ रवेरुपरि किं तेजो वायोरुपरि को जवी। मोचस्योपरि किं सीस्थं कय गूरस्तवोपरि ॥ ४४ ॥ ऋषभो भगवान् साचाददा दृष्टस्वमार्षभे । षज्ञानाची धितोऽसाभिः कुलखामिन् सङ्ख तत्॥ ४५॥ किरीट इव नो मूर्डि मण्डनं तव शासनम्। कोशी वपुरपत्यानि सर्वमन्यच तावकम् ॥ ४६ ॥

भिक्तगर्भिति प्रोच भरतेयाय दत्तवान्। विनस्त्रो विनमिनीरीरबं रबोच्यं निमः ॥ ४०॥ ततो राम्ना विस्टेश ती राज्यान्यारीप्य सुनुषु। विरत्तात्वभेगां क्रिमूले जग्रहतुर्वतम् ॥ ४८ ॥ ततोऽपि चलितवतस्रकारतस्य प्रष्ठतः। गच्छवासादयामास राजा मन्दाकिनीतटम् ॥ ४८ ॥ उत्तरं निष्कुटं गाङ्गं सुवेगोऽप्यभिवेगयन्। तरसा साधयामास किमसाध्यं महासमाम् ॥ ५०॥ राजाप्यष्टमभन्नेन गङ्गादेवीमसाध्यत्। मानर्च भरतं सापि देवताईं क्पायनैः ॥ ५१ ॥ तती गङ्गानदीकूले कमलामीदमालिनि। वासागार द्वीवास वसुमत्येकवासवः ॥ ५२ ॥ भरतं क्पलावख्यिकद्वरीक्रतमन्त्रथम्। तवावसोका गङ्गापि प्राप चीभमंयीं दशाम् ॥ ५३ ॥ विराजमाना सर्वोष्ट्रं सुत्तामयविभूषणैः। वदनेन्दोरनुगतैस्तारैस्तारागचैरिव ॥ ५४ ॥ वस्ताणि कदलीगर्भलकागर्भाणि बिभती। स्तप्रवाष्ट्रपयांसीव तद्रूपपरिचामतः ॥ ५५ ॥ रोमाञ्चकञ्चकोदञ्चल्वस्फ्टितकञ्चका । सदास्तरिक्तापाक्षा गक्का भरतमभ्यगात्॥ ५६॥

(विभिविशेषकम्)

प्रेमगद्भदवादिन्या गाठमभ्यर्थ पार्थिव:। रिरंसमानया निन्धे तथा निजनिक्षेतनम् ॥ ५०॥ भुष्मानी विविधान् भोगांस्तया सह महीपति:। एकाइमिव वर्षाषां सइस्रं सीऽत्यवाइयत्॥ ५८॥ श्रदां खज्डप्रपातास्थामखिष्डतपराक्रमः। ततः स्थानानुपः प्राप करटीव वनाइनम् ॥ ५८ ॥ क्रतमासकवत्तव नाव्यमासमसाधयत्। षष्टमेन तृपस्तदत्तस्य चाष्टाक्निकां व्यधात्॥ ६०॥ सुषेगोद्वाटितद्वारकपाटां तां गुष्ठां सृप:। प्राविशह्तिणं तस्या द्वारमुक्कघटे स्वयम् ॥ ६१ ॥ निर्ययौ तहुन्नामध्यात्केशरीव नरेखरः। स्त्रसावारं च निदधे गाष्ट्रे रोधसि पश्चिम ॥ ६२॥ नवापि निधयो नागकुमाराधिष्ठितास्तदा। गङ्गाकूलमनुप्राप्तं राजानसुपतस्थिरे॥ ६३॥ द्रत्यृचुन्ते वयं गङ्गामुखमागधवासिन:। चागतास्वा महाभाग भवज्ञाग्यैवधीकताः ॥ ६४॥ यथाकाममवित्रान्तमुपभुङ्ख्य प्रयच्छ च। चित चीयेत पायोऽसी न तु चीयाम हे वयम् ॥ ६५ ॥ सइस्रेनेवभिर्यचै: किइरेरिव तावकै:। षापूर्यमाणाः सततं चक्राष्टकप्रतिष्ठिताः ॥ ६६ ॥ द्वादशयोजनायामा नवयोजनविस्तृताः। भूमध्ये सञ्चरिष्यामी देव लत्पारिपार्मिका: ॥६०॥ (युग्मम्)

बेनापतिः सुषेषोऽपि गङ्गादिचणनिष्कुटम् । महावनं महावायुरिवोक्यूख समाययौ ॥ ६८ ॥ समा सहस्रै: वध्यैवं जिला षट्खण्डमेदिनीम्। चक्रमार्गातुगोऽयोध्यां जगाम जगतीपति: ॥ ६८ ॥ ततो दादमभिवेषेरागत्यागत्यंपार्घिवै:। प्रचने चन्नवर्त्तिलाभिषेको भरतेशितः॥ ७०॥ कुर्वता खकुटम्बस्य सारां च दृहमे क्रमाम्। सुन्दरीं चास्त्रिभूतां च चुकीप भरतेखर: ॥ ७१ ॥ जरे प्राइरिकान् किं रे महेडे नास्ति भोजनम्। यदेवमीह्यी जाता प्रस्थिचर्ममयी कथम् ॥ ७२ ॥ खामिन् विजययात्राभूत्तव तावस्रस्खिप । पाचामान्वात्यवित्रान्तमकार्वीसुन्दरी यतः॥ ७३॥ प्रवासरे च भगवान् विष्ठत्य वसुधातले। भगवान् समवासार्वीदष्टापदिगरी तत: ॥ ७४ ॥ युला च भरताधीयः खामिवन्दनहेतवे। पागात्तहेशनां युला वृतं जग्राह सुन्दरी ॥ ७५ ॥ भातृननागतान् जाला तिसर्वाप महोसावे। तेषामिकेकयो दूतान् प्राह्मिणोज्ञरतेष्वरः॥ ७६॥ राज्यानि चेतामी इध्वे सेवध्वं भरतं ततः। दूर्तैरित्युदिता: सर्वेऽप्यासीचैवावदिवदम् ॥ ७७ ॥ विभन्य राज्यं दत्तं नस्तातेन भरतस्य च। संग्रेयमानो भरतोऽधिकं किं नः करिचति ॥ ७८॥

समापतन्तं किं काले कालं प्रस्वलयिश्वति। किं जराराचसीं टेडग्राडियों निग्रडीयित ॥ ७८ ॥ बाधाविधायिन: किं वा व्याधिव्याधान् इनिचति। यथोत्तरं वर्षमानां दृष्णां वा दस्रयिषति ॥ ८०॥ र्रेडक्सैवाफलं दातुं न चेत्ररत र्रेश्वरः। मनुष्यभावे सामान्ये तिर्धं कः कीन सेव्यताम् ॥ ८१ ॥ प्राच्यराच्योऽप्यसन्तोषादस्रद्वाच्यं जिष्ट्रचति । खाना चेत्तदयमपि तस्य तातस्य सुनवः॥ ८२ ॥ पवित्रपय तातं तु सीदर्येणायजनाना । दूत त्वत्स्वामिना योडुं न वयं प्रोत्सन्दामरे ॥ ८३ ॥ ते दूतानभिधायैवस्वभस्वामिनं ययु:। नला भरतसन्दिष्टं 'तच सब्बे व्यजित्रपन् ॥ ८४ ॥ पद्मानवेवसादर्भसंक्रान्ताग्रेषविष्टपः। क्रपावान् भगवानादिनाघोऽपौत्यादिदेश तान् ॥ ८५ ॥ भनेकयोनिसम्पःतानन्तवाधानिबन्धनम्। प्रभिमानपालैवेयं राज्यश्री: सापि नम्बरी ॥ ८६ ॥ किश्व या खःसुखैस्तृशा नात्र्वात्रागभवेषु वः। साङ्गारकारकस्थेव मर्स्थभोगैः कयं चुटेत् ॥ ८०॥ पक्रारकारकः कविदादाय पयसी दृतिम्। जगाम कर्तुमङ्गारानरच्छे रीषवारिषि ॥ ८८ ॥

⁽१) च तरसङ्गं व्यक्तिश्चपन्।

सोऽङ्गारानसस्तापात्रभ्याङ्कातपपोवितात्। चहुतया द्ववाकान्तः सर्वे दृतिपयः पपी ॥ ८८ ॥ तेनाप्यच्छिन्नत्वणः सन् सुप्तः स्त्रप्ने ग्टहं गतः। षालुक्कत्रमन्दानामुदकान्यभितोऽप्यपात्॥ ८०॥ तज्जलैरप्यभान्तायां खणायामन्तितेलवत् । वापीकूपतडागानि पार्यपायमधोषयत्॥ ८१॥ तथैव द्ववितीऽयापास्तरितः सरितांपतीन्। न तुतस्य खषात्वात्रात्रारकस्येव वेदना॥ ८२॥ मक्कूपे ततो यात: कुशपूर्लं स रक्क्सि:। बद्दा चिचेप पयसे किमार्त्त: कुरुते न दि ॥ ८३॥ दूराम्बुलेन कूपस्य मध्येऽपि निताम्बुकम्। निषीत्य पूर्वं द्रमकः स्नेहपीतिमवापिवत् ॥ ८४ ॥ न च्छिता यार्थवाचैसृट् हेवा पूलाश्वसा न सा। तहहः स्व:स्वाच्छिता क्रेग्रा राज्यत्रिया किम ॥ ८५ ॥ पमन्दानन्दनि:स्यन्दिनिर्वाणप्राप्तिकारणम्। वलाः संयमराज्यं तयुज्यते वो विविकानाम् ॥ ८६ ॥ तत्वासीत्पन्नवैराग्यवेगा भगवटन्तिवे। तेऽष्टानवतिरप्याग्र प्रवच्यां जग्रहुस्ततः ॥ ८० ॥ यहो धैर्यमहो सत्त्वमहो वैराग्यधीरित। विन्तयन्तस्तरस्तरूपं दूता राज्ञे व्यक्तिज्ञपन् ॥ ८८ ॥ तत् त्रुला भरतस्तेषां राज्यानि जग्रहे स्वयम्। माभाषिवर्षिती सीभी राजधर्मी द्वासी सदा ॥ ८८ ॥

षय विषयपयामास सेनानीभेरतेम्बरम्। न चक्रं चक्रशालायां विग्रत्यद्यापि नः प्रभी ॥ ४०० ॥ स्तामिन दिग्विजये कसिदाज्ञाबाच्ची तृपः कचित्। विवस्ति डोल इव घरहे भ्रमति प्रभो ॥ १ ॥ षाः चातं भरतोऽवाटीक्रोकोत्तरपराक्रमः । पदाइंध्मेहाबाहुरेको बाहुबलिबेली ॥ २॥ एकतो गर्डसैकोऽन्यतोऽप्यश्विलानि च। चगारिको यत्कुर्याचृगकुकाः ॥ ३॥ एकतः संहताः सर्वे देवदानवमानवाः। तयान्यतो बाडुबिस: प्रतिमन्नो न विद्यते॥ ४॥ एकतस्त्रमासायां चन्नं न प्रविश्रत्यदः। निच्छत्याचामन्यतो बाइ: सङ्टे पतितोऽस्राइम् ॥ ५ ॥ किंवा बारुबिसः सीऽयमान्नां कस्यापि मन्यते। सहते नाम पर्याणं केसरी किं कदाचन ॥ ६॥ एवं विस्थातस्तस्य सेनामी जगदे चादः। स्वामिंस्वध्वस्याये तेवोकां च ख्यायते॥ ७॥ वैमानेयं कनीयांसमय बाइबलिं प्रति। दूतं तचिशिनापुर्थां प्रेषयामास पार्धिवः ॥ ८ ॥ यैलयन्ने सिंहमिवीसुङ्गसिंहासने स्थितम् । नला बाहुबलिं दूती युक्तिस्यूतमवीचत ॥ ८ ॥ लमेक: साध्यसे यस्य ज्येष्ठो भाता जगळायी। षट्खक्मरताधीशी सोकोत्तरपराक्रम:॥ १०॥

प्रथमः प्रकाशः।

लड्डातुयक्रवित्तिलाभिषेके के महीभ्ज:। मक्स्चोपायनकराः करदीभूय नाययुः॥ ११॥ सूर्योदय रवाभोजखण्डस भरतीदय:। त्रियो तवैव किन्वस्थाभिषेकी न लमागम:॥ १२॥ ततः कुमार भवती ऽसमागमनकारणम्। जातुं राजा नयजेनाजापितोऽइमिहागमम्॥ १३॥ मागा यदार्जवेमापि तत्र कोऽपि जनः पुनः। तवाविनीततां ब्रूते यच्छिद्रान्वेषिणः खलाः॥ १४॥ पिश्रनानां प्रवेशं तदास्नाद्गीपयितुं तव । त्रागन्तं युच्यते तत्र का त्रपा खाम्युपासने ॥ १५ ॥ भातित यदि निभीको मागास्तदपि नोचितम्। पाचासारा न ग्टहाम्ले जातेयेन महीभ्जः ॥ १६ ॥ षयस्ताम्तैरिवायांसि देवदानवमानवाः । क्षष्टास्तेनोभिरधुना द्वांनं भरतमन्वगुः॥ १७॥ यमर्त्रासनदानेन वासवोऽपि संखीयति। सेवामात्रेण तं इन्तानुसूसयसि किं निष्ट ॥ १८ ॥ वीरमानितया यद्वा राजानमवमन्यसे। लं हि तिस्मन् ससैन्योऽपि समुद्रे सत्नुमुष्टिवत् ॥ १८ ॥ लचायतुरशीतिस्तक्षजाः शकीभसिवभाः। सन्नाः केनाभिसर्पम्तः पर्व्वता दव जङ्गमाः ॥ २०॥ तावतोऽखान् रथांचास्य विष्वक् प्रावयतो मङ्गीम्। कन्नीलानिय कल्पान्तीदधेः कः खन्नविष्यति ॥ २१ ॥

तस्य षस्पवतियामकोटिभर्त्तुः पदातयः । कोव्य: षस्ववित: सिंहा इव व्रासाय कस्य न ॥ २२ ॥ एक: स्वेणसेनानीर्दण्डपाणि: समापतन्। कतान्त प्रव कि शकाः सोठं देवास्रेरिप ॥ २१ ॥ भमोघं विभ्रतस्त्रं चिक्रको भरतस्य तु। सूर्यस्वेव तमस्तोमः स्तोकिकैव विस्नोक्यपि॥ २४॥ तेजसा वयसा च्येष्ठो तृपश्रेष्ठः स सर्वेथा । राज्यजीवितकामेन मेव्यो बाहुबले लया ॥ २५॥ षय बाहुबलिबीहुबलापास्तजगदस:। जर्वे भूभङ्गभृद्दीरध्वानीऽर्थव इवापरः ॥ २६ ॥ युक्तं यदुक्तं भवता लीभनं चीभणं वच:। दूता: खलु यथावस्यस्वामिवाचिकवाचिन: ॥ २०॥ सुरासुरनरिन्द्राची न तातोत्तमविक्रमः। म्नाचा हेतुमें भरतः की त्तितो दूत नूतनः ॥ २८॥ कारदीभूय भूपाला नागच्छन्त कथं मुतम्। द्रायते नत्वसी यस्य भाता बाहुब निर्वेती ॥ २८ ॥ भावयोनेनु मार्भेष्डपद्वत्य्ख्योरिव। किं न स्याद्व्यवहितयोरपि प्रीतिः परस्परम् ॥ ३०॥ सदा मनसि तिष्ठामस्तस्य भातुरस्रो वयम्। गला किमतिरिचेत प्रीतिनेंसर्गिकी हिन: ॥ ३१॥ षाळवात्रागताः सत्यं कौटिखं भरतेन किम्। विस्रायकारिण: सन्तो दूयन्ते किं खलोक्तिभि: ॥ ३२ ॥

प्रथमः प्रकाशः ।

एक एवावयोः खामी भगवानादितीयकत्। तिसान्विजयिनि खामी कथहारं ममापरः ॥ ३३॥ भाताऽसामी: स चान्नेय पान्नापयत् यदानम् । जातिसेहेन किं वचं वजीण न विदार्थते ॥ ३४ ॥ सरासरनरोपाच्या प्रीतोऽस्तेष मयास्य किम । मार्ग एव चम: स्तम्बे रय: सज्जोऽपि भन्यते ॥ ३५ ॥ तातभन्नी महेन्द्रबेक्केप्रष्ठं तं तातनन्दनम् । प्रासयत्यासनस्याचे स किं तेनापि द्रप्यति ॥ १६ ॥ तेऽन्ये तिस्मन् समुद्रे ये ससैन्याः सत्तुमुष्टिवत् । तेजोभिद्:सहोऽहं तु हम्त स्यां वडवानलः ॥ ३०॥ पत्तयोऽखा रया नागाः सेनानीर्भरतोऽपि च। मयि सर्बे प्रसीयन्तां तेजांसीवार्कतेजिसि ॥ ३८॥ या दि दूत स एवति राज्य जीवितकास्यया। तातदत्तांगतुष्टेन मयैवोपेचितास्य भूः॥ ३८ ॥ दूरीनागत्य विश्वप्ते यथार्थे तेन तत्त्रणम्। युयुस्वी इविसना भरतीऽयाभ्यवेणयत् ॥ ४०॥ हादयक्रोदिनीं सैन्यैर्घनर्त्तुर्धां घनैरिव। महाबाहुस्तती बाहुबलिर्भरतमभ्यगात्॥ ४१॥ उभयोरपि वाडिन्धोर्मेडासुभटयादसी:। त्रन्योदन्यास्मानितास्त्रोत्रिःसम्फेटोद्भृद्वयानकः ॥ ४२ ॥ तसैनिकानामन्धोऽन्यं कुन्ताकुन्ति ग्रराग्ररि। गामन्त्रितयाद्वदेवः प्रावर्त्तत रण्चणः ॥ ४२ ॥

पर्यस्याभेषसैन्यानि तृसानीव महाबतः। प्रभ्येत्य भरतं बाइबलिरेवमवोचतः ॥ ४४ ॥ इस्यम्बपित्तघातेन किं सुधा पापदायिना। यदासं तत्त्वमेकाकी युद्धास्त्रेकािकना मया ॥ ४५ ॥ एकाङ्वाजिं प्रतिज्ञाय द्वाभ्यामपि निवारिताः। सैनिका उभयेऽप्यस्यः पश्यन्तः साचिगी यथा ॥ ४६ ॥ ततो दृग्युद पारसे निर्निमेषविलोचनी। देवैरिप कृदेवी ती देवाविति वित्रिक्ती ॥ ४०॥ भरते निर्जिते तत्र 'साचीभूतामरं तयो:। वाग्युद्धसभवत्यचप्रतिपचपरियद्वात्॥ ४८॥ तनापि द्वीनवादिलं भरते सस्पेयुषि। भूभुजी भुजयुद्देन युयुधाते महाभुजी ॥ ४८ ॥ भरतो सम्बमानोऽय बाही बाहुबली: स्थिरे। शाखासगो महाशाखिशाखायामिव वीचित: ॥ ५०॥ भरतस्य महाबाहोरपि बाहुब लिबेली। एकेन बाहुना बाहुं लतानालमनामयत्॥ ५१॥ प्रारचे मुष्टियुद्धेश्य पेतुर्भरतमुख्यः। बाइबली ससुद्रोभिंघाता इव तटाचले॥ ५२ ॥ षाइतो बाइबलिना वजकलीन सृष्टिना। पपात भरत: पृथ्वंग खसैन्याऽश्रुजलै: सह ॥ ५३ ॥

⁽१) खगच सभ्यीभूतामरं तथोः।

मुर्च्छान्ते भरती बाहुबलिं दण्डेन दर्पतः। ताड्यामास दन्तीव तिर्थेग्दन्तेन पर्वतम् ॥ ५४ ॥ दच्छेन बाडुबलिना निइतो भरतस्ततः। भूम्यामाजानुमम्मोऽस्थानिसात इव कीसकः ॥ ५५ ॥ किमेष चन्नवर्त्तीति भरतः क्रतसंश्यः। यावत्संस्मृतवां चन्नं तावदागात्नरेऽस्य तत्॥ ५६॥ भूमेनिः सत्य कोपेन महता भरतेषारः। चिचेप प्रज्वलचनं क्रतहाहारवं बलै: ॥ ५०॥ तचनं पार्वती बाइबलेभ्जीन्या न्यवस्ति। दैवतानि हि ग्रस्नाणि स्वगीते प्रभवन्ति न ॥ ५८॥ भचनं प्रेच्य तहाहुवितः कीपार्वेचयः। सचक्रं चूर्णयाम्येनिमिति सृष्टिसुद्चिपत्॥ ५८॥ ग्रसाविव कवायैधिगई भ्रात्ववधोद्यतः। विजित्य करणगामं कषायानेव इसि तान्॥ ६०॥ इति सञ्चातसंवेगस्तदा तेनैव मुष्टिना। नेशानुत्पाटयामास सामायिकमथाददे॥ ६१॥ साधु साध्विति सानन्दं व्याइरन्तः सुरासुराः। उपरिष्टादाचुबली: पुष्पवृष्टिं वितिनिरे ॥ ६२ ॥ गला भगवतः पार्धे ज्ञानातिग्रयशालिनाम्। कनीयसां सोदराणां विधास्ये वन्दनां कथम् ॥ ६३ ॥ उत्पन्ननेवलज्ञानस्तत्तां यास्यामि पर्षदम्। इति तचैव मीनेन सोऽस्थात्रितमया क्रती ॥ (धा (युग्मम्) भरतस्तं तथादृष्टा विचार्यं सं कुकर्मं च। बभूव न्यश्वितयीवी विविद्यदिव मेदिनीम् ॥ ६५ ॥ शान्तरसं सूर्त्तीमव भातरं प्रचनाम च। नेवयोरस्भः कोष्णैः कोपप्रेषमिवीत्मुजन् ॥ ६६॥ प्रयमन् भरतस्तस्याऽधिकोपास्तिविधिसया। नखादर्शेषु संक्राम्या नानारूप रवाभवत् ॥ ६० ॥ सुनन्दानन्दनसुनिर्गुणस्तवनपूर्विकाम् । स्त्रनिन्दामित्ययाकार्षीत्स्वापवादगदीवधीम् ॥ ६८ ॥ धमास्यं तत्यजे येन राज्यं मदनुकम्पया। पापीऽइं यदसन्तुष्टी दुर्भदस्वासुपाद्रवम् ॥ ६८ ॥ खग्रतिं ये न जानित ये चान्यायं प्रकुर्वते। जीयकी ये च स्रोभेन तेषामिस धुरस्थर: ॥ ७० ॥ राज्यं भवतरोवींजं ये न जानन्त तैऽधमाः। तेभ्योऽप्यइं विशिषे यत्तदसुचन् विदब्धि ॥ ७१ ॥ खमेव पुत्रस्तातस्य यस्तातपयमन्वगः। पुत्रोऽचमपि तस्य स्थां चेत्रवामि भवादृगः॥ ७२॥ विवादपश्चमुसार्यं पयात्तापजलेरिति। तत्पुत्रं सोमयगसं तद्राच्ये स न्यवीविश्रत् ॥ ७३ ॥ तदादिसोमवंग्रीऽभूक्काखाग्रतसमाकुनः। तत्तत्युरुषरद्वानामेकसृत्यत्तिकारणम् ॥ ७४ ॥ ततो बाद्वबलिं नला भरतः सपरिच्छदः। पुरीमयोध्यामगमत्स्वराज्यत्रीसन्तोदराम् ॥ ७५ ॥

षुस्तपं तप्यमानोऽच तपो बाइबलिर्मुनिः। वर्षमेकं व्यतीयाय सङ्ग्राग्जनाकमाभिः ॥ ७६ ॥ ततयामूढलच्चेण खामिना नाभिस्नुना। बाह्मी च सुन्दरी चानुजाते तत्पार्वमीयतु: ॥ ७० ॥ जचतुष महासस्य समखणीयमनस्तव। न युक्तं त्यक्तसङ्गस्य करिस्कन्धाधिरोष्ट्रणम्॥ ७८॥ एवभूतस्य ते इन्त कयं ज्ञानं प्ररोहित। प्रध:स्थितकरीषाम्नेः पादपस्थेव पत्नवः॥ ७८ ॥ भावानैव विचार्य लमुत्तितीर्षुर्भवीदिधम्। इस्तिनोऽस्मादवतर तरण्डादायसादिव ॥ ८० ॥ ततोऽसौ चिन्तयामास कुतस्यो इस्तिसङ्गमः। पादपारोच्चमाक्उवक्षीव वपुषो सम ॥ ८१ ॥ त्यजेनाुद्रां समुद्रोऽपि चलेयुरचला पपि। इमे तुभगविच्छिये भाषेते न सृषा कवित्॥ ८२॥ माः जातमधवाऽस्येष मान एव मतङ्गजः। स एव मे जानफलं बभन्न विनयद्रमम्॥ ८३॥ क्यं कनीयसी भागून्यन्दे धिगिति चिन्तितम् । तपसा ज्यायसां तेषां मिथ्यादुष्कृतमसु मे ॥ ८४ ॥ सुरासुरनमस्यस्य गला भगवतोऽन्तिने । वन्दे कनिष्ठानिप तांस्ति च्छिष्यपरमा खवत्॥ ८५॥ भवनत्पादमुत्पाव्य यावत्तावदसी मुनि:। भवाप केवलचानं द्वारं निर्वाणवैक्रमनः ॥ ८६ ॥

करामलकविषयं कलयन् केवलिया। समीपे खामिनोऽध्यास्त सदः वेवनभास्त्रताम् ॥ ८० ॥ भरतोऽपि मद्यारत्ने यतु ईश्रभिरात्रित:। चतुःषष्टिसइस्रान्तःपुरी नवनिधीष्वरः ॥ ८८ ॥ धमार्थकामान् साम्बान्यसम्पद्दत्तेः फलीपमान् । परस्पराविरोधेन यथाकासमेवत ॥ ८८ ॥ पन्यदा विश्वरन् खामी जगामाष्टापदाचलम्। भरतोऽपि ययौ तत्र खामिपादान्विवन्दिषः ॥ ८० ॥ सरासराचें समवसरणस्यं जगत्पतिम्। स वि: प्रदिचयोक्तत्य नमस्त्रत्येति तुष्ट्वे ॥ ८१ ॥ विखासमिव मूर्त्तिस्यं सहत्तमिव पिण्डितम्। प्रसादमिव नि:श्रेषजगतामिकतः स्थितम् ॥ ८२ ॥ न्नानराधिमिवाध्यचं पुष्यस्येव समुचयम्। सर्वलोकस्य सर्वस्रमिवैकत्र समाद्वतम् ॥ ८३ ॥ वपु: संयमिमवोपकारिमव क्पिणम्। मीलमिव पादचारि चमामिव वपुषातीम् ॥ ८४ ॥ रहस्यमिव योगस्य विश्ववीयमिवैकाम । सिबुरपायमिवावन्धं की शब्दमिव केवलम् ॥ ८५॥ मैतीमिव मूर्त्तिमतीं सदेशं करणामिव। मुदितामिव पिण्डस्थामुपेचामिव कृपिणीम् ॥ ८६ ॥ तपःप्रशमसज्जानयोगमिषामिवाष्ट्रतभ्। साचाहैनियकसिव सिंहिं साधारणीसिव ॥ ८० ॥

प्रथम: प्रकाश: ।

ष्यापकं द्वदयमिव सर्वासां श्रुतसम्पदाम्। नमः खिख्तिस्वधासाहावषडर्यमिवाष्ट्रयक् ॥ ८८ ॥ विश्व धर्मे निर्माणप्रकर्षमिव केवलम्। समस्ततपसां पिष्डीभूतं फलमिवाखिलम् ॥ ८८ ॥ परभागमिवाशेषगुचराश्रेरनम्बरम्। उपम्नमिव निर्विष्नं त्रेवी नि:त्रेयसत्रिय: ॥ ५०० ॥ प्रभावस्थैकधामेव सोचस्य प्रतिमासिव। कुलवेश्मेव विद्यानां फलं सर्वाभिषामिव ॥ १ ॥ पार्यवर्यचित्राचामात्मदर्शमिवामलम्। कूटसं प्रथमिव जगतो दत्तदर्भनम् ॥ २ ॥ दु:खशानोरिव हारं ब्रह्मचर्यमिवी ज्वलम्। पुर्खेरपनतं जीवलोकस्येवैकजीवितम् ॥ ३ ॥ मृत्ययात्रमुखादेतदाक्रष्ट्रमिखनं जगत्। बाइं प्रसारितमिव निर्वाचेन क्रपालुना ॥ ४ ॥ ज्ञानमन्दरसंज्ञसज्जेयाकोधेः समुखितम्। भवरं पौय्वमिव देहभाजामसत्यवे ॥ ५ ॥ विष्वाभयप्रदानेन समाष्वासितविष्टपम्। शरणं त्वां प्रपन्नोऽसि प्रसीद परमेखर ॥ ६ ॥ तत च विजगनायम् वभस्वामिनं ततः। एकायमनसोपासाञ्चले चक्रधरियरम्॥ ७॥ चवाद्री तत्र साधूनां सहस्तेदेशभिवृंतः। दीचावालाइत पूर्वलचे मीचं ययी प्रभुः ॥ ८ ॥

तदा निर्वाषमिष्ठमा 'चक्रे भक्रादिभि: सुरै:। चस्तोकयोक: यक्रीण भरतेयोऽप्यवीध्यत ॥ ८ ॥ चक्रीऽय भरतो रहमयमष्टापदोपरि। सिंहनिषदाप्रासादमष्टापदमिवापरम् ॥ १० ॥ तत च खामिनो मानवर्णसंखानश्रोभितम्। रब्रोपलमयं विम्बं खापयामास चन्नभृत्॥ ११॥ स्वामिशिष्टवयोविंगभावितीर्थकतामपि। यथावसानसंस्थानवर्षे विम्बान्यस्मयत्॥ १२ ॥ भ्वातृषां नवनवतेरपि तच सञ्चातानाम् । रचयामास रक्षाम्मस्तूपाननुपमानृप:॥ १३॥ पुनरेत्य निजां राजधानीं राजियरोमिणः। यद्यावद्राच्यमभिषयजारचणदीचितः॥ १४॥ स कर्मभर्भीगफलै: प्रेथिमाची निरन्तरम्। बुभुजे विविधानभोगान् साचादिव दिवस्रति: ॥ १५ ॥ नेपष्यकर्भनिभातुमपरेद्युरगादसी। मध्ये शुद्धान्तनारीणां ताराणामिव चन्द्रमाः ॥ १६॥ तत सर्वाङ्गविन्यस्तरताभरणविम्बित:। स्त्रीजनैर्युगपत्रेम्षा परिरम्ध द्वाभवत् ॥ १०॥

⁽१) ग च प्रभोचके सुरासरैः।

⁽र) ख च ततो हसी विद्धे।

पम्यवसी समादगेंऽपम्बत्सस्ताक् लीयकाम्। चङ्गलिं गलितच्योतस्रां दिवा ग्राधिकसामिव ॥ १८॥ ततः प्रोद्धिवनिर्वेदाग्रत्यक्रोजिभतभूषणम्। स्वमपधाहतत्रीकं शीर्स्पर्णमिव द्रमम्॥ १८॥ य चिन्तयच धिगही वपुषी भूषणादिभि:। त्रीराष्ट्रार्थेव कुष्यस्य पुस्तादीरिव कमीभि: ॥ २०॥ मनः क्रिनस्य विष्टाचैर्मलैः स्रोतोभवैर्वेष्टिः । चिन्यमानं किमप्यस्य गरीरस्य न गीभनम् ॥ २१ ॥ ददं ग्ररीरं कर्पूरकस्तूरीप्रस्तीन्यपि। दूषयत्येव पायोदपयांस्यूषरभूरिव ॥ २२ ॥ विरच्य विषयेभ्यो यैस्तेपे मोचफलं तपः। तैरेव फलमेतस्य जग्रहे तस्ववेदिभि: ॥ २३ ॥ दति चिन्तयतस्तस्य ग्रुक्षध्यानस्पेयुषः। उत्पेदे नेवलज्ञानसङ्घो योगस्य जुन्भितम् ॥ २४ ॥ रजोद्दरणसुख्यानि सुनिचिक्नानि तत्त्रयात्। विनीत उपनीयासी नमसन्ने दिवस्पति: ॥ २५ ॥ तद्राच्येऽकत तत्पुत्रमादित्ययश्च तदा । यदाचादित्यवंशोऽयमचाप्यस्ति महोभुजाम् ॥५२६॥१०॥ स्यात्रातं युक्तं भरतस्य पूर्वजन्मार्जितयोगसमृदिवलचिपता-श्रुभक्तभाष: कर्मनेशचपणाय योगप्रभाववर्णनम् । यसु जन्मान्तरेषु अलअरत्रवयोऽत एवाचिपितकमी मानुषलमात्रमध्यपाप्तवान्। स कथमनन्तकालपितश्रभाश्रभकर्मनिर्मूलनमनुभवेत्।

तवाइ---

पूर्वमप्राप्तधर्मापि परमानन्दनन्दिता।
योगप्रभावतः प्राप मर्गदेवा परं पदम् ॥ ११ ॥
मर्गदेवा हि खामिनी षा संसारं व्रसलमानमपि नातुभूतवती
किं पुनर्मातुवलं तथापि योगबलसम्हेन श्रुक्तध्यानामिना चिरसिह्नितानि कर्मोस्थनानि भक्तसाल्वृतवती।

यदाइ---

'जन्न एगा मक्देवा चन्नंतं यावरा सिन्ना। मक्देवाचरितं चीक्तप्रायम्॥ ११॥

नमु जन्मान्तरेऽपि प्रक्ततक्रूरकर्मणां मबदेवादीमां योगवलेन युक्तः कमान्यः ये त्वत्यन्तक्रूरकर्माणस्तेषु योगः

क्र गढतामप्यासादयेत ।

द्याइ—

ब्रह्मस्त्रीभूणगोघातपातकान्नरकातियेः ।
टिप्रहारिप्रस्तियोगो हस्तावलम्बनम् ॥ १२ ॥
ब्रह्मणो ब्राह्मणस्य स्त्रिया वनिताया स्रूणस्य गर्भस्य गर्भिस्याव गोर्धनोस्तेषां घातः स एव पातकं तस्मात् । यद्यपि समदर्भिनां ब्राह्मणाबाह्मणयोः स्त्रीपुरुषयोर्भूणास्त्रूणयोगवागवोर्घाते भविग्रे-

⁽१) यथा एका मर्देवा खत्यनं स्थावरा सिदा।

यदाइ ---

'सव्यो न हिंसियब्यो जह महिपाली तहा उदयपाली। न य सभयदाचवहचा जचोवमापेच होयब्यं॥१॥

तथापि लोकप्रसिद्धानुरोधेन ब्रह्मोत्याद्युक्तम्। ये हि लौकिकाः सर्वस्या हिंसायाः पापफलं न मन्यन्ते। तिऽपि ब्रह्मादिघातकस्य महापापीयसस्तां मन्यन्त एवेति। नरकातिथेई दप्रहारिप्रस्तियोगो हस्तावलम्बनम्। तेनैव भवेन मोचगमनात्। प्रस्तिग्रहणादन्ये-ऽपि पापकारिणो विदितजिनवचनास्तत एव प्राप्तयोगसम्पदो नरकप्राप्तियोग्यानि कर्माणि निर्मूत्य परमसम्पदमासादितवन्तो हृष्टस्याः।

यदा ह---

'क्रावि सहावेणं विसयविसवसाणुगावि होजणं।
भावियजिणवयणमणा तेलुकसुहावहा होति ॥ १॥ इति।
तथाहि—

कस्मिं स्वित्रगरे कसिदासी द्विजाति बह्न टः । प्रजासु कर्त्तुमन्यायान् प्रावर्त्तत स पापधीः ॥ १ ॥

⁽१) वर्षे न इंसितव्यो यथा महिपाबसाथा उदयपाबः। न च समयदानम्मतिना सनोपनानेन भवितव्यम् ॥ १ ॥

⁽१) क्रूरा ऋषि सभावेन विषयविषयशासुना ऋषि भूता। भावितिस्मित्रसम्बन्धः वैसोक्यस्सारका भवन्ति ॥ १ ॥

भारचपुरुषेरेव ततो निर्वासितः पुरात्। व्याधहरतिमद ग्रोनशीरपत्तीं जगाम च ॥ २ ॥ नृगंसचरितेस्तेस्तेरात्मनसुख रत्यसी। चीरसेनाधिपतिना प्रचलेनान्वसन्यत ॥ ३ ॥ चौरसेनापती तस्मिनवसानस्पेयुषि । तत्प्रव इति तत्स्थाने स बभूव महासुन: ॥ ४ ॥ निष्कृपं प्रश्वरत्येष सर्वेषां प्राणिनां यतः। तती दृढप्रशारीति नामा निजगदे जनैः ॥ ५ ॥ प्रन्धेद्यविष्वकुष्टाक्षुग्टाक्सटपेटकै:। स कुशस्य बनामानं प्रामं लुग्ट्यितं ययौ ॥ ६ ॥ ब्राह्मणो देवशर्मेति तत्र दारिद्राविद्रतः। चवकेशीफलमिव चौरान्नं याचितोऽभेकैः ॥ ७ ॥ पर्यवा सकले यामे कापि कापि स तन्द्रलान्। कापि कापि पयोऽभ्यर्थ परमान्मपीपचत्॥ ८॥ नद्यां सातुं ययावेष यावत्तावत् तदीकसि । ते क्रूरतस्कराः पेतुर्देवं दुवेलघातकम् ॥ ८॥ तेषामिकतमो दख्रपख्तस्य पायसम्। न्नधात्रः प्रेत इव तदादाय पलायितः ॥ १०॥ पाच्छिद्यमाने तिसांसु पायसे जीवितव्यवत्। क्रन्दन्ति डिश्वरूपाणि गला पितरमूचिरे ॥ ११ ॥ व्यात्ताननानामस्माकं दस्यृहन्देन पायसम्। जक्रे प्रसारितदयामनिसेनेव कळासम् ॥ १२ ॥

तदाक्ष्य वची विप्रः चिप्रं दीप्रः क्रद्रिनना । यमदूत द्वादाय परिघं पर्यधावत ॥ १३ ॥ सरोषराचसाविशासमुत्पादितदोर्बन:। इन्तुं प्रवहते दस्यून् परिचेण पश्निव ॥ १४ ॥ तेनावकरवसाचा त्चिष्यमाणानवेचा तान्। विवस्यतिसरक्क्वेन् दभावे तस्तरेखरः ॥ १५ ॥ तस्यापि भावतो दैवाइतिविचविभागिनी । निरोबुं दुर्गतिमिव मार्गे गौरन्तरेऽभवत् ॥ १६ ॥ करालकरवालेकप्रशारेण वराकिकाम्। जघान तृजघन्यस्तां चच्छास दव निर्घृष: ॥ १० ॥ तस्याभ्यापततो रोरिंडजातीः स ग्रिरो भुवि। पनसद्रोः फलमिवापातयम्खद्मयष्टिना ॥ १८॥ भाः पाप निष्कृप क्षतं किमेतदिति वादिनी। ः बाला मासवती तं चाभ्यगात् द्विजकुटुम्बिनी ॥ १८ ॥ तस्या हक इव च्छाग्या गुर्विच्याः सोऽतिदार्णः। : क्षणाण्डदारसुदरं दार्याखा हिधाकारीत्॥ २०॥ ततो जरायुमध्यस्यं तस्या गर्भे दिधासतम्। स स्फ़रर निरैचिष्ट लताया इव पक्षवम् ॥ २१ ॥ तथा सम्पद्ममानस्य तस्य विश्वलचेतसः। क्रपागतक्रपस्यापि जन्ने वस्क्रमिवास्मनः॥ २२॥ ततो इ। तात तातिति इ। मातमीतरित्यपि। विजयनाः समाजग्मुस्तकालं दिजवालकाः ॥ २३ ॥

नमान भुग्नानितचामान् 'खामानितमलेन च। हद्दा हुद्रप्रशारी तान् सानुतापमचिन्तयत् ॥ २४ ॥ इद्दा प्रता निर्वृषेन दरिद्री दम्पती मया। षमी बाला इता स्तीयभोषे जीवन्ति किं भवाः ॥ २५ ॥ क्रृरेष कर्मणानेन नेषमानस्य दुर्गतिम्। षघभीतस्य मे कः स्वादुपायः ग्ररचं च कः ॥ २६ ॥ दित सिच्चत्रयद्वेव वैराग्यावेगभागसी। एनोगदागदङ्गारान्साधूनुद्यानऐचत ॥ २०॥ नत्वीवाचेत्वन्नं पामा भाषमाषीऽपि पामने। पिष्णलः स्टब्समानोऽपि पिष्णलीकुर्ते परम् ॥ २८ ॥ येषामिकतरमपि नरकायैव तान्य इम्। ब्रह्मस्त्रीभूषगीचातपातकान्यक्रपो व्यधात्॥ २८॥ मामीदृशमपि चातुं साधवो यूयमर्घय। भेघानां वर्षतां स्थानसस्थानं वा न किश्वन ॥ ३०॥ षय ते साधवस्तसे यतिधमें सुपादिशन्। सीऽच च्छव्रमिवीचातुः पापभीवस्तमाददे ॥ ३१ ॥ न भोच्ये तत यनाजि सारिचाम्यस्य पापनः। करिये सर्वया चान्तिं सीऽयहीदित्यभियही ॥ ३२ ॥ पर्वावस्कन्दिते तस्मिनेव ग्रामे कुगस्वले। कर्मचयं चिकीर्षुः स विजन्तार महामनाः ॥ ३३॥

⁽१) घ क क दिग्धानतिमधेन च।

स एवायं क्रतच्छ्या पापः पापीयसामशी। इत्यतच्चित सोकेन स महाका दिवानिशम ॥ ३४ ॥ गीभ्रणदिजघात्येष इति सीवेनं जल्पता। विशन गरहेषु भिचार्यं खेव लोष्टेरक्षवात ॥ ३५ ॥ चार्यमाणः स तत्पापं प्रतिवासरमध्यसौ । यान्तस्वान्तीन भुडं को स्म विवास स्वस्य दुष्करम् ॥ २६॥ कचित्रातः कचित्रधं दिने सायमपि कचित्। स्रार्थमाणः स तत्पापं कुत्राप्यक्रि न भुत्रावान् ॥ ३०॥ सोष्ट्रभिर्यष्टिभिः पांश्रव्हिभिर्मुष्टिभिर्जनाः । यळाचु: सोऽधिसेडे तत्सम्यक् चैवसभावयत्॥ ३८ ॥ षालन् यादत्रतं वन्मै ताद्यं फलमाप्रहि। यादचम्प्यते बीजं फलं तादचमाप्यते ॥ ३८ ॥ यदमी निरन्त्रोयमाक्रीयात्रायि तन्वते। ष्ययहर्मेव सिहा तकामेयं कार्यानिकारा ॥ ४० ॥ मयाक्रीशाः प्रमोदाय यथैषां मे तथैव हि। यलीत्या सहमानस्य कर्मेच्यविधायिनः ॥ ४१ ॥ यनां भर्क्षयतामेषां सुखसुत्पचतेऽच तत्। चत्पवातां भवे इन्त दुर्बभ: सुखसङ्गम: ॥ ४२ ॥ पमी मदीयं दुष्कर्भेग्रन्थं पर्वमावितै:। चारैरिव चिकित्सको निताकां सुद्वहो सम ॥ ४३॥ कुर्ळम् ताडनं इम्त ममेते यदिदं किल। खर्षस्येवाम्निसन्तापी मलिनलमपोष्टति ॥ ४४ ॥

१३

कर्षन् दुर्गतिगुप्तेमीं खं प्रचिपति तव यः। . कर्य क्राप्यास्य इंतसी प्रशारानिप क्वरीते ॥ ४५ ॥ मत्यापानि व्यपोद्यन्ति निजपुद्मव्ययेन ये। कथ्यारमिवैतेभ्यो ऽपरः परमबान्धवः ॥ ४६ ॥ वधबन्धादि इषीय यसे संसारमोचनमः। । तदेवानन्तसंसारहतुरेषां दुनोति माम् ॥ ४०॥ केचित्परेषां तोषाय त्यजस्ययौन्वपृंथपि। एषां प्रीतिद्माक्रीयञ्चनगदि कियन सम ॥ ४८ ॥ तिजितोऽष्टं इतो नाऽस्मि इतो वा नास्मि सारितः। सारितो वा न में धर्मी प्रचती बान्धवैरिव ॥ ४८ ॥ षाक्रीशवागधिचेयो बन्धनं इननं स्रति:। सद्यं त्रेयोऽर्थिना सर्वं प्रेयो हि बहुविन्नकम् ॥ ५०॥ एवं भावयता तेन गईता खं च दुष्कृतम्। निर्देग्धः सर्वतः क्याराशिः कच इवाग्निना ॥ ५१॥ चन्नानं नेवल्जानमथ सेभे 'सुदुर्लभम्। षयोगिकेवलिगुणस्थानस्थी मोचमाप च ॥ ५२॥ योगप्रभावेन इदप्रशारी यथैष सुन्ना नरकातिथिलम् ।

> पदं प्रपेदे परमं तद्यान्यो-ऽप्यसंग्रयान: प्रयतित योगे ॥ ५३ ॥ १२ ॥

⁽१) खच सदुर्नभम्।

पुनब्दाइरलान्तरेल योगत्रदामेव वर्षयति i

तत्कालक्षतदुष्कर्मकर्मठस्य दुरात्मनः। गोप्त्रे चिलातीपुत्रस्य योगाय स्पृष्ट्येत्र कः॥१३॥

तत्वासं तत्वासं क्षतं यहुष्वसं स्त्रीवधलच्च तेन कसंठः कसंगूर-स्तस्य दुरात्मन इति पापकरणकालापेचं चिलातीपुत्राभिधानस्य गोप्ते दुर्गतिपातरचकाय योगाय को न स्पृष्टयेत् सर्व एव स्पृष्टये-दित्यर्थः।

तयाडि-

चितिप्रतिष्ठे नगरे यद्भदेवोऽभवद्दिनः ।

निनन्द पण्डितस्यन्यः स सदा जिन्यासनम् ॥ १ ॥

यसिष्णुय तां निन्दां जिगीषुः कोऽपि चेन्नकः ।

गुक्णा वार्यमाणीऽपि तं वादार्यमवीवदत् ॥ २ ॥

दृष्टभी च प्रतिज्ञाभूहादाधिष्ठितयोस्तयोः ।

येन यो जेच्यते तस्य शिच्यतं स किर्चिति ॥ ३ ॥

पानोतो निग्रहस्यानं बुद्धिकीभल्यासिना ।

विवदन्यादिना तेन यद्भदेवः पराजितः ॥ ४ ॥

चेन्नको जितकाभी तु यद्भदेविद्यज्यमा ।

तदा पूर्वप्रतिज्ञातां परिव्रच्यामजिग्रहत् ॥ ५ ॥

ततः शासनदेव्यैवं यद्भदेवो व्यबोध्यत ।

चारितं प्रतिपत्रोऽसि ज्ञानश्रदानवान्भव ॥ ६ ॥

व्रतं ततः प्रभृत्येष यद्यावत्पास्यविष । निनिन्द वस्ताङ्गमलं प्राक्संस्कारी हि दुस्यनः॥ ०॥ षणाग्यन् जातयोऽप्यस्य संसर्गेष महामनः। प्राह्मविष्याभ्यसम्पर्केषाहिमांशीरिवांशवः ॥ ८॥ पख पाणिग्टहोती तु नितान्तमनुरागिषी। एउकाचकार नो रागं नीसीरक्तेव **शाटिका ॥ ८ ॥** वासी मेऽस्विति सा तसी पारणे कार्यं ददी। सत्यं रक्ता विरक्ताच मारयन्येव योषितः ॥ १०॥ चीयमाणः कणापचिषेव कामीणकमीणा। स स्नीन्द्र्ययो स्वर्गं मण्डलं तरपरिव ॥ ११ ॥ तस्यावसानात् सम्नातनिर्वेदा सापि गेम्निनी । प्रव्रच्यासयहीदेकं मानुष्यकतरी: फलम् ॥ १२ ॥ भनालोचीव सा पापं पतिव्यसनसभावम् । कालं कला दिवं प्राप दुष्पापं तपसा हि किम् ॥ १३ ॥ यन्नदेवस्य जीवोऽय चुला राजग्रहे पुरे। धनसार्धपतेश्वेद्याश्विलात्यास्त्रनयोऽभवत् ॥ १४ ॥ चिनात्याः पुत्र इत्येष चिनातीपुत्रसंज्ञया । पाइयते सा लोकेन नाम नान्यत्रकाल्पतम् ॥ १५ ॥ यज्ञदेवप्रियाजीवसुरत्वाऽनुसुतपञ्चकम्। भद्राया धनभार्यायाः सुसुमिति सुताऽभवत् ॥ १६ ॥ धनो नियोजयामास चिनातीतनयं च तम्। ससमायाः खदुहितः बालगाह्यकार्याणः ॥ १०॥

लोनेष्वागांसि चक्रीश्मी श्रेष्ठाभैषीच राजतः। स्वामी भृत्यापराधेन यतः स्याइन्हभाजनम् ॥ १८॥ मन्त्रवित्तं धनत्रेष्ठी सदीपद्रवकारिणम्। ग्टहाविवीसयामास दासेरं दन्दशूकवत् ॥ १८ ॥ सोऽय सिंइगुडां चीरपत्नीं वर्त्नी महागसाम्। ययौ प्रयागाः प्रीति हि तुलब्यसन्भीलयोः ॥ २०॥ स त्रगंसी त्रगंसेन दस्यहन्देन सङ्गतः। वायुनेवान्निरभवहाक्षोऽप्यतिदाक्षः॥ २१॥ ततः सिंइगुडाधीये चीरसेनापती सते। चौरवेनापतिः सोऽभूत्तदर्थमिव निर्मितः ॥ २२ ॥ यीवनं ससमाप्याप्ता कपादिग्रवाशिनी। कलाकलापपूर्णाभूत् खेचरीव महीचरी ॥ २३ ॥ चैलातेयोऽन्यदोचे खानस्ति राजग्रहे पुरे। त्रेष्ठी धनी उनन्तधनी दृष्टिता चास्य सुसुमा ॥ २४ ॥ तस्तरास्तव गच्छामी धनं वः ससमा त मे। दति व्यवस्थामास्याय सीऽगादनग्टहं निधि ॥ २५ ॥ प्रयोज्य खापनीं विद्यां कीर्रायता खमागतम्। स धनं याच्यामास सुसुमां खयमयहीत ॥ २६ ॥ सुप्ताशिषपरीवारः सुनुभिः पश्वभिः समम्। भपस्त्य धनस्तस्यी नयो नयवतां हासी ॥ २० ॥ जीवपाइं पहीला च इदयेन स सुसुमाम । चैनातेयः पनायिष्ट सनोप्नैदेस्युभिः सह ॥ २८ ॥

षाइयारचपुरुषान् धनत्रेष्ठीत्यभाषत । ्र चौरापञ्चतित्तं 'च प्रत्यानयत सुसुमाम् ॥ २८ ॥ ततो धनः सहारचैः प्रत्नेवायुधपाणिभिः। पुरोगखमन:सर्वयेव खरितमन्वगात्॥ ३०॥ जनंः खलं सता हजानग्यदप्यखिलं पिय। ः पीतीनात्ती हैमिनव सीऽपञ्चल्समामयम् ॥ ३१ ॥ इत: पौतमिती भुक्तमित: खितमिती गतम्। एवं वदक्षिः पदिकैः स दस्यू विकवा ययौ ॥ १२ ॥ इत इतेति ग्रज्ञीत ग्रज्जीतेति च भाषिषः। स्रा अवस्य वास्त्र स्वाप्त वास्त्र स्वाप्त स्व स्वाप्त स्वाप्त दिशो दिशि प्रषेशस्ते विसं त्यक्कान्यतस्कराः। ससमां स त् नासुचचौरो व्याघ्रो सगीमिव ॥ ३४ ॥ भारचपुरुवास्ते तु तदिशं प्राप्य पुष्कलम्। ः स्थावर्त्तन्त कतार्थी हि सर्वः स्थादन्ययामितः ॥ ३५ ॥ उद्दर्ग सुसुमामंसे सतामिव मतङ्काः। . प्रविवेश मञ्चारक्यं चिलातीतनयस्ततः ॥ २६ ॥ स्नुभिः पश्वभिः पश्चाननैरिव धनीऽन्वगात्। कर्ष्ट्रं पुत्रीं मुखाइस्वीराष्ट्रीरिन्दुकलामिव ॥ ३०॥ धने ससविधीभूते माभवलस्य सा मम। सुसुमिति धिया तस्याः शिरःकमलमच्छिनत् ॥ ३८॥

⁽१) खगवः।

पाक्रष्टकरवानोऽसी इन्त्विन्यस्तमस्तकः। तदा यमपुरीद्वारचेत्रपाल द्वावभी ॥ ३८ ॥ सुसुमायाः कवन्धस्यान्तिके स्थिता द्दन् धनः। वारीव बाष्पपूरेण नयनाष्ट्रालिभिर्दरी ॥ ४० ॥ तस्याः कवस्यमुलुज्य व्याहत्तः सस्तो धनः। गिक्यतः गोक्यस्येन महाटव्यामयापतत् ॥ ४१ ॥ सलाटन्तपतपनतेजस्तापभयादिव। विष्वक् सङ्चितच्छायो मध्याक्रय ततीऽभवत् ॥ ४२ ॥ गोकत्रमञ्जूषात्रणामध्याक्रातपवक्रिभि:। धन: सुतास पचान्निसाधका रव तेपिरे ॥ ४३ ॥ न जलं न फलं नान्यइद्दयजीवनीषधम्। सत्यवे प्रत्युतापम्यंस्ते 'हिंसम्बापदान् पवि ॥ ४४ ॥ पालनस्तनयानां च तां पश्चन्विवमां दशाम्। धनत्रेष्ठी पष्यतुच्छे गच्छत्रेवमचिन्तयत्॥ ४५॥ मम सर्वस्वनागीऽभूत्पूत्री प्राचित्रया सता। सत्यकोटिं वयं प्राप्ता धिगहो दैवज्भितम् ॥ ४६ ॥ न यत्पुरुषकारिण साध्यं धीसम्पदा न च। तदेवं दैवमेवेष्ठ बलिभ्यो बलवत्तरम्॥ ४७॥ प्रसाद्यते न दानेन विनयेन न ग्रह्मते। सेवया वर्म्यते नैव कीयं दु:साध्यता विधे: ॥ ४८ ॥

⁽१) चःग इंस्यापरास्थपि।

विबुधैबीध्यते नैव बलवद्भिन कथ्यते। न साध्यते तपस्यक्षिः प्रतिमक्षीऽस्त को विधेः ॥ ४८ ॥ षष्ट्री देवं मित्रमिव कदाचिद्रुकम्पते। कदाचित्परिवयीव नि:गद्धं प्रणिइन्ति च ॥ ५०॥ विधि: पितेव सर्वेत्र कटाचित्परिरचति। कदाचित्पीडयत्येव दायाद इव 'दुईमः ॥ ५१ ॥ विधिनयति मार्गेषामार्गस्यमपि कर्षिचित्। कदाचियार्गगमपि विमार्गेष प्रवर्त्तयेत्॥ ५२॥ चानयेदपि दूरसं करसमपि नागयेत्। मायेन्द्रजालतुष्पस्य विचित्रा गतयो विधे: ॥ ५३ ॥ षनुकू से विधी पुंसां विषमप्यस्तायते। विपरीते पुनस्तचा स्तमेव विषायते ॥ ५४ ॥ स एवं चिन्तयदेव प्राप राजग्रहं पुरम्। संगोक: सुसुमापुत्रा विद्धे चौहुँदेश्विम् ॥ ५५ ॥ वैराग्याइतमादाय त्रीवीरस्वामिनीऽन्तिके। दुस्तपं स तपस्तिपे पूर्णायुच दिवं ययी ॥ ५६ ॥ चैलातियोऽप्यनुरागाल्सुमाया सुदुर्म्दुः। मुखं पश्चनविज्ञातत्रमी याग्यां दिशं ययौ ॥ ५०॥ सर्वसन्तापहरणं कायाव्यमिवाध्वनि। साधमेकं ददर्शासी कायोक्षर्गचुषं पुर: ॥ ५८ ॥

⁽१) स च दुर्भदः।

प्रथम: प्रकाश:।

स खेन कामेणा तेन कि चिद्दिस्नमानसः। तमुवाच समाख्याहि धर्म संचिपतो मम ॥ ५८ ॥ मन्यया कदलीलावं लविष्यामि गिरस्तव। भनेनैव क्रपाणेन सुसुमाया इव चणात्॥ ६०॥ स जानामानिरज्ञामीदीधिबीजमिहाहितम्। भवर्यं यास्यति स्कातिं पत्यले शालिबीजवत् ॥ ६१ ॥ कार्यः सम्यगुपशमो विवेकः संवरोऽपि च। इत्युक्ता चारणमुनिः स पचीव खमुद्ययौ ॥ ६२ ॥ पदानि मञ्चवत्तानि परावर्त्तयतस्ततः। जन्ने चिलातीप्रतस्य तदर्थीनेख ईद्दशः॥ ६३॥ क्रोधादीनां कषायाणां कुर्यादुपग्रमं सुधीः। इहा तैरहमाकान्तयन्दनः पद्मौरिव ॥ ६४ ॥ चिकित्साम्यदा तदिमामाहारोगानिवासनः। चमासदुलऋजुतासन्तोषपरमीषधैः॥ ६५॥ धनधान्य हिरण्या दिसर्वस्रत्यागलचणम्। विवेकमेकं कुर्वीत बीजं जानमहातरी: ॥ ६६ ॥ तदिदं ससुमाशीर्षं क्षपाणं च करस्थितम । सर्वस्वभूतं सुचामि कीतनं पापसम्पदः॥ ६०॥ संवरवाचमनसां विषयेभ्यो निवर्त्तनम्। स मया प्रतिपन्नीऽद्य संयमश्रीशिरोमणिः॥ ६८ ॥ पदार्थं भावयन्नेवं संत्त्रसक्तलेन्द्रियः। समाधिमधिगम्याभूमनोमात्रैकचेतनः॥ ६८॥

8 9

ततोऽस्य विस्नगन्धास्यक्छटाकवित्तं वपुः । कोटिकाभिः मतिच्छिद्रं चक्रे दाक् ष्ठशैरिव ॥ ०० ॥ पिपीलिकोपसर्गेऽपि स स्तम्भ दव निश्वलः । सार्वाद्वोरात्रयुग्मेन जगाम विदमालयम् ॥ ०१ ॥

यदाह--

'लो तिहिं पएहिं धमां समिभाषी संजमं समाक्टो।

उवसमिवियसंवरिचलाइपुत्तं नमसामि॥ ७२॥

'षहिसिया पाएहिं सोणियगंधेण जस्म कीडीषो।

खायंति उत्तमंगं तं दुक्करकारयं वंदे॥ ७३॥

'धोरो चिलाइपुत्तो स्यङ्गलीयाहिं चालणिव्य कथी।

जो तहिव खज्जमाणी पिडवबी उत्तमं घरं॥ ७४॥

'षद्वाइस्केहिं राइंदिएहिं पत्तं चिलाइपुत्तेण।

देविदामरभवणं षच्हरगणसङ्गुलं रम्मम्॥ ७५॥

चिलातीपुत्रीऽसाविधनरकमास्तितगितः।

⁽१) यिद्धिभिः परेः धर्भे सम्भिगतः संयमं समारूढः। छम्यमविवेकसंवर्णवत्नातीपुत्रं नमस्यामि॥

⁽२) सिख्ताः पादैः घोषितगन्त्रेन यस हीनाक्र्यः। स्वादन्ति उत्तमाक्रंतं दुष्करकारकं वन्दे॥

⁽२) धीरिवचातीपुतः पिपीविकाभियाचनीव कतः। यसचापि खाद्यमानः प्रतिपद्म उत्तममर्थम् ॥

⁽४) सार्वेद्विभिः रातिदिनैः प्राप्तं चिचातीपुत्रेख । देवेन्द्रामरभवनं चासरोगखसङ्कुनं रस्यम् ॥

समालम्बे।वं यित्रदिवसदनातिष्यमगमत्
स एवायं योगः सकलसुखमूलं विजयते ॥ ०६ ॥ १२ ॥
पुनरेव योगमेव स्तीति—

तस्याजननिरेवास्तु न्ययोमीघजन्मनः।
अविद्यवार्योगे योग दृत्यचर्यालाक्या॥ १४॥

न जननमजनिः "नजोऽनिः शापे" ॥ ५ । ३ । १२० ॥ इत्यनिः । भल् भूयात् । ना चासी पश्च नृपश्चस्य नृपशेः । पश्चमयपुरुषस्य मोघजन्मन इति निष्फलजननस्य यः । किं योऽविषकर्षः
कया भन्नरश्चलकया । भन्नरास्थेव श्रलाका कर्णवेधजननी
भन्नरश्चलका । केनोक्केलेन यान्यचराणि भत्यव भाष्ठ । योग
इति योग इत्यचरलच्चश्रलाकया योऽविषकर्षः लोषादिमयश्वाकाविषकणीऽपि । तस्य नृपशोर्वरमजननिर्युक्ता न पुनविष्ठस्वनाप्रायं जननमिति ॥ १४ ॥

पुनरिष पूर्वाहेन योगं सुला उत्तराहेन तत्स्वरूपमाह— चतुर्वगेऽग्रणीर्मीचो योगसस्य च कारणम्। ज्ञानश्रहानचारित्ररूपं रक्षत्रयं च सः॥ १५॥

चतुर्वगीऽर्धकामधर्ममोचनचणः तस्मिवयणीः प्रधानं मोचः।
पर्यो हि पर्जनरचणनागव्ययहेतुकदुःखानुषद्गदृषितव्यात्र चतुवेगेंऽयणीभेवति। कामसु सुखानुषद्गलेशाद्यद्यप्यर्थोदुलृष्यते
तथापि विरसावसानवात् दुर्गतिसाधनवाच नायणीः। धर्मसु

ऐहिकामुश्विकसुखसाधनत्वेन घर्षकामाभ्यां यद्यप्युक्षृष्यते तथापि कनकिनगडरूपपुष्यकर्भवस्थनिवस्थनत्वाद्भवस्थमणहेत्रिति नाग्रणीः । मोचलु पुष्यपापचयलचणो न क्रेगवच्चलो न वा
विषयम्पृताद्मवदापातरमणीयः परिणामदःखदायी नवा ऐहिकामुश्चिकफलाग्रंसादोषदूषित इति भवति परमानन्दमययतुर्भगंऽग्रणीः यः । तस्य च कारणं साधकतमं करणं योगः । तस्य
किं रूपमित्याद् । रक्षत्रयं मरकतादिव्यवच्छेदेनाद् । ज्ञानयद्मानचारिकरूपमिति ॥ १५॥

रव्ववये प्रथमं ज्ञानसक्पमाच —

यथावस्थिततत्त्वानां संचिपादिस्तरेण वा। योऽवबोधस्तमवाद्यः सम्यग्ज्ञानं मनीषिणः॥ १६॥

ययावस्थितानि नयप्रमाणप्रतिष्ठितस्वरूपाणि यानि तत्तानि जीवाजीवात्रवसंवरनिजेराबन्धमोचलचणानि तेषां योऽवबोध-स्तासम्यग्ज्ञानं स चावबोधः चयोपग्रमविशेषात्मस्यचिसंचिपेण कर्मचयाच कस्यचिद्वस्तरेण।

तथाहि-

जीवाजीवावात्रवस्र संवरो निर्जरा तथा। बन्धो मोचस्रेति सप्त तत्त्वान्धाहर्मनीषिणः॥१॥ तत्र जीवा हिधा ज्ञेया मुक्तसंसारिभेदतः। स्रनादिनिधनाः सर्वे ज्ञानदर्शनलच्चणाः॥२॥

मुक्ता एकस्वभावाः स्युजन्मादिक्षेणवर्जिताः। श्रनन्तदर्भनज्ञानवीर्यानन्दमयास ते॥ ३॥ संसारिणो हिधा जीवा: स्थावरचसभेटत:। हितीयेऽपि हिधा पर्याप्तापर्याप्तविश्वेषतः ॥ ४ ॥ पर्याप्तयस्त षडिमाः पर्याप्तलनिबन्धनम् । भाहारी वपुरचाणि प्राणा भाषा मनीऽपि च ॥ ५ ॥ स्युरेकाचविकलाचपञ्चाचाणां ग्ररीरिणाम्। चतस्तः पञ्च षड्वापि पर्याप्तयो यथाक्रमम् ॥ ६ ॥ एकाचाः स्थावरा भूम्यपतेजीवायुमहीकृष्टः। तेषां तु पूर्वे चलारः स्युः सूक्ता बादरा भिष ॥ ७॥ प्रत्येकाः साधारणाच हिप्रकारा महीकृहः। तत्र पूर्वे बादरा: स्युकत्तरे सुत्त्वबादरा: ॥ ८ ॥ वसा दिविचतुषाचेन्द्रियत्वेन दत्त्विधाः। तत पश्चेन्द्रिया हेथा संज्ञिनोऽसंज्ञिनोऽपि च॥ ८॥ शिचोपदेशालापान्ये जानते तेऽत्र संज्ञिन:। संप्रहत्तमनःप्राणास्तेभ्योऽन्ये स्य्रसंज्ञिनः॥ १०॥ सर्धनं रसनं घाणं चत्तुः योत्रिमितीन्द्रियम्। तस्य सार्गी रसी गन्धी रूपं प्रव्दय गीचर: ॥ ११ ॥ होन्द्रियाः क्रमयः ग्रङ्गा गण्डूपदजनीकसः। कपदीः श्रुतिकाद्याय विविधाक्ततयो मताः ॥ १२॥ यूकामलुणमलोटलिचाद्यास्त्रीन्द्रिया मताः। पतङ्गमचिकाभङ्गदंशाद्यायतुरिन्द्रियाः॥ १३॥

तिर्यग्योनिभवाः श्रेषा जलस्यलखचारिषः। नारका 'मानवा देवाः सर्वे पश्चेन्द्रिया मताः ॥ १४ ॥ मनीभाषाकायबलतयमिन्द्रियपञ्चकम्। षायुरुक्कासनि:म्बासमिति प्राणा दय सृता:॥ १५॥ सर्वजीवेषु देशायुरुक्तासा दुन्द्रियाणि च। 🔞 विकलासंज्ञिनां भाषा पूर्णानां संज्ञिनां मनः ॥ १६ ॥ चपपादभवा 'देवा नारका गर्भजा: पुन: । जरायुपोताण्डभवाः श्रेषाः सम्मूर्च्छनोद्भवाः ॥ १०॥ सम्मृ चिर्वेनो नारकास जीवाः पापा नपुंसकाः। । देवासु स्त्रीपुंवेदाः स्युर्वेदत्रयज्ञुषः परे ॥ १८ ॥ सर्वे जीवा व्यवहार्यव्यवहारितया दिधा। सुद्धानिगोदा एवान्या स्तिभ्यो ब्यवहारिष: ॥ १८ ॥ सचित्तः संवृत्तः गीतस्तद्वो मित्रितोऽपि वा। ्विभेदैराक्तरैभिन्नो नवधा योनिरङ्गिनाम् ॥ २०॥ प्रत्येकं सप्तलचाणि प्रव्यीवार्यम्निवायुषु । प्रत्येकानन्तकायेषु क्रमाइय चतुईय ॥ २१ ॥ षट् पुनविकलाचेषु मनुष्येषु चतुर्देश। स्य्वतस्रवतस्य खभ्नतियेन्सुरेषु तु ॥ २२ ॥

⁽१) व क मतुजाः।

⁽३) ख ग च देवाः स्त्रोपंसवेदाः ।

⁽२) च ख छ देवनारकाः।

⁽⁸⁾ खन क ते अमे शिष व्यवसारियः।

एवं लजाणि योनीनामशीतियतुक्तरा। सर्वज्ञोपज्ञसुक्तानि सर्वेषामपि जिमानाम्॥ २३॥ एकाचा बादराः सुद्धाः पञ्चाचाः संज्ञासंज्ञिनः। स्यृद्धिनचतुरचाय पर्याप्ता इतरेऽपि च ॥ २४ ॥ एतानि जीवस्थानानि जिनीक्तानि चतुई्य। मार्गणा चिव तावन्यो जेयास्ता नामतो यया ॥ २५ ॥ गतोन्द्रियवपुर्योगवेदश्चानम्दादयः। संयमाद्वारहम्बेग्याभव्यसम्यक्तसंज्ञिनः॥२६॥ मिष्यादृष्टिः सास्तादनसम्यग्निष्यादृशावि । भविरतसम्यग्दृष्टिविरताविरतोऽपि च ॥ २० ॥ प्रमत्तवाप्रमत्तव निवृत्तिवादरस्ततः। भनिवृत्तिबादरसाय सुस्मसंपरायकः ॥ २८॥ ततः प्रशान्तमोस्य चीणमोस्य योगवान्। भयोगवानिति गुणस्थानानि स्वस्तुईश ॥ २८ ॥ मिष्यादृष्टिभविनाष्यादर्भनस्थोदये सति। गुणस्थानतमितस्य भद्रवताद्यपेच्या ॥ ३० ॥ मिष्यालस्यानुदयेशनन्तानुबन्ध्युदये सति। साखादनः सम्यग्दृष्टिः स्यादुलाचीत् षडावलीः ॥ ३१ ॥ सम्यक्लिमप्यालयोगासुइर्सं मित्रदर्भनः। पविरतसम्यग्दृष्टिरप्रखाख्यानकीदये॥ ३२॥ विरताविरतसु स्थालत्यास्थानोदये सति। प्रमत्तसंयतः प्राप्तमंयमी यः प्रमाद्यति ॥ ३३ ॥

सोऽप्रमत्तसंयतो यः संयमी, न प्रमाद्यति ।

उभाविष परादृत्या स्वातामान्तर्मुइर्त्तिकौ ॥ ३४ ॥

कर्मणां स्वितिघातादीनपूर्वान् कुक्ते यतः ।

तस्मादपूर्वकरणः चपकः श्रमक्ष सः ॥ ३५ ॥

यदादरकषायाणां प्रविष्टानामिमं मियः ।

परिणामा निवर्त्तन्ते निद्यत्तिबादरोऽिष तत् ॥ ३६ ॥

परिणामा निवर्त्तन्ते मिथो यत न यत्नतः ।

श्वनिद्यत्तिबादरः स्वात्चपकः श्रमकष सः ॥ ३० ॥

लोभाभिधः सम्परायः स्त्वः किद्योकतो यतः ।

स स्त्रासम्परायः स्वात्चपकः श्रमकोऽिष च ॥ ३८ ॥

श्रथोपशान्तमोद्यः स्वात्वपकः श्रमकोऽिष च ॥ ३८ ॥

सयोगिकवली घातिचयादुत्पवक्षवलः ।

योगानां तु चये जाते स एवायोगिकवली ॥ ४० ॥

॥ इति जीवतत्त्वम् ॥

पजीवाः स्युर्धसाधसीविष्ठायः कालपुत्रसाः । जीवन सष्ठ पञ्चापि द्रव्यास्येते निवेदिताः ॥ ४१ ॥ तत्र कालं विना सर्वे प्रदेशप्रचयात्मकाः । विना जीवमचिद्र्पा पकत्तीरस्र ते मताः ॥ ४२ ॥ कालं विनास्तिकायाः स्युरमूत्तीः पुत्रसं विना । उत्पादविगमधीव्यात्मानः सर्वेऽपि ते पुनः ॥ ४३ ॥ पुत्रलाः स्यः सार्थरसगन्धवर्षस्वरूपिणः । तिऽणस्कन्धतया हेधा तत्नाऽबदाः किलाणवः॥ ४४॥ वदाः स्त्रसा गर्भशब्दसीस्मासीस्वाकतिस्थ्राः। मन्यकारातपोद्योतभेदच्छायामका भपि॥ ४५॥ कर्मकायमनीभाषाचेष्टितीच्छासदायिन:। सुखदु:खजीवितव्यसृत्यूपयस्कारिणः ॥ ४६ ॥ प्रत्येकमेकद्रव्याणि धन्धाधन्त्री नभोऽपि च। षमुर्त्तानि निष्क्रियाणि स्थिराखिप च सर्वदा ॥ ४० ॥ एकजीवपरीमाणसंख्यातीतप्रदेशकी। लोकाकाशमभिव्याय भगाधनी व्यवस्थिती॥ ४८॥ खयं गन्तं प्रवृत्तेषु जीवाजीवेषु सर्वतः। सहकारी भवेषमा: पानीयमिव यादसाम् ॥ ४८ ॥ जीवानां पुत्रलानां च प्रपत्नानां खयं स्थितिम्। त्रधर्भः 'सहकार्येष यथा च्छायाऽध्वयायिनाम् ॥ ५० ॥ सर्वेगं खप्रतिष्ठं स्थादाकाशमवकाशदम्। सोकालोकी स्थितं व्याप्य तदनन्तप्रदेशभाक् ॥ ५१ ॥ लोकाकाशप्रदेशस्या भिन्नाः कालाणवस्त ये। भावानां परिवक्तीय मुख्यः वाालः स उच्चते ॥ ५२ ॥ च्योति:शास्त्रे यस्य मानमुच्यते समयादिकम्। स व्यावद्वारिकः कालः कालवेदिभिरामतः ॥ ५३॥

⁽१) कग सङ्कार्येषु। १५

नवजीर्णादिक्षेष यदमी भुवनोदर ।
पदार्थाः परिवर्त्तन्ते तत्कालस्यैव चेष्टितम् ॥ ५४ ॥
वर्त्तमाना घतीतत्वं भाविनो वर्त्तमानताम् ।
पदार्थाः प्रतिपद्मन्ते कालक्षीडाविडम्बिताः ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रजीवतत्त्वम् ॥

मनीवचनकायानां यत्यात्कर्यं स भायवः। शुभः शुभस्य हेतुः स्वादशभस्वशुभस्य च ॥ ५६॥

॥ इति षात्रवः॥
सर्वेषामास्त्रवाणां यो रोधहेतुः स संवरः।
कर्मणां भवहेतूनां जरणादिष्ठ निर्जरा॥ ५०॥

॥ इति संवरनिर्जरे ॥

वक्षाने भावनाखेवास्त्रवसंवरनिर्जराः ।

तवात्र विस्तरेणोक्ताः पुनक्कत्वभीक्षिः ॥ ५८ ॥

सक्षायतया जीवः कर्षंयोग्यांसु पुत्रसान् ।

यदादत्ते स बन्धः स्थान्जीवास्तातन्त्राकारणम् ॥ ५८ ॥

प्रक्ततिस्वत्यनुभागप्रदेशा विधयोऽस्य तु ।

प्रक्षतिस्त स्थावः स्थात् ज्ञानाष्टस्थादिरष्टधा ॥ ६० ॥

ज्ञानदृष्ट्याष्ट्रती वेद्यं मोचनीयायुषी घपि ।

नामगीचान्तरायास मूलप्रक्रतयो मताः ॥ ६१ ॥

निकर्षोत्वर्षतः कासनियमः कर्षंणां स्थितः ।

प्रमुभागो विषाकः स्थायदेशोऽंशप्रकस्थनम् ॥ ६२ ॥

प्रयमः प्रकाशः।

मिष्यादृष्टिरिवरितप्रमादी च जुदादयः। योगेन सह पञ्चेते विज्ञेया बन्धहेतवः॥ ६३॥

॥ इति बस्यतस्वम्॥

मभावे बसहेत्नां घातिक मैं चयो हवे। केवले सित मोचः स्थाच्छेषाणां क मैं षां चये॥ ६४॥ सुरासुरनरेन्द्राणां यसुखं भुवनत्रये। स स्थादनन्तभागोऽपि न मोच सुखसम्पदः॥ ६५॥ स्वस्थावजमत्यचं यदस्मिन् शाखतं सुखम्। चतुर्वर्गायणीलेन तेन मोचः प्रकीर्त्तिः॥ ६६॥

॥ इति मोचतत्त्वम्॥

मितश्रताविधमनः पर्यायाः केवलं तथा।
श्रमीभिः सान्वयैभेंदैर्ज्ञानं पश्चिविधं मतम् ॥ ६० ॥
श्रवग्रहादिभिभिन्नं बह्वाचैरितरैरिप।
इन्द्रियानिन्द्रियभवं मितज्ञानमुदीरितम् ॥ ६८ ॥
विस्तृतं बहुधा पूर्वेरङ्गोपाङ्गः प्रकीर्णकः।
स्थाच्छव्दलाव्छितं श्रेयं श्रतज्ञानमनेकधा ॥ ६८ ॥
देवनैरियकाणां स्थादविधभैवसभावः।
षड्विकत्पस्त श्रेषाणां चयोपश्रमलच्चाः॥ ७० ॥
स्टलुर्विपुत्त इत्येवं स्थान्यनः पर्ययो हिधा।
विश्वदाप्रतिपाताभ्यां तहिशेषोऽवगम्यताम्॥ ७१ ॥

प्रशेषद्रव्यपर्यायविषयं विष्यलोचनम् ।
पनम्तमेकमत्यचं 'केवलज्ञानमुच्यते ॥ ०२ ॥
एवं च पञ्चभिर्ज्ञानैर्ज्ञाततत्त्वसमुच्यः ।
पपवर्गेहेतो रक्षत्रयस्थाद्याङ्गभागभवेत् ॥ ०३ ॥
भवविटिपसमूलोक्मूलने मत्तदन्ती
जिल्लमितिमरनाशे पद्मिनीप्राणनाथः ।
नयनमपरमेतिद्विष्यतत्त्वप्रकाशे ।
करणहरिणबन्धे वागुरा ज्ञानमेव ॥ ०४ ॥ १६ ॥

दितीयं रत्नमाइ-

किचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु सम्यक्षश्वानमुच्यते । जायते तद्विसंगेण गुरोरिधगमेन वा॥ १०॥

जिनो तेषु तस्वेषु जीवादिष्क्रस्वरूपेषु या विच्छत् यद्दानम्। निष्ठ ज्ञानिमत्वेव विचं विना फलसिद्धिः। गाकावादिस्वरूपवेदिनाऽपि विचरिष्ठतेन न सीष्टित्यलचणं फलमवायते। श्रुतज्ञानवतोऽप्य-द्वारमर्देकादेरभव्यस्य दूरभव्यस्य वा जिनोक्ततत्त्वेषु विचरिष्ठतस्य न विविच्चतं फलसुपश्रूयते। तस्य चोत्पादे द्वयी गतिः निसर्गी-ऽधिगमय। निसर्गः स्वभावो गुरूपदेगादिनिरपेचः सम्यक्श्रद्धान-कारणम्।

⁽१) खब केवरं ज्ञानम्।

तथा हि --

श्रनाद्यनन्तसंसारावर्त्तवर्त्तिषु देशिय । 'ज्ञानदृष्यादृतिवेदनीयान्तरायक्रमेषाम् ॥ १ ॥ सागरीपमकोटीनां कोव्यसिंगत्वरा स्थिति:। विंगतिगीतनाची सी हनीयस्य सप्तति: ॥ २॥ ततो गिरिसरिद्वावचीलनान्यायतः स्वयम्। एका स्थिको टिको व्यूमा प्रत्येकं चीयते स्थिति: ॥ ए॥ शेषास्थिकोटिकोव्यन्तः स्थितौ सकलजन्मनः । यथाप्रवृत्तिकरचाद्गत्रियं समियति ॥ ४ ॥ रागद्वेषपरीणामी दुर्भेदी ग्रत्यिक्चते। द्रक्केदो हदतर: काष्ठादेरिव सर्वदा ॥ ५ ॥ यन्यिदेशं तु संप्राप्ता रागादिप्रेरिताः पुनः। चल्रष्टबन्धयोग्याः स्युचतुर्गतिजुषोऽपि ते ॥ ६ ॥ तेषां मध्ये तु ये भव्या भाविभद्राः ग्ररीरिणः। भाविष्कुत्य परं वीर्यमपूर्वकरणे क्रते॥ ७॥ घतिकामन्ति सहसा तं ग्रन्थं दुरतिकामम्। प्रतिकारतमहाध्वानी घटभूमिमिवाध्वगाः ॥ दः॥ श्रयानिष्टत्तिकरणादकारकरणे क्रते। मिष्यालं विरत्तीकुर्युवेंदनीयं यदगत: ॥ ८ ॥

⁽१) व च चानडच्यादतिवेद्याभिंघान्तरायक्रमेचाम्।

पासामुँ इर्त्तिकं सम्यग्दर्भनं प्राप्नुवन्ति यत्।
निसर्ग हैत्कि सिदं सम्यक्ष्ण हो ॥ १० ॥
गुक्प देशमालम्बा सर्वेषामपि देशिनाम्।
यत्तु सम्यक्ष्ण ने तत्यादिश्व सम्जं परम् ॥ ११ ॥
यसप्रश्म जीवातुर्वी जं ज्ञानचारित्रयोः।
हेत्यत्पः श्वतादीनां सद्दर्शन मुदौरितम् ॥ १२ ॥
साधं हि चरण ज्ञानियुक्त सिप्यात्विषद्विते ॥ १३ ॥
ज्ञानचारित्र ही नोऽपि सूयते स्रेणिकः किल ।
सम्यग्दर्शन साहात्मात्ती श्वतः प्रपत्यते ॥ १४ ॥
प्रभृतचरण बीधाः प्राणिनो यत्र भावादसमस्य निधानं सोच सासाद्यन्ति ।
भवजल निधिपोतं दुः खुका न्तारदावम् ।
स्यत्त तदिह सम्यग्दर्शनं रक्ष निकाम् ॥ १५ ॥ १० ॥

हतीयं रव्नमाइ—

सर्वसावदायोगानां त्यागश्चारिविमध्यते । कीर्त्तितं तदिसंसादिवतभेदेन पञ्चधा ॥ १८॥

सर्वे न तु कितपये ये सावद्ययोगाः सपापव्यापारास्तेषां त्यागी ज्ञानश्रद्यानपूर्वकं परिष्ठारः स सम्यक्चारित्रं ज्ञानदर्भनं विना कितस्य चारित्रस्य सम्यक्चारित्रत्वानुपपत्तेः। सर्वयक्षं देशचारित्रव्यवच्छेदार्थम्। इदं च चारिषं मूलोत्तरगुष्रं देन

हिविधं कीर्त्तितिमत्यादिना मूलगुणक्यं चारित्रमाह । पञ्चधिति वतभेदेन न तु खक्यतः ॥ १८ ॥

मूलगुणानेव कीर्सयति—

यहिंसासून्टतास्तेयब्रह्मचर्यापरियहाः।
पञ्चभिः पञ्चभिर्युक्ता भावनाभिर्विमुक्तये ॥१८॥

महिंसादयय पद्मापि प्रत्येकं पद्मविधभावनाभ्यर्षिताः सन्तः ख-कार्यजननं प्रति चप्रतिवद्यसामध्या भवन्तिति पद्मभिरित्या-द्मुत्तम्॥ १८॥

प्रथमं मूलगुणमाइ---

न यत्ममादयोगेन जीवितव्यपरोपणम्। वसानां स्थावराणां च तदि संसावतं मतम्॥२०॥

प्रमादोऽज्ञानसंग्रयविषर्ययरागद्वेषस्मृतिश्वंशयोगदुष्पृणिधानधर्मा— नादरभेदादष्टविध:। तद्योगात्रसानां स्थावराणां च जीवानां प्राणस्यपरोपणं हिंसा। तनिषेधादहिंसा प्रथमं व्रतम्॥ २०॥

द्वितीयमाइ--

प्रियं पथ्यं वचस्तथ्यं सून्ततव्रतमुच्यते ।

तत्तथ्यमपि नो तथ्यमप्रियं चाहितं च यत् ॥२१॥

तथ्यं वचीऽस्वारूपसुचमानं स्तृतव्रतसुचते । किं विधिष्टं तथ्यं

पियं पयं च तत पियं यत् श्रुतमातं प्रीणयति पयं यदायती हितम्। नतु तत्यमेवेकं विशेषणमतु सत्यत्रताधिकारात् प्रिय-पत्ययोत्त कोऽधिकारः। भत भाष्ठ। तत्तत्र्यमपीति व्यवहारापेचया तत्यमपि यदप्रियं यथा चीरं प्रति चीरस्वं कुष्ठिनं प्रति कुष्ठी विमिति तदप्रियत्वाच तथ्यम्। तथ्यमप्यहितं यथा। सगयुभिः एष्टस्थारस्थे सगान् दृष्टवतो मया सगा दृष्टा इति तळ्जन्तु-घातहितुत्वाच तथ्यम्॥ २१॥

वृतीयमाइ---

चनादानमदत्तस्याक्तेयव्रतमुदौरितम्।

बाच्चाः प्राचा न्रचामधी हरता तं हता हि ते ॥२२॥

विस्तामिना घदसस्य वित्तस्य यदनादानं तदस्तेयव्रतम्। तश्च स्वामिजीवतीर्धकरगुर्व्यदस्तिने चतुर्विधम्। तत्र स्वाम्यदस्तं द्वस्वोपलकाष्ठादिकं तत्स्वामिना यददस्तम्। जीवादस्तं यत्स्वामि-नादसमपि जीवेनादस्तं यथा प्रव्रक्यापरिणामविकलो मातापित्वभ्यां पुत्रादि गुक्भ्यो दीयते। तीर्धकरादस्तं यत्तीर्धकरै: प्रतिषिष्ठमाधा-कर्मिकादि ग्रज्ञते। गुर्व्वदस्तं नाम स्वामिना दत्तमाधाकि ग्रं-कादिदोषरिहतं गुक्नननुत्ताप्य यद्गृद्वते। नन्विष्ठसापरिकरत्वं सर्व्वव्रतानामदत्तादाने तु केव िष्ठसा येनािष्ठसापरिकरत्वं स्थादित्युक्तं बाह्याः प्राणा दत्यादि। यदि स्तेयस्य प्राण्डरणस्वरूपं स्वग्यते तदा तदस्येव॥ २२॥

चतुर्घमाह---

दिव्यीदारिकाकामानां क्रतानुमितकारितैः।

मनोवाकायतस्यागो ब्रह्माष्टादशधा मतम् ॥२३॥

दिवि भवा दिव्याः ते च वैक्रियगरीरसभावाः। भीदारिकाव

भोदारिकतिर्यग्मनुष्यदेष्ठप्रभवास्ते च ते काम्यक्त प्रति कामाव

तेवां त्यागो अब्रह्मनिवेधासकां ब्रह्मचर्यव्रतम्। तचाष्टादशधा

मनसा प्रबद्ध न करोमि न कारयामि कुर्वक्तमिप परं नानुमन्ये।

एवं च वचसा कायेन वेति दिव्ये ब्रह्मष्य नवभेदाः। एवमीदा
रिकेऽपौत्यष्टादशः।

यदाइ---

दिव्यात्कामरितसुखात् तिविधं तिविधेन विरितिरिति नवकम् ।
भीदारिकादिपं तथा तद्वस्ताष्टादश्यविकत्यम् ॥ १ ॥ पति ॥
कतानुमितकारितैरिति मनोवाकायत पति च मध्ये कतत्वात्पूर्वीसरैष्यपि महाव्रतेषु सम्बन्धनीयम् ॥ २३ ॥

पश्चममाइ---

सर्वभावेषु मूक्षियास्यागः स्थादपरिग्रहः। यदसत्स्विप जायेत मूक्षिया चित्तविश्वः॥२४॥ सर्वभावेषु द्रव्यविवकासभावरूपेषु यो मूक्षीया गार्धास्य त्यागी नतु द्रव्यादित्यागमानं सोऽप्ररियहब्रतम्। ननु परिग्रहत्यागोऽपरिग्रहव्रतं स्थात् वितं मूर्कात्यागस्याचेन तक्षस्थीन यत याह। यदसन्स्वपीति।

11

यस्नादसत्स्वयिविद्यमानिष्यि द्रव्यचित्रकालभावेषु मूर्च्या चित्त-विद्ववः स्यात्। चित्तविद्ववः प्रथमसीस्थविपर्यासः। ससत्यपि धने धनगर्षवतो राजग्रहनगरद्रमकस्थेव चित्तसंक्षेशो दुर्गतिपात-निवस्थनं भवति। सत्यपि वा द्रव्यचित्रकालभावलच्ये सामगी-विश्वेषे द्रव्याक्तव्याहिनिकपद्रवमनसां प्रथमसुखप्रास्या चित्त-विद्ववाभावः। सत् एव धन्मीपकरणधारिणां यतीनां ग्ररीरे उपकर्षे च निर्ममलानामपरियह्नसम्।

यदाइ --

यद्वतुरगः सत्स्वयाभरणभूषणेष्वनभिषतः । तद्वदुपग्रहवानपि न सङ्गमुपयाति निर्यन्यः ॥ १ ॥

यथा च धर्मीपकरणवतामपि मूच्छीरिहतानां सुनीनां न परिग्रङ्ग्यद्वित्वदोषस्तथा व्रतिनीनामपि गुरूपदिष्टधर्मीपकरण-धारिणीनां रत्नव्रयवतीनां तेन तासां धर्मीपकरणपरिग्रङ्गानेष मोचापवादः प्रलापमानम् ॥ २४॥

> पश्वभिः पश्वभिर्युक्ता भावनाभिर्विमुक्तये रत्युक्तं तत्यस्तीति---

भावनाभिर्भावितानि पञ्चभिः पञ्चभिः क्रमात्।
महाव्रतानि नो कस्य साधयन्यव्ययं पदम्॥ २५॥
भाव्यन्ते वास्त्रन्ते गुणविशेषमारीप्यन्ते महाव्रतानि यकाभिस्ता
भावनाः॥ २५॥

१२३

यय प्रयमवतस्य भावना याह-

मनोगुप्तेग्रषणादानेर्याभिः समितिभिः सदा । हिंदा भावयेत् सुधीः ॥२६॥

मनोगुप्तिर्वस्थमाणलक्षणा तयेत्येका भावना। एवणा विश्वहिष्टयहणलक्ष्या तस्यां या समिति:। म्रादानग्रहणेन निर्मेष
उपलस्थते। तेन पीठादेर्ग्रहणे स्थापने च या समिति:।
ईरसमीर्या गमनं तत्र या समिति:। म्राभिरेवणादानिर्थासमितिभिर्दृष्ट्योरन्नपानयोग्रहणेनोपलक्षणतात् तद्गासेनाहिंसां
भावयेदिति सम्बन्धः। इह च गुप्तिसमितीनां महान्नतभावनात्वेन
गतार्थानामपि भयवा पश्चसमितीत्यादिग्रन्थेन पुनक्कीर्त्तनं
गुप्तिसमितीनास्त्तरगुणलक्षापनार्थम्।

यदाह---

पिष्डस जा विसोही सिमर्श्यो भावणा तवी दुविहो। पिंडमा सिमगही चिय उत्तरगुषगीवियाणाहिं॥१॥

इह च मनोगुप्तेभीवनातं हिंसायां मनोव्यापारस्य प्राधान्यात्। त्रूयते हि प्रसन्नचन्द्रराजर्षिभैनोगुत्या त्रभाविताहिंसावतो हिंसा-मकुर्व्वविष सप्तमनरकपृथ्वीयोग्यं कन्मै निभैमे एषणादानियीस-मितयस् त्रहिंसायां नितरामुषकारिस्य इति युक्तं भावनात्वम्। दृष्टाव्यपानग्रहणं च संसक्ताव्यानपरिहारेणाहिंसाव्रतोपकारायेति पश्चमी भावना ॥ २६॥

दितीयवतस्य भावना चाइ--

हास्यलोभभयक्रोधप्रत्यास्यानैर्निरन्तरम् । षालोच्य भाषणेनापि भावयत्सून्दतव्रतम् ॥२०॥

इसन् हि मिया ब्र्यात्। लोभपरवश्यार्थाकाञ्चया भयार्तः प्राचादिरचणेच्छया ब्रुहः क्रोधतरिकतमनस्कतया मिया ब्र्यादिति। हास्यादिप्रत्यास्थानानि चतस्त्रो भावनाः। पालोच्य भाषणं सम्यग्ज्ञानपूर्व्वकं पर्यालोच्य स्ववा माभूदिति मोहतिर-स्कारहारेण भाषणं पद्ममी भावना। मोहस्य च स्ववावादहेतुलं प्रतीतमेव।

यदाइ—

रागादा देवादा मोश्वादा वाक्यमुख्यते ग्रान्तमिति ॥ २० ॥ स्तीयव्रतस्य भावना श्वाद्य ।

पालोच्यावयश्याच्ञाभीच्यावयश्याचनम्। एतावन्यावभेवैतदित्यवयश्वधारगम्॥ २८॥ समानधार्मिकेभ्यस्य तथावयश्याचनम्।

पालोच्य मनसा विचिन्त्यावयद्यं याचेत । देवेन्द्रराजग्रहपतिगय्या-तरसाधर्मिकभेदादि पञ्चावयद्याः । यत्र च पूर्वः पूर्वी बाध्य उत्तर उत्तरी बाधकः । तत्र देवेन्द्रावयद्यो यथा सीधर्माधिपते-

चनुत्तापितपानाद्वाशनमस्त्रेयभावनाः ॥२८॥ (युग्मम्)

र्दिचणलोकार्द्धं ईशानाधिपतेबत्तरलोकार्दम्। राजा चक्रवर्त्ती

तस्वावयद्यो भारतादिवर्षम् । यद्यपितमेखनाधिपतिस्तस्वावयदः स्तनाष्डलादि। प्रयातरी वसतिस्वामी तदवप्रही वसतिरेव। साधर्मिकाः साधवस्त्रेषामवयदः ग्रय्यातरप्रदत्तं ग्रहादि । एता-नवप्रहान् जाला यथायथमवप्रष्ठं याचेत । प्रस्वामियाचने हि परसारविरोधेन पकाण्डधाटनादय ऐडिका दीषाः परलोके-ऽपि चटत्तपरिभोगजनितं पापकमा । इति प्रथमा भावना । संज्ञइतिऽव्यवप्रदे स्वामिना प्रभीत्यं भूयो भूयोऽवयस्याचनं कार्थं पूर्व्वलबेऽवयहे म्बानाद्यवस्थामृतपुरीषीलर्गपानकरचरच-प्रचालनस्थानानि दाद्वचित्तपौडापरिचारार्थे याचनीयानि । इति हितीयभावना । एतावसावमेव एतावत्परिमाणमेवैतत् चेवादि ममोपयोगि नाधिकमिति चवग्रहस्य धारणं व्यवस्थापनम्। एवमवप्रद्वधार्व दि तद्भ्यनारवर्त्तिनीमूईस्थानादिक्रियामाचे-वमानी न दातुक्परीधकारी भवति। याञ्चाकास एवावग्रहा-नवधारचे विपरिणतिरपि दातुचेतसि खादालानीऽपि चादत्तपरि-भोगजनितक गाँवसः स्वादिति हतीयभावना। धर्मे चर-न्तीति धार्मिकाः समानासुन्धाः प्रतिपर्वेकशासनाः साधवस्तेभ्यः पूर्वपरिग्टहीतचेत्रेभ्योऽवग्रही याच्यस्तदनुचानाहि तत्रासितम्यं भन्यया स्तेयं स्वादिति चतुर्थी भावना। भनुष्तापिते भनुष्तया स्वीकते ये पानाने तयोरशनं सुनोक्तेन हि विधिना प्रास्त्रनीवचीयं कल्पनीयं च पानाचं सम्ममानीयासोचनापूर्वं गुरवे निवेचानुजाती गुक्चा मण्डवामिकको वा अत्रीयात्। उपलब्बमितत् यत्-किचिदौचिकीपयहिकभेदमुपकरणं धर्मसाधनं तसर्वे गुक्णाऽनु-

ज्ञातं परिभोक्तव्यम्। एवं विदधानो नातिकामत्यस्तेयव्रतमिति पञ्चमो भावना।

चतुर्यव्रतभावना पाइ -

स्त्रीषण्डपश्चमद्देश्मासनकुद्धान्तरोज्भनात्।
सरागस्त्रीक्षयात्यागात्प्रायतस्मृतिवर्जनात्॥ ३०॥
स्त्रीरम्याङ्गेच्चगस्ताङ्गसंस्तारपरिवर्जनात्।
प्रगीतात्यश्चत्र्यागाद् ब्रह्मचर्यं तु भावयेत्॥ ३१॥
(युग्मम्)

बियो देवमानुषभेदाहिविधाः एताब सचित्ताः । षचित्तासु पुद्धाः लिप्यचित्रकर्मादिनिर्मिताः । षण्ढास्त्वतीयवेदोदयवर्त्तिनो मझामोष्ठकर्माणः खोपुंससेवनाभिरताः । पणवस्तिर्थग्योनिजाः । तत्र
गोमष्ठिषीयखवावालियोषजापविकादयः सभाव्यमानमैथुनाः ।
एभ्यः कतद्वन्तिभ्यो मतुः खोषण्ढपग्रमतो च ते विक्रमासने च विक्रम
वस्तिः । षासनं संस्तारकादि । कुष्पान्तरं यत्रान्तरस्थोऽपि
कुष्पादौ दम्पत्योमीष्ठनादिश्रम्दः श्रूयते ब्रह्मचर्यभक्तभयादेषामुज्भनं
त्यागः । इति प्रथमा भावना । सरागस्य मोष्ठोदयवतो या कीभः
कथा खोषां वा कथा सरागाय ताः खियब ताभिस्तासां वा कथा
तस्त्रास्थागः । रागानुबन्धिनो ष्ठि देशजातिकुलनेपय्यभाषागितविक्रमिक्वत्रस्थालीलाकटाष्ठप्रव्यकसङ्ग्रङ्गाररसानुविद्या कथा

वात्येव विक्तोदधेरवश्यं विकासमादधातीति हितीया भावना।
प्राक् प्रवच्याबद्वाचर्यात् पूर्वं ग्टइस्थावस्थायां यद्गतं स्त्रीभिः सइ
निध्वनं तस्य स्मृतिस्तस्या वर्जनं प्राप्ततस्यर्षेन्धनाहि कामान्निः
सन्ध्रस्यते। इति ढतीया भावना। स्त्रीणामविवेकिजनापेचया
यानि रम्याणि स्टइणीयान्यङ्गानि मुखनयनस्तनअघनादीनि
तेवामीचणमपूर्वविस्मयरसनिर्भरतया विस्मारिताचस्य विलोकनम्। ईचणमात्रं तु रागहेषरिहतस्यादृष्टमेव।

यदाइ---

प्रश्चं रूपमद्रष्टुं चत्तुर्गीचरमागतम्। रागदेषी तुयी तव ती बुधः परिवर्जयेत्॥१॥ इत्यादि॥

तया सस्यामनीऽकं गरीरं तस्य संस्कारः स्नानविलेपनधूपननख-दन्तकेगसमार्जनादि स्त्रीरम्याक्षेत्रखां च स्वाक्ष्मंस्कारस तयोः परिवर्जनात्। स्त्रीरम्याक्षेत्रखणतरसितविलोचनो हि दीपिशखायां गलभ दव विनाग्रमुपयाति। त्रग्रुचिग्ररीरसंस्कारमूढो हि तत्तसुत्कसिकामयेर्विक स्पेर्वृथास्मानमायासयतीति चतुर्थी भावना। प्रकीतो हवः स्निष्मभुरादिरसः। त्रस्वग्रनमप्रकीतस्थाऽपि कत्तमेत्रस्थाक प्रसुदरपूरणं तयोस्थागो निरन्तरहष्मभुरस्निष्ध-रमप्रकीतो हि प्रधानधातुपरिपोषेण वेदोदयादम्बद्धाऽपि सेवत। गत्यग्रनस्य तु न केवलं ब्रह्मचितकारित्वादर्जनं ग्रदीरपीडा-कारित्वादपि। यदाइ---

षदमसमस्य मध्यं जगस्य कुळा 'दगस्य दोभागे। वाउपवियारगड़ा कब्भायं जगगं कुळा ॥ १ ॥ इति पश्चमो भावना। एवं नवविधब्रह्मचर्यगुप्तिसंग्रहेण ब्रह्मचर्य-व्रतस्य पश्च भावनाः ॥ ३० ॥ ३१ ॥

पश्चमवतस्य भावना चाइ---

स्पर्भे रसे च गन्धे च रूपे शब्दे च शारिण।
पञ्चित्तितिद्वर्यार्थेषु गाढं गार्श्वास्य वर्ज्जनम्॥३२॥
एतेष्वेवामनोज्ञेषु सर्व्वया द्वेषवर्ज्जनम्।
पातिस्वन्यव्रतस्थेवं भावनाः पञ्च कीर्त्तिताः॥३३॥
(युग्मम्)

सार्यादिषु मनोहारिषु विषयेषु यहाठं गार्डास्याभिष्यक्तस्य वर्जनम्। सार्यदिष्येवामनोज्ञेष्यिन्द्रियप्रतिकृत्तेषु यो देषोऽप्रीति-सच्चस्तस्य वर्जनम्। गार्डावान् हि मनोज्ञे विषयेऽभिष्यकृवानम-नोज्ञान्विषयान्विदेष्टि मध्यस्यस्य तु मूर्च्छारिहतस्य न कवि-न्योतिरप्रीतिर्वा रागानान्तरीयकतया च देषस्वोपादानम्। विषय वाज्ञाभ्यन्तरपरियह्रकपं नास्यास्तीत्यकिष्यनस्तद्वाव-पाकिष्यन्यमपरियहता। पाकिष्यन्यं च तद्वतं च तस्येताः पश्च भावनाः॥ ३२॥ ३३॥

⁽१) कगम्डच्य द्वसा।

मूलगुणकपचारित्रमभिधायोत्तरगुणक्यं तदाइ—

त्रयवा पञ्चसमितिगुप्तिवयपविवितम् । चरित्रं सम्यक्चारिवमित्याचुर्मुनिपुङ्गवाः ॥ ३४ ॥

मिमितिरिति पञ्चानां चेष्टानां तान्त्रिकी संज्ञा। प्रथवा सं सम्यक्
प्रश्नम्ता प्रश्नेत्रवचनानुसारेण इतिः चेष्टा समितिः पञ्चानां सिमतोनां समाद्यारः पञ्चसमिति। गुप्तिरात्मनः संरचणं मुमुच्चोर्योगनिग्रह इत्यर्थः। गुप्तीनां वयं गुप्तित्रयं पञ्चसमिति च गुप्तित्रयं च
ताभ्यां च पवित्रितं यच्चरित्रं यतीनां चेष्टा सा सम्यक्चारित्रमुच्यते। सम्यक्प्रवृत्तिलच्चणा समितिः प्रवृत्तिनिवृत्तिलच्चणा
गुप्ति रत्यनयोर्विभेषः॥ ३४॥

यय समितीर्गुप्तीय नामत याह-

र्द्र्याभाषेषणादाननिचेपोत्सर्गसंज्ञिकाः । पञ्चाडुः समितीस्तिस्रो गुप्तीस्त्रियोगनिग्रहात्॥ ३५॥

ईयोसिमितिभीषासिमितिरेषणासिमितिरादानिचिपसिमितिरुक्षर्गस-मितिरित्येताः पञ्चसिमितीर्द्भविते तीर्यक्षराः । विसंख्या योगास्ति-योगा मनोवाक्षायव्यापारास्तेषां निषद्दी निरोधः । प्रवचन-विधिना मार्गव्यवस्थापनसुन्तार्गनवारणं च । निषद्दादिति हेती पञ्चमी तेन मनोगुप्तिवचनगुप्तिः कायगुप्तिरिति तिस्ती गुप्तीर्द्भवते ॥ ३५ ॥

र्यालचणमाइ-

लोकातिवाहिते मार्गे चुम्बिते भाखदंशुभिः।
जन्तरचार्धमालोक्य गतिरीर्या मता सताम् ॥ ३६ ॥
नसस्यावरजन्तुजाताभयदानदीचितस्य सुनेरावस्यके प्रयोजने
गच्छतो जन्तरचानिमित्तं स्वयरीररचानिमित्तं च पादायादारभ्य
युगमाविद्येतं यावत् निरीच्य ईरणमीर्या गतिस्तस्यां समितिरीर्यासमितिः।

यदादु:---

'पुरची जुगमायाए पेष्ठमाणी मिष्ठं चरे। वक्तंतो बीयष्ठरियाष्ट्रं पाणि य दगमद्वियं ॥ १ ॥ 'भीवायं विसमं खाणुं विजलं परिवक्तए। सक्षमण न गच्छेका विकामाणे परक्रमे॥ २ ॥

गतिस मार्गे भवति तस्य विशेषणं सोकातिवास्ति सोकैरति-वास्ति सत्यन्तस्तुसे । सुम्बिते स्पृष्टे सादित्यिकरसे: प्रथमविशेषणेन परैविराधिते मार्गे गच्छतो यते: षड्जीवनिकायविराधना न भवति । स्यार्गेण न गन्तव्यमिति चास । तथाविधेऽपि मार्गे

⁽१) प्रतो युगमात्रया प्रेचनायो महिं वरेत्। वर्जयन् वीजकृतितानि प्राचान् च दकस्तिवास्॥

⁽२) व्यवपातं विषयं स्थायुं विअवतं परिवर्जवेत् । संक्रमेव्य न गच्छोत् विद्यमाने पराक्रमे ॥

प्रथम: प्रकाश:।

रास्रो गच्छतः सम्पातिससत्त्वविराधना भवेदिति तत्परिहाराधें दितीयविशेषणम्। एवंविधोपयोगवतत्र गच्छतो सुनैः कथंचित् प्राणिवधेऽपि प्राणिवधपापं न भवति।

यदाइ---

उचालियन्ति पाए इरियासिमयस्य सङ्ग्महाए। वावज्जेक कुलिङ्गो मरिका तं जोगमासका॥१॥ न य तस्य तनिमित्तो बंधो सङ्गोवि देसियो समए। यणवक्जो उपयोगेण सब्बभावेण सो जन्हा॥२॥

तथा--

जिश्रदु व मरदु व जीवो श्रजदाचारसा निच्छश्रो हिंसा। पयदसा णित्य बंधो हिंसामित्तेण समिदसा॥ ३॥ ३६॥

भाषासमितिमा ह---

भवदात्यागतः सर्वजनीनं मितभाषणम् । प्रिया वाचंयमानां सा भाषासमितिषच्यते ॥३०॥

भवयानि भाषादोषा वाक्यशुष्प्रध्ययनप्रतिपादिताः भूर्त्तेकामुक-क्रव्यादचौरचार्वाकादिभाषितानि च तेषां निर्देश्वतया त्यागस्ततः सर्वजनीनं सर्वजनेभ्यो हितं मितं खल्पमप्यतिबहुप्रयोजनसाधकं तथ तहाषणं च। यदाइ---

यदाधा---

'महुरं निरुषं थोवं कज्जाविष्यं भगिष्यमतुच्छं।
पुर्विमद्रसंकिलयं भणिति जं भग्मसंजुत्तं॥१॥
एवंविधं यद्वाषणं सा भाषासिमितिः। भाषायां सम्यगितिभीषासिमितिः। सा च प्रिया भिम्मता वाच्यमानां सुनीनाम्।
यदाष्टः—

ैजाय सचान वत्तव्वा सचामीसाय जा मुसा। जाय बुद्देहिं चाइसा च तं भासेका पसवं॥ १॥ इति॥३०॥

एषणासमितिमाइ--

हिचलारिंशता भिचादोषैर्नित्यमदूषितम्। मुनिर्यदन्नमादत्ते सैषणासमितिर्भता॥ ३८॥

हाभ्यामिषका चलारिंगत् हिचलारिंगद्विचारोषाः चक्रमोत्पाद-नैवबालचवाः तत्रोहमदोषा ग्रहस्थप्रभवाः षोडग ।

ैश्राहाकम्मुईसियपूरकम्मे भ मीसनाए य।

आहाक भुइ। सयपूरक मा भारत गए या विवास पाइ जिया पाइ जिया पाउयरकी यपामि में ॥ १॥

⁽१) मधुरं निषुषं स्तोतं कः यापितितमगर्वितमहाक्कस्। पूर्वमितसङ्कानितं भणानि यद्यमेसंयुक्तस्॥

⁽२) याच सत्यान वक्तव्यासत्यास्याच्याच यास्या। याच बुडैरनाचीर्चान तां भाषेत प्रज्ञावान्॥

⁽३) च्याधाकर्नीहेशिकपृतिकर्मच मित्रजातंच। स्थापना प्रास्टितिका पाडुम्कारकीतप्रामित्सम् ॥

'परिश्वष्टिए श्रभिष्ठं उव्भिष्ठं मालो इंड इय । श्रिक्कं श्रिषिट्ठं श्रम्भोश्वरए य सोलसमे ॥ २ ॥ श्राधाय विकल्पा यतिं मनसि कत्वा सचित्तस्थाचित्तीकरण-मिक्तस्य वा पाको निक्तादाधाकर्म ॥ १ ॥

उद्देशः साध्ययं सङ्खः स प्रयोजनमस्य श्रीदेशिकां यत्पूर्वक्रतः मीदनमीदकचीदादि तत्साधूद्देशेन दध्यादिना गुडपाकेन च संस्कुर्व्वतो भवति ॥ २॥

माधाकि स्मैकावयवसिमात्रं ग्रहमिय यक्तत्पूतिकर्भे ग्रहिद्य-मिवाग्रविद्रव्यसिमात्रम् ॥ २ ॥

यदात्मार्थं साध्वयं चादित एव मित्रं पचिते तिकात्रम् ॥ ४ ॥ साध्याचितस्य चीरादेः पृथकृत्य स्वभाजने स्थापनं स्थापना ॥ ५ ॥

कालान्तरभाविनो विवाहादेरिदानीं सिन्निहिताः साधवः सन्ति तेषामप्युपयोगे भविति वृद्या ददानीमेव करणं समय-परिभाषया प्रास्टितिका सिन्निक्षष्टस्य विवाहादेः कालान्तरे साधु-समागमनं सिन्निन्योत्वर्षणं वा ॥ ६ ॥

यदस्यकारश्यवस्थितस्य द्रश्यस्य विक्रप्रदीपमण्यादिना भिष्य-पनयनेन वा बिहिनिष्कास्य द्रश्यधारणेन वा प्रकटकरचं तत्रादु-ष्करणम्॥ ७॥

यक्षाध्वधं मूख्येन क्रीयते तत्क्रीतम्॥ ८॥

⁽१) परिवर्त्तितमभ्याञ्चतसञ्ज्ञत्तं भाजापञ्चतमिति । नाम्बेद्यमनिस्टं सध्यवपूरकत्त घोडगः॥

यसाध्वर्धमन। दि उदातकं ग्रहीला दीयते तत्रामित्यकम् ॥८॥ स्वद्रव्यमणीयिला परद्रव्यं तत्सदृशं ग्रहीला यहीयते तत्परिः वर्त्तितम्॥ १०॥

ग्रह्मपामादेः साध्वधं यदानीतं तदभ्याह्नतम् ॥ ११ ॥ कुतुपादिस्यस्य छतादेदीनाधं यत्म्यतिकाद्यपनयमं तदु-ज्ञिनम् ॥ १२ ॥

यदुपरिभूमिकात: शिक्बादेर्भूमिग्टहाहा भाक्षण साधुभ्यो दानं तन्मालापद्धतम् ॥ १३ ॥

यदाच्छिय परकीयं इठात् ग्रहीला स्तामी प्रभुवीरो वा ददाति तदाच्छेयम्॥ १४॥

यद्गोष्ठीभक्तादिसर्वेरदत्तमननुमतं वा एकः किस्साधुभ्यो ददाति तदनिस्टम्॥१५॥

खार्षमिषित्रयषे सति साधुसमागमत्रवणात्तद्ये पुनर्यो धान्धादिवापः सोऽध्यवपूरकः ॥ १६ ॥

चत्पादनादोषा चिप षोडम ते च साधुप्रभवाः । तदाया—

> 'धाई दूई निमित्ते पाजीववणीवगे तिगिच्छा य। कोई मापे माया लोभे प इवन्ति दस एए॥१॥

⁽१) भानो दूती निमित्तं वाजीववनीपने विकिता प । क्रोभो गांगो मासा चोभच भवन्ति हथ एते ॥

'पुर्विपच्छासंयविकामन्ते च चुसजीए य।

चपायकाद दोसा सोलसमे मूलकमो य॥२॥

बालस्य चीरमकाममण्डमकीडमाङ्कारीपकर्मकारिन्छः पञ्च-

धात्राः एतासां कर्म भिचार्धं कुर्वती सुनिर्धाचीपिण्डः ॥ १॥

मियः सन्देशकायनं दूतीत्वं तत्कुर्वती भिचार्थं दूती-पिच्छः ॥२॥

चतीतानागतवर्त्तमानकासेषु साभासाभादिकथनं निमित्तं तक्किचार्थं कुर्वतो निमित्तिपिष्डः ॥ १॥

जातिकुलगणकर्षेशित्यादिप्रधानेभ्य प्रात्मनस्तत्तत्रुणतारीपणं भिचार्थमाजीविष्णः ॥ ४ ॥

त्रमणबाद्याणचपणातिथिष्वानादिभक्तानां पुरतः पिण्डार्ध-मामानं तत्तद्वतं दर्भयतो वनीपकपिण्डः ॥ ५ ॥

वसनविरेचनवस्तिकभादि कारयतो वैद्यभेषक्यादि सूचयतो वा पिष्डार्थे चिकित्सापिष्डः ॥ ६ ॥

विद्यातपः प्रभावन्नापनं राजपूनादिस्थापनं क्रीधफलदर्शनं वा भिचार्थं कुर्वतः क्रीधिपक्डः ॥ ७॥

सिमानमुत्पादयती मानपिष्डः ॥ ८॥

नानाविषभाषापरिवर्त्तनं भिचार्थं कुर्वती मायापिण्डः ॥ ८ ॥

⁽१) पूर्वपश्चातांसानविद्यामनां च मूर्णवोगस । जतादनावा दोषा घोषशो मृतकर्भ च ॥

पतिलोभाद भिचार्थं पर्यटतो लोभिष्णः: ॥ १०॥
पूर्वसंस्तवं जननीजनकादिहारेण पद्यात्संस्तवं म्बन्ध्रम्भारादिः
हारेणात्मपरिचयाऽनुरूपं सम्बन्धं भिचार्थं घटयतः पूर्वपद्यात्संस्तवपिण्णः: ॥ ११॥

विद्यां मन्त्रं चूर्षे योगं च भिचार्थं प्रयुद्धानस्य चलारी विद्यादिपिण्डा:—

मन्त्रजपद्योमादिसाध्या स्त्रीदेवताधिष्ठाना वा विद्या ॥ १२ ॥
पाठमात्रप्रसिद्धः पुरुषाधिष्ठानो वा मन्त्रः ॥ १३ ॥
चूर्णान नयनास्त्रनादीनि मन्तर्द्धानादिफलानि ॥ १४ ॥
पादप्रलेपादयः सीभाग्यदीर्भाग्यकरा योगाः ॥ १५ ॥
गर्भस्तन्त्रगर्भाधानप्रसवस्त्रपनकमूलरस्वाबन्धनादिभिन्नार्थं कुवितो मूलकग्रंपिष्ठः ॥ १६ ॥

ग्टिसाधूभयप्रभवा एषणादीषा दग।

तद्यथा---

'सिक्वयमंक्खियनिक्खित्तपिह्यसाहरिषदायगुत्रासे । षपरिषयित्तत्त्व्हिख्य एसणदोसा दस हवन्ति ॥ १ ॥ षाधाकभाकादिशङ्काकलुषितो यदवाद्यादत्ते तच्छिङ्कतं यं च दोषं शङ्कते तमापद्यते ॥ १ ॥

⁽१) यद्भितव्यक्तितिक्तिप्रितसंष्ट्रतदायकोन्धित्रस्। व्यवस्थितविप्रकर्तितं एयवाहोषा दय भवन्ति ॥

प्रविष्युदकवनस्पतिभिः सचित्तेरिचत्तेरिप मध्वादिभिगेर्हिते-राज्ञिष्टं यदत्रादि तम्बन्धितम् ॥ २ ॥

प्रथिष्युदकतेजीवायुवनसातिषु चरेषु च यदबाद्यचित्तमपि स्थापितं तिविचित्तम् ॥ ३॥

सचित्तेन फलादिना स्थागितं पिश्तिम् ॥ ४ ॥
दानभाजनस्थमयोग्यं सचित्तेषु पृथिव्यादिषु निर्विष्य तेन
भाजनेन ददतः संद्वतम् ॥ ५ ॥

बाल हदपण्डक वेपमान व्यक्तितान्धमत्तो कात्ति व्यक्त विषय प्रमान व्यक्तिया दुका करका ग्रह का प्रेयक का ये विवास का विवास विवास वा प्रेयो प्रवादि गर्दे साधी ने कल्पते ॥ ६ ॥

देयद्रव्यं खण्डादि सचित्तेन धान्यकणादिना मित्रं ददत उक्तित्रम्॥७॥

देयद्रव्यं मित्रमित्तित्तिवापरिणमनादपरिणतम् ॥ ८ ॥ वसादिना संस्पृष्टेन इस्तेन पात्रेण वा ददतीऽत्रादि लिप्तम् ॥८॥

ष्टतादि च्छाईयन् यहदाति तत् हाईतं हार्यमाने ष्टतादी तत्रस्यस्यागन्तुकस्य वा सर्वस्य जन्तोर्मधुविन्दूदाइरणेन विराधना-सन्धवात्॥ १०॥

तदेवमुद्रमोत्पादनैषणादोषाः संष्ठता विचलारिंगद्भवन्ति ते च भिज्ञादोषास्तैरदूषितमत्रमणनखाद्याखाद्यभिदमुपलचणलात्पानं मीवीरादि तथा रजोष्टरणमुख्यस्त्रचीलपटपाणादिस्थविर-१८

तद्यया---

संयोजना १ प्रमाणातिरिक्तता २ चक्कारो ३ घूमः ४ कारणाभावस ५ तत्र रसलोभाइव्यस्य मण्डकादेई व्यान्तरेण खण्ड एतादिना
वसते विदिन्त विद्यान्तरेण खण्ड एतादिना
वसते विदिन्त तदा हारप्रमाणम् । प्रधिका हारलु वमनाय मृत्यवे
व्याध्ये चेति तं परिहरेदिति प्रमाणातिरिक्ततादोषः ॥२॥ स्वादनं
तहातारं वा प्रयंसन् यहुंके सरागागिनना चरिकेश्वनस्थाकारीकरणादक्कारो दोषः ॥३॥ निन्दन् पुनसारिकेश्वनं दहन् धृमकरणादक्कारो दोषः ॥३॥ जिन्दन् पुनसारिकेश्वनं दहन् धृमकरणादक्कारो दोषः ॥४॥ जुद्देदनाया प्रसद्धनं चामस्य च वैयाद्याः।
करणात्रीय सितरिविद्यद्धः प्रेची ग्रेचादेः संयमस्य चापालनं
जुधातुरस्य प्रवलाग्न्युदयात्राणप्रहाणग्रद्धा 'प्राक्तरीद्रपरिहारेण

⁽१) ख -द्यार्त्तरौद्रपरिकारेख।

धर्मध्यानस्थिरीकरणं चेति भोजनकारणानि तदभावे भुष्णानस्य कारणाभावदोषः ॥ ५ ॥

यदाच--

उत्पादनोहमेवणाधूमांगारप्रमाणकारणतः । संयोजनाच पिण्डं शोधयतामेवणासमितिः ॥१॥ इति ॥ ३८ ॥

चादाननिवेपंसिमितिमाइ—

षासनादीनि संवीच्य प्रतिलिख्य च यत्नतः। यत्त्रीयाद्गिचिपेदा यत्सादानसमितिः स्मृता॥ ३८॥

भासनं विष्टरः भादिग्रब्दाहस्त्रपात्रफलकदण्डादेः परिग्रहः। तान्यासनादीनि संवीच्य चन्नुषा प्रतिलिख्य रजोहरणादिना यद्गत इत्युपयोगपूर्व्वकम्। भन्यया सम्यक्पतिलेखना न स्थात्।

यदाष्ट्र--

'पडिलेक्षणं कुणंतो मिहो कहं कुण्ड जण्वयकहं वा। देइ व पञ्चक्वाणं वाएड सयं पडिच्छइ वा॥१॥
'पुढवीचा उक्षाएते जवा जवणसाइतसाणं।
पडिलेक्षणापमत्तो कृष्हंपि विराहगो भणिष्यो॥२॥

⁽१) प्रतिसेखनां कुर्वन् मित्रः कयां करोति जनपदकयां वा। इराति वा प्रत्याख्यानं वाषयति खर्यं प्रतीच्छति वा॥

⁽१) प्रविव्यप्कायतेजोवायुवनस्पतित्वसानाम् । मतिबेसनाप्रमत्तः प्रसामित विराधको भिषतः॥

यहुन्नीयादाददीत निचिपेत् स्थापयेसंवीचितप्रतिसिखित-भूमी। सा पादाननिचेपसमिति:। भीमी भीमसेन इति 'न्यायादादानसमिति:॥३८॥

चसर्गसमितिमाइ---

क्षममूत्रमलप्रायं निर्जन्तुजगतीतले । यहाद्यदुत्मुजेत्साधुः सोत्मर्गसमितिभवित् ॥ ४०॥

कफः स्रेषा सुखनासिकासचारी मूचं प्रत्रवर्ष मली विष्ठा प्राय-यच्चपादन्यद्वि परिष्ठापनायीग्यं वस्त्रपात्रभक्तपानादि ग्रञ्चते। निजन्तुस्त्रसस्थावरजन्तुरिच्चता स्वयं च निर्जन्तुर्यो जगती तस्था-स्तलं स्थण्डिलमित्यर्थः। तत्र यहादुपयोगपूर्वकं यदुक्नुजेक्षापुः सोक्षर्गसमितिः। प्रथ गुप्तीनामवसरः॥ ४०॥

तव मनोगुप्तिमा =--

विमुत्ताकाल्पनाजालं समत्वे सुप्रतिष्ठितम् । चात्मारामं मनम्तज्ज्ञैर्मनोगुप्तिकदाइता ॥ ४१ ॥

इह मनोगुप्तिस्त्रिधा। पार्त्तरौद्रध्यानानुविध्यक्त्यनाजालवियोगः प्रयमा। प्रास्त्रानुसारिणो परलोकसाधिका धर्मध्यानानुविध्यनी माध्यस्यपरिणतिर्द्धितौया। कुणलाकुणलमनोद्यत्तिनिरोधेन योग-निरोधावस्थाभाविन्याकारामता खतौया। ता एतास्तिस्तोऽपि विशेषणत्रयेणाहः। विसुक्तकस्यनाजालिमिति समले सुप्रतिष्ठित-मिति प्राक्षारामिति च एवंविधं मनो मनोगुप्तिः॥ ४१॥

⁽१) ख च न्यायाञ्चादानसमितिः।

वाग्गुप्तिमाइ---

संज्ञादिपरिहारेण यम्मीनस्यावलम्बनम् ।
वाग्हत्तेः संहत्तिर्वा या सा वाग्गुप्तिरिहोच्यते॥४२॥
संज्ञा मुखनयनभ्र्विकाराङ्गुस्याच्छोटनादिका प्रयस्चिकाविष्टाः
प्रादिगन्दाकोष्टवेपोर्द्वीभावकासितहृङ्गतादीनि ग्रज्ञन्ते। संज्ञादोनां यः परिहारस्तेन यमीनमभाषणं तस्यावलम्बनमभिष्रहः।
संज्ञादिना हि प्रयोजनानि स्चयतो मीनं निष्पलमेवित्येका
वाग्गुप्तिः। वाचनप्रच्छनपृष्टव्याकरणादिषु लोकागमाविरोधेन
मुखवस्तिकाच्छादितवक्रस्य भाषमाणस्यापि वाग्हत्तेः संहत्तिर्वागिवनियन्त्रणं हितीया वाग्गुप्तिः। प्राभ्यां भेदाभ्यां वाग्गुप्तेः सर्वथा
वाग्निरोधः सम्यग्भाषणं च स्वरूपं प्रतिपादितं भवति भाषा-

यदाडु:---

सिमो नियमागुत्ती गुत्ती सिमयत्तणि भयणिको।
कुसलवयमुईरंतो जं वहगुत्तीवि सिममोवि॥१॥
भव कायगुतिः सा च हिधा चेष्टानिहत्तिसचणा ययासूनं चेष्टानियमसचणा च॥४२॥

समिती तु सम्यवान्प्रवृत्तिरविति वागुप्तिभावासमित्योभेदः।

तवाद्यामाइ --

उपसर्गप्रसङ्गेऽपि कायोत्सर्गजुषो मुनैः । स्थिरीभावः शरीरस्य कायगुप्तिर्निगद्यते ॥ ४३ ॥ उपसर्गा देवमानुषितर्थकृता उपद्रवाः । उपनद्यवलात् चुल्पिपा- सादयः परीषद्वा भपि ग्रद्धान्ते तेषां प्रसङ्कः सिवपातः । भपि ग्रन्दात्तदभावेऽपि सुनैः साधोः कायः गरीरं तस्त्रोक्षभिस्यागस्तव निरपेचतालच्चसां जुषते तत्तस्य कायोक्षभेजुषो यः स्थिरीभावो नियलता योगनिरोधं कुर्वतः सर्वेषा ग्ररीरचेष्टापरिद्वारो वा यः सा कायगुप्तिः ॥ ४३ ॥

दितीयामाइ--

श्यनासननिचेपादानचंक्रमगेषु यः। स्थानेषु चेष्टानियमः कायगुप्तिस्तु सापग्॥४४॥

स्थानमागमीको निद्राकालः स च राचावेव न दिवा। सन्यक्ष
नेक्षानाध्यमानावदादेः। तचापि प्रथमयामिऽतिकान्ते गुरूनाएच्छा
प्रमाण्युक्तायां वसती संवीच्य प्रमुच्य च भूमि संहत्यास्तीर्य च
संस्तरणपष्टकहयमूईमध्य कायं सपादं मुख्यविकारजोहरणाभ्यां
प्रमुच्यानुद्रापितसंस्तारकावस्थानः पिठतपञ्चनमस्कारसामायिकस्वः कतवामबाह्मप्रधान साकुश्चितजानुकः कुकुटोविद्यिति
प्रसारितजङ्गो वा प्रमार्जितचोणीतलन्यस्तचरणी वा भूयः सङ्घोचसमये प्रमार्जितसंदंभकः। उद्दर्भनकाले च मुख्यस्त्रिकाप्रमृष्टकायो नात्यन्ततीव्रनिद्रः प्रयोत। प्रमाण्युक्ता तु वसितर्हस्तचयप्रमित भूपदेशे प्रत्येकं सभाजनानां साधूनां यचावस्थानं सकलावकाशपूरणं च स्थात्। सासनमुपवेशनं तद्यत्र प्रदेशे चिकीर्षितं तं
च बुषा निरीच्य प्रमुच्य च रजोहरणेन बहिर्निषद्यामास्तीर्योपविशेत् चपविष्टोऽप्याकुच्चनप्रसारणादि तथेव कुर्ब्यात वर्षादिषु

च वर्षोपीठादिषू क्रायेव समाचार्योपविश्वत्। निर्चपादाने च दण्डा खुपकरणविषये ते भिष प्रत्यवेच्य प्रसच्य च विभिये चंक्रमणं गमनं तद्यावय्यकप्रयोजनवतः साधोः पुरस्ता खुगमाच-प्रदेगसि विशेषतह हेरप्रमत्तस्य चस्यावरभूतानि संरचतोऽत्वरया पदन्यासमाचरतः प्रगस्तं स्थानमूई स्थितिलचणमवहन्भादि च प्रत्यवेचितप्रमार्जितप्रदेशविषयम्। एतेषु चेष्टानियमः स्वच्छन्दः चेष्टापरिद्वारो यः सा भपरा दितीया कायगुतिरिति॥ ४४॥

एतासामागमप्रसिषं माळलसुपदर्भयति—

एताश्वारित्रगात्रस्य जननात्परिपालनात्।
संशोधनाञ्च साधूनां मातरोऽष्टी प्रकीर्त्तिताः ॥४५॥
एताः समितिग्रत्रयः शास्तेऽष्टी मातर इति प्रसिद्धाः। मात्रत्वे
हित्नाह। साधूनां सम्बन्धिचारित्रमेव गात्रमङ्गं तस्य जननादभूतस्य प्रादुर्भावनात् जनितस्य च चारित्रगात्रस्य परिपालनात्सर्वीपद्दविनार्षेन पोष्रकेन च हित्रगनात् चारित्रगात्रस्यैवातिचारमिलनस्य सतः संशोधनाविमेलीकरणादिति ॥ ४५॥

चारिचं व्याख्यायोपसंहरति---

सर्वातमना यतीन्द्राणामितचारित्रमीरितम् । यतिधर्मानुरक्तानां देशतः खादगारिणाम् ॥४६॥ विधा चारितं सर्वदेशभेदात् । सर्वाक्षना चारितं सर्वसावधयोग-विरतिसच्चम् । यतीन्द्राणामनगारिश्रेष्ठानामितम्बगुणोक्तरग्रण- स्वरूपमीरितम्। धात्नामनेकार्थत्वात्रितिपः दितम्। देशचारितं तु केवामित्याद्य। भगारिणां ग्रष्टस्थानां देशत एकदेशविरति-सच्चम्। किं विशिष्टानामगारिणां यतिधमानुरक्तानां यतिधमें सर्वविरतिचारित्ररूपे भनुरक्तानां संद्यनगदिदीवादकुर्वतामपि प्रोतिमताम्।

यदाइ--

सर्वेविरतिसाससः खनु देशविरतिपरिणामः यतिधर्मानु-रागरिहतानां तु ग्रहस्थानां देशविरतिरिप न सम्यगिति देशतः स्वादगारिणामित्युक्तम्। तत्र याद्यो ग्रहस्थो धर्माधि-कारो ताद्वशसुपदर्भयितुं तथाहीत्यनेन प्रस्तावनामाह ॥ ४६॥

तथा ही त्युपदर्भने निपातसमुदाय: —

न्यायसम्पन्नविभवः शिष्टाचारप्रशंसकः ।
कुलशीलसमैः साईं क्ततोहाइोऽन्यगोनजैः ॥ ४०॥
पापभौकः प्रसिद्धं च देशाचारं समाचरन् ।
पवर्षावादौ न क्वापि राजादिषु विश्वेषतः ॥ ४८॥
पनित्यक्तगृप्ते च स्थाने सुप्रातिविश्मिके ।
पनिकानगैमद्दारविवर्जितनिकेतनः ॥ ४८॥
कृतसङ्गः सदाचारैमितापित्रोश्च पूजकः ।
स्थजन्नप्रमुतं स्थानमप्रवृत्तश्च गर्हिते ॥ ५०॥

व्ययमायोचितं कुर्वन् वेषं वित्तानुसारतः ।

प्रशिक्षींगुणैर्युक्तः शृग्वानो धर्ममन्वहम् ॥ ५१॥

प्रजीर्णे भोजनत्यागी काले भोक्ता च सात्यतः ।

प्रन्योऽन्याप्रतिबन्धेन चिवर्गमिष साध्यन् ॥ ५२॥

यथावदितयौ साधौ दौने च प्रतिपत्तिक्तत्।

सदानभिनिविष्टस पचपातौ गुणेषु च ॥ ५३॥

पर्देशाकालयोस्थां त्यजन् जानन् बलाबलम् ।

दत्तस्यज्ञानदृद्धानां पूजकः पोष्यपोषकः ॥ ५४॥

दौर्घदर्शी विश्रेषज्ञः कृतज्ञो लोकवृत्वभः ।

सलक्तः सदयः सौम्यः परोपकृतिकर्मठः ॥ ५५॥

प्रन्तरङ्गारिषड्वर्गपरिष्ठारपरायणः ।

वशीकृतिन्द्रियगामो ग्रिष्ठधर्माय कल्पते ॥ ५६॥

(दशभि. कुलकम्)

सामिद्रोहिमितद्रोहिविष्वसितवञ्चनचौर्यादिगर्ज्ञार्थोपार्जनप-रिहारेचार्थोपार्जनोपायभूतः सस्तवर्षानुरूपः सदाचारी न्याय-स्तेन सम्पन्न उत्पन्नो विभवः सम्पद्यस्य स तथा। न्यायसम्पन्नो हि विभव इह्नोकहिताय। प्रमङ्गनीयतया स्वमरीरेच तत्पन-भोगासितस्तजनादी संविभागकरणात्र।

यदाइ---

सर्वेत ग्रुचयो घीराः खकमीवलगर्विताः। कुकमीनद्दतासानः पापाः सर्वेत मिह्नताः॥ १॥

परलोकिश्विताय च सत्पात्रेषु विनियोगाहीनादी क्षपया वितरणाच । चन्यायोपात्तलु लोकहयेऽप्यश्वितायैव । इष्टलोके श्विकविवहकारिणो वधवन्यादयो दोषाः परलोके नरकादि-गमनादयः । यद्यपि कस्यचित्पापानुवन्यिपुष्यकर्म्यवगादेश्विक-लौकिको विपद्य दृष्यते तथाप्यायत्यामवष्यक्याविन्येव ।

यदाइ--

पापिनैवार्धरागात्यः फलमाप्नोति यत् काचित्। बिडियामिषवत्तत्तमिवनाम्यः न जीर्यति ॥ १॥ न्याय एव परमार्थतोऽर्थीपार्जनोपायोपनिषत्।

यदाच--

निपानिमव मण्डूकाः सरः पूर्वमिवाण्डजाः । ग्रमकमीणमायान्ति विवधाः सर्वसम्पदः ॥ १ ॥ विभवश्वं च गार्डस्ये प्रधानं कारणमित्यादी न्यायसम्पद-विभव इत्युक्तम् ॥ १ ॥

तथा शिष्टाचारप्रशंसकः शिष्यन्ते स्म शिष्टा वृत्तस्वज्ञानवद्य-वैदोपसम्बद्धिद्वशिषाः पुरुषदिश्रेषास्तेषामाचारस्वरितम् । यथा—

> लोकापवादभीकलं दीनाभ्युक्रकादरः । कतन्त्रता सुदान्त्रिक्षं सदाचारः प्रकीर्त्तितः ॥१॥ इत्यादि ।

तस्य प्रशंसकः।

यथा---

विषयुषै: स्पैर्यं पदमनुविधेयं च महतां
प्रिया न्याय्या हित्तर्मान्तनमस्भक्षेऽध्यस्वरम् ।
प्रमन्तो नाभ्यय्याः सुद्धदिष न याच्यस्तनुधनः
सतां केनोहिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥ १ ॥ २ ॥

तथा कुलं पिष्टिपितामहादिपूर्वपुक्षवंगः ग्रीलं मद्यमांस-निगाभोजनादिपरिशारकपः समाचारस्ताभ्यां समासुखाः सम-कुन्त्रीला इ चर्यः। गोतं नाम तयाविधैकपुरुषप्रभवी वंगस्तन जाता गीवजा: तेभ्यो ब्लोब्यगीवजास्तै: सार्चे कतोदासी विद्वितविवाद्यः। श्राग्नदेवादिसाचिकं पाणियन्तर्णं विवाद्यः। स च लोकेऽष्टविध:। तत्रालक्षात्य कन्यादानं ब्राह्म्यो विवाहः १ विभवविनियोगेन कन्यादानं प्राजापत्यः २ गोमिधुनदानपूर्वक-मार्ष: १ यत यन्नार्थमालिज: कन्याप्रदानमेव दिचणा स दैव: ४ एते धभारा विवाहाबलारः। मातुः पितुर्वेन्यूनां चाप्रामास्थात्पर-सारानुरागेण मिथः समवायाहान्धवः ५ पणबन्धेन कन्याप्रदान-मासुर: ६ प्रसञ्चानन्यायहणाट्राचस: ७ सुप्तप्रमत्तनन्यायहणा-त्येगाचः ८। एते चलारोऽप्यधर्मगाः। यदि वधृवरयोः परस्परं क्चिरिस्ति तदा अधर्याः पि धर्म्याः । शुक्रकलवलाभफली विवाह:। भग्रदभायीदियोगेन नरक एव। तत्फलं वधूरचण-माचरतः सुजातस्रतमन्तिरनुपद्दता चित्तनिव्वत्तिर्गृष्टकत्यस्रवि-हिनलमाभिजात्याचारविश्वदलं देवातिथियान्धवसत्तारानवश्चतं चिति। वधूरचणोपायास्वेते। ग्रष्टकर्मविनियोगः १ परिमितोऽर्ध-संयोगो २ ऽस्वातन्त्राम् ३ सदा च मात्रतुष्यस्त्रीलोकावरोधन-४ मिति॥ ३॥

पापानि दृष्टादृष्टापायकारणानि कर्माण तेभ्यो भीकः।
तत्र दृष्टापायकारणानि चौर्यपारदारिकत्वयूतरमणादीनि दृष्टलोकेऽपि सकललोकप्रसिद्धविख्यनास्थानानि। षदृष्टापायकारणानि मद्यमांसचेवनादीनि ग्रास्त्रनिक्षपितनरकादियातनाफलानि॥४॥

प्रसिद्धः तथाविधापरिशिष्टसन्त्रततया दूरं कृतिमागतः।
देशाचारो भोजनाच्छादनादिचित्रक्रियात्मकः सकलमण्डलव्यवशारस्तं सम्यगाचरन् तदाचारातिलङ्गने हि तहेशवासिजनतया विरोधसन्त्रावनादकस्थाणलाभः स्थात्॥ ५॥

भवर्षीऽस्नाघा तं वदतीत्येवंशी कोऽवर्षवादी न कापि। जवन्योत्तममध्यमभेदेषु जन्तुषु परावर्षवादी हि बहुदोषः।

यदाइ---

परपरिभवपरिवादादाकी लर्जाच बढाते कथा।
नीचेगीं त्रं प्रतिभवमने कभवकी टिदुर्मीचम् ॥ १ ॥
तदेवं सकलजनगोचरोऽ प्यवर्षवादी न श्रेयान्। किं पुनाराजामा त्यपुरोक्षितादिषु बहुजनमान्येषु। राजायवर्षवादाि ।
'विक्तप्राचनाशनादिरपि दोष: स्थात्॥ ६ ॥

⁽१) क ग क वित्तवाषनाश[दरिप।

तया भनेकं बहु यित्रभादारं उपलक्षणत्वास्तरेव स प्रवेशदारं तेन विवर्क्कितं निकेतनं यस्य स तथा। बहुत हि निर्ममप्रविग्रहारे-ष्वनुपनच्चमाननिर्भमप्रवेशानां दुष्टलोकानामापाते स्त्रीद्रविचादि-विम्नवः स्थात्। पत्र चानेकदारतायाः प्रतिषेधेन विधिराचिष्यते। ततः प्रतिनियतद्वारसर्चितग्रहो ग्रहस्यः स्वादिति लभ्यते । तथा-विधमपि निवेतनं स्थान एव निवेशयितं युक्तं नास्थाने । स्थानं तु गलादिदोवरहितं बहुलदूर्वीप्रवालकुग्रस्तस्वप्रगस्तवर्षगन्धसृत्ति-कासुखादुजलोद्गमनिधानादिमञ्च। स्थानगुषदोषपरिज्ञानं गक्तनसप्रोपस्रतिप्रभृतिनिमित्तादिवसेन। स्थाननेव विग्रिनष्टि। त्रतिव्यक्तमतिप्रकटमतिगुप्तमतिप्रच्छवं तिविषेधादनतिव्यक्तगुप्तम्। तत प्रतिव्यक्ते द्वासविचितग्रहान्तरतया परिपार्षतो निरावरचः तया चौरादयोऽभिभवेयु:। प्रतिग्रुप्ते च सर्वतो रहहान्तरैनिइइ-लाव स्वयोभां सभते। प्रदीपनकाद्युपद्रवेषु च दु:खनिगमप्रवेषं ग्टइं भवति। पुनः कदंभूते स्थाने सुप्रातिवेश्मिके शोभनाः योलादिसम्पन्नाः प्रातिवेश्मिका यत्र । क्ष्मीलप्रातिवेश्मिकत्वे हि तदालापत्रवणतचेष्टादर्भनादिवणात् खतः सगुणस्वापि गुणहानिः स्वात्। दुष्पातिवीस्मकास्वेते शासप्रतिषिदाः—

> खरियातिरिक्वजोषीतालायरसमषमाञ्चससाणा। वमुरिश्ववाञ्चतिष्यञ्चरिएसपुलिंदमच्छं धा॥१॥०॥

तथा कतः सङ्गो येन स कतसङ्गः सन् शोभन भाषार इष्ट-परनोकष्टिता प्रवृत्तियेषां ते सदाचारास्तेने तु कितवधूर्त्तविट-भद्दभण्डनटादिभिस्तलाङ्गे ष्टि सदिप शीलं विकीयेत ।

यदाह--

यदि सम्मानिरतो भविष्यसि भविष्यसि । षयासळानगोष्ठीषु पतिष्यसि पतिष्यसि ॥ १ ॥ सङ्गः सर्वोक्षना त्याच्यः स चेच्यक्तं न प्रकाते । स सद्गः सङ्ग कर्त्तव्यः सन्तः सङ्गस्य भेषजम् ॥ २ ॥

॥ इति च ॥ ८ ॥

तंथा माता जननी पिता जनकस्तयोः पूजकस्त्रिसन्धं प्रणामकरणेन परलोकहितानुष्ठानियोजनेन सकलव्यापारेषु तदाच्चया प्रष्ठस्थां वर्णगन्धादिप्रधानस्य प्रष्णफलादिवस्तृन उपठौकनेन तङ्गोगे भोगेन चात्रादीनामन्यत्र तदनुचितादिति माता च पिता च मातापितरी "पाइन्हे" ॥ ३।२।३८॥ इत्यात्वं मातुषाभ्यहितत्वात्पूर्वनिपातः।

यमनु:---

उपाध्याया दशाचार्य पाचार्याचां गतं पिता । सहस्रं तु पितुर्माता गीरवेणातिरिचते ॥ १ ॥ ८ ॥

तया त्यजन् परिश्वरन् उपप्नृतं स्वचक्रपरचक्रविरोधाष्ट्रभिच-मारीतिजनविरोधादेशास्त्रस्थीभूतं यत् स्थानं ग्रामनगरादि। श्रत्यच्यमाने श्वितस्मिन् धन्मार्थकामानां पूर्वार्जितानां विनाधिन नवानां शानुपार्जनेनोभयसोकाश्रंण एव स्वात्॥ १०॥

तथा गर्डितं देशजातिकुलापेचया निन्दितं कर्या तनाप्रवृत्तः । देशगर्डितं यथा—

सीवीरेषु कविकमा । साटेषु मद्यसन्धानम् ।

जारायेच्या यदा--

बाद्माचस्त्र सुरापानं तिससवसादिविक्रयस ।

कुसापेचया यथा-

चीतुक्यानां सद्यपानम्। गर्डितकर्यंकारिचो दि ग्रेषसपि धर्म्यं कर्णापद्यासाय भवति ॥ ११॥

तथा व्ययो भक्तं व्यभरक् स्वभीगरेवताति थिपूजना दिप्रयोजने द्रव्यविनयोगः। पायः क्रविपाग्रपास्यवाकिन्यसेवादिजनितो द्रव्यकाभः तस्वीचितमनुक्षपं व्ययं कुर्वन् ।

यदाइ--

'लाभोचियदाचे लाभोचियभोगे लाभोचियनिष्ठिकरे सिया। पायोचितस व्ययसतुर्भागादितया कैसिदुचते।

यदाइ--

पादमायानिषिं कुर्यात्पादं वित्ताय खद्ययेत्। धर्मीपभोगयोः पादं पादं भक्तव्यपोषचे ॥ १ ॥

वेचिचाइ:---

षायादर्षे नियुष्तीत धर्मे समधिकं ततः । प्रेषेण ग्रेषं कुर्वीत यत्नतसुष्टमेहिकम् ॥ १॥

भायानुचितो हि व्ययो रोगमिव ग्ररीर क्रगीकृत्य विभव-सारमखिलव्यवहारासमधे पुरुषं कुर्वीत ।

⁽१) बाभीवितरानं बाभीवितभोगो बाभीवितनिधिकरः सात्।

उत्तश

षायव्ययमनासीच्य यसु वैत्रवचायते ।

पविरेचैव कालेन सोऽत वै त्रमचायते ॥ १ ॥ १२ ॥

तया विषो वस्त्रासद्वरणादिभोगः । विसं विभव उपसच्चा-द्वयोऽवस्यादेशकासजात्यादिग्रदः । तदनुसारेष तदानुकृष्येष कुर्व्वविति सम्बद्धाते । विभवाद्यननुसारेण विषं कुर्वतो जनोप-द्वसनीयतातुच्छत्वान्यायसभावनादयो दोषाः । श्रववा व्यय-मायोचितं कुर्वत्रेव विषं विस्तानुसारेण कुर्व्ववेवित्यपरोऽर्धः । यो द्वि सत्यप्याये कार्पस्थाद् व्ययं न करोति सत्यपि विसे कुर्वेस्नत्वादिधर्मा भवति । स स्नोकगर्द्वितो धर्मोऽप्यनिधका-रौति ॥ १३ ॥

तथा षष्टभिर्धीगुर्वेर्युतः धियो बुहेर्गुषाः ग्रमूषादयः । ते स्वमी—

> श्चत्रुषा त्रवसं चैव ग्रहणं धारचं तथा। जहोऽपोहोऽर्धविद्यानं तस्वद्यानं च धीगुणा:॥१॥

तन ग्रुत्र्वा त्रोतुमिच्छा। त्रवचमाकर्षनम्। ग्रइषं गासार्थी-पादानम्। धारचमविक्षरणम्। जद्दो विज्ञातमर्थमवलम्बान्येषु तथाविधेषु व्याक्षा वितक्षणम्। भपोष्ठ उक्तिगुक्तिभ्यां विद्वादर्थात् द्विंसादिकात् प्रत्यपायसभावनया व्यावर्त्तनम्। भथवा जद्दः सामान्यज्ञानमपोद्दो विशेषज्ञानम्। भर्यविज्ञानमूद्दापोद्दयोगा-सोइसन्देद्दविपर्यासन्युदासेन ज्ञानम्। तत्त्वज्ञानसूद्दापोद्दविज्ञान-विग्रदमिदमित्यनेविति निषयः। ग्रुत्वादिभिद्दि उपादितप्रज्ञा- प्रकर्षः प्रमान कदाचिदकस्थाणमाप्रोति। एते च बुह्यगुषा यथासन्थवं द्रष्टव्याः ॥ १४॥

तथा यखानसाच्छीस्थेन धर्ममभ्युदयनिः त्रेयसहेतुं यखन् प्रतिदिनं धर्मत्रवसपरो हि 'मनः खेदापनोदादिक-माप्रोति।

यदाष्ट---

सान्तमपोग्भित खेदं तमं निर्वाति बुद्धाते मूढम् ।
स्थिरतामिति व्याकुलसुपयुक्तसभाषितं चेतः ॥ १ ॥
प्रत्यदं धर्मत्रवणं चोत्तरोत्तरगुणप्रतिपत्तिसाधनत्वात्रधानमिति त्रवणमानाद्दिगुणादस्य भेदः ॥ १५ ॥

तया प्रजीर्चे प्रजरे पूर्वभोजनस्य प्रयवा प्रजीर्चे परिपाक-मनागते पूर्वभोजने नवं भोजनं त्यजतीत्येवंगीतः । प्रजीर्घ-भोजने हि सर्वरोगमूलस्याजीर्षस्य हिंदिन कता भवति ।

यदाइ--

श्रजीर्षप्रभवा रोगा इति। श्रजीर्थं च लिङ्गतो ज्ञातव्यम्।

यदाष--

मलवातयोर्विगन्धो विड्भेदी गावगीरवमक्चम्। प्रविग्रद्वचीद्वारः वडजीर्थव्यक्तलिङ्गानि॥१॥१६॥ तवा काले कुभुचासमये भोक्ता चनायुपजीवकः। भोक्तेति

⁽१) न क मनः खेरायनोर्नाहिकं करोति। २०

साधी छन् तेन लीखपरिहारेण यथानिवलं मितं भुन्नीत। प्रतिरिक्तभोजनं हि वमनविरेचनमरणादिना न साधु भवति यो हि मितं भुङ्क्ते स बहु भुङ्क्ते। प्रसुधितेन द्वास्तमपि भुक्तं भवति विषम्। तथा स्नुलालातिक्रमादबहेषो देहसादस भवति। विध्यातिऽस्नी किं नामेश्यनं कुर्योदिति।

पानाद्यारादयो यस्याविषदाः प्रकृतिरपि । सुखित्वायावकस्यन्ते तत्साकामिति गीयते ॥ १ ॥

एवं सच्चासासात् पाजस सास्त्रान भुतं विषमपि पथं भवति। परमसासामपि पथं सेवेत न पुनः सास्त्राप्ताप्तमप्यपथ्यम्। सवें बसवतः पथ्यमिति मत्वा न कासकूटं खादेत्। सुग्निचितो-ऽपि विषतस्त्रचो सियत एव कदाचिहिषात्॥ १०॥

तथा विवर्गी धर्मार्थकामस्तव यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिदिः स धर्मः । यतः सर्वप्रयोजनसिद्धिः सीऽर्थः । यतः पाभिमानिक-रसानुविद्या सर्वेन्द्रियप्रीतिः स कामः । ततोऽन्योऽन्यस्य परस्यरं योऽप्रतिबन्धोऽनुपचातस्तेन विवर्गमपि नत्वेकैकं साध्येत्।

यदाइ--

यस्य तिवर्भश्रन्थानि दिनान्थायान्ति यान्ति च। स लोइकारभस्तेव खसन्नपि न जीवति॥१॥

तत्र धर्मार्थयोदपघातेन तादात्विकविषयसुखलुब्धो वनगज इव को नाम न भवत्यास्पदमापदाम्। न च तस्य धनं धर्मः यरीरं वा यस्य कामिऽत्यन्तासितः। धर्मकामातिकमाचनसुपा-र्जितं परेऽनुभवन्ति स्वयं तु परं पापस्य भाजनं सिंह इव सिश्चरवधात्। पर्यकामातिक्रमेण च धर्मसेवेवा यतीनामेव धर्मा न ग्रह्मस्थानाम्। न च धर्मबाधयाऽर्यकामी सेवेत। बीजभोजिनः कुटुम्बिन इव नास्यधार्मिकस्थायत्यां किमिष कस्थाणम्। स खलु सुखी योऽमृत्र सुखाविरोधेन इइलोकसुखमनुभवति। एवमर्ष-बाधया धर्मकामी सेवमानस्य ऋणाधिकत्वम्। कामबाधया धर्मार्थी सेवमानस्य गाईस्थाभावः स्थात्।

एवं च तादालिकमूल इरकदर्येषु धर्मार्थकामानामन्योऽन्य-वाधा सुलभैव्।

तथाहि-

यः किमप्यसिष्वस्थोत्पन्नमर्थमपश्चेति स तादालिकः। यः पिष्टपैतामसमर्थमन्यायेन भचयित स मूलहरः। यो स्वत्यास्य पीडाभ्यामर्थं सिष्वनोति न तु कचिद्पि व्ययते स कद्यः। तन तादालिकमूलहरयोर्थभ्यं भेन धर्मकामयोर्विनाभानास्ति कस्याणं कद्यस्य व्यर्थसंपद्यो राजदायादतस्कराणां निधिनेतु धर्मकामयोर्दिति। भनेन च विवर्भवाधा ग्रहस्यस्य कर्तुमनुचितिति प्रतिपादितम्। यदा तु दैववभाषाधा सन्भवति। तदोत्तरोत्तर-वाधायां पूर्वस्य पूर्वस्य वाधा रच्चणीया।

तयाहि-

कामबाधायां धर्मार्थयोबीधा रच्चणीया तयोः सतीः कामस्य सुकरोत्पादकलात्। कामार्थयोसु बाधाया धर्मी रचणीयः धर्ममूललादर्थकामयोः।

उत्तव

धर्मचेत्रावसीदेत कपालेनापि जीवत:।

षाक्योऽस्मीत्ववगन्तव्यं धर्मवित्ता हि साधवः ॥ १ ॥ १८ ॥ तथा न विद्यते सततप्रवृत्तातिविष्यदेकाकारानुष्ठानतया तिष्यादि-दिनविभागो यस्य सोऽतिधिः ।

यथोत्तम्-

तियिपवीं सवाः सर्वे त्यक्ता येन महास्नना । प्रतियि तं विजानीयाच्छेषमभ्यागतं विदुः ॥ १॥

साधः शिष्टाचाररतः सकललीकाऽवगीतः। दीनो दीङ्च् धय इति वचनात् चीणसकलधभाष्यकामाराधनशक्तः तेषु प्रति-पत्तिकत् प्रतिपत्तिरुपचारोऽवपानादिङ्पः। कथं यथावत् चीचित्यानतिकमेण।

यदाइ---

भीचित्यमेकमेकच गुणानां कोटिरेकत:। विषायते गुणगाम भीचित्यपरिवर्जित:॥१॥१८॥

तया भनभिनिविष्टोऽभिनिवेगरहित:। भभिनिवेगस नौति-पयमनागतस्वापि पराभिभवपरिषामेन कार्यस्थारभः। स च नौचानां भवति।

यदाष्ट्र--

दर्णः त्रमयति नीचाविष्फलनयविगुणदुष्करारशैः। त्रोतोविलोमतरणव्यसनिभिरायास्यते मत्स्यैः॥१॥ भनभिनिविष्टलं च कादाचित्नं शाळाचीचानामपि सन्भव-त्यत चाइ। सदेति॥२०॥

तया गुणेषु सोजन्धौदार्थदाचिष्यस्थैर्थप्रियपूर्वप्रथमाभिभावणादिषु स्वपरयोषपकारकारकेष्याक्रभमेंषु पच्चपाती । पच्चपातसु
बहुमानतस्रयंसासाहाय्यकरबादिना चनुकूला प्रवृत्तिः । गुच्चपचपातिनो हि जीवा चवन्यपुद्धवीजनिषेकेषेषासुत्र च गुच्चामसम्पदमारोहन्ति ॥ २१ ॥

तथा प्रतिषिद्धो देगोऽदेशः प्रतिषिद्धः कालोऽकालः तयोर-देगाकालयोद्यर्थं चरणं तां त्यजन् परिदरम् प्रदेशकालचारी दि चौरादिभ्योऽवस्यमुपद्रवमाप्नोति ॥ २२॥

तथा जानन् विदन् बसं यितं स्वस्य परस्य वा द्रव्यचित्रकास-भावततं सामर्थ्यम् । चवलमपि तथैव बसावसपरिचाने दि सर्वः सफल चारकः चन्यया तु विपर्ययः ।

यदाह-

स्थाने ग्रमवतां ग्राह्या स्थायामे हिंदिएक्वाम्। भयवाबलमारको निदानं चयसम्पदः ॥१॥ इति ॥ २३ ॥

तथा वसमनाचारपरिहारः सम्यगाचारपरिपालनं च। तत्र तिष्ठन्तीति वस्त्रयाः। ज्ञानं हेयोपादेयवस्त्रविनिषयस्तिन वहा महान्तः। वस्त्रयाय ते ज्ञानवद्याय तेषां पूजकः। पूजा च सेवा-ष्त्रत्यासनाभ्यत्यानादिसच्चा। वस्त्रस्त्रज्ञानवन्ती हि पूज्यमाना नियमात्कस्पतरव दव सदुपदेशादिफलैः फलन्ति ॥ २४ ॥ तथा पोषा पवश्यभत्तेचा माद्यपित्वयः चिष्यपत्यादयस्तान् योगचेमकरचेन पोषयतीति पोषकः ॥ २५ ॥

तथा दीर्घकासभाविलाहीर्घमधमनधं च पश्वित पर्यासीचय नीलीवंगीसी दीर्घदर्शी ॥ २६॥

तया वस्तवसुनोः स्नत्याक्तत्ययोः स्वपरयोर्विभेषमन्तरं जानाति निषिनोतौति विभेषन्नः। पविभेषन्नो हि पुरुषः पगी-नीतिरिचते। प्रयवा विभेषमास्नन एव गुणदोषाधिरोष्टलचणं जानातौति विभेषनः।

यदाष्ट्र- १ १ ११ १ ४ । साम १४ १ १ १ १ ।

प्रत्यष्टं प्रत्यविचेतः नरयरितमा मनः।

किंतु में पश्चभित्तुक्यं किंतु सत्पुक्षेरिति ॥१॥२०॥ तथा क्रतं परोपक्रतं जानाति न निक्कृते क्रतचः एवं दि तस्य कुश्चलाभो यदुपकारकारिणो बद्ध मन्यते क्रतचस्य तु निष्कृति-रेव नास्ति ।

यदाच-

जतन्ने नास्ति निष्कृतिरिति ॥ २८ ॥

तथा लोकानां विधिष्टजनानां विनयादिश् वैवेषभः प्रियः। को हि गुचवतः प्रति प्रीतो न भवति। यसु न लोकवषभः स न केवलमाकानं स्वस्य धर्मानुष्टानमपि परैर्दूषयन् परेषां बोधिलाभ-भ्रंथहित्रभैवति॥ २८॥

तया सक्या वैयात्याभावः सद्द सक्या सत्तकः। सक्यानान् हि प्राचप्रहापेऽचि न प्रतिज्ञातमपञ्जहाति।

यदाइ--

ला गुषीघननीं जननीसिवार्था-मत्यन्तग्रहष्ट्रद्यामनुवर्त्तमानाः । तेजिखनः सुखमस्नपि सन्यजन्ति सत्यस्वितिव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ॥ १॥ ३०॥

तया सद दयया दु:खितजन्तुदु:खत्राचाभिलावेच वर्त्तत दित सदय:। धर्मख दया मूलमिति श्वामनन्ति। तदवधं दयां कुर्वति।

यदाइ-

प्राणा यथाकानीऽभीष्टा भूतानामित ते तथा।

पाकीपस्थेन भूतानां दयां कुर्वीत मानव ॥ १ ॥ ३१ ॥

तथा सीस्योऽक्रूराकारः क्रूरो हि लोकस्थोहेगकारणम् ॥३२॥

तथा परीपक्रती परीपकारे कक्षेठः कक्षेय्ररः कक्षाणि

घटते "तव घटते कक्षेण्ष्ठः" ॥ ७ । १ । १३० ॥ इति ठः

परीपकारपरी हि पुमान् सर्वस्य नेवास्ताष्ट्रनम् ॥ ३३ ॥

तथा चन्तरङ्गसासावरिषड्वर्गसान्तरङ्गारिषड्वर्गस्तस्य परि-हारोऽनासेवनं तत्र परायणस्तत्परः । तत्रायुक्तितः प्रयुक्ताः काम-क्रोधलोभमानमद्द्रवाः शिष्टग्रहस्थानामन्तरङ्गोऽरिषड्वर्गः । तत्र परपरिग्रहोतास्वनृद्रासु वा स्रोषु दुरभिसन्धः कामः । परस्थान्ननो वा चपायमविचार्य कोपकरणं क्रोधः । दानाईषु स्वधनाप्रदानं निक्कारणं परधनग्रहणं च स्रोभः । दुरभिनिवेशारोही युक्तोक्ता- ग्रष्ठणं वा मानः । कुलवलैम्बर्थक्पविद्यादिभिरहक्कारकरचं परः प्रधर्षनिवस्वनं वा मदः । निर्निमित्तं परदुःखोत्पादनेन खस्य द्यूतपापर्वग्राद्यनर्घसंत्रयेच वा मनःप्रमोदो हर्षः । एतेषां च परिहार्थेलमपायहेतुलात् ।

यटा ह ---

दाण्डको नाम भोजः कामाद्वाद्व्यकन्यामिमन्यमानः सबस्रुराष्ट्रो विननाय करालय वैदेषः १ क्रीधाळ्यनमेजयो ब्राह्मपेषु विकान्तस्तालजक्ष्य स्रगुषु २ लोभादेलयातुर्वर्ष्वमभ्या-ष्टारयमाणः सीवीरसाजबिन्दः १ मानाद्रावणः परदारानप्रयच्छन् दुर्यीधनो राज्याद्श्वंशं च ४ मदादश्रीद्ववो भूतावमानी दैष्टयवार्जुनः ५ प्रवीदातापिरगस्यमभ्यासादयन् दृष्णिसक्ष्य देपायन ६ मिति ॥ ३४ ॥

तथा वशीक्रतः खच्छन्दतां त्याजित इन्द्रियग्रामी इषीक-समूहो येन स तथा। पत्यन्ताग्रिक्तपरिहारेण स्पर्भनादीन्द्रिय-विकारनिरोधकः। इन्द्रियजयो हि पुरुषाणां परमसम्पदे भवति।

यदाइ--

भापदां कथितः पत्ना इन्द्रियाचामसंयमः ।
तज्जयः सम्पदां मार्गी येनेष्टं तेन गम्मताम् ॥ १ ॥
इन्द्रियाखीव तस्तवें यत् स्वर्गनरकावुभी ।
निग्रहीतविद्यष्टानि स्वर्गीय नरकाय च ॥ २ ॥

सर्वधिन्द्रियनिरोधलु यतीनामेव धर्मं इह तु श्रावकधर्मीचित-ग्टहस्यस्वरूपमेवाधिकतमित्येवसृक्षम् ॥ ३५ ॥

एवंविधगुषसमग्रो मनुष्यो ग्रहिधर्ग्याय करूते प्रधिकतो भवतीति॥५६॥ ,

इति परमार्श्वतश्रीकुमारपालभूपालग्रश्रृषिते ग्राचार्यश्रीहेमचन्द्र-विरचितेऽध्यालोपविषवान्ति सन्त्रातपद्दवन्धे सीयोगगास्त्री स्वोपत्तं प्रथमप्रकाश्यविवरणम् ।

चईम्

हितीयः प्रकाशः।

ग्टिहिधनीय कलात इत्युत्तं ग्टिहिधनीय त्रावकधनी: स च सम्यक्तमूलानि हादग्रवतानि तान्येवाह—

सम्यक्षमूलानि पञ्चागाव्रतानि गुगास्त्रयः। शिचापदानि चत्वारि व्रतानि ग्रहमेधिनाम्॥१॥

सम्यक्तं मूलं कारणं येवां तानि सम्यक्तमूलानि । भणूनि महा-व्रतापेचया लघूनि व्रतानि भिह्नंसादीनि पञ्च एतानि मूलगुणाः । गुणास्त्रय उत्तरगुणकृपाः ते च गुणव्रतानि दिग्वतादीनि व्रीणि । शिचणं शिचा भभ्यासः शिचाये पदानि स्थानानि चत्वारि सामायिकादीनि प्रतिदिवसाभ्यसनीयानि तत एव गुणव्रतेभ्यो भेदः । गुणव्रतानि हि प्रायो यावज्ञौविकानि । एवं हादशव्रतानि ग्टह्मेधिनां त्रावकाणाम् ॥ १ ॥

सम्यक्तमूलानीत्युक्तं तत्र सम्यक्तं विभजति—
या देवे देवताबुह्निगुरी च गुक्ततामितः ।
धर्मा च धर्माधीः शुह्रा सम्यत्वमिद्मुच्यते ॥ २ ॥
या देवे गुरी धर्मे च वस्त्रमाणलच्चि देवत्वगुक्त्वधर्मत्वबुह्रिरयमैव
देवो गुक्धेमा इति निषयपूर्वा क्चिः त्रहानमिति यावत् शहा
पद्मानसंग्यविषयीसनिराकर्षेन निर्माला सा सम्यक्तम् । यद्यपि

क्विर्जिनोक्ततस्विष्विति यतियावकाषां साधारणं सम्यक्कत्वणसृक्तम्। तथापि ग्रष्टस्थानां देवगुक्धमेंषु पूज्यत्वोपास्यत्वानुष्ठेयत्वलचणोपयोगवगाद् देवगुक्धमेंत्रस्वप्रतिपत्तिलचणं सम्यक्कं पुनरिभिष्टितम्। ननु तस्वार्थक्विलचणे सम्यक्के देवगुक्धमाणां क तस्वेऽन्तर्भावः। उच्यते देवा गुक्वय जीवतस्वे धर्मः श्रभायवे संवरे चान्तर्भवति। सम्यक्कं च विधा घौपण्यमिकं चायोपण्यमिकं चायिकं च। तत्वोपण्यमो भस्त्रस्वान्तिवत् मिष्यात्वमोष्ठनीयस्थानन्तानु-विश्वनां च क्रोधमानमायालोभानामनुद्यावस्था। उपण्यमः प्रयोजनं प्रवर्त्तकमस्य घौपण्यमिकं तचानादिमिष्यादृष्टेः करणवय-पूर्वकमान्तर्भौद्धत्तिकं चतुर्गतिगतस्थापि जन्तोभवतीत्युक्तप्रायम्। यदा उपण्यमयिस्थाकृदस्य भवति।

यदाइ--

'जवसामगरेदिगयस होइ उवसामियं तु समातं जो वा सकयितपुंजो स खिवयिमच्छो लहइ समां॥१॥ चयो मिष्यालमोइनीयस्थानन्तानुबन्धिनां च उदितानां देशतो निर्मूलनाशः सनुदितानां चोपश्रमः। चयेष युक्त उपश्रमः चयोपश्रमः स प्रयोजनमस्य चायोपश्रमिकं तच सल्कमार्वदनादे-दक्तमप्युच्यते। सीपश्रमिकं तु सल्कभावेदनारहितमित्योपश्रमिक चायोपश्रमिकयोभेंदः।

⁽१) उपमक्तिविषयतस्य भवति खीपमिकं त सम्यक्षम् । यो वारकतिविषञ्जव चिपितिमच्यो सभते सम्यक् ॥

यदाह--

'विएइ संतक्षमं खमीवसिमएस नास्तुभावं सो उवसंतकसामी उस विएइ न संतकमां वि । एतस्य च स्थिति: षट्षष्टिः सागरोपमाणि साधिकानि । यदाइ---

ेदी वारे विजयाइस गयसम तिससुए ऋहव ताइं। भइरेगं नरभवियं नाणाजीवाण सव्वतः॥ १॥ चयो मिथ्यात्वमोद्दनीयस्थानन्तातुवन्धिनां च निर्मूलनागः। चयः प्रयोजनमस्य चायिकं तच साद्यनन्तम्।

षत चान्तरञ्जोकाः--

मूलं बोधिहमस्यैतत् हारं पुष्यपुरस्य च।

पीठं निर्वाणहर्म्यस्य निधानं सर्वसम्पदाम्॥१॥

गुणानामिक भाधारो रक्षानामिव सागरः।

पात्रं चारित्रवित्तस्य सम्यक्तं झाध्यते न कैः॥२॥

प्रवितष्ठेत नाज्ञानं जन्ती सम्यक्तवासिते।

प्रचारस्तमसः कीष्टक् भुवने भानुभासिते॥ ॥॥

तिर्यम्बरकयोहरि दृढा सम्यक्तमर्गला।

देवमानवनिर्वाणसुखद्वारैककु चिका॥ ॥॥

⁽१) वेदयति सत्कर्म चायोपश्मिकेषु नानुभावं सः। खपभान्तकषायः पुनर्वेदयति न सत्कर्मापि॥

⁽२) ही वारान् विजयाहिषु गतस्य लीचि ऋच्युतेऽघवा तानि । स्वतिरेकं नरभविकं नानाजीवानां सर्वोद्वस् ॥

भवेषेमानिकोऽवर्थं जन्तुः सम्यक्तवासितः।
यदि नोष्ठान्तसम्यक्तो बषायुर्वापि नो पुरा ॥ ५ ॥
पन्तर्मुक्रक्तंमपि यः समुपास्य जन्तुः
सम्यक्तरत्नममसं विजव्हाति सद्यः।
वस्त्रस्यते भवपत्रे सुचिरं न सोऽपि
तिष्ठभ्ततिस्रतरं विमुदीरयामः ॥ ६ ॥ इति।

विपचन्नाने सति विविचतं सुन्नानं भवतीति सम्यक्कविपचं

मियालमाइ--

चदेवे देवबृहियां गुरुधीरगुरी च या। चधर्मे धर्माबृहिस मिट्यात्वं तहिपर्ययात्॥ ३॥

पदेवोऽगुरुरधर्भेष वश्चमाणलचणस्तत्र देवलगुरुत्वधर्भेत्व-प्रतिपत्तिलचणं मिष्यालं तस्य लचणं तिहपर्ययादिति तस्य सम्यक्कस्य विपर्ययः तस्माहेतोः सम्यक्कविपर्ययरूपलादित्यर्थः तथा च इदमपि संग्रेष्टीतं देवे पदेवलस्य गुरावगुरुत्वस्य धर्मे पधर्भेत्वस्य प्रतिपत्तिरिति ।

मियालं च पञ्चधा चाभियहिकमनाभियहिकमाभिनिवे-शिकं सांश्रयिकमनाभीगिकं च।

तत्नाभिग्रहिकं पाखिष्डमां खखशाखनियन्तितविवेका-सोकानां परपचप्रतिचेपदचाणां भवति॥१॥

भनाभिग्रहिकं तु प्राक्ततलीकानां सर्वे देवा बन्दनीया न निन्दनीया एवं सर्वे गुरवः सर्वे धन्मी रित ॥ २ ॥ चाभिनिवेशिकं जानतोऽपि यष्टास्थितं वसु दुरभिनिवेश-सिश्विद्वावितिधियो जमासेरिव भवति ॥ २ ॥

सांग्रयिकं देवगुरुधमें व्यामयं विति संग्रयानस्य भवति ॥ ४ ॥ भनाभीगिकं विचारगून्यस्यैकेन्द्रियादेवी विशेषविज्ञान-

यदाह--

'त्राभिगाहियं 'त्रणभिगाहं च तह त्रभिषिवेसियं चैव। संसद्यमणाभोगं मिष्कृतं पंचहा होइ॥१॥

घवासरञ्जोकाः--

मियालं परमो रोगो मियालं परमं तमः।

मियालं परमः गतुर्मियालं परमं विषम्॥१॥
जनाम्येकत दुःखाय रोगो ध्वान्तं रिपुर्विषम्।

पपि जन्मसङ्क्षेषु मियालमचिकिस्मितम्॥२॥

मिष्यालेनासीठिचत्ता नितान्तं तत्त्वातस्यं जानते नैव जीवाः।

किं जात्यन्थाः कुत्रचिद्दसुजाते

रम्यारम्यव्यक्तिमासादयेयु: ॥ ३ ॥

⁽१) चाभियहिनामनभियहं च तथा चाभिनिनेशिनं चैन । सौनक्षिनमनाभौगं निष्यालं पञ्चभा भनति ॥

⁽२) व व्यवभिगाष्ट्रवं।

देवादेवगुर्वगुरुधर्माधर्मेषु लच्चियत्रवेषु देवलचणमाद्य-सर्वच्चो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः । यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्ष्ट् ग्रमेश्वरः ॥ ४ ॥ देवस्य देवले चतुरोऽतिग्रयानाचचते विचचणाः । तद्यया---

ज्ञानातिशयः १ प्रपायापगमातिशयः २ पूजातिशयः ३ वागतिशययः । तत्र सर्वे इत्यनेन सक्तलीवाजीवादितत्त्वज्ञतया ज्ञानातिशय-माइ । नतु यथाइविश्वक्ववादिनः परे ।

सर्वे पख्रत् वा मा वा तत्त्विमष्टं तु पख्रत् ।

कीटसंख्यापरिज्ञानं तस्य नः कोपयुज्यते ॥ १ ॥

दूरं पख्रत् वा मा वा तत्त्विमष्टं तु पख्रत् ।

प्रमाणं दूरदर्शी चेदैतान् ग्टबुानुपास्महे ॥ २ ॥ इति ॥

निष्ठ विविच्चतस्येकस्यापीष्टस्यार्थस्य ज्ञानमश्रेषार्थज्ञानमन्तरेण
भवति । सर्वे ष्टि भावा भावान्तरैः साधारणासाधारणरूपा
'इत्यश्रेषज्ञानमन्तरेण सा लच्चस्यवैलच्चस्याभ्यां नैकोऽपि ज्ञातो
भवति ।

यदादुः— ।

एको भाव: सर्वथा येन दष्टः सर्वे भावास्तस्ततस्तेन दृष्टाः।

⁽१) क च इत्वयेषद्वतामन्दरेच।

सर्वे भावाः सर्वेषा येन दृष्टाः

एको भावस्तस्वतस्तेन दृष्टः ॥ १॥

जितरागादिदीष इत्यनेनापायापगमातिशयमाइ तने दं सर्वजनप्रतीतम्। यथा सन्ति रागहेषादयः। ते च दोषास्तैरात्मनो
दूपणात्। ते च जिताः प्रतिपच्चसेवनादिभिभगवतित जितरागादिदोष इत्युक्तम्। सदा रागादिरिहत एव कश्चित्पुक्षविश्रेषीऽस्तीति
तु वार्त्तामानम्। प्रजितरागादेशास्मदादिवन्न देवलिमिति।
तेलोक्यपूजित इत्यनेन पूजातिशयमाइ। कतिपयप्रतारितमुष्धवृद्धिपूजायां इ न देवलं स्थात्। यदा तु चिलतासनैः सरास्रैनीनादेशभाषाव्यवद्वारिवसंस्थुलैभेनुष्येः परस्परनिक्ववरैः सस्थमुपागतैस्तिर्थिभिष्य समवसरणभूमिमभिपतिद्वरहमद्दमिकया
सेवाष्म्रलिपूजागुणस्तोव्रधमदेशनास्तरसास्नादादिभिः पूज्यते
भगवान् तदा देवलिमिति। यथास्थितार्थवादीत्थनेन वागतिश्यः
यथास्थितं सङ्कृतमधं वदतीत्थेवंश्रीलो यथास्थितार्थवादी।

यदाचस्महि सुती-

भवचवातिन परोच्चमाणा इयं इयस्याप्रतिमं प्रतीम:। यथास्थितार्थप्रयनं तर्वेतदस्थाननिर्वन्थरसं परेषाम्॥१॥ यथा वा

चियेत वाडनी: सहग्रीकियेत वा तवांक्रिपीठे सुठनं सुरिग्रितु:।
 इदं यथावस्थितवनुदेशनं परै: कथक्कारमपाकिरिष्यते ॥ २ ॥
 देव इति सच्चपदं दीव्यते स्तूयते इति देव: स च सामर्थाः
 दर्षन् परमेखरी नान्य:॥ ४ ॥

चतुरतिश्रयवतो देवस्य ध्यानीपासनश्ररणगमनशासनप्रतिपत्तीः साधिचेपसुपदिश्रति—

ध्यातव्योऽयमुपाखोऽयमयं शरणमिष्यताम् । श्रस्यैव प्रतिपत्तव्यं शासनं चेतनास्ति चेत्॥ ५॥

षयं देवो ध्यातव्यः पिण्डस्यपदस्यक्पस्यक्पातीतक्पतया श्रेणिके-नेव । श्रेणिको हि वर्णप्रमाणसंस्थानसंहननचतुस्त्रिं यदित्रयादि-योगिनं भगवन्तं श्रीमहावीरमनुध्यातवान् । तदनुभावाच तहणे-प्रमाणसंस्थानसंहननातिश्ययमुक्तः पद्मनाभस्तीर्थकरो भविष्यति ।

यदाचच्चान्त्रि-

'तइ तम्राएण मणसा वीरजिणो भाइयो तए पुर्व्वि । जइ तारिसो चिय तुमं घहेसि ही जोगमाइप्यं॥ १॥ घागमय---

'जस्मीलसमायारी घरिष्ठा तिस्वंतरी मद्यावीरी।
तस्मीलसमायारी होष्टि हु घरिष्ठा मद्यापनमी॥२॥
उपास्य: सेवाञ्चलिसंबन्धादिना घयमेव देव: दुष्कृतगर्छीसुक्ततानुमीदनापूर्वकमयमेव देवो भवभयार्त्तिभेदी प्ररणमिष्यताम्।
प्रस्थैवोक्तलद्यणस्य देवस्य ग्रासनमाञ्चा प्रतिपत्तव्यं स्तीकरणीयम्।

⁽१) तथा तन्त्रवेन मनसा वीरिजनो ध्यातस्त्रवा पूर्वम् । यथा ताडय एव त्वमासीः भी योगमाभात्रत्रम् ॥

⁽२) बच्चीवरमापारो चईन् तीर्वंबरो महावीरः। तच्चीवरमापारो भविष्यति खनु चहुन् महापद्मः॥

यासनान्तराणि हि निरित्तिगयपुरुषप्रणेखकाणि न प्रतिपत्ति-योग्यानि । चेतनास्ति चेदित्यधिचेपः चेतनावत एव प्रत्युपदेशस्य सफलत्वात् । प्रचेतनं तु प्रति विफल उपदेशप्रयासः ।

यदाह ---

भरखनदितं कतं गवगरीरमुद्दत्तितं म्बपुच्छमवनामितं विधरकणेजापकतः। स्थले कमलरीपणं सुचिरमूषरे वर्षणं तदन्यमुखमण्डनं यदबुधे जने भाषितम्॥१॥५॥

भदेवलचणमाइ---

ये स्तीशस्त्राचमूत्रादिरागादाङ्ककलङ्किताः। निग्रहानुग्रहपरास्ते देवाः स्युर्न मुक्तये॥ ६॥

स्त्री कामिनी यस्त्रं यूनादि यचस्त्रं जपमाला तान्यादी येषां नात्राष्ट्रहासादीनां ते सीयसाचस्त्रादयः राग मादिर्येषां ते रागादयः मादिगन्दादृ हेषमोइपरिग्रहः रागादीनामसासिक्रानि सीयसाचस्त्रादयस्त रागाद्यक्षास्त्र तेः कलक्षिता दूषितास्त्रव्र स्त्री रागचिक्रं गस्त्रं हेषचिक्रं मचस्त्रं मोइचिक्रम्। वीतरागी हि नाक्ष्रनासङ्गभाग्भवति। वीतहेषो वा कथं गस्त्रं विश्वयात्। गतमोहो वा कथं विस्तृतिचिक्रं जपमालां परिग्रह्मीयात्। रागहेषमोहेः सर्वदीवाः संग्रहीतास्त्रम् ल्लास्त्रदीषाणाम्। निग्रहो वधवन्धादिः मनुग्रहो वरप्रदानादिः तौ परी प्रकृष्टो येषां ते तथा। निग्रहानु-ग्रहाविष रागहेषयोधिक्रे। य एवंविधास्ते देवा न भवन्ति सुक्तये

इति सिक्तिनिमित्तम्। देवत्वमाणं तु क्रीडनादिकारिणां प्रेत-पित्राचादीनामिव न वार्थते॥ ६॥

मुतिनिमत्तत्वाभावभेव व्यनिता—

नाव्यादृष्टाससङ्गीताद्युपञ्चविसंख्युलाः । लक्सयेयुः पदं शान्तं प्रपन्नान् प्राणिनः कथम्॥०॥

इष्ठमकसमंग्रारिकोपप्रवरिष्ठतं यान्तं पदं मुक्तिकैवस्यादि-यम्दाभिषेयमस्तीत्यत्र नास्ति विप्रतिपत्तिः। तत्तादृशं यान्तं पदं नात्यादृष्ठाससङ्गीतादिविसंस्युनाः स्वयमुपष्ठतद्वत्तयः कथमात्रित-जनान् प्रापयेयुः। नद्योरण्डतदः कल्पतद्वतीलामुद्दष्ठति। ततय रागदेषमोष्ठदोषविविर्क्तितो जिन एको देवो मुक्तये नेतरे दोष-दूषिताः।

प्रवास्तरश्चोकाः---

न सर्व्यक्ता न नीरागाः ग्रह्मरत्रक्काविष्णवः।

प्राक्ततेभ्यो मनुष्येभ्यो प्रयसमस्त्रसहित्ततः॥१॥
स्त्रीसङ्गः काममाचष्टे देवं चायुधरंग्रहः।
व्यामोष्ठं चाचस्त्रादिरशीचं च कमग्रहतुः॥२॥
गौरी कद्रस्य सावित्री ब्रह्मणः त्रीर्मुरिह्मणः।

प्रचीन्द्रस्य रवे रक्षादेवी दच्चाक्तजा विधोः॥१॥

तारा हहस्यतेः स्त्राहा वक्केसेतोसुवी रतिः।

धृमोर्णा त्राहदेवस्य दारा एवं दिवीकसान्॥४॥

सर्वेषां श्रस्तसम्बन्धः सर्वेषां मोहजृत्भितम् । तदेवं देवसन्दोडों न देवपदवीं स्प्रगेत्॥ ५॥ बुदस्यापि न देवलं मोद्याच्छून्याभिधायिनः। प्रमाणसिष्ठे शून्यत्वे शून्यवादकया वृथा॥ ६॥ प्रमाणस्वैव सस्त्वेन न प्रमाणविविजिता। भून्यसिहिः परस्यापि न स्वपत्तस्थितिः क्रयम्॥०॥ सर्वया सर्वभावेषु चिणिकत्वे प्रतिस्रते। फलेन सह सम्बन्धः साधकस्य कयं भवेत्॥ ८॥ वधस्य वधको हेतु: कद्यं चणिकवादिन:। स्मृतिय 'प्रत्यभिज्ञाच व्यवहारकरी कथम्॥ ८॥ निपत्य ददतो व्याघ्राः स्वकायं क्षमिसङ्ख्स् । देयादेयविमूठस्य दया बुबस्य की हशी॥ १०॥ स्वजन्मकाल एवालाजनन्युदरदारिण:। मांसोपदेशदातुस कयं शौदोदनेर्दया॥ ११॥ यो जानं प्रकृतिई मां भाषते सा निरर्धकम्। निर्मुणो निष्क्रियो सूठः स देवः कपिलः कथम्॥ १२॥ भार्याविनायकस्वन्दसमीरणपुरस्राराः। निगदान्ते कथं देवा: सर्वदोषनिकेतनम् ॥ १३ ॥ या पश्रर्गूयमश्राति खपुवं च वृषस्वति । मुक्तादिभिर्म्नती जन्तून् सा वन्द्यालु कथं नुगी:॥ १४॥

⁽१) क प्रत्वभिज्ञातव्यवज्ञारकरी कथम्।

पयः प्रदानसामर्थोद्दन्या चैन्महिषी न किम्।
विश्रेषी दृश्यते नास्यां महिषीतो मनागिष ॥ १५ ॥
स्थानं तीर्थिषेदेवानां सर्वेषामिष गीर्थिद ।
विक्रीयते दृश्यते च इन्यते च कषं ततः ॥ १६ ॥
सुसलोद्रुखले चुक्की देइली पिप्पली जलम्।
निम्बोऽर्कसापि यै: प्रोक्का देवास्तै: केऽव वर्जिता: ॥१०॥

वीतरागस्तोवेऽप्युक्तमसाभि:।

क्ततार्था जठरोपखदुखितैरपि देवते: । भवाद्याविद्युवते चचा देवास्तिकाः परे ॥ १८ ॥ ० ॥

गुरुलचणमाइ---

महाव्रतधरा धीरा भैचमावोपनीविनः। सामायिकस्था धर्मीपदेशका गुरवो मताः॥ ८॥

महाव्रतानि षश्चिमादीनि तानि धरम्तीति महाव्रतधराः। महा-व्रतधारित्व एवायं हेतुः धीरा इति धेयं द्वापत्स्वप्यवैक्षन्यं तद्योगादि प्रखण्डितमहाव्रतधरा भवन्ति। मूलगुणधारित्वमुक्का उत्तरगुण-धारित्वमादः। भैचमाव्रीपजीविन इति भिचाणां समूहो भेचं प्रवपानधर्मीपकरणक्ष्यं तद्माचमेवोपजीवन्ति लोकाव पुनर्धन-धान्यद्विरख्यगामनगरादि। मूलगुणोत्तरगुणधारणकारणभूतगुण-वत्त्वमादः। सामायिकस्या इति समो रागद्वेषविकल पाका समस्य प्रायो विशिष्टज्ञानादिगुणलाभः। समायः स एव सामायिकं विनयादिलादिकण् तत्र तिष्ठन्तीति सामायिकस्याः । सामायिकस्यो हि मूलगुणोत्तरगुणभेदभित्रं चारित्रं पालयितं चमः । एतद्यतिमात्र-साधारणलचणम् । गुरीलु चसाधारणलचणं धर्मीपदेशका इति धर्मे संवरनिर्जराक्ष्पं यतित्रावकसम्बन्धिभेदभित्रं वा उपदिशन्तीति धर्मीपदेशकाः ।

यदुत्तमस्माभिरभिधानचित्तामणी—

गुरुधेमोपिदेशक इति ग्रजन्ति सङ्गूतं शास्त्रार्थमिति गुरव:॥८॥

पगुरुलचणमार ---

सर्वाभिलाषिणः सर्वभोजिनः सपरिग्रहाः। अब्रह्मचारिणो मिथ्योपदेशा गुरवो न तु॥ ८॥

सर्वमुपदेश्वसम्बन्धिस्त्रीधनधान्य हिर क्य चे त्रवास् चतुष्पदाय भिस्तवन्ती त्ये वं ग्रीसा सर्वाभिसा विषयः । तथा सर्वे मद्यमधुमां सानन्तन्त कायादि भुञ्चत इत्ये वंशीलाः सर्वभी जिनः । सह परिग्रहेण प्रतक्त कायादि न वर्त्तन्ते सपरिग्रहाः । यत एवा ब्रह्मचारिणः यब द्यापे महादोषतां कथितुम ब्रह्मचारिण इति प्रथापन्यासः । यगुक्तवे असाधारणं कारणमाह । मिष्योपदेशा इति । मिष्या वितय भाषोपद्योपदेशरहितत्यादुपदेशो धमदेशनं येषां ते तथा । न तु नैव एवं विधा गुरव इति । नतु धर्मीपदेशदायित्वं चेदस्ति तदासु गुक्तवं किं निष्यरिग्रहित्यादिग्रणगविष्यं न ॥ ८ ॥

द्रवाह—

परिग्रहारसमम्नास्तारयेयुः कथं परान्। स्वयं दरिद्रो न परमीश्वरीकर्त्तुमीश्वरः॥ १०॥

परिग्रहस्त्यादिरारश्ची जन्तु हिंसानिबन्धनं सर्वाभिकाषित्यसर्व-भोजित्वादि:। ताभ्यां मम्ना भवास्थी ब्रुडिताः कथं परानुपदेखान् भवाश्चीधेस्तारयेयुस्तारणममर्थाः स्युः। साधकं दृष्टान्तमाह स्वय-मित्यादि स्रष्टम्॥ १०॥

धमालचणमाइ--

दुर्गतिप्रपतत्प्राणिधारणाद्यमं उच्यते । संयमादिर्दशविधः सर्व्वज्ञोक्तो विमुक्तये ॥ ११ ॥

दुर्गती नरकतिर्यग्लचणायां प्रयतन्ती ये प्राणिनस्तेषां धारणा-हेतीर्दमे उच्चते । धर्मशब्दार्थीऽयं इदमेव च लचणं धर्मस्य । धत्ते वा नरसुरमोचस्थानेषु जन्तूनिति निक्ताह्यमः ।

यदाइ---

दुर्गतिप्रस्तान् जम्तृन् यस्माद्यारयते ततः । धत्ते चैतान् श्रमे स्थाने तस्मादमं इति स्मृतः ॥ १ ॥

स तु वश्चमाणेः संयमादिभिभेंदैर्द्यधा । सर्वज्ञोक्तत्वाहिसुक्राये भवति । देवतास्तरप्रणीतस्वसर्वज्ञवक्तृकत्वाच प्रमाणम् । ननु
सर्वज्ञोक्तत्वाभावेऽप्यपौरुषेयवचनोपज्ञस्य धर्मस्य प्रामाणिकत्वमस् ।

यदाइ---

चीदना हि भूतं भवतां भविष्यतां स्त्यां स्यूसं व्यवहितं विप्रकष्टमेवं जातीयकमर्थमवगमियतुं ग्रक्तोति नान्यत्विष्यनित्र्य- मिति। चीदना च चपौक्षेयत्वेन पुरुषगतानां दोषाणामप्रविधात् प्रमाणमेव।

यदाह--

गन्दे दोषोज्ञवस्तावदक्कभीन दति स्थितम्। तदभावः कचित्तावदुणवदकृकत्वतः॥१॥ तदुणैरपकष्टानां ग्रन्दे संक्रान्यसभावात्। यदा वक्तुरभावेन न स्युदीषां निरात्रयाः॥२॥

विश्व---

दोषाः सन्ति न सन्तीति पौक्षेयेषु युज्यते । वेदे कर्त्तरभावाच दोषायक्षेव नास्ति नः ॥ ३ ॥११ ॥

द्याह—

यपीरुषयं वचनमसम्भवि भवेदादि । न प्रमाणं भवेदाचां द्याप्ताधीना प्रमाणता॥ १२॥

पुरुषेण कतं पौरुषेयं तत्रतिषेधादपौरुषेयम्। उच्यते स्थान-करणाभिघातपूर्वकं पुरुषेण प्रतिपाद्यत इति वचनम्। तदिदं परस्परविश्वम्। भ्रपौरुषेयं वचनं चेति। तदेवाइ। भ्रस्थिवि न द्वास्ति स्थावो वचनस्य वसरेणोरिवाकाशे। न चामूर्कस्य सतोऽष्यदर्भनिमिति वत्तं युत्तं प्रमाणाभावात्। सभिव्यञ्चकवगा-स्क्रष्टत्रवणमेव प्रमाणिमिति चेत् न। तस्य जन्यलेऽप्युपपत्तेः। सभिव्यक्र्यले प्रत्युत दोषसभावः। एक्तग्रन्दाभिव्यक्तग्रंथं स्थानकरणा-भिवाते प्रन्दान्तराणामिष तद्देश्यानामभिव्यक्तिप्रसङ्गः। न च प्रतिनियतव्यञ्चकव्यङ्गाता प्रन्दानां भवति व्यङ्गाम्तरेषु तद-दर्भनात्।

तथाच---

ग्रहे दिषघटीं द्रष्टुमाहितो ग्रह्मिधिना।
प्रपूपानिप तहे ग्राम्यति दीपकः॥१॥
तदेवं वचनस्यापी क्षेयता न सभावति। प्रधाप्यप्रामाणिक हैवाक-बत्तादाका ग्रादिवच्छ ब्दस्यापी क्षेयता यदि भवेत् तथापि
प्रामाण्यं न सभावति। हि यस्तादा प्रवक्त क्षेत्र वाचां प्रामाण्यं नान्यथा।

यत:---

यब्दे गुणीक्वयतावदक्काधीन इति स्थितम्। तदभावः क्कचित्तावद्दीषवदक्कृकत्वतः॥१॥ तद्दीषैरपक्षष्टानां यब्दे संक्रान्यसम्भवात्। यद्दा वक्षुरभावेन गुणा न स्युनिराश्रयाः॥२॥

किश्च--

गुणाः सन्ति न सन्तीति पौरुषेयेषु युज्यते । वेदे कर्त्तुरभावाच गुणायक्वेव नास्ति नः ॥ ३ ॥ १२ ॥

एवं तावद्यीरुवेयवचनाभिह्नितस्यासभावादिना प्रभावमभिधायासर्वेश्वपुरुषवकृकस्य धभास्याप्रामाणिकत्वमाह्-

मिध्यादृष्टिभिराम्नातो हिंसादौः वालुषीक्रतः । स धर्मा दूति वित्तोऽपि भवभ्रमणकारणम् ॥१३॥

मियादृष्टिभिद्येरिहरहिरख्यगर्भकिष्वबुद्यादिभिरान्नात भाको-पत्ततया प्रतिपादितः। यत्तदोनित्वाभिसम्बन्धाच्यो मिय्यादृष्टि-भिरान्नातः स धर्मत्वेन सुम्धबुद्यीनां प्रसिद्योऽपि भवभ्यमब-कारणमधर्म एवेत्वर्धः। कुत इत्याद्य। हिंसाचैः कतुषीक्तत इति। मिय्यादृष्टिप्रणीता द्यागमा हिंसादिदोषदूषिताः॥ १३॥

ददानीमदेवागुर्व्वधन्त्रीणां साचेपं प्रतिचेपमाइ—

सरागोऽपि हि देवश्चेद् गुरुरब्रह्मचार्यपि। क्रपाहीनोऽपि धर्मः स्यात्कष्टं नष्टं हहा जगत्॥१४॥

रागग्रहणम्पलसणं देषमोष्ठयोः । भन्नस्रचारित्वस्पलसणं प्राणा-तिपातादोनाम् । कपाष्टीनत्वस्पलसणं मूलोत्तरगुणष्टीनत्वस्य । चेच्छन्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । भासेपं प्रकटयति । कष्टमिति खेदे नष्टं जगत् देवगुरुधमेशून्यत्वेन विनष्टं दुर्गतिगमनात् । ष्टबा निपातः खेदातिश्यस्चकः । यदाच-

'रागी देवी दोसी देवी मामि सुत्रंपि देवी मक्के धन्मी मंसे धन्मी जीव हिंसाइ धन्मी। रत्ता मत्ता कन्तासत्ता जे गुरू तेवि पुळा हाहा कडुं नडी लोघी घटमटं कुणंती॥१॥

तदेवमदेवागुर्वधर्मपरिश्वारेण देवगुरुधर्मप्रतिपत्तिलच्चणं सम्यक्षं सुव्यवस्थितम्। तच ग्रभाक्षपरिणामरूपमस्मदादीनामप्रत्यचं विवसं सिन्नेर्लक्षते॥ १४॥

तान्येवाइ--

श्रमसंवेगनिर्वेदानुकम्पास्तिक्यलचर्णैः । लच्चणैः पञ्चभिः सम्यक् सम्यक्तुमुपलच्यते ॥१५॥

पश्चिमिर्श्वर्षे लिङ्गेः परस्यं परोक्षमि सम्यक्कां सम्यगुपलस्थते । लिङ्गानि तु शमसंवेगनिर्वेदानुकम्मास्तिकां सरूपाणि । शमः प्रश्नमः क्रूराचामनन्तानुबन्धिनां कषायाणामनुदयः । स च प्रकात्था वा कषायपरिणतेः कटुफलावलोकनादा भवति ।

⁽१) रानी देवो दोषी देवो सखे न्यून्योऽपि देवः सदी धर्मी सांसे धर्मः स्रोविज्ञंसायां धर्मः। रक्ता सत्ताः कालासक्ता वे गुरवः तेऽपि पूज्याः ज्ञाज्ञः कष्टं नष्टो खोको खडूमहं कुर्वन्॥

यदाह---

'पर्रेए कथाणं नाजणं वा विवागमसुरंति। भवरदेवि न कुप्पर उवसमग्री सव्यकालंपि॥ १॥

यम्ये तु क्रीधकण्डू विषयत्वणीपश्यमः श्रम रत्यादः यधिगत सम्यग्दर्शनो हि साधूपासनावान् कयं क्रीधकण्ड्वा विषयत्वण्या च तरलीकियेत । नतु क्रीधकण्डू विषयत्वणोपश्रमयेष्ट्यस्ति हि कण्यत्रेणिकादीनां सापराधि निरपराधिऽपि च परे क्रीधवतां विषयत्वणातरित्तमनसां च कयं 'श्रमः । तदभावे च सम्यक्तं न गम्येत । नेवम् । लिङ्किनि सम्यक्ते सित लिङ्करवश्यभाष्यमिति नायं नियमः । दृश्यते हि धूमरिहतोऽप्ययस्कारग्रहेषु विष्ठः भस्यष्टकस्य वा वक्रेर्न धूमलेशोपीति श्रयं तु नियमः सुपरीचिते लिङ्के सित लिङ्की भवत्येव ।

यदाच---

लिक्ने लिक्नी भवत्येव लिक्निम्येवेतरत्युनः । नियमस्य विपर्याचे सम्बन्धो लिक्नलिक्निनोः ॥ १ ॥

सञ्ज्ञलनकषायोदयाद्वा क्रणादीनां क्रोधकण्डूविषयत्वणे सञ्ज्ञलना चपि केचन कषायास्तीव्रतया धनन्तानुबन्धिसदृश-विपाकवन्त इति सर्वमवदातम् । संवेगी मीचाभिलाषः । सम्यग्-

⁽१) प्रक्रायाः कर्मचां चात्वा वा विषाकमग्रुशिवति । चपराचेऽपि न कुचति चपवनतः वर्वकावनि ॥

⁽२) क स प्रज्ञनः ।

दृष्टिर्षि नरेम्द्रसरेन्द्राणां विषयसुखानि दुःखानुषङ्गादुःखतया मन्यमानो मोचसुखमेव सुखलेन मन्यते प्रभिलवित च। यदाङ—

> 'नरविबुष्टेसरसोक्खं' दुक्खं चिय भावको च मदंती। संवेगको न मोक्खं मोक्तूणं किंचि पच्छेद्र॥१॥

निर्वेदो भववैराग्यम् । सम्यग्दर्शनी चि दुःखदीर्गत्यगद्दने भव-कारागारे कर्मदण्डपाधिकैस्तयातयाकदर्थमानः प्रतिकर्त्तुमचमी ममत्वरिक्तच दुःखेन निर्व्विषो भवति ।

यदाइ--

ैनारयतिरियनरामरभवेसु निव्वयमी वसद दुक्तुं। भक्तयपरलोयमगो ममत्तविसवे गर्हिमो य॥१॥

भन्ये तु संवेग्रितिर्वेदयोरर्धविपर्ययमाष्ट्रः संवेगो भवविरागः निवेदो मोचाभिलाष इति । भनुकम्या दुःखितेषु भवचपातेन दुःखप्रष्टाणेच्छा । पचपातेन तु करुणा खपुत्रादी व्याच्चादीनामप्यस्थेव । सा चानुकम्या द्रव्यतो भावतच भवति । द्रव्यतः सत्यां भन्नी दुःखप्रतीकारिण । भावत भाईष्ट्रदयत्वेन ।

⁽१) नरविन्धेश्वरसौद्धां दुःखमेव भावतत्त्व सम्यमानः । संवेगतो न मोर्चसङ्का किञ्चित् प्रेचते॥

⁽२) च ठ - हवर्खं।

⁽१) नारकतिर्वेच्नरामरभवेष् निर्वेदतः वसति दुःश्वन् । व्यक्तवरखोकनार्गो समत्वविषवेगर्ह्ततः ॥

⁽⁸⁾ खगच च - बार- ।

यदाइ-

'दहून पाणिनिवहं भीमे भवसायरिय दुक्ततं।
भविसेसभी गुकंपं 'दुविष्टावि सामच्छभो कुण्ड ॥ १ ॥
भक्तीति मितरस्थेत्यास्तिकस्तस्य भावः कर्मवा भास्तिक्यम्।
तस्वान्तरत्रविष्ठिप जिनोक्ततस्वविषये निराकाष्ट्रा प्रतिपत्तिः।
भास्तिक्येन हि जीवधर्मतया भप्रत्यचं सम्यक्कं लक्षते। तद्दान् हि
भास्तिक इत्युच्यते।

यदाष्ट--

भनद तमेव सर्च नीसंकं जं जिलेहिं पन्नतं। सन्दर्शरणामी सन्धं कंखादविसत्तिचारहियी॥१॥

भन्ये तु शमादीनि लिक्कान्यन्यया व्याचचते सुपरीचितप्रवत्नुप्रवाच्यप्रवचनतत्त्वाभिनिवेशान्तिच्याभिनिवेशोपश्रमः शमः।
स सम्यग्दर्भनस्य लचणम्। यो द्वातत्त्वं विद्वायासमा तत्त्वं प्रतिपदः
स लच्चते सम्यग्दर्भनवानिति। संवेगो भयं जिनप्रवचनानुसारिणो
हि नरकेषु शरीरं मानसं च शीतोच्यादिजनितं च संक्षिष्टासुरीदीरितं च परसारोदीरितं च तिर्येच्च भारारोपणाद्यनेकविधं मनुजेषु
दारिद्रादीर्भाग्यादि च दुःखमवलोकयतस्तद्वीकतया तत्प्रथमोपायभूतं धन्मैमनुतिष्ठतो लच्चते विद्यतेऽस्य सम्यग्दर्भनमिति। निवेदो

⁽१) इद्या प्राचिनिवर्षं भीने भववागरे दुःचार्त्तम् । चित्रचेताः स्वरोति ॥

⁽२) सागच ठ दुइ।वि।

⁽१) मन्यते तरेव सर्वा निःयश्चं यह्निनैः प्रशापितम् । युभवरिषामः सम्यक् काङ्कारिविद्यत्निकार्हितः ॥

विषयेष्वनिभष्यः यथा रहसीक एव प्राणिनां दुरन्तकाम-भोगाभिष्यक्षीऽनेकोपद्रवफसः परसोकेऽप्यतिकटुकनरकिर्यन् मनुष्यजन्मफलप्रदः। सती न किश्विदनेन। उन्तिक्तव्य एवाय-मिति। एवंविधनिवेंदेनापि सम्बतिऽस्थस्य सम्यग्दर्भनमिति। सनु-कम्पा क्रपा यथा सर्व्य एव सन्ताः सुखार्थिनो दुःखप्रहाषार्थिनय। ततो नैवामस्पापि पीजा मया कार्येत्यनयापि सम्बतिऽस्थस्य सम्यक्षमिति। सन्ति खलु जिनेन्द्रप्रवचनोपदिष्टा सतीन्द्रिया जीवपरसोकादयो भावा इति परिषाम सास्तिक्यम्। सनेनापि सम्बति सम्यग्दर्भनयुक्तोऽयमिति॥ १५॥

सम्यक्कलिङ्गान्युक्का भूषयान्याच-

खोर्यं प्रभावना भिताः कीयलं जिनशासने । तीर्थसेवा च पञ्चास्य भूषणानि प्रचचते ॥ १६॥

पस्य सम्यक्कस्य पश्च भूषणानि भूष्यते प्रसिष्ट्यते येस्तानि भूषणानि जिनगासने जिनगासनिवषये। एतच सर्वेत्र सम्बध्यते। स्थेर्थं जिनधमं प्रति चिलतिचित्तस्य परस्य स्थिरत्वापादनं स्वयं वा परतीर्थिकर्षि-दर्भनेऽपि जिनगासनं प्रति निष्णुकम्पता। प्रभवति जैनेन्द्रगासनं तस्य प्रभवतः प्रयोजकत्वं प्रभावना। सा चाष्ट्रधा प्रभावकभेदेन।

यदाइ--

'पावयकी धकाकही वार्र निमित्तिको तबस्ती य। विकासिको का कर्र य कट्टेव प्रभावगा भिकास ॥ १॥

⁽१) प्रवचनी धर्मकची वाही नैमिक्तकः तपस्ती च । विद्यावानु विद्वच कविच चटैन प्रभावका भविताः ॥

तम प्रवचनं दादशाद्भं गणिपिटकं तदस्य।स्यतिशयवदिति प्रवचनी युगप्रधानागम:। धर्मक्या प्रश्रस्यास्ताति धर्मकथी शिखादिलादिन्। वादिप्रतिवादिसभ्यसभापतिलच्चायां चतुः रङ्गायां सभायां प्रतिपचनिरासपूर्वकं खपचखापनार्धमवध्यं वहतीति वादी। निमित्तं नैकालिकं लाभालाभादिप्रतिपादकं गामं तद्दे स्वधीते वा नैमित्तिकः। तपी विक्रष्टमष्टमा खस्ताति तपस्ती। विद्याः प्रजायादयः शासनदेवतास्ताः साष्ट्रायके यस्व स विद्यावान्। प्रश्ननपादलेपतिलकगुटिकासकलभूताकर्षण-निष्मर्षणवैक्रियत्वप्रस्तयः सिहयस्ताभिः सिह्यते स्म सिहः । कवते गद्यपद्यादिभि: प्रबन्धेवर्षनां करोतीति कवि:। एते प्रवचन्या-दयोऽष्टी प्रभवतो भगवच्छासनस्य यथाययं देशकालाधौचित्येन साहायककरचाल्रभावकास्तेषां कर्म प्रभावना दितीयं भूषणम्। भितः प्रवचने विनयवैयाहस्यक्ष्पा प्रतिपत्तिः सम्यग्दर्भनज्ञान-चारित्रादिगुणाधिकेष्यभ्युत्रानमभियानं शिरस्यक्कालिकरणं स्वयमा सनढीकनमासनाभिग्रहो वन्दना पर्युपासना चनुगमनं चेत्यष्टविध-कर्मविनयनादष्टविध उपचारविनयः। व्याहत्तस्य भावः कर्मवा वैयाहस्यम्। तत्राचार्यीपाध्यायतपखिशित्रकाम्बानकुलगणसङ्गसाधु-समनोज्ञेषु दशस्त्रवपानवस्त्रपात्रप्रतिश्रयपीठकापलकासंस्तारादिभि-र्भभाभने रपग्रहः ग्रुत्रूषाभेषजितायाकान्तारविषमदुर्गीपसर्गेष्व-भ्युववित्तच। जिनशासनविषये च कौशलं नैपुष्यम्। ततो हि व्यवहितादिरप्यथी विषयीक्रियते। यथानार्यदेशवर्त्ती चाईककुमारः त्रेणिकपुत्रेणाभयक्कमारेण कौगलायतिबोधित रति । तीर्थं नदादे-

28

रिव संसारस्य तर्वे सुखावतारी मार्गः । तच 'विधा द्रव्यतीर्घं भावतीर्घं च । द्रव्यतीर्घं तीर्घक्षतां जन्मदीचाचानिर्व्याचस्यानम् । यदाच

'अमां दिक्खा नाणं तित्ययराणं महाग्रुभावाणं। जत्य य किर निव्वाणं प्रागाढं दंसणं हो र ॥ १॥ भावतीर्थं तु 'चतुर्विधः त्रमणसङ्गः प्रथमगणधरो वा।

यदाइ --

⁸तिस्रं भन्ते तिस्रं तिस्रयरि तिस्रं गीयमा परिष्ठा ताव नियमा तिस्रं करितसं पुषचा उव्यक्षे समक्षंचे पढमगच प्रदेवा।

तीर्घस्य सेवा तीर्घसेवा ॥ १६ ॥

पस्य सम्यक्तस्य भूषणान्युक्ता दूषणान्याः —

शक्काकाङ्गविचिकित्सामिध्यादृष्टिप्रशंसनम् । तत्संस्तवश्च पञ्चापि सम्यक्षं दूषयन्यलम् ॥ १०॥

पश्चापि मङ्गादयो निर्दोषमपि सम्यक्कं दूषयन्ति श्वसतिभयेन।
ग्रहा सन्देश: सा श्व सर्वविषया देशविषया श्व । सर्वविषया श्वस्ति
वा नास्ति वा धर्मे श्रत्यादि । देशमङ्गा एकैकवस्वधर्मेगोचरा।

⁽१) खब्देधा।

⁽a) जन्मं दीचा जानं तीर्वकराचां महातुभावानाम् । बल् च किच निर्वाचं खानाठं दर्घनं भवति ॥

⁽३) ग क चतुर्वर्यः।

⁽३) तीर्षं भगवन् तीर्षं तीर्षकर तीर्षं गौतना आईन् तावश्विक्षेन तीर्षं-करकीर्षं प्रनव्यत्वर्थ्ये जनवस्त्वे प्रचमगचधरे वा।

यद्या चिस्त जीवः नेवसं सर्वगतोऽसर्वगतो वा सप्रदेशोऽप्रदेशो विति । इयं च दिधाऽपि भगवदर्ङग्रेणशैत'प्रवचनेषु चप्रत्ययरूपा सम्यक्षं दूषयति । नेवलागमगन्या चिप चि पदार्था चन्नदादि-प्रमालपरीचानिरपेचा चाप्तप्रवेद्यकत्वाच सन्देग्धं योग्याः । यत्रापि मोचवगात् क्षचन संगयो भवति तत्राध्यप्रतिचतेयमर्गला । यथा—

> 'कत्य य मददुष्वज्ञेष तिब्बायिरयिवरहची वावि। नियगहणत्तवेष य नाजावरकोदएकं च ॥ १ ॥
> 'हेजदाहरणासंभवे च सद सहु जं न बुउभेक्जा। सब्बबुमयमितहं तहावि तं चिंतए मदमं॥ २ ॥
> 'भिष्णवक्षयपराण्यगहपरायका जं जिला जगणवरा। जियरागदोसमोहा य नक्षा वादको तेषं॥ ३ ॥

ाजयरागदासमाहा य नवहा वाहणा तथ ॥ ३॥
यथा वा स्त्रोक्तस्येकस्याप्यरोचनादचरस्य भवति नरः मिथ्यादृष्टिः ।
स्त्रं हि नः प्रमाणं जिनाभिहितम् । काङ्का प्रन्यान्यदर्शनग्रहः ।
सापि सर्वविषया देशविषया च । सर्वविषया सर्वपाखिष्डभर्माकाङ्काक्रपा । देशकाङ्का लेकादिदर्शनविषया यथा सुगतेन

⁽१) खगळ -प्रवचने।

⁽२) क च मतिदुर्वेषेन तहिधाचार्यविर्ह्मतो वापि । जीवनङ्गलेन च जानावरचोहनेन च ॥

⁽३) चेत्रहाइरचावंभने च वित सृष्टु वस नुष्येत । वर्षसम्मानिक विवास तिस्तानिक मित्रमानु ॥

⁽३) चनुपन्नतपरातुप्रकृपरावचा विकास नगत्वदराः ।जितरागरोषमो इत्य नाम्यवा वादिनक्षेत्र ॥

भिचृषामक्षेत्रको धभाँ उपदिष्टः सानावपानाच्छादनगयनीयादिषु सुखानुभवदारेष ।

यदाच --

सही शय्या प्रातक्त्याय पेया
सध्ये भक्तं पानकं चापराक्के
द्राचाखण्डं गर्करा चाहरात्रे
सोचवानो शाक्यसिंहेन दृष्ट:॥१॥ इति

एतदपि घटमानकमेव न दूरापेतम्। तथा परिवार्भीतबाह्मणादयो विवयानुपभुद्धाना एव परलोकेऽपि सुखेन युच्यन्त
इति। साधीयानेषोऽपि धर्म इति। एवं च काङ्कापि परमार्थतो
भगवदर्षत्रणीतागमानाम्बासकपा सम्यक्तं दूषयति। विचिकित्ता
चित्तविद्भवः। सा च सत्यपि युक्त्यागमोपपने जिनधर्मेऽस्य
मङ्गतस्तपःक्षेत्रस्य सिकताकणकवलविद्मस्तादस्यायत्यां फलसम्यइवित्री। भय क्षेत्रमात्रमेवेदं निर्जराफलविकलमिति। उभयथा
दि क्रिया दृश्यन्ते सफला भफलास कषीयलादीनामिव इयमपि
तथा मन्नाव्यते।

यदाच-

'पुष्यपुरिसा जड़ोइयमगाचरा घड़ तिसि फलजोगी चन्हेस य धीसंघयणविरष्ट्यो न तड तिसि फलं॥ १ ॥ इति॥

⁽१) पूर्वपुरुषा यथोषितमार्गवरा घटते तेषां फलयोगः। स्वकासु च भीसंग्रङ्गविरङ्गः न तथा तेषां फलस्॥

विविकित्सापि भगवद्वनानाष्ट्रास्त्र एतात्सम्ब्रास्थ दोषः । न च ग्रङ्कातो नेयं भिद्यते । ग्रङ्का हि सक्तसासक्त पदार्धभाक्कोन द्रव्यगुणविषया द्रयं तु क्रियाविषये । यद्वा विचिकित्सा निन्दा सा च सदाचारमुनिविषया यथा प्रसानिन प्रस्तेद जलक्कित्रमस्त्रताः हुर्गन्धिवपुष एत इति । को दोषः स्थाद्यदि प्रासुक्तवारिणा प्रङ्का-चाननं कुर्वीरिविति । द्रयमपि तस्त्रतो भगवद्यमानाष्ट्रास्त्रपत्थात् सम्यक्कदोषः । मिथ्या जिनागमविपरीता दृष्टिर्दर्भनं येषां ते मिथ्या-दृष्टयस्त्रेषां प्रश्रंसनं प्रशंसा तद्य सर्वविषयं देशविषयं च । सर्वविषयं सर्वास्त्रपि कपिलादिदर्भनानि युक्तियुक्तानीति माध्यस्यसारा स्तृतिः सम्यक्कस्य दृष्णम् ।

यदाचचाचि सुती-

सुनिसितं मत्तिरिणो जनस्य न नाथ मुद्रामितिशेरते ते। माध्यस्यमास्याय परीचका ये मणौ च कावे च समानुबन्धाः ॥ १ ॥

देशविषयं तु इदमेव बुद्धवचनं साद्धाक्षणादादिवचनं वा तत्त्वसिति। इदं तु स्थानव सम्यक्षदूषणम्। तैर्सिस्यादृष्टिभिरेकत्व संवासात्पर-स्परालापादिजनितः परिचयः संस्तवः। एकत्ववासे द्वि तत्प्रक्तिया-त्रवणात्तत्क्रियादर्शनाच दृढसम्यक्षवतोऽपि दृष्टिभेदः सन्भाव्यते। किमृत मन्द्रबुद्देनेवधनीस्य इति संस्तवोऽपि सम्यक्षदूषणम्। एवविधं च सम्यक्षं विशिष्टद्रव्यचेत्रकालभावसामग्रां सत्यां गुरोः समीपे विधिना प्रतिपद्य त्रावको यद्यावत्पालयति।

यदाच--

'समबीवासमी तत्व मिक्कतामी पिडकिन।
दलमी भावमी पुर्विसमात्तं पिडविक्यए॥ १॥
'न कप्पए से परतित्वियाचं तहेव तीसं चिय देवयाचं
परिमाहे तास य चेदयाचं पहावचावंदचपूयचादं॥ २॥
'सीयाच तित्वेस सिचाचदाचं पिडप्पयाचं हुचचं तवं च
संवंतिसीममाहचादएसं पभूयसीयाच पवाहिकाचं॥ ३॥

एवं तावसागरीपमकोटीकोत्यां श्रेषायां किश्विट्रनायां मिष्यात्वमीश्वनीयस्थिती जन्तः सम्यक्तं प्रतिपद्यते। सागरीपम-कोटीकोत्यामप्यविष्टायां पस्थीपमश्यक्तं यदा व्यतीतं भवति तदा देशविरतिं प्रतिपद्यते।

यदाह-

'सनात्तमा उत्तरे पलियपुरुतेष सावघो **रो**ळात्ति ॥ १० ॥

⁽१) चमचोपासकस्त्र सिख्यात्वाळतिकः मेत्। इत्यतो भावतः पूर्वं सम्बद्धं प्रतिपद्यते ॥

⁽१) न कस्तते तस्त परतीर्धिकानां तसैव तेषाभेव देवतानाम् । परिपद्गे तेषां च चैत्वानां प्रभावनावन्दनपूजनाहि ॥

⁽३) बोकानां तीर्चेषु स्नानहानं पिक्डमहानं धूननं तपव। संमान्तिसोम-पद्मचाहिकेषु प्रभूतकोकानां प्रवाहकत्वम् ॥

⁽४) सम्बद्धे त बन्धे पस्तीपमप्रवद्धीन त्रावको भनेहिति।

सम्यक्तमूलानि पश्चाणवतानीत्युक्तं तव सम्यक्तमभिश्वितमिदानीमणवतान्याः —

विरतिं खूलिंसादिर्दिविधितिविधादिना । यहिंसादीनि पञ्चागुत्रतानि जगदुर्जिनाः ॥१८॥

खूला मियादृष्टीनामपि हिंसालेन प्रसिद्धा या हिंसा सा स्कूल-शिंसा स्मृतानां वा त्रसानां जीवानां शिंसा स्मृतशिंसा। स्यूल यह समुपल ससम्। तेन निरपराधस इत्यपूर्व क हिंसानामपि यहणं चादियहणात् खूलातृतस्तेयात्रद्वाचरीपरियहाणां संयह:। ख्रा दिंसादिभ्यो या विरतिनिवृत्तिस्ताम दिंसादीनि महिंसास्तृतास्तेयम् द्वाचर्यापरियन्तान् पञ्चाणुव्रतानीति जिना-स्तीर्धकरा जगदुः प्रतिपादितवन्तः। किमविशेषेण विरति-दिविधविविधादिमा भक्तजालेम दिविधः कारितक्पिस्त्रविधी मनोवाकायभेदेन यत स दिविधिविध एको भक्तः। इइ यो हिंसादिभ्यो विरतिं प्रतिपद्यते। स हिविधां क्ततकारितभेदां त्रिविधेन मनसा वचसा कायेन चेति। च भावना स्यूलिंडिसां न करोत्यात्मना न कारयत्यन्येन मनसा वचसा कायेन चेति। चंस्य चानुमतिरप्रतिषिद्या भपत्यादि-परियक्तमहावात् तेक्षिंसादिकरणे च तस्यातुमतिपाप्ते:। श्रन्थया परियद्यापरियद्योरविशेषेण प्रव्रजिताप्रवृज्जितयोरभेदापत्ते:। ननु भगवत्यादावागमे निविधं विविधेनेत्यपि प्रत्यास्यानसृक्ष-

मगारिणः। तच स्रतोक्तात्वादनवयमिव तत्त्वसाची चर्ते। उच्यते।
तस्य विशेषविषयत्वात्। तथान्ति यः किल प्रविव्रजिषुर्व
प्रतिमाः प्रतिपद्यते। पुत्रादिसन्तितपालनाय यो वा विशेषं
स्वयंभूरमणादिगतं मह्यादिमांसं स्पूलिषंसादिकं वा किचिदवस्याविशेषे प्रत्यास्थाति स एव तिविधं तिविधेनिति करोति।
प्रत्यत्यविषयत्वाको चर्ते। बाहुक्येन तु दिविधं तिविधेनित।
दिविधितिविध चादिथेस्य दिविधिचिविधादेभेष्ट्रजासस्य तन॥

दिविधं दिविधेनिति दितीयो भद्गः दिविधिमिति स्नूलिंशं न करोति न कारयित दिविधेनिति मनसा वचसा यद्दा मनसा कायेन यदा वाचा कायेनिति। तन यदा मनसा वाचा न करोति न कारयित। तदा मनसा मिसन्धरिहत एव वाचापि दिंसकममुवनेव कायेनैव दुवेष्टितादिना मसंज्ञिवक्करोति। यदा तु मनसा कायेन न करं।ति. न कारयित तदा मनसाभि-सिरिहत एव कायेन दुवेष्टितादि परिषरनेवानाभोगादाचैव इक्षि घातयामि विति बूते। यदा तु वाचा कायेन न करोति न कारयित। तदा मनसेवाभिसिक्षभिषकत्य करोति कारयित च। भनसेवाभिसिक्षभिषकत्य करोति कारयित च।

हिविधमेकविधेनिति स्तियः हिविधं करणं कारणं च एकविधेन मनसायहा वचसायहा कार्येन।

एक विधं विविधेनिति चतुर्धः एक विधं करणं यदा कारणं सनसा वाचा कायेन च। एकविधं हिविधेनिति पश्चमः एकविधं करणं यहां कारणं हिविधेन मनसा वाचा यहा मनसा कायेन यहा वाचा कायेन।

एकविधमेकविधेनिति षष्ठः एकविधं करणं यहा कारणं एकविधेन सनसायहा वाचा यहा कार्येन ।

यदाइ--

'दुविहतिविहेण पटमो दुविहं दुविहेण बीयमो होइ दुविहं एगविहेणं एगविहं चेव तिविहेण एगविहं दुविहेणं एगेगविहेल कृष्मो होइति।

एते च भङ्गाः करणत्रिकेण योगत्रिकेण च विशेष्यमाणा एकोनपञ्चागद्भवन्ति।

तय। हि—

हिंसां न करोति मनसा १ वाचा २ कायेन ३ मनसा वाचा ४ मनसा कायेन ५ वाचा कायेन वा ६ मनसा वाचा कायेन च ७ एते करणेन सप्त भङ्गाः।

एवं कारणेन सप्त । चनुमत्या सप्त । तथा हिंसां न करोति न कारयित च मनसा १ वाचा २ कायेन ३ मनसा वाचा ४ मनसा कायेन ५ वाचा कायेन वा ६ मनसा वाचा कायेन च ७ । एते करणकारणाभ्यां सप्त भन्नाः ।

⁽१) दिविधनिविधेन प्रचमी दिविधं दिविधेन दितीयो भवति दिविधं एक-विधेन एकविधं चैद लिविधेन एकविधं दिविधेन एकैकविधेन घडको भवतीति।

एवं करवानुमितिभ्यां सप्त । कारवानुमितिभ्यामि सप्त । कारवानुमितिभ्यामि सप्त । व्यं सर्वे मी लिता एकोन-पश्चाग्रह्मवित्त । एते च विकालविषयत्वात् प्रत्याख्यानस्य काल-चयेष गुणिताः सप्तचत्वारिंग्रद्धिकं ग्रतं भवन्ति ।

यदाच--

'सेयालं भंगसय' पश्च क्लाणिय जस्य उवल हं। सी खलु पश्च क्लाणे कुसली सेसा श्रकुसलाणी॥१॥ विकाल विषयता चातीतस्य निन्दया साम्प्रतिकस्य संवर्णन प्रनागतस्य प्रत्यास्थानिनेति।

यदाइ--

'भद्रमं निंदािम पडुप्पत्रं संवरिम भवागयं पश्वकवािमत्ति । एते च भद्गा भद्विसात्रतमात्रित्योपदर्शिताः व्रतान्तरेष्विप द्रष्टव्याः ॥ १८ ॥

एवं सामान्येन हिंसादिगोचरां विरितसुपदर्घ्यं प्रत्येवं हिंसादिषु तासुपदिदर्भयिषु हिंसायां तावदाह— पङ्गुतिषु तासुपदिदर्भयिषु हिंसाफलं सुधीः । निरागस्त्रसजन्तृनां हिंसां सङ्गल्पतस्यजेत् ॥१८॥ इह नाइष्ट्रपापफलाः पापानिवर्त्ततः इति पापफलसुपदर्भयन्

⁽१) सप्तवस्वारिंगत्भक्तभतं प्रत्याख्याने वस्य उपस्थम् । व सम् प्रत्याख्याने कुमसः मेषा सक्तमसाः ॥

⁽२) चतीतं निन्दानि प्रत्युत्यचं संदर्शोनि खनागतं प्रत्यास्थामीति ।

हिंसाविरितिव्रतस्पदिगित । पहुः सत्यपि पारे पादिवहरणाचमः कुछी लग्दोषी कुणिर्विकलपाणिः तेषां भावः पहुकुछीकुणिलम् । मादिग्रहणात्महुलोपलचितमधःकायवैगुण्यम् । कुछिलोपलचितं सकतरोगजातम् । कुणिलोपलचितमुपरिकायवैगुण्यं संग्रह्मते । एति हंसाफलं हृद्दा सुधीरिति बुिहमान् स हि माख्यबलेन शिंसायाः फलमेतदिति निश्चित्य शिंसां त्यजित् । मत्र विधी सप्तमी । केषां निरागस्मजन्तूनां निरागसी निरपराधास्त्रसा शिन्द्रयादयस्त्रेषां सङ्ख्येन सङ्ख्यतः भावादिलान्तृतीयान्तान्तसः । निरागस इति निरपराधजन्तुविषयां शिंसां प्रत्याचष्टे सापराधस्य तु न नियमः । भमग्रहणेनैकेन्द्रियविषयां शिंसां नियमयितं न चम इत्याचष्टे सङ्ख्यतः इति भमं जन्तुं मांसाद्यर्थिलेन इन्द्रीति सङ्ख्यपूर्वकं शिंसां वजेयेत् । भारक्षजा तु शिंसा भग्रक्षप्रत्याख्यानेति तत्र यतनामेव कुर्योदिति ।

भनान्तरञ्जोकाः--

येषामेकान्तिको भेदः समातो देखदेखिनोः।
तेषां देखविनाग्रेऽपि न दिसा देखिनो भवेत्॥१॥
मभेदेकान्तवादेऽपि खोक्तते देखदेखिनोः।
देखनाग्रे देखिनाग्रात्परलोको ऽस्तु कस्य वै॥२॥
भिन्नाभिन्नतया तस्माळीवे देखायतित्र्यते।
देखनाग्रे भवेत्पीडा या तां हिंसां प्रचचते॥३॥
दुःखोत्पत्तिभेनःक्षेणस्त्रत्पर्यायस्य च चयः।
यस्यां स्थाला प्रयक्षेन हिंसा हिया विपयिता॥४॥

प्राची प्रमादतः कुर्याद्यत्राचव्यपरोपचम्। सा हिंसा जगदे प्राज्ञवींजं संसारभूवहः ॥ ५ ॥ गरीरी स्नियतां मा वा भुवं शिंसा प्रमादिनः। सा प्राप्यविश्विप प्रमादरहितस्य न ॥ ६ ॥ जीवस्य हिंसा न भवेत्रित्यस्यापरिणामिनः। चिषकस्य स्वयं नागालायं हिंसीपपद्यताम् ॥ ७॥ नित्यानित्ये ततो जीवे परिचामिनि युच्यते। हिंसा कायवियोगेन पीडात: पापकारचम ॥ ८ ॥ केचिइटन्ति इन्तव्याः प्राणिनः प्राणिघातिनः। हिंस्रखेकस्य घाते स्वाद्रचणं भूयसां किल ॥ ८ ॥ तद्युत्तमश्रेषाणां हिंस्त्रलात्राणिनामिह। इन्तव्यता स्थात्तक्षाभिमच्छीर्मूलचितः 'स्फुटा॥१०॥ चिंचासकावी धन्मै: स चिंसात: कर्य भवेत्। न तीयजानि पद्मानि जायन्ते जातवेदसः ॥ ११ ॥ पाप हतुर्वेष: पापं कथं छे सुमलं भवेत्। मृत्युहेतुः कासकूटं जीविताय न जायते ॥ १२ ॥ संसारमोचकास्वाहुर्दः खिनां वध रशकाम्। विनाभ दु: खिनां दु: खविनाभी जायते किल ॥ १३ ॥ तदव्यसामातं ते हि हता नरकगामिनः। भनलेषु नियोक्यन्ते दुःखेषु खल्पदुःखकाः ॥ १४ ॥

⁽१) घडः क स्फुटम्।

किंच सीस्थवतां घाते धन्मै: स्थात्पापवारचात्। इत्यं विचार्य हैयानि वचनानि कुतौर्यिनाम् ॥ १५॥ चार्वाकाः प्राइरासैव ताववास्ति कथक्वत । तं विना कस्य सा हिंसा कस्य हिंसाफलं भवेत्॥१६॥ भूतेभ्य एव चैतन्यं पिष्टादिभ्यो यथा मदः। भूतसंहतिनाशे च पञ्चलमिति कष्यते ॥ १७॥ मालाभावे च तक्तृतः परलोको न युज्यते। मभावे परलोकस्य पुरुषापुरुषक्या द्या॥ १८॥ तपांसि यातनाचित्राः संयमी भीगवञ्चन।। इति विप्रतिपत्तिभ्यः परिभ्यः परिभाष्यते ॥ १८ ॥ खसंवेदनतः सिद्धः खदेहे जीव द्रष्यताम्। महं दु:खी सुखी वाहमिति प्रत्यययोगतः॥ २०॥ घटं वैद्याहमित्यच चित्रयं प्रतिभासते। कर्म कियाच कर्त्ताच तत्कर्ताकिं निविध्यते॥ २१॥ गरीरमेव चेलार्मृन कर्मृतदचेतनम्। भूतचैतन्ययोगाचेचेतनं तदसङ्गतम् ॥ २२ ॥ मया दृष्टं शुतं सृष्टं घातमास्वादितं स्मृतम्। इत्येककर्मृकाभावात् भूतचिद्वादिनः कथम् ॥ २३॥ खसंवेदनतः सिद्धे खदेहे चेतनात्मनि। परदेहेऽपि तिलाहिरनुम।नेन साध्यते ॥ २४ ॥ नु बिपूर्वां कियां हद्दा खरेहेऽन्यन तहति:। प्रमाणवलतः सिद्धा केन नाम निवार्यते ॥ २५ ॥

तत्परसोकिनः सिद्दी परसोको न दुर्घटः ।
तथा च पुष्यपापादि 'सर्वमेवोपपद्मते ॥ २६ ॥
तपांसि यातनास्त्रिमा इत्याद्मुक्यसभाषितम् ।
सचैतनस्य तत्कस्य नोपद्यासाय जायते ॥ २० ॥
निर्वाधीऽस्ति ततो जीवः स्थिखुत्पादव्ययात्मकः ।
त्राता द्रष्टा गुणी भोक्ता कर्त्ता कायप्रमाणकः ॥ २८ ॥
तदेवमात्मनः सिद्दी हिंसा किं नोपपद्मते ।
तदस्याः परिद्वारिकाहिसावतसुदीरितम् ॥ २८ ॥ १८ ॥

इंसानियमे सप्टं द्रष्टान्तमाइ—

षात्मवत्मर्वभूतेषु सुखदुःखे प्रियाप्रिये । चिन्तयद्गात्मनोऽनिष्टां हिंसामन्यस्य नाचरेत् ॥२०॥

सुख गब्देन सुख साधनमन्त्रपानस्त्रक्ष्यत्वादि रह्माते। दुःख गब्देन दुःख साधनं वधन्यसारणादि। ततो यथाक्षानि दुःख साधनमियं तथा सर्वभूतेष्यपि। एवं चिन्तयन् दुःख साधनत्वादि प्रयां परस्य हिंसां न कुर्वीत। सुख ग्रहणं दृष्टान्तार्थम्। यथा सुख साधनं प्रियमेवं दुःख साधनसियम्। तथा सर्वभूतेष्वपि दुःख साधन-सियम्सिक्षथः।

यदाचुर्लीिकका भपि-

त्रूयतां धर्मं सर्वेस्वं श्रुला चैवावधार्यताम्। चाक्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरित् ॥१॥ इति ॥२०॥

⁽१) इ.च स्वयमे ।

ननु प्रतिविद्याचरके दोवः प्रतिविद्या च चसजीवविवया हिंसा स्थावरेषु त्वप्रतिविद्यहिंसेषु यथेष्टं चेष्टन्तां ग्रहस्या इत्याह—

निरर्धिकां न कुर्वीत जीवेषु स्थावरेष्ट्यप्। हिंसामहिंसाधर्मज्ञः काङ्गमोचमुपासकः॥२१॥

स्थावराः 'पृथिव्यम्बृतेजोवायुवनस्यतयसेष्यपि जीवेषु हिंसां न कुर्वीत। किं विशिष्टां निरिधेकां प्रयोजनरहितां ग्ररीरकुटुम्ब-निर्वाहिनिस्तं हि स्थावरेषु हिंसा न प्रतिषिद्या या त्यनिर्धका ग्ररीरकुटुम्बादिप्रयोजनरहिता तादृशीं हिंसां न कुर्वीत। उपा-सकः त्रावकः किं विशिष्टः घहिंसाधर्मेषः प्रहिंसालच्चणं धर्मे जानातीति घहिंसाधर्मेषः। न हि प्रतिषिद्यत्विषयेवाहिंसा-धर्मः। किम्बप्रतिषिद्येष्यपि सा यतनारूपा। ततस्र तथाविधं धर्मे जानन् स्थावरेष्यपि निरिधेकां हिंसां न विद्धीत। ननु प्रतिषिद्यविषयेवाहिंसालु किमनया स्कोच्चिकया हत्याह। काङ्गभोचं स हि मोचाकाङ्गी यतिवत् कवं निरिधंकां हिंसामाचरेत्॥ २१॥

ननु निरम्तरिं सापरोऽपि सर्वसं दिचणां दस्ता पापविश्विं विद्धात् किमनेन हिंसापरिहारक्षेशेन इत्याह— प्राणी प्राणितलोभेन यो राज्यमपि मुस्ति। तह्योत्यमघं सर्वीवींदानेऽपि न शास्यति॥ २२॥

⁽१) गव ज प्रचिव्यक्तेजी-।

प्राची जन्तुः प्राचितं जीवितव्यं तस्त्र सोभेन राज्यमपि तत्नासीप-स्थितं परिषरित ।

यदाइ--

मार्यमाचस्य हेमाद्रिं राज्यं वाय प्रयच्छत् । तदनिष्टं परित्यज्य जीवी जीवित्सिच्छति ॥ १ ॥

तत्त्रयाविधप्राणितप्रियप्राणिवधस्त्रावं पापं सकलप्रकीदाने-नापि न ग्राम्यति । भूदानं हि सकलदानिभ्योऽभ्यधिकमिति स्रुति: ॥ २२ ॥

षय स्रोकचतुष्टयेन सिंसाकर्त्तुनिन्दामास-

वने निरपराधानां वायुतीयत्वणाधिनाम् । निम्नन् सृगाणां मांसार्थी विधिष्येत कथं शुनः ॥२३॥

स्गाचामिति "निप्रेभ्यो छः" ॥ २ । २ । १५ ॥ इति कर्मलप्रिने वेधाच्छेवे षष्ठौ । वने वनवासिनां नतु परस्तीक्षतभूमिवासिनां तत्राविधा षि सापराधाः स्युरित्याइ । निरपराधानां परधनइर-षपरग्रहभङ्गपरमारचाद्यपराधरिहतानां निरपराधत्वे हेतुमाइ । वायुतोयद्धचाप्रिनाम् । न हि वायुतोयद्धचानि परधनानि येन तक्षचात्वापराधत्वं स्थात् । मांसार्थीति षचापि स्गाचामिति सम्बध्यते । स्गाचां यन्त्रांसं तद्ध्यते स्गग्रइपेन। टविकाः प्राचिनो ग्रह्मत्ते । एवंविधस्गमांसार्थी स्गवधपरायणो निरपराधमानुष-पिचिक्षका मांसनुत्थाच्छनः कथं विधिष्येत स्वैवेत्वर्धः ॥ २३ ॥

| | • | | Re. | 5 | . 0 |
|--|----------------|--------------|------------|-----|------------|
| *Nirukta, Vol. IV, Fasc. 1-8 @ /10/ each | ••• | ••• | | _ | _ |
| *Nitinara, Fanc. 2-5 @ /10/ each | ••• | ••• | 50 000 | 2 | : 8 |
| Minus and Alberth Pose 1 7 @ /10/ each | | | | 4 | 6 |
| Nityacarapaddhatib, Fasc. 1-7 @ /10/ each | ••• | ••• | | 5 . | . 0 |
| Nityācārapradīpah Fasc. 18 @ /10/ each | • • • | ••• | ••• | _ | |
| Nyayabindutika, Fasc. 1 @ /10/ each | | ••• | • • • | 0 | 10 |
| are a re mainti Dockson Vol I Fore | D.A. Vol I | Fasc. | | | |
| *Nyāya Kusumānjali Prakaraņa Vol. I, Fasc. | 2U , VUI. I. | ., | | K | 0 |
| 1-3 @ /10/ each | • • • | • • • | • • • | 5 | |
| Dedumenti Para 1.5 @ 9/ | | ••• | | 10 | 0 |
| Padumawati, Fasc. 1-5 @ 2/ | • ••• | ••• | | 3 | 2 |
| Paricista Parvan, Fasc. 15 @ /10/ each | | ••• | ••• | | |
| Prakrita-Paingalam, Fasc. 1-7 @ /10/ each | | | | 4 | ď |
| Frakrick-I kingkikui, Past. 1-1 6/10/ ottos | -1. | | | 3 | 2 |
| Prithiviraj Rasa. Part II, Fasc. 1-5 @ /10/ ea | сп | ••• | ••• | | |
| Ditto (English) Part II, Fasc. 1 @ 1/ | l | ••• | ••• | 1 | 0 |
| | | | ••• | 1 | 8 |
| Prakrta Laksanam Fasc. 1 @ 1/8/ each | | | ••• | • | • |
| Paracara Smrti, Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. II, Fa | ınc. I6 ; V∢ | ol. III, | | | |
| | • | ••• | ••• | 12 | 8 |
| Fasc. 1-6 @ /10/ each | ••• | | | | Ŏ |
| Paracara, Institutes of (English) @ 1/- each | ••• | ••• | ••• | ı | |
| Prabandhacintamani (English) Fasc. 1-8 @ 1/4/ | / each | ••• | ••• | 8 | 12 |
| Litabilitime incentiation (Taughten) I use: 1. 0 (40 / 1-1) | | | | 0 | 10 |
| Saddarsana-Samuccaya, Fasc. 1, @ /10/ each | *** | _ • • • | ••• | ٠ | 10 |
| "Sama Vēda Samhitā, Vols. I, Fasc. II, | l6: 111. 1 | 7 ; | | | |
| 111 1 A 17 1 0 62 (101 1) | | | | 16 | 14 |
| IV, 16; V, 1-8, @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | | _ |
| Sankliya Sutra Vrtti, Fanc. 1-4 @ /10/ ench | ••• | ••• | ••• | 2 | 8 |
| | | ••• | ••• | 3 | 0 |
| | CUCH | ••• | ••• | | |
| •Sankara Vejaya, Fasc. 2-3 @ /10/ each | | • • • | • • • | 1 | 4 |
| 0 = 1 11 17 1 = 17 18 Wass 1 8 @ /10/ wash | | | • • • | 3 | 12 |
| Sraddha Kriya Kaumudi, Fasc. 1-6 @ /10/ each | · ••• | ••• | | | |
| Srauta Sutra Latyayan, Fasc. 1-9 @ /10/ each | • • • | | • • • | 5 | 10 |
| Ashalayana, Fasc. 1-11 @ /10/ eac | h | | • • • | ช | 14 |
| | | • • • • • | | ı | 0 |
| Sucruta Samhitá, (Eng.) Fasc. 1 @ 1/- each | ••• | ••• | ••• | | _ |
| Suddhikaumudi, Fasc. 1-4 @ /10/ each | | ••• | ••• | 2 | 8 |
| Signification and the second s | | | · | 14 | 6 |
| *Taittreya Brahmana, Fasc. 3.25 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | | |
| Pratianklya, Fasc. 1-3 @ /10/ each | | • • • | • • • | 1 | 14 |
| | | | | 15 | 0 |
| *Taitteriya Sainhita, Fasc. 22-45 @ /10/ each | • • • | ••• | ••• | | - 1 |
| Tāṇḍya Brāhmaṇa, Fasc. 1-19 @ /10/ each | | | ••• | 11 | 14 |
| Mantes Wester (Prolich) Fore 16 @ 1/1/ orch | | | | 7 | 8 |
| Tantra Vārteka (English) Fasc. 1-6 @ 1/4/ each | | | | • | - |
| Tattva Cintamani, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol II, h | 'asc. 2-10, \ | ol. 111, r | abc. 1-2, | | |
| Vol. IV, Fasc. 1, Vol. V, Fasc. 1-5, Part IV, V | al II Page. | 1.12@/ | 0/ each | 23 | 12 |
| VOI. 17, PRIC. 1, VOI. 1, PRIC. 1-0, 1 ATO 11, 1 | UI. 11, 1 1000 | (9) | | 1 | 14 |
| Tattvärthadhigama Sutram, Fasc. 1-3 @ /10/ ea | ich | ••• | • • • | _ | |
| Trikanda-Mandanam, Fasc. 1-3 @ /10/ each | | | ••• | 1 |) <u>i</u> |
| | ••• | *** | | 3 | 2 |
| Tul'si Satsai, Fasc. 15 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | | |
| Upamita-bhava-prapanca-kathā, Fasc. 1-11 @ /1 | 0/ each | | • • • | 6 | 14 |
| 1 - 40 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 | 1 /h | | ••• | 6 | 0 |
| Uvasagadasao, (Text and English) Fasc. 1-6 @ | 1/- escu | ••• | ••• | _ | |
| Vallala Carita, Fasc 1 @ /10/ | ••• | ••• | ••• | 0 | 10 |
| Varsa Kriya Kaumudi, Fasc 1-6 @ /10/ each | | | ••• | 3 | 12 |
| Variat Kriva Kanimani, Pase 1.0 (2) 10/ cach | | | | 7 | 8 |
| *Vayu Purana, Vol. I, Fasc. 2-6; Vol. II, Fasc | c. J7, (42) /1 | u/ encu | ••• | | |
| Vidhāna Pārijata, Fasc. 1-8 Vol- II. Fasc. I (| @ /10/ each | | | 5 | 10 |
| 21 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - | 91 | | | 4 | ď |
| Vivadaratnākara, Fasc. 1-7 @ /10/ esch | . ••• | ••• | ••• | | |
| Vrhat Svayambhū Purāņa, Fasc. 1-6 @ /10/ et | nch | ••• | • • • | 3 | 12 |
| | | ••• | | 2 | 8 |
| *Yoga Aphorisms of Patanjali, Fasc. 2-5 @ /10 | | | ••• | _ | |
| Yogaszstra of Hemchandra Vol. I. Fasc. 1. (| 200 junges. |) | ••• | 1 | 4 |
| **** | | | | | |
| Tibelan Se | rıc s. | | | | |
| n a milan n | | | | 4 | |
| Pag-Sam Thi S'in, Fasc. 1-4 @ 1/ cach | ••• | | • • • • | | . 0 |
| Sher-Phyin, Vol. I, Fasc 1-5; Vol. II, Fasc. 1-3 | : Vol. 111 1 | Fasc. 1-6. | @ 1/ each | 14. | 0 |
| The man half of the man Line to the Country And Annual Ann | la 17 -1 | . W.1 | · j | _ | , (|
| Rtogs brjod dpag hkhri Sift (Tib. & Sans. Ave | mjira ansor | incas y V∪1. | ≖ , | | _ |
| Fasc. 16; Vol. 11. Fasc. 15 @ 1/ each | | | • • • | 11 | 0 |
| • | | | - | | |
| Arabic and Pers | ian Series | | | | |
| 11.1000 With 1 0.0 | | | | | |
| 'Alamgirnāmah, with Index, (Text) Fasc. 1-13 | @ /10/ ead | 1 | | 8 | 2 |
| | | | - | 3 | 0 |
| Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-3 @ 1/ | · CHUIL | ••• | ••• | | _ |
| Ain-1-Akbari, Fasc. 1-22 @ 1/8/ each | | • • • | | 33 | 0 |
| | II Fees 1 | 5 Val 1 | II. | | |
| Ditto (English) Vol. 1, Pasc. 17, Vol | . Aty E mou. I | | | 21 | |
| Fasc. 15, @ 2/- ench | ••• | ••• | ••• | 34 | 0 |
| Akbarnāmah, with Index, Fasc. 1-37 @ 1/8/ e | ach | | | 55 | 8 |
| SECONDINATION WINE INTO A TRUE TO THE TOTAL TO THE | 1 [[17 | 14614 | | 15 | ŏ |
| Ditto (English) Vol. I, Fasc. 1-8; Vo | | 1.3 (2) 1/9 | i/ eacu | | |
| Arabic Bibliography, by Dr. A. Sprenger, @ / | | ••• | | 0 | 10 |
| | | | | 11 | 14 |
| *Badshahnamah, with Index, Fasc. 1-19 @ /1 | of each | ••• | ••• | _ | |
| Conquest of Syria, Fasc. 1-9 @ /10/ each | ••• | ••• | • • • | 5 | 10 |
| Catalogue of Arabic Books and Manuscripts, 1 | 2 @ 1/- 000 | h | | 2 | 0 |
| Oursing of Vistoic Dones and Brandscules, f | - (wy 1/ 010C | n | | - | • |
| Catalogue of the Persian Books and Manusci | ripts in the | Library ol | : the | | |
| Asiatic Society of Bengal. Fasc. 1-3 @ 1/ | | | | 3 | 0 |
| The state of the life of the state of the | mandin D. | | 1/9/ | | 8 |
| Dictionary of Arabic Technical Terms, and Ar | penaix, ras | U. 1-ZI (43) | 1/o/ each | 01 | |
| Farhang-i-Rashidi, Fasc. 1-14 @ 1/8/ each | | | ••• | 21 | U |
| | | | | | |
| | | | | | |

*The other Fasciculi of these works are out of stock, and complete cories cannot be supplied.

| | · · · · · | • • • |
|--|-----------|---------|
| Fibristi-Tusi. or, Tusy's list of Shy'ah Books, Fasc. 1-4 @ 1/- each : Ra | | _ |
| litto of Inidi Pose 1 4 @ /10/ seek | _ | 10 |
| Haft Asman, History of the Persian Masnawi, Fasc. 1 @ /12/ each | 9 | · 8 |
| History of the Caliphs, (English) Fasc. 1-6 @ 1/4/ each | 7 | 8 |
| Iqbālnāmah-i-Jahāngiri, Fasc. 18 @ /10/ each | ì | 14 |
| Isabah, with Supplement, 51 Fasc. @ 1/- each | 51 | 0 |
| Mangir-ul-Umara, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol. II, Fasc. 1-9; Vol. III, 1-10; | | |
| Index to Vol. I, Fasc. 10-11; Index to Vol. II, Fasc. 10-12; | | _ |
| Index to Vol. III, Fasc. 11-12 @./1/ each | 85 | 0 |
| Mantakhahast Tawarikh Rasa 1-15 @ //0/ anch | 8 | 2 6 |
| Ditto (English) Vol. I. Fasc. 1-7: Vol. II. Fasc. | • | U |
| 1-5 and 3 Indexes; Vol. III, Fasc. 1 @ 1/ each | 15 | 0 |
| Muntakhabu-l-Lubāb, Fasc. 1-19 @ /10/ each | 11 | 14 |
| Ma'agir-i-' Alamgiri, Fasc. 1-6 @ /10/ each | 8 | 12 |
| Nukhbatu-I-Fikr, Fasc. 1 @ /10/ | 0 | 10 |
| Nigami's Khiradnamah-i-Iskandari, Fasc. 1-2 @ /12/ each | 1 | 8 |
| Riyāşu-s-Salātin, Fasc. 15 @ /10/ each Ditto (English) Fasc. 15 @ 1/ | 3 | 2 |
| Tahaquat Nagiri Fasc 1 6 @ /10/ accl. | 5 | 0 |
| Ditto (Kngligh) Fogo 1-14 @ 1/ oach | 3 14 | 2 () |
| Ditto Index | 1 | Ú |
| Tärlkh-i-Firus Shāhi of Ziyāu-d-din Barni Fasc. 1-7 @ /10/ each | â | Ğ |
| Tari <u>kh</u> -i-Firuzehāhi, of Shams-i-Sirāj Aif, Fasc. 16 @ /10/ each | 3 | 12 |
| Ten Ancient Arabic Poems, Fasc. 12 @ 1/8/ each | 3 | (ı |
| Wis o Ramin, Fasc. 1-5 @ /10/ each | 3 | 2 |
| Zafarnāmah, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol. II, Fasc. 1-8 @ /10/ each | 10 | 10 |
| Tuzuk-i-Jahängiri, (Eng.) Fasc. 1 @ 1/ | 1 | 0 |
| | | |
| ASIATIC SOCIETY'S PUBLICATIONS. | | |
| 1. ANIATIO RESEARCHES. Vols. XIX and XX @ 10/ each | 20 | 0 |
| 2. Phockedings of the Asiatic Society from 1570 to 1904 @ /8/ per No. | | |
| 5. JOHRNAG OF the Assistic Society for 1870 (8), 1671 (7), 1872 (8), 1873 | | |
| (8), 1874 (8), 1875 (7), 1876 (7), 1877 (8), 1878 (8), 1879 (7), 1880 (8), | | |
| 1881 (7), 1882 (8), 1883 (5), 1884 (6), 1885 (4), 1886 (8), 1887 (7), 1888 (7), 1889 (10 . 1890 (11), 1891 (7), 1892 (8), 1898 (11), 1894 | | |
| (8), 1895 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1898 (8), 1899 (8), 1900 (7), 1901 | | |
| (7), 1902 (9), 1903 (8), 1904 (16), @ 1/8 per No. to Members and | | |
| @ 2/ per No. to Non-Members | | |
| N. B The figures enclosed in brakets give the number of Nos. in each Volu | m 4 | |
| 4. Journal and Proceedings, N.S., 1905, to date, @ 1-8 per No. to | ###. | |
| | | |
| 5. Memoirs, 1905, to date. Price varies from number to number. | | |
| Discount of 25% to Members. | | |
| 6. Centenary Review of the Researches of the Society from 1784-1883 | 3 | 0 |
| A sketch of the Turki language as spoken in Eastern Turkistan, by | | |
| R. B. Shaw (Extra No., J.A.S.B., 1878) | 4 | 0 |
| Catalogue of Mammals and Birds of Burmah, by E. Blyth (Extra No., J.A.S.B., 1875) | | • |
| 7. Catalogue of the Library of the Asiatic Society Bongs 1994 | 4 | 0 |
| 8. Mahābhārata, Vols. III and IV, @ 20/ each | 8 40 | 8 |
| 9. Moore and Hewitson's Descriptions of New Indian Legidonters | | U |
| Parts 1-111, with 8 coloured Plates, 4to, @ 6/ each | 18 | 0 |
| 10. Tibetan Dictionary, by Csoma de Körös | 10 | 0 |
| 11. Ditto Grammar 12. Kaçmiraçabdamrta, Parts I & II @ 1/8/ | 8 | (1 |
| 12. Kaçmiraçabdāmṛta, Parts I & II @ 1/8/ 13. A descriptive catalogue of the paintings, statues &c. in the rooms of | 8 | 0 |
| the Asiatic Society of Rengel by C. P. William | | |
| 14. Memoir on mape illustrating the Ancient Geography of Kasmir, by | 1 | 0 |
| M. A. Stein Ph.D., Jl. Extra No. 2 of 1899 | 4 | 0 |
| 15. Persian Translation of Haji Baba of Ispahan, by Haji Shaikh | • | • |
| Ahmad-i-Kirmasi, and edited with notes by Major D. C. Phillott | 10 | 0 |
| - · · | | |
| Notices of Sanskrit Manuscripts, Fasc. 1-33 @ 1/ each | 33 | 0 |
| Nepalese Buddhist Sanskrit Literature, by Dr. R. L. Mitra | 5 | Ö |
| N.B.—All Cheques, Money Orders, &c., must be made payable to the | | |
| Asiatic Society," only. | 4100 | ₩(11 CL |
| 22-11-0 | 7. | |
| Pealer and annuality is the TT D. D. | | |

BIBLIOTHECA INDICA:

COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL

NEW SERIES, No. 1206.

योगशास्त्रम्।

स्रोपज्ञविवरसम् ।



With the commentary called SVOPAJNAVIVARANA.

BY

SRI HEMACHANDRACHARYA.

EDITED BY

ÇĀSTRA VIÇARADA JAINĀCĀRYA

CRĪ VIJAYA DHARMA SŪRI.

FASCICULUS II.

ARRAVARTI, AT THE SANSKRIT PRESS, PRINTED BY UPENDRA NATUA AND PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY, 57, PARK STREET.

1909.

LIST OF BOOKS FOR SALE

AT THE LIBRARY OF THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

No. 57, PARK STREET, CACUTTA,

AND OBTAINABLE FROM

THE SOCIETY'S AGENTS, MR. BERNARD QUARITCH,

11, GRAFTON STREET, NEW BOND STREET, LONDON, W., AND MR. OTTO HARRASSOWITZ, BOOKSELLER, LEIPZIG, GERMANY.

Complete copies of those works marked with an asterisk . cannot be supplied . - some

of the Fasciculi being out of stock.

BIBLIOTHECA INDICA.

Sanskrit Series

| Danish to Screen | • | | | | • |
|---|-------------|--------------|-------|--------------|----------|
| • Advaita Brahma Siddhi, Fasc. 2, 4 @ /10/ each | ••• | ••• | Rн. | 1 | 4 |
| Advaitachints Kaustubha, Fasc. 1-8 @ /10/ each | ••• | ••• | | 1 | 14 |
| # A com! Durating Forc 8-14 (d) /10/ each | | ••• | | 7 | 8 |
| Aitarēya Brāhmaņa, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. 1 | II. Fasc. 1 | -5; Vol. 1 | 11. | | |
| Fasc. 1-5, Vol. IV, Fasc. 1-8 @ /10/ each | | | | 14 | (i |
| | | ••• | | 2 | () |
| Aitereya Lochana. Anu Bhāshya, Fasc. 2-5 @ /10/ each | | | ••• | <u>. 5</u> , | 8 |
| Anu Bhashya, Fasc. 2-0 @ /10/ Great | | ••• | ••• | ī | ő |
| Aphorisms of Sandilys, (English) Fasc. 1@1/- | | | | /3 | 12 |
| Aştasāhasrikā Prajhāpāramitā, Fasc. 1-6 @ /10/ e | acu | • • • • • | ••• | | |
| *Atharvana Upanishad, Fasc 3-5 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | , <u>]</u> | 14 |
| Atmatattaviveka, Fasc. I. @ /10/ each | ••• | • • • | • • • | 0 | 10 |
| Acveveidvaka, Fasc. 1-5 (41/10/each | | | ••• | 3 | 2, |
| Avadana Kalpalata, (Sans. and Tibetan) Vol. 1, Fr | nac. 1-6; \ | Vol. II. Fa | BC. | | |
| 1_5 @ 1 / each | • • • | | ••• | 11 | O. |
| A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1-3 | @ 1/- each | ••• | ••• | 3 | 0, |
| Ralam Bhatti, Vol. I. Fasc. 1-2, Vol 2, Fasc. I @ | /10/ each | ••• | ••• | 1 | 14 |
| Baudhāyana S'rauta Sutra, Fasc. 1-3 Vol. II, Fasc | 1 @ /10/ | each | | 2 | 'n. |
| *Bhāmatī, Fasc. 4-8 @ /10/ each | | | | 3 | 2 |
| Bhatta Dipika Vol. I, Fasc. 1-5 @ /10 each | ••• | ••• | | 3 | 2 |
| Brahma Sutra, Fasc. 1 @ /10/ each | ••• | ••• | | 0 | 100 |
| Branma Sucra, Pasc. 1 (a) /10/ cuch | | ••• | | 2 | 8 |
| Brhaddevata Fasc. 1-4@/10/ ench | •••• | | | $\bar{3}$ | 1:: |
| Brhaddharma Purāņa Fasc 1-6 @ /10/ each | | ••• | •• | | |
| Bodhiearyāvatāra of Cantideva, Fasc. 1-5 @ /10/ | eacu | ••• | ••• | 3 | : |
| Catadusani, Fasc. 1-2 @ /10/ each | | ••• | ••• | ĵ | 4 |
| Cutalogue of Sanskrit Books and MSS., Fasc. 1-4 | @ 2/ each | | .: | 8 | U |
| Catapatha Brahmana, Vol I, Fasc. 1-7, Vol | II, Fasc. | 1-5, Vol. 1 | 11, | | |
| Fasc. 1-7 Vol. 5, Fasc. 1-4 (a) /10/ each | ••• | ••• | ••• | 14 | ti |
| Ditto Vol. 6. Fasc. 7 | | ••• | | 1 | 4 |
| Catasāhasrikā Prajnāpāramitā Part, I. Fasc. I-12 | @ /10/ end | ch | | 7 | S, |
| *Caturvarga Chintamani, Vol. II, kasc. 1-25; | ; Vol. 111. | Part I, Fasc | ٥. | | |
| 1-18. Part II, Fasc. 1-10. Vol. IV. Fasc. 1-6 @ | /10, each | | | 36 | 14. |
| Ditto Vol. 4, Fasc. 7 | | | | 1 | 4. |
| Clockavartika, (English) Fasc. 1-6 @ 1/4/ ench | | ••• | | 7 | ่่่ |
| *Crauta Sūtra of Apastamba, Fasc. 9-17 @ /10/e | | | ••• | 5 | 10. |
| | 7. Val i | I Wase 1 | -4 | • | • " |
| Vol. III, Fasc. 1-4 @ /10/ each; Vol 4, Fasc. | 1, 10 | , raso. 1 | , | 10 | 0. |
| 0: The boom Form 1 9 @ /10/ each | • | ••• | ••• | ì | 14 |
| Cri Bhāshyam, Fa:c. 1-3 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | î | 4 |
| Dana Kriya kaumudi, Fasc 1-2@/10/each | 1101 000 | ••• | ••• | 4 | 6. |
| Gadadhara Paddhati Kālasāra Vol. I, Fasc. 1-7 | | | ••• | _ | 14. |
| Ditto Acharasarah Vols. II, Fasc. 1-3 (| g /10/ each | ••• | | 1 | |
| Gobhiliya Grihya Sutra, Fasc 4-12 @ /10/ each | • • • | ••• | • • • | 5 | 30 |
| Ditto Vol. II. Fasc. 1 | | • • • | • • • | 1 | 4 |
| Kāla Viveka, Fasc. 1-7 @ /10/ each | ••• | ••• | | 4 . | 6 |
| Kātantra, Fasc. 1-6 @ /12/ each | | | | 4 | 8 |
| Katha Sarit Sagara, (English) Fasc. 1 -14 @ 1/4/ | each | | | 17 | 8 |
| *Kūrma Purāna, Fasc. 3-9 @ /10/ each | | ••• | | 3 | 2 |
| Lalita-Vistara, (English) Fasc. 1-3 (q. 1/- each | | | | 3 | 0 |
| *Lalitavistara. Fasc. 3-6 @ /10/ each | ••• | ••• | | 2 | 8 |
| Madana Pārijāta, Fasc. 1-11 @ /10/ each | | | | 6 | 14 |
| Mahā-bhāşya-pradipōdyōta, Vol. I, Fasc. 1-9; Vo | | | | - | |
| Fasc. 1-6 @ /10/ each | • | | -, | 16 | 14 |
| Manutikā Sangraha, Fasc. 1-3 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | 'n | 14 |
| Manusian Sangtana, Fast. 1-0 to /10/ cach | | ••• | • • • | 9 | - 3 |
| Markandeya Purana, (English) Fasc. 1-9 @ 1/- es | i CII | | ••• | T) | 14 |
| • Markandeya Purana, Fasc. 5-7 @ /10/ each | ••• | tized by 🕼 | 00 | σle | |
| | Digi | rized by | 20, | 310 | |

दौर्यमाणः कुशेनापि यः खाङ्गे हन्त दूयते । निर्मन्तृन् स कथं जन्तृनन्तयिद्गिशितायुषैः ॥ २४ ॥

दीर्यमाणी विदार्यमाणः कुश्चन दभेंण प्राप्य ग्रस्थादास्तां शक्षेण यः खाङ्गे शरीरे इन्तिति प्रतिबोध्यामन्त्रणे दूयते उपतप्यते। निर्मान्त्र्विरपराधान् जन्तृन् स कथं प्रन्तयेदन्तं प्रापयेत्। निश्चितायुषेः कुन्तादिभिः प्रान्तानुसारेणापि परपीडामजानविवं निन्यते।

तथाच सगया व्याप्रतान् चित्रयान् प्रति केनचिदुक्तम्-

रसातसं यातु यदत्र पीर्का 'का नीतिरेवाऽघरस्थी द्वादोववान् । निष्टम्यते 'यद्दलिनातिसुर्वलो इडा मडाकष्टमराजकं जगत्॥ १॥ २४॥

निर्मातुं क्रूरकर्माणः चिणिकामात्मनो धृतिम्। समापयन्ति सक्तलं जन्मान्यस्य शरीरिणः॥ २५॥

क्रूरं रीष्ट्रं कर्म हिंसादि येषां ते क्रूरकर्माणो लुस्थकादयः । पात्मनः स्वस्य प्रति स्वास्यवन्त्रणं निर्मातुमिति सम्बन्धः । प्रतिविधिषणं चिषकामिति पात्रस्थाम्बतिकप्रतिनिमित्तं कदाचित्विचि

⁽१) च क्रभीति-।

⁽२) न च बहुसिनापि दुर्वेसी।

हिरुहमि क्रियेत। चिषक धितिन मीषायें तु समापयन्ति समाप्तिं नयन्ति जना प्रन्यस्य वध्यस्य गरीरिषः। प्रयमर्थः परप्राणिमांस-जन्यचिषक द्वितिरोगाका सिकं परस्यायः समाप्यत इति महिदं वैभसम्।

यदाइ--

योऽस्राति यस्त तसांससुभयोः पग्ततान्तरम् । एकस्य चिका द्वतिः प्राचैरन्यो वियुच्यते ॥ १ ॥ २५ ॥

सियखेत्युच्यमानोऽपि देशी भवति दुःखितः। मार्यमाषः प्रश्रगौर्दावणैः स कथं भवेत्॥ २६॥

नियस लिमियुचमानोऽपि न तु मार्यमाचो देही जन्तुर्जाय-मानस्त्युदिव दुःखितो भवतीति सर्वप्राणिप्रतीतम्। प्रहर्षः कुन्ततोमरादिभिर्मार्थमाचो विनाध्यमानः स वराको देही कथं भवेत्। परमदुःखित एव भवेदित्यर्थः। मरचवचनेनाऽपि दूयमानस्य निधितः प्रसिर्मारचिमिति सतमार्चं तत्कथं सकर्षः कुर्योदिति निन्दा॥ २६॥

हिंसाफलं दृष्टान्तद्वारेणाह---

श्रृयते प्राणिघातेन रौद्रध्यानपरायणी। सुभूमो ब्रह्मदत्तस सप्तमं नरकं गती॥ २०॥

त्रूयते पाकर्षाते एतदागमे । यदुत प्राणिघातेन हेतुना सुभूम-

ब्रह्मदत्ती चक्रवर्त्तिनी सप्तमं नरकं गती। हिंसाया नरकगमन-हेतुत्वं न रौद्रध्यानमन्तरेण भवति। प्रम्थया सिंहवधकतपस्तिनी-ऽपि नरकः स्थादित्युक्तं रौद्रध्यानपरायणी हिंसानुबन्धिध्यानयुक्ता-वित्यर्थः। यथा ती नरकं गती तथा कथानकहारेण दर्श्यते।

तथाहि---

वसन्तपुरनामायां पुर्यासुच्छन्नवंशकः। भासी ब्रात रवाका भादिनिकी नाम दारकः ॥ १ ॥ सीऽन्यदा चलितस्तस्रात् स्थानाईशान्तरं प्रति। सार्वाहीनः परिश्वास्यद्यगमत्तापसात्रमम् ॥ २ ॥ तमनि तनयलेनायहील् सपतिकीमः। जमदिग्निरिति ख्यातिं स लोकेषु ततीऽगमत्॥ ३॥ तप्यमानस्तपस्तीच्यं प्रत्यच दव पावकः। तेजसा दु:सहेनासी पप्रधे प्रथिवीतसे ॥ ४ ॥ पवान्तरे महात्राही नान्ना वैम्बानर: सुर:। धन्तनिय तापसभक्ती व्यवदतामिति॥ ५॥ एक चाहाईतां धर्मः प्रमाणमितरः पुनः। तापसानां विवादेऽस्मिन व्यधातामिति निर्णयम् ॥ ६ ॥ चाईतेषु जवन्यो यः प्रकष्टस्तापसेषु यः । परीचणीयावावाभ्यां की गुणैरितिरिचते॥ ७॥ तदानीं मिथिलापुर्यां नवधर्मपरिष्कृतः। श्रीमान् पश्चरयो नाम प्रस्थितः पृथिवीपतिः ॥ ८ ॥

दीचां त्रीवासपूज्याको यहीतुं भावती यतिः। गच्छं बम्पापुरीं ताभ्यां देवाभ्यां दहमे पि ॥ ८ ॥ परीचाकाइया ताभ्यां पानाचे ठीकिते छप:। खित: चुधितोऽप्योक्भद्वीरा: सच्चाचलन्ति न ॥ १० ॥ क्रकचैरिव चक्राते क्रूरे: कर्करकण्टकै:। पीडां देवी तृदेवस्य सृदुनी: पादपश्चयो: ॥ ११ ॥ पादाभ्यां प्रचरद्रक्तधाराभ्यां ताह्रभेऽध्वनि । तू जिकात जसचारं संचेरे च तथापि सः ॥ १२ ॥ निर्ममे गीतनृत्वादि ताभ्यां चीभाय भूपति:। तसीघमभवत्तन दिव्यास्त्रमिव गोवजे॥ १३॥ तो सिद्यप्रकृपेण पुरोभूयेदमूचतुः। तवाद्यापि महाभाग महदायुर्यवासि च ॥ १४ ॥ स्तच्छन्दं भुंच्त तद्गोगान् का धीर्यचीवने तपः। निभीयक्तत्यं कः प्राप्तः कुर्यादुद्योगवानपि ॥ १५ ॥ यीवने तदतिकान्ते देश्वदीर्वस्यकारणम्। ग्टन्नीयास्वं तपस्तात दितीयमिव वार्वेकम् ॥ १६ ॥ राजोचे यदि बद्धायुर्बे हुपुखं भविष्यति । जलमानेन निलनोनालं दि परिवर्दते ॥ १०॥ सोसन्द्रिये यौवने हि यत्तपस्तत्तपो नत्। दारुणाचे रचे यो हि शूर: शूर: स उच्यते ॥ १८ ॥ तिस्रवचिति सत्त्वासाधु साध्विति वादिनौ। ती गती तापसीलुष्टं जमदग्निं परीचितुम् ॥ १८ ॥

म्बयोधमिव विस्तारिजटासंसृष्टभूतलम्। वल्मीकाकीर्णपादान्तं दान्तं ती तमपग्यताम् ॥ २०॥ तस्य सम्मलताजाले नीडं निर्माय मायया। तदैव देवी चटकमिष्ट्रनीभूय तस्वतुः॥ २१॥ चटकबटकामू वे यास्यामि हिमवद्गिरौ। पन्यासती नैचसि लिमिति तं नान्वमंस्त सा॥ २२॥ गोघातपातकेनाई ग्रही नायामि चेत्रिये। रत्युत्तरापयं भूयस्टकं चटकाऽस्वीत् ॥ २३ ॥ ऋषेरस्थेनसा रुद्धो ग्रपेशा इति चेलिय। विस्ञामि तदेव लां पन्वानः सन्तु ते शिवाः ॥ २४ ॥ द्रत्याकाच्ये वचः क्रुडी जमदन्त्रिमुनिस्ततः। चभाभ्यामपि इस्ताभ्यामुभी जयाइ पिचणी ॥ २५॥ पाचचचे तती इन्त कुर्वाणे दुष्करं तपः। उचारसाविव ध्वान्तमाः पापं मयि कौदृशम् ॥ २६ ॥ भविषं चटकोवाच मा कुपस्ते मुधा तपः। पपुत्रस्य गतिनीस्तीत्यत्रीषीस्वं न किं त्रुतिम् ॥ २० ॥ तत्त्रया मन्यमानोऽयं सुनिरेवमचिन्तयत्। ममाक्तवपुवस्य प्रवाहे सुवितं तपः ॥ २८॥ चुभितं तं परिचाय धिग् भानास्तापसैरिति । जन्ने धन्वन्तरिः त्रादः प्रत्येति प्रत्ययान् कः ॥ २८ ॥ बभूवतुरदृश्यी च ताविप विदशी तदा। जमदिग्व सम्पाप पुरं नेमिककोष्टकम् ॥ ३०॥

जितगतुमद्यीपासं तत्र भूयिष्ठकन्यकम्। स प्रेषः कन्यकामिकां दर्चं इर दवागमत्॥ ३१॥ कलाभ्युत्यानसुर्वीयः प्राञ्चलिस्तमभाषत । किमर्थमागता यूयं ब्रूत किं करवाख्यसम् ॥ ३२ ॥ कन्यार्थमागतीऽस्मीति सुनिनोक्ते तृपोऽब्रवीत्। मध्ये ग्रतस्य कन्यानां त्वां येच्छति ग्रहाय ताम् ॥ ३३ ॥ स कन्यान्तः पुरं गला जगाद कृपकन्यकाः । धर्मप्रत्नी मम काचित्रवतीभ्यो भवत्विति ॥ ३४ ॥ जिटलः पलितः चामी भिचाजीवी वदिवदम् । न ज्ञां विमिति ताः क्षतयूकारमू विरे॥ १५॥ समीरच इव कुडी जमदन्तिसुनिस्ततः। प्रधिन्येषासयध्याभाः कन्याः कुकीचकार ताः ॥ ३६ ॥ प्रयाष्ट्रचे रेखपुद्धे रममाचां तृपामजाम्। एकामासीकयामास रेखकेत्यव्रवीच ताम्॥ १०॥ स तस्या रक्छसीत्युक्ता मातुनिक्रमदर्भयत्। तया प्रसारित: पाणि: पाणियष्टणस्चक: ॥ ३८ ॥ तां सुनि: परिजग्राइ रोरो धनमिवीरसा। साधे गवादिभिस्तमे ददी च विधिवनृपः ॥ ३८ ॥ स म्यालीसेइसम्बन्धादेकोनं कन्यकामतम्। ः सञ्जीचक्री तप:प्रक्या धिग्मूटानां तपोव्ययः ॥ ४० ॥ नीलात्रमपदं तां च स मुख्यमधुराक्तिम्। इरिचीमिव लोलाची प्रेम्चा मुनिरवर्षयत् ॥ ४१ ॥

चक्रुसीभिगेचयती दिनाम्यस्य तपस्तिनः। यीवनं चार्कन्दर्पेलीलावनमवाप सा ॥ ४२ ॥ साचीक्रतञ्चलटिमजीमटिमम्निस्ततः। यद्यावद्पयेमे तां भूतेग इव पार्वतीम् ॥ ४३ ॥ ऋतुकाले स जरे तां चदं ते साधयाम्य हम्। यया बाह्यसमूर्वन्यो धन्य उत्पदाते सतः॥ ४४॥ सोवाच इस्तिनपुरेशनन्तवीर्यस्य भूपते:। पद्मास्ति मत्स्वसा तस्यै चत्: चात्रोऽपि साध्यताम् ॥ ४५ ॥ माम्नं सधर्मवारिखे चात्रं तज्जामयेऽपरम्। स चहं साधवामास पुत्रीयसुपजीवित्म ॥ ४६ ॥ साचिन्तयदर् तावदभूवमटवीसगी। माभूकाद्दक सुतोऽपीति चार्च चक्मभचयत् ॥ ४० ॥ साटाहाचां चर्च खस्त्रे जाती च तनयी तयी:। तन रामो रेणकायाः क्रतवीर्यस तत्स्वसः ॥ ४८ ॥ क्रमेख वहधे राम ऋषित्वे पैत्रकेऽपि सः। चानं प्रदर्भयंस्तेजो इताधनमिवाश्वसि ॥ ४८ ॥ विद्याधरीऽन्यदा तत कोऽप्यागादतिसारको । विद्या तस्यातिसाराच्या विस्नृताकाश्रगामिनी ॥ ५० ॥ रामेच प्रतिचरितो भेषजाद्यै: स बस्ववत् । रामाय सेवमानाय विद्यां पारमवीं ददी ॥ ५१ ॥ मध्येगरवर्षं गला तां च विद्यामसाध्यत्। रामः परग्ररामोऽभूत्ततः प्रभृति विश्वतः ॥ ५२ ॥

प्रन्येद्युः पतिमाप्रच्छा रेखकोकाष्टिता स्वसः। जगाम इस्तिनपुरे प्रेम्षो दूरे न किञ्चन ॥ ५३ ॥ म्यानीति नानयन् नोननीचनां तत रेखनाम्। चननावीर्योऽरमयलामः कामं निरक्षः ॥ ५४ ॥ ऋषिपद्धाा तया राजाइस्ययेव पुरन्दरः। चन्वभूच यथाकामं सन्भोगसुखसम्पदम् ॥ १५५॥ प्रनम्तवीर्यात्तनयो रेखकायामजायत। ममतायामिवोतप्यः सुधर्मिष्यां ष्टहस्पतः ॥ ५६ ॥ तेनापि सइ पुत्रेण रेणुकामानयसुनि:। स्तीषां लुब्धी जन: प्रायी दोषं न खलु वीचते ॥ ५० ॥ तां पुत्रसन्दितां वज्ञीमकालफलितामिव। सञ्जातकोप: परग्रराम: परग्रनाऽच्छिनत्॥ ५८॥ तद्वगिन्या स वस्तान्तोऽनन्तवीर्यस्य गंसितः। कोपसुद्दीपयामास क्रशानुमिव मार्तः ॥ ५८॥ ततचावार्यदोवीयीऽनन्तवीयी महीपतिः। जमदम्यात्रमं गलाभाद्यीयमः इव दिपः॥ ६०॥ तापसानां कतवासः समादाय गवादि सः। सन्दं मन्दं परिक्रामन् केसरीव न्यवर्श्तत ॥ ६१ ॥ व्रस्यत्तपस्तितुमुनं श्रुत्वा ज्ञात्वा च तां कथाम्। क्र्यः परश्ररामीऽयाधावसाचादिवान्तकः॥ ६२॥ सुभटगामसंग्रामकौतुकी जमदम्बिज:। पर्मुना खण्डशयकी दाववहावपेन तम्॥ ६३ ॥

राज्ये निवेशयाच्यके तस्य प्रकृतिपूर्वः। कतवीयीं महावीयी: स एव तु वयोलघुः ॥ ६४ ॥ स तु माद्यमुखाक्षुत्वा सत्य्यतिकरं पितुः। पादिष्टा हिरिवागत्य जमदम्मिममारयत् ॥ ६५ ॥ रामः पित्रवधक्रदो द्रागला इस्तिनापुरे। ममारयत्कतवीर्यं किं यमस्य दवीयसि ॥ ६६ ॥ जामदम्बास्ततस्तस्य राज्ये न्यविशत स्वयम्। राज्यं दि विक्रमाधीनं न प्रमाखं क्रमाक्रमी ॥ ६०॥ रामाकान्तपुराद्राज्ञी क्रतवीर्यस्य गुर्विणी। व्याचाचातवनादेगीवागमत्तापसात्रमम्॥ ६८॥ क्रपाधनैर्भूग्टहान्तः सा निधाय निधानवत् । तपस्तिभिगीप्यते सा क्रूरात्परश्ररामतः ॥ ६८ ॥ चतुर्दशमहास्त्रमुचितोऽस्याः सुतोऽजनि । रुद्भन् भूमिं सुखेनाभूस्भूमो नामतस्ततः ॥ ७० ॥ चित्रयो यत्र यत्नासीसत्र तत्राप्यदीप्यत । पर्युः परग्ररामस्य कोपाम्निरिव मूर्त्तिमान् ॥ ७१ ॥ रामोऽगादन्यदा ततात्रमे पर्शुंच सोऽज्वलत्। चतं चास्चयद्म इव धूमध्वजं तदा ॥ ७२ ॥ किमव चिवियोऽस्तीति पृष्टास्तेन तपस्तिन:। इत्यू चुस्तापसीभूताः चिया वयमास्महे ॥ ७३ ॥ रामोऽप्यमणीविः चर्चा सप्तक्ततो वसुन्धराम्। निर्ममे निस्तृषां ग्रैसतटीमिव दवानसः ॥ ७४ ॥

२७

चुचविवयदंष्ट्राभी रामः खालमपूरयत्। यमस्य पूर्णकामस्य पूर्णपात्रत्रियं दधत्॥ ७५॥ रामः पप्रच्छ 'नैमित्तानन्येयुर्मे कुती वधः। 'सदा वैरायमाचा हि शङ्कले परतो स्रतिम्॥ ७६ ॥ यो दंष्ट्राः पायसीभूताः सिंशासन इह स्थितः। भीच्चतेऽमुस्ततस्यस्ते वधी भावीति तेऽन्वन् ॥ ७० ॥ रामोऽय कारयामास सवागारमवारितम । ध्वि सिंशासनं तत्राखापयत्स्थालमयतः ॥ ७८ ॥ षयात्रमे प्रतिदिनं लालयि इत्पिलिभि:। निन्धेऽक्षणदूम इव सुभूमो वृद्धिमङ्गताम्॥ ७८ ॥ विद्याधरो मेघनादोऽन्येद्य्नेमित्तिकानिति। परिषप्रच्छ पद्मश्रीः कन्या ने कस्य दीयताम् ॥ ८० ॥ तस्या वरं वरीयांसं सुभूमं तेऽप्युपादिशन्। दस्वा कन्यां ततस्तकी तस्यैवाभूका सेवक: ॥ ८१ ॥ क्रुपभेक दवानन्यगोऽय पप्रच्छ मातरम्। सुभूमः किमियानेव लोकोऽयमधिकोऽपि किम् ॥ ८२ ॥ माताप्यचीकयदयी सोकोऽनन्तो हि वसक । मचिकापदमात्रं हि लोकमध्येऽयमात्रमः ॥ ८३॥ पियान् सोविऽस्ति विस्थातं नगरं इस्तिनापुरम्। पिता ते क्रतवीयींऽभूत्तन राजा महाभुजः ॥ ८४ ॥

⁽१) च ड नैभित्तानचान्धेद्युः क्षतो भग।

⁽श) च ख वधी।

इत्ता ते पितरं रामो राज्यं खयमशित्रियत्। चितिं नि:चित्रयां चन्ने तिष्ठामस्तद्भयादिष्ठ ॥ ८५ ॥ तलालं हास्तिनपुरे सुभूमो भीमवळवलन्। जगाम वैरिचे क्र्यः चात्रं तेजो हि दुर्वरम् ॥ ८६ ॥ तत सते ययी सिंह इव सिंहासनेऽविधत्। दंद्रास्ताः पायसीभूताः सुभुजी बुभुजी च सः ॥ ८० ॥ उत्तिष्ठमाना युदाय ब्राह्मणास्त्रच रचकाः। जिन्नरे मेचनारेन ब्यान्नेण इरिका इव ॥ ८८ ॥ प्रस्फरहं द्विकाकियो दशनैरधरं दशन्। ततो रामः क्षा कालपाशाकष्ट द्वाययी ॥ ८८ ॥ रामेण मुमुचे रोषास्भूमाय परम्बधः। विध्यातस्तत्वणं तस्मिन् स्फ्लिङ्ग दव वारिणि ॥ ८० ॥ चबाभावास्भूमोऽपि दंष्टाखालसुदचिपत्। चक्रीबभूव तसदाः किं न स्थात्पुख्यसम्पदा ॥ ८१ ॥ वक्रवर्ष्ण्यः सोऽध तेन वक्रेष भास्तता। शिरः परश्ररामस्य पङ्गजच्छेदमच्छिदत् ॥ ८२ ॥ चमां नि:चित्रयां रामः सप्तकत्वो यथा व्यधात्। एकविंगतिकलस्तां तथा निर्वाचाणामसी ॥ ८३ ॥ चुचितिपद्दस्यम्बपदातिव्यूह्रलोहितै:। वाइयम् वाहिनीर्नव्याः स प्राक् प्राचीमसाधयत् ॥ ८४ ॥ स च्छिवानेकसुभटमुख्डमच्डितभूतलः। दिचिणामां दिचिषाभापतिरम्य द्वाजयत् ॥ ८५ ॥

भटास्थिभिदंन्तुरयन् स्वित्त्रश्चेरिवाभितः ।

रोधो नीरिनधः सोऽय प्रतीचीमजयिद्यम् ॥ ८६ ॥

हेलोद्घाटितवैताक्यकन्दरः स्थाममन्दरः ।

स्रोक्यान्विजेतुं भरतोत्तरखण्डं विवेश्य सः ॥ ८७ ॥

एक्यलक्योणितरसक्यटाक्युरितभूतलः ।

स्रोक्यांस्त्रवाय सोऽभाद्योदिक्यूनिव महाकरी ॥ ८८ ॥

एवं चतुर्दिशं भ्राम्यन् घरद्यक्यानिव ।

दलयन् स्रभटानुवीं स षट्खण्डामसाध्यत् ॥ ८८ ॥

उज्जासयनसमतामिति नित्यरीद्र
ध्यानानलेन सततं ज्यलदन्तराक्षा ।

पासाद्य कालपरिकामवर्थन सत्युं

तां सप्तमीं नरकभूमिमगासुभूमः ॥ १०० ॥

दित सुभूमयक्रवर्त्तीकयानकम् ॥

पय ब्रह्मदत्तवया —

साकितनगरे चन्द्रावतंसस्य स्तः पुरा।
नामतो सुनिचन्द्रोऽभूश्चन्द्रवन्धभुराक्वतिः॥१॥
निर्विषः कामभोगेभ्यो भारेभ्य द्रव भारिकः।
सुनेः सागरचन्द्रस्य पाखें जग्राष्ट्र स व्रतम्॥२॥
प्रवच्यां जगतः पूच्यां पालयवयमन्यदा।
देशान्तरे विश्वाराय चचाल गुरुषा सष्ट ॥ १॥
स तु भिचानिमित्तेन पिष्ट यामं प्रविष्टवान्।
सार्थाद्वष्टोऽटवीमाट यथ्युत द्रवेषकः॥ ४॥

स तत्र चलिपासाभ्यामानान्ती ग्वानिमागत:। चतुर्भिः प्रतिचरितो वज्जवैर्वास्ववैरिव ॥ ५ ॥ स तेवासुपकाराय निर्मेने धर्मदेशनाम्। भपकारिष्यपि क्रपा सतां किं नोपकारिषु॥ ६॥ प्रवत्रस्ते तत्पार्खे चलारः ग्रमग्रालिनः । चतुर्विधस्य धर्मस्य चतस्त्र इव सूर्त्तयः ॥ ७॥ वतं तेऽपालयन् सम्यक् किन्तु दी तव चक्रतु:। धर्मे जुगुषां विचा हि चित्तवृत्तिः ग्ररीरिवाम्॥ ८॥ जग्मतुस्तपसा ती द्यां जुगुसाकारिकाविष । खगीय जायतेऽवस्यमध्येकाइ: क्रतं तप: ॥ ८ ॥ चुता ततो दशपुरे शास्त्रिस्म बाह्य बाह्य वातुभी। युग्मरूपी सुती दास्वां जयवत्वां बभूवतु: ॥ १०॥ ती क्रमाचीवनं प्राप्ती पित्रादिष्टी च जग्मतु:। रचितुं चेत्रमीदृग् हि दासेराणां नियोजनम् ॥ ११ ॥ तयोः ग्रयितयोनेतं नि:स्रत्य वटकोटरात्। एक: क्रणाहिना दष्ट: क्रतान्तस्येव बन्धना ॥ १२ ॥ ततः सर्पोपलकाय हितीयोऽपि परिश्रमन । वैरादिवाम् तेनैव दष्टो दुष्टेन भीगिना ॥ १३ ॥ तावनाप्तप्रतीकारी वराकी सत्यमापतः। यदाऽऽयाती तथा याती निष्फलं जन्म धिक्तयी: ॥ १४ ॥ कालिश्वरगिरिप्रसे मृग्या यसलक्षिती। मगावजनिवातां ती वहधाते सहैव च ॥ १५॥

प्रीत्या सह चरन्ती ती सृगी सृगयुषा इती। बाबेनैकेनैककासं कासधर्मसुपेयतुः॥ १६॥ ततोऽपि सतगङ्गायां राजशंस्या उभावपि। पजायेतां सुती युग्मरूपिची पूर्वजन्मवत् ॥ १०॥ क्रीडमाविकदेगस्थी धला जालेन जालिकः। ग्रीवां भंका विधीतकाष्ट्रीमानां हीद्रशी गति: ॥ १८ ॥ वाराण्यां ततोऽभूतां भूतदत्ताभिध्य ती। महाधनसम्बस्य मातङ्गाधिपते: सुती ॥ १८ ॥ चित्रसभूतनामानी ती मियः सेष्ट्यासिनी। न कदापि व्ययुक्येतां सम्बद्धी नखमांसवत् ॥ २० ॥ वाराणस्यां तदा चाभूच्छङ्ग इत्यवनीपतिः। भागीच सचिवस्तस्य नमुचिर्नाम विश्वतः॥ २१॥ चपरेबुः सोऽपराधे महीयसि महीभुजा । ्षर्पितो भूतदत्तस्य प्रच्छत्रवधहेतवे ॥ २२ ॥ तेनोचे नसुचिन्छ्यं लां रचामि निजासवत्। पाठयस्थामजी मे त्वं यदि भूमिग्टइस्थित: ॥ २३ ॥ प्रतिपद्यं नमुचिना तत्मातक्रपतिवेचः। जनी दि जीवितव्यार्थी तदास्ति न करोति यत्॥ २४॥ विचित्रासिव्रसभूती स तथाऽध्यापयत् कलाः। रिमेऽनुरक्तया सार्चं मातक्कपतिभार्यया ॥ २५ ॥ चाला तद्भृतदत्तेनारी मारयितुं स तु। सङ्ते कः खदारेषु पारदारिकविम्नवम् ॥ २६ ॥

जात्वा मातक्रपुत्राभ्यां स दूरेणापसारित:। सैवासी दिचणा दत्ता प्राणरचणलचणा ॥ २०॥ ततो नि:स्रत्य नमुचिगतवान् इस्तिनापुरे। चन्ने सनल्मारेण सचिवसनिषा निजः॥ २८॥ दतव चित्रसभूती बभतुर्नवयीवनी। क्रतोऽपि हेतोरायाती प्रविष्यामाम्बनाविव ॥ २८ ॥ ती खाद जगतुर्गीतं हाहाइइपहासिनी। वादयामासतुर्वीणामतितुम्ब्रनारदी ॥ ३० ॥ गीतप्रवश्वानुगतः सुव्यतः सप्तभः खरैः। तयीर्वादयतीर्वेषुं किं करन्ति स्र किन्नराः ॥ ३१ ॥ मुरजं धीरघीषं ती वादयन्ती च चक्रत:। । ग्रहीतमुरकं कालातीचक्रणविज्ञमनाम् ॥ ३२ ॥ यिव: मिवोर्वमीरसामुखनेमीतिलोत्तमा:। यनार्यं न विदाचनुस्ती तदप्यभिनिन्यतुः ॥ ३३ ॥ सर्वगान्धर्वसर्वसम्पूर्वं विख्वकार्मणम्। प्रकाशयहरामिताभ्यां न जक्के कस्य मानसम्॥ ३४॥ तस्यां पुरि प्रवहत्ते कदाचित्रदनोत्सवः। निरीयुः पौरचर्चर्यस्तम संगीतपेशसाः॥ ३५॥ चर्चरी निर्ययौ तत्र चित्रसभूतयोरिप। जम्मुस्तर्भेव तहीताकष्टाः पीरा स्था इव ॥ ३६ ॥ राची व्यचिप केनापि मातकाभ्यां पुरीजनः। गीतेनाकच सर्वीऽयमात्मवन्मालिनः क्रतः ॥ ३० ॥

च्यापेनापि प्रराध्यचः साचेपमिदमात्रपि । न प्रवेश: प्रदातव्यो नगर्यामनयो: क्वचित् ॥ ३८ ॥ तत:प्रश्वति ती वाराणस्या दूरेष तस्वतु:। प्रवृत्तस्वेवादा तम कीसदीपरमोकावः ॥ ३८ ॥ राजग्रासनसृष्ण्य सीलेन्द्रियतया च ती। प्रविष्टी नगरीं सङ्गी गजगन्छतटीमिव ॥ ४०॥ उत्सवं प्रेचमाची ती सर्वाक्रीचावगुण्डनी। दस्यवदगरीमध्ये इनं इनं विचेरतुः ॥ ४१ ॥ क्रोष्ट्वत्क्रोष्ट्रग्रब्देन पौरगीतेन तौ तत:। चगायतां तारतारमसङ्गा भवितव्यता ॥ ४२ ॥ षाकर्ष कर्षमध्र तहीतं युवनागरैः। सध्वयाचिकाभिन्ती मातक्री परिवारिती ॥ ४३ ॥ काविताविति विज्ञातं स्रोकेः क्रष्टावगुग्छमी। चरे तावेव मातकावित्याचेपेण भाषिती ॥ ४४ ॥ नागरै: कुव्यमानी ती यष्टिभिलीष्टुभिस्ततः। म्बानाविव रहात्प्यां नतपीवी निरीयतुः ॥ ४५ ॥ ती सैन्यग्रयको केईन्यमानी परे परे। खबलत्पादी कयमपि गभीरोचानमीयतुः॥ ४६॥ तावचिन्तयतामेवं धिग् नी 'दुर्जातिदृषितम्। कलाकी ग्रल्कपादि पयो घ्रातिमवा हिना ॥ ४० ॥

⁽१) खगचड इर्जात-।

चपकारी गुचैरास्तामपकारीऽयमावयो:। तदिदं नियमाचायाः गान्तेवंतास छत्यितः ॥ ४८ ॥ कसासावसारपाचि स्मृतानि वर्षवा सह। तदेवानर्भसदनं त्रज्वस्थन्यतां चर्णात् ॥ ४८ ॥ पति निश्चित्व तो प्राचपरिचारपरायणी। मत्युं साचादिव द्रष्टुं चेलतुर्देचियामभि ॥ ५०॥ ततो दूरं प्रयाती ती गिरिमेकमपण्यताम्। यत्राक्ठिर्भुवीकानी करिण: किरिपोतवत् ॥ ५१ ॥ भगुपातेच्छ्या ताभ्यामारोष्ट्रग्रां महासुनिः। दृह्यी पर्वते तिस्मन् जक्तमो गुजपर्वतः ॥ ५२ ॥ प्रावृषेखामिवाश्रीदं सुनिं गिरिशिर:स्थितम्। हद्दा प्रमष्टसन्तापप्रसरी ती बसूवतुः ॥ ५३ ॥ ती प्राग्दु:खमिवोञ्भन्तावानन्दात्रुजलक्कलात्। तत्पादपद्मयोर्भृङ्गाविव सची निपेततुः ॥ ५४ ॥ समाप्य मुनिना ध्यानं की युवां किमिन्नागती। दति पृष्टी खहत्तानां तावशेषमगंसताम् ॥ ५५ ॥ स जरे अगुपातेन वपुरेव हि शीर्यते। गीर्यते नाग्रभं कर्म जन्मान्तरगतार्जितम् ॥ ५६ ॥ त्याच्यं वपुरिदं वाचेद् रुद्धीतं वपुषः फलम्। तवापवर्गसर्गादिकारचं परमं तपः ॥ ५० ॥ इत्यादि देशनावास्त्रस्थानिधीतमानसी । तस्व पार्खे जग्रहतुर्यतिधर्ममुभाविष ॥ ५८ ॥

२८

पधीयानी क्रमेषाय ती गीतार्थी बभूवतुः। चादरेच रहीतं हि किंवा न स्वाचनस्वनाम् ॥ ५८॥ यष्ठाष्ट्रमप्रश्वतिभिन्दी तपोभिः सुदुस्तपैः। क्रश्यामासतुर्देषं प्राक्तनै: कर्मभि: सप्त ॥ ६० ॥ तती विद्रसाणी ती प्रामाद्वामं पुरात्पुरम्। कदाचित्रतिपेदाते नगरं इस्तिनापुरम् ॥ ६१ ॥ ती तत्र दिचरोदाने चेरतुर्देश्वरं तपः। सभीगभूमयोऽपि स्युस्तपसे मान्तचेतसाम् ॥ ६२ ॥ सभूतमुनिरन्येद्युमीसचपषपारषे । पुरे प्रविष्टो भिचार्यं यतिधर्मीऽङ्गवानिव ॥ ६३ ॥ गेचाद्रेचं परिभ्वाम्यचीर्यासमितिपूर्वकम्। स राजमार्गापतितो दृष्टी नसुचिमन्त्रिषा । ६४:॥ मातक्रदारकः सोऽयं मद्दत्तं स्थापयिष्यति। मन्त्रीति चिन्तयामास पापाः सर्वेत्र महिताः ॥ ६५ ॥ यावसमार्भ कस्यापि प्रकाशयति न श्रासी। ताविविवीसयाग्येनमिति पत्तीवायुङ्क सः ॥ ६६ ॥ स ताडियतुमारेभे तेन पूर्वीपकार्थ्यपि। चौरपाचिमवाद्वीनासुपकारोऽसतां यतः ॥ ६०॥ सकुटै: कुळामानोऽसी सस्यबीजमिवीलाटै:। स्थानात्ततोऽपचक्राम लरितं लरितं सुनिः ॥ ६८ ॥ प्रमुखमान: कुटाकै विर्यविष मुनिस्तदा। मान्तोऽप्यकुप्यदापोऽपि तप्यन्ते वक्कितापतः ॥ ६८ ॥

निर्जगाम मुखात्तस्य बाष्पी नीसः समन्ततः। प्रकालोपस्वितासोदविश्वमं विश्वदम्बरे ॥ ७० ॥ तेजीलेखीजलासाय ज्वालापटलमालिनी। तिज्याक समाचि मिव बाम भितन्वती ॥ ७१ ॥ प्रतिविज्ञाक्रमारं तं तेजोलेग्याधरं ततः। प्रसादयितमाजग्मः पौराः सभयकौतुकाः ॥ ७२ ॥ राजा सनत्क्रमारोऽपि जाला तत्र समाययौ। उत्तिष्ठति यतो विक्रस्ति विध्यापयेत् धी: ॥ ७३ ॥ नखोचे तं तृप: किं वा युच्चते भगवित्रंदम्। चन्द्रास्माक्षींग्रतप्तोऽपि मार्चिर्मुचित जातुचित्॥ ७४॥ एभिरत्यपराचं यत्नोपोऽयं भवतामतः। चौराधर्मध्यमानस्य कालकूटमभूत्र किम् ॥ ७५ ॥ न स्वात्याश्चेत्रिरं न स्वात्रिरं चेत्तरफलेऽन्यया। खलकोइ इव क्रोध: सतां तहुमहेऽत्र किम्॥ ७६॥ तवापि नाव नावामि कोपं सुचेतरीचितम्। भवाद्याः समद्यो च्चपकार्य्युपकारिषु ॥ ७० ॥ चिवोऽव्यवानारे जाला सभातमुनिमभ्यगात्। सान्वयितं भद्रमिव हिपं मधुरभाषितै: ॥ ७८ ॥ तस्य कीप उपागास्यश्चित्रवाकीः श्वतानुगैः। पयोवासपय:पूरैगिरेरिव दवानल: ॥ ७८ ॥ 'महाकोपतमोसुत्तः ग्रमाङ्क दव पार्वणः।

⁽१) गच छ तीव्रकोप-।

चवादासादयामास प्रसादं स महासुनि: ॥ ८० ॥ वन्दिला चमयिला च सोकस्तवावावर्त्तत । सक्रुतियममुनिना तदुद्यानमनीयत ॥ ८१ ॥ पयात्तापं चक्रतुस्ती पर्यटिक्रगृंहे ग्टहे। भा**चारमात्रवाकते प्राप्यते व्यसनं सं**चत् ॥ ८२ ॥ शरीरं गलरमिदं शाहारेचापि पोषितम्। किमनेन ग्ररीरेच किंवाचारेच योगिनाम् ॥ ८३ ॥ चेतसीति विनिधित्व कतसंशेखनी पुरा। चभी चतर्विधाहारप्रत्यास्थानं प्रचन्नतुः ॥ ८४ ॥ वाः पराभूतवान्साधुं वसुधान्याति मयापि। दति जिज्ञासती राज्ञी सन्त्री व्यञ्जपि केनचित्॥ ८५॥ षर्चावार्चति यः सोऽपि पापः किसृत इन्ति यः। इत्यानाययदुर्वीची दस्युवसंयमय तम् ॥ ८६ ॥ प्रकोऽपि साधुविध्वंसं माविधादिति ग्रह्मी:। तं वर्षं पुरमध्येन सोऽनेषीसाधुसविधी ॥ ८० ॥ नमनुप्रिरोरत्रभाभिरशोमयीमिव। कुर्व्व बुवीं स उर्व्वीगपुष्मवस्ताववन्दत ॥ ८८ ॥ सव्यपाचिग्रहीतास्रवित्रकापिहिताननी । उइचिषकरी ती तमाश्रगंसतुराशिषा ॥ ८८ ॥ यो वीपराधवान् सीऽसु 'खकर्मफसभाजनम् । राज्ञा सनल्मारेचेत्यदर्धि नमुचिस्तयोः ॥ ८० ॥

⁽१) क इ सक्रमेफवभागवी।

पमीचि नमुचि: प्राप्त: पचलीचितभूमिकान्। संनत्नुमारतसाभ्यामुरगी गद्दडादिव ॥ ८१ ॥ निर्वाख कर्मचन्हानुबन्हाल इव पत्तनात्। वध्वीऽप्यमीचसी राजा मान्यं हि गुरुशासनम् ॥ ८२ ॥ सपत्नीभिषतु:षष्टिसङ्ग्नै: परिवारिता। वन्दितुं ती सुनन्दागात् सीरब्रमच चिक्रवः॥ ८३॥ सा सभूतमुनै: पादपद्मयोर्नुसितासका । पपातास्वेन कुर्वाचा भुवमिन्द्रमतीमिव ॥ ८४ ॥ तस्वावासकसंस्रभे सभूतमुनिरन्वभूत्। रोमाचित्रव सचीऽभूक्कशानेवी हि मनाव: ॥ ८५ ॥ षव सान्तःपुरे राज्ञि तावनुज्ञाच्य जन्मुवि । रागाभिभूत: सभूती निदानमिति निर्ममे ॥ ८६ ॥ दुष्करस्य मदीयस्य यदास्ति तपसः फलम्। तत्स्तीरत्वपतिरहं भूयासं भाविजनानि ॥ ८० ॥ विवीऽप्यू वे काइसीटं मीचदात्तपसः फलम्। मौ सियोग्येन रतेन पादपीठं करोषि किम् ॥ ८८ ॥ मोशालातं तिवदानमिदानीमपि मुचताम्। मिष्यादुष्क्रतमस्यासु मुद्रान्ति न भवाह्या: ॥ ८८ ॥ एवं निवार्यमाचोऽपि सभूतिबत्रसाधना । निदानं नामुचदही विषयेच्छा बसीयसी ॥ १००॥ निर्व्युटानमनी ती तु प्राप्तायु:कर्मसंच्यी। सौधमें समजायेतां विमाने सन्दरे सरी ॥ १ ॥

चुला जीवोऽय चित्रस प्रयमसर्गसीकतः। पुरे पुरिमताबाख्ये महभ्यतनयोऽभवत् ॥ २ ॥ च्या सभूतजीवोऽपि काम्पिसे ब्रह्मभूपते:। भार्यायायुजनीदेखाः कुची समवतीर्चवान् ॥ १ ॥ चतुर्वगमहासप्रस्चितागामिवेभवः। ं चय जन्ने सुतस्तस्ताः प्राचा दव दिवाकरः ॥ ४ ॥ ब्रह्मसम्ब द्वानन्दाद् ब्रह्मसूपतिरस्य च । ब्रज्ञाप्कविश्वतां ब्रज्ञादत्त दत्वभिधां व्यधात्॥ ५॥ वस्थे स जगनेषकुसुदानां सुदं दिशन्। पुष्पन् कलाकलापेन कलानिधिरिवामल: ॥ ६ ॥ वक्राचि ब्रह्मच रव चलारि ब्रह्मचीऽभवन्। प्रियमित्राचि तमैकः कटकः काग्रिभूपतिः॥ ७॥ कषेब्दससंब्रीऽस्थी इस्तिनापुरनायकः। दोर्घय कोग्रलाधीग्रयम्पेगः पुष्पचूलकः ॥ ८ ॥ ते सेहाइर्षमेकेकमिकेकस्य पुरं युताः। पश्चाप्यधिवसन्ति सा स्वर्दुमा इव नन्दनम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मचो नगरेऽन्येद्युस्ते यथायोगमाययुः । तव च क्रीडतां तेषां ययौ काल: कियानिप ॥ १०॥ ब्रह्मदत्तस्य पूर्णेषु वर्षेषु हादशेष्यय । परलोकगितं भेज ब्रह्मरांज: घिरोक्जा ॥ ११ ॥ क्रती द्वेदिहिकं ब्रह्मभूपतेः कटकादयः। उपाया इव मूर्ताखे चलारोऽमक्वयंबिति ॥ १२ ॥

ब्रह्मदत्तः शिष्ययीवदेवीकस्तावदत्र नः। तस्य प्राइरिक इव वर्षे वर्षेऽस्तु रचकः ॥ १३ ॥ दीर्घस्तातुं सुद्वद्राज्यं तैः संयुच्य स्थयुच्यत । ततः स्वानाचयास्थानमय जम्मुस्रयोऽपि ते ॥ १४ ॥ भदीर्घवृदिदीर्घीऽपि ब्रञ्जणी राज्यसम्पदम्। उन्नेवारचकं चेत्रं खच्छन्दं बुभुजे ततः ॥ १५ ॥ निरक्ष्यतया कोगं चिरगूढं स मूढधीः। सर्वमन्बेषयामास परममॅव दुर्जनः ॥ १६ ॥ स प्राक् परिचयादनारनाः पुरमनर्गन्नः । सञ्चाराधिपत्यं हि प्रायोऽन्यं करचं ऋषाम् ॥ १०॥ एकान्ते चुलनीदेव्या सीऽतिमात्रममन्त्रयत्। वचोभिनेशैनिपुचैर्नुदन् सारगरैरिव ॥ १८ ॥ भाचारं ब्रह्मसक्ततं लोकं चावगुबय्य सः। संप्रसम्बन्धाभूइवीराचीन्द्रियाचि हि॥१८॥ बद्धाराजे पतिप्रेमिसबचेइं च तावुभी। जहतुबूलनीदीर्घावको सर्वेष्टवः सारः ॥ २० ॥ सखं विसमतीरवं ययाकासीनयोस्तयो:। बहवी व्यतियान्ति सा सुद्धर्त्तीमव वासरा: ॥ २१ ॥ ब्रह्मराजस्य द्वदयं हैतीयकसिव स्थितम्। मन्त्राचासीवनुरिदं साष्टं दुवेष्टितं तयी: ॥ २२ ॥ सचिवीऽचिनायचेदं जुलनी स्त्रीसंभावत:। मकार्यमाचरलेषा सत्यो हि विरलाः स्त्रियः॥ २३॥ सकोगाना:पुरं राज्यं न्यासे विकासतोऽपितम्। यदिवृवति दीर्घसदकार्थे नास्य किसन ॥ २४ ॥ तदसावाचरिकिचिक्समारस्वापि विप्रियम्। पोचकस्वापि नामीयो मार्जार रव दुर्जनः ॥ २५ ॥ विस्रक्षेति वरधनुसंग्नं स्नसुतमादियत्। तत्तत् ज्ञापयितुं नित्धं ब्रज्ञदत्तं च वेवितुम् ॥ २६ ॥ विश्वते सन्तिपुर्वेष हत्तान्ते ब्रह्मनन्दनः । श्रमे: प्राकाशयलोपं नवीतिय दव दिप: ॥ २०॥ ब्रह्मदत्तीऽसरिचुस्तवाद्यदुवरितं ततः। मध्ये ग्रंबालामगममृष्टीला कावकी किसे ॥ २८ ॥ वर्षसङ्गरतो वध्यवितावस्यमपीद्यम् । निवितं निपदीचामि तत्रेत्युचैदवाच सः॥ २८॥ काकीऽइं लं पिकीलावां निजिष्टचलसाविति। दीर्चेचोत्तेऽवदहेवी माभैषीर्वासभाषितात्॥ ३०॥ एकदा भद्रवयया सङ् नीत्वा सगहिपम्। साचेपं तददेवीचे कुमारी मारस्चकम् ॥ ३१ ॥ इति श्रुलाऽवददीर्घः सामूतं वासभावितम् । ततबुबब्धवाचिति यद्यक्षेवं ततीऽपि किम् ॥ ३२ ॥ इंस्वाऽन्धेदार्वकं वद्वाभ्यभत्त ब्रह्मस्रित । चनया रमते श्लोष सहै कस्वापि नेदृशम् ॥ ३३ ॥ दीर्घीऽवादीदिदं देवी खपुत्रस्य मिमी: ऋष । चन्तवज्ञिनरोषान्निधूमोद्गारोपमा गिरः॥ ३४॥

वर्षमानः कुमारोऽयं तदवयं भविचति। पावयोरतिविज्ञाय करेखोरिव केसरी ॥ ३५ ॥ न यावत्ववचहरः कुमारो हना जायते। तावदिवद्गम प्रव बालोऽप्युम्ब्लतामनी ॥ १६॥ चुलम्यूचे कयं राज्यधरः पुत्रो विश्वस्यते । तिरस्रोऽपि हि रचन्ति पुत्रान् प्राचानिवासनः ॥ ३०॥ दीर्घीऽब्रवीत्पुत्रमूर्त्या तव कालोऽयमागत:। मागुइस्वं मयि सति सुतास्तव न दुर्कभाः ॥ ३८ ॥ विमुचापत्यवातालां गाकिनीव चलन्यय। रतसे इपरवंशा प्रतिश्वाव तत्त्वा ॥ ३८ ॥ सामन्त्रयहिनाखोऽयं रच्या च वचनीयता । यहदास्त्रवणं सेकां कार्यं च पिळतपेणम् ॥ ४० ॥ क उपायोऽयवास्येष विवाह्यो ब्रह्मसूरसी। वासागारमिषात्तस्य कार्यं जत्ग्यहं ततः ॥ ४१ ॥ गूढप्रवेशनि:सारे तत्रोद्वाष्ट्रादनन्तरम्। सुषुप्ते सञ्च्षेऽप्यस्मिन् ज्वास्थी निशि हुताशनः ॥ ४२ ॥ उभाभ्यां मन्त्रयिलैवं पुष्पचूलस्य कन्यका । हता वैवाहिकी सर्वसामग्री चोपचक्रम ॥ ४३ ॥ तयीय क्रूरमाकूतं विज्ञाय सचिवी धनुः। दित विजयामास दी घेराजं कताञ्चलि: ॥ ४४ ॥ कलाविकीतिकुशलः सुनुवैरधनुर्भम। वर्षासमुवेवास्य त्वदाचारवधूर्वेषः ॥ ४५ ॥

जरद्रव द्रवाइं तु यातायातेषु नि:सइ:। गला कविदनुष्ठानं करोमि लदनुष्पया ॥ ४६ ॥ कमप्यनधं क्ववीत मायाव्येष गतीऽन्यतः। पाग्रक्षतित तं दीघी धीमद्वाः की न ग्रक्त ॥ ४०॥ मायाक्तताविह्रत्योऽय दीर्घ: सचिवमुचिवान् । राज्येन लां विना नः किं यामिन्येव विना विधुन् ॥ ४८ ॥ धर्मे सम्रादिनाऽचैव क्षत्र मागास्वमन्यतः। राज्यं भवाद्यमेर्गात सद्चैरिव काननम् ॥ ४८ ॥ ततो भागीर धीतीर सङ्घिर्विदधे धनुः। धर्मस्येव सञ्चाच्छ्यं पवित्रं सत्रसम्हणम् ॥ ५०॥ सबं च पान्यसार्थीनामबवानादिना तत:। प्रवाहमिव गाइं सी उनविच्छवमवाहयत्॥ ५१॥ दानमानीपकाराचैः स प्रत्ययितपूर्वेः। चक्रो सुरङ्गां दिक्रीयां तती जतुग्रहाविध ॥ ५२॥ द्रतः प्रच्छवलेखेन सीहार्दद्वमवारिचा । 'इमं व्यतिकरं पुष्पचुलमज्ञापयदनुः॥ ५३॥ त्राला तत्पुष्पचृलोऽपि सुधीः खदुश्रितः पदे। प्रेषयामास दासेरी इंसीस्थाने वकीमिव ॥ ५४ ॥ पित्तले च खर्चिमिति पौष्यचूलीति सा जनैः। सचिता भूववमिवचीतिताशाविशत्पुरीम् ॥ ५५ ॥

⁽१) च ख इति।

मूर्च्छ होतिध्वनितृर्यपूर्यमाचे नभस्तले । मुदा तां चुलनी ब्रह्मसूनुना पर्यचाययत् ॥ ५६ ॥ चुलन्यप्यखिलं लोकं विद्युच्य रजनीमुखे। कुमारं सम्बुषं प्रैषोक्जातुषे वासवैश्मनि ॥ ५७ ॥ सवध्वः कुमारोऽपि विस्रष्टान्यपरिच्छदः। तवागाहरधनुना च्छाययेव खया सह ॥ ५८ ॥ वात्तीभिर्मन्त्रिपुत्रेण ब्रह्मदत्तस्य जायतः। निगार्षं व्यतिचन्नाम कुती निद्रा महासनाम् ॥ ५८ ॥ चुनन्यादिष्टपुरुषैः फूलार्तुं निमताननैः। व्यलेति प्रेरित इव वासग्रह्यक्वलिक्क्कि ॥ ह ।॥ धूमस्तोमस्ततो विष्वक् पूरयामास रोदसीम्। जुलनीदीर्घदुष्कृत्यदुष्कोत्तिप्रसरोपमः॥ ६१॥ सप्तिचीऽप्यभूकोटिजिही व्यानाकदस्वकै:। न्तत्तवं कवसीकर्तुं बुभुचित प्रवानसः ॥ ६२ ॥ किमेतदिति संपृष्टो ब्रह्मदत्तेन मन्दिसु:। संविपादावचचे ऽदयुसनीदृष्टचेष्टितम् ॥ ६३ ॥ षाकष्टुं लामितः स्थानाद्रूपं करिकरादिव। चिस्त तातेन दत्तेष्ठ सुरङ्गा सवगामिनी ॥ ६४ ॥ भव पार्शिप्रहारेण प्रकाशीक्तत्य तत्वणात्। योगोव विवरहारं तहारं प्रविशाधना ॥ ६५ ॥ भातीचपुटवलोऽय पार्श्विनाऽऽस्कोळा भूपुटम् । सुरक्षया समिलोऽगाद्रत्नरन्धेण स्ववत्॥ ६६॥

सरकानो धनुष्टती तुरक्वावध्यरी इताम्। राजमन्त्रिक्मारी तो रेवमात्रीविडम्बकी ॥ ६०॥ पश्चाम बोजनी क्रोमसिव पश्चमधारया। पांची जग्मतुरुक्तासी ततः पञ्चत्वमापतुः ॥ ६८ ॥ ततस्ती पादचारेण प्राणवाणपरायची। जमतुर्निकषा यामं कक्कालीष्टकनामकम् ॥ ६८ ॥ प्रीवाच ब्रह्मदत्तीश्य सखे वरधनीश्युना। ्सर्दमाने रवान्वोऽन्यं वाधेते चुत्तुवा च माम् ॥ ७० ॥ चनमव प्रतीचखेल्जा तं मन्त्रिनन्दनः। यामादाकारयामास नापितं वपनेच्छया ॥ ७१ ॥ मन्त्रिपुत्रस्य मन्त्रेण तत्रेव ब्रह्मनन्दनः। वपनं कारयामास चूलामानमधारयत्॥ ७२ ॥ तथा कषायवस्त्राणि पविवाणि स धारयन्। सम्याभक्तवालांशमालिलोलामधारयत्॥ ०३॥ कर्छ वरधन्त्रस्तं ब्रह्मसूचमधन्त च। ब्रह्मपुत्री ब्रह्मपुत्रसाहम्बसुद्वाइ च ॥ ७४ ॥ मिस्त्रम्भादत्तस्य वचःश्रीवससाब्धितम्। पहेन पिद्धे प्राहट् पयोदेनेव भास्तरम् ॥ ७५ ॥ एवं वेषपरावत्तं ब्रह्मसू: सुत्रधारवत्। पारिपार्श्विकवन्मन्त्रिपुत्रोऽपि विद्धे तथा ॥ ७६ ॥ ततः प्रविष्टी यामे ती पार्ववाविन्दुभास्करी। केनापि हिजवयंण भोजनाय निमन्त्रिती॥ ७०॥

सीऽय ती भोजयामास भन्नया राजानुक्षयया। प्रायस्तेजोऽनुमानेन जायन्ते प्रतिपत्तयः ॥ ७८ ॥ कुमारस्याज्ञतासूर्त्वि चिपन्ती विप्रगेष्टिनी। खेतवन्त्रयुगं कन्यां चीपनिन्धेऽपार:समाम् ॥ ७८ ॥ जरे तती वरधनुर्बटोरस्वाकसापटी:। क गर्छ बद्वासि कि सिसां सूढे श्रण्डस्य गासिव ॥ ८०॥ तती दिजवरेणोचे ममयं गुणवन्धरा। कन्या बस्तुमती नास्या विनासुमपरो वरः ॥ ८१ ॥ षट्खक्डपृथिवीपाता पतिरस्या भविष्यति । प्रत्याख्यायि निमित्तप्त्रीनियितं चायभेव सः ॥ ८२ ॥ तैरेवास्यायि से पर्क्कमत्रीवसासान्कनः। भोस्तते यस्तवग्रहे तसी देया स्वकन्यका ॥ ८३ ॥ जन्ने च ब्रह्मदत्तस्वीदाहः सह तया तदा । भोगिनासुपतिष्ठन्ते भोगाः काममचिन्तिताः॥ ८४॥ तामुबिला निर्मा बस्यमतीमाम्बास्य चान्यतः। ययी कुमार एक नावस्थानं सहिषां कुत: ॥ ८५ ॥ प्रातगीमं प्रापतुस्ती तत्र चात्रस्तामिदम्। पत्वानीऽधिवन्नादसं सर्वे दीर्घेण रोधिताः ॥ ८६ ॥ प्रस्थित। तुत्पधेनाथ पेततस्ती महाटवीम । निवतां स्वापदेदीर्घपुव्यदिव दाव्यो: ॥ ८० ॥ ततः कुमारं त्वितं सुज्जा वटतरोर्धः। वारिचेऽगाहरधनुर्मनलुखेन रंहसा॥ ८८॥

ततो वरधनुः सोऽयसुपसच्च न्यब्ध्वत । क्षितैदेधिपुक्षै: पोनिपोत इव खिभ: ॥ ८८ ॥ ग्रज्ञतां ग्रज्जतामेष वध्यतां वध्यतामिति । भीवनं भावमार्थेसेर्जग्रहे ववधे च सः ॥ ८० ॥ संज्ञामधिब्रज्ञदर्स प्रसायखेति सीऽकत । पलायिष्ट क्रमारोऽपि समये खतु पौरूषम् ॥ ८१ ॥ ततस्तस्या महाटव्या महाटव्यन्तरं जवात्। ब्रह्मस्रायमीवागादायमादायमान्तरम् ॥ ८२ ॥ स त तब कताचारी विरसेररसे: फले: खतीये दिवसे sपायदेवां तापसमयतः ॥ ८३ ॥ · कवात्रमी वो भगविवति प्रष्टस्तपस्तिना। स खात्रमपटं निन्धे तापसा चातियिप्रया: ॥ ८४ ॥ सीऽयापायत्कलपतिं ववन्दे पिद्धवन् सुदा । प्रमाणमन्तः करणमविज्ञातेऽपि वस्त्रनि ॥ ८५ ॥ जचे जुलपतिर्वेक तवातिमधुराक्षते:। को इत्रवागमने मरी सुरतरीरिव ॥ ८६ ॥ त्र महामनस्तस्य विषस्तो ब्रह्मस्तिजम्। वत्तान्तमाख्यवायेण गोप्यं न खतु तादृशम् ॥ ८० ॥ ष्ट्रष्टस्ततः कुलपितव्योद्दरष्ट्रदाचरम् । हिधास्वित इवाकैको भाताचं खत्पितर्सेष्ठः ॥ ८८ ॥ तती निजग्रहं प्राप्तस्तिष्ठ वस यद्यासुखन्। चस्रक्षणोभिवंश्व सहैवास्त्रकानोरशै: ॥ ८८ ॥

कुर्वन् जनदृगानन्दसमन्दं विष्ववन्नभः। परी तवात्रमे तस्यी प्राहटकालोऽप्य्पस्थितः ॥ २०० ॥ तवाइसी निवसंस्तेन बसेनेव जनार्टन: । ग्रास्त्राचि ग्रसाक्यस्त्राचि सर्वोक्यभ्याप्यते साच ॥ ? ॥ वर्षात्वये समायाते सारसासापबन्धरे। बन्धाविव फलादाधं प्रवेतुस्तापसा वनम् ॥ २ ॥ सादरं कुमपतिना वार्थमाषीऽप्यगादनम्। तै: सप्त ब्रह्मदत्तोऽपि कलभः कलभैरिव ॥ ३ ॥ भ्रमवितस्ततोऽपखिष्मृतं तत दन्तिन:। प्रत्यविमिति सीऽमंस्त इस्ती कोऽप्यस्ति दूरतः ॥ ४ ॥ तापसैवधिमाणोऽपि ततः सोऽनुपदं वजन। योजनपत्रकस्थान्ते नागं नगिमवैचत ॥ ५ ॥ नि:गद्धं वदपर्यद्धः कुर्वन् गर्जितसूर्जितम् । मको मक रवाद्वास कृष्टसी मत्तरस्तिनम् ॥ ६॥ क्रदोद्दवितसर्वाङ्गो व्याकुच्चितकर: करी। निष्कम्पकर्षसामास्यः क्रमारं प्रत्यधावत ॥ ७ ॥ रभोऽभ्यर्गेऽभ्यगाद्यावत् कुमारस्तावदन्तरे। उत्तरीयं प्रचिचेप तं वच्चियत्मर्भवत्॥ ८॥ यभखखमिव भयदगरिचासदंश्वम्। दगनाभ्यां प्रतीयेष चणादेषीऽत्यमर्षणः ॥ ८ ॥ एवंविधाभिश्वेष्टाभिः कुमारस्तं मतङ्गजम् । सीसया खेसयामासाहितुच्छिक द्वीरगम्॥ १०॥

सखेव ब्रह्मदत्तस्यावान्तरे क्षतंडम्बरः। धाराधरीऽम्बुधाराभिरुपदुद्राव तं गजम् ॥ ११ ॥ ततो रसिला विरसं सगनागं ननाग स:। कुमारोऽपि भ्रमचद्रिदिग्मूढः प्राप निम्नगाम् ॥ १२ ॥ उत्ततार कुमारस्तां नदीं मूर्त्तामिवापदम्। ददर्भ च तटे तस्याः पुराचं पुरसुद्दसम्॥ १३॥ कुमारः प्रविग्रंस्तस्मिचपग्रहंग्रजालिकाम्। तवासिवसुनन्दी चोत्पातकीतुविधू इव ॥ १४॥ ती ग्रहीला क्रपाचन कुमारः गवकीतुकी। चिच्छेद कदलीच्छेदं तां सद्दावंग्रजालिकाम् ॥ १५॥ वंग्रजालामारे चासी स्मुरदोष्ठदत्तं ग्रिर:। ददर्भ पतितं प्रव्यां स्थलपद्मिवायतः ॥ १६॥ सम्यक् पायवपायच बद्धास्त्व कस्यचित्। वस्गुनीकरणस्थस्य कवन्धं धूमपायिनः॥ १०॥ हा विद्यासाधनधनी निधनं प्रापिती सया। कोऽप्येषोऽनपराधो धिग् मामिति स्वं निनिन्द स: ॥१८॥ चयतः स ययौ यावसावदुद्यानमेचत । सुरलोकादवतीर्समवन्यामिव नन्दनम्॥ १८॥ स तत्र प्रविगत्रये प्रासादं सप्तभूमिकम्। भदर्भक्षप्तनोकत्रीरहस्यमिव मूर्च्छितम्॥ २०॥ षाक्देऽश्रंतिष्ठे तिस्मिविषसां खेचरीमिव। इन्तिविश्वस्तवदनां नारीमेकां स ऐचत ॥ २१॥

उपस्रव कुमारस्तां पप्रच्छ खच्छया गिरा। का लमेकाकिनी किंवा किंवा शोकस्य कारणम् ॥ २२ ॥ भय सा साध्यसात्रान्ता जगादेति सगद्रदम्। मदान् व्यतिकरो मेऽस्ति ब्रुडि कस्वं किमागतः ॥ २३॥ ब्रह्मदसीऽस्मि पञ्चासभूपतेर्ब्रह्मणः सुतः। पति सीऽचीकथयावमुदा सा तावदुत्यिता ॥ २४ ॥ भानन्दबाष्यससिसैसीचनाञ्चसिविच्तैः। सा कुर्वती पाद्यमिव पपातासुच्य पादयो: ॥ २५ ॥ कुमाराधरणाया मे धरणं लसुपागतः। मकातो नीरिवाश्रीधी वदन्तीति क्रोद सा ॥ २६ ॥ तेन पृष्टा च साप्यूचे लन्मात्रभातुरसाइम्। मान्त्रा पुष्पवती पुष्पचूलस्वाङ्कपतेः सुता ॥ २० ॥ कन्यासि भवते दत्ता विवाहदिवसोसुखी। इंसीव रन्त्मुद्याने दीर्घिकापुलिनेऽगमम्॥ २८॥ दृष्टविद्याधरेणाइं नाव्योत्मत्ताभिधेन तु। प्रवापद्वत्यानीतास्मि रावणेनेव जानकी ॥ २८ ॥ दृष्टिं सीऽसङ्गानो मे विद्यासाधनहैतवे। सूर्पचखास्तुरिव प्राविश्वदंशजालिकाम् ॥ २०॥ भूमपस्रोर्षपादस्य तस्य विद्याद्य सेलारति । शक्तिमान् सिद्धविद्यः स किस मां परिचेष्यति ॥ ३१ ॥ ततस्तद्वधद्वसाम्तं कुमारोऽस्ये न्यवेदयत्। इर्षस्योपरि इर्षोऽभूत्रियाप्तरा विवियक्तिहा ॥ १२ ॥

₹•

तयीरय विवाद्योऽभूद्वान्धवीऽन्योऽन्यरक्तयोः। श्रेष्ठी हि चिचियेषेव निर्मस्वीऽपि सकामयी: ॥ ३३ ॥ रममाषस्त्रया साधै विचित्रासापपेशसम्। स एकयामासिव तां वियामामत्ववाच्यत् ॥ ३४ ॥ ततः प्रभातसमये ब्रह्मदत्तेन इ.स्वे । पाकाशे खेचरस्रीणां क़ररीचामिव ध्वनि: ॥ ३५ ॥ चनसाजायते कोऽयं खे गब्दो नष्टर्शप्टवत्। तेनिति एष्टा संभानता पुष्पवत्येवसववीत् ॥ ३६ ॥ अगिन्धी लहिषी नाव्योचात्तस्थेमे समागत । नामा खण्डा विशाखा च विद्याधरक्रमारिके ॥ ३०॥ तिविभिक्तं विवाष्ट्रीपस्करपाणी इमे सुधा। प्रमाया चिम्तितं कार्यं दैवं घटयतेऽम्यया ॥ ३८ ॥ भपसर्प चर्च तावद्यावस्वद्र्णकीर्सनै:। समेऽइमनयोभीवं लिय रागविरागयो: ॥ ३८ ॥ राती रहां प्रेरिय थे पताकां तस्वसापतेः। विरागी चलयिषामि खेतां गच्छेस्तटाऽन्यतः ॥ ४०॥ ब्रश्चदत्तस्ततोऽवादीनाभैषीभीं न लहम्। ब्रह्मसुनु: किमेते मे तुष्टे कप्टे करिष्यत: ॥ ४१ ॥ चवाच पुष्पवत्येवं नैताभ्यां वस्मि ते भयम्। एतकाखिनः किन्तु मा विरोक्त्नभयराः ॥ ४२ ॥ तस्रावित्तानुहत्त्वा तु तत्रैवास्त्रात् स एकतः। भग्न प्रभावती मोतां पताकां पर्यचीचलत् ॥ ४३ ॥

ततः क्रमारसां दृष्टा तल्रदेशाच्छनैः शनैः। प्रियातुरोधादगमबि भौसाह्यां तृषाम ॥ ४४ ॥ भाकाशमिव दुर्योद्दमरस्यमवगाचा सः। दिनालें इंदाशीधं प्रापदेकं सहासर: ॥ ४५ ॥ ततः प्रविख तवासी सरेभ इव सानसे। बाला खच्छरुमत्वच्छा: सुधा द्व पपावप: ॥ ४६ ॥ नि:सत्य ब्रह्मसूर्नीरात्तीरमुत्तरपश्चिमम्। सताकषदिस्तानैः सीम्रातिकमिवाभ्यगात्॥ ४०॥ तत्र तेन दूमलताकुन्ने पुष्पाणि चिन्वती। वनाधिदेवता साचादिव काप्येचि सम्दरी ॥ ४८ ॥ दध्याविति क्रमारोऽपि जन्मप्रभृतिवेधसः। रूपाख्यभ्यस्वतोऽमुखां सञ्चातं रूपकी गलम् ॥ ४८ ॥ सा दास्वा सङ् जल्पन्ती कटाचै: कुन्दसीदरै:। कग्हे मालामिवास्यन्ती तं प्रस्वस्यन्यती यथी ॥ ५०॥ पम्यन् कुमारस्तामेव प्रस्थितो यावदन्यतः। वस्त्रभूषवताम्ब्लभृहासी तावदाययी॥ ५१॥ सा वस्त्राचर्पियलोचे या लया दहमेऽच सा। सत्बष्टारमित्र खार्थसिते: प्रैषीदिदं लिय ॥ ५२ ॥ षादिष्टा चास्मि यदमुं मन्दिरे तातमन्त्रिषः। नयातिष्याय तथाय स हि वेत्ति यथोचितम्॥ ५३॥ सोऽगात् सह तया वेश्म नागदैवस्य मन्त्रिण:। चमात्वीऽप्यभ्युदस्यातमाकष्ट ५व तहुकै: ॥ ५४॥

श्रीकाम्तया राजपुषा वासाय तव वेद्यानि। प्रेषितोऽसी मञ्चाभागः सन्दिखीत जगाम सा ॥ ५५ ॥ उपाखमानः खामीव विविधं तेन मन्त्रिणा। चगदां चपयामास चगमिकमिवेष ताम् ॥ ५६ ॥ मन्त्री राजकुलेऽनेषीलुमारं चषदात्यये। पर्घादिनोपतस्थेऽम्ं बालार्कमिव भूपति: ॥ ५० ॥ वंशाबप्रद्वापि रूपः कुमाराय सुतां ददी। ्षाक्रत्यैव हि तस्तवें विदिन्ति ननु तिद्दः ॥ ५८ ॥ चपायंस्त कुमारस्तां इस्तं इस्तेन पीडयन्। भन्योऽन्यं संक्रमयितुमनुरागमिवाभितः॥ ५८॥ ब्रह्मदत्तोऽन्यदा क्रीडन् रहः पप्रच्छ तामिति। एक्स्याज्ञातवंशादे: पित्रा दत्तासि मे कथम् ॥ ६०॥ यीकान्ता कान्तदन्तांश्रधीताधरदनाऽव्रवीत्। राजा शबरसेनोऽभूदसन्तपुरपत्तनं ॥ ६१ ॥ तस्तुमें पिता राज्ये निषस: क्रूरगोतिभि:। पर्यस्तोऽभिश्वियदिमां पत्नीं सबलवाहन: ॥ ६२ ॥ भिन्नानुपनमस्यात वार्वेग इव वेतसान्। यामचातादिना तातः पुचाति स्वं परिग्रहम् ॥ ६३ ॥ जातास्त्रि चारं तनया तातस्वासम्तवसभा। 'खामिन् सम्पदिवोपायां वतुरस्तनयानन् ॥ ६४ ॥

⁽१) स ग प उपायानां त्रीरिवात पत्र्यां तसुक्रकानाम् । प प त्रीवत्यवाद्वपायानां पत्र्यां तसुक्रकानाम् ।

स मासुचीवनामूचे सर्वे मे हेविको तृपा:। खयेह स्थितया वीस्थ ग्रंस्थी यस्ते मती वरः ॥ ६५ ॥ तस्युषी चक्रवाकीव सरस्तीर निरमारम्। ततःप्रश्रति पथ्यामि सर्वानेकैकागोऽध्वगान् ॥ ६६ ॥ मनीरवानामगतिः खप्नेऽप्यत्मतुर्क्भः। षार्यपुत्रागतीऽसि त्वं मद्भाग्योपचयादिष्ठ ॥ ६०॥ स पन्नीपतिरन्थे खुर्जी मचातन्नते यथी। कुमारोऽपि समं तेन चित्रयाणां क्रमी श्वासी ॥ ६८॥ लु एरामाने ततो यामे कुमारस्य सरस्ति । पादामयोवीरभनुरेत्य इस द्वापतत् ॥ ६८ ॥ कुमारकण्डमालम्बा मुक्तकण्डं वरीट च'। नवीभवन्ति दु:खानि सन्ताते हीष्टदर्भने ॥ ७० ॥ ततः पीयूषगण्डुषेरिवालापैः सुपेशलैः। भाषास्य प्रष्टसोनोचे खहत्तमिति मन्त्रिस्: ॥ ७१ ॥ वटेऽधस्वां तदा मुक्का गतोऽहं नाय पायसे। सुधातुष्डमिवापर्यं कि चिदये महासर: ॥ ७२ ॥ तुभ्यमश्रोजिनीपत्रपुटेनादाय वार्थाञ्चम् । वसदूरीरिवागच्छन् रुद्धः संविभितेभेटै: ॥ ७३ ॥ भरे वरधनो ब्रुडि ब्रह्मदत्तः क विद्यते। इति तै: एच्छामान: समवैद्यीखहममुवम् ॥ ७४ ॥

⁽१) गचच सः।

तस्तरैरिव निःशश्चं ताष्यमानोऽय तैरहम्। इत्ववीचं ययाब्रह्मदत्ती व्याच्रेष भित्तत: ॥ ७५ ॥ तं देशं दर्भयेत्युक्तो माययेतस्ततो भ्रमन्। त्वइर्भनपद्याभ्यत्वाकाषं संज्ञां पसायने ॥ ७६ ॥ परिवाड्दत्तगुटिकां सुखेऽइं चिप्तवांस्तत:। तत्रभावेन नि:संची सत प्रत्युविभातोऽस्मि तै: ॥ ७० ॥ चिरं गतेषु तेष्वास्यादाक्षय गुटिकामहम्। लां नष्टार्धमिवान्बेष्टं भ्रमन् पामं कमप्यगान् ॥ ७८ ॥ तत्रैककोऽपि दह्यी परिवाजकपुष्टवः। साचादिव तपोराधिर्नमसक्रे मया ततः ॥ ७८ ॥ सोऽवदन मां वरधनी मित्रमस्मि धनोरहम्। वसभागी महाभागी ब्रह्मदत्तः क वर्त्तते ॥ ८० ॥ पाचचचे मयाप्यस्य विष्वं विष्वस्य स्टूतम्। स च मे दुष्कवाधूमैक्कानास्त्रः पुनरभ्यधात्॥ ८१॥ तदा जत्ररहे दन्धे दीर्घः प्रातर्देचत । करक्रमेकं निर्देशं करक्रवितयं न हि ॥ ८२ ॥ सुरङ्गां तत्र चापश्चमदन्तेऽखपदानि च। धनोर्बुदरा प्रनष्टी वां जाला तसी चुकीप सः ॥ ८३ ॥ बहा युवां समानितुं प्रत्यार्थं साधनानि सः। चर्वसामनान्यक्रमणांसीवादिदेश च ॥ ८४ ॥ पलायितो धनुर्मन्त्री जनयित्री तु सा तव। टीर्घेण नरक इव चिप्ता मातकपाटके ॥ ८५ ॥

गण्डीपरिष्टात्पिटकेनेवार्त्ती वार्त्तया तया। दु:खोपर्यं द्ववह:खः काम्पीसं गतवानहम् ॥ ८६ ॥ ष्ट्राकापालिकीभूय तत्र मात्रकृपाटके । वैश्व वैश्वानुप्रवेशस्थां ग्रग द्वानिशम् ॥ ८० ॥ एच्छामानव लोकेन तत्र भ्रमणकारणम्। भागेचसिति सातक्या विद्यायाः कत्य एवं से ॥ ८८ ॥ तर्वेवं भाग्यता मेची मया विचासभाजनम । पजायतारचका स्व मायया किं न साध्यते ॥ ८८ ॥ यन्यय्स्तम्खेनाम्बामवीचं यक्तरोत्यसी। लत्प्त्रमित्रकी च्हिन्यो महाव्यभिवादनम् ॥ ८० ॥ दितीयेऽक्रि खयं गला जनन्या बीजपूरकम्। भदां सगुटिकं जम्धेनासंज्ञा तेन साध्मवत् ॥ ८१ ॥ सतिति तां पुराध्यको गला राजे व्यजिज्ञपत्। राजादिष्टाः खपुरुषास्तस्याः संस्कारहेतवे ॥ ८२ ॥ तनायाता मयोत्रास्ते संस्कारीऽस्याः चर्वेऽन चेत्। महाननधीं वो राज्ञसेति जन्मः खधाम ते॥ ८३॥ भारचं चावदं त्वं चेत् सङ्गयः साधयाम्यङम्। सर्वलच्चाओऽस्वा मन्द्रमेकं ग्रवेन तत्॥ ८४॥ मारचः प्रतिपेदे तत्तेनैव सहितस्ततः। सायमादाय जननीं समग्राने उनां दवीयसि ॥ ८५ ॥ खण्डिते मण्डलादीनि मया निर्माय मायया। पृटेवीनां बिलं दातुमारच: प्रेषितस्तत: ॥ ८६ ॥

गते तिकावषं मातुरपरां गुटिकामदाम्। निद्राच्छेद रवोजृषा सीदखाळातचेतना ॥ ८० ॥ स्तं ज्ञापयित्वा बदतीं निवार्य सा नयामि ताम्। कच्छ्यामे रहे तातसुष्ट्रदो देवगर्भेषः ॥ ८८ ॥ इतस्ततो भ्रमनेषीऽम्बेषयंस्वामिशागमम्। दिच्या दृष्टोऽधुना साचात्पुखरागिरिवासि मे ॥ ८८ ॥ ततः परं कयं नाय प्रस्थितोऽसि स्थितोऽसि च। तेनिति पृष्ट: स्वं वृत्तं कुमारीऽपि न्यवेदयत् । १०० ॥ षय कोऽप्येत्व तावृचे यामे दीर्घभटाः पटम्। युषास्त्विष्ट्रपाष्ट्रं दर्भयन्तो वदन्त्यदः॥१॥ ईद्दुकरी किमायातावनित्याकर्षे गां मया। इष्टाविष्ठ युवां यदां 'विचतं क्षव तं दि तत्॥ २॥ ततस्तक्षिन् गतेऽरक्षमध्येन कलभाविव। पनायमानी कौशाम्बीं प्रापतुस्ती पुरीं क्रमात्॥ ३॥ तत सागरदत्तस्य श्रेष्ठिनी वृद्धिलस्य च। उद्यानिऽपासतां सचपचं ती सुक्टाइवम् ॥ ४ ॥ चत्यत्योत्पत्य मखरैः प्राचाकर्षाकृटैरिव। युवुधाति ताम्बचूडी चचाचचविवोधकै: ॥ ५ ॥ तव सागरदत्तस्य जात्यं गर्तं च कुकुटम्। भद्रेभमिव मित्रेभीऽभाङ्चीबुंबिलकुक्टः ॥ 🕻 ॥

⁽१) कब दिया।

तती वरधनु: स्नाइ कद्यं जात्योऽपि कुक्ट:। भम्बस्ते सागरानेन पाछाम्येनं यटी ऋसि ॥ ७ ॥ सागराऽनुचया सोऽप्यपम्यत् बुविसकुक्टम्। तत्पादयोरय:सूचीर्यमदृतीरिवैचत ॥ ८ ॥ सचयन् ब्हिसोऽप्यस्य सचाई छन्नमिष्टवान्। सोऽप्यास्थत्तं व्यतिकरं क्रमारस्य जनान्तिके ॥ ८ ॥ ब्रह्मद्याद्याः सूचीः सद्या बुहिसकुक्टम्। भूयोऽपि सागरत्रेष्ठिकुक्टिनाभ्ययोजयत्॥ १०॥ चस्चिक: कुक्टेन तेन वृद्धिलकुक्ट:। चवादभिक्त निकानां इत्र ब। इतं क्रती जय: ॥ ११ ॥ च्रष्ट: सागरदत्तं स्तावारोप्य स्वन्दनं स्वतम्। जयटानैकस्ट्रटी निनाय निलये निजे ॥ १२ ॥ स्त्रधामनीय महास्त्रि मयोविवसमीर्थ । किमप्याख्यद्वरधनीरेत्य बुद्धिलिक दूर: ॥ १३ ॥ तस्मिन् गते वर्षनु: कुमारमिदमभ्यधात्। यद्दिलीन लचाईं दिल्लातं मेऽच पछा तत्॥ १४ ॥ सीऽदर्भयत्तती हारं निर्मलखूलवर्त्तुबै:। कुर्वाचं मीतिनै: गुक्रमण्डलस्य विडम्बनाम् ॥ १५॥ हारे वर्ष खनाम। इं ब्रह्मसूर्लेखमेचत । षागाच वाचिकमिव मूर्त वसाख्यतापसी ॥ १६॥ षचतानि तयोर्मू द्वि चिष्ठाशीर्वादपूर्वकम्। नीलान्यतो वरधनुं किचिदाख्याय सा ययी॥ १०॥

तवाखातं समारेभे मन्त्रिस्बेद्धास्नवे। प्रतिलेखं चारवचलेखस्येयमयाचत ॥ १८ ॥ श्रीब्रह्मदत्तनामाद्वी लेखोऽयं प्रथयस्व तत्। को ब्रह्मदत्त पति सा मया प्रष्टेदमब्रवीत् ॥ १८ ॥ चस्ति श्रेष्ठिसता रववती नामेश्व पत्तने । क्यान्तरेच कन्यातं प्रचनेव रतिर्भव ॥ २०॥ भातुः सागरदत्तस्य बुद्धिसस्य च तद्दिने । कुष्टायोधनेऽपश्चन्नद्वादत्त्तिममं हि सा ॥ २१ ॥ ततःप्रश्रति ताम्यन्ती कामार्त्ता सा न शाम्यति। शर्षं ब्रह्मदत्तों में स एवेत्याइ चानिश्रम् ॥ २२ ॥ स्तयं लिखित्वा चान्येयुर्लेखं हारेण संयुतम्। भर्मातां ब्रह्मदत्तस्थेत्युदिला सा ममार्पयत् ॥ २३ ॥ दासहस्ते मया लेखः प्रेषीत्युक्ता स्थिता सती । मयापि प्रतिलेखं तेऽर्प्ययिला सा व्यस्कात ॥ २४ ॥ दुर्वीरमारसन्तापः कुमारोऽपि ततो दिनात्। 'मधाक्रार्ककरोत्तरः करीव न सुखं स्थितः ॥ २५ ॥ कौशाम्बीसामिनोऽन्येय्देधिंग प्रश्विता नराः। नष्टमस्यवदक्के तौ तत्रान्वेष्टुं समाययुः ॥ २६ ॥

⁽१) ड मध्याक्राविकरैक्सः।

राजादेशिनकी गास्वाां प्रवृत्ते अनेषणे तयो: । सागरो भूग्रहे चिद्वा ती जुगोप निधानवत् ॥ २०॥ निधि, तौ निर्धियासन्तौ रथमारीप्य सागर:। कियन्तमपि पत्यानं निनाय ववले ततः ॥ २८ ॥ ती गच्छनी पुरो नारीमुद्याने समपखताम्। प्रस्तपूर्णरवाक्रढाममरीमिव नन्दने ॥ २८ ॥ लग्ना किमियती वेला युवयोरिति सादरम् । त्रयोकी ती बभाषाते कावावां वेत्सि वा कथम ॥ ३०॥ चयाभावत सा पुर्यामस्यां खेही महाधनः। धनप्रवर इत्यासीदनदस्येव सीदर: ॥ ३१ ॥ त्रेष्ठित्रेष्ठस्य तस्याहमष्टानां तनुजन्मनाम्। उपरिष्टाद्विक श्रीर्थीगुणानामिवाभवम् ॥ ३२ ॥ उद्गीवनास्मिन्याने यचमाराधयं बहु। मत्यसमवरप्रास्यै स्त्रीणां नाऽन्धो मनोरथः ॥ ३३ ॥ त्रष्टो भक्त्येष मे यचः वरो वरमिदं ददी। ब्रह्मदत्त्वक्रवत्तीतव भक्ती भविष्यति ॥ ३४ ॥ सागरबुद्धिलश्रेष्ठिकुक्टाजी य एथति। त्रीवसी ससखा तत्वक्यो जेयः स त स्वया ॥ ३१ ॥ मदायतनवर्त्तिन्याः प्रथमस्ते भविष्यति । मेलको ब्रह्मदत्तेन तज्जाने सीऽसि सुन्दर ॥ ३६ ॥ एश्लोडि तकां विरद्दद्दनार्तां चिरादिइ। विध्यापय पयःपूरेगीव सङ्गेन सम्प्रति ॥ ३०॥

तथिति प्रतिपद्यास्या पनुरागमिवासञ्जम् । सीऽधितष्ठी रघं तां च गन्तव्यं क्रोति पृष्टवान् ॥ ३८ ॥ बेत्यूचे मगधपुरे मत्पिद्यव्यो धनावहः। पस्ति श्रेष्ठावयोवेद्वीं प्रतिपत्तिं स दास्यति ॥ ३८ ॥ मदितस्तव गमाव्यमिति रव्ववतीगिरा। ब्रह्मस्मित्रपुर्वेष स्तिनाम्बाननीद्यत् ॥ ४० ॥ कीशास्त्रीटेश्मकस्य चपेन ब्रह्मनस्नः। क्रीडास्थानं यमस्येव प्राप भीमां महाटवीम् ॥ ४१ ॥ सुकाएकः काएकस तत्र चौरचमूपती। ब्रह्मदत्तं ब्रधतुः खानाविव मञ्चाकिरिम् ॥ ४२ ॥ ससैन्धी युगपत् कालराविषुचाविवीकाटी। गरैनी मण्डपवच्छादयामासत्य तौ ॥ ४३ ॥ पात्तधन्ता कुमारीऽपि गर्जवीरवरूयिनीम्। निषिषेधेषुभिर्धारासारैदेविमवास्व्दः॥ ४४ ॥ क्रमारे वर्षति शरान् ससैन्धी ती प्रणेशतु:। इन्त प्रहारिणि हरी हरिणानां क्रतः स्थितिः ॥ ४५ ॥ क्रमारं मन्त्रिस्रवमूचे यान्तोऽसि सङ्गरात्। मक्क्षें खिपिंच खामिंस्तदिचैव रथे खित: ॥ ४६ ॥ स्वन्दने ब्रह्मदत्तोऽपि रव्ववत्वा समन्वितः। सुष्वाप गिरिनितम्बे करिस्थेव करी युवा ॥ ४०॥ विभातायां विभावयां प्राप्येकामय निचगाम्। तखः यान्तालुरङ्गाच कुमारच व्यवध्यत ॥ ४८ ॥

विबुद्धलु स नापश्वत्यन्दने मन्त्रिनन्दनम्। पयसे किंगतः स्थादित्यसक्तद्वराजज्ञार तम् ॥ ४८ ॥ सीऽलस्प्रतिवाग् दृष्टा रयायं रक्तपिक्क्षम्। विसपन् हा हतोऽस्मीति मूर्च्छितो न्यपतद्रये॥ ५०॥ उत्यितो सन्धभंत्र: सन् हाहा वरधनी सखे। कासीति लोकवत् क्रन्दन् रव्ववत्येत्यबीधि सः ॥ ५१ ॥ विपन्नो जायते नैव स तावहवत: सखा । तस्य वाचाप्यमाङ्गस्यं नाथ कर्त्तुं न युज्यते ॥ ५२ ॥ लकार्याय गतः कापि स भविष्यत्यसंग्रयम्। यान्ति नायमप्रहापि नायकार्याय सन्त्रिणः ॥ ५३॥ स तवीपरि भक्त्येव रचिती नृनमेश्वति। स्वामिभिताप्रभावो हि भृत्यानां कवचायते ॥ ५४ ॥ खाने प्राप्ताः करिखामी नरैस्तस्य गवेषणम्। युज्यते नेइ तु स्थातुमन्तकोपवने वने ॥ ५५ ॥ तहाचा सोऽनुदद्रयान् प्रपेदे मगधितते:। सीमयामं दविष्ठं हि वाजिनां मक्तां च किम्॥ ५६॥ यामेग्रेन सद:स्थेन दृष्टा निम्ये स्ववेश्म स:। मजाता चिव पूज्यको महाक्ती मूर्त्तिदर्भगात्॥ ५०॥ शोकाकान्त इवासीति पृष्टी ग्रामाधिपेन सः। इत्यूचे मत्त्रका चौरेर्युध्यमानी गतः कचित्॥ ५८॥ तस्य प्रवृत्तिमानिचे सौताया इव मारुति:। दत्युक्ता यामणी: सर्वा तां जगाई महाटवीम् ॥ ५८ ॥

ष्रयेत्य ग्रामणीक्चे दृष्टः कोऽपि वने नहि। प्रहारपतित: किन्तु प्राप्त 'एष श्रदो मया ॥ ६० ॥ इतो वरधनुर्नुनिमिति चिन्तयतस्ततः। ं ब्रह्मसूनी: शोक इव तसीभूरभवविशि॥ ६१ ॥ यामे तुरीये यामिन्यास्तव निराः समापतन् । ं ते तु भग्नाः कुमारेण मारेषेव प्रवासिनः ॥ ६२ ॥ ततोऽन्यातो यामस्या ययौ राजग्रहं क्रमात्। ्स चासुचद्रव्ववतीं तद्वष्टिस्तापसात्रमे ॥ ६३ ॥ विश्वन् पुरं स ऐचिष्ट इर्म्यवातायनस्थिते। . साचाटिव रतिप्रीतो कामिन्धी नवयीवने ॥ ६४ ॥ ताभ्यां सोऽभिद्धे प्रेमभाजं त्यक्का जनं ननु । ्यत्तदा गतवान् युक्तं तत् किं. ते प्रत्यभाषतः ॥ ६५ ॥ व्याजद्वार कुमारीऽपि प्रेमभाग् बत की जनः। स कदा च मया त्यक्तः कोऽइं के वा युवामिति ॥ ६६ ॥ प्रसीदागच्छ वित्राम्य नाघेत्यासापनिष्ठयोः। ्रप्राविशवास्त्रादक्तोऽपि मनसीव तयोर्गृष्टे ॥ ६७ ॥ तिष्ठमाने कतस्वानाश्रनाय ब्रह्मसूनवे। कवयामासत्स्ते स्वां कथामवितथामिति ॥ ६८ ॥ चस्ति विद्याधरावासः कलधीतिशिलामयः। ं मेदिन्यास्तिलव इव वैताच्ची नाम पर्वतः॥ ६८॥

⁽१) ड एकः।

ममुख दिखमयेखां नगरे शिवमन्दिरे। राजास्ति व्यलनशिखीऽलकायामिव गुद्धाकः ॥ ७० ॥ विद्याधरपते स्तस्य द्यतिची तितदिग्म्खा। प्रिया विद्युच्छि खेत्यस्ति विद्युदक्षीमुची यया ॥ ७१ ॥ तयोः प्राचित्रये नाव्योत्मत्ताभिधसतात्रजे। नाना खण्डा विशाखा च प्रत्रावावां बभूविव ॥ ७२ ॥ तात: सीधेऽन्यदा संस्थानिशिखेन सञ्चालपन्। गच्छतोऽष्टापदगिरिं गीर्वाचान् खे निरैचत ॥ ७३ ॥ तत: स तौर्ययादार्थं चलितोऽचालयच नौ। सुद्धदं चाम्निशिखं तं धर्मेषिष्टं हि योजयेत्॥ ७४॥ प्राप्ता त्रष्टापदं तत्रापखाम मणिनिर्मिताः। प्रतिमास्तीर्धनायानां मानवर्षसमन्विताः ॥ ७५ ॥ सानं विसेपनं पूजां विरचय्य यद्याविधि। तास्त्रिः प्रदिचणीक्तत्यावन्दामि समाहिताः ॥ ७६ ॥ प्रासादावि: स्तैर्दृष्टी रत्ताशीकतरोरधः। चारचत्रमची मूर्त्तिमन्ताविव तप:शमी ॥ ७७ ॥ ती प्रवस्योपविष्याये शुश्रुम श्रद्धया वयम्। भज्ञानतिभिरच्छेदकीसुदीं धर्मदेशनाम ॥ ७८ ॥ पप्रकाम्निशिखः कः स्थालम्ययोरनयोः पतिः। तावूचतुर्वीच्चनयोभ्जीतरं मारयिच्यति ॥ ७८ ॥ हिमेनेव गगी म्हानी जातस्तातस्तया गिरा। मावामपीत्यवीचाव वाचा वैराग्यगर्भया ॥ ८० ॥

संसारासारतासारा देशनाखेव श्रुत्रवे। तिह्वादिनवादेन किं तात परिभूयसे ॥ ८१ ॥ चलमसाकमध्येवं विधैविषयजेः सर्दैः। प्रवृत्ते तत्रश्रत्यावां वातं निजसङ्गोदरम् ॥ ८२ ॥ भाग्यवपग्रको भाताऽन्यदा पुष्पवतीमसौ। मातुलस्य लदीयस्य पुष्पचृतस्य कम्यकाम्॥ ८३॥ क्पेणाइतलावखपुखेन प्रतमानसः। तां जहार स दुर्वृद्धिः बुद्धिः कर्मानुसारिषी ॥ ८४ ॥ सोऽसिच्चुद्र्यं तस्या विद्यां साधियतुं ययौ । स्तयं संविद्रते सम्यग् भवन्तस्त ततः परम् ॥ ८५ ॥ तदा च पुष्पवत्याख्यदावयीभादिसङ्गयम्। शोकं धर्माचरै: शोकापनीद इव चानुदत् ॥ ८६ ॥ भन्यच पुष्पवत्यूचेऽभ्यगम्योऽयमिष्ठागतः । ब्रह्मदत्तीऽलु वां भत्ती नान्यया हि सुनेर्गिरः ॥ ८० ॥ स्तीक्रतं च यदावाभ्यां तया च रभसावशात्। पताकाचालि धवला त्यक्कावां लं गतस्ततः ॥ ८८ ॥ यदासाहाग्यवेशुख्याचागतीऽसि न चेचित:। भाक्या सर्वत्रं निर्विषे पावामिष्ठ तदागते ॥ ८८ ॥ पुर्खरिस समायातः पुरा पुष्पवतीगिरा। हतोऽसि वरयावां तहतिरेकस्बमावयो: ॥ ८० ॥ गान्धवेंण विवाहेन स उपायंस्त ते भपि। भोगी डि भाजनं स्त्रीणां सरितामिव सागरः ॥ ८१ ॥

रममानः समं ताभ्यां गक्नोमाभ्यामिवेष्वरः। तवातिवाच्यामास तां नियां ब्रह्मनन्दनः ॥ ८२ ॥ यावची राज्यसाभः स्वात्पृथवत्याः समीपतः । तावध्वाभ्यां स्थातव्यमित्युक्ता व्यस्त्रच ते ॥ ८३ ॥ तथैत्वाद्दतवत्वौ ते सलोकस्तच मन्दिरम्। गन्धवनगरमिव ततः सर्वे तिरोदधे ॥ ८४ ॥ भवायमे रववतीमन्बेष्टुं बद्धास्रगात्। भपर्यस्तत्र पप्रच्छ नरमेकं ग्रुभाकतिम् ॥ ८५ ॥ दिव्याम्बरधरा नारी रहाभरणभूषिता। कापि दृष्टा महाभाग लयातीतदिनेऽच वा ॥ ८६ ॥ स जरे नाय नायेति रहती छोमयेचिता । प्रत्वभिष्राय नप्नीति तत्पित्वव्याय चार्पिता ॥ ८० ॥ तहरोऽसीति तेनी तस्तिधित ब्रह्मसूर्वदन्। निन्धे तेन प्रष्ट्रप्टेन तत्पिष्टव्यनिकेतनम् ॥ ८८ ॥ रम्बला पिढ्योऽपि महादत्तं व्यवाह्यत्। फरा सहसा धनिनां सर्वसीषकारं यतः ॥ ८८ ॥ तया विषयसीस्थानि समं सीऽनुभवत्त्रया। सतकार्थं वरधनोरपरेद्युः प्रचक्रमे ॥ ४०० ॥ साचादिव परे तेषु भृज्ञानेषु दिजनासु । विषवेषो वर्षनुस्तवागत्वः ब्रवीदिति ॥ १ ॥ मम चेह्रोजनं दत्य साचादरधनोर्हि तत्। इति श्वतिसुधैवास्य श्वता वाग् ब्रह्मानूनुना ॥ २ ॥

स तं द्वा परिचङ्गादेकीकुर्वविवासना । स्वयविव इवसिनिनायान्तर्गेष्ठं ततः ॥ ३ ॥ जरे एष्टः कुमारेच खहत्तं सीऽक्षयसदा। सप्ते लिय निर्देश्ह चौरै: दीर्घभटेयया ॥ ४ ॥ व्यान्तरस्थितेनेकदस्यनेकेन पविषा। इतोऽइं पतितः प्रथ्यां तिरोऽधां च सतानारे ॥ ५ ॥ गतेषु तेषु चौरेषु मध्येष्टचं तिरीभवन्। चातिरमार्जेसमिव क्रमेच याममाप्रुवम् ॥ ६ ॥ भवत्रवृत्तिं यामेगादिजायादमिद्यागमम्। टिह्याऽप्रस्थं भवन्तं च कलापीव पयोस्चम् ॥ ७ ॥ षयोचे ब्रह्मदत्तस्तमसाभिः स्थास्यते ननु । विना पुरुषकारिय क्रीवैरिव कियसिरम् ॥ ८ ॥ चनान्तरे च समाप्तमास्त्राच्यसकरध्वजः। मधुवबादको यूनां प्रादुरासीबाधूबाव: ॥ ८ ॥ तदा च राची मत्तेभः स्त्यं भङ्काऽप्यक्रः। ्निययौ वासिताभेषमर्ली मृत्योरिवानुजः ॥ १०॥ ततो नितम्बभारासीं काश्वित् कन्यां खलकातिम्। करी करेग जगाचाक्रम प्रकारियोमिव ॥ ११ ॥ तस्यां च ग्ररणार्थिन्यां क्रन्दन्यां दीनचत्त्र्षि। जन्ने चाचारवो विखदुःखबीजाचरोपमः ॥ १२॥ रे मातङ्गासि मातङ्गः स्त्रियं यद्भव लक्षसे। दत्युक्त: स कुमारेण तां विसुष्य तमभ्यगात्॥ १३॥

उत्प्रत्य दन्तसोपाने पादं विन्यस्य इतया। पादरोष्ठ कुमारस्तमधित्रयद्यासनम् ॥ १४ ॥ वाक्पादाश्वायोगेन सं योगेनेव योगविव्। वगीचकार तं नागं कुमारस्तरसा ततः ॥ १५ ॥ साधुसाध्वित्युचमानी जनैर्जयजयेति च। कुमार: करिणं स्तको नीलाबभाष्यामिव ॥ १६ ॥ ततो नरेन्द्रसातागासं च दृष्टा विसिचिये। पालतिविक्रमबास्य कस्य चित्रीयते नवा ॥ १७ ॥ कोऽयं कुतो वा च्छत्रात्मा किं सूर्यी वासवोऽयवा। राजेत्युत्रे रत्नवत्याः पितृव्यस्तमचीकवत्॥ १८॥ ततो विशाम्पतिः कन्याः पुख्यमानीक्रतीसवः। दश्च: श्रपाकरायेव ब्रह्मदत्ताय दत्तवान् ॥ १८ ॥ यरिकीय स तास्तव सुर्खं तिष्ठववाऽन्यदा। जरसैस्वेनयेसूचे भ्रमसिलां ग्रकाचलम् ॥ २०॥ इड वैत्रवणीऽस्थाकाः त्रिया वैत्रवणीऽपरः । मख च त्रीमतिनीम सता त्रीरिव वारिधे: ॥ २१ ॥ म। चिता भवता व्यालाद्राहोरिन्दुक्कलेव या। सा 'लामेव पतीयन्ती तत:प्रभृति ताम्यति ॥ २२ ॥ यथा गजास्वया व्राता तथा व्रायस्व तां साराव । ग्रहाण पाणि लं तस्वा यया हृदयमग्रही: ॥ २३ ॥

⁽१) च छ त्वामेनाभिक्षवस्ती।

उपयेमे जुमारस्तां विविधोद्याहमङ्गलैः। सुबुडिमन्त्रिच: कन्यां नन्दां वरधनु: पुन: ॥ २४ ॥ पप्रयाते प्रथियां ती तिष्ठन्ती तब मिततः। साभियोगी प्रतस्थाते ततो वाराचसी प्रति ॥ २५ ॥ नुलायानां ब्रह्मदत्तं ब्रह्माचिमव गीरवात्। बभ्येत्व संमुखं वारावसीयः खर्टहेरनयत् ॥ २५ ॥ कटकः कटकवर्ती नाम प्रची निजां ददी। चतुरक्षचम् चास्रो मूर्त्तामिव जयत्रियम् ॥ २० ॥ क्षिब्दत्त्वस्येशी धनुर्मस्यी तथाऽपरे। भगदत्तादयोऽप्येयुर्नृपाः सुला तदागमम् ॥ २८ ॥ कता वरधमुं सेमान्यं सुवेषमिवार्षेभि:। दीर्च दीर्घंपचे नेतुं प्रतस्ये ब्रह्मनन्दनः ॥ २८ ॥ दीर्घस्य दूतः कटकराममेखेवमृचिवान् । दीर्चेष सममाबाष्यमैत्री त्यक्तुं न युज्यते॥ ३०॥ ततः कटक रस्यूचे ब्रष्टाचा सचिताः पुरा। ं सोदर्खा इव 'पञ्चाप्यभवाम सुद्रदो वयम् ॥ ३१ ॥ खर्जुबोब्रग्नवः पुत्रे राज्ये च वातुमर्पिते। दीर्चेच धिकृतं नाऽत्ति माकिन्यपि समर्पितम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मच: पुत्रभाष्के यहीवींऽदीर्घमचिन्तयत्। षाचचारातिपापं तच्छपचीऽपि किमाचरेत् ॥ ३३ ॥

⁽१) च ग च पश्चापि सञ्चाताः।

तहच्छ गंस दीर्घाय बद्धादत्तीऽभ्युपेत्यसी। युदास्त यदि वा नायोत्युक्ता दूतं व्यसर्जयत् ॥ २४ ॥ तत: प्रयाचेरिक्डवे: काम्पीलं ब्रह्मसूर्ययी। सदीर्घमप्यरीत्नीत्तवभः सार्कमिवास्तुदः ॥ ३५ ॥ दोर्घ: सर्वाभिसारेच रचसारेच पत्तनात्। दण्डाकालो निरसरविलादिव महीरगः ॥ ३६ ॥ चुनम्यपि तदात्यमावैराग्यादाददे व्रतम्। पार्खे पूर्णाप्रवर्त्तियाः क्रमाबिवृतिमाप च ॥ ३० ॥ पुरीगा दीर्घराजस्य पुरीगैर्बद्धाजनानः। नदीयादांस्वकृपारयादीभिरिवं अन्निरे ॥ ३८ ॥ दीर्घोऽप्यमणीदुवामिदंद्विकाविकटाननः। वराष्ट्र इव धावित्वा इन्तुं प्रवहते घरान् ॥ २८ ॥ ब्रह्मदत्तस्य पादातर्यसाघादिकं बलम्। पर्यास्त्रत नदीपूरिचेव दीर्घेण विगिना ॥ ४० ॥ महादत्तरतः क्रीधाक्षाची युव्धे खयम । गर्जता दीर्घराजेन गर्जन् दन्तीव दन्तिना ॥ ४१ ॥ उभाविव बलिष्ठी तावस्तास्त्रस्त्रेनिरासतः। कहीलेरिव कहीलान युगान्तीदृश्वान्तवारिधी ॥ ४२ ॥ जालाध्य चेवक रवावसरं प्रसरद्युति। जुठीके ब्रह्मदत्तस्य चन्नं दिक्षक्जित्वरम् ॥ ४२ ॥ ततो जदार दीर्घस्य तेनाग्र ब्रह्मस्रस्त्न । विमदी विद्युत: को वा गोधानिधनसाधने ॥ ४४ ॥

जयतारेष चन्नीति भाषिषी मागधा दव। ब्रह्मदसोपरि सुरा: पुष्पवृष्टिं वितिनिरे ॥ ४५ ॥ पौरै: पितेव मातेव देवतेव स बीचित:। पुरं विवेश काम्यीस्यं सुनामेवामरावतीम् ॥ ४६ ॥ विभिवसामिनोइतसीमनिर्मुसनादसी। षद्खण्डां साधियत्वोवींमेकखण्डां विनिर्भमे ॥ ४० ॥ संवसरेहोटशभिडपेलोपेल सर्वतः। तस्याभिषेको विदर्ध भरतस्येव राजभि: ॥ ४८ ॥ चतु:षष्टिसङ्म्लान्तःपुरस्त्रीपरिवारितः । स राज्यसीस्यं बुभुजे प्राक्तपोभूकदः फलम् ॥ ४८ ॥ प्रनेदानीवासक्रीते तस्य दास्या समर्पितः । स्वर्वभूगुम्फितदव विचित्रः पुष्पगेन्दुकः ॥ ५०॥ ब्रह्मदत्तसु तं हद्दा हष्टपूर्वी मयेहमः। कुत्रापीति व्यधादन्तरुषापोष्टं सुदुर्भुदुः॥ ५१॥ प्राकपञ्चलकासारकोत्पत्तेस्तत्कालमेव च। 'सीधर्मे दृष्टवानेतदित्यन्नासीयाहीपतिः ॥ ५२ ॥ स सिन्नयन्दनाभीभिः खस्यीभूयेत्यचिन्तयत्। कयं मेलियति स मे पूर्वजन्मसहीदरः ॥ ५३ ॥ तं जातकामः स्रोकार्षसमस्यामेवमार्पयत्। पास्त टासी सुगी इंसी मातकावमरी तथा ॥ ५४ ॥

র(१) ऋ च च च मूर्किला चातनानेतं सीभर्मे इटनानिति ।

पर्वज्ञीकसमस्यां मे य इसां पूर्वाययति। राज्यार्शं तस्य दास्यामीत्यसावघोषयत्प्रे ॥ ५५ ॥ स्रोकार्षे तत्त् सर्वीपि कग्रुखं निजनामवत्। पठवकार्वीत्ययाचे न चापूरिष्ट कवन ॥ ५६॥ 📝 तदा च पुरिमतासाचित्रजीवी महेभ्यसू:। जातिस्रुते: प्रव्रजितो विश्वरचेकदा ययौ ॥ ५० ॥: ¹तत कि चिद्वाने प्रासुकस्यक्तिस्तः । स्रोकार्षं तस् पठतः सोऽत्रीषीदारघष्टिकात् ॥ ५८ ॥ एवा नौ षष्टिका जातिरम्धोऽन्याभ्यां वियुक्तयोः। क्रोकापराईमेवं स सम्पूर्य तमपाठयत् ॥ ५८ ॥ स्रोकापराधं तद्राषः पुरस्तादारघष्टिकः। पपाठ कः कविरिति तत्पृष्टस्तं सुनि जगी ॥ ६० ॥ स पारितोषिकं तसी वितीर्खीक्षण्डया ययी। तत्रीचाने मुनिं द्रष्टुं धर्मद्वमिनोइतम् ॥ ६१ ॥ वन्दिला तं मुनिं तत्र बाष्यपूर्णविसोचनः। निषसादान्तिके राजा सस्तेष्ठः पूर्वजन्मवत् ॥ ६२ ॥ भागीर्वादं सुनिर्देखा क्षपारसम्होदिधः। भनुषद्वार्थं भूपस्य प्रारेभे धर्मदेशनाम् ॥ ६३ ॥ ः राजवसारे संसारे सारमन्यव किञ्चन। सारोऽस्ति धर्म एवेक: सरोजिमव कईमे ॥ ६४ ॥

^{. .. (}२) च छ तक्किन्।

- शरीरं यीवनं सन्त्री: खाम्यं मित्राचि बान्धव: । सर्वमप्यनिबोड्तपताकाश्वस्यसम् ॥ ६५ ॥ बहिरङ्गान् दिषोऽजैषीर्यया साधियतुं महीम् । मनरङ्गान् जय तथा मोचसाधनहेतवे॥ ६६॥ ग्टहाच यतिधमें तत्पृथकृत्य त्यजापरम्। राजइंसी हि रुद्धाति विभन्य चीरमश्रसः ॥ ६० ॥ ब्रह्मदत्तस्ततोऽवादीद् दिच्या दृष्टोऽसि बास्वव । दयं तवैव राज्यत्रीर्भुङ्ख भीगान् यवादि ॥ ६८ ॥ तपसी डि फर्स भोगा: सन्ति ते किं तपस्यसि। उपक्रमित की नाम खत: सिषे प्रयोजने ॥ ६८ ॥ मुनिक्चे ममाप्यासन् धनदस्येव सम्पदः। मया तास्त्रवक्यका भवभ्रमचभीवचा ॥ ७० ॥ सौधर्मात्चीचपुच्योऽस्मिवागतोऽसि महीतले। दतीऽपि चीचपुष्यः सन् राजका गा घधीगतिम् ॥ ७१ ॥ षार्थे देशे कुले श्रेष्ठे मानुषं प्राप्य मोचदम । साधयखनुना भोगान् सुधया पायुगीचवत् ॥ ७२ ॥ स्वर्गाचाला चीचपुर्सी भानावावां कुयोनिषु। यद्या तद्या स्वरन् राजन् किं वास दव सुद्धासि ॥ ७३ ॥ तेनैवं बोध्यमानीऽपि नाबुद्ध वसुधाधवः। कृत: क्रुतनिदानानां बोधिबीजसमागमः ॥ ७४ ॥ तमबीध्यतमं बुद्धा जगाम सुनिरन्यतः। कालादिष्टाष्ट्रिमा दष्टे कियत्तिष्टान्ति मास्त्रिकाः ॥ ७५ ॥

घातिक श्रेचयात्राप्य केवल ज्ञानसुत्तमम्। भवोपयाहिकसीणि इला प्राप परं पदम् ॥ ७६ ॥ बह्मदत्तोऽपि संसारसखानभवलालसः। सप्तातिवाइयामास गतानि गरदां कमात् ॥ ७० ॥ कदाचित्राकपरिचितो दिजः कविष्णगाद तम्। चक्रवर्त्तिन् खयं भृष्टे यत्तमी देशि भोजनम् ॥ ७८ ॥ ब्रह्मदत्तोऽप्यवे। चत्तं मदवं दिज दुर्जरम्। चिरेण जीर्यमाणं तु महोनादाय जायते॥ ७८ ॥ कदयीऽस्यवदानेऽपि धिक्वामिति वदन् दिज:। त्रभोजि सकुटुब्बोऽिव भूभुजा भोजनं निजम्॥ ८०॥ निशायामय विषय बीजादिव तदोदनातु । भतशाख: सारोकादतर: प्रादुरभू इशम् ॥ ८१ ॥ त्रज्ञातजननीजामिस्वाव्यतिकरं मिषः। यश्चवसञ्चाचीऽपि विष्रः प्रवहते रते ॥ ८२ ॥ ततो विरामे यामिन्या हिजो रहहजनस सः। क्रिया दर्शयितुं खास्यमन्योऽन्यमपि नाथकत्॥ ८३॥ क्रुरेणानेन राष्ट्राऽस्मि सक्तुटुम्बो विडम्बितः। चिल्तयिक्तत्यमर्षेण नगराकिरगाहिज: ॥ ८४ ॥ दूरादम्बस्यपत्राणि काणयम् शर्कराकणै:। तेन कश्चिदजापाली दृह्यी भ्रमता बहि: ॥ ८५ ॥ महैरसाधनायालमसाविति विस्त्य सः। तं मूख्येनेव सत्कारेणादायैवसवीचत ॥ ८६ ॥

राजमार्गे गजाक्ठी यः खेतच्छत्रचामरः। याति काचे दृशी तस्य लया प्रचिप्य गोलिके ॥ ८० ॥ विप्रवाचमजापातः प्रतिपेदे तथैव ताम्। पश्चवत्पश्चपासा हिन विस्त्य विधायिनः ॥ ८८॥ सोऽव कुचारतरे खिला समं प्रचिप्य गोलिके। , 'चास्कोटयद् हमी राम्नो नाम्ना सन्द्रा विधे: खलु ॥ ८८॥ सीऽक्ररचैरजापासः प्राप्त'म्थेनैरिव दिकः। इम्यमानस्तमेवास्यदिपं विप्रियकारकम् ॥ ८० ॥ तच्छुत्वा पार्थिवीऽवीचिष्ठग् धिग् जातिर्धिजनानाम्। यचैते भुद्धते पापास्तव भद्धन्ति भाजनम् ॥ ८१ ॥ यः स्वामीयति दातारं दत्तं तसी वरं शने । न जातु दातुमुचितं कतन्नानां विजन्मनाम् ॥ ८२ ॥ वश्वकानां तृशंसानां म्बापदानां पत्तादिनाम्। र्म्म हिजानां योऽकार्षे विचाद्य: प्रथमं हि स: ॥ ८३ ॥ इति अस्यवनस्यक्तुत् पृष्टीपतिरघातयत्। सपुचनस्मिचं तं विप्रं मशकसुष्टिवत् ॥ ८४ ॥ द्योरसीकतस्तेन द्वदयेऽसीकतः कुधा। विप्रान सोऽघातयत् सर्वान् पुरोधःप्रस्तीनपि ॥ ८५ ॥

⁽१) च च च चस्कीटबत्।

⁽२) चचच प्राप्तः।

सोऽमात्यमादिदेशैवं नेत्रेरेवां दिजवानाम् । विशालं स्थालमापूर्य निधेष्ठ पुरतो सम ॥ ८६ ॥ रोद्रमध्यवसायं ते राज्ञी विज्ञाय मन्त्रापि। म्रेपातकपत्नै: स्थानं पूरियता पुरी न्यधात्॥ ८०॥ सुसुदे ब्रह्मदत्तोऽपि पाणिना संस्पृशक्ष्युः। विपानां लोचनै: खालं साधु पूर्विमिति ब्वन्॥ ८८ ॥ स्रों स्रीरत्रक्षायाः पुष्पवत्वास्त्रया निह । ययाऽउसी इच्चदत्तस्य तत्स्यालस्यर्भने रतिः ॥ ८८ ॥ न कराचन संस्थालमपसार्यटक्षतः। दुर्भदी मदिरापात्रमिव दुर्गतिकारणम् ॥ ५०० ॥ विप्रनेत्रधियाऽसद्वात् श्लेषातकपालानि सः। फलाभिमुखपापद्रीः सळ्यविव दीष्ट्रम् ॥ १॥ तस्यानिवर्त्तको रौद्राध्यवसायोऽत्यवर्दत । भग्रभं वा ग्रभं वाऽपि सर्वे हि सहतां सहत ॥ २॥ तस्यैवं वसुधेशस्य रीष्ट्रध्यानानुबन्धिनः। पापपद्भवराष्ट्रस्य ययुर्वर्षाचि घोड्य ॥ ३ ॥ यातेषु घोडगयुतेषु समागतेषु सप्तस्ती चितिपतिः परिपूरितायः। हिंसाऽनुबन्धिपरिणामफलात्रक्यां तां सप्तमीं नरकलोकभुवं जगाम ॥ ५०४ ॥ २०॥

॥ इति ब्रह्मदत्तचक्रवर्त्तिक्यानकम् ॥

पुनरपि श्विंसकाजिन्दति।

कुणिर्वरं वरं पङ्गरशरीरी वरं प्रमान्। अपि सस्पूर्णसर्वाङ्गो न तु हिंसापरायणः॥ २८॥

कुणिर्विकसपाणिः वरमिति मनागिष्टे मन्तमध्ययं पक्षुः पादवि-कलः कुल्सितं गरीरमगरीरं नञः कुल्मार्थलात् तिह्यते यस्य सी-ऽगरीरी कुष्ठी विकलाङ्गः कुण्मपङ्गुकुष्ठिनस्ते हि विकलाङ्गलादेव हिंसामकुर्वन्तो मनाक् त्रेष्ठाः सम्पूर्णसर्वाङ्गोऽपि क्रतपरिकरवन्धं हिंसापरायणः पुमावत् त्रेष्ठः । नतु रौद्रध्यानपरायणस्य या हिंसा सा नरकहेतुलाविन्द्याऽस्त या तु गान्तिकनिमित्तं प्रायिक्तभूता हिंसा या वा कुलक्रमायाता मत्स्यवन्धानामिव सा रौद्रध्यान-रहितलाव दोषायेलाह ॥ २८॥

हिंसा विद्वाय जायेत विद्वशान्ये क्तताऽपि हि।
कुलाचारिधयाऽप्येषा क्तता कुलविनाशनी ॥ २८॥

रौद्रध्यानमन्तरेणाप्यविवेकाक्षोभाद्या या प्रान्तिनिमित्तं कुलक्रमाद्या हिंसा सा न केवलं पापहितः प्रत्युत विष्नग्रान्तिनिमित्तं क्रियमाणा समरादित्यकयोक्तस्य यशोधरजीवस्य
सुरैन्द्रदत्तस्येव पिष्टमयकुक्ट्रवधक्त्पा विष्नाय जायेत कस्येत
प्रस्नात्कुलाचारोऽयमिति बुद्यााऽपि क्रता हिंसा कुलमेव विनाग
यति॥ २८॥

इदानीं कुलक्रमायातामपि हिंसां परिहरन् प्रमान् प्रशस्य एवित्याह ।

अपि वंशक्रमायातां यस्तु हिंसां परित्यजित्। स श्रेष्ठः सुलस द्रव कालसीकरिकात्मजः॥ ३०॥

वंगः कुलं कुलक्रमायातामिप हिंसां यः 'परिहरेत् स श्रेष्ठः प्रशस्य तमः सुलस इव तस्य विशेषणं कालसीकरिकात्मजः कालसीक-रिको नाम सीनिकस्तस्थात्मजः पुत्रः।

यदाम्---

'यवि इच्छिन्ति य मरणं न य परपीडं कुणन्ति मणसा वि । जी सुविदयसगदपद्वा सीयरियसुची जद्दा सुलसी ॥ सुलमकायानकं सम्प्रदायगम्यम् ।

सचायं —

महित मगधेषस्ति पुरं राजग्रहाभिधम्।
तत्र त्रीवीरपादाक्षश्रक्षीऽभूक्क्रेणिको त्रपः॥१॥
तस्य प्रियतमे नन्दाचिक्षणे शीलभूषणे।
प्रभूतां देवकीरोहिक्याविवानकदुन्दुभेः॥२॥
नन्दायां नन्दनी विख्वकुमुदानन्दचन्द्रमाः।
नामाऽभयकुमारोऽभूदुभयान्वयभूषणः॥३॥

⁽१) च परित्वजेत्।

^(*) ऋषि इ.च्छिलि च मर्षं न च परपीडां कुर्विल सनसः थि। वे सुविदितसुगितिष्याः सीऋरिक सुतो वया सुससः ॥ १॥

राजा तस्व परिज्ञाय प्रकष्टं बुद्धिकी गलम्। ददी सर्वाधिकारित्वं गुचा हि गरिमास्पदम् ॥ ४ ॥ चन्यदा त्रीमहावीरी विहरन् परमेखरः। जगत्पुच्यः पुरे तिक्राबागत्य समवासरत् ॥ ५ ॥ श्रुला खामिनमायातं अङ्गमं कस्पपादपम्। क्रतार्थमानी तचागासुदितः श्रीबको तृपः ॥ ६॥ ययास्थानं निषसेषु देवादिषु जगतुरः। प्रारेभे दुरितध्वंस'देशनीं धर्यदेशनाम् ॥ ० ॥ तदा क्षष्ठगलकाय: कियदेख प्रचम्य च। निषसादीपतीर्धेशमसर्व इव क्रांटिम ॥ ८॥ तती भगवतः पादी निजपूयरमेन सः। नि:शक्षयन्दनेनेव चर्चयामास भूयसा ॥ ८ ॥ तदीचा त्रेणिक: सदी दधी वधीऽयमुखित:। पापीयान् यव्यगद्भर्त्ययेवमात्रातनापर: ॥ १० ॥ प्रवास्तरे जिनेन्द्रेष चुते प्रोवाच कुष्टिकः। म्वियखेलाय जीविति विविवेन चुते सति॥ ११॥ च्रतेऽभयकुमारेच जीव वा लं स्वियस्व वा। कालसीकरिकेषापि जुते मा जीव मा स्थाः ॥ १२ ॥ जिनं प्रति स्त्रियखेति वचसा रुषिती तृप:। इत: स्थानाद् च्छितोऽसी याद्य इत्यादिगद्गटान् ॥ १३ ॥

⁽१) का का का प्रत्वादेशनीं।

देशनानी महावीरं नला कुछी समुखित:। वर्षे त्रेचिकभटै: किरातैरिव शूकर: ॥ १४ ॥ स तेषां प्राथतामेव दिव्यक्षप्रधरः चनात । उत्पपाताम्बरे कुर्वसर्कविम्बविडम्बनाम् ॥ १५ ॥ पत्तिभिः कथिते राजा क एव इति विस्नयात्। विज्ञप्ती भगवानसी देशीऽसावित्यचीक्यत ॥ १६ ॥ पुन'वित्रपयामास सर्वत्रमिति भूपति:। देवः कथमभूदेव कुडी वा केन हेतुना॥ १०॥ भवीवे भगवानेवमस्ति वसेषु विश्वता। कीशास्त्री नाम पूसास्त्रां ग्रतानीकोऽभववृषः ॥ १८ ॥ तस्यां नगर्थामेकोऽभूबामतः सेड्को दिजः। सीमा सदा दरिद्राचां मुखीचामविधः परः ॥ १८ ॥ गर्भिखाः भावि सो स्वेयुर्वा स्रक्षां स्तिक में है। भहानय छतं मद्यां सद्भा नद्मन्यया व्यया ॥ २०॥ सोऽप्यूचे तां प्रिये नास्ति मम कुत्रापि कीशलम्। . येन कि चिक्कभे कापि कलायाच्या यदी खरा: ॥ २१ ॥ उवाच सा च तं भद्यं गच्छ सेवस्त पार्धिवम्। प्रविच्यां पार्घिवादन्धी न किखलस्पपादपः ॥ २२ ॥ तथिति प्रतिपद्मासी तृपं पुष्पपसादिना। प्रवृत्तः सेवितुं विषी रत्ने च्छुरिव सागरम् ॥ २२ ॥

⁽१) च विद्यापयामास ।

कदाचिदय की भाग्वी चम्पे मेनामिते बेंबै:। घनर्तनेव मेघेदौरिकध्यत समन्ततः॥ २४॥ सानीकोऽपि ग्रतानीको मध्येकौगास्वि तस्तिवान्। प्रतीचमाणः समयमन्तर्विलमिवोरगः॥ २५॥ चम्पाधिपीऽपि कालेन बहुना सबसैनिकः। प्रावृति स्वात्रयं यातं प्रवृत्ती राजसंसवत् ॥ २६ ॥ तदा पुष्पार्थमुद्याने गतः सेडुक ऐचत । तं चीषसैन्यं प्रत्यूषे निष्पुभोड्मिवोड्पम् ॥ २०॥ तूर्षमेत्य ग्रतानीकं व्यजित्रपदसाविदम् । याति चीचवलसीरिर्भग्नदंष्ट्र द्वीरगः॥ २८॥ यदादो तिष्ठसे तसी तदा याचाः सुखेन सः। बन्नीयानपि खिन्नः सन्नखिनेनाभिभूयते ॥ २८ ॥ तद्वः साधु मन्वानी राजा सर्वाभिसारतः। नि:ससार ग्रासारसारनासीरदावण: ॥ ३०॥ ततः पश्चादपश्चन्तो नेग्रसम्पेगसैनिकाः। चचित्ततति खाते को वीचितुमपि चमः ॥ ३१॥ चम्पाधिपतिरेकाङ: कान्दिशीक: पत्नायित:। तस्य इस्यम्बकोगादि कीशाम्बीपतिरयहीत् ॥ ३२ ॥ ष्ट्रष्ट: प्रविष्ट: कीशास्त्रीं ग्रतानीको सहामनाः। चवाच सेंडुकं विधं ब्रूडि तुभ्यं ददामि किम् ॥ ३३ ॥ विप्रस्तमूचे याचिषे एष्टा निजकुटुम्बिनीम्। पर्यासोचपटं नान्धो रहिकां रहिकों विना ॥ ३४॥ भट्टः प्रष्ट्रष्टो भट्टिन्ये तदशेषं शशंस सः। चैतसा चिन्तयामास सा चैवं दु दिशालिनी ॥ ३५ ॥ यचमुना याइयिथे तृपाद्वामादिकं तदा। करिचलपरान्दारामादाय विभव: खलु॥ ३६॥ दिनं प्रत्येक प्रालीच'स्तथायामनभीजनम् । दीनारो दिचणायां च याचा इत्यन्वशात्पतिम्॥ ३०॥ ययाचे तत्तया विषी राजाऽदासहदिनदम्। करकोऽस्थिमपि प्राप्य गरहात्याकोचितं पयः॥ ३८॥ प्रत्य इंतत्तवा लेभे प्राप्य सन्भावनां च सः। युंसां राजप्रसादी हि वितनोति महार्घताम् ॥ ३८ ॥ राजमान्योऽयमित्येष नित्यं लोकैन्यमस्त्रतः। यस्य प्रसनो नृपतिस्तस्य कः स्थान सेवकः ॥ ४० ॥ मये भुक्तं चालयित्वा बुभुजिऽनिकशोऽप्यसी। प्रत्यहं दिचणालीभाहिन्धिग्लीभी दिजन्मनाम् ॥ ४१ ॥ उपाचीयत विप्रोऽसी विविधेई चिणाधनै:। पासरत्युत्रपीनेय पादैरिव वटहुम: ॥ ४२ ॥ म तु नित्यमजीर्णाववमनादूईगैरसै:। मामेरभूदूषितत्वगन्तत्य इव लाचया ॥ ४३॥ कुष्ठी क्रमेण सञ्जन्ने शीर्यद्राणांक्रिपाणिकः। तथैवाभुत्त राजाये सीऽत्यती इव्यवाडिव ॥ ४४ ॥

^(!) सगड याबीयः।

एकदा मन्त्रिभर्भूपो विज्ञप्तो देव कुष्ठासी। सञ्चरिषाः कुष्ठरोगो नास्य योग्यमिष्ठाभनम् ॥ ४५ ॥ सस्यस्य नीक्जः पुत्रास्तेभ्यः कोऽप्यत्र भोज्यताम् । 'व्यक्कितप्रतिमायां हि खाप्यते प्रतिमाक्तरम्॥ ४६॥ एवमस्विति राज्ञोक्षेऽमात्यैर्विप्रस्तयोदितः। स्त्रसानिऽस्थापयत्पृतं ग्रहे तस्थी स्तरं पुन: ॥ ४० ॥ मधुमण्डकवद्त्तुद्रमिचकाजासमासित:। पुत्रेर्गृष्टादिप बिष्टः कुटीरेऽचेपि स दिजः॥ ४८॥ बिद्दास्थातस्य तस्याचां प्रवा चिप न चित्रिरे। दाक्पावे ददुः किन्तु श्रनकस्येव भोजनम् ॥ ४८ ॥ श्वगुषमाना वद्ध्वोऽपि तं भोजयितुमाययुः। तिष्ठिवुविनितयीवं मोटनोत्पुटनासिकाः ॥ ५० ॥ ष्यथ सोऽचिन्तयद्विपः श्रीमन्तोऽमी मया कताः। एभिर्म्, तोऽस्रानादृत्य तीर्णाक्षोभिस्तरण्डवत् ॥ ५१ ॥ तोषयन्ति न वाचाऽपि रोषयन्त्येव माममी। कुष्ठी रुष्टो न सन्तुष्टीऽभव्य दत्यमुलापिनः ॥ ५२ ॥ जुगुपानी यथैते मां जुगुपााः स्युरमी पपि। यद्या तद्या करिष्यामीत्यालीच्यावीचदाव्यजान् ॥ ५३॥ उद्दिग्नो जीवितस्यार्षं कुलाचारस्वसी सुता:। मुमूर्षुभि: कुटुम्बस्य देयो मन्दोचित: पश: ॥ ५४ ॥

⁽१) खगड म्यक्रित-।

पशुरानीयतामेक इत्याकच्यानुमोदिनः। चानिन्धिरे तेऽघ पशुं पश्चनमन्दबुद्धयः ॥ ५५ ॥ उद्दर्शीदर्श्य च खाङ्गमनेन व्याधिवर्त्तिकाः। तेनाचारि पश्चम्तावद्यावत् क्षष्ठी बभूव सः ॥ ५६ ॥ दरी विष: खपुत्रेभ्यस्तं इला पश्मन्यदा। सदाग्यमजानको सुन्धा बुभुजिरे च ते॥ ५०॥ तीर्धे खार्थाय यास्त्रामीत्यापृच्छा तनयान् दिजः। ययावूर्द्वमुखोऽरस्यं गरस्यमिव चिन्तयन् ॥ ५८ ॥ त्रात्यकात्वितः सोऽटबटव्यां पयसे चिरम्। त्रवस्यस्त्रहृदमिव देशे नानाहुमे ऋदम् ॥ ५८ ॥ नीरं तीरतरुसस्तपतपुष्पफलं दिज:। योषमध्यन्दिनाकीं शक्काथतं काथवत्पपी ॥ ६०॥ सोऽपाद्यथा यथा वारि भूयोभूयस्तृषातुर:। तया तथा विरेकोऽस्य बभूव क्रमिभिः सह ॥ ६१ ॥ स नोकगासीलतिभिरप्यक्रीभिक्रंदाभसा। मनोज्ञसर्वावयवो वसन्तेनेव पादपः॥ ६२॥ त्रारोग्यष्टष्टो ववले विप्र: चिप्रं खवेश्सने। पंसां वपुर्विशेषोत्यशृङ्गारी जन्मभूमिषु ॥ ६३ ॥ स पुर्य्यां प्रविशन् पौरैर्दृष्टशे जातविष्मयै:। देदीप्यमानो निर्मुको निर्मीक इव पन्नगः॥ ६४ ॥ पौरै: एष्ट: पुनर्जात इवोलाघ: कथं त्वसि। देवताराधनादस्रीत्याचचने स तु दिज: ॥ ६५॥

स गला खग्रहे ऽपम्यत्खपुत्रान् कुष्ठिनो सुदा । मयाऽवज्ञाफलं साधु दत्तमित्यवदच तान्॥ ६६ ॥ सुतास्तमेवमू चुच भवता तात निर्घृषम् । विष्वस्तेषु किमसासु हिपेवेदमनुष्ठितम् ॥ ६० ॥ लोकैराक्ष्यमानीऽभी राजवागत्य ते पुरम्। मात्रयक्जीविकाद्वारं द्वारपालं निरात्रयः ॥ ६८ ॥ तदाऽच वयमायाता हास्योऽसाहर्मदेशनाम्। त्रोतुं प्रचलितोऽसुच्चत्तं विप्रं निजकर्मणि ॥ ६८ ॥ द्वारोपविष्टः स द्वारदुर्गीणामग्रती बलिम्। जन्मादृष्टमिवासुङ्ज्ञ यथेष्टं कष्टित: सुधा ॥ ७० ॥ भाकाळं परिभुक्तावदीवाद्गीकीवाणा च सः। चत्पवया त्वचात्कारि मक्पात्य दवाकुनः॥ ७१॥ तत्त् द्वा:स्थभिया स्थानं त्यक्का नागाग्रपादिषु । पसी जलचरान् जीवान् धन्यायोने त्रवातुरः ॥ ७२ ॥ चारटन् वारि वारीति स खषात्तीं व्यपदात । इष्टैव नगरद्वारवाप्यामजनि दर्दुर: ॥ ७३ ॥ विश्वरक्तो वयं भूयोऽप्यागमामेश्व पत्तने। लोकोऽस्महन्दनार्धं च प्रचचाल ससम्भूमः ॥ ७४ ॥ पद्मदागमनोदनः युवाऽभोष्टारिणीमुखात्। स भेकोऽचिन्तयदिदं काप्येवं सुतपूर्व्यक्षम् ॥ ७५ ॥ जहापोद्यं ततस्तस्य कुर्वाणस्य मुदुर्मुद्यः। स्वप्नसारणवज्जातिसारणं तत्चणादभूत्॥ ७६॥

म दध्वी दर्दरवैवं द्वारे संख्याच्य मां पुरा। दास्री यं वन्दित्रमगाता चागाइगवानि ॥ ७० ॥ यवैते यान्ति तं द्रष्टुं सोका यास्याम्य इंतथा। सर्वसाधारणी गङ्ग निष्ठ कस्यापि पेष्टकी ॥ ७८ ॥ ततोऽसादन्दनाहेतोवत्युत्वोत्युत्व सोऽध्वनि । मायांस्तेऽखखुरचुसी भेकः पञ्चलमाप्तवान् ॥ ७८ ॥ दर्दुराङ्कोऽयमुत्पेदे देवोऽस्मद्रक्तिभावितः। भावना डि फलत्येव विमाऽनुष्ठानमप्यद्वी ॥ ८० ॥ इन्द्रः सदस्यवाचेदमुपत्रेषिकमाईताः । भन्नहधानस्तदसी तत्परीचार्धमागत: ॥ ८१ ॥ गोशीर्वचन्दनेनायमानर्च चरकी मम। लहिमोचनायान्यसर्वे व्यक्तित वैक्रियम् ॥ ८२ ॥ भयोचे सेणिकः स्वामित्रमङ्खं प्रभोः चते। एषोऽन्धेषां तु मङ्गस्थामङ्गस्थानि जगाद किम्॥ ८३॥ प्रयाचचचे भगवान् किं भवेऽचापि तिष्ठसि । शीम्रं मोचं प्रयाहीति मां चियखेत्युवाच सः॥ ८४॥ स लां जगाद जीवेति जीवतस्ते यतः सुखम्। नरके नरवार्टूस सतस्य हि गतिस्तव ॥ ८५ ॥ जीवन् धर्में विधत्ते खादिमानेऽनुत्तरे सृत:। जीव स्त्रियस्त वेत्येवं तेनाभयमभाषत ॥ ८६॥ जीवन् पापपरी मृत्वा सप्तमं नर्वा व्रजीत्। कालमीकरिक स्तेन प्रोचे मा जीव मा स्था: ॥ ८० ॥ तच्छ्ला श्रेषिको नला भगवन्तं व्यक्तित्रपत्। लिय नाधे जगनाय कयं में नरके गति: ॥ ८८ ॥ बभाषे भगवानिवं पुरा त्वमसि भूपते। बहायुर्नरके तेन तनावध्यं गमिष्यसि ॥ ८८ ॥ श्वभानामश्वभानां वा फलं प्राग् बद्दकभेषाम्। भोक्तव्यं तद् इयमपि नान्यया कर्त्तमीत्महे ॥ ८०॥ षाद्यो भाविजिनचत्रविंगती लं भविषसि । पश्चनाभाभिधो राजन् खेदं मा स्म क्रयास्ततः ॥ ८१ ॥ त्रेषिकोऽघावटबाघ किमपायोऽस्ति कोऽपि सः। नरकाचीन रच्छेऽइमस्रकुपादिवास्रसः ॥ ८२ ॥ भगवान् व्याजद्वारिदं साधुभ्यो भक्तिपूर्वकम्। ब्राह्माच्या चेलापिलया भिचां दापयसे सदा ॥ ८३॥ कालसीकरिकासूनां विमोचयसि वा यदि। तदा ते नरकाचोची राजन जायेत नान्यथा ॥ ८४ ॥ सम्यगित्यपदेशं स इदि हारमिवोद्यहन्। प्रमुख्य श्रीमहावीरं चचाल खाश्रयं प्रति ॥ ८५ ॥ प्रवासारे परीचार्ध दर्दुराक्टन भूपते:। प्रकार्य विद्धांसाधः कैवर्त्त इव दर्शितः ॥ ८६ ॥ मं द्रष्टा प्रवचनस्य मासिन्धं मा भवलिति। निवायीकार्य्यतः साम्ना स्वर्ग्डं प्रत्यगावृपः ॥ ८० ॥ स देवो दर्भयामास साध्वीसुदरिषीं पुनः। नृप: शासनभक्तस्तां जुगोप निजवेश्मनि ॥ ८८ ॥

प्रत्यचीभूय देवोऽपि तसूचे साधु साधु भो:। सम्यक्ताचात्रसे नेव पर्वतः खपदादिव ॥ ८८ ॥ तृनाय याद्यं ग्रमः सदसि लामचीकयत्। दृष्टस्ताद्वय एवासि सिष्यावाची न तादृशाम् ॥ १०० ॥ दिवानिर्मितनचत्रश्रेषिकं 'श्रेणिकाय स:। व्यत्राचयत्तरो हारं गोसकदितयं तथा॥१॥ योऽमुं सन्धास्त्रते हारं तुटितं स मरिचति। इल्डोर्थ तिरोधत्त खप्रदृष्ट द्वामरः ॥ २॥ दिव्यं देखें ददी हारं चेत्रणायें मनोहरम्। गोलकदितयं तत्तु नन्दाये तृपतिर्म्दा ॥ ३॥ दानस्यास्यास्मि योग्येति सेषी नन्दा मनस्विनी। पास्काल्य स्कोटयामास स्तको तहीलकहयम्॥ ४॥ एकसाल्यक्तद्वां चम्द्रदास्यामसम्। देदीप्यमानमन्यसात्चीमयुग्मं च नि:स्तम्॥ ५॥ तानि दिव्यानि रक्षानि नन्दा सानन्दमग्रहीत्। पनभ्रवृष्टिवज्ञाभी महतां स्वादचिन्तितः॥ ६॥ राजा ययाचे कविसां साधुभ्यः ऋदयाऽन्विता। भिचां प्रयच्छ निर्भिचां लां करिष्ये धनोचनै: ॥ ७ ॥ कपिलोचे विधले मां सर्वा खर्णमयीं यदि। चिनिधा वा तथाऽप्येतदक्तत्वं न करोग्यइम्॥ ८॥

⁽१) च त्रेषियं च सः।

कालसीकरिकोऽप्यूचे राज्ञा स्नां विमुख्यन्। दास्येऽइमर्थमर्थस्य लोभान्तमि सीनिकः॥ ८॥ सुनायां ननु को दोषो यया जीवन्ति मानवा:। तां न जातु त्यजामीति कालसीकरिकोऽवदत्॥ १०॥ सुनाव्यापारमेषोऽत्र करिष्यति कयं न्यिति। नृप: चिम्राज्यक्षे तमहोरात्रमधारयत् ॥ ११ ॥ भय विश्वपयासास गला भगवते तृप:। सीऽत्याजि सीनिकः सुनामहोराविमदं विभी ॥ १२ ॥ सर्वज्ञोऽभिद्धे राजवत्यकृपेऽपि सोऽवधीत्। शतानि पश्च महिषान् खयं निर्माय समयान् ॥ १३॥ तद्वला श्रेणिकीऽपायत् खयमुद्दिविजे ततः। धिगद्दी में पुरा कर्मा नान्यया भगवितरः ॥ १४ ॥ पच पच गतान्यस्य महिषात्रिवृतोऽन्वहम्। कालसीकरिकस्थीचै: पापरागिरवर्षत ॥ १५ ॥ द्रशापि रोगास्तस्यासन्दावणैरतिदावणाः। पर्यन्तनरकप्राप्ते रूपर्युक्त लितेरचे: ॥ १६ ॥ हा तात हा मातरिति व्याधिबाधाकदर्धित:। वध्यमानः गूकरवलालसीकरिकोऽरटत् ॥ १० ॥ सीऽङ्गनातृलिकापुष्यवीचाक्कचितमार्जिताः। ्रदृष्टित्वमासिकाकर्षजिङ्गाश्रुलान्यमन्यतः ॥ १८ ॥ ततस्तस्य सुतस्ताद्दक् सक्षं सुलसीऽखिलम्। जगाद जगदाप्तायाभदायाभयदायिने ॥ १८ ॥

जवेऽभयस्वित्यता यचने तस्येद्यं फलम्। सत्यमत्य्यपापानां फलमत्वेव लभ्यते ॥ २० ॥ तथाऽप्यस्य कुरू प्रीत्ये विपरीतेन्द्रियार्थताम्। त्रमेध्यगन्धविध्वंसे भवेत्र जलमीषधम् ॥ २१ ॥ यथैत्य सुलसस्तं तु कट्तिक्वान्यभोजयत्। भपाययद्वीऽत्य्वास्तप्तस्यपुसन्तीद्राः ॥ २२ ॥ भूयिष्ठविष्ठया सुष्ठु सर्वोङ्गीणं व्यलेपयत्। जर्द्वनग्टनमयां च गयायां पर्यस्षुपत्॥ २३॥ त्रावयामास चक्रीवत्क्रमेलकरवान् कटून्। रचीवेतालकद्वालघीररूपाख्यदर्भयत्॥ २४॥ तै: प्रीत: सोऽब्रवीत्पृतं चिरात्खाइद्य भीजनम्। भीतं वारि मृदुः भया सुगन्धि च विलेपनम् ॥ २५ ॥ शब्दः श्रुतिसुधाऽमृनि रूपाखेकं सुखं दृशोः। भक्तेनापि लयाऽस्मात् किं विश्वतोऽस्मि चिरं सुखात्॥२६॥ तक्ष्ट्रता सलसो दध्याविदमत्रैव जन्मनि । प्रही पापफलं घीरं नरके किं भविष्यति ॥ २०॥ सुलसे चिन्तयत्येवं स स्वा प्राप दारुणम्। सप्तमे नरके स्थानमप्रतिष्ठानसंज्ञितम् ॥ २८ ॥ कतोईदेहिकोऽभाषि सुलसः खजनैरिति। पितु: श्रय पदं स्थाम सनाथा हि लया यथा ॥ २८ ॥ सलसस्तानवाचेदं करिष्ये कर्म नद्यदः। कि चिन्नेभे फलं पिनाऽप्यनैवासुष्य कर्मणः ॥ ३० ॥

₹५

यद्या सम प्रिया प्राणास्तवाऽन्यपाणिनासपि। स्त्रपाणिताय धिगन्नो परप्राणप्रसारणम् ॥ ३१॥ हिंसाजीविकया जीवेत् कः प्रेच्य फलमीट्यम्। मर्णेकफलं चाला किंपाकफलमत्ति कः ॥ ३२ ॥ श्रथ ते खजना प्रोत्तः पापं प्राणिवधेऽत यत्। तिहभच्य ग्रष्टीष्यामो हिरस्थमिव गोतिणः॥ ३३॥ लमेकं महिषं इन्या इनिष्यामीऽपरान् वयम्। **प्रत्यस्पमेव ते पापं भविष्यति ततो नमु ॥ ३४ ॥** पादाय सुलसः विषंत्र कुठारं पाणिना ततः। तेनाजन्ने निजां जहां मुर्कितो निपपात च ॥ ३५॥ लभसंत्रस्ततीऽवादीत् 'साक्रन्दः कर्षास्वरम्। हा क्षठारप्रहारेण कठोरेणास्मि पौडित:॥ ३६॥ रुष्क्रीत बन्धवो यूर्य विभज्य मम वेदनाम्। स्वामत्यवेदनो येन पीडितं पात पात माम् ॥ ३०॥ मुल सं खित्रमनसरते च प्रतिबभाषिरे। पीडा कस्यापि केनापि यहीतुं शक्यते किसु॥ ३८॥ सुलसी व्याजहारेदं यद व्यथामियतीमपि। न में प्रजीतुमीशिध्वे तलायं नरकव्ययाम् ॥ ३८ ॥ कला पापं कुटुम्बार्थे घोरां नरकवेदनाम्। एकीऽमुत्र सिंच्चेऽहं स्थास्यत्यनैव बान्धवाः ॥ ४० ॥

⁽१) च स कन्दन् दार्यस्तरम्। उ स कन्दन् क-।

हिंसां तन्न करिषामि पैतिकीमपि सर्वया।

पिता भवित यद्यन्थः किमन्थः स्वास्तृतोऽपि हि ॥ ४१ ॥

एवं व्याहरमाणस्य सुलसस्यातिपीड्या।

प्रतिजागरणायागादभयः त्रेणिकात्मजः ॥ ४२ ॥

परिरभ्य वभाषे तमभयः साधु साधु भोः।

सर्वं ते त्रुतमस्त्राभिः प्रमोदाह्यमागताः ॥ ४३ ॥

पापात्मित्रगदपक्तामन् कर्दमादिव दूरतः।

त्वमेकः स्त्राघ्यसे हन्त पद्मपातो गुणेषु नः ॥ ४४ ॥

सुलसं पेश्वलैरेवमालापैर्धमेवत्सनः।

पनुमोद्य निजं धाम स जगाम न्यात्मजः ॥ ४५ ॥

स्वानगद्य सुलसो यहीतद्वाद्यव्रतः।

दीर्गत्यभीतोऽस्थाक्येनधर्मे रोर द्वेष्वरे ॥ ४६ ॥

कालसीकरिक स्तुरिवेवं यस्थित् कुलभवामपि हिंसाम्।

स्वर्गसम्पददवीयसि तस्य त्रेयसामविषयो न हिकि स्वित्॥१४०॥३०॥

भय हिंसां कुर्वेत्रपि दमादिभि: पुर्खमजेयत्वेव पापं च विशोधयेदित्याह्य—

दमो देवगुरूपासिदिनमध्ययनं तपः । सर्वमप्येतदफलं हिंसां चेन्न परित्यजेत्॥ ३१॥

दम इन्द्रियजयः, देवगुरूपास्तिरेंवमेवा गुरुसेवा च, दानं पात्रेषु द्रव्यविश्वाणनं, श्रध्ययनं धर्मशास्त्रादेः पठनं, तपः कच्छ-चान्द्रायणादि, एतद्दमादि सर्वमिष न तु किश्चिदेव, श्रफलं पुण्यार्जनपापच्चयादिफलरिहतं चेद्यदि हिंसां शास्तिक हेतं बुलि क्रमायातां वा न परित्यजेच परिहरेत्॥ एवं तावचां सलुम्थानां शास्तिकार्थिनां कुलाचारमनुपालयतां च या हिंसा सा प्रतिविद्या॥ ३१॥

दरानीं गास्त्रीयां हिंसां प्रतिषेधन् गास्त्रलेन वाऽऽचिपति-

विश्वको मुग्धधीर्लीकः पात्यते नरकावनी।
यहो नृशंसैर्लीभास्वैहिंसाशास्त्रीपदेशकैः॥ ३२॥

हिंसाशास्त्रं वस्त्रमाणं तस्त्रीपदेशका हिंसाशास्त्रीपदेशका मन्वा-दयस्तैः किं विशिष्टैर्नृशंसैनिर्देयैः। दयावान् हि कयं हिंसाशास-सुपदिशित्। तृशंसत्त्रे हित्साह। सोभासैः सांसस्तीभासैः स्वाभाविकविविकविविकांसर्गचकूरहितैः।

यदाइ---

एकं हि चत्तुरमलं सहजो विवेक-स्तहिंदिव सह संवसितिहिंतीयम्। एतह्यं भृवि न यस्य स तत्त्वतोऽन्ध-स्तस्यापमार्गचलने खलु कोऽपराधः॥१॥

घडी रित निर्वेदे यतो विखस्तो विश्वसः विखस्ते हेतुर्मुन्धधीः। चतुर्विद्धिं जत्याकत्यं विवेचयन् न प्रतारकवचम्स विश्वसिति स्रोकः: प्राक्ततो जनः पात्यतं चिप्यते नरकावनी नरक-पृथ्वराम्॥ ३२॥ हिंसाशासमेव यदाहरित्यमेन प्रस्तत्य निर्दिशित—
यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ।
यज्ञोऽस्य भृष्टी सर्वस्य तस्मादाज्ञे वधोऽवधः॥३३॥

यन्नार्थं यन्ननिमित्तं स्वयंभुवा प्रजापितना प्रगवः सृष्टा उत्पादिताः स्वयमेवेत्वर्थवादः मस्य जगतो विम्नस्य यन्नो न्योतिष्टोमादिः भूत्ये भूतिविभवः तस्मात्तन यो वधः स न वधो विन्नेयः हिंसा-जन्यस्य पापस्यानुत्पत्तेः। एवमुच्यते। कथं पुनर्यन्ने हिंसादोषी नास्ति। उच्यते। हिंसा हिंस्यमानस्य महानपकारः प्राण-वियोगेन पुत्रदारधनादिवियोगेन वा सर्वानर्थोत्पत्तेर्दं कृतस्य वा नरकादिफलविपाकस्य प्रत्यासत्तेः। यन्ने तु इतानामुपकारो नापकारः नरकादिफलानुत्पत्तेः॥ ३३॥

एतदेवा ह--

मीषध्यः पणवो व्रचास्तिर्यञ्चः पचिणस्तया । यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्युक्तिति पुनः ॥३४॥

मीषध्यो दर्भादयः पणवन्कागादयः हत्ता यूपादयः तिर्यश्चो गवाम्बादयः पत्तिणः कपिश्वलादयः यज्ञाधं यज्ञनिमित्तं निधनं विमागं प्राप्ताः । यद्यपि केवाश्चित्तत्र निधनं नास्ति तथापि या च यावती च पौडा विद्यत इति सा निधनगर्थ्देन लक्षते । प्राप्तवन्ति यान्ति उक्तिमुल्कषं देवगन्धर्वयोनित्वमुत्तरकुर्वादिषु दीर्घायुष्कादि च ॥ ३४ ॥

यावत्यः का विच्छास्त्रे चोदिता शिंगस्ताः मंचिप्य दर्भयति — सभुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतक में शि ।

भनैव पश्रवी हिंखा नान्यचेत्यब्रवीनानुः॥ ३५॥

सध्यकः क्रियाविशेषः तत्र गोवधो विश्वितः यन्नो ज्योति-ष्टोमादिः तत्र पश्चवधो विश्वितः पितरो दैवतानि यत्न कर्मख्यष्टकादौ तत्र त्राषं यदा पितृषां दैवतानां च कर्म सञ्चायन्नादि॥ १५॥

एष्वर्षेषु पश्नन् हिंसन् वेदतत्त्वार्थविह्निः। चात्मानं च पश्रंश्चैव गमयत्युत्तमां गतिम्॥३६॥

एतानद्यीन् साधियतुं पशून् हिंसन् हिज श्रात्मानं पश्रृंशीत्तमां गितं खर्गापवर्गलच्यां गमयित प्रापयित वेदतत्त्वार्धविदिति विदुषीऽधिकारित्वमाह ॥ ३६ ॥

श्विंसाशासमनूदा पुनस्तदुपदेशकानाश्चिपति—

ये चक्रु: क्रूरकर्माणः शास्त्रं हिंसोपदेशकम्।
काते यास्यन्ति नरके नास्तिकेभ्योऽपि नास्तिकाः॥३०॥
ये मन्वादयः क्रूरं निर्घृणं कर्म येवां ते क्रूरकर्माणः श्रास्त्रं
क्रुत्थादि हिंसाया उपदेशकं चक्रुः ते हिंसाशास्त्रकर्तारः क नरके यास्यन्तीति विस्तयः ते चास्तिकाभासा प्रिण नास्तिकेभ्यो-ऽपि नास्तिकाः परमनास्तिका इत्यर्थः॥३०॥

चत्रं चेत्यनेन संवादश्लोकमुपदर्शयति— वरं वराकश्चार्वाको योऽसी प्रकटनास्तिकः । वेदोत्तितापसक्कद्मक्कद्वं रची न जैमिनिः ॥ ३८॥

वरमिति मनागिष्टो जैमिन्यपेचया चार्वाको कीकायितकः वराक इति दश्चरिहतत्वादनुष्कम्पाः। तदेवाद्य। योऽसी प्रकटनास्तिकः। जैमिनिस्तु न वरं कुतः वेदोक्कितापसच्छ्य तापसवेषस्तेन छत्नं रची राचसः प्रयं हि वेदोक्किं मुखे कत्वा सक्तस्माणिवच्चनात् मायावी राचस इव। यचीक्कम्। यच्चां प्रयवः सृष्टा इति तद्वाद्याचं निजनिजकर्भनिर्माण-माद्याक्षेत्रन नानायोनिषु जन्तवः समुत्पद्यन्त इति व्यक्षीकः कस्यचित् सृष्टिवादः यज्ञोऽस्य भूत्ये सर्वस्येति त्वर्थवादः पचपातमात्रं वधोऽवधो इति तृपद्यासपानं वचः यज्ञार्थं विनि-हतानां चीषध्यादीनां पुनक्ष्क्रयमाप्तिः श्रद्धधानभाषितं प्रकत्मस्तानां यज्ञवधमात्रेणोष्क्रितगतिप्राष्ट्रयोगात्। प्रपिच। यज्ञ-हननमात्रेण यदि उष्क्रितगतिप्राष्ट्रयोगात्। प्रपिच। यज्ञ-हननमात्रेण यदि उष्क्रितगतिप्राप्तिस्तर्षः मातापित्रादीनामिप यज्ञे वधः किं न क्रियते।

यदाहु:---

नाहं स्वर्गफलोपभोगढिषितो नाभ्यर्थितस्वं मया सन्तुष्टस्तृणभन्नणेन सततं साधी न युत्तं तव।

⁽१) चड -मालम्।

स्वर्गं यान्ति यदि लया विनिष्ठता यज्ञे भ्रुवं प्राचिनी
यज्ञं किंन करोबि माष्ट्रिपित्रभिः पुत्रेस्तथा बान्धवैः ॥१॥
मधुपर्कादिषु च ष्टिंसा त्रेयसे नान्धतेति स्वच्छन्दभाषितं, को ष्टि
विश्रेषो ष्टिंसाया येनेका त्रेयस्करी नान्धेति। पुष्याकानस्व
सर्वाऽपि ष्टिंसा न कर्त्तब्येत्याष्टुः।

यथा —

'सब्बे जीवा वि इच्छंति जीविचं न मरिक्जां। तन्हा पाणिवहं घोरं निमांघा वक्जयंति णम्॥१॥ यसूत्रं-

षात्मानं च पश्चेव गमयत्युत्तमां गितिमिति।
तदितमहासाहसिकादन्यः को वक्तुमहित। घपि नाम पशीरिहंस्तस्याकामनिर्जरयोत्तमगितलाभः संभवेत् दिजस्य तु
निशातकपाणिकाप्रहारपूर्वं सीनिकस्येव निर्देयस्य हिंसतः
कथसुत्तमगितसंभावनाऽपि स्थात्॥ ३८॥

एतदेव विशेषाभिधानपूर्वकसुपसंहरबाह —
देवोपहारव्याजेन यज्ञव्याजेन येऽथवा ।
झिन्त जन्तून् गतप्तृणा घोरां ते यान्ति दुर्गतिम् ॥३८॥
देवा भैरवचण्डिकादयस्तेभ्यः उपहारो बिलः स एव व्याजं छम्म
तेन महानवसीमाघाष्टमीचैवाष्टमीनमसितकादिषु देवपूजाच्छमः

⁽१) सर्वे जीवा ऋषि इ.च्छन्ति जीवितुं न मर्तुम् । तक्षात् प्राचित्रभं घोरं निर्धन्या तर्जयन्ति ॥ १ ॥

ना ये जन्तुघातं कुर्वन्ति ये च यज्ञव्याजेन गतष्टणा निर्देयास्ते घोरां रौद्रां दुर्गतं नरकादिलचणां यान्ति प्रत्न देवोपहारव्याजे-निति विशेषाभिधानं यज्ञव्याजेनीत्युपसंहारः प्रिष् च निराबाधे धर्मसाधने स्वाधीने साबाधपराधीनधर्मसाधनपरिश्रहो न श्रेयान्।

यदादु:---

पके चेनाधु विन्देत किमधे पर्वतं व्रजीदिति ॥ ३८ ॥

एतदेवा ह-

शमशौलदयामूलं हित्वा धर्मं जगिहतम्। यहो हिंसाऽपि धर्माय जगदे मन्दबुहिभिः॥४०॥

शमः कषायेन्द्रियजयः शीलं सुखभावता दया भूतानुकम्पा एतानि
मूलं कारणं यस्य स तथा धर्मीऽभ्युदयनिः श्रेयसकारणं तं किं
विशिष्टं जगिदतं, हिला उपेच्य शमशीलादीनि धर्मसाधनान्युपेच्येत्यर्थः, भन्नो इति विद्याये हिंसा भपि धर्मसाधनविहर्भूता धर्मसाधनत्वेन मन्द्रबुदिभिक्ता सर्वजनप्रसिद्यानि शमशीलादीनि
धर्मसाधनान्युपेच्य भधर्मसाधनमपि हिंसां धर्मसाधनत्वेन प्रतिपादयतां परेषां व्यक्तेव मन्द्रबुद्धिता। एवं तावक्रोभमूला
शान्त्यर्थो कुलक्रमायाता यज्ञनिमित्ता देवोपहारहेतुका च हिंसा
प्रतिविद्या॥ ४०॥

विद्धनिमित्ता भवशिष्यते तां प्रति निषेधितुं परणासीयां षट्श्रोजीमनुबदति— इविर्यिचिरात्राय यचानन्त्याय कल्पते । पित्रस्थो विधिवद्दत्तं तत्प्रवच्यास्यशेषतः ॥ ४१ ॥ चिररात्रग्रन्दो दीर्घकालवचनः यचानन्त्याय क्षेनचिदविषा दीर्घ-कालद्वित्रजीयतं केनचिदनन्तेव तदुभयं प्रवक्षामि ॥ ४१ ॥

तिलेवीं हियवैर्माषैरिक्क मूंलफ लेन वा।
दत्तेन मासं प्रीयन्ते विधिवत्यितरो न्हणाम् ॥४२॥
तिलादिग्रहणं नेतरपरिसंस्थानार्धमिष तृपात्तानां फलविशेषप्रदर्भनार्थम्। एतैर्विधिवहत्तैः पितरो मासं प्रीयन्ते ॥ ४२ ॥

ही मासी मत्खमांसिन चीन् मासान् हारिणेन तु। चीरभेणाय चतुरः शाकुनेनेह पञ्च तु॥ ४३॥

मस्याः पाठीनकाद्याः, इरिषा सगाः, घौरभा नेषाः, प्रकुनय षारस्यकुकुटाद्याः ॥ ४२ ॥

षस्मासांश्कागमांसन पार्षतेन सप्त वें।
पष्टावेचस्य मांसन रीरवेच नवेव तु॥ ४४ ॥
हागञ्हगलः, प्रवतेषकरवो सगजातिविशेषवचनाः ॥ ४४ ॥
दशमासांस्तु त्रप्यन्ति वराष्ट्रमिष्ठवामिषैः।
गणकूर्मयोभींसन मासानकादगैव तु॥ ४५॥
वराष्ट्र पारस्वगूकरः॥ ४५॥

संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन तु ।
वाधींणसस्य मांसेन तृप्तिर्दादशवार्षिकी ॥ ४६ ॥
युतानुमितयोः युतसंबश्यस्य बलीयस्वाद्रव्येन पयसा पायसेन च
संबश्यो न मांसेन प्राक्षरणिकेन, श्रन्ये तु व्याख्यानयन्ति मांसेन
गव्येन पयसा पायसेन वा पयसो विकारः पायसं दथ्यादि पयःसंस्कृते लोदने प्रसिद्धिः वाधींणसो अरच्छागः यस्य पिबतो जलं
वीणि स्थर्मना जिल्ला कर्णी च ॥

यदाह--

तिपिनं सिन्द्रियचीणं खेतं वहमजापितम्।
वाधीं वसं तुतं प्राइयोचिकाः पित्कर्मस् ॥१॥ ४६॥
पित्वनिमित्ति इंसोपदेशकं शासमनूष तदुपदिष्टां हिंसां दूषयति—

द्रति स्मृत्यनुसारेण पितृणां तर्पणाय या।

मृद्धैर्विधीयते हिंसा साऽपि दुर्गतिहेतवे॥ ४०॥
दित पूर्वीका या स्मृतिधेमें संहिता तस्ता अनुसारेणालस्वनेन
पितरः पितुवेखाः।

यक्षुति:—

पिने पितामशाय प्रियतामशाय पिष्छं निर्वेपेदिति ।
तेवां तर्पचाय त्राये मूटैरविचारकैयो शिंसा विधीयते सापि न नेवलं मांसलोभादिनिमित्ता दुर्गतिहेतवे नरकाय न हि खेल्पाऽपि काचिशिसा न नरकादिनिमन्धनं यत्तु पिद्धत्वतिप्रपञ्चवर्षनं तसुन्ध बुहिपतारणमात्रं न हि तिल बीचादिभिर्मे स्थमांसादिभिर्वा परास्तां पितृणां तृतिकत्पदाते।

यदाच ---

स्तानामपि जन्तुनां यदि स्तिभेवेदि ह।

निर्वाणस्य प्रदीपस्य स्नेष्ठः संवर्षयेच्छिखाम् ॥ १ ॥ इति न केवलं हिंसा दुर्गतिहेतुरेव किंतु हिंस्यमानैर्नेन्तुभिदिरोध-निवस्थनत्वेन स्वस्थापि इहासुत्र च हिंसाहेतुतया भयहेतुः ॥४०॥

षिस्तस्य तु सर्वजीवाभयदानशी खस्य न कुतीऽपि
भयमस्तीत्वाइ—

यो भूतेष्वभयं दद्याहूतेभ्यस्तस्य नो भयम्। याद्यग्वितीर्यते दानं ताद्यगासाद्यते फलम्॥ ४८॥

खष्टम् ॥ ४८ ॥

एवं ताविश्वंसापराणां मनुष्याणां नरकादि श्विंसाफलमभिश्वितं सुराणामपि श्विंसकानां जुगुसनीयचरितानां मूटजनप्रसिद्धं पूज्यत्वं परिदेवयते—

कोदग्डदग्डचक्रासिश्लाशिक्ताधराः सुराः । हिंसका अपि हा कष्टं पूज्यन्ते देवताधिया ॥४८॥ हा कष्टमित्यतिश्यनिवेदे हिंसका अपि रुद्रप्रस्तयः सराः प्राक्ते- अनैः पूज्यन्ते विविधपुष्पोपहारादिभिरचीन्ते ते च यथाकयिद- भ्यचीतां नाम केवलं देवताबुहिस्तव विरुद्धा हत्याह देवताधिया हिंसकले विशेषणहारेण हेतुसाह कीदण्डदण्डचक्रासिश्लशक्ति-

धरा इति कोदण्डादिधरत्वाश्चिमकाः श्विंसकत्वमन्तरेण कोदण्डा-दीनां धारयितुमयुक्तत्वात् कोदण्डधरः शङ्करः दण्डधरो यमः चक्रासिधरो विण्युः शूलधरी शिवी शक्तिधरः कुमारः उप-लक्षणमन्येवां शस्त्राणां श्रस्त्रधराणां च ॥ ४८ ॥

एवं प्रपचतो हिंसां प्रतिविध्य तहिपचभूतमहिंसाव्रतं स्रोकहयेन स्तीति—

मातेव सर्वभूतानामहिंसा हितकारिणी।
चहिंसैव हि संसारमरावस्ततसारिणः॥ ५०॥
चहिंसा दुःखदावाग्निप्रावृषेण्यघनावली।
भवभमितगार्त्तानामहिंसा परमीषधी॥ ५१॥
स्वष्टम्॥ ५०॥ ५१॥

पहिंसावतस्य फलमाह— दीर्घमायुः परं क्रपमारोग्यं स्नाघनीयता ।

श्रिष्टिंसायाः प्रालं सर्वं किमन्यत्कामदैव सा॥५२॥
श्रिष्टिंसायरो हि परेषामायुर्वे चेयत्र गुरूपमेव जन्मान्तरे दीर्घायुर्धं लभते तथैव पररूपमिवनाथयन् प्रक्तष्टं रूपमाप्नोति तथैव चास्तास्यहेतुं हिंसां परिहरन् परमस्तास्यरूपमारोग्यं लभते सर्वभूताभयपदय तभ्य श्राह्मनः श्राधनीयतामञ्जते एतत्सर्व-महिंसायाः प्रसं कियहा शृङ्गशाहिकया वक्तं शकाते। इत्याह किमन्यत्कामदैव सा यद्यत्कामयते तक्तस्त्रे ददाति चपलचण्मतद-कामितस्थापि स्वर्गापवर्गादेः प्रसस्य दानात्।

प्रवासरे स्रोक:--

हेमाद्रिः पर्वतानां हरिरस्तभुजां चक्रवर्त्ती नराणां गीतांगुर्ज्वीतिषां खखाब्रवनिब्हां चक्करोचिर्महाणाम् । सिन्धुस्तोयागयानां जिनपतिरसुरामर्च्वमत्वीधिपानां यहत्तहबूतानामधिपतिपदवीं यात्यहिंसा किमन्यत् ॥ १ ॥

उक्तमिंसावतम्॥ ५२॥

भय स्टतव्रतस्यावसरस्तच नासीकविरतिव्रतमन्तरेणोप-पद्यते, न च तत्पसमनुपदर्श्यासीकाहिरतिं कारियतुं शक्यः पर इत्यसीकपसनुपदर्श्य तहिरतिमुपदर्शयति —

मन्मनत्वं काइलत्वं मृक्तत्वं मृखरोगिताम्।
वीच्यासत्यफालं कन्यालीकाद्यसत्यमृत्मृजित्॥५३॥
मन एव मन् यव तन्मन्ननं परस्याप्रतिपादकं वचनं तयोगात्पुरुषोऽ
पि मन्मनस्तस्य भावो मन्मनत्वं १ काइलमव्यक्तवर्धं वचनं
तयोगात्पुरुषोऽपि काइलसस्य भावः काइलत्वं २ मृकोऽवाक्
तस्य भावो मृकत्वं ३ मुखस्य रोगा उपजिद्वादयस्तेऽस्य सन्ति
मुखरोगी तस्य भावो मुखरोगिता ४ एतव्यवमसत्यफ्लं वीच्य
यास्त्रवत्तेनोपलभ्यासत्यं स्थूलासत्यमुक्तिक्तावकः।

यदाइ---

मूका जडास विकला वाग्हीना वाग्शुगुसिताः।
पूतिगन्धमुखासैव जायन्तेऽकृतभाषिषः॥१॥५३॥

यसत्यं च तच कन्याकीकादि वस्त्रमाणम् तदेवा ह-कन्यागोभूम्यलीकानि न्यासाप इरणं तथा । क्टमाच्यं च पञ्चिति स्यूलासत्यान्यकीर्त्तयन्॥५४॥

कन्यालीकं १ गवालीकं २ भूम्यलीकं १ न्यासाप इरणं ४ कूटसा इं च ५ एतानि पञ्च खूजासत्यान्यकीर्त्तयन् जिनाः। तत्र कन्या-विषयमलीनं कम्यालीकं भिन्नकन्यामभिन्नां विपर्ययं वा वदती भवति ; इदं च सर्वस्य कुमारादिश्विपदविषयस्यासीकस्थीप-लचणं १ गवालीकमल्पचीरां बहुचीरां विपर्ययं वा वदतः, इदमपि सर्वचतुष्पद्दविषयस्यालीकस्योपलचणं २ भूम्यलीकं परसलामप्यात्मादिसलां विपर्ययं वा वदतः, इदं च श्रेषपाद-पाद्यपदद्रव्यविषयासीकस्यीपसच्च । भय दिपदचतुष्पदापद-यहणमेव सम्मान जतम्। उच्यते। कन्याद्यलीकानां सोके पतिगर्शितलेन इटलादिति। न्यस्यते रचणायान्यस्मे समर्प्यत इति म्यासः सुवर्षादिः तस्यापहरणमण्लापस्तद्वचनं स्थूलस्था-वाद: इदं चानेनेव विश्वेष पूर्वालीकेश्यो भेदेनीपासं ; कूटसास्थं प्रमाणीकतस्य लच्चामलरादिना कूटं वदतः, यथाइमन साची भस्य च परकीयपापसमर्थकत्वसच्चाविशेषमात्रित्य पूर्वेभ्यो भेदे-नोपन्यासः, एतानि क्तिष्टाश्यससुखलात् स्यूनासत्यानि ॥ ५४ ॥ एतेवां स्यूलालीकत्वे विशेषचदारेण हेतुसुपन्यस्य प्रतिषेधमाह-

> सर्वजोकिविष्ठं यदाहिष्ठ्वसितवातकम्। यहिपच्च पुर्खस्य न वदेत्तदसून्ततम्॥ ५५॥

सर्वजीके विश्वत्वात् कन्यागोभूम्यजीकानि न वदेत् विम्ब-सितचातकत्वान्त्रासापजापं न वदेत् पुष्यस्य धर्मस्य विपचक्योऽ-धर्मस्तं चि वदन् प्रमाणीकतो विवादिभिरभ्यर्थते धर्मे ब्रूया-नाधर्ममिति। इति धर्मविपचलाल्कूटसाच्यं न वदेत्॥ ५५॥

पसत्यस्य फलविगेषमुपदर्भयंस्तत्परिशारमुपदिमति—

पसत्यतो लघीयस्वमसत्याहचनीयता।

पधोगतिरसत्याच तदसत्यं परित्यजीत्॥ ५६॥

लघीयस्वं वचनीयता चासत्यस्यैष्टिकं फलं, प्रधोगतिरामु
पिकम्॥ ५६॥

त्रय भवतु क्रिष्टाग्रयपूर्वस्थासत्यस्य निषेधः, प्रामादिकस्य तुकावात्त्रेत्याष्ट्र—

पसत्यवचनं प्राज्ञः प्रमादेनापि नो वदेत्।

श्रेयांसि येन भज्यन्ते वात्ययेव महाद्रुमाः ॥ ५० ॥ भण्यास्तां क्रिष्टाग्ययपूर्वकमसत्यवचनं, प्रामादिकमप्यज्ञानसंग्रयादि-जनितवचनं न वदेत् येन प्रामादिकेनासत्यवचनेन त्रेयांसि भक्क-सुपयान्ति वात्ययेव महाद्रुमा इति दृष्टान्तः ।

यदाइमेइर्षय:--

'बद्दमिया य कालियाः पचुप्पवसणागए। जसः तुन जायेज्ञा एवसे भंति यो वए॥१॥

 ⁽१) चातीते च काचे प्रत्युत्पद्ममनागते ।
 यमघंतुन जानोसात् एवमेतत् इति नो वहेत् ॥ १ ॥
 क ख ग छ छ छ छ छ।

'मदम्मा य कालिमा प्रमुप्पसम्णागए। जत्य संका भवे तंतु, एवमे मंति चो वए॥२॥ 'मदम्मा य कालिमा प्रमुप्पत्रभणागए। निस्नों कियं भवे जंतु, एवमे मंतु निह्सी॥३॥

एतचासत्यं चतुर्घ। भूतिक्रवो, प्रभूतोज्ञावनं, पर्यान्तरं, गर्चा च। भूतिक्रवो यथा। नास्यात्मा, नास्ति पुर्खं, नास्ति पापं चेत्यादि। प्रभूतोज्ञावनं यथा। सर्वगत प्रात्मा व्यामाकः तन्द्रनमात्रो वा। पर्यान्तरं यथा। गामम्बमभिद्धतः। गर्घा तु तिथा। एका सावद्यव्यापारप्रवर्त्तनी; यथा चेतं क्रषेत्यादि। दितीया प्रत्या; काणं काणमिति वदतः। द्वतीया पाक्रोप-रूपा; यथा घरे वान्धिकनिय द्वादि॥ ५०॥

भितपरिहरणीयत्यमसत्यवचनस्य दर्शयन् पुनरप्यैहिकान् दोषानाङ्च--

पसत्यवचनाद्वैरविषादाप्रत्ययाद्यः ।

प्रादुःषन्ति न के दोषाः कुपथ्याद्याधयो यथा ॥५८॥ वैरं विरोधः, विषादः पश्चासापः, प्रवत्ययोऽविष्वासः। पादि-प्रकृणाद्राजावमानादयो स्टब्सन्ते ॥ ५८॥

⁽१) व्यतीते च काचे प्रत्युत्पचननागते। वतः यक्षा भवेत्ततः एवनेतत् इति नो वहेत्॥ २॥

⁽२) चतीते च काचे प्रस्तुत्तव्यवनगति । निःचक्कितं भवेत्तत्तु त्व निर्देशेत् ॥ १ ॥

^{*} कसागक्र अञ्चला।

पासिषां स्वावादस्य प्रसमाष्ट —
निगोदेष्य्य तिर्येषु तथा नरकवासिषु ।
उत्पद्यन्ते सृषावादप्रसादेन ग्ररीरिणः ॥ ५६ ॥
निगोदा पनन्तकायिका जीवास्तेषु, तिर्येषु गोबसीवर्दन्यायेन
भेषतिर्यग्योनिषु, नरकवासिषु नैरियक्षेषु ॥ ५८ ॥

दरानीं सृषावादपरिचारे प्रन्वयव्यतिरेकाभ्यां कालिकाचार्यवस्रराजी दृष्टान्तावाच — ब्रूयाद्वियोपरोधाद्वा नासत्यं कालिकार्यवत् । यस्तु ब्रूते स नरकं प्रयाति वसुराजवत् ॥ ६० ॥ भिया मरणादिभयेन, उपरोधाद्दाचिष्यादसत्यं न ब्रूयात् । यस्तु ब्रूते भियोपरोधाद्वा दत्वचापि संबन्धनीयं, दृष्टाम्ती संप्रदाय-मम्यौ ।

स चायम्।

सस्ति भूरमणीमीलिमणिलुरमणी पुरी।
यथार्थनामा ततासीज्जितगतुर्महीपतिः ॥१॥
दन्ने तामधेयेन ब्राह्मणी तत्र विश्वता।
दत्त दत्यभिधानेन तस्याः पुत्रो बभूव च ॥२॥
दत्ती नितान्तदुर्दान्ती खूतमद्यप्रियः सदा।
सेवितुं तं महीपालं प्रवृत्ती वर्त्तनेच्छ्या॥३॥
राह्मा प्रधानीचक्रेऽसी छायावत्यारिपार्श्वतः।
सारोह्णयोपसर्पन्या विववक्षेरिप दुमः॥४॥

विभेद्य प्रकृतीरेष राजानं निर्वासयत्। पापामानः वापोतास स्वात्रयोच्छेददायिनः ॥ ५ ॥ तस्य राम्नो दुराबाऽसी राज्ये स्वयमुपाविशत्। चुद्रः पादान्तदानेऽपि क्रामखुच्छीर्षकावधि ॥ ६ ॥ पश्चिंसीलाटान् यज्ञानज्ञी धर्मधिया व्यधात्। भूमैर्मिलनयन् विम्बं समूर्त्तेरिव पातकः। । ७ ॥ विद्वरन् वालिकार्याख्यसाचार्यस्तस्य मातुनः। तवाजगाम भगवानङ्गानिव संयम: ॥ ८ ॥ तसमीपमनापिसुर्देत्तो मिष्यालमोहितः। भत्यधं प्रार्थितो माता मातुनाभ्यर्षमाययौ ॥ ८ ॥ मत्तीयत्तप्रमत्ताभी दत्तीऽप्रक्कत्तमुद्गटम्। याचार्य यदि जानासि यज्ञानां ब्रुहि किं फलम् ॥ १० ॥ उवाच कालिकाचार्यो धर्मे एच्छसि तच्छ्या। नत्परस्य न कर्त्तश्चं यदादिप्रियमात्मनः ॥ ११॥ ननु यज्ञफलं एच्छामीति दत्तोदिते पुनः। स्रिक्वे न हिंसादि श्रेयसे किन्तु पामने ॥ १२ ॥ पुनस्तदेव साचेपं प्रष्टो दत्तेन दुर्धिया। ससीष्ठवसुवाचार्यी यज्ञानां बरकः फलम् ॥ १३॥ दत्तः मुद्दोऽभ्यधादैविमिष्ठ कः प्रत्ययो वद । भार्योऽप्यूचे म्बकुकारां त्वं पच्चचे ससमेऽइनि ॥ १४ ॥ दत्तः कोषादुदस्तभूरक्णीक्षतलोचनः। भूताविष्ट द्वोवाच प्रत्ययोऽत्रापि को ननु ॥ १५॥

भवीचे कालिकार्यीऽपि खकुभीपचनात्प्रः। तिसानेवा इशकसात्ते सुखे विष्ठा प्रवेश्वति ॥ १४ ॥ रोषाद् दत्ती जगादेदं तव खत्यः क्रतः कदा । न कुतोऽपि स्वकाले यां यास्यामीत्यवदस्त्रनि:॥ १०॥ यमुं निरुख दुर्वेडिमिति दत्तेन रोषतः। पादिष्टै: कालिकाचार्यी कर्षे दण्डपूर्वे: ॥ १८॥ षय दत्तात् समुद्दिन्ताः सामन्ताः पापकर्मणः। भाक्तवादां ऋपं तसी दत्तमपीयतुं किस ॥ १८॥ दत्तीऽपि मिक्तिसास्यी निसीनी निजवेमानि। कच्छीरवरवस्ती निकुन्त इव कुन्नरः॥ २०॥ स विस्नृतदिनो दैवादागते सप्तमे दिने। विचिनिगेन्तुमारचै राजमार्गीनरचयत् ॥ २१ ॥ तत्रैको मालिकः प्रातर्विधन् पुष्पकरण्डवान्। चक्रे वेगातुरो विष्ठां भीतः पुष्पैः प्यथत्त च ॥ २२ ॥ द्वः।इति इनिषांसि पश्वक्वानिपांसनम्। ंचिन्तयंविति दत्तोऽपि निर्ययौ सादिभिर्वृत:॥ २३॥ एकेन वलाताऽखेन विष्ठोत्चिप्ता खुरेण सा। दत्तस्य प्राविशवास्ये नासत्या 'यमिनां गिरः ॥ २४ ॥ श्रिलास्मालितवसदाः श्रवाङ्गो विमनास्ततः। स सामन्ताननाएच्छा ववले खग्टहं प्रति ॥ २५॥

⁽१) काखगक वृतिनाम्।

नाऽसानान्त्रोऽसुना ज्ञात इति प्रक्तितपूर्वः ।

ग्रहमप्रविश्ववे बहा दभे संगीरिव ॥ २६ ॥

भय प्रकाशयंद्रोजी निजं राजा चिरन्तनः ।

प्रातुरासीत्तदानीं सं निशात्यय इवार्यमा ॥ २० ॥

सीऽहिः करण्डनिर्यात इव दूरं ज्वलन् कुधा ।

दत्तं खकुभगं नरककुभगामिव तदाऽचिपत् ॥ २८ ॥

भधदात्ताप्यमानायां कुभगं खानीऽन्तरा खिताः ।

दत्तं विदद्वः परमाधार्मिका इव नारकम् ॥ २८ ॥

निरस्तभूपालभयोपरोधः श्रीकालिकाचार्य इवैवसुचैः ।

सत्यव्रतवाणक्रतप्रतिश्रो न जातु भाषेत स्वा मनीषी ॥३०॥

॥ इति कासिकाचार्यदत्तकथानकम् ॥

यस्ति चेदिषु विख्याता नामा यक्तिमती पुरी।
यक्तिमत्याख्यया नद्या नर्मसख्येव योभिता॥१॥
पृष्टीमुकुटकन्यायां तथ्यां तेजीभिरहुतः।
माणिक्यमिव पृष्टीयोऽभिचन्द्रो नामतोऽभवत्॥२॥
स्तुः स्तृतवाक्तस्य वसुरित्यभिधानतः।
यजायत महाबुद्धिः पाण्डोरिव युधिष्ठिरः॥३॥
पार्म्वे चीरकदम्बस्य गुरोः पर्वतकः सुतः।
राजपुत्रो वसुच्छात्रो नारद्यापठंत्रयः॥४॥
सीधोपरि श्यानेषु तेषु पाठत्रमाचिशि।
चारणयमणौ व्योन्ति यान्तावित्यूचतुर्मिषः॥ ५॥

एषामेकतमः खर्गे गमिष्यत्यपरी पुनः। नरकं यास्यतस्तचात्रीवीत्चीरकदम्बकः ॥ ६ ॥ तक्त्वा चिन्तयामास खिनः चौरकदम्बकः। मय्यप्यधापके भिष्यी यास्यती नरतं इहा ॥ ०॥ एभ्यः को यास्त्रति स्वर्गं नरकं की च यास्त्रतः। जिज्ञासुरित्युपाध्यायस्तांचीन् युगपदाज्ञत ॥ ८ ॥ यावपूर्षं समर्प्येवामिकैकं पिष्टकुक्टम्। स जरेडमी तब वध्या यन कीडिप न प्रायति॥ ८॥ वसुपर्वतकौ तत्र गला शुन्धप्रदेशयोः। षामनीनां गतिमिव जन्नतुः पिष्टकुक्टो ॥ १० ॥ महामा नारदस्तव व्रजिला नगराहरि:। स्थिता च विजने देगे दिश: प्रेच्य व्यतक्यत्॥ ११॥ गुरुपादैरदस्तावदादिष्टं वस यस्त्या। वध्योऽयं कुक्टस्तन यम कोऽपि न पश्चति ॥ १२ ॥ चसी प्रखला प्रयास्यमी प्रश्वन्ति खेचरा:। लोकवालास प्रश्नान्त प्रथम्त ज्ञानिनोऽवि च ॥ १३ ॥ नास्येव स्थानमपि तद्यत्र कोऽपि न पग्यति। तात्पर्यं तहुरुगिरां न वध्यः खलु कुक्टः ॥ १४ ॥ गुरुपादा दयावन्तः सदा शिंसापराङ्मुखाः। चस्रायाचां परिचातुमैतवियतमादिशन् ॥ १५ ॥ विस्रखैवमहत्वेव कुकुटं स समाययौ। कुकुटाइनने इतुं गुरोर्व्यन्नपयच तम् ॥ १६ ॥

स्वर्गं यास्त्रत्यसी तावदिति निश्चित्य संस्वजे। गुनगा नारद: खेडात् साधु साध्विति भाविगा ॥ १० ॥ वसुपर्वतकी पशादागत्येवं ग्रागंसतः। निहती कुकुटी तत्र यव कोऽपि न पश्यति ॥ १८ ॥ त्रपद्मतं युवामादावपद्मन् खेचरादय:। कयं इती कुक्टी रे पापावित्यभपद्गुरः ॥ १८ ॥ ततः खेदादुपाध्यायो दध्यौ विध्यातपाठधीः। मुधा मेऽध्यापनक्षेत्री वसुपर्वतयीरभूत्॥ २०॥ गुरूपदेशो हि यद्यापातं परिणमिदिह। भभाभः स्थानभेदेन मुक्तालवचतां व्रजेत्॥ २१॥ प्रियः पर्वतकः पुत्रः पुत्रादम्यधिको वसः। नरकं यास्वतस्तसाहृष्टवानेन किं सम ॥ २२ ॥ निर्वेदादित्युपाध्यायः प्रवच्यामग्रहीत्तदा । तत्पदं पर्वतीऽध्यास्त व्याख्याचणविचचणः ॥ २३ ॥ भूता गुरो: प्रसादेन सर्वगाखिवगारद:। नारद: शारदाश्रोदश्रद्धी: खां भुवं ययी ॥ २४ ॥ वृपचन्द्रोऽभिचन्द्रोऽपि जगाइ समये वतम्। ततवासीहसू राजा वासुदेवसम: त्रिया ॥ २५ ॥ सत्यवादीति स प्राप प्रसिद्धं पृथिवीतले। तां प्रसिविमपि त्रातुं सत्यमेव जगाद सः॥ २६॥ भवैकदा सगयुगा सगाय सगयाजुषा। चिनिपे विशिखो विस्थानितम्बे सोऽन्तरा ऽखलत्॥ २०॥ इषुख्यमनहेतुं स जातुं तत्र ययी ततः। पाकाशस्यटिकशिलामजासीत्पाणिना स्थान् ॥ २८ ॥ स दध्याविति मन्येऽस्यां संकान्तः परतदरन्। भूमिच्छायेव शीतांशी दहशे इरिणी मया ॥ २८ ॥ पाणिसभीं विना नीयं सर्वधाऽप्युपलकाते। भवश्यं तदसी योग्या वसोर्वसमतीपते: ॥ ३०॥ रही व्यञ्जपयदाची गला तां सगयु: शिलाम्। हृष्टी राजाऽपि जग्राइ ददी चास्मै महदनम् ॥ ३१ ॥ स तया घटयामास च्छनं खासनवेदिकाम्। तिक्छिक्पिनोऽघातयच नामीयाः कस्यचिव्पाः ॥ ३२ ॥ तस्यां सिंडासनं वेदी चेदीशस्य निवेशितम्। सत्यप्रभावादाकाशस्यतमित्यव्धकनः ॥ ३३॥ सत्यादि तृष्टाः सानिध्यमस्य कुर्वन्ति देवताः। एवमूर्जिखनी तस्य प्रसिद्धियानिये दिश: ॥ ३४ ॥ तया प्रसिद्धा राजानी भीतास्तस्य वर्षं 'गता:। सत्या वा यदि वा मिथ्या प्रसिद्धिर्जीयनी तृषाम ॥ ३५ ॥ पागाच नारदोऽन्येयुस्ततसैचिष्ट पर्वतम्। व्याख्यानयन्तमृग्वेदं शिषाचां श्रेमुषीनुषाम् ॥ ३६ ॥ षजैर्यष्टव्यमित्यस्मिन् मेषैरित्युपदेशकम्। बभावे नारदो भातभीन्या किमिदसुचिते॥ ३०॥

⁽१) कगक बबुः।

विवार्षिकाणि धान्धानि न हि जायन्त इत्यजाः। व्याख्याता गुरुणाऽस्माकं व्यस्मार्घीः केन हेत्ना ॥ २८ ॥ ततः पर्वतकोऽवादौदिः तातेन नीदितम्। उदिताः किं लजा मेषास्त्रधैवोत्ता निचण्ट्यु ॥ ३८ ॥ जगाद नारदोऽप्येवं शब्दानामर्थकत्पना । मुख्या गौषी च तत्रेष्ठ गौषीं गुरुरची कथत्॥ ४०॥ गुरुवेमीपदेष्टैव श्वतिर्वमीतिकौव च। इयमप्यन्ययाक्षविमात मा पापमज्य ॥ ४१ ॥ 'साचिपं पर्धतोऽजल्पदजाकोषान् गुक्रजेगी। गुरूपदेशगब्दार्थीक्षरनात्तर्ममर्जीस ॥ ४२ ॥ मिष्याभिमानवाची हि न खुर्दच्छभयानुषाम्। खपचर्यापने तेन जिह्नाच्छेदः पणोऽस्त नः ॥ ४३ ॥ प्रमाणमुभयोरत्र सङ्घाध्यायी वसुर्नृपः। नारदः रप्रतिपेदे तद चोभः सत्यभाषिणाम् ॥ ४४ ॥ रइः पर्वतमृत्रेश्या ग्रहकर्मरताऽप्यहम्। प्रजास्त्रिवार्षिकं धाम्यमित्यत्रीषं भवत्पितः ॥ ४५ ॥ जिह्नाच्छेदं पषेऽकार्षीर्यद्दपीत्तदंसामातम्। भविस्थ विधातारो भवन्ति विपदां पदम् ॥ ४६ ॥ भवदत्पर्वतोऽप्येवं क्वतं तावदिदं मया। यद्या तथा क्षतस्थास्य करणं न हि विदाते॥ ४०॥

⁽१) कग च क उसाचेपः।

⁽१) खतदरीचको न।

साऽष पर्वतकापायपीड्या द्वदि प्रस्थिता । वसुराजमुपेयाय पुत्राघें कियते न किम् ॥ ४८ ॥ दृष्टः चीरकदम्बोद्ध यदम्ब त्वमसीचिता। किं करोमि प्रयच्छामि किं चेत्यभिद्धे वसः॥ ४८॥ साऽवादीहीयतां पुत्रभिचा मद्यं महीपते। धमधानी: किसनीमें विना प्रवेष पुत्रक ॥ ५० ॥ वसुक्चे सम सातः पास्यः पूच्यस पर्वतः । गुक्वहुक्पुचेऽपि वर्त्तितव्यमिति युतेः'॥ ५१॥ कस्याद्य पत्रमुत्चिप्तं कालेनाकालरोषिणा। को जिघांसुर्भातरं मे ब्रू हि मातः किमातुरा ॥ ५२ ॥ प्रज्ञव्यास्थानवृत्तान्तं स्वपुत्रस्य पणं चतम्। लं प्रमाणीकतयासीत्याख्यायार्घयते स्म सा ॥ ५३ ॥ क्षुर्वाणो रचणं भातुरजायोषानुदीरय। प्राचैरप्युपकुर्विन्त महान्तः किं पुनर्गिरा॥ ५८॥ भवीचत वसुर्मातर्मिया वन्मि वनः कथम्। प्राचात्ययेऽपि ग्रंसन्ति नासत्यं सत्यभाषिणः ॥ ५५ ॥ भन्यदप्यभिधातव्यं नासत्यं पापभीवणा। गुरुवागन्यवाकारे कूटसास्ये च का कथा ॥ ५६ ॥ 'वधं कुर गुरी: स्नुं यहा सत्यव्रतायहम्। तया सरीषमित्युक्तस्तद्दचीऽमंस्त पार्थिवः ॥ ५०॥

⁽१) च च श्रुतिः।

⁽२) यागचळड बहरूर।

ततः प्रमुदिता चीरकदम्बग्ट हिणी ययौ। माजग्मत्य विद्वांसी तत नारदपर्वती॥ ५८॥ सभायाममिलन् सभ्या माध्यस्यगुषशासिनः। वादिनोः सदसद्वादचीरनीरसितच्छदाः ॥ ५८ ॥ चाकागस्पटिकशिलावेदिसिंहासनं वसः। सभापतिरन्तञ्चले नभस्तन्तिवीड्पः॥ ६०॥ ततो निजनिजव्यास्थापचं नारदपदेती। कथयामासत्राज्ञे सत्यं मूचीति भाषिणी॥ ६१॥ विप्रहर्षेरयोचे स विवादस्वयि तिष्ठते। प्रमाणमनयोः साची लं रोदस्वोरिवार्यमा ॥ ६२ ॥ घटप्रभृतिदिव्यानि वर्तन्ते इन्त सत्यतः। मत्याद्वषित पर्जन्यः सत्यात्मिद्वान्त देवताः ॥ ६३ ॥ खयैव सत्ये लोकोऽयं स्थाप्यते पृथिवीपते। त्वामिन्रार्थे बूमने किं ब्रूहि सत्यव्रतीचितम् ॥ ६४ ॥ वचोऽश्रुलंब तसाखप्रसिद्धं खां निरस्य च। अजाकोषान् गुरुर्ञाख्यदिति साच्यं वसुर्व्यधात्॥ ६५ ॥ भसत्यवचसा तस्य क्रुदास्तर्वेव देवताः। दल्यामासुराकाशस्प्रिकासनविद्विकाम् ॥ ६६ ॥ वसुर्वसुमतीन। यस्तती वसुमतीतले। पपात सद्यो नरकपातं प्रस्तावयक्रिव ॥ ६० ॥ क्टमासं प्रदातुम्ते खपचस्येव को मुखम्। पखेदिति वसुं निन्दनारदः खास्पदं ययौ ॥ ६८ ॥

देवताभिरसत्योक्तिकुपिताभिर्निपातितः । जगाम घोरं नरकं नरनाथो वसुस्ततः ॥ ६८ ॥ यो यः स्तुरुपाविचद्राच्ये तस्यापराधिनः । प्रजन्नदेवतास्तं तं यावदष्टी निपातिताः ॥ ७० ॥

दति वसुन्तपतिरसत्यवाचः फलमाकच्ये जिनोक्तिविद्यकर्षः । क्षयमप्युपरोधतोऽपि जन्ये दन्ततं प्राचितसंघयेऽपि नैव ॥ ७१ ॥ ६० ॥

॥ इति नारदपर्वतक्यानकम् ॥

ंसङ्गो हितं सत्यमिति व्युत्पत्था त्रवितयमि परपीडाकरं वचनमसत्यमेवाहितत्वादिति सत्यमपीटगं

न भाषेतित्या ह —

न सत्यमिष भाषेत परपीडाकारं वच: । लोकिऽपि श्रूयते यस्मात् कीशिको नरकं गतः ॥६१॥ सत्यमित्रयं लोकक्का परमार्थतस्तु परपीडाकरतादसत्यमैवे-

चवार्धे जीकिकं द्रष्टान्तमाइ—

लोकेऽपि समयान्तरेऽपि त्रूयते निश्चम्यते परपौडाकरसत्य-भाषवेन कौशिको नरकं गत इति।

कौशिकल संप्रदायगम्य: ; स चायम्—

त्यर्थः, तत्र भाषेतः ; तद्वाषणात्ररकगमनश्रतेः।

त्रासीतात्यधनः कोऽपि कीशिको नाम तापसः। भपास्य यामसंवासमनुगङ्गसुवास सः॥१॥ कन्दमूलफलाहारो निर्ममो निष्परिग्रहः। सत्यवादितया प्राप प्रसित्तिं परमामसी॥ २॥ मुषिला पाममन्येयुर्देखवस्तस्य पर्यतः। भात्रमं निकवा जग्मुर्वनं बिलमिवीरगाः॥ २॥ तेषामनुपदिनलु याम्याः पप्रच्छ्रेत्य तम्। सत्यवाचिसि तदूष्टि तस्तराः कुत्र वव्रजुः ॥ ४॥ धर्मतत्त्वानभिज्ञोऽय वययामास कौशिकः। 'घने तक्निकुन्नेऽस्मिन् दस्यवः प्राविशक्तित ॥ ५ ॥ तस्रोपदेशातात्रश्च ग्रामीणाः शस्त्रपाणयः। वनं प्रविष्य निर्जेन्नुर्दस्यून् व्याधा सगानिव ॥ ६ ॥ ऋतमप्यवृतं परव्ययाकरणेनेदमुदीरयन् वचः। परिपूर्य निजायुक्त्वणं नरकं कौशिकतापसी ययौ॥०॥६१॥ प्रत्यमध्यसत्यवचनं प्रतिविधितं महदसत्यं वदतः परिदेवयते---चल्पादिष सृषावादाद्रीरवादिषु संभव:। चन्यया वदतां जैनीं वाचं त्वष्ट का गति: ॥६२॥

चलादयैडिकार्धविषयत्वेन स्तोकादिए सृषावादादसत्या-द्रीरवादिषु रीरवमद्वारीरवप्रश्वतिषु नरकवासेषु संभव उत्पत्तिः स्रोकप्रसिद्धत्वाद्वीरवयद्वणम्। चन्यया सर्वनरकेष्टित्युच्येत। चन्यया

^(!) चड वने।

विवरीतार्थतया जैनीं वाचं वदतामतीवासत्यवादिनां कुतीर्थि-कानां स्वयूष्यानां च निष्कवादीनां का गतिनैरकादप्यधिका तेषां गति: प्राप्नोतीत्यर्थ:। घडहित खेदे भगक्यप्रतीकाराः परिदेवनीयाः खस्वेत इति ।

यदाइ--

'महह सयलकपावाहिं वितहपत्रवणमणुमवि दुरंतं।
ज मिरिश्भवतदिष्णयदुक्षयभवसेसलेसवसा ॥ १ ॥
'सुरयुगुणोवि तित्यंकरोवि तिह्यणभतुक्षमक्षोवि ।
गोवाहिं वि बहुसो कभत्यिभो तिजयपहुत्तंसि ॥ २ ॥
'योगोबंभणभूणंतगा वि केवि इह दिठपहाराई ।
बहुपावावि पसिहा सिहा किर तन्म चेव भवे ॥३॥६२॥
पसत्यवादिनो निन्दिला सत्यवादिन: स्तौति—

ज्ञानचारित्रयोर्मूलं सत्यमेव वदन्ति ये। धानौ पविनौ क्रियते तेषां चरणरेगुभि: ॥ ६३॥ ज्ञानचारित्रयोर्ज्ञानक्रिययोर्मूलं कारणं यसत्यं तदेव वदन्ति ये

⁽१) अइइ सकतान्यपापेभ्यो वितयप्रशायनमप्दिष दुरन्तम् । यन्त्रारीचिभवतद्जितदुन्सृतावयेषवेषवयात् ॥ १ ॥

⁽२) सुरस्तुतगुचोऽपि तीर्घं बरोऽपि लिसवनातस्यमद्वोऽपि । गोपादिभिरपि वस्त्रमः कर्दाचंतः लिजगतासस्यमसि ॥ २ ॥

⁽१) व्हीनोत्राञ्चाचभ्रूचान्तका अपि केऽपि हटम्हार्वाहवः। बञ्चपामा अपि प्रसिद्धाः सिद्धाः किस तक्तिकेव भने॥ १॥

ज्ञानचारित्रयहणं "नाणिकिरिया हिं मीक्ती' इति भगवद्वाष्ट्रकार-वचनानुवादाधं ज्ञानयहणेन दर्भनमप्याचिप्यते। दर्भनमन्तरेण ज्ञानस्याज्ञानत्वात्। मिष्यादृष्टि हिं सत्त्वासत्त्वे वैपरीत्येन जानाति, भवहेतुष तज्ज्ञानं यदृष्क्या चार्थनिरपेच मुपलभ्यते न च ज्ञान-फलमस्य।

यदाइ--

'सयसयविवेसणाची भवहेचं जद्दक्त्वचीपलंभाची। नाणफलाभावाची मिक्कदिद्विस चखाणं॥१॥ स्रष्टमन्यत्॥ ६३॥

> सत्यवादिनामे डिकमिप प्रभावं दर्भयति— यलीकं ये न भाषनी सत्यव्रतमहाधना: । नापराडुमलं तैभ्यो भूतप्रेतोरगादय: ॥ ६४ ॥

भूता भूतोपलचिता व्यन्तराः प्रेताः पितरो ये खसंबन्धिनो मनुचान् पौडयन्ति भूतप्रेतप्रइणं भुवनपत्यादीनामुपलचणार्थम् । उरगा सर्पाः प्रादिग्रङ्गाद् व्याघ्रादीनां परिग्रङः।

त्रवासरे श्लोकाः —

मिं सापयसः पालिभूतान्यन्यव्रतानि यत्। सत्यभक्तात्पालिभक्केऽनर्गलं विश्ववेत तत्॥ १॥

⁽१) "जानिकयाभ्यां मोचः"

⁽२) सर्धर्वियेषचात् भवद्वेत्वर्यडच्छोपसम्भात् । ज्ञानफराभावान् सिच्छाडटेरज्ञानस् ॥ १॥

सत्यमेव वदेलाचः सर्वभूतोपकारकम्। यदा तिष्ठेत् समालम्बा मीनं सर्वार्थसाधकम् ॥ २॥ पृष्टेनापि न वस्तव्यं वची वैरस्य कारणम्। मर्माविकार्वा प्रशासदं शिस्त्रमस्यकम् ॥ २ ॥ धर्मध्वंसे क्रियालोपे खसिदान्तार्धविष्ठवे । ष्पप्रष्टेनापि स्रक्षेन वक्तव्यं तं निषेधितुम् ॥ ४ ॥ चार्वाकै: कौलिकेर्विप्रै: सीगतै: पाचराव्रिकै:। ष्मसः सेनेव विकास्य जगदेति द्वांस्वतम् ॥ ५ ॥ षद्दो पुरजलस्रोत:सोदरं तसुखोदरम्। नि:सरन्ति यती वाच: पद्माकुलजलीपमा: ॥ ६ ॥ दावानलेन ञ्चलता परिष्ठुष्टोऽपि पादपः। सान्द्रीभवति सोकोऽयं नतु दुर्वचनांग्निना ॥ ७ ॥ चन्दनं चन्द्रिकाचन्द्रमणयो मौत्तिकस्रजः। षाञ्चादयम्ति न तथा यथा वाक् स्तृता तृषाम् ॥ ८ ॥ शिखी सुन्छी जटी नम्बधीवरी यस्तपस्यति । सोऽपि मिष्या यदि ब्रृते निन्दाः स्थादन्यजादपि ॥ ८॥ एक वासत्यजं पावं पापं नि:शेषमन्यतः। द्वयोसुलाविष्टतयोराद्यमेवातिरिचाते॥ १०॥ पारदारिकदस्यूनामस्ति काचित्रतिक्रिया। भसत्यवादिन: पुंस: प्रतीकारी न विद्यते॥ ११॥ कुर्वन्ति देवा पपि पचपातं नरेखरा: शासनमुद्दहन्ति ॥

शीतीभवन्ति ज्वलनादयी य-त्तत् सत्यवाचां फलमामनन्ति ॥ १२॥

इति दितीयं व्रतम्॥ ६४॥

इदानीं त्रतीयमस्तेयव्रतमुच्यते । तत्रापि फलानुपदर्शनेन न स्तेयानिवर्त्तत इति फलोपदर्शपूर्वं स्तेयनिवृत्तिमाइ—

दीर्भाग्यं प्रेष्यतां दास्यमङ्गक्केदं दिर्द्रताम्। यदत्तात्तफलं ज्ञात्वा स्यूलस्तेयं विवर्जयेत्॥६५॥

दीर्भाग्यसुद्देजनीयता, प्रेष्यता परकर्मकरत्नं, दास्यसङ्कपातादिना परायसगरीरता, प्रङ्गच्छेदः करचरणादिच्छेदः, दरिद्रता निर्धनत्नं, एतानी हासुत्र चादसादानफलानि ग्रास्त्रतो गुरुसुखाद्वा ग्रात्वा स्थूलं चीरादिव्यपदेशनिबन्धनं स्तेयं विवर्जयेच्छावकः ॥ ६५ ॥

स्यूलस्तेयपरिचारमेव प्रपच्चयति—

पतितं विस्मृतं नष्टं स्थितं स्थापितमाहितम्। अदत्तं नाददीत स्वं परकीयं क्वचित्सुधीः॥ ६६॥

पिततं गच्छतो वाहनादेश्वेष्टं, विस्तृतं कापि सुक्तमिति स्वामिना यत्र स्मर्थ्यते, नष्टं कापि गतमिति स्वामिना यत्र कायते, स्थितं स्वामिपास्त्रं यदवस्थितं, स्थापितं न्यासीकतं, साहितं निधीकतं, तदेवंविधं परकीयं स्वंधनमदत्तं सन्नाददीत काचिह्रव्यचेत्राद्याप-द्यपि सुधी: प्राक्तः ॥ ६६ ॥

ददानीं स्तेयकारिको निन्दति—

भयं लोकः परलोको धर्मी धैयं धृतिर्मतिः।

मुषाता परकीयं खं मुषितं सर्वमप्यदः ॥ ६०॥ परकीयं खं धनं मुणाता प्रपहरता सर्वमप्यद एतत् खं खकीयं मुषितं खग्रन्दखोभयत्र संबन्धात्। किं तदित्याह, प्रयं लोकः प्रयं प्रत्यचेणोपसभ्यमानी लोक इदं जन्मेत्यर्थः, परलोको जन्मान्तरं, धर्मः पुण्यं, धैर्यमापत्ख्यवैक्कव्यं, धृतिः खास्यं, मितः क्रत्याक्रत्यविकेतः ॥ ६०॥

षय शिंसाकारिभ्योऽपि स्तेयकारिणो बहुदोषलमाह —

एकस्यैकं चणं दुःखं मार्यमाणस्य जायते।

सपुचपौचस्य पुनर्यावज्जीवं दृते धने ॥ ६८॥

एकस्य नतु बहुनां, एकं चणं नतु बहुकालं, दुःखमसातं, मार्यमाणस्य शिंस्यमानस्य, स्तेयकारिणा लपश्चते धने परस्य सपुत्रपौगस्य नलेकस्य, यावज्जीवं नलेकं चणं, दुःखं जायत दति
संबन्धः ॥ ६८॥

चौर्य्यपापद्रमस्येष्ठ वधबन्धादिकं फलम्। चौर्य्यपापद्रमस्येष्ठ वधबन्धादिकं फलम्। जायते परलोकी तु फलं नरकविदना॥ ६८॥ चौर्यात्पापं तदेव दुमस्तस्येष्ठ लोके फलं वधबन्धादिकं, परलोके तु फलं नरकभाविनी विदना॥ ६८॥ भव कदाचित्रमादात् स्तेयकारी तृपतिभिने निग्रह्मेत तथा-प्यसास्यस्यस्यामेहिकं फसमवस्थितमेव इत्याह —

दिवसे वा रजन्यां वा खप्ने वा जागरेऽपि वा।
सग्रत्य द्रव चौर्येण नैति खास्यं ज्ञानरः क्वचित्॥००॥
खप्नः खापः, जागरो निद्राया मभावः, चौर्येण हेतुना क्वचिदिप स्थाने॥ ००॥

न नेवलं स्तियकर्तुः स्वास्त्याभाव एव किन्तु बस्विभः परित्यागोऽपीत्याइ —

मित्रपुत्रकलत्राणि भातरः पितरोऽपि हि। संसजन्ति चणमपि न स्नेच्छैरिव तस्करैः ॥०१॥

पिता जनकः पित्रतुष्याः पितरः पिता च पितर् पितरः न संसजन्ति न मिलन्ति पापभयात्।

यदाद्य:-

ब्रह्महत्या सुरापाणं स्तेयं गुर्वक्रनागमः । महान्ति पातकान्याहुस्तक्षंसर्गं च पश्चमम् ॥ १ ॥ राजदण्डभयादा ।

यदाद्य:---

चौरबीरापको मन्त्री भेदज्ञः काणकक्रयी। स्थानदो भक्तदंबैव चौरः सप्तविधः स्मृतः॥१॥ तस्करैरिति। तदेव चौर्यं कुर्वन्तीत्येवंशीलास्तस्करास्तैः॥०१॥ स्तेयप्रवृत्तानां तिविवत्तानां च दीषान् गुणांच प्रत्येकं दृष्टात्तद्वारेणाद्य —

संबन्धि निष्टद्वीत चौर्यानािश्डकवन्नृषैः। चौरोऽपि त्यत्तचौर्धः स्थात्त्वर्गभागीिहणेयवत्॥७२॥

दृष्टानाह्यमपि संप्रदायगम्यं सचायम् —

पलसमध्यमभोधिरिवाभी बहुरत्रभू:। श्रस्ती इ पाटली पुत्रं नाम गी डेषु पत्तनम् ॥ १ ॥ कलाकलापनिलयः साइसस्यैकमन्दिरम्। राजपुत्रो मूलदेवस्तत मूलं धियामभूत्॥ २॥ स भूर्त्तविद्यैक धवः क्षपणानायबान्धवः। कूटचेष्टामधुरिषू क्पनावस्थममाथः॥ ३॥ चीरे चीर: साधी साधवेक्रो वक्र ऋजाहजु:। याम्ये पाम्यश्लेकी च्हेकी विटे विटी भटे भटः ॥ ४ ॥ द्यूतकारी द्यूतकारी वार्त्तिक वार्त्तिक सः। तलालं स्फटिकाश्मेव जयाच परक्पताम्॥ ५॥ चित्रैः कीतृइलैस्तत्र लोकं विस्नाययवसी । विद्याधर रव खेरं चचार चतुरायणी: ॥ ६ ॥ ब्रुतैकव्यसनायितदोषात्पिताऽपमानितः। चुसत्पुरश्रीजियन्यासुक्तियन्यां जगाम सः॥०॥ गुलिकाया: प्रयोगिष स भूत्वा कुन्नवामन: । पौरान् विस्नाययंस्तव कलाभिः स्थातिमासदत्॥ ८॥ तवासीद्रपनावस्यकन।विज्ञानकीगर्नै:। दत्तवपा रतेर्देवदत्तेति गणिकोत्तमा ॥ ८ ॥ गुण: कलावतां यो यः प्रक्रष्टा तत्र तत्र सा। के काया रक्ताने तस्याः प्रतिच्छे को न की अप्यभूत ॥ १०॥ मूलदेवस्तराखाः चीभाधं तहहान्तिके। प्रभाते गातुमारेभे प्रत्यच इव तुम्ब्कः ॥ ११ ॥ त्राकर्षं देवदत्ताऽपि कोऽयेष मध्रो ध्वनिः। कस्येति विस्रायाद्वास्याऽन्वेषयामास तं बह्यः ॥ १२ ॥ श्रशंसागत्य सा देवि गन्धवः कोऽपि गायति। मूर्खेव वामनः पूर्णेर्गुणैः पुनरवामनः॥ १३ ॥ देवदत्ता ततः कुन्नां माधवीं नाम चेटिकाम्। प्रजिघाय तमान्नातं प्रायो वेग्याः कलाप्रियाः ॥ १४ ॥ सा गला तं जगादेदं महाभाग कलानिधे। देवदत्ता खामिनी में लामाइयित गौरवात्॥ १५॥ मूलदेवोऽवदद्गच्छ नागमिषामि कुनिने। क्षितीवस्वविद्यानां स्ववशी विश्वन को विश्रेत्॥ १६॥ व्याघ्रटली विनोदेच्छः कलाकी ग्रलयोगतः। स पास्पास्य ऋजूचको तां कुकीमझनानवत्॥ १०॥ वपुर्नविमवासाद्य सानन्दा साऽपि चेटिका। उपित्य देवदत्तायै तचेष्टितमचीक यत्॥ १८॥ देवदत्तवरेणेव देवदत्ताऽिं तेन ताम्। कुनामज्जातां वीच्य परमं प्राप विचायम्॥ १८ ॥

देवदत्ता ततोऽवादीदीदृचसुपकारिचम्। निजाङ्गुलिमपि च्छिचा तमिकच्छेकमानय ॥ २०॥ ततो गला समभ्यर्थं चाटुभियत्रोचितै:। चचालि वेग्लाभिसुखं धूर्त्तराजी भुजिष्यया ॥ २१ ॥ तया निर्दिश्यमानाध्वा प्रविवेश निवेशनम्। ततीऽसी टेवटसाया राधाया दव माधवः ॥ २२ ॥ तं वामनमपि प्रेच्य कान्तिलावख्यशालिनम्। सा मन्दाना सुरं इत्तमुपाविशयदासने ॥ २३ ॥ मिथी इटयसंवादिसंसापसभगा ततः। तयी: प्रवहते गोष्ठी तुष्यवैदन्धामालिनी: ॥ २४ ॥ चवाऽऽगात्तव कोऽध्येको वीचाकारः प्रवीचधीः। वीचामवीवदत्तीन देवदत्ताऽतिकौतुकात्॥ २५॥ वन्नवीं वादयन्तं च व्यत्नग्रामश्रुतिखराम्। धुनयन्ती शिरो देवदत्ताऽपि प्रश्यंस तम् ॥ २६ ॥ बिलाऽवदब्यूलदेवोऽप्यन्तो चळविनीजनः। जानात्यत्यन्तनिपुची गुचागुचविवेचनम् ॥ २०॥ सामका साऽप्यवाचैवं किमत्र चृणमस्यहो। केकम्बेकप्रशंसायास्पद्यासं हि शङ्कते॥ २८॥ सीऽप्याचचचे किं चूणमस्ति कापि भवादगाम्। सगर्भा किन्त्वसी तन्त्री किश्व वंश्रोऽपि शस्यवान् ॥ २८ ॥ कद्यं ज्ञायत इत्युक्तस्तयाऽऽदाय स वक्तकीम्। वंशादस्मानमाक्षय तन्त्राः केशमदर्शयत् ॥ ३०॥

समारचय्य तां वीणां ततः खयमवादयत्। त्रोत्रकार्षेषु पीयृषच्छटामिव परिचिपन्॥ ३१॥ देवदत्ताऽब्रवीकैव सामान्यस्यं कलानिधे। नरक्षं प्रपेदाना साचादिस सरस्वती ॥ ३२॥ वीगाकारसरणयोः प्रशिपत्येत्यवीचत । स्वामिन् शिचे भवत्पार्खे वीणावादां प्रसीद मे ॥ ३३ ॥ मुलदेवो जगादैवं सम्यग् जानामि नद्याहम । किन्तु नानामि तान् ये हि सम्यंग् जानन्ति वक्कीम् ॥३४॥ की नाम ते का सन्तीति पृष्टी सी देवदस्त्या। भवोचदस्ति पूर्वस्यां पाटलीपुत्रपत्तनम् ॥ ३५ ॥ तस्मिन् विक्रमसेनोऽस्ति कलाचार्यो मञ्चागुणः। मूलदेवोऽहं च तस्य सदाव्यासन्नसेवकः ॥ ३६ ॥ भनानारे विष्वभूतिनीव्याचार्यः समागतः । साचाइरत इत्यसी कथितो देवदत्तया ॥ ३०॥ मूलदेवीऽप्येवमूचे सत्यमेवायमीहशः। याहिताभि: कलां युचाहमीभिरपि कच्चते॥ ३८॥ विश्वभूतिक्पकान्ते विचारे भारते ततः। तं खर्व इत्यवाचासी बाद्यार्थेचा हि ताह्या: ॥ ३८ ॥ मेने च धूर्त्तराजेन विद्यमान्ययमस्य तत्। ताम्बलालिङ्करणस्वेवास्तर्दर्भयाम्यहम् ॥ ४० ॥ खच्छन्दं भरते तस्य गस्भमानस्य धूर्त्तराट्। पूर्वीवरविरोधास्यं व्यास्थाने दोषमग्रहीत्॥ ४१ ॥

विश्वभूतिस्ततः कोपादसंबद्धमभाषत । प्राज्ञैः प्रष्टा श्रुपाध्यायाञ्कादयस्यज्ञतां वृषा ॥ ४२ ॥ लमवं 'नाटयेर्नाव्याचार्य नारीष नाम्यत:। इसिती मूलदेवेन तृष्णीक: सीऽप्यजायत ॥ ४३ ॥ स्रोराची देवदत्ताऽपि पश्चन्ती वामनं सुदा। उपाध्यायस्य वैलस्यमपनेतमवोचत ॥ ४४ ॥ ददानीमुत्सुका यूयसुपाध्यायाः चषाकारे। परिभाव्याभिधातव्यं प्रश्ने विज्ञानशालिनाम् ॥ ४५ ॥ देवदत्ते वयं यामी नावास्यावसरोऽधना । सम्बद्ध लमपीत्युक्का विष्वभूतिस्ततो ययौ ॥ ४६॥ देवदत्ताऽप्ययादिचदावयो: स्नानहेतवे। **चङ्गमर्दी ^१निर्विमर्दे कियदा**ज्ञ्यतामिति ॥ ४०॥ पजस्प हुर्त्तराजोऽपि व्याहार्वीर्माऽङ्गमदेकम्। सुभ्तू यदातुजानासि तवाभ्यक्षं करोमि तत्॥ ४८॥ किमेतदपि वेकीति तयोक्तः प्रत्युवाच सः। न जानामि स्थितः किन्तु तज्ज्ञानामचमन्तिके॥ ४८॥ भादेशाहेवदसायाः पक्षतेलान्यथाययुः। भभ्यक्नं कर्तुमारीमे स मायावामनस्ततः ॥ ५०॥ सदुमध्यदृढं स्थानीचित्यात् पासिं प्रसारयन् । पक्षे तस्या मूलदेव: संखमहैतमादधे॥ ५१॥

⁽१) खच ख काइमे-।

⁽२) च निर्देगईः।

सर्वार्षेषु कलादास्त्रमीहम्नान्यस्य कस्यचित्। न सामान्योऽयमित्यंच्योः पतित्वा साऽत्रवीदिति ॥ ५२ ॥ गुणैरपि लमास्थातः कोऽप्युलृष्टः पुमानिति । मयूरव्यंसकाकानं किंगोपयसि मायया ॥ ५३ ॥ प्रसीद दर्भयाकानं किं मोचयसि मां सुडु:। भक्तानामुपरोधेन साजात्य्य्देवता प्रवि॥ ५४ ॥ पालच गुलिकामास्याद् कपं तत्परिवर्स्थ सः। प्रतिपेदे निजं कर्प ग्रैन्व इव तत्त्रणात् ॥ ५५ ॥ भनक्रमिव जाताक्रंतं लावखैकसागरम्। उदीच्य विचिता सीचे प्रसादः साधु में कतः ॥ ५६ ॥ तस्यापीयत्वा सानीयं 'पोतं प्रीता स्वपाणिना। पङ्गाभ्यक्षं व्यरचयद्देवदत्ताऽनुरागिणी ॥ ५० ॥ खिलप्रचालनापूर्वं पिष्टातकसुगन्धिभि:। कवीणवारिधाराभिस्तती हावपि सस्ततः॥ ५८॥ देवदृष्ये देवदत्तोपनीते पर्याधत्त स:। सुगम्याक्यानि भोक्यानि बुभुजाते समं च तौ ॥ ५८ ॥ रइ:कलारइस्वानि वयस्वीभूतवीस्तवी:। मियः कथयतोरेकः चणः सुखमयो ययौ ॥ ६०॥ ततः सा व्याजहारैवं हतं मे हृदयं लया। गुणैलीकोत्तरेनीय प्रार्थयेऽइं तथाऽप्यदः॥ ६१॥

⁽१) च पानं प्रीत्या।

यथा पदमकाषीं स्वं ऋदये मम सुन्दर। विद्धीयास्तया नित्यमिस्रवेव निकेतने ॥ ६२ ॥ मूलदेवोऽप्यवाचैवं निर्धनेषु विदेशिषु । पसादमेषु युपाकमनुबन्धी न युन्यते ॥ ६३ ॥ गुषानां पच्चपातेनानुरागी निर्धनेऽपि चेत्। विम्यानामर्जनाभावाल्बं सीदेत्तदाऽखिलम् ॥ ६४ ॥ बभाषे देवदत्ताऽपि को विदेशो भवादशाम्। सर्व: खदेशो गुणिनां तृणां केसरिणामिव ॥ ६५ ॥ चाबानमध्यम्यर्धेर्मूखी हि बहिरेव नः। प्रवेशं न सभलेऽन्तर्विना लां गुरमन्दर ॥ ६६॥ सर्वेषा प्रतिपत्तव्यं लया सुभग मद्दाः। दत्युत्ते मूलदेवेनाप्यामिति जगदे वच: ॥ ६० ॥ ततस क्रीडतो: सेहादिनोदैर्विविधैस्तयो:। राजदा:स्वीऽब्रवीदेत्यागच्छ प्रेचाचचीऽधुना ॥ ६८ ॥ छववेषं मूलदेवं सा नीला राजवेश्मनि। राज्ञीऽग्रे तृत्यमारीभे रक्षेव करणीञ्चलम् ॥ ६८ ॥ ग्रजपाटिश्वसमः पाटप्रकटने पट्ः। मूलदेवोऽपि निपुषोऽवादयत्पटहं ततः ॥ ७० ॥ राजाऽरच्यत वृत्तेन तस्याः करणशासिना। प्रसादं मार्गयेत्यूचे तं च न्यासीचकार सा॥ ७१॥ सा मूलदेवसहिता जगी चानु ननर्त्त च। ददी चास्यै तृपसुष्टः खाङ्कलमं विभूषणम् ॥ ७२ ॥

पाटलीपुत्रराजस्य राजदीवारिकस्ततः। हृष्टो विमलसिंहाख्य इत्युवाच महीपतिम् ॥ ७३ ॥ षयं हि पाटलीपुने मूलदेवस्य धीमतः। कलाप्रकाषीऽसूचा वा न तृतीयस्य कस्यचित्। ७४ ॥ ततः प्रदीयतां देव मूलदेवादननारम्। विज्ञानिष च पहोऽस्यै पताका नर्सकीष च ॥ ७५ ॥ ततो राम्ना तथा दत्ते साऽबवीदेव मे गुबः। ततः प्रसादमादास्ये सामित्रस्याभ्यनुत्रया ॥ ७६ ॥ राजाऽप्यवोचत्तदियं महाभागानुमन्यताम्। भूत्तीऽप्यवादीयहेव यांज्ञापयति तत्तु । ७०॥ मतासारे धूर्त्तराजी वीणां खयमवादयत्। हरमानांसि विखेषां विखायसरिवापरः ॥ ७८ ॥ ततो विमलसिंहेन बभाषे देव खल्वयम्। मूलदेव ऋवक्षो नापरस्थे हभी कला ॥ ७८ ॥ विज्ञानातिशयस्यास्य प्रयोक्ता नापरः कवित्। मूलदेवं विना देव सर्वथाऽसी स एव तत् ॥ ८० ॥ राजा जगाद यद्येवं तदा हो स्वं प्रदर्भय। दर्भने मूलदेवस्य रह्मस्येवास्मि कीतुको ॥ ८१ ॥ गुनिकां मूलदेवोऽपि सुखादाक्षण तत्त्वणात्। व्यक्तीऽभूत्कान्तिमासोघनिर्मुक्त इव चन्द्रमाः ॥ ८२ ॥ साधु जातीऽसि विज्ञानिविति सप्रेमभाषिणा। ततो विमन्तिंहेन धुर्त्तीसंहः म सखजे॥ ८३॥

'षपतमूनदेवोऽपि ऋदेवस्य पदाषयोः। राजाऽपि तं प्रसादेन सगौरवमपूजयत् ॥ ८४ ॥ एवं च देवदत्ताऽपि तिस्मन्त्यनुरागिणी। पुरूरवस्युर्वभीवान्वभूहिषयञं सुखम् ॥ ८५ ॥ भतिष्ठसमूनदेवोऽपि न विना स्तरदेवनम्। भवितव्यं हि केनापि दोषेष गुणिनामपि ॥ ८६ ॥ ययाचे देवदत्ताऽपि धिग् चृतं त्यच्यतामिति । नात्यजयूनदेवस्तत्रक्षतिः खनु दुस्यजा ॥ ८० ॥ तस्यां नगर्यामासीच धनेन धनदोपमः। सार्धवाद्वीऽचली नाम मूर्खाऽपर इव स्नरः ॥ ८८ ॥ षासन्नो देवदत्तायां मूलदेवायतोऽपि सः। क्षतस्त्रीकरको भाव्या बुभुजे तां निरम्तरम् ॥ ८८ ॥ र्र्ष्णां स मूलदेवाय महतीं वहति सा च। षम्बिष्यति स्मातच्छिद्राच्युपद्रविचकीर्षया॥ ८०॥ तच्चद्वया मूलदेवोऽप्यगात्तदेश्मनि च्छलात्। पारवध्येऽप्यविच्छिनी रागः प्रायेण रागिणाम् ॥ ८१ ॥ देवदत्तां जनन्यूचे धूर्त्ततास्रगधूर्त्तकम् । निर्धनं चूतकारं च मूलदेवं सुते त्यञ ॥ ८२ ॥ प्रत्य इं विविधं द्रव्यं यच्छत्यस्मिन् रमस्र तत्। भवते निय्वताती रशेव धनदावाजे ॥ ८३ ॥

⁽१) च न्यपतन्।

देवदत्ता प्रत्युवाच मातरिकान्ततो श्राष्ट्रम्। धनानुरागिणी नास्मि किं त्वस्मि गुणरागिणी ॥ ८४ ॥ यमुष्य यूनकारस्य गुणास्तिष्ठ्नि कीट्याः। पति कीपाज्जनन्योता देवदत्तेत्यभाषत ॥ ८५ ॥ धीरो वदान्यो विद्याविद्गणरागी खयं गुणी। विशेषनः शरक्योऽयं नाम्ं त्यक्यामि तत् खलु ॥ ८६ ॥ ततय कुहिनी रुष्टा कूटजुष्टा प्रचलमे। चचाटियतुं तनयां स्वैरिकी वैरिकीमिव ॥ ८० ॥ साऽदात्तयाऽर्थिते मास्ये निर्मास्यं गर्के पय:। इन्नुखन्डे वंगखन्डं त्रीखन्डे नीपखन्डसम् ॥ ८८॥ सकोपं देवदस्तोता कुहिनी कुटिलाऽब्रवीत्। मा क्रपः पुत्रि याद्यो यचस्तादृग्वितः किल ॥ ८८ ॥ लतेव कार्टिकतरं किमालस्वा स्थितास्यसुम्। सर्वेया मूलदेवं तत्त्वजापात्रमिमं पतिम्॥ १००॥ भवादी हेवदसीवं मातः विभिति सुद्धासि। पुमान् पात्रमपात्रं वा किमुच्चेतापरीचित: ॥ १ ॥ परीचा कियतां तर्हीत्युक्ता साचिपमस्वया। मुदिता देवदत्तीवमादिदेश खवेटिकाम्॥ २॥ यदिची देवदत्ताया श्रीमलाषीऽद्य विद्यते। प्रेथन्तामिचवः सार्थवाहाचल ततस्वया ॥ ३॥ तयोत्तः सार्थवाहोऽपि धन्यमानी प्रमोदतः। शकट।नीतुपूर्णीन प्रेषयामास तत्वणात्॥ ४॥

हृष्टा कुटिन्युवाचैवमचलस्वामिनी इसे । पचिन्तनीयमीदार्थं पश्च चिन्तामपेरिव ॥ ५ ॥ विषया देवदत्तीचे किमम्बाः चिन करेणुका। भचवायेचवः चिप्ता यसमूखदलायकाः ॥ ६ ॥ प।दिश्वतां मूलदेवीऽप्यक्तित्रधें भुजिषया। विवेकी जायते मातर्षयोरिय यद्याउम्तरम् ॥ ७ ॥ मूलदेवीऽपि चेट्योक्त रचुनादाय पञ्चषान्। मूलायाचि त्यजनाङ्ग् निस्ततच विचचणः ॥ ८॥ कठोरलेन दुसर्वपर्वयस्थीन् परित्यजन्। दामुला गण्डिकायको पीयूनस्थेव कुण्डिकाः ॥ ८॥ चतुर्जातेन संस्कृत्य कर्पूरेगाधिवास्य च। भू सप्रोता वर्दमानसंपुट प्राहिसोब्स ता: ॥ १०॥ देवदत्ताऽपि ताः प्रेष्य बभाषे प्रश्वकीमिति। भूत्रीं याचलयो: पम्य स्वर्णरीयों रिवान्तरम् ॥ ११ ॥ क्रहिन्यचिन्तयदशे महामोहात्यमानसा । सगीव सगढणाश्री धृत्तीमवाऽनुधावति ॥ १२ ॥ स कोऽप्युपायः क्रियते येन निष्कास्वते पुरात्। प्रत्युषाजनसेवेन विनादिव महोरग: ॥ १३ ॥ क्राप्टिनी मूलदेवस्थोचाटनायाचलं जगौ। कर्त्तव्यः क्रिक्री यामगमनीपक्रमस्वया ॥ १४ ॥ यामे यास्वामीत्यलीयं सार्थवाह लमस्तरा । क्रययेदेंवदत्ताया विश्वसा सा यथा भवेत् ॥ १५ ॥

तती यामान्तरगतं श्रुला लां धूर्र्भपांसनः। नि:शहं देवदत्तायाः स समीपस्पैचिति ॥ १६ ॥ देवदत्तान्तिके मूलदेवे दोव्यति निर्भरम्। भागच्छे: सर्वसामग्रा मलाक्षेतेन सन्दर ॥ १० ॥ ततस्तथा कथ्मपि त्वमतमवसानये:। यथैतां न भजेड्र्यस्तित्तिरीमिव तित्तिरः ॥ १८ ॥ तत्त्रधा प्रतिपद्मायं यास्यामि ग्राममित्यसी। भाष्याय देवदत्ताया द्रव्यं दत्त्वा च निर्ययौ ॥ १८ ॥ ततस्तया निरातः मृत्तदेवे प्रविधिते। षाज्ञास्त कुष्टिम्यचलं कुष्टाकभटवेष्टितम् ॥ २०॥ देवदत्ता च सहसा प्रविशन्तं ददर्भ तम्। मूलदेवं च खट्टाऽधी न्यधात्पत्रकरण्डवत् ॥ २१ ॥ तथास्थितं मूलदेवं कुष्टिन्या जापितोऽचलः। पर्यक्के क्रतपर्थको निषसाट स्मिताननः ॥ २२ ॥ भवोचदचलस्तव कुर्वन् कैतवनाटितम्। देवदत्ते वयं त्रान्ताः सास्यामः प्रगुणीभव ॥ २३ ॥ देवदत्ताऽब्रवीदेवं विसम्चवितयस्त्रिता। स्नानयोग्यासने तर्ष्टि स्नातुं पाक्षीऽवधार्यताम् ॥ २४ ॥ एवसुखाप्यमानीऽपि सादरं देवदत्तया। विशेषतोऽभूत् खटुायामचलो निञ्चलासनः ॥ २५ ॥ गगाक भूर्सराजीऽपि स्थातुं गन्तुं च नो तदा। प्रायेण विगल्ल्येवास्त्रस्ये मनिस ग्राप्तयः ॥ २६ ॥

पवीचदचली देवदसे खप्नी मयेचित:। पर्यक्रेऽस्मिन् कताभ्यकः सचैलस्नातवानसम् ॥ २०॥ खप्नं सत्यापयिचामि तद्यमहमागमम्। सत्वीकतो च्रयं खप्रः श्रभोदकीय जायते ॥ २८॥ क्रुष्टिन्यवीचदादेश: प्रमाणं जीवितिशितु:। पुत्रि किंन युतं खामी यदिष्कृति करोति तत्॥ २८॥ देवदत्ताऽब्रवीदार्यं किमेतदुचितं तव। षदूषदेवदूषेयं तृत्तिका यदिनम्यति ॥ ३० ॥ चचलोऽप्यवदद्वद्रे कार्पेक्षं किमिदं तव। शरीरमपि यच्छन्ति पत्थर्थे लाह्यः स्त्रियः ॥ ३१ ॥ किं तेऽन्यास्तू लिका न खुः पतिर्यस्याः किलाचलः। खबबेन स किं सीहैदास्य रहाकर: सखा ॥ ३२ ॥ तती भाटीविवशया कारिती देवदत्तया। स्यमाने ततस्तसिकीये खिलजसादिना। मूलदेवश्रण्ड इव भित्रयते सा समन्ततः ॥ ३४ ॥ पाल्यावाचलभटान् कुटिनी दृष्टिसंत्रया। निदिदेशाचलं चाग्र धूर्त्ताकष्यकर्मणे ॥ ३५ ॥ कोपाटोपसमाविष्टो मूलदेवं ततोऽचलः। चकर्ष प्रता केशेषु द्रीपदीमिव कीरवः ॥ २६॥ तं चोवाच नयन्नोऽसि विद्वानसि सधीरसि। कर्मणोऽस्यानुरूपोऽस्य ब्रूष्टि कस्तेऽसु नियप्तः॥ ३०॥

धनाधीनगरीरेयं विखा तां चेद्रिरंससे। यामपद्दकवद्गरिधनेन न किमग्रही: ॥ २८ ॥ मूलदेवोऽपि निषम्हस्तदा सुकुलितेचणः। विफलीभूतफालस्योदुवाह हीपिनसुलाम् ॥ ३८ ॥ एवं च चिन्तयामास सार्थवाह्रपतिस्ततः। न नियाश्ची महात्माऽसी दैवादेवं दशां गतः ॥ ४० ॥ इति चीवाच मुत्तीऽद्य त्वमस्मादागसी मया। कतन्त्रीऽस्यपकर्त्तव्यं लयाऽपि समये मम ॥ ४१ ॥ मुक्तीऽय तेन धूर्त्तेगी वैश्वती निर्ययी तत:। तूर्णं तूर्णं परिक्रामम् रणाइग्न इव दिप: ॥ ४२ ॥ गला पुरीपरिसरे सस्री सरसि विस्तृते। गरकाल इव भेजे तत्चणात् चालिताम्बर: ॥ ४३ ॥ श्रवलस्थापकर्तुं चोपकर्त्तुं च स धूर्त्तराट्। मनोरघरघाकढोऽचलहेगातटं प्रति ॥ ४४ ॥ द्वादशयोजनायामां सः खापदकुलाकुलाम्। दुर्दशायाः प्रियसखीमिव प्राप मन्दाटवीम् ॥ ४५ ॥ पारावारमिवापारां तितीर्षुस्तां महाटवीम्। सहायं चिन्तय।मास तरग्डमिव धूर्त्तराट्॥ ४६॥ कस्मादप्यागतोऽकस्मादभादिव परिच्यतः। ग्रम्बलस्यगिकां विभ्नलोऽपि टको हिजस्तदा ॥ ४० ॥ श्रमहायः सहायीयं तं विष्रं चिष्रमागतम् । वही यष्टिमिव प्राप्य मूलदेवी सुदं ययी ॥ ४८ ॥

जगाद मूलदेवस्तं ममारखे प्रपेतुषः। पालच्छायाहितीयस्य दिस्या मिलितवानसि ॥ ४८ ॥ खच्छन्दं वार्त्तियिषावस्तदावां द्विवसत्तम । मार्गेखेदापहरणी विद्या वार्त्ता हि या प्रथि॥ ५०॥ दूरे कियति गन्तव्यं स्थाने जिगमिषा का ते। कथातां भी सञ्चाभाग मार्गमैतीं वशी कुर ॥ ५१ ॥ विप्रोऽप्यास्वद्वसिष्यामि पारेऽरस्वमिव स्थितम्। स्थानं वीरनिधानास्यं ब्रुष्टि त्वं कुत यास्यसि ॥ ५२ ॥ मूलदेवोऽब्रवीद्यास्यास्यहं वेषातटे पुरे। विप्रीऽप्यूचे तदेशि लमिकोऽध्वा दूरमावयी: ॥ ५३ ॥ बबाटन्तपतपने सधाक्रेश्य समागते। मिलिताभ्यां च गच्छद्वां ताभ्यां प्रापि महासर: ॥ ५४ ॥ पाणिपादसुखं सूलदेवः प्रचास्य वारिणा। निरम्तरतक्च्छाये भूतले समुपाविशत्॥ ५५॥ स्यगिकायाः समाक्षच सक्तृनालोद्य व।रिगा। एकोऽपि भोतामारेमे टको रङ्क इव दूतम् ॥ ५६ ॥ धूर्त्तीऽव्यिन्तयदसी नाऽऽदी मे भोजनं ददी। पतिचुधाऽतुरो भुङ्क्षे भुक्तः सन् खलु दास्यति ॥ ५०॥ भुक्ता तत्रोखित विप्रे बम्नाति स्थगिकामुखम्। दध्यौ धूर्त्तीऽपि यदादा नादात्तच्छुः प्रदास्यति ॥ ५८ ॥ तिस्मवदत्ता भुष्ताने मूलदेवस्तदाशया। त्रीन्वासरानगमयवृषामाशा हि जीवितम् ॥ ५८ ॥

चटवीं तां परित्यम्य धूर्त्तराजं दिजीऽवदत्। स्वस्ति तुभ्यं महाभाग यास्याम्यहमितोऽधुना ॥ ६० ॥ तमूचे मूलदेवोऽपि लला हायादियं मया। द्वादग्रयोजनायामा क्रोगवक्षद्विताऽटवी ॥ ६१ ॥ वेणातरे गमिषामि मूलदेवाभिधोऽस्यहम्। तत्र मे कथये: कार्यं कथ्यतां किंच नाम ते॥ ६२ ॥ चोकैनिर्घृणगर्मेति विश्वितापरनामकः। विप्रोऽइं सद्दे नामेत्युक्ता टक्क्सतो ययौ ॥ ६३ ॥ गच्छता सूनदेवेन तती वेणातटं प्रति। हर: संवसथ: कश्चिसस्वावसथ: पथि ॥ ६४ N प्रविष्टस्तत भिचार्थं चामकुचिर्वभुचया। भ्रमचासादयामास कुल्याचान् कुत्रचित्रृष्टे ॥ ६५ ॥ यामाविष्कामतस्तस्याभिमुखः कोऽप्यभूबानः। मासचपणपुष्यात्मा पुष्यपुष्त द्वाङ्गवान् ॥ ६६ ॥ तं दृष्टा मुदितः सीऽभूदृष्टी मे सुक्रतीदयः। यमायाप्तमिदं पाचं यानपाचं भवोदधी ॥ ६०॥ साधी: कुल्माषदानेन रब्रवितयशालिन:। चन्नीलतु चिरादद्य मद्विवेकतरोः फलम्॥ ६८॥ कुल्माषान् साधवे दस्वा मूलदेवः पपाठ च। धन्यास्ते खलु येषां स्युः कुल्यावाः साधुपारणे ॥ ६८ ॥ तस्य भावनया दृष्टा बभाषे व्योक्ति देवता। मर्द्रभोकेन याच्य भद्र किंते प्रदीयताम्॥ ७० ॥

प्रार्थयामास सद्यस्तां मूलदेवोऽपि देवताम्। गणिकादेवदत्तेभसइसं राज्यमस् मे ॥ ७१ ॥ एवमस्विति देव्यूचे मूलदेवोऽपि तं सुनिम्। वन्दिलाऽय गाममध्य भिचिला बुभुजे खयम्॥ ७२॥ मार्गं कामन् कमिणासी प्राप वेणातटं पुरम्। सुष्याप पान्यशासायां निद्रासुखसवाप च ॥ ७३ ॥ यामिन्याः पश्चिमे यामे स सप्तः खप्रमेचत । यत्पूर्णमण्डलबन्द्रः प्रविवेश सुखे सम ॥ ७४ ॥ तमेव स्त्रमद्राचीलोऽपि कापैटिकस्तदा। भन्यकार्पटिकानां च प्रबुदस्तमचीकयत् ॥ ०५ ॥ तेषु कार्पटिकेष्वेक: स्वप्नमेवं व्यचारयत्। पचिरेण लपाये लं सखण्ड इतमण्डकम् ॥ ७६ ॥ ष्ट्रष्टः कार्पेटिकः सोऽभृदेवं भूयादिति ब्रवन् । जायेत बदरेचापि सुगालस्य महोत्सवः ॥ ७०॥ खप्नं नाचीकथत्तेषामज्ञानां धूर्त्तराट् निजम्। मूर्खा हि दर्शिते रते द्वत्यक् प्रचचते ॥ ७८॥ मण्डमं कर्षिः प्राप ग्रष्टाच्छादनपर्वेणि। प्रायेण फलति खप्नो विचारस्यानुसारतः ॥ ७८ ॥ भूर्त्तीऽपि प्रातरारामे गला पुष्पोचयादिना। भप्रीणाबालिकं लोकंप्रणं कर्मापि तादृशाम् ॥ ८० ॥ ग्टहीला मालिकात्तसास पुष्पाषि फलानि च। ग्रुचिर्भूत्वा ययी वेग्स स्त्रप्रशास्त्रविपश्चितः ॥ ८१ ॥

मूल्देवस्ततो नला दस्वा पुष्पफलानि च। उपाध्यायाय तन्त्राय शर्शस स्वप्नमात्मनः ॥ ८२ ॥ मुदित: सीऽवदिहहान्वस खप्रफलं तव। सुमुद्धत्तें कथयिष्याम्यद्यास्माकं भवातिथिः ॥ ८३ ॥ मूलदेवं स्रपयिला भोजयिला च गौरवात्। परिनाथियतुं कन्यासुपाध्याय उपानयत् ॥ ८४ ॥ बभाषे भूलदेवोऽपि ताताऽचातकुलस्य मे। कन्यां प्रटास्यसि कथं विचारयसि किं निष्ठ ॥ ८५ ॥ उपाध्यायोऽप्य्व।चैवं लक्ष्मच्चीऽपि कुलं गुगाः। चातास्त्रसर्वया कन्या मनेयं परिशोयताम् ॥ ८६ ॥ तद्वाचा मूलदेवोऽपि कन्यकां तामुपायत। कार्यसिष्ठेभीविष्यस्थाः प्रादुर्भूतमिवाननम् ॥ ८७ ॥ मध्ये दिनानां सप्तानां त्वं राजेष्ठ भविष्यसि। इति तस्य स्वप्रफलमुपाध्यायी न्यवेदयत्॥ ८८॥ द्वष्टस्तत्र वसन् धूर्त्तराजो गत्वा बह्विः पुरात्। सुष्वाप चम्पकतले संप्राप्ते पश्चमेऽइनि ॥ ८८ ॥ तदा च नगरे तिस्मात्रग्रीतनम्हीपतिः। त्रपुत्रो निधनं प्राप निष्पाद इव प। दप: ॥ ८० n मन्त्री चिताः पुरीभाषाच्छतभू प्रारचामराः। भ्रेमु: प्रापुन राज्याई दुष्पुापस्तादृशी जन्नः ॥ ८१ ॥ ततो बहि: पर्यटन्तो निकवा चम्पकद्गमम्। भवश्यभुलदेवं ते नरदेवपदोचितम् ॥ ८२ ॥ इयेन हेषितं चन्ने गजेनोर्जितगर्जितम्।

सङ्गरिण च तस्याऽघेषामराभ्यां च वीजनम् ॥ ८३॥ पुष्डरीकं खर्पदष्डमण्डितं तस्य चोपरि। शरदभ्रमिवादभ्रतिडह्ण्डमज्**भत ॥ ८**४ ॥ तं चाधिरीइयामास खक्तन्वे जयकुच्चरः। स्वाम्याप्तिमुदितैर्ज्जीकैसकी जयजयारव: ॥ ८५ ॥ पुरं मचातूर्यरवैः पूर्यमाणदिगन्तरम् । तयाविशयां बदेवी राजराज दवालकाम् ॥ ८६ ॥ उत्तीर्णो राजक्रस्यें सौ सिंहासनमधिष्ठित:। समन्ततः समायातैः सामन्तैरभ्यविचत ॥ ८० ॥ भयोचे देवता व्योन्ति देवतानां प्रसादतः। भयं विक्रमराजाख्यो राजा जन्ने कसानिधि: ॥ ८८ ॥ वर्त्तिष्यन्ते न येऽमण्य ग्रासने चितिग्रासितः। तानचं नियचीचामि मचीसत इवायनि: ॥ ८८ ॥ तद्गिरा विस्नितं भीतं सर्वं प्रकृतिसण्डलम्। यतेरिवेन्द्रियग्रामः सदा तस्य वशेऽभवत् ॥ २००॥ तत: स राजा विषयसुखान्यनुभवन् व्यधात्॥ प्रीतिसुक्कयिनीभेन सियः संव्यवद्वारतः ॥ १॥ तदानी देवदत्ताऽपि मूलदेवविडम्बनाम । ताहचीं प्रेच्य साचिपा व्यववीदचलं प्रति ॥ २॥ किं जाता द्रव्यदर्पात्व लया कुलग्टिष्ण्डम्। मुमूर्वी 'मूर्ख महे व्यवाहार्वीयदीहमम्॥ ३॥

⁽१) क क मुर्खवद्गेष्ठे।

लयाऽसादीयसदने नागन्तव्यमतः परम्। इति निष्कास्य तं गेहासमीपे तृपतेरगात ॥ ४ ॥ तया च याचितो राजा स वरो टीयतासिति। यथेच्छं बृहि यच्छामि तं येनेत्यवदत्रृपः॥ ५॥ सोचे मां प्रति नाजाप्यो मूलदेवं विना पुमान्। वारणीयोऽचलबायमागच्छनाम वेश्मनि ॥ ६॥ एवमस्विति राज्ञोत्ता हेतुः कोऽल्लेति पृष्टवान्। गगंस माधवी देवदत्ताभ्यूसंज्ञया ततः ॥ ०॥ जितगत्रृत्यः कोपाचितिस्नृत्तरस्ततः। सार्थवारं तमाञ्चय साचिपमिदमब्रवीत्॥ ८॥ मत्प्रीमण्डनावेती रत्नभूतावरे लया मुखेंग धनमत्तेन यावगीव निघर्षिती ॥ ८ ॥ ततीऽसुच्यापराधस्य प्राणापहरणं तव। दण्डोऽस्विति नरेन्द्रोत्ते देवदत्ता न्यवारयत्॥ १०॥ लं यद्यप्यनया बातोऽधना वाणं तथापि ते। मूलदेवे समानीते भवेदित्यभ्यधात्रृपः ॥ ११ ॥ तृपं नला ततो गला सार्थवाइ: प्रचक्रमे । नष्टरत्निमवान्वेष्टुं मूलदेवं समन्ततः ॥ १२ ॥ मूलदेवमपश्यन् स भीतो न्यूनतया तया। भाण्डं भः ला ययी भी मं पारसकूलमण्डलम् ॥ १३॥ दधी च मूलदेवोऽपि विना मे देवदत्तया। भो च्येना सवर्षेनेव प्राच्यराच्यत्रियाऽपि किम्॥ १४॥

ततः स देवदत्ताया जितगत्नोस भूपतेः। चतुरं प्रेषयामास दूतं प्रास्टतसंयुतम् ॥ १५ ॥ गलोक्ययिन्यां दूतोऽपि जितम्रतं व्यजिन्नपत्। देवतादसराज्यत्रीर्मूबदेवी वदत्यदः ॥ १६॥ यथा मे देवदत्तायां प्रेम जानीय तत्त्वा। यदासी रोचते वोऽपि तदियं प्रेचतामिति ॥ १०॥ ततीऽवददवन्तीयस्तेनेदं कियदर्थितम् । राज्ञा विक्रमराजेन भेदी राज्येऽपि नास्ति नः ॥ १८ ॥ षाकार्य देवदत्तां च जगादोळ्यानीपति:। दिष्या जाताऽसि भद्रे लं चिरात् पूर्णमनोरया ॥ १८ ॥ राजा जन्ने मूलदेवी देवतायाः प्रसादतः । त्वामानितुं च स प्रैषीत्रधानपुरुषं निजम् ॥ २०॥ ततस्वं तव गच्छेति प्रसादाव्यितग्रव्णा। श्रादिष्टा देवदत्ताऽगाहेणातटपुरं क्रमात् ॥ २१ ॥ राजा विकासराजोऽपि सङ्घोत्सवपुरःसरम्। खचेतसीव विपुले खवेम्मनि निनाय ताम् ॥ २२ ॥ जिनाचीमर्चतस्तस्य सम्यक् पालयतः प्रजाः। दीव्यती देवदत्तां च चिवर्गीऽभृदंबाधित: ॥ २३ ॥ इतस् पारसकुलाइङ्गासक्रेयवस्तकः। षाययावचलस्तत्र जलपूर्ण द्रवास्तुदः ॥ २४ ॥ ससीम इल विश्वनैर्मणिमी क्रिकविद्रमै:। भ्रता विग्रानं स स्थानं महीनायसपास्थितः ॥ २५ ॥

भचलोऽयमिति चिप्रमुपलचितवान् हपः। हद्दा प्राग्जवासम्बन्धमपि प्राज्ञाः स्नरन्ति हि ॥ २६ ॥ राजानं मूलदेवोऽयमित्यज्ञासीत् नाचलः। भात्तविषं नटमपि ख्लाप्रज्ञा न जानते ॥ २०॥ कुतस्विमिति राज्ञीतः पारसादित्युवाच सः। ययाचे पञ्चकुलं च भाग्डालीकनकर्मण ॥ २८ ॥ कीतुकारस्वयमेषाम रत्युक्तो भूभुजा स तु। महाप्रसाद रत्यूचे कोपं को वित्ति तादृशाम् ॥ २८ ॥ ततः पश्चक्क्लोपेतो ययौ राजा तदात्रये। मिन्निष्ठापष्टसुतादि सोऽपि भाग्छमदर्भयत् ॥ ३० ॥ भाण्डं किमियदेवेदं सत्यं ब्रुहीति भूभुजा। उक्त रत्युक्तवान् त्रेष्ठी सत्यमितावदेव मे ॥ ३१ ॥ सृपेण पुनरप्युचे सम्यग् जाला निवेदय। पसाद्राच्ये ग्रस्कचीर्या यच्छरीरेण नियइ: ॥ ३२ ॥ भनोचटचलोऽप्येवससाभिः कथतेऽस्यया । पुरतो नापरस्थापि स्वयं देवस्य किं पुन: ॥ ३३ ॥ राजेत्युवाच तर्श्वस्य श्रेष्ठिनः सत्यभाविषः। क्रियतामर्ददानं च सम्यग्भाण्डं च वीच्यताम् ॥ ३४ ॥ ततः पञ्चकुलेनां क्रिप्रहारादं श्रवेधतः। त्रसारभाग्डमध्यस्यं सारभाग्डमशङ्कात ॥ ३५ ॥ जाताशक्केस्ततो राजपुंभिर्विभिदिरे चणात्। ग्रस्कदस्य्मनांसीव भाग्डस्थानानि सर्वतः ॥ ३६ ॥

तैर्यथा प्रक्रितं भाष्डं वित्तपाळां तथाऽभवत्। परपुरान्तः प्रवेशकारिणी द्वाधिकारिणः ॥ ३०॥ तज् जाला कुपिती राजा बन्धयामास तं चवात्। सामन्ता पपि बध्यन्ते राजादेशाद्दणिक् कियान् ॥ ३८ ॥ ततस्तं सदने नीला कोटयिला च बस्वनम्। विं मां प्रत्यभिजानासि पप्रच्छेति महीपति: ॥ ३८ ॥ घचलोऽपि जगादैवं जगदुद्घोतकारियम्। भानमन्तं भवन्तं च बालियोऽपि न वित्ति कः ॥ ४०॥ पर्याप्तं चाट्वचनैः सम्यक् तं वित्स तद्द । राज्ञेत्यक्षीऽचलीऽवोचलिष्टं जानामि नद्याद्यम् ॥ ४१ ॥ देवदत्तामयाञ्चय भूपतिस्तमदर्भयत्। ष्टैर्देष्टा कतार्थी स्थायान:सिंबिंडि मानिनाम् ॥ ४२ ॥ देवदत्तामसी दृष्टा क्रीतः कष्टां दगां ययी। प्रये स्त्रापभाजना हि सत्योरप्यधिका तृणाम् ॥ ४३ ॥ साऽप्यूचे मूलदेवीऽयमित्युक्तो यस्तदा लया। एवं क्या ममापि त्वं दैवादासनमीयुषः ॥ ४४ ॥ तदसि व्यसनं प्राप्तः प्राणसन्देशकारणम् । सुक्षोऽसि चार्यपुचेण नेष्टचाः चुद्रघातिनः ॥ ४५ ॥ ततो विलच: स विषक् पतित्वा पादयीस्तयोः। क्रवे सर्वीपराधाको तितिचध्वं तदा क्रतान् ॥ ४६ ॥ रष्टस्तेनापराधेन जितशतुर्महीपति:। प्रवेशमुक्तयिन्यां मे युष्पदाचा प्रदास्यति ॥ ४०॥

भवोचे मूलदेवोऽपि मया चान्तं तदेव ते। यदा प्रसादो विदधे हैव्या श्रीहेवदत्तया ॥ ४८ ॥ ततः प्रसादं दस्वोचैदूतमेकं समर्घ च। पुरीमुळायिनी गम्तुं विससर्जाचलं ऋपः ॥ ४८ ॥ प्रविशोऽवन्तिनाधेन तस्यावन्यामदीयत । मूलदेवस्य वचसा कीपस्तमूल एव यत्॥ ५०॥ प्रन्येयुर्दुःखविधुराः प्रजाकार्यधरस्यरम् । मिखित्वा विणजी मूलदेवमेवं व्यजिज्ञपन्॥ ५१॥ जायत्यपि प्रजास्त्रातुं त्वयि देव दिवानिशम्। त्रमुखतेदं नगरं परित: परिमोिषिभि: ॥ ५२॥ कोला दव 'चिरं चौराः पुरेऽस्मिमन्दिराणि नः। प्रतिचेपं खनन्युचैनीरचा रचितुं चमाः ॥ ५३॥ भदृश्यमानाः वेनापि क्षतसिद्याञ्चना इव। भाग्यन्ति चौरा: खैरं नो ग्टहेषु खग्टहेष्यिव ॥ ५४ ॥ पविराविष्रहीषामि तस्तरानयशस्तरान्। मूलदेवोऽभिधायैवं विश्वजो विससर्ज तान् ॥ ५५ ॥ प्रादिचत्रगराध्यचं साचिपं च्यापतिस्तत:। प्रन्विष्य तस्त्ररान् सर्वान् ग्टहाण निग्टहाण च ॥ ५६ ॥ मयोवाच पुराध्यत्तः स्वामिन्नेकोऽस्ति तस्करः। षसी न शकाते धर्तुं दष्टनष्टः पिशाचवत्॥ ५०॥

^{.(}१) गच विभी।

जातामधेस्ततो राजा महीजा निर्यंयी निशि। नीलाम्बरप्रावरको नीलाम्बर द्वापर: ॥ ५८ ॥ स्थानेषु प्रद्वास्थानेषु बभाम स्थामधाम सः। दस्यं कमपि नापश्यदन्नेः पदमिवाश्वसि ॥ ५८ ॥ स सर्वे नगरं भ्रान्तः श्रान्तः सुष्वाप कुत्रचित्। खण्डदेवकाले गैलगुहायामिव केसरी ॥ ६० ॥ निशाचर द्वाकसाविशाचरणदारुषः। तस्त्रराग्रेसरस्त्रभोपासरमास्त्रिकाभिधः ॥ ६१ ॥ कोऽब्रेति व्यादरवृत्तीर्मलिख्नुचपतिस्ततः। कष्ट: सुप्तमिव व्यालं पदा कृपमघद्यत्॥ ६२ ॥ बेष्टां खानं च वित्तं च जिन्नासुस्तस्य भूपति:। ज्वे कार्पटिकोऽस्रीति का का निष्णा न तादृगाः ॥ ६३ ॥ एडि कार्पटिकाच लामदरिद्रीकरोग्यइम्। इत्यूचे तस्तरो भूपं मदान्धानां धिगन्नताम् ॥ ६४ ॥ तमन्वचासीसोऽधेंच्छुः पत्तिवत्पृथिवीपतिः। ् समर्दे गर्देभस्थापि पादौ कार्याकानार्दनः ॥ ६५ ॥ पजानानः स राजानं पार्खे सत्युमिवात्मनः । जगाम धाम कस्यापि श्रेष्ठिन: श्रेष्ठसम्पद: ॥ ६६ ॥ तत्र खाचं खनित्रेष पातियत्वा स वैश्मनः। जगाइ सारद्रविषं राष्ट्र: कुग्छात्मुधामिव ॥ ६० ॥ पत्री राजा समस्तं तद्दाच्यामास तस्तर:। चदरं दर्भयामास भाकिन्धे व स सृद्धी: ॥ ६८ ॥

तसुन्नमूलियतं मूलान्नमूलदेव उवाह तत्। भूर्त्ता हि कारणीपात्तमादेवाः कार्यराचसाः ॥ ६८ ॥ जीर्णीद्यानं तती गला गुरु।मुद्दाव्य सीऽविशत्। निनाय तत्र भूपं च च्छगणारोपितासिवत्॥ ७०॥ प्रामीनागकुमारीव कुमारी तत्र तत्स्वमा। नवयीवन्जावस्यपुर्यावयवशालिनी ॥ ७१ ॥ चालयास्यातिषेः पादावित्यादिष्टा स्वबस्नना । सोपकूपं ततो भूपमुपाविशयदासने ॥ ७२ ॥ प्रचालयन्ती तत्पादकमले कमलेचणा। **पनुभूय मृदुस्रधी तं सर्वाङ्गसुदैचत ॥ ७३**॥ प्रश्नो कोऽप्येष कन्दर्पः साचादिति सविस्रया। सानुरागा सानुकम्पा साऽव्रवीदिति भूपतिम् ॥ ७४ ॥ पादप्रचालमञ्याजात्मूपेऽस्मित्रपरे 'नराः। भवात्यन्त महाभाग तस्कराचां कुत: क्रवा ॥ ७५ ॥ चेपग्रामि नेइ कूपे लां लग्रभाववगीकता। महतामनुभावो हि वधीकरणमद्गुतम् ॥ ०६ ॥ ततो मदुपरोधेन सुन्दरापसर दूतम्। हयोर यन्यया नाथ कुशसं न भविष्यति ॥ ७७ ॥ विस्थाय महीनायो निर्जगाम हुतं ततः। धीमानों हि धिया प्रनित दिव: सत्यपि विक्रमे ॥ ७८ ॥ गते नृपे तु व्याहारि तया गच्छत्यसाविति।

⁽१) चड जनाः।

खचूबरचबावें हि प्रपत्ती भीमतामयम् ॥ ७८ ॥ क्षष्टकष्ट्रासिजिङ्काली वैताल इव टाक्स: । पनुभूवालमुत्ताली द्वावे मिक्किस्ततः ॥ ८०॥ तं समासनमालोका भूपतिर्धीहरुस्रति:। चलरोत्तिभातयावस्त्रभेनान्तरितीऽभवत् ॥ ८१ ॥ कोपान्धनयनबासी स एवेष प्रमानिति। कद्वासिना द्वत्यत्थां च्छिलाऽगादाम मण्डिक: ॥ ८२ ॥ ययी सं धाम राजाऽपि इष्टबीरोपलभतः। प्राप्त: सीख्याय जायेत दीवकारी न कस्य वा ॥ ८३ ॥ राजा प्रातस्तती राजपाटिकाव्याजती बहि:। दखुं विष्यमनोदखुद्धां निक्पयितुं ययौ ॥ ८४ ॥ चय वस्त्रापणदारि कुर्वाणं तुवकारताम्। पहैवें ष्टितजङ्गोबं किश्विदुद्वाटिताननम् ॥ ८५ ॥ तस्तरं मस्तरसतीपतं इश्वश्वाकतिम्। दृष्ट्रोपालचयत् स्थापः चपादृष्टानुमानतः ॥ ८६ ॥ (युग्मम्) गला इम्यं महीनायोऽभिज्ञानानि निवेदयन्। पुरुवान् प्रेषयामास तस्याकारचन्द्रेतवे ॥ ८० ॥ न इतः स पुमाबूनं तिह्वजृत्भितमित्यसी । भाइतोऽमंस्त चौरा हि महाराजिकवेदिन: ॥ ८८॥ सोऽगात्ततो राजक्कले राजाऽऽस्वत मद्यापने। महाप्रसादं कुर्वन्ति नीतिश्वा हि जिघांसव: ॥ ८८ ॥ तं भूपतिरभाषिष्ट प्रसादसुख्या गिरा।

स्त्रसा दीयतां मण्णं दातव्या एव कन्यका ॥ ८० ॥ दृष्टपूर्वी खसारं मे नापरो निरगात्तत:। भयं स एव राजेति निसिक्ये मण्डिको ছदि॥ ८१॥ ग्रज्ञातां मत्स्वसा देव देवकीयैव सा किल। मदीयमन्यद्येवमवीचत स पार्धिवम् ॥ ८२ ॥ तदानीमप्यपायंस्त रूपातिशयशासिनीम्। तस्य खसारं तृपतिः कंसारिरिव क्किणीम ॥ ८३ ॥ महामात्यपटे चन्ने तस्तरं तं नरेखरः। को वित्ति भूभुजां भावं मध्यं पत्य्रिवाश्यसाम् ॥ ८४ ॥ तस्माद्रूषचवस्त्रादि तद्वगिन्धेव भूपति:। नित्यमानाययदही भूत्ती भूत्तीरध्यत ॥ ८५ ॥ बहु यावसमाक्षष्टं द्रव्यं तावनृपेच सा। मभाषि वित्तं त्वहम्बोः कियदचापि तिष्ठति ॥ ८६ ॥ वित्तमेतावदेवासीदस्य दस्योः समाऽपि हि। एवं न्यवेदयद्वाची गीप्यं प्रियतमे न हि ॥ ८० ॥ विडम्बनाभिर्बह्वीभिर्मण्डिकं चण्डग्रासनः। निजयाह तती राजा पापानां क्षशलं कियत् ॥ ८८ ॥ चौर्यात् खग्रयंमपि विक्रमराजराजः, मानीय मण्डिकमखण्डनयी जघान। स्तैन्धं न तेन विदधीत सुधी: कथिय-दवापि जमानि विरुद्धमलात्विस् ॥ २८८ ॥ ॥ इति मूलदेवमण्डिकयोः कथानकम्॥

षासीद्राजग्रहे सम्पत्जितामरपुरे पुरे। पादाकान्तम्पर्येषिः श्रेषिको नाम पार्थिवः ॥ १॥ राज्यसम्ब च तनयो नयविक्रमभाजनम्। मान्नाऽभयकुमारोऽभूत् प्रधुन्नः श्रीपतिरिव ॥ २ ॥ इतस तिस्रवगरे वैभारगिरिकन्टरे। चीरो लोइखराख्योऽभूद्रीद्रो रस इवाइवान् ॥ ३॥ स त राजग्रहे नित्यं पौराणामुलावादिषु। सम्। किद्रापि विदधे पित्राचवदुपद्रवम् ॥ ४ ॥ षाददानस्ततो द्रव्यं भुष्तानस परस्तियः। भाष्डागारं निघानां वा निजं मेने स तत्पुरम् ॥ ५ ॥ चीर्यमेवाभवत्तस्य प्रौत्ये वृत्तिने चापरा । चपास्य क्रव्यं क्रव्यादा भच्चे सुप्यन्ति नापरे: ॥ ६ ॥ तस्यानुक्यो क्पेंच चेष्टया च सुतोऽभवत्। भार्यायां रोडियोनास्त्रां रौडियेयोऽभिधानतः॥ ७॥ स्तमृत्यसमये प्राप्ते पिनाऽः इयेत्यभाषि सः। यदावायं करोषि लस्पदेशं ददामि तत्॥ ५॥ च्चवायमेव कर्त्तव्यमादिष्टं भवतां मया। कः पितुः पातयेदात्रां पृथिव्यामित्य्वाच सः॥ ८॥ प्रहृष्टो वस्सा तेन चौरो लोइखुरस्तत:। पाणिना संस्थान् प्रवमभाषिष्टेति निषुरम्॥ १०॥ यो सी समवसर्णे स्थित: सरविनिर्मिते। विधन्ते देशनां वीरो मा श्रीषीस्तस्य भाषितम् ॥ ११ ॥ षम्यत्तु खेच्छ्या वता कुर्यास्वमनियन्त्रितः। उपदिख्येति पञ्चलं प्राप लोइखुरस्तत: ॥ १२ ॥ मृतकार्यं पितु: कला री हिषेयस्ततोऽनियम्। चकार चीरिकां लोइख्रोऽपर द्वीहतः ॥ १३ ॥ पालयन पित्रादेशं जीवितव्यमिवालनः। खदारेरिमवामुणात् स राजग्टइपत्तनम् ॥ १४ ॥ तदा च नगरपामाकरेषु विश्रम् क्रमात्। चतुर्देगमद्यासाध्रसद्ग्वपरिवारितः ॥ १५॥ सुरैः संचार्यमाषेषु खर्चाभीजेषु चार्षु । न्यस्यन् पदानि तवागादीरयरमतीर्वजत् ॥ १६ ॥ 'व्यन्तरेरसरेन्धीतिषिकौर्वेमानिकौरपि। सुरै: समवसर्षं चक्रे जिनपतेस्तत: ॥ १० ॥ भायोजन विसर्िष्या सर्वभाषान्यातया । भारत्या भगवान् वीरः प्रारेभे धर्मदेशनाम् ॥ १८ ॥ तदानीं रीष्टिपेयोऽपि मच्छन् राजग्रहं प्रति। मार्गान्तराले समवसरचाभ्यर्णमाययौ ॥ १८ ॥ एवं स चिन्तयामास पद्याउनेन ब्रजामि चेत्। मृणोिस वीरवचनं तदाजा भच्यते पितु: ॥ २०॥ न चान्यो विद्यते पत्या भवत्वेवं विस्त्रय सः। कर्णी विधाय पाणिभ्यां द्वतं राजग्रहं ययी ॥ २१ ॥

⁽१) साम पाड वैनानिकैक्वीतिधिकैर्व्यन्तरेरस्रौरिध । ४३

एवमन्बद्दमप्यस्य यातायातकतोऽन्यदा । उपसमवसरणं पार्देऽभज्यत कण्टकः ॥ २२ ॥ घौल्क्यगमनाद्वादमम् पादे स कण्टकम्। भनुषृत्य समुद्रभी न ग्रामा क्रमात् क्रमम् ॥ २३ ॥ मास्युपायोऽपरः कोऽपोत्याक्षय त्रवचात्वरम्। कर्षन् कपटकमत्रीषीदिति विकागुरोगिरम् ॥ २४॥ महीतलासार्थिपाटा निर्निमेषविलोचनाः। पनानमाचा नि:खेदा नीरजीऽङ्गाः सुरा इति ॥ २५ ॥ बहुसुतिमदं धिग् धिगित्याशूषृतकाण्टकः। पिधाय पाचिना कर्च तथैवापससार सः ॥ २६ ॥ षयान्वरं सुषमाचे पत्तने तेन दस्युना । **उपित्य त्रेणिकं त्रेष्ठित्रेष्ठा व्यज्ञपयितत ॥ २० ॥** खिय गासित देवान्यव भयं द्रविणं तु नः। भाक्षण ग्रह्मते चौरैरदृष्टेंबेटकैरिव ॥ २८ ॥ बन्धूनामिव तेषां तु ग्टडीत: पीडया तत:। सकोपाटोपमिल्यूचे त्रपतिर्देग्डपाधिकम् ॥ २८ ॥ किं चौरीभूय दायादीभूय वा मम वेतनम्। ग्टक्कासि चौरैर्ग्टक्कान्ते यदेते लदुपेचितेः ॥ ३० ॥ सोऽप्यूचे देव कोऽप्येष चौरः पौरान् विसुक्टति । रीडियेयाद्वयो धर्तुं दृष्टोऽपि न डि शक्यते॥ ३१॥ विद्युदुत्चिप्तकरयेनोत्प्रुत्यायं प्रवक्तवत् । गेहाहेष्ठं ततो वप्रसुद्धश्यति हेलया ॥ ३२ ॥

मार्गेच यामस्तमार्गं यावत्तावस नैस्वते। त्यक्ती च्रोकक्रमेषापि प्रतेन त्यच्यते क्रमें: ॥ २३ ॥ न तं इन्तुं नवा धर्त्तुमइं ग्रक्तीमि तस्त्ररम्। ग्रजातु तदिमां देवी दाष्ड्रपाशिकतां निजाम् ॥ ३४ ॥ रुपेचोक्रासितेकभूसंज्ञया भाषितस्ततः। कुमारोऽभयकुमारस्तमूचे दाख्डपाधिकम् ॥ ३५ ॥ चतुरक्रचम्ं सच्जीक्तत्य मुख बहिष्पुरात्। यदान्तःप्रविश्वेचीरः पत्तनं वेष्टवेखदा ॥ ३६ ॥ भनाय व्रासिती विद्युदुत्चिप्तकरचेन सः। पतिचति बन्धिः सैन्धे वागुरायां कुरङ्गवत्॥ ३०॥ प्रतिभूभिरिवानीती निजपादैस्ततव सः। यहीतव्यो महान् दस्युरप्रमत्तैः पदातिभिः ॥ ३८॥ तथेत्यादेशमादाय निर्ययी दाष्डपाशिकः। तथैव च चर्मू सळां प्रच्छनं निर्ममे सुधी: ॥ ३८ ॥ तिह्ने रीहिणेयोऽपि ग्रामान्तरसमागमात्। प्रजानान: पुरी रहा वारी गज रवाविधत्॥ ४०॥ तैरुपायैस्ततो एला बद्दा च स मलिन्तुच:। भानीय कृपतेर्दाण्डपाधिकेन समर्पितः ॥ ४१ ॥ यवा न्यायं सतां वाजमसतां निपहस्तवा। निरुश्वतामसी तसादित्यादिचमशीपतिः ॥ ४२ ॥ पलीम्: प्राप्त इस्वेष न हि नियहमईति। विचार्य निग्रहीतव्य इत्युवाचाभयस्ततः ॥ ४३ ॥

पय पप्रच्छ तं राजा क्रत्यः की द्रग्रजीविकः। कुतो ईतोरिहायातो रौहिणेयः स चासि किम् ॥ ४४ ॥ खनामशक्तिः सोऽपि प्रत्युवाचेति भूपतिम्। यालियामे दुर्भचव्हाभिधानोऽष्टं कुट्ग्विक: ॥ ४५ ॥ प्रयोजनवर्षेने द्वायात: संजातकीतुकात । एकदेवकुले राचिं महतीमिक्स च स्थितः ॥ ४६ ॥ खधाम गच्छवारचैराचित्री राचसैरिव। **पलस्यमधं** वप्रं प्राचभीमें इती हि भी: ॥ ४० ॥ मध्यारचिविवर्याती बाह्यारचगरेषच्चम्। केवर्तप्रस्तविस्रस्तो जाले मह्य दवापतम् ॥ ४८ ॥ ततो निरपराधोऽपि बहुा चौर स्वाधना । श्रक्रमिभिरिष्ठानीतो नीतिसार विचार्य ॥ ४८ ॥ ततस्तं भूपतिगृप्ती प्रेषयामास तत्वचात्। तवाहित्रज्ञानहतीस्तव यामे च पूर्वम् ॥ ५०॥ सोऽयेऽपि याहितो याम: सहैतं तेन दख्ना। चौरावामि केवाचि चित्रमायतिचिन्तनम् ॥ ५१ ॥ तत्स्वरूपं राजपुंसा ग्रामः पृष्टोऽन्नवीदिदम् । दुर्गचक्कोऽच वास्तव्यः परं यामान्तरं गतः ॥ ५२ ॥ तवार्धे तेन विज्ञप्ते दध्यी त्रेणिकस्रिदम्। पही सकतदशस्य ब्रह्माऽप्यन्तं न गच्छति ॥ ५३ ॥ षभयोऽसज्जयद्य प्रासादं सप्तभूमिकम्। महार्घरत्रख्चितं विमानमिव नाकिनान् ॥ ५४ ॥

त्रियाऽपरायमाचाभीरमचीभिरसङ्गतम्। दिवोऽमरावतीख्यक्रमिव भ्रष्टमतर्वि सः ॥ ५५ ॥ गन्धववर्गप्रारस्थसङ्गीतवसङोत्सवः। सोऽधादकसादुद्भूतगन्धर्वनगरित्रयम्॥ ५६ ॥ ततोऽभयो मद्यपानमूढं निर्माय तस्त्ररम्। परिधाप्य देवदूचे 'मभितत्यमगाययत् ॥ ५० ॥ मदे परिचते यावदुदस्वासावदैचत । सोऽकसाहिस्रयकरीमपूर्वी दिव्यसंपदम् ॥ ५८ ॥ चत्रान्तरेऽभयादिष्टैर्नरनारीगणैस्ततः। उदचारि जय जय नन्देत्यादिकमङ्गलम् ॥ ५८ ॥ प्रसिवाद्याविमाने समुत्यवस्त्रिद्योऽधना । पस्मानं खामिभूतोऽसि लदीयाः निद्वरा वयम् ॥ ६०॥ चपरोभि: सहैताभी रमख खैरमिन्द्रवत । इत्यादि चतुरं चाटुगर्भमूचे च तैरसी ॥ ६१ ॥ जात: सुर: किमक्रीति दध्वी यावला तस्कर:। संगीतकार्थे तावसै: प्रदत्त: समहस्तक: ॥ ६२ ॥ उपेत्य पुंसा कैनापि खर्षदण्डभृता तत:। सइसा भो: किमारव्यमेतदेवमभाष्यत ॥ ६३॥ ततः प्रतिवभाषे तैः प्रतीहार निजप्रभोः। प्रदर्शयतुमारसं सकं विज्ञानकी ग्रलम् ॥ ६४ ॥ सोऽप्युवाच खनायस्य दर्ध्यतां निजकीशसम्।

⁽१) सग च सधितस्य-।

देवसीक्समाचारं कार्यतां किं त्वसाविति ॥ ६५ ॥ तैक्तं कीहगाचार रति शुला स पूर्वः। साचेपमित्यभाषिष्ट किमैतदपि विद्युतम् ॥ ६६ ॥ य रहीत्पदाते देवः स खे सकतदुष्कृते। पांख्याति प्राप्तने खर्गभोगाननुभवेत्ततः ॥ ६०॥ विद्युतं खामिसामेन सर्वेमेतससीदतः। देवसोकस्थितिं देव: कार्यतासिति तेऽवदन् ॥ ६८॥ स रीडिवेयमिल्वे निजे इन्त सभारमे। प्राज्ञने ग्रंस नः सर्गेभोगान् भुङ्ख्य ततः परम् ॥ ६८ ॥ ततः सोऽचिन्तयइस्युः विमेतत् सत्यमीद्यम् । मां जातमभयेनैष प्रपन्ती रचितीऽयवा ॥ ७० ॥ न्नेयं वयमेतदिति ध्वायता तेन संस्कृतम्। क्रवादरचकासाकर्षितं भगवदयः॥ ७१॥ देवसक्यं त्रीवीराष्ट्रतं चेत् संवदिचति । तक्तत्वं कवयिषामि करिषाग्यत्ववीत्तरम् ॥ ७२ ॥ इति बुद्या स तानीचाचने चितितसस्यः। प्रखेदमलिनान् सानमास्वाचिमिवदीच्यान् ॥ ७३ ॥ तबावे कपटं जालाऽचिकायत् दस्युवत्तरम्। तेनीचे कथतां देवलोकः सर्वोऽयमुक्तकः ॥ ७४ ॥ रीडिबेयस्ततोऽवादीनाया पूर्वत्र जनानि। चटीयत सपावेभ्यो दानं चैत्यानि चिक्रिरे॥ ७५ ॥ प्रत्यष्ठाप्यन्त विम्बानि पूजितान्यष्टभारचेया ।

विश्वितास्तीर्धयात्राच गुरवः पर्युपासिताः ॥ ७६ ॥ इत्यादि सदनुष्ठानं मया स्नतमिति ब्वन्। जरे दक्कभृता गंस दुषरिव्रमपि खनम् ॥ ७० ॥ रीश्वियोऽप्यवाचेदं साधुसंसर्गयासिना । कदाचिद्रप्याचरितं कि चिनागोभनं मया ॥ ७८ ॥ व्याजहार प्रतीहारी जन्म नैक्खभावत:। याति तलायतां चीर्यपारदारिकतादिकम् ॥ ७८ ॥ रीष्टिपेयोऽभ्यधत्तेवं किमेवंविधचेष्टित:। स्वर्शीकं प्राप्तयादन्यः किमारी इति पर्वतम् ॥ ८०॥ गला ततसीस्तसर्वमभयाय निवेदितम्। प्रभवेन च विज्ञप्तं चेचिकस्य महीपते: ॥ ८१ ॥ एवंविधेक्यायेयंथीरो जातुं न शकार्त । स चौरोऽपि विमोक्तव्यः मक्या नीतिन लिश्वतुम् ॥ ८२ ॥ मभयः पार्थिवादेशपद्गीश्चियमवास्वत । वश्वान्ते वश्वनादश्चेर्दशा भपि कदावन ॥ ८३ ॥ ततः सोऽचिन्तयश्रीरो धिगादेशं पितुर्मम । विश्वतीऽस्मि चिरं येन भगवद्यमां स्तात्॥ ८४॥ नागमिखत् प्रभुवची यदि मे कर्षकीटरम्। तदा विविधमारेचागमिषं यमगोचरम् ॥ ८५ ॥. पनिच्छयाऽपि हि तदा ग्रहीतं भगवहच:। मम जीवातवे जन्ने भैषक्यमिव रोगिष: ॥ ८६॥ त्यक्राईदचनं सा धिक चौरवाचि रतिमेया।

घास्त्रास्त्रपास्त्र निम्बेषु काकेनेव चिरं कता ॥ ८० ॥ उपदेशैकदेशोऽपि यदीयः फलतीदृशम्। तस्वोपदेगः सामस्यात् सेवितः किं करिषाति ॥ ८८॥ एवं विस्था मनसा ययी भगवतोऽन्तिके। पादाम्बुजे च नलैवं रीहिषेयो व्यजित्रपत् । ८८ ॥ भवासी प्राचिनां घीरविपवक्रकुलाकुले। महापोतायते ते गीरायोजनविसर्पिणी ॥ ८० ॥ निषिषस्यदयः श्रीतुमनाप्तेनाप्तमानिना । द्रयत्नालम्दं पित्रा विचितस्तळगहुरीः ॥ ८१ ॥ चैसोक्यनाथ ते धन्या: श्रद्धानाः पिवन्ति ये। भवद्यमपीयूषं कर्वान्त्रसिषुटै: सदा ॥ ८२ ॥ चरं तु पापीऽग्रमृषुर्भगवन् भवती वचः। विधाय कर्नी हा कष्टमिदं खानमसङ्घम् ॥ ८३ ॥ एकदाऽनिच्छताऽप्येकं श्रुतं युषादची मया। तेन मन्त्राचरेचेव रचितो राजराचसात्॥ ८४॥ ययाऽचं मरणाचातस्तया त्रायस्व नाय मान्। संसारसागरावर्से निमळन्तं जगत्पते ॥ ८५ ॥ ततस्तत्कपया खामी निर्वाणपददायिनीम्। विश्वतां विदधे साधु साधुधर्मस्य देशनाम् ॥ ८६ ॥ ततः प्रबुदः प्रयमन् रीष्टिणेयोऽब्रवीदिदम् । यतिधर्मस्य योग्गोऽस्मि नवे'त्यादिश मां प्रभो ॥ ८० ॥

⁽t) स स ग - स्वादिस्तां।

योग्योऽसीति खामिनोक्ते, यहीचामि विभी वतम्। परं किञ्चिद्दिचामि, त्रेणिकेनेत्युवाच सः ॥ ८८ ॥ निर्विकत्यं निर्विशकं स्ववत्तव्यस्दीरय। इत्यृतः त्रेषिकतृपेषोचे सोइख्रायाजः ॥ ८८ ॥ इइ देव भविद्वर्यः श्रुतोऽइं लोकवार्सया । स एव रोडिग्रेयोऽस्मि भवत्यसनमोषकः ॥ १०० ॥ भगवद्वचसैकेन दर्लद्या सद्दिता मया। प्रजाऽभयक्रमारस्य तरण्डेनेव निम्नगा ॥ १ ॥ षशेषमेतव्यवितं पत्तनं भवतो मया। नात्वेषषीयः कोऽप्यन्यस्तस्त्ररो राजभास्तर ॥ २॥ कमि प्रेषय यथा तक्कोप्तं दर्भयास्य इम्। करिष्ये सफलं जन्म ततः प्रवच्यया निजम् ॥ ३ ॥ प्रभवोऽय समुखाय श्रेणिकादेशतः खयम्। कौतुकात्पीरलोकस सङ्गागत्तेन दस्यना ॥ ४॥ ततो गिरिचदीकुद्धस्मशानादिषु तदनम्। स्विगतं दर्भयामास सीऽय श्रेषिकस्तनवे ॥ ५ ॥ मभयोऽपि हि यदास्य तत्तस्य धनमार्पयत्। नीतिज्ञानामलीभानां मन्त्रिणां नापरा स्थिति: ॥ ६ ॥ परमाधं कथयिला प्रबोध्य निजमानुषान्। श्रदालुर्भगवत्पार्धे रीष्ट्रिपेयः समाययी ॥ ७ ॥ ततः श्रेणिकराजीन क्रतनिष्क्रमणोत्सवः। 'स जगाइ परिव्रच्यां पाखें त्रीवीरपादयी: ॥ ८ ॥

⁽१) चड क्याइस-।

ततसतुर्योदारभ्य षयमासान् यावदुक्त्यलम्।
विनिर्ममे तपःकर्म कर्मनिर्मूलनाय सः ॥ ८ ॥
तपोभिः क्रियतः क्रत्वा भावसंसेखनां च सः।
श्रीवीरमाएच्छा गिरी पादपोपगमं व्यधात्॥ १० ॥
ग्रभध्यानः स्वरन् पञ्चपरमेष्ठिनमिस्त्रियाम्।
त्वक्रा देषं जगाम द्यां रीष्टिणेयो महासुनिः॥ ११ ॥

रीहिणेय इव चीर्थानहत्तः स्वर्गेकोकमचिरादुपयाति । तत्तुधीन विदधीत कथि -चीरिकासुभयकोकविषदाम् ॥ ११२ ॥ ॥ इति रीहिणेयकथानकम् ॥ ७२ ॥

स्तेयस्यातिपरिचरणीयतामाच-

दूरे परस्य सर्वस्वमपहतुं मुपक्रमः । उपाददौत नादत्तं त्रणमात्रमि क्वचित् ॥ ७३॥

दूरे चास्तां तावत्परस्य सर्वस्वं निःशेषधनम्, चपइर्तुसुपक्रमः प्रारश्यः, चदत्तं स्वामिना, त्रचमात्रमपि नोपाददीत न रुष्णीयात् न तदधं यत्नं कुर्योदिति यावत् ॥ ७३ ॥

स्तेयनिवृत्तानां फलं स्नोकदयेनाइ--

परार्थग्रहणे येषां नियमः शुह्रचेतसाम् ।
भग्यायान्ति श्रियस्तेषां खयमेव खयम्वराः ॥०४॥
परार्थग्रहणे परधनहरणे येषां नियमो निरुत्तिः शुह्रचेतसां

निर्मनि चित्तानां न तु बकहत्तीनां कश्मसमनसां तेषामभ्यायान्ति प्रभिमुखमायान्ति त्रियः सम्पदः, स्वयमेव न तु परप्रेरणया व्यवसायेन वा। स्वयंवरा इत्युपमानगर्भम्। स्वयम्बरा इव कन्याः॥ ७४॥

तथा--

अनर्था दूरतो यान्ति साधुवादः प्रवर्त्तते । खर्गसौख्यानि दीकन्ते स्फ्टमस्तेयचारिणाम्॥०५॥

भनर्था विषदः, दूरतो यान्यासना भिष न भवन्ति ; साध्रय-मिति प्रवादः साध्रवादः स्नाघा, प्रवर्त्तते प्रसरित, एतावदे हिका' फलम् ; स्वर्गसौख्यानीति तु पारली किकम्, भस्तेयव्रतेनावध्यं चरन्तीत्यस्तेयचारिणस्तेषाम्।

यवानारे स्रोका:---

वरं विक्रिशिखा पीता सपीस्यं चुम्बितं वरम् ।

वरं चालाचलं लीढं परस्वचरणं न तु ॥ १ ॥

प्रायः परस्वलुश्चस्य निःश्का बुद्धिभते ।

इन्तं स्नातृन् पितृन् दारान् सुद्धदस्तनयान् गुक्रन् ॥ २ ॥

परस्वं तस्करी ग्टब्सन् वधवन्थादि नेचते ।

पयःपायीव लगुडं विडाल उपरि स्थितम् ॥ ३ ॥

व्याधधीवरमार्जारादिभ्यशोरीऽतिरिच्यते ।

निग्दद्यति नृपतिभिर्यदसी नृतरे पुनः ॥ ४ ॥

⁽१) गड एतावरेडिकां।

स्वर्णदिकिऽप्यन्यधने पुर:स्ये
सदा मनीवा हवदीव येवाम् ।
सन्तोवपीयृवरमेन द्वतास्ते वां समन्ते ग्रहमेधिनीऽपि ॥ ५ ॥ ७५ ॥
ददानीमामुचिकमेहिकं चाब्रश्चाफसमुपदर्थः
ग्रहस्थोचितं ब्रह्मचर्यव्रतमाइ—

षग्ढत्विमिन्द्रियक्केदं वीच्याब्रह्मफलं सुधीः। भवेत् खदारसन्तुष्टोऽन्यदारान् वा विवर्जयेत्॥ ७६॥

षग्छलमामुणिकं परदाररतानां फलं, इन्द्रियच्छेदस राजादि-कृत 'ऐ चिकं, प्रमुख्यः प्रतिषिद्यस्य मेथुनस्य, वीच्य प्रास्त्राग्रत्यचेण् वा जात्वा, स्वदारेषु धर्मपद्धां सन्तुष्टो भवेदित्येकं ग्रडस्थमद्धा-चर्यम्, प्रन्यदारान् वा परसम्बन्धिनोः स्त्रियो विवर्जयेत्। सस्त्रीसाधारणस्त्रीसेवीत्यष्टेः इति दितीयम्॥ ७६॥

यदापि ग्रहस्यस्य प्रतिपनं व्रतमतुपालयतो न ताहगः पापसम्बन्धोऽस्ति तदापि यतिधर्मातुरक्तो यतिधर्मप्राप्तेः पूर्वं गार्डस्येऽपि कामभोगविरकः सन् त्रावकधर्मे परिपालयति इति तं वैराग्यकाष्टासुपनितं सामान्येनावद्वादोषानाइ—

रम्यमापातमात्रे यत् परिणामेऽतिदाकणम् ।

किंपाकफलसंकाणं तत्कः सेवेत मैथुनम् ॥ ७० ॥

पापातमाने प्रथमारश्वमाने, रस्यं मनोइरं, परिणामे

⁽१) च - जतमै चिनं,।

प्रारक्षादुत्तरोत्तरावस्थायां, दावणं रोद्रं, किंपाकफलसंकाशं किंपाको वृत्तविशेषस्तरफलसदृशं, किंपाकफलं द्वापाते रस्यं परिणामे दावणं मारणाक्षकलात्।

यटा ह ---

'वसड्ढा इलइसया' दीसन्ता दिन्ति हिययपरिश्रोसं।
किंपागफला पुत्तय श्रासायन्तो वियाणिहिसि॥१॥
एवंविधं यनीयुनं मियुनकर्म तत्काः सेवेतिति सम्बन्धः।
यदाइ—

यद्यपि निषेश्यमाणा मनसः परितृष्टिकारका विषयाः ।
किंपाकफलादनवत् भवन्ति पश्चादतिदुरन्ताः ॥ २ ॥ ७० ॥
मैच्नस्य परिणामदाकणलमाइ—

कम्पः खेदः श्रमो मूर्क्का भिमर्ग्जानिर्वेणचयः। राजयस्मादिरोगास्र भवेयुर्मेयुनोत्यिताः॥ ७८॥

कम्पो वेपयुः. खेदो घर्मः, त्रमः क्रमः, मूर्च्छा मोष्ठः, भ्रमिर्भ्रमः, ग्लानिरङ्गसादः, बलचयः ग्रात्तनागः, राजयच्या चयरोगः. स पादियेषां कासम्बासादीनां रोगाणां ते तथा मैथुनोत्यिता मैथुनप्रभवाः ॥ ७८ ॥

⁽१) वर्षाचाः कौतका इद्यमाना इद्ति श्रुद्यपरितोषस् । विषाककतानु पुलक चास्त्रादमानो विश्वास्त्रति ॥ १ ॥

⁽२) 'तुस्तर्गम्म कोठए इक्ड्सं'' इति त्रीहेमवन्द्राधार्याः देशीनाममासायां त्रष्टमार्गे सनेकार्धप्रकरचे ७४ ज्ञोके स्थावस्तुः।

षिंसापरिवारलाच्छेषव्रतानां सेवुने षिंसाया एवाभावमास-

योनियन्त्रसमुत्पद्गाः सुसूच्या जन्तुराशयः । पौद्यमाना विपद्यन्ते यत्र तन्मैयुनं त्यजित् ॥ ७६॥

योनिः प्रसवसार्गः, सैव यन्त्राकारत्वाद्यन्तं, तत्र ससुत्पवाः संमूच्छेनेनोत्पवाः, ते च न चत्तुर्याद्या इत्याद्य—सस्द्याः, जन्तुराप्रयो जन्तुसमूद्याः, पौद्यमाना स्रद्यमानाः पृंध्वजेनेति ग्रेषः, क्तनासिकायां तप्तायः व्यापकप्रविशे क्तानीव, विपद्यन्ते विन्यन्ति, यत्र मैयुने तन्तेयुनं त्यजेत्॥ ७८॥

योनी जन्तुसद्वावं संवादेन द्रुटयति —

जन्तुसद्भावं वात्यायनोऽप्याइ।

वास्यायनः कामगास्त्रकारः । भनेन च वास्यायनसंवादाधी-नमस्य प्रामास्यमिति नोस्वते, न हि जैनं ग्रासनमन्यसंवादाधीन-प्रामास्यं किन्तु येऽपि कामप्रधानास्तैरपि जन्तुसङ्गावो नापञ्चत इत्युच्यते ।

वाद्यायनञ्जोको यथा-

रत्ताजाः क्तमयः सूच्मा सदुमध्याधिशत्तयः । जन्मवत्मस कार्डूतिं जनयन्ति तथाविधाम् ॥८०॥ रत्तजा रत्नोद्ववाः, क्तमयो जन्तविश्ववाः, सूच्या प्रवस्तवाः, सद्मध्याधिशत्तयः सद्यत्तयो मध्यशत्तयोऽधि शत्रत्तयस्, तया-विधां सद्मध्याधिमात्रशत्त्रयनुरूपां ; सद्शत्तयो सद्दीं, मध्यशत्तयो मध्यां, भिधिकशत्तयोऽधिकां कण्डूतिं कण्डूं जन्मवर्कस् योनिषु जनयन्ति ॥ ८०॥

कामञ्चरचिकित्सार्धमीषधमिव मैथुनसेवनमिति यो मन्धेत तंप्रत्याष्ट्र—

स्वीससोगेन यः कामज्वरं प्रतिचिकीर्षति । स इताशं घृताइत्या विध्यापयितुमिक्कति ॥८१॥

प्रतिचिकीर्षति प्रतिकर्तुमिच्छति, विध्यापयितं ग्रमयित्म् ; भयमर्थो नायं कामञ्चरस्य प्रतीकारोऽनुगुणः, भपि तु दृष्टितुः नहि इतागे ष्टताइतिवस्य प्रतिकार्ये भवति किन्तु तदृद्धे ।

बाह्या भणाडु:---

न जातु कामः कामानामुपभोगेन ग्राम्यति । इविषा कष्णवर्मेव भूय एवाभिवर्दते ॥ १ ॥

'िकन्तु कामञ्चरप्रतीकारा ईषत्करा वैराग्यभावनाप्रतिपच-सेवाधर्मशास्त्रत्रवणादय:; तदेतेषु कामञ्चरप्रशान्त्युपायेषु सत्सु किंभवश्रमणहेतुना सेयुनसेवनेन ॥ ८१॥

⁽१) कसगद्ध-ऽधिक-।

⁽**>) ব অ**ধিমূদ- |

⁽१) गड किंच।

'एतदेवाच--

वरं ज्वलदयस्तक्षपरिरक्षी विधीयते । न पुनर्नरकद्वाररामाजवनस्वनम् ॥ ८२ ॥

भयमर्थः । भवतु कामञ्बरोपश्रमहितुर्मेथुनं परं नरकहितुत्वाद प्रश्यस्यम् ॥ ८२ ॥

चिप च स्त्रीसम्बन्धनिबन्धनं निध्वनं, स्वियस स्नृता चिप सकत्राज्यगरिमविचातहेतव इत्याच,—

सतामि हि वामभूर्ददाना इदये पदम् । सभिरामं गुरायामं निर्वासयित निश्चितम् ॥८३॥

सतामि हि महालानामि वामभू विरिचितलो चनविकारा, हृदये पदं ददाना सृतिमा चेणापि सिवधापिता, प्रभिरामं रमणीयं, गुणपामं गुणसमूहं, निर्वासयित उद्दासयित । स्विष-च्छाया चेयम्। यथा कुनियोगी कि सिहेशमध्ये पदं देदान एव रिचितव्यान् पामान् लोभमी हादिनो हासयित, एवं हृदये लब्ध-पदा कामिन्यपि पालनीयं गुणपाम मुच्छेदयित । प्रथवा सतामिष गुणपामं सतामिव हृदये पादं दस्वा वामभू निर्वासयित ॥ प्रश

द्वयसिवधावनमि स्त्रीयां बद्दोवलाहुयदानिहेतुः विं पुना रमणमित्येतदेवाह---

⁽१) च एतहेवमाइ।

⁽१) च इहानः प्रवर्राखतम्यान् ।

वञ्चकत्वं नृशंसत्वं चञ्चलत्वं कुशीलता।
दति नैसर्गिका दोषा यासां तासु रमेतकः॥८४॥

वश्वकतं मायाशीनता, त्रगंसतं क्रूरकर्मकारिता, चश्चनतं क्रुताप्यवस्थितिचित्तताभावः, क्रशीनता दुःस्वभावता, उपस्थसंयमा-भावो वा, इत्येते नैसर्गिकाः स्वाभाविका दोषा नत्वीपाधिकाः, तासुको रमेत ॥ ८४ ॥

न चेयन्त एव दोषा किन्खपरिसंख्याता रत्याह—
प्राप्तुं पारमपारस्य पारावारस्य पार्थते ।
स्वीणां प्रकृतिवक्राणां दुश्चरित्रस्य नो पुनः ॥८५॥
पारावारस्य समुद्रस्य, र्यपारस्यादृष्टपारस्य, पारं परतीरं,
प्राप्तुं पार्थते भक्षते, न पुनः स्त्रीणां प्रकृतिवक्राणां स्त्रभावकृटिन्वरिद्राणां, दुष्वरिद्रस्य दुष्टचेष्टितस्य, पारं पर्यन्तः ; प्राप्तुं
पार्यत रति॥ ८५॥

दुवरित्रमेवाह---

नितम्बिन्यः पतिं पुत्रं पितरं भातरं चाणात्।
चारोपयन्त्यकार्येऽपि दुर्हेत्ताः प्राणसंश्रये॥ ८६॥
नितम्बन्य इति यौवनोक्याददर्शनार्थम्। धतएव स्त्रीति
नोक्तम्। दुर्वृत्ता दुष्टशीलाः, धकार्येऽपि प्रयोजनमन्तरेणापि,
धथयाऽकार्येऽत्ये प्रयोजने नजोऽत्यार्थत्वात्, प्राणसंश्रये प्राणसन्देहे; उपलच्चणं चैतत्। प्राणनाश्रेऽपि धारोपयन्ति धारोइयन्ति। कमित्याइ। पतिं भक्तरिम्। सूर्यकान्तेव प्रदेशिराजम्।

यदाह-

'भज्जा वि इन्दियविगारदोसनिडिया करेष्ट्र पद्मपावम्। जद्य सो पएसिराया स्रियकंताद तद्य विद्यो॥१॥ पुत्रं तनयम्। जुलनीव ब्रह्मदत्तम्।

यदाह ---

'माया नियममद्दिगिष्यियां चार्ये चपूरमाणांचा।
पुत्तस्य कुषद् वसणं चुलची जद्ग बंभदत्तस्य ॥ २ ॥
पितरं जनकं, भातरं सोदरम्। जीवयथा दव जरासन्धं,
कालादीं सभातृन्॥ ८६॥

षतएव---

भवस्य बीजं नरकद्वारमार्गस्य दीपिका। शुचां कन्दः कलिर्मूलं दुःखानां खानिरङ्गना ॥८०॥

भवस्य संसारस्याक्षुरस्थेव बीजं तत्कारणत्वात्संसारस्य, नरकहारं नरकप्रवेगः, तत्र यो मार्गः पत्यास्तत्र दीपिकेव दीपिका तत्रकाम कत्वात्, श्रुचां भोकानां वज्ञीनामिव कन्दस्तत्ररीष्ठष्टेतुत्वात्. कलेः कलष्टस्य तरीरिव मूलं पादो हिष्डितुत्वात्, दुःखानां भारीर-मानसानां खवणादीनामिव खानिराकरस्त्रसमुख्यतात् दुःखानां,

⁽१) भार्वोऽपि इत्द्रियविकारहोषनिटता करोति पतिपापस्। सथा पहेणिराजः सूर्यकान्तया तथा विधतः ॥ १ ॥

⁽२) नाता निजक्षमितिकाल्यिते कार्ये कापूर्यमाचे। पुत्रक्ष करोति व्यक्षनं चुलनी यथा नक्षहरसक्ष ॥ २॥

काऽसावङ्गना। एवं तावद्यतिधर्मानुरक्तं ग्रष्टस्यं प्रति सामान्धेन मैथुनदोषाः स्त्रीदोषास्रोक्ताः॥ ८०॥

सम्प्रति खदारसम्तुष्टान् ग्रह्मशानिधकत्य साधारणस्त्रीदीषाः स्रोकपञ्चकेनीचान्ते—

मनस्यन्यहत्त्वस्यन्यित्वयायामन्यदेव हि । यासां साधारणस्त्रीणां ताः क्षयं सुखद्देतवः ॥८८॥

मनिस चित्तेऽन्यत् वच:क्रिययोविलचणं, वचिस वचनेऽन्यत् मन:क्रिययोविलचणं, क्रियायां चेष्टितेऽन्यत् वाज्यनसोविसंवादि, यासां साधारणस्त्रीणां विम्यानां, ता विसंवादिप्रेमाणः क्षयं सुखस्य विम्यासैकनिबन्धनस्य हेतवः।

यदाइ—

भन्यस्मै दत्तसङ्केता याचतेऽन्यं सुते परम्। श्रन्यथित्ते परः पार्श्वे गणिकानामस्रो नरः॥१॥८८॥ तथा—

मांसिमश्रं सुरामिश्रमनेकविटचुस्वितम्। को विश्यावदनं चुम्बेदुच्छिष्टमिव भोजनम्॥८॥

मांसेन जलस्यल'खचारिजीवजाङ्गलेन, मित्रमामगिन्ध, मांसादिलाहेग्यानां, सुरया काष्ठिपष्टादिमय्या मदिरया, मित्रं व्याप्तं, सुरापाणप्रसक्तलात्। भनेकविटैबेड्डभिविंटैरित्यर्थः, चुम्बित-मास्नादितम्, प्रायो विटासक्तलात्; एवंविधं वैग्यानां वदनं

⁽१) खच खबराहि-।

क बुखे स कि बितन बुखे दिलार्थः । उच्छिष्टिमिव भोजनिम लाप-मानमनेक विट बुब्बित वेग्यावदनस्थोपमैयस्य । प्रथ्वा मांस-मित्रलं सुरामित्रलं चोच्छिष्टभोजनेऽपि योज्यम् ॥ ८८ ॥

तथा---

चि प्रदत्तसर्वस्वात् कामुकात् चीगसम्पदः । वासोऽप्याच्छेत्तुमिच्छन्ति गच्छतः पख्ययोषितः ॥८०॥

प्रदत्तसर्वस्वादिष महाधनावस्थायां, पुर्ख्यचयात्चीणसम्पदः, कामुकात्तत एव गच्छतः स्वग्टहं प्रति, वासोऽिष परिधानवस्त-मिष, पाच्छेत्तं बलाद् यहीत् मिच्छक्ति; पद्धं मूखं, तत्प्रधाना योषितो वेग्याः; पनेन क्षतन्नत्वं तासामाह ।

यदाच--

चपचिताऽप्यतिमाचं प्रकटवधूः चीणसम्पदः पुंसः । पातयति दृशं व्रजतः स्पृष्टया परिधानमाचेऽपि ॥१॥८०॥ तथा—

न देवात्र गुरूत्रापि सुष्टदो न च बास्थवान्। चसत्सङ्गरतिर्नित्यं विष्यावध्यो हि मन्यते॥८१॥

विश्वावश्यः पुमान देवादीनान्यते, कुतः प्रसत्सङ्गरितिनैत्यं प्रसिद्धितिटादिभिः सङ्गो प्रसत्सङ्गरत्य रितर्यस्य । विश्वावश्यस्य हि सुलभा एवासमङ्गाः ॥ ८१॥

⁽१) च, सचेतनः। स. सञ्चेतनः।

तथा---

कुष्ठिनोऽपि स्मरसमान् प्रश्चन्तौ धनकाङ्गया। तन्वन्तौ क्विमस्नेष्टं निःस्नेष्टां गणिकां त्यजेत्॥८२॥

कुष्ठिनः कुष्ठिरोगिणोऽप्यत्यस्तमनुपादेयान्, स्नरसमान् कन्दर्पतुस्वान्, धनकाङ्घया हेतुभूतया प्रस्वन्तीं, महत्वा प्रतिपत्त्या प्रतिपादयन्तीं, न च स्नेहमन्तरेण कुष्ठिनोऽपि सकागाइनावासि-रिति। तन्वन्तीं विस्तारयन्तीं, कृष्टिममुपचितिं, स्नेहं प्रेम; परमार्धतस्तु नि:स्नेहां गणिकां वैष्यां, त्यजित्। एवं तावत्स्वदार-सन्तुष्टस्य प्रसाङ्गनागमने दोषाः प्रतिपादिताः॥ ८२॥

ददानीं परदारगमनदोषाना ह---

नासत्त्वा सेवनीया हि खदारा चप्युपासकैः॥ चाकरः सर्वपापानां किं पुनः परयोषितः॥८३॥

सर्वविरितलालसः खलु देशविरितिपरिणाम इति गाई स्थेऽिप वैराग्यातिग्रयादुपासकेरप्रतिषिद्धाः खदारा प्रप्यासत्त्वा गर्हेन न सेवनीयाः निं पुनः परयोषितस्ता प्रत्यन्तमसेवनीया इत्यर्थः ; यत प्राक्तरः खानिः सर्वपापानां मायास्रषावादादीनाम्, हि शब्दो यस्रादर्थे, यस्ताव् खदारानिप नासत्त्वा सेवन्ते छपासकाः ततः कवं परदारेषु प्रसर्जेयुरित्यर्थः ॥ ८३॥

परस्रीणां पापकारित्यमेव दर्भयति—

खपतिं या परित्यच्य निस्त्रपोपपतिं भजेत् । तस्यां चिश्वकिचित्तायां विश्वकाः कोऽन्ययोषिति॥८४॥

तस्यां चिकाचित्तायां चिकातिचत्तायामन्ययोषिति, को विकासः को विकासः, न किसिद्यर्थः । विकासिने च सुखं तदिव नास्तीत्यर्थः । या किं, या स्वपतिं देवतारूपं 'भर्तृदेवता हि स्त्रियः' इति जुतेः ; परित्यच्य पाणिग्रहीत्यपि त्यक्ता, निस्त्रपा सक्तारहिता ; त्रपा हि भूषणं स्त्रीणाम् ; उपपतिं पत्यन्तरं, भजेत्॥ ८४॥

ददानीं परस्तीप्रसन्नोऽनुशिष्वते---

भौरोराकुलचित्तस्य दुःस्थितस्य परस्तियाम् । रतिर्ने युज्यते कर्तुमुपश्चनं पशोरिव ॥ ८५ ॥

परिस्तयां रितः प्रीतिः, कर्तुं न युच्यते, भीरोः पितराजा-दिभीतस्त, पत्रप्वाकुलिचस्य प्रमेन दृष्टोऽनेन जातोऽइमिति उपस्पतीति व्याकुलिचस्स, दुःस्थितस्य खण्डदेवकुलादौ शय्या-सनादिरिह्नतस्त, कस्येव, पशोरिव वध्यस्त, उपशूनं शूना-समीपे॥ ८५॥

तस्रात्--

प्राणसन्देइजननं परमं वैरकारणम् । लोकदयविषदं च परस्त्रीगमनं स्वजित् ॥ ६६ ॥ परस्त्रियां गमनं सभीगस्तक्षजेत्, प्राणानां जीविषध्य, सन्देशो नागगङ्गा, तं जनयतीति प्राणसन्देशजननं ; 'परस्तीषु प्रसत्तस्य हि प्रायेण परैः प्राणा प्रणाध्यन्ते कदाचित्रेति प्राण-सन्देशः, परमं प्रकष्टं, वैरस्य विरोधस्य, कारणम्।

यदाह---

बदमूलस्य मूलं हि महदैरतरोः स्त्रिय इति ।

स्रोकदयिमस्नोकपरस्रोकस्यणं, तस्य विवृषं प्राणसन्देस-जननत्वादेरकारणत्वाक्षोकदयविवृद्धतादिति परस्त्रीगमनत्थागे हेतुत्रयं विश्रेषणदारेण ॥ ८६॥

लोकहयविष्ठं चेति विशेषणमस्तुटं स्मुटयति— सर्वस्वष्ठरणं बन्धं शरीरावयविष्ठदाम्। स्टतस्य नरकं घोरं लभते पारदारिकः॥ ८७॥

सर्वधनापश्चारं, रज्ज्वादिना बन्धं, ग्ररीरावयवः पुंध्वजादि-स्तस्य च्छिदां छेदं लभत इतीश्वलोकविरोधः। सृतस्य नरकं घोरं लभते इति परलोकविरोधः। परदारान् गच्छतीति पारदारिकः॥ ८७॥

उपपत्तिपूर्व परस्तीगमनप्रतिषेधमाइ —
स्वदाररचणे यतं विद्धानो निरन्तरम् ।
जानन्नपि जनो दुःखं परदारान् कयं व्रजित्॥८८॥
जानन्नपि चनुभवन्नपि, दुःखं मनःपौडां, परदारप्रसङ्गे तस्य ;
परदाराः परेषां दाराः परदाराः मतः स्वदारप्रसङ्गे परेषु

⁽१) कग परस्तीप्रकाखा

दु:खमतुभवत्वेव। यत हितुमाइ। खदाररचणे खकतपरचणे, यत्नमादरं, भित्तिवरक्षकप्राकारप्राहरिकादिभिविद्धानः कुर्वन्, निरम्तरं दिवानियं, खदाररचणपरिक्षेत्रणाली जनो जानात्वेव खिलान् दु:खं रत्वाकानुभवेन परैष्विप दु:खं प्रस्तन् कथं परदारान् व्रजेत्॥ ८८॥

भारतां परस्तीषु रमणं रमणेच्छाऽपि महतेऽनर्धायेति भाह— विक्रमाक्रान्तविश्वोऽपि परस्तीषु रिरंसया । कृत्वा कुलच्चयं प्राप नरकं दशकस्वरः ॥ ८८ ॥

परस्रीविषये रमचाभावेऽपि रिरंसामानेण हेतुना, दशकन्धरी रावची, नरकं प्राप इति पारस्रीकिकं फलम्। ऐहिकमाइ। कला कुसच्यं, यद्यपि कुसच्यय्तस्य रामादिभिः कतो न तेन, तथापि तदीयपरदाररिरंसापूर्वकलादिभिस्तस्वतस्तलृत उच्यते। नतु पारस्रीकिकं फसं नरकगमनरूपमास्तां, ऐइस्रीकिकं तु बस्तवतां कुतस्यं भवेदित्याइ। विक्रमाक्रान्सविष्वोऽपि; न हि दशकन्धरादन्यो बस्तवान्, यो विक्रमेण विष्यमप्याक्रान्सवान् सोऽपि यद्यनर्थमञ्जते तदपरस्य का मानेति॥ ८८॥

षयं चार्धः सम्प्रदायगम्यः, सचायम् ।—

पद्धि विक्टिश्चरिस श्चिरोमिषिरिव चितेः ।

रचोद्वीपे हिरक्याङ्गा लङ्केति प्रथिता पुरी ॥ १ ॥

विद्याधरत्रपद्धास्यां पुलक्ष्यकुलकीस्यमः ।

पजायत महावीर्यो रावणो विकारावणः ॥ २ ॥

पभूतां भातरी तस्य निःसीमस्थाम'ग्रीभिनी। चपराविव दो:स्तभी कुभक्ष विभीष खी। ३ 1 देवतामिव कुलस्य स्वपूर्वपुरुषार्जिताम् । ग्टहे नवमहारबस्त सं तिपखदन्यदा ॥ ४ ॥ त्र्यन्ते द्वादशादित्या नवादित्या दमे पुन: । दृश्यन्ते कथमित्येतहदान् पप्रच्छ तथ सः ॥ ५ ॥ ष्याचचित्रि तसी लत्पूर्वपुरुषे: पुरा। वरलया महासाराऽनर्घ्यं रत्नमालिका ॥ ६ ॥ इमां चिपेत यः कगढे स्थालोऽईभरतेग्बरः। दत्यानायात्तवानाये पूज्यते पूर्वजैरसी ॥ ७ ॥ ततस्तां सीऽचिपलाग्हे तद्ववेष नवस्वि । सङ्कान्तास्यतया चासी दशास्य इति पप्रवे॥ ८॥ ततो जनैर्जयजयेत्यारावैरभिनन्दित:। सोऽभागूर्स इवीखाडी जगहिजयहैतवे॥ ८॥ तस्यानवद्या विद्यास्ताः प्रश्नप्तीप्रमुखाः सदा । चसाध्यसाधनप्रीढाः पार्खे सेना द्वावसन् ॥ १० ॥ ततो भरतवर्षा सं एक ग्राम सी स्या। दु:सार्ध साधयामास दो:क कूर्ने तपूर्यत ॥ ११ ॥ मासी दितम वैताकागिरी विद्याधरेम्बर:। दम्द्रनामा पूर्वजन्मानुभूतेम्द्रपदस्थितिः ॥ १२ ॥

⁽१) सम पासिनी।

विष्वैष्वर्यवलोद्रेकादिन्द्रलाभ्यासतोऽपि च। रन्द्रमात्मानमेवायममंस्तेन्द्रं तु नापरम् ॥ १३ ॥ श्चीति स समि हिषीं समस्तं वचमित्यपि। पद्देभमेरावण इत्याखसुचै: यवा इति ॥ १४ ॥ सारिषं माति चिति चतुरी ज्याबा हाभटान्। सोमो यमः पाश्रधरः कुबेर इति चाभ्यधात्॥ १५ ॥ मन्यमानस्तृणायान्यानिन्द्रंमन्यः स दोर्मदी। नाजीगखद्रादणमप्यत्यन्तरखदाव्यम् ॥ १६ ॥ तसी ततः प्रकुपितः कतान्त दव दावणः। रावषीऽत्रावणाभोदगर्जहजबलीऽचलत् ॥ १० ॥ विद्याबलात्ससैन्योऽपि लड्ड्यामास सोऽर्णवम् । विद्याधरास्त्रस्ययाना भुव्यश्वसि नभस्यपि ॥ १८ ॥ स दिश्र ऋादयन् सैन्यवात्यो दूते रजस्यै:। वैताकां प्राप कल्पान्तमद्वावात दव द्वतम् ॥ १८ ॥ श्रुला रावणमायान्तमिन्द्रोऽपि द्रुतमभ्यगात्। पुंसां मैत्रां च वैरे च संमुखीत्यानमादिमम् ॥ २०॥ दूरादपि दगास्थेन प्रश्वितो मश्वितीजसा । षय दूतीऽभ्युपेत्वेन्द्रमित्वुवाच ससीष्ठवम् ॥ २१ ॥ ये केचिदिष्ट राजानी विद्यादीवीर्यदर्पिणः। तैर्पेत्योपायनाचैः पृजितो दशकत्थरः ॥ २२ ॥ दशकग्रस्य विस्नृत्या भवतयार्जवादयम् । प्रयान् कालो यदौ तिस्मन् भित्तकालस्तवाधुना ॥ २३ ॥

भितां दर्शय तत्तस्मिन् यितां वा दर्शयाधुना । भितायिक्तिविद्योनस्विमेव विनङ्ख्यसि ॥ २४ ॥ दन्द्रोऽपि निजगादैवं वराकै: पूजितो हुपै: । रावणस्तदयं मत्तः पूजां मत्तोऽपि वाच्छति ॥ २५ ॥ यथा तथा गतः काली रावणस्य सखाय सः। कालकपस्वयं काल एतस्येदानी मुपस्थितः ॥ २६॥ गला खखामिनी भितां गितां वा मयि दर्भय। स भिताशिता ही नशेरेवमेव विन इस्वित ॥ २७॥ दूतिनागत्य विज्ञप्ते रावणः क्रीधदारुणः। चचालानन्तसैन्धोर्मिः चयोद्वान्त दवार्णवः ॥ २८ ॥ तयीर्बलानामन्योऽन्यं संफेटः शस्त्रवर्षिणाम् । संवत्तीप्रष्करावर्त्तवारिदानामिवाभवत् ॥ २८ ॥ रावणं रावणिर्नला युदायेन्द्रमधाह्नत । रणक्रीडासु वीरा हि नायं ददति कस्यचित्॥ ३०॥ तत्रयेकाङ्गविजयाकाङ्किणाविन्द्ररावणी। सैन्यान्य पास्यायुध्येतां हन्द्रयुद्धेन दुईरी ॥ ३१ ॥ मियः प्रतिहतास्त्री ती रणपारिययासया । युयुधाते नियुद्देन मदान्धी सिन्धुराविव ॥ ३२ ॥ रावणिः किमधोऽयेन्द्र जर्डमिन्द्रोऽय रावणिः। नालस्वत तयोर्व्यक्तिवेंगादिपरिवर्त्तिनोः ॥ ३३ ॥

⁽१) न च -पास्य युद्धेत्रलां।

विजयश्री: चपैनेन्द्रे मेघनादे चपैन च। यातायातं व्यधाद्गीतेवीभयोरपि भीमयी: ॥ ३४ ॥ पसी मधक इत्यस्यादावद्ववें व वक्तित। तावसवीजिसा मेघनादस्तं ससुपाद्रवत् ॥ १५॥ पातियता भगित्ये'व तं बबन्ध दशास्त्रस्:। जिगीषृषां जये हेतु: प्रथमी द्वाशकारिता ॥ ३६ ॥ मिधनादः सिंहनादैनीदयन् रोदसी पपि। पितुः समर्पयामास मूर्त्तं जयमिवाये तम् ॥ ३० ॥ प्रबलारचगुप्तायां तं गुप्ती रावणीऽचिपत्। हयं विधन्ते हि बली निष्ठन्यपि वहत्यपि ॥ ३८ ॥ सीमी दण्डधरः पाशी कुवरय समित्य ते। दशास्यमिन्द्रयञ्चलात्क्षा क्विधिरे ततः ॥ १८ ॥ जितकाशी दशास्रोऽपि भूलोसाष्ट्राचतुर्ग्यः। योधयामास संगामचतुरसतुरोऽपि तान्॥ ४०॥ सीऽभाङ्गीहण्डिनी दण्डं खुचीद गदिनी गदाम्। पात्रिनोऽत्रोटयत्पात्रान् धनुः सोमख चाच्छिदत्॥ ४१॥ भपातयग्रहारैस्तासहभः कलभानिव। प्रयहीद्रावणी बद्धा वैरिविद्रावण: चचात् ॥ ४२ ॥ सप्ताक्रराज्यसचितसुपादाय पुरन्दरम्। पाताललङ्कां लङ्केशी विजेतुसगमस्ततः ॥ ४३॥

⁽१) का -वं।

⁽२) च -पतः।

इला चन्द्रोदरं तत 'तद्राच्यं खां च सोदरीम्। सोऽदात्खराय विशिरोद्रवणच्यायसे ततः॥ ४४॥ चन्द्रोदरस्य नि:श्रेषं खरः खरबसोऽग्रहीत्। एका तु गुर्विणी राच्ची प्रणय क्षचिदप्यगात् ॥ ४५॥ ततः पाताललकातो लका लकापतिर्ययो। तत निष्कार्यकां राज्यं चन्ने विष्टपकार्यकाः ॥ ४६ ॥ सोऽन्येयुः पुष्पकारूठक्रीडयेतस्ततो भ्रमन्। मक्त्रभूपप्रारम्भीचाचक्रे महामखम् ॥ ४०॥ ततो विमानादुत्ती खीं दशास्त्रस्त हिटचया। भानर्चे भूभुजा तेन पाद्यसिंहासनादिना ॥ ४८ ॥ ततो महत्तभूपालं जगादैवं दशाननः। भरे विमेष क्रियते नरकाभिसुखैर्भखः ॥ ४८ ॥ धर्मः प्रोत्तो चार्डिसातः सर्वज्ञेस्त्रिजगहितैः। पश्चिंसात्मकाखन्नात्म कयं नाम जायते ॥ ५०॥ लोकहयारिं तदाज्ञं मा कार्वीसे करिष्यसि। मह्ताविष्ठ ते वासः परत्र नरके पुनः ॥ ५१॥ विससर्ज मखं सयो मक्तत्रपतिस्तत:। प्रलक्ष्मा रावणाचा हि विष्यस्थापि भयक्षरा ॥ ५२॥ प्रभञ्जन द्वीजस्वी महत्तमखभञ्जन:। ततीऽगाचैत्ययात्राधं समेर्वष्टापदादिष ॥ ५३॥

^(!) सामा राज्यं सांच सहोदरीम्।

विधाय यातां चैत्येषु क्रतिमाक्रतिमेषु सः। पाजगाम निजं धाम पुनरेव दशाननः ॥ ५४ ॥ दतवासीदयोध्यायां पुर्व्यामेकमद्वारयः। राजा दगरयो नाम धाम नि:सीमसम्पदाम् ॥ ५५ ॥ पत्रः की श्रखाके के वी समिता सुप्रभाभिधाः। प्रियासतस्त्रस्तस्यासस्त्रूक्ती इव दिशां त्रिय: ॥ ५६ ॥ की शस्या सुषुवे रामं कैंकेयी भरतं सुतम्। सुमिना लक्षाणं नाम शनुन्नं सुप्रभाऽभिधा ॥ ५० ॥ रामलक्काणभरतशबुद्धास्तस्य रेजिरे। चलारः स्नवो दन्सा इव विदशदन्तिनः ॥ ५८॥ जनकस्य सुतां सीतां भामख्रलं सन्दोदरीम्। कार्मुकारीपणपणां रामभद्र उपायत ॥ ५८ ॥ जिनेन्द्रविम्बद्धपनजलं सङ्गलहेतवे । चतस्यां च राज्ञीनां तृपः प्रैषयदन्यदा ॥ ६०॥ तत्तीयमागतं पद्मादिति रोषसुपेयुषीम्। चनुनेतुं खयं राष्ट्रीं सुमित्रामगमनुपः॥ ६१॥ घण्टान्तर्नालिकालीलदशनं चलिताननम्। म्बेतसर्वाङ्गरीमाणं भूरीमच्छनलोचनम् ॥ ६२ ॥ पदे पदे प्रस्वलन्तं याचमानं च पञ्चताम्। गतस्तत्र ददर्भेकं जरकाञ्चिकनं नृपः ॥ ६३॥

⁽१) खचड-सहोहराम्।

तं दृष्टाऽचिन्तयद्राजा स्त्री यावबेदया वयम्। चतुर्घपुरुषार्थाय तावि प्रयतामहे॥ ६४॥ व्रतं जिष्ट्यः स ततो राज्ये खापयितं निजे। भक्रायाद्वाययामास तनयी रामनद्माणी॥ ६५॥ भरतस्य जनन्याऽय केंकेया मन्यरागिरा। वरी प्राक्षप्रतिपत्नी स याचित: सत्यसङ्गर: ॥ ६६ ॥ वरेणार्थित एकेन स तदा रघुपुङ्गवः। प्रतिपद्मस्थिरी राज्यं भरताय समार्पयत् ॥ ६०॥ चतुईश्रसमा यावद्दनवासाय चादिशत्। ससीतालकाणं रामं वरेणान्येन चार्थितः ॥ ६८॥ ससीतालक्ष्मणी रामः मधीऽगा'इण्डकावन्म । पश्चववात्रमे चावतस्थेऽसी सत्यसङ्गरः ॥ ६८ ॥ तनायाती चारणर्षी राघवाभ्यां नमस्त्रती। सीताऽऽनचीतियीभूती ऋदालु: श्रुद्दभिचया ॥ ७० ॥ ततो गन्धोदकैई ष्टिरमरे विदिधे तदा। तद्रसादाययी तत्र जटायुनीम राप्तराट्॥ ७१ ॥ ती मुनी देशनां तत्र चक्रतुः स व्यबोधि च। संजातजातिसारणीऽवतस्ये चानुजानिक ॥ ७२ ॥ तस्युषस्तत्र रामस्य फलादार्थं बिहर्गतः। ददर्भ लक्षाण: खन्नमग्रहीच कुत्रुहलात्॥ ७३॥

⁽१) खचड-इव्डिका-।

⁽२) सामा व्यनुद्धात।

तत्ती स्पलपरी चार्थं तत्वणं तेन लक्षणः। प्रभ्यर्णस्थां वंग्रजालीं नललावं लुलाव च ॥ ०४ ॥ वंग्रजालान्तरस्यस्य क्रत्तं कस्यापि देशिनः। षयैकं मी लिकमलं सीऽपग्यत्पतितं पुर: ॥ ७५ ॥ षयुध्यमानीऽशस्त्रय पुमान् कोऽपि इतो मया। पसुना कर्मणा धिग्मामित्यातानं निनिन्द सः ॥ ७६ ॥ गला च रामभद्राय तद्येषमचीकथत्। पिं च दर्भयामास रामोऽप्येवमभाषत ॥ ७० ॥ षसाविसः सूर्येशसः साधकीऽस्य त्वया इतः । प्रस्य सभाव्यते नृनं किंदिनुत्तरसाधकः ॥ ७८ ॥ पतासर दग्रगीवस्तमा चन्द्रचखाऽभिधा। खरभार्या ययी तत्र ददर्भ च इतं सुतम् ॥ ७८ ॥ कासि दा वस गम्बूक गम्बूकिति ददत्यसी। चपस्यवस्यास्यां क्रिन्यासपङ्तिं मनोहराम् ॥ ८०॥ मम सुनुईतोऽनेन यस्येयं पदपद्यति:। पदपङ्क्तिपयेनैव ततसन्द्रचखाऽऽययी ॥ ८१ ॥ याविकिचिदगात्तावसमीतालद्मणं पुरः। नेवाभिरामं रामं साऽपश्वत्तरते खितम्॥ ८२॥ निरीच्य रामं सा सद्यो रिरंसाविवशाऽभवत्। कामाविशः कामिनीनां श्रीकोद्रेकेऽपि कोऽप्यहो ॥ ८३ ॥ स्वं कपं चार कलाऽय रन्तुं रामस्तयाऽर्धितः। इसन्चे सभायींऽइमभायें भज नकाणम् ॥ ८४॥

तयाऽर्थितस्त्रधैवैत्य सस्मणोऽप्येवमब्रवीत्। भार्ये गता लमार्थेव तदलं वार्तयाऽनया ॥ ८५ ॥ सा याज्ञाखग्डनात्पुत्रवधाच क्षिताऽधिकम्। भाष्यप्रता खरादीनां तत्कृतं तनयच्चयम्॥ ८६॥ विद्याधरसङ्खेस्ते चतुर्दशभिरावृताः। ततोऽभ्येयुक्पद्रोतं रामं शैलमिव दिपा: ॥ ८० ॥ किसार्थः सत्यपि सिय योत्यते स्वयसीद्रशैः। द्रित राममयाचिष्ट तेषां युद्धाय लक्क्षणः ॥ ८८॥ गच्छ वता ! जयाय त्वं यदि ते सङ्गरं भवेत्। सिंइनादं ममाइत्ये क्यी इत्यन्वशात स तम्॥ ८८॥ रामाज्ञां प्रतिपद्योज्ञैर्लद्मणोऽय धनुःसखा । गला प्रवहते इन्तुं स तांस्तार्च्य इवीरगान् ॥ ८० ॥ प्रवर्दमाने तदाहे स्वभर्तः पाणिवह ये। गला लरितमित्यूचे रावणं रावणखसा ॥ ८१ ॥ भायाती दण्डकार खे मनुष्यी रामलक्षाणी। मनामात्री निन्यतुरते यामेयं यमगीचरम् ॥ ८२ ॥ त्रुला खरूपतिस्ते तु सानुजः सबली ययौ। तत्र सीमितिणा साईं युद्यामानोऽस्ति संप्रति ॥ ८३ ॥ किन्छभात्ववीर्येण स्ववीर्येण च गर्वित:। परतोऽस्ति स्थितो रामो विलसन् सीतया सह ॥ ८४ ॥ सीता च रूपलावखात्रिया सीमेव योषिताम्। न देवी नीरगी नापि मानुष्यन्यैव काऽपि सा॥ ८५॥

तस्या दासीक्तताशिषसुरासुरवध् जनम्। नैलोक्येऽप्यप्रतिच्छन्दं रूपं वाचामगोचरम ॥ ८६ ॥ भाससुद्रमसुद्राच ! यानि कान्यपि भूतले। तवैवार्ष्टित रहानि तानि सर्वाणि बान्धव । ॥ ८० ॥ दृशामनिमिषीकारकारणं क्वसम्पदा। स्त्रीरत्नमेतद्रश्लीया नचेत्तनासि रावण: ॥ ८८ ॥ भारता प्रधानमधादिदेश दशकत्वरः। विमानराज ! लरितं याचि यत्रास्ति जानकी ॥ ८८ ॥ ययी चात्यमावेगेन विमानमन्जानिक । सर्वयेव दग्रयीवमनसस्तव गच्छतः ॥ १००॥ दृष्टाऽपि रामादत्युयतंजसो दशकत्यरः। विभाय दूरे तस्थी च व्याघ्रो इतवहादिव ॥ १॥ इति चाचिन्तयदितः कष्टं रामी दुरासदः। इतव सीताचरणमितो व्याघ्र इतस्तटी॥ २॥ विस्रय च ततो विद्यामसार्षीदवसोकानीम्। चपतस्ये च सा मङ्गु किङ्करीव क्रताञ्जलिः॥ ३॥ ततसाजापयामास तलालं तां दशाननः। क्रव साहाय्यमङ्गाय मम सीतां इरिष्यतः ॥ ४ ॥ साऽवीचहासुकेर्मीलिरतमादीयते सुखम्। न तु रामसमीपस्था सीता देवासुरैरिप ॥ ५ ॥ चपायः किन्लसावस्ति यायादः येनैव लच्चाणम् । तस्मैव सिंइनादेन सङ्घेती द्यानयोरयम् ॥ ६ ॥

एवं कुर्विति तेनोत्ता व्रजिला परतस्ततः। सा साचादिव सीमित्रिः सिंहनादं विनिर्ममे ॥ ७ ॥ तं युला मैथिलीं तत्र मुक्का रामो ययौ दूतम्। महतामपि मोहाय भनेनाया हि मायिनाम् ॥ ८॥ भवीत्तीर्यं दगगीव: सीतामारोप्य पुष्पति। त्वां हरन् रावणीऽस्रीति कथयत्रभसा ययौ ॥ ८ ॥ हा नाथ विद्विषमाथ राम हा वता लचाण। हा तातपाद हा भातभीमण्डल महाभुज ॥ १० ॥ सीता वी क्रियतेऽनेन काकीनेव बलि'ञ्छलात्। एवं सीता बरोदोचे रोदयन्तीव रोदसीम् ॥ ११ ॥ मा भैषी: पुति मा भैषी: कारे यासि निशाचर। रोषादिति वदन् दूराज्यटायुस्तमधावत ॥ १२ ॥ भामण्डलानगर्यकः कोऽपि विद्याधरायणीः। **ड्टीके दमकार्छ रे तिष्ठ तिष्ठेति तर्जयम् ॥ १३ ॥** जटायुर्विकटाटीप'करजवोटिकोटिभि:। ैप्रणिइन्तुं दशयीवोरसि प्रवहते ततः ॥ १४ ॥ रे जीवितस्य स्ताऽसि जरहुम्रेति विमुवन्। दशास्त्रयम्द्रहासासिमाक्षय निजघान तम् ॥ १५ ॥

⁽⁸⁾ 有智可有-"酸-1

⁽२) चड-नखर-।

⁽१) खाच प्रतिकृत्तुं।

तस्य विद्याधरस्यापि विद्यां दशसुखोऽहरत्। निकत्तपचः पचीव सोऽपविद्योऽपतद्ग्वि॥ १६॥ रावणीऽगात्तती लङ्कां सीतां चीपवनेऽस्चत्। तां प्रलोभियतं तत्र विजटामादिदेश च ॥ १० ॥ रामखापि इतामिनः सीमिनिः संमुखीऽभवत्। भार्यामार्थ ! विसुर्चेकां किमागा इति चात्रवीत् ॥ १८ ॥ षाञ्चतः सिंचनादेन तव वैधुर्यलक्षाणा। लक्षागाऽन्तमन्त्रायातो व्याजनारित राघव: ॥ १८ ॥ सस्मणोऽप्यवदस्रके सिंहन।दी मया नहि। श्रुतदार्थेण तसूनं वयं केनापि विश्वताः ॥ २०॥ भपनितुं सत्यमार्यामपनीतोऽस्युपायतः। सिंइनादस्य करणे शक्के स्तोकं न कारणम् ॥ २१ ॥ ब्रवन् साध्विति रामोऽपि खत्यानेऽगाससमागः। सीतामपग्यन् कासीति विजयमृर्च्छितोऽपतत् ॥ २२ ॥ तं सन्धसंत्रं सीमितिरित्यूचे बदितैरसम्। पीर्षं पुरुषाणां हि व्यसनेषु प्रतिक्रिया ॥ २३॥ प्रवास्तरे पुमानेकः कि विदेख ननाम तौ। ताभ्यां प्रष्ट: खद्यताम्तमवं व्यन्नपयच सः ॥ २४ ॥ इला पाताललक्षेणं तातं चन्द्रीदरं मम। प्रमास्येव परे तस्य खरं खररघोऽकरोत्॥ २५॥ गुर्वी च नष्टा मन्माता विराधं नाम मां सुतम्। भन्यवास्त तस्याध कथिदास्यदिदं मुनि: ॥ २६॥

यदा दाशरिश्वरेन्ता खरादींस्वत्सुतं तदा। पाताललङ्काधिपतिं करिष्यति न संगयः ॥ २०॥ तदय समयं लब्धा युषानस्मि समात्रितः। पित्ववैरिवधक्रीतं पत्तिं जानीय मां निजम् ॥ २८ ॥ रामस्ततोऽदात्पाताललक्षां तस्रो महाभुजः। फलिल समयन्नानां खामिन: खयमेव हि॥ २८॥ तं च स्थापियतुं तत्र गच्छन् रामः सलच्यापः। ऋतिवयं पुरोऽपश्यद्गृस्यं भामग्डलानुगम् ॥ ३०॥ भव दागरवी नला खहत्तानां व्यजिज्ञपत्। पालनस जटायोस सीताया रावणस्य च ॥ ३१॥ प्रथ पाताललङ्कायां ययी रामः सलच्मणः। सत्यसन्धो विराधं च पित्रे राज्ये न्यवैगयत् ॥ ३२ ॥ द्रतस साइसगतिनीम विद्याधरायणीः। खे भ्रमत्रधिकिष्किश्वाधित्यकं ससुपाययी ॥ ३३॥ ययी तदा च कि कि साधिपतिः क्रीडितुं बहिः। सुग्रोवः सपरीवारो राज्ञां हि स्थितिरीटगी ॥ ३४ ॥ ददर्भ साइसगतिम्तदा चाम्तः पुरस्थिताम्। सुग्रीवस्य प्रियां नास्त्रा तारां तारविलोचनाम् ॥ ३५ ॥ तस्यां नावस्यमू लिन्यां स चिक्री डिषु र चर्की:। इयेष नान्यतो गन्तुं घर्मात्तं इव कुझरः ॥ २६॥ सोऽस्थात्तथैव तत्रैव निविद्यगमन: चणात्। तां मूर्त्तीमिव कामाज्ञामुज्जद्वितुमच्चमः॥ ३०॥

रमणी रमणीयेयं रमणीया मया कथम्। दतीच्छाव्याकुतः 'सोऽप्युपायं चणमचिन्तयत् ॥ ३८ ॥ सहसा साहसगतिस्ततः सुगीवक्पताम् । स कुगीललकुगल: कुगीलव प्रवाददे ॥ ३८ ॥ पवासी विटसुगीवः सुगीव इति मानिभिः। मक्ररचैरखतलितः सुयीवभवनेऽवियत्॥ ४०॥ पन्तःपुरग्टहद्वारं स ययौ यावदुक्षकः। तावहराघुट्य सुगीवः स्ववैक्सहारमाययौ ॥ ४१ ॥ सुगीवस्य प्रवेष्टुं न दारं प्राइरिका ददुः। षये प्रविष्टो राजाऽस्ति लमन्योऽसीति वादिन: ॥ ४२ ॥ ततस सत्यसगीव सबस्यमाने खवेचिभि:। चत्लसुनो जन्ने मध्यमान द्वार्षवे ॥ ४३॥ सुगीवहितयं दृष्टा सन्देशहालिनन्दनः। मुद्रान्तविप्रवं व्रातं तद्दारं लिरितो ययी ॥ ४४ ॥ शुद्धान्ते विटसुग्रीवः प्रविशन् वासिस्नुना । मार्गोद्रिणा सरित्पृर इव प्रस्वसितस्तत: ॥ ४५ ॥ षयामिलन् सैनिकानामची हिस्स बतुर्देश । ्चतुर्दश्रजगत्सारसर्वस्त्रानीव सर्वतः॥ ४६॥ इयोरिप तयोभेंटमजानन्तोऽय सैनिकाः। सत्यसुगीवतोऽचें ऽचें विटसुगीवतोऽभवन् ॥ ४०॥ ततः प्रवहते युद्धं सैन्ययोदभयोरपि।

⁽१) कचा च उ कामं बोऽभ्युपावमचिन्तवत्।

कुम्तपातैर्दिवं कुर्वेदुरकापातमयीमिव ॥ ४८ ॥ युयुधे सादिना सादी निषादी च निषादिना। पदातिना पदातिस रियको रियकेन च ॥ ४८ ॥ चतुरक्रचमुचक्रविमदीद्य मेदिनी। भवाप कम्पं सुन्धेव प्रीटिप्रियसमागमात्॥ ५०॥ एश्लोहि रे परग्टइप्रवेशम्बन्निति ब्रुवन्। विटसुगीवसुद्रीव: सुगीवो यो सुमाह्नत ॥ ५१ ॥ ततस विटसुगीवी मत्तेभ इव तर्जित:। जर्जितं गर्जितं कुर्वन् संमुखीनी युधेऽभवत् ॥ ५२ ॥ युयुधाते महायोधी ती क्रोधारणलीचनी। विद्धानी जगन्नासं कीनामखेव सीदरी ॥ ५३॥ ती निगातिनिगातानि गस्त्रै: गस्ताख्ययो मियः। चिच्छेदाते त्रणच्छेदं रणच्छेकावुभाविष ॥ ५४॥ गस्त्रखण्डैबच्छलद्विदुवे खेचरीगणः। महायुद्धे तयोर्वृचखग्छी महिषयोरिव ॥ ५५॥ ती क्रियास्त्रावधान्योत्यसमर्पणिश्रोसणी। मक्तयुद्देनास्मालतां पर्वताविव जङ्गमी ॥ ५६ ॥ उत्पतन्ती चणाद्योक्ति निपतन्ती चणाइवि । ताम्बचुडाविवाभातां वीरचृडामणी उभी ॥ ५०॥ ती दाविप महाप्राणी मिथो जेतुमनी खरी। भपस्त्य च दूरेण दृषभाविव तस्यतु:॥ ५८॥ पुनर्युद्देन सुग्रीव: खित्र: खित्रतमुस्तत: ।

बिइनिर्गेख किष्किन्धापुरादावासमग्रहीत् ॥ ५८ ॥ तत्रैव विटसुगीवस्तस्यावस्तस्यानसः। ' मन्तः पुरप्रविशंतुन लेभे वालिनन्दनात्॥ ६०॥ सुगीवो न्यश्वितगीवमधैवं पर्याचिम्तयत् । पद्दी स्त्रीलम्पटः कूटपटुः कीऽप्येष नो दिषन् ॥ ६१ ॥ पाकीया प्रध्वनाकीया दिवसायावशीकताः। षहो बभूवस्तदसाववस्तन्दो निजैईयै: ॥ ६२ ॥ मायापराक्रमोत्कृष्टः कथं वध्यो दिषन् मया। धिग्मां पराक्रमभ्रष्टं वालिनामस्त्रपाकरम् ॥ ६२ ॥ धन्यो महाबली वाली योऽखग्डपुरुवव्रतः। राज्यं त्रणिमव त्यक्का यस भेजे परं पदम् ॥ ६४ ॥ चन्द्ररिमः कुमारो मे बन्नीयान् जगतोऽप्यसी। किंतु इयोरभेदन्नः कं रचतु निइन्तु कम्॥ ६५॥ द्दं तु विदधे साधु साध्वको चन्द्रश्मिना। तस्य पापीयसी रुद्धं शुद्धान्ते यत्प्रविशनम् ॥ ६६ ॥ वधाय बलिनोऽसुच्य बलीयांसं श्रयामि कम्। यद् घात्या एव रिपवः खतोऽपि परतोऽपि वा ॥ ६० ॥ भूभीवः खस्त्रयीवीरं मकत्तमखभन्ननम्। भजामि विदिषदातहेतवे किं दशाननम् ॥ ६८ ॥ मसी किंतु प्रक्तत्या स्त्रीलीलस्त्रैलीक्यकप्टकः। तं च मां च निहत्याश तारामादास्वते स्वयम् ॥ ६८ ॥ **९** हमे व्यसने प्राप्ते साहाय्यं कर्तुमी खरः।

पासीत् खरः खरतरो राघवेण इतः स तु॥ ७० ॥ तावेव रामसीमित्री गला मित्रीकरोमि तत्। तलासोपनतस्यापि यौ विराधस्य राज्यदौ ॥ ७१ ॥ ती तु पाताललङ्घायामलंकर्मीणदीर्वली। विराधस्योपरोधेन तथैवाद्यापि तिष्ठतः॥ ७२ ॥ एवं विस्था सुयीवोऽनुशिष रहसि स्वयम। विराधपुर्या विम्हासभुतं दूतं न्ययोजयत् ॥ ७३ ॥ गता पाताललकायां विराधाय प्रणम्य सः। स्वामिष्यसनहत्तान्तं कद्ययित्वांऽत्रवीदिदम्॥ ७४॥ महति व्यसने खामी पतितो नस्तदीह्ये। राघवी गरणीकर्तुं तव द्वारेण वाञ्कति ॥ ७५ ॥ दूतमायातु सुयीवः सतां सङ्गी हि पुख्यतः। तेनेत्युक्तो दूत एत्य सुचीवाय ग्रमंस तत्॥ ७६॥ प्रचचालाय सगीवोऽम्बानां ग्रेवेयकस्वने:। दिगो सुखरयन् सर्वा वेगाइ्रसदूरयन् ॥ ७० ॥ पाताललक्षां स प्राप चलेनाय्युपवैश्मवत्। विराधं चीपतस्येऽसावभ्युत्तस्यी स चापि तम् ॥ ७८ ॥ विराधोऽपि पुरोभूय रामभद्राय तायिने। तं नमस्कारयामास तहु:खं च व्यक्तिज्ञपत्॥ ७८॥ सुयौवं। प्येवमूचे असिन् दुःखे त्वमसि मे गतिः। चुते हि सर्वया मूढे घरणं तरिषः खलु ॥ ८०॥ स्वयं दुः ख्यपि तद्दः खच्छेदं रामो अथुपागमत्।

85

स्वकार्यादिधिको यद्धः परकार्यं महीयसाम् ॥ ८१ ॥ सीताचरणवसान्तं विराधेनावबोधित:। रामं विजययामास सुयीवोऽय कतान्त्रलिः ॥ ८२ ॥ वायमाणस्य ते विष्यं तथा चौतयतो रवे:। न कापि कारणापेचा देव विचम तथाप्यदः ॥ ८३ ॥ त्वग्रसादात् चतारिः सन् ससैन्योऽपि तवानुगः। भानेषामि प्रवृत्तिं च सीताया न चिरादहम्॥ ८४॥ ससुगीव: प्रतस्थे च किष्किन्धां प्रति राघव:। विराधमनुगच्छनां संबोध्य विससर्ज च ॥ ८५ ॥ रामभद्रेऽय किष्कित्यास्त्रत्यावारमधिष्ठितं। सयीवो विटसुयीवमाद्वास्त रणकर्मणे ॥ ८६ ॥ निनद्न विटसुपीवोऽप्यागादाह्वानमावतः। रणाय नाससा: शूरा भोजनाय हिजा इव ॥ ८० ॥ द्रदेश्वर्णन्यासैः कम्पयन्तो वसुन्धराम्। तावुभावप्ययुध्येतां मत्ताविव वनहिपौ ॥ ८८ ॥ राम: सक्षी ती दृष्टा कोऽस्मदीय: परस कः। इति संग्रयतस्तस्यावुदासीन इव चणम् ॥ ८८ ॥ भवत्वेवं तावदिति विस्थान् रघुपुद्भवः। वचावर्त्ताभिधधनुष्टद्वारमकरोत्ततः ॥ ८० ॥ धतुष्टक्वारतस्त्रसात्मा साइसगतेः चयात्। कपान्तरकरी विद्या इरिणीव 'पलायत ॥ ८१ ॥

⁽१) साम परायिता।

विमोश्च मायया सर्वे परदारे रिरंससे। पापारीपय रे चापमिति रामस्ततर्ज तम् ॥ ८२ ॥ एकेनापीषुणा प्राणांस्तस्याहार्षीद्रघृहहः। न दितीया चपेटा हि इरेईरिणमारणे ॥ ८३ ॥ विराधमिव सुयीवं रामी राज्ये न्यवेशयत्। स्योवोऽपि खलोकेन प्राग्वदेवानमस्यत ॥ ८४ ॥ इतस रामकार्यायागाहिराधः समं बलैः। स्वामिकत्यमकत्वा हि कतजा नासते सुखम् ॥ ८५ ॥ भामख्डलोऽपि तत्रागाद् विद्याधरचमूवृत:। प्रभुकार्यं कुलीमानामुक्तवो द्युत्सवादिष ॥ ८६॥ जाम्ब्वचनुमनीलनलादीन् विदितीजसः। सुगीवस खसामन्तान् समन्तादप्यजूहवत् ॥ ८० ॥ विद्याधरचमूचक्रीष्वायातिष्वय सर्वतः। उपेत्य रामं सुयीवः प्रणम्यैवं व्यजिन्नपत् ॥ ८८ ॥ 'इनुमानाञ्जनेयोऽयं विजयी पावनञ्जयिः। सीताप्रवृत्त्ये लङ्कायां त्वदादेशाद् व्रजिष्यति ॥ ८८ ॥ रामिणाचापितो दत्त्वा खमभिचानमूर्मिकाम्। नभस्वानिव नभसा नभस्वत्तनयो ययौ ॥ २००॥ सोऽगारचणेन लङ्गायास्याने घिंगपातले। सीतामपश्यद्यायन्तीं नाम रामस्य मन्त्रवत्॥१॥

⁽१) क ग च इनुमानिति सर्वेत पाठः।

तर्शाखातिरीभूतः सीतोत्सङ्गेऽङ्गुसीयकम्। इन्मान् पातयामास तहद्वा सुसुदे च सा ॥ २ ॥ तदेव गला विजटा दशकाछं व्यक्तिप्रपत्। प्यत्नालं विषयाऽऽसीत् सानन्दा तवा जानकी ॥ २ ॥ मन्ये विद्युतरामियं रिरंसुर्मीय संप्रति। तहला बोध्यता'मित्यादिचत् मन्दोदरीं स तु ॥ ४ ॥ ततस पत्युर्दूखेन तन मन्दोदरी ययौ। प्रलीभनकृते सीतां विनीता सेत्यवीचत ॥ ५ ॥ भहेतीसर्थसीन्दर्थवर्यस्तावहमाननः। लमप्पप्रतिक्पैव क्पलावस्थसम्पदा ॥ ६ ॥ यदाप्यक्रेन दैवेन युवयोक्भयीरपि। न व्यथायुचितो योगस्तयापि श्चालु संप्रति ॥ ०॥ उपीत्य भजनीयं तं भजन्तं भज राववम्। पहमन्याय तद्राजास्वदाज्ञां सुभ् ! विभ्नतु ॥ ८ ॥ सीताऽप्यवीचदाः पापे पतिदूत्यविधायिनि । लक्षर्तुरिव वीचेत सुखं दुर्मुखि कस्तव ॥ ८ ॥ रामस्य पार्थे मां विदि सीमितिमिष्ट चागतम्। खरादीनिव धन्तुं द्राक् धवं तव सवास्ववम् ॥ १० ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ पापिष्ठे वस्मि नातः परं लया। सीतया तर्जितैवं सा सकोपा प्रययी ततः॥ ११॥

⁽१) सच छ -मेनमूचे।

भवावतीर्य इनुमान् सीतां नला कताष्त्रसि:। प्रस्मे देवि जयति दिध्या रामः सलक्षाणः ॥ १२ ॥ लगृहत्तिकते रामेणादिष्टोऽइमिशागमम्। मयि तत्र गते राम इष्टेंचिति रिपुच्छिदे॥ १३॥ पतिदूर्तं इनुमन्तमभिज्ञानसमपेकम्। प्रीता सीताऽप्यया**गीभिरमो**घाभिरमस्यत् ॥ १४॥ इन्मदुपरोधेन रामीदन्तमुदा च सा। एकोनविंगत्युपवासान्ते व्यक्षित भोजनम् ॥ १५ ॥ प्राभन्त्रनि: प्रभन्तन रवोद्यानस्य भन्तने। प्रवृत्ती दशकारुख बलालीकनकीतुकात्॥ १६॥ भज्यमानं तद्यानं तेन मानमिवोचकैः। चपेत्य दशकार्यस्थाभंसनुद्यानपासकाः ॥ १७॥ पारचा रावणादिष्टास्तं निष्ठन्तुं समागताः। हता हनूमतेवेन विचित्रा हि रचे गति: ॥ १८ ॥ षादिष्टो दशकाखेन साटोपः शक्रजित्ततः। तदन्धायामुचत्पाथान् पायै: स्वं सीऽप्यवन्धयत् ॥ १८ ॥ नीतसामे दगास्यस्य दलयन् मुकुटं पदा। उत्पवातावास्तवाशस्त्र डिइग्ड दवानिसिः ॥ २०॥ इन्यतां ग्रह्मतां चैष इति जल्पति रावणे। भनावामिव सोऽभाङ्चीत्तत्पुरीं पाददर्दरै: ॥ २१ ॥ क्रीडां कर्लेवमुत्पच्य सुपर्ण ६व पावनिः। एल रामं नमस्तला तं हत्तान्तं व्यजिष्ठपत् ॥ २२ ॥

रामस्तं गाढमापीचोरसा सुतमिवीरसम्। लक्षाविजययाताये सुपीवादीनयादिशत्॥ २३॥ समुद्रं रावणारचं बह्वा सेतुं च राघव:। सङ्गापुरी विमानस्यः सुयीवादीः समं ययी ॥ २४ ॥ निवेध्य कटकं रामो इंसडीपान्तरे तत:। 'भववेष्ट बलेर्च हामेकपाटक लीलया ॥ २५ ॥ प्रवासारे दशयीवं प्रणस्योचे विभीषणः। कनिष्ठस्वापि मे स्वामित्रयोकं वचनं कुरु॥ २६॥ षायातो रामभद्रोऽच निजां जायां च याचते। पर्यंतां तदसी सीता धर्मीऽप्येवं न बाध्यते ॥ २०॥ पयोचे रावणो रोषाद्रे विभीव विभीवण। तदेवसुपदेशं मे दब्से कापुरुषोचितम् ॥ २८ ॥ विभीषणो वभाषेऽघ दूरे राम: सलच्मण:। तत्पत्तिरेको इनुमान् दृष्टो देवेन किं निष्ट ॥ २८ ॥ पस्रहेषी विपचानुरागी जातोऽसि यादि रै। इति निर्वासितस्तेन ययौ रामं विभीषण: ॥ ३०॥ ब्रुकाधिपत्यमेतसी रामोऽपि प्रत्यपद्यत । नच्चीचित्ये विमुच्चान्ति मद्दाव्यानः कदाचन ॥ ३१ ॥ बिडिनिंगत्य लक्षेत्रसेना राघवसेनया। कांस्यतालं कांस्यतालेनेवास्कालदधीत्वणम् ॥ ३२ ॥

⁽१) च च्यविषेटत्।

⁽२) खब ब।

प्राणसर्वस्वदेवि खोमियसम्बोगतागतम्। जयत्री: त्रीरिवाकार्षीदुत्तमर्णाधमर्षयी: ॥ ३३ ॥ रामभ्यूसंज्ञयाऽऽज्ञप्ता इन्मणमुखास्ततः। जगाहिरे दिवलौन्यं सुरा दव महोदिधम् ॥ ३४ ॥ इताः केऽपि धृताः केऽपि नाशिताः केऽपि राचसाः। प्रसरकी रामवीरेर्दुवरिवारणैरिव ॥ ३५ ॥ कुभाकर्णस्तदाकर्ण्यं कुदो विक्रिरिव ज्यसन्। मेघनादय सावेग: प्रविवेग रणाष्ट्रणम् ॥ २६ ॥ तावापतन्ती कल्पान्तपवनञ्चलनाविव। न हि सोदुमशकोतां रामसैन्यैभेनागपि ॥ ३०॥ सुग्रीवोऽय रुषोत्पाव्य शिलामिव शिलोचयम्। भविपल्नुभक्षकाय सोऽपि तं गदयाऽपिषत् ॥ ३८ ॥ पुनर्गदाप्रहारेण पातयित्वा कपीष्वरम्। कचायां न्यस्य पीनस्यो लड्डां प्रत्यचनत्तत: ॥ ३८ ॥ मेघवविनदमोघनादोऽपि मुदितस्ततः। प्रवङ्गान् प्रावयामास निशातशरहष्टिभिः ॥ ४० । ड्ढीके तिष्ठ तिष्ठेति भाषमाणीऽक्णेचणः। रामोऽय कुभाकाणीय मेघनादाय लच्छाणः ॥ ४१ ॥ सुयीवीऽप्यत्पपाताय सत्वीजो रावणानुजात्। मुष्टी धृतः कियलासं नतु तिष्ठति पारदः ॥ ४२ ॥ विलतः कुभकर्णीऽपि रामेण युयुधे ततः। सीमितिणा मेचनादोऽप्रमादः चोभयन् जगत्॥ ४३ ॥ मिलितौ रामपीलस्यावसी पूर्वीपराविव। प्रभातासुत्ररापाच्याविव लच्चापरावणी ॥ ४४ ॥ रावणावरजं रामी रावणिं सद्यायः पुनः। पातियत्वाऽप्रहीकात्यं रचसामि राचसः ॥ ४५ ॥ रावणेरावणो रोषादशेषकपिक्कन्नरान्। पिंषस्याययी युष्तभ्वं भ्वनभीषणः ॥ ४६ ॥ पलमार्थ ! खयं युद्देनिति रामं निवारयन् । सीमिविरभ्यमिवीचो बभूवास्मालयन् धतुः ॥ ४०॥ चिरं युद्राऽखिलेरस्त्रेरस्तविद्रावणस्ततः। जवानामोवया ग्रत्या मङ्चु वचिस लक्काणम् ॥ ४८॥ यत्त्वा भिन्नोऽपतत्त्वोच्यां सद्मणस्तत्त्वणादपि। तथैव सधी रामोऽपि बलवच्छोकगङ्गा ॥ ४८ ॥ कत्वा वप्रान् भटेरष्टी प्राचैरपि चितैषिचः। सुग्रीवाद्यास्ततो रामं सलक्ष्मणमविष्टयन् ॥ ५०॥ मरिचलया सीमितिस्तदभावे तदयजः। किं मुधा मे रणेनिति रावणोऽगात्प्रीं ततः ॥ ५१॥ राघवं परितो जाते वप्रहारचत्रष्ट्ये। सुगीवप्रमुखास्तस्युरारचीभूय ते निधि ॥ ५२ ॥ भामग्डलमघोपित्य दिचणदाररचणम्। पूर्वसंतुत रत्यूचे कोऽपि विद्याधरायची: ॥ ५३ ॥ षयोध्याया योजनेषु द्वादशस्ति पत्तनम् । कीतुकमङ्गलमिति तत्र द्रोणघनो रूपः ॥ ५४ ॥

कैनेयीभातुरस्यास्ति विशस्या नाम कन्यका। तस्याः सानामासः सार्धे प्रत्यं निर्याति तत्त्वणात् ॥ ५५ ॥ पापत्यवाक्षकावसेत्तरसानपयसीकाते। गतमस्यस्तदा जीवेदन्यया तु न जीवित ॥ ५६ ॥ तती मत्रात्ययाद्वामभद्रं विज्ञपय द्वतम्। कस्यापि दापयादेशं तदानयनहेतवे॥ ५०॥ लर्थ्यतां स्वामिकायीय प्रत्यूषे किंकरिष्यय। **उदस्ते गक्टे इन्त किं कुर्वीत गणाधिय: ॥ ५**८ ॥ भाम खनस्ततो गला तद्रामाय व्यजित्रपत्। षादिचत्तलृति रामस्तमेव इनुमयुतम् ॥ ५८ ॥ र्यमुस्ती विमानेनायोध्यां पवनरं इसा। प्रासादाके दृहयतुः ययानं भरतं ततः ॥ ६० ॥ भरतस्य प्रबोधाय तौ गीतं चक्रतः कलम्। राजकार्येऽपि राजान उत्याप्यन्ते द्युपायत: ॥ ६१ ॥ विबुध्य भरतेनापि दृष्टः पृष्टः पुरो नमन्। जिने भामकात: कार्यं नाप्तस्थाप्ते 'प्ररोचना ॥ ६२ ॥ बेत्स्यत्वेतनाया तत्रेयुषित भरतस्ततः। तिहमानाधिक्छोऽगात्पुरं कौतुकमङ्गलम् ॥ ६३॥ भरतेन द्रोणघनी विश्रखामघ याचित:। सहोबाद्य स्त्रीसहस्रसहितां तामदस च ॥ ६४ ॥

⁽१) कखच -मृ।

भामण्डलीऽप्ययोध्यायां सुक्ता भरतसुब्धुकः । षाययौ सपरीवारविश्रत्यासंयुतस्ततः ॥ ६५ ॥ व्यलहीपविमानस्थी भीतैः सूर्यीदयभ्रमात्। चणं दृष्टो निजः सोऽधादिशत्यासुपलक्काणम् ॥ ६६ ॥ तया च पाणिना स्पृष्टाक्षस्मणात्तरचणादपि। नि:स्त्य काप्यगाच्छ तिर्यष्टिनेव महोरगी ॥ ६७ ॥ तस्याः सानाभसाऽन्येऽपि रामादेशादयोचिताः। नि: श्रस्था जित्तरे सैन्याः पुनर्जाता इव चणात् ॥ ६८ ॥ ष्याः स्नानाभसा चेतुं कुश्ववर्णादयोऽपि ते। षानीयतामिन्ने सुचैरादिदेश रघृददः॥ ६८॥ तदानीमेव तैदेंव प्रवच्या जग्रहे खयम्। इति विज्ञपयामासुरारचा सद्याणायजम्॥ ७०॥ वन्वास्तेऽद्य महातानी मोचा मुतिपयस्यिताः। दति रामगिराऽऽरचैनेत्वाऽसुचन्त ते चणात् ॥ ७१ ॥ विश्रत्यां कन्यकास्ताय तदोपायंस्त लच्चाणः। रावणोऽपि रणायागादमर्षणिशरोमणिः ॥ ७२ ॥ प्रवास्य रामं सीमितिवत्तस्थेऽधिच्यकार्मुकः। विवाहाद्युत्सवेभ्योऽपि वीराणासुत्सवो रणः ॥ ७३ ॥ यद्यदस्तं दग्रमीवो विसम्जातिदार्णम्। तत्ति चिच्छेद सीमित्रिरस्तैः कदलिकाण्डवत् ॥ ७४ ॥ पस्तच्छेदादय कुष्ठवक्षं चिचेप रावणः। तज्ञक्षाणोरस्यपतचपेटावन धारया ॥ ७५ ॥

तदेवादाय सौमिती रावणस्याच्छिदच्छिरः।
निजाम्बेरप्यवस्तन्दः पतेत् स्वस्य कदापि हि॥ ७६॥
सीता स्वर्णयलाकेव निर्मला शीलशालिनी।
रामेण जग्रहे सङ्घाराच्ये म्यस्तो विभीषणः॥ ७०॥
यतुं निहत्य ससहोदरदारमित्रो

गर्ने निष्ठत्य संसष्टीदरदारीमधी रामी ययावय निर्जा नगरीमयोध्याम् । उत्पन्नया परकलनरिरंसयाऽपि' कत्वा कुलबयमगानरकं दशास्य: ॥ २०८॥

॥ इति सीतारावणकथानकम् ॥ ८८ ॥

तस्रात्।

लावख्यपुख्यावयवां पदं सीन्दर्यसम्पदः। कलाकलापकुशलामपि जच्चात्परस्त्रियम्॥१००॥

दुस्यजामि परिस्तयं जन्नात्परिहरेत्। दुस्यजले हेत्नाह। सावख्यपृष्यावयवां सावख्यं स्पृष्टणीयता रूपादिभ्योऽतिरिक्तं तेन पृष्याः पवित्रा भवयवा यस्यास्तां, पदं स्थानं सौन्दर्यसंपदो रूपसम्पदः, कला हासप्ततिलेंखाद्याः स्त्रीजनीचिताः तासां कलापः समूहस्तत्र कुशलां प्रवीणाम्। लावख्यं, रूपं, वैदन्धं च परदाराणां दुस्यजले हेतुः। भिष्य शब्दस्त्रिष्वपि हेतुषु सम्बन्धनीयः ॥ १००॥

⁽१) सच हि।

परस्तीगमने दोषानभिधाय परस्तीविरतान् प्रशंसति—

चक्क क्षमनोवृत्तेः परस्त्रीसित्रधाविष । सुदर्भनस्य विं त्रूमः सुदर्भनससुत्रतेः ॥ १०१॥

परस्तीसविधानेऽपि निष्कलक्ष्येतो हत्ते: सुदर्भनाभिधानस्य महात्रावकस्य किं ब्रूम: कां सुतिं कुर्मे । वचनगोचरातीता सुतिरित्यर्थ:। सुदर्भनस्य विभिष्णं सुदर्भनसमुद्यते: भोभना दर्भनसमुद्रतिर्यस्मात्तस्य, सुदर्भनप्रभावकस्येत्यर्थ:।

सुदर्भनय संप्रदायगग्यः। स चायम्---

प्रस्यक्तदेशंऽत्यलकापुरी चम्मेति तत्र च।
दिधवाइन इत्यासीद्राजाऽतिनरवाइनः॥१॥
प्रभूस्याभया नाम कलाकीश्रलशालिनी।
महादेवी खलावप्यावज्ञातित्रदशाक्रना॥२॥
इतो नगयां तस्यां च समग्रविषाग्रणीः।
विष्ठी ह्रषभदासोऽभूदासीनः श्रेष्ठकर्मण ॥३॥
यद्यार्थनामिका जैनधर्मीपासनकर्मणा।
पर्वहासीति तस्यासीद् वक्षभा श्रीलशालिनी॥४॥
विष्ठनस्तस्य महिषीरचोऽभूत्रुभगाभिधः।
प्रनेषीमहिषीनित्यं स तु चारियतुं वने॥५॥
वनाविद्यसः सोऽन्येयुर्माधमासे दिनात्यये।
पपग्रदप्रावरणं कायोक्षर्गस्थितं सुनिम्॥६॥

पस्यां हिमनिशि खाणुरिव यः स्थास्यति स्विरम्। पसी धन्यो महासीति चिन्तयन् स ग्रहं ययी ॥ ७॥ मद्दाम्निमवज्ञाति इमानीपातवेदनम्। तमेव चिन्तयबार्द्रमना राविं निनाय सः ॥ ८ ॥ चविभातविभावयों ग्रहीला महिषीस्तत:। स ययौ तत्र यवासीत स सुनि: प्रतिमास्थित: ॥ ८ ॥ क खाणीभिक्तिरानस्योपासाञ्चले सतंतदा। पहां नैसर्गिक: कीऽपि विवेकस्ताह्यामपि ॥ १०॥ प्रवासारे चगढरीचिरारी इद्द्याचलम्। यदया तमिव द्रष्टं कायोत्सर्गस्थितं सुनिम् ॥ ११ ॥ स नमो ऋरिइन्ताणमिति वाचमुदीरयन। हितीय इव चण्डांशकत्पपात नभस्तले ॥ १२ ॥ षाकाशगामिनी नूनमियं विद्येति बुह्तिः। नमस्तारपटं तं तु सभगो निदधे ऋदि ॥ १३ ॥ जायत्खपन्नटंस्तिष्ठन्दिवा निधि ग्टडे बर्डि:। तदपाठीत् स उच्छिष्टोज्येकगाहा हि ताह्या: ॥ १४॥ ततः पप्रच्छ तं श्रेष्ठी विखोत्कृष्टप्रभावभृत्। प्राप्तं पच्चपरमेष्ठिनमस्कारपदं क्रतः ॥ १५ ॥ च्योषं मन्त्रिषीपालः क्ययामास तत्ततः। साधु भी: साधु भद्रेति यसन् श्रेष्ठी जगाद तम् ॥ १६ ॥ षाकाशगमने हेत्रसी विद्या न केवलम । किन्त हेत्रसावेव गती खर्गापवर्गयोः ॥ १० ॥

यिकि चित्रुन्दरं वसु दुष्पुापं भवनवये। लीलया प्राप्यते सर्वे तदसुष्य प्रभावतः ॥ १८॥ प्रस्य पञ्चपरमेष्ठिनमस्तारस्य वैभवम्। परिमातुं न शक्तोऽस्मि वारि वारिनिधेरिव ॥ १८ ॥ साध्र प्राप्तिसदं भद्र तत्त्वया पुष्ययोगतः। किन्तृच्छिष्टेर्पेहीतव्यं गुरुनाम न जातुचित् ॥ २०॥ व्यसनी व्यसनमिव न त्यत्तुं चणमप्यदः। चलमस्मीति तेनोक्तः श्रेष्ठी प्रष्टोऽमवीदिदम् ॥ २१ ॥ तद्धीष्वाखिलां पश्चपरमेष्ठिनमस्त्रियाम्। कस्याणानि यया ते स्युः परलोके इलोकयोः ॥ २२ ॥ ततोऽशेषनमस्कारं सन्धार्थमिव 'तहन:। परावर्त्तयताजस्रं सुभगः सुभगाशयः ॥ २३ ॥ महिषीपालकस्थास्य स्नुत्र्णावेदनाहरः। परमेष्टिनमस्कारः प्रकामं समजायत ॥ २४ ॥ एवं तस्य नमस्तारपाठव्यसनिनः सतः। कियत्यपि गते काले वर्षाकाल: समाययौ ॥ २५ ॥ धारानाराचधोरखा प्रसर्पिखा निरन्तरम्। मकोलयदिव द्यावाष्ट्रियो नव्यवारिदः ॥ २६ ॥ ग्टहानुहीला महिषी: सुभगोऽपि बहिर्गत:। विनिव्नत्तोऽन्तराऽपश्वद्वोरपूरां महानदीम् ॥ २७ ॥

⁽१) च तद्वनम्।

तां दृद्दा स मनाग् भीतस्तस्यी किचिदिचिन्तयन्। नदीं तीर्का परचेत्रे महिषाः प्राविशंस्ततः ॥ २८॥ नमस्तारं पठन् श्योमयानविद्याधिया ततः। चत्पपात क्रतीत्फासी मध्येनदि पपात च ॥ २८ ॥ तवान्तः कर्दमं मग्नः खरः खदिरकी लकः। कतान्तदन्तसीदयी प्रचास्य प्रविवेश च ॥ ३०॥ तथैवावर्त्तयन् पञ्चपरमिष्ठिनमस्क्रियाम्। तदा मर्माविधा तेन कालधर्मिमयाय सः ॥ ३१ ॥ त्रेडिपद्वास्ततः सीऽईहास्याः कुचाववातरत्। नमस्ताररतानां हि सन्नतिने विसंवदेत् ॥ १२ ॥ तिसान् गर्भस्विते मासि तार्त्तीयीके व्यतीयुषि। त्रेष्ठिनी त्रेष्ठिने खस्य दोष्ट्रानित्यचीक्यत् ॥ ३३ ॥ गन्धोदकीः स्वपयितुं विलेषुं च विलेपनेः। भर्चितं कुसुमैरिच्छाम्यर्डतां प्रतियातनाः ॥ ३४ ॥ प्रतिसभायितं साध्निच्छाम्याच्छादनादिभिः। संघं पूजयितुं दातुं दीनेभ्यस मितमेम ॥ ३५ ॥ रत्यादिदोद्यदांस्तस्याः श्रुत्वा मुदितमानसः। चिन्तामणिरिव श्रेष्ठिणिरोमणिरपूरयत्॥ ३६॥ ततो नवसु मासेषु दिनेष्यद्दीष्टमेषु च। गतेषु त्रेष्ठिनी पुत्रमस्त ग्रुभलचणम् ॥ ३०॥ सची महोत्सवं कला त्रेष्ठी हृष्टः ग्रंभे दिने। सुनी: सुदर्भन इति यथायं नाम निर्ममे ॥ ३८॥

वर्षमानः क्रमात्पित्रोर्मनोरय द्वोचकैः। सुदर्भनो यदीचित्यं जयाच सक्तलाः कलाः ॥ ३८ ॥ क्यां मनीरमां नाम मनोरमकुलाकतिम्। साचादिव रमां त्रेष्ठी 'तेन तां पर्य्यवाययत् ॥ ४०॥ सौम्यमूर्त्ति: स इर्षाय पित्रोरिव न केवलम्। जन्ने रान्नोऽपि स्रोकस्य सर्वस्य च गमान्वत् ॥ ४१ ॥ दतो नगर्था तवाभूत्रूपतेर्हृदयक्रमः । पुरीधाः कपिलः प्राप्तरीधा विद्यासन्त्रीदधेः ॥ ४२ ॥ समं सदर्भनेनास्य मन्मधेन मधोरिव। षजायत परा प्रीति: सर्वदाऽप्यविनम्बरी ॥ ४३ ॥ (युग्सम्) प्रायः सदर्भनस्यैव स पुरोधा महात्मनः। रीश्विय श्वीत्यांशी: परिपार्श्वमवर्त्तत ॥ ४४ ॥ कपिलं कपिला नाम भार्यो ऽपृच्छत्तमन्यदा। विसारवित्यकर्माणि कियलालं नुतिष्ठसे ॥ ४५॥ पार्खे सुदर्भनस्थाइं तिष्ठामीति तदीरिते। कोऽसी सुदर्भन इति तयोक्तः प्रत्युवाच सः ॥ ४६ ॥ मम मिर्च सतां धुयें विष्वैकप्रियदर्भनम् । सुदर्भनं न चेडेका तत्त्वं वेक्ति न किचन ॥ ४७ ॥

⁽१) खचड तेनाथी-।

२) खच -छोव।

⁽१) वाग तातिविधि।

Ind L 212, 172

BIBLIOTHECA INDICA:

COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

. 170

योगशास्त्रम्।

खोपज्ञविवरणसहितम्।



THE YOGASASTRA,

With the commentary called SVOPAJNAVIVARANA.

BY

SRI HEMACHANDRĀCHĀRYA.

EDITED BY

ÇĀSTRA VIÇĀRADA JAINĀCĀRYA

CRÎ VIJAYA DHARMA SÜRI.

FASCICULUS III.

Calcutta.

PRINTED BY UPENDRA NATHA CHAKRAVARTI, AT THE SANSKRIT PRESS, 5, Nandakumar Choudhury's 2nd Lane.

AND PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL, 1, PARK STREET.

1910.

LIST OF BOOKS FOR SALE

AT THE LIBRARY OF THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

No. 1, PARK STREET, CACUTTA,

AND OBTAINABLE PROM

THE SOCIETY'S AGENTS, Mr. BERNARD QUARITOH,

11, GRAPTON STREET, NEW BOND STREET, LONDON, W., AND MR. OTTO
HARRASSOWITZ, BOOKSELLER, LEIPZIG, GERMANY.

Complete copies of those works marked with an asterisk * cannot be supplied.—some

of the Fasciculi being out of stock.

BIBLIOTHECA INDICA.

Sanskrit Series

| | Duniantia Geriei | • | | | | |
|-----|--|----------------|---------------------------|-------|------|-----|
| ċ, | • Advaita Brahma Siddhi, Fasc. 2, 4 @ /10/ each | ••• | | Ro. | 1 | 4 |
| | Advaitachints Kaustubha, Fasc. 1-3 @ /10/ each | | | | ī | 14 |
| • | *Agni Purāņa, Fasc. 6-14 @ /10/ each | ••• | | •• | 5 | Ö |
| | Aitarēya Brāhmaņa, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. J | I Francis | 5: Vol. [] | | • | U |
| ř | Altareya Dianimapa, vol. 1, 1420. 1 0, vol. 2 | | | | 14 | |
| : | Fasc. 1-5, Vol. IV, Fasc. 1-8 @ /10/ each | , | ••• | ••• | 14 | 6 |
| | Aitereya Lochama. | ••• | ••• | ••• | 2 | 0 |
| • | • Anu Bhashya, Fase. 2-5 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | 2 | 8 |
| • | Aphorisms of Sandilya, (English) Fasc. 1 @ 1/- | ••• | ••• | ••• | 1 | 0 |
| Ċ | Aştasāhasrikā Prajfiāpāramitā, Fasc. 1-6 @ /10/ e | moh | ••• | ••• | 3 | 12 |
| ď | *Atharvana Uponishad, Fasc 4.5@/10/each | ••• | ••• | • • • | 1 | 4 |
| : | Atmatattaviveka, Fasc. I. @ /10/ each | ••• | ••• | | 0 | 10 |
| ÷ | Acvavaidyaka, Fasc. 1-5 @ /10/ each | ••• | | ••• | 3 | 2 |
| • | Avadana Kalpalata, (Sans. and Tibetan) Vol. I, Fa | aso. 1-7; V | ol. II. Fat | ic. | | |
| ٠, | . 1-6 @ 1/ each | ••• | | | 13 | 0 |
| 9 | Balam Bhatti, Vol. I, Fasc. 1-2, Vol 2, Fasc. 1 @ | /10/ each | ••• | ••• | 1 | 14 |
| | Baudhāyana S'rauta Satru, Fasc. 1-3 Vol. II, Fasc | 1-2 @ /10/ | each | | 3 | 2 |
| • | | | | | | _ |
| ٠. | *Bhāmati, Fasc. 4-8 @ /10/ each | @ 410 | · · | ••• | 8 | 2 |
| | Bhatta Dipika Vol. I, Fasc. 1-6; Vol. 2, Fasc. 1, | (2) 10 OFC | | ••• | 4 | 6 |
| | Baudhyostatrasangraha (Tib. & Sans.) | ••• | ••• | ••• | 2 | .0 |
| ٠. | Brahma Sutra, Fasc. 1 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | 0 | 10 |
| | Brhaddevata Fusc. 1-4 @ /10/ each | ••• | • | ••• | 2 | 8 |
| - 1 | Brhaddharma Purana Fasc 1-6@/10/each | ••• | *** | ••• | 3 | 12 |
| | Bodhieuryāvatāra of Çāntideva, Fasc. 1-5 @ /10/ e | ach | | ••• | 3 | 2 |
| • | Cri Cantinatha Charita, Fasc. 1-3 | · · · | | ••• | 0 | 14 |
| ٠. | Catadusani, Fasc. 1-2 @ /10/ each | | | ••• | 1 | · 4 |
| , | Ontalogue of Sanskrit Books and MSS., Fasc. 1-4 | @ 2/ mch | | | 8 | ō |
| | Qatapatha Brahmana, Vol I, Fasc. 1-7, Vol I | I Paus L | 5. Vol. 11 | | • | |
| | Fasc. 1-7 Vol. 5, Fasc. 1-4 @ /10/ each | ., | -, , , , , , , , , | - | 14 | 6 |
| - | Ditto Vol. 6, Fasc. 1-3 @ 1/4/ each | ••• | ••• | | 3 | 2 |
| ٠,٠ | Ditto Vol. 0, Fast, 1-3 (or 1/1/ osti | ••• | ••• | ••• | ì | |
| ٠. | Ditto Vol. 6, Fasc. 1-3 @ 1/4/ each Ditto Vol. VII, Fasc. 1-3 @ /10/ Catacahaarika Prajfiaparamita Part, I. Fasc. 1-12 (| | ••• | ••• | - | 14 |
| | Catasshasriks Prajfisparamits Part, I. Fasc. 1-12 (| (ag / IU/ GACH | | ••• | 8 | • |
| · | Caturvarga Chintamani, Vol. II, Fasc. 1-25; 1-18. Part II, Fasc. 1-10. Vol. IV. Fasc. 1-6 | Vol. 111. P | art I, Fasc. | | | _ |
| ٠. | 1-18. Part 11, Fasc. 1-10. Vol. 17. Fasc. 1-0 @ | 110/ ercp | •• . | ••• | 36 | 1 |
| 1 | Vol. 4, Fasc. 7, @ 1/4/ each | ••• | ••• | ••• | 1 | * |
| r | Ditto Vol. IV, Fasc. 8-9 @ /10/ | ••• | ••• | ••• | 1 | 4 |
| | Qlockavartika, (English) Fasc. 1-7 @ 1/4/ each | | ••• | • • • | 8 | 12 |
| ď. | *Orauta Sutra of Apastamba, Fasc. 12-17 @ /10/ e | ach | ••• | | 3 | 12 |
| | Ditto Cankhavana, Vol. I. Fasc. 1-7 | : Vol. II. | Fasc. 1- | 4. | | |
| | Ditto Cankhāyana, Vol. I, Fasc. 1-7 Vol. III, Fasc. 1-4; Vol 4, Fasc. 1 @ /10/ each | | ••• | | 10 | 0 |
| • | Qri Bhashyam, Farc. 1-8 @ /10/ each | | | ••• | 1 | 14 |
| | Dāna Kriyā kaumudī, Faşc. 1-2 @ /10/ each | | ••• | | ī | - 4 |
| | Gadadhara Paddhati Kālasāra Vol. 1; Fasc. 1-7 @ | /10/ each | ••• | ••• | 4 | 6 |
| | | /10/ each | | ••• | 3 | 2 |
| | | 1 - 01 OMOTE | ••• | ••• | 8 | 2 |
| • | Gobhiliya Grihya Sutra, Vol. I. @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | - | |
| | Ditto Vol. II. Fasc, 1-2 @ 1/4/ each | 1 | ••• | ••• | 2 | 8 |
| | Ditto (Appendix) Gobbila Parisista | ••• | • • • | ••• | 2 | 0 |
| | Ditto Grihya Sangraha | ••• | • • • | ••• | 0 | 10 |
| | Haralata | ••• | ••• | ••• | 1 | 14 |
| | Karmapradiph, Fasc. I | ••• | ••• | ••• | 1 | 4 |
| | Kāla Viveka, Fasc. 1-7 @ /10/ each | ••• | ••• | | 4 | 6 |
| | Kātantra, Fasc. 1-6 @ /12/ each | | | | 4 | 8 |
| | Katha Sarit Sagara, (English) Fasc. 1-14 @ 1/4/ es | nch | | | 17 | 8 |
| | *Kurma Purana, Fasc. 8-9 @ /10/ each | , | | ·•• | 4 | 6 |
| | Madana Pārijāta, Fasc. 1-11 @ /10/ each | | | ••• | 6 | 14 |
| | Mahā-bhāṣya-pradipōdyōta, Vol. I, Fasc. 1-9; Vol. | II Russ 1 | .19 Vol 111 | ••• | v | |
| | Fasc. 1-10 @ /10/ each | . 11, Cast. I | -10 TUI. 111 ₁ | | ۱۵ . | 6 |
| | | ••• | ••• | ••• | 19 | • |
| | Manutika Sangraha, Fasc. 1-3 @ /10/ each | | ••• | ••• | 1 | 14 |
| | Markandēya Purāņa, (English) Fasc. 1-9 @ 1/- eac | | | 40 | 77/ | ٥ |
| | * | Dig | itized by | 00 | וצי | |
| | | | | | | |

| "Mimārhaā Darçana, Faso. 6-19 @ /10/ each | | • | Rs. | 8 | 12 |
|---|-----------------|-----------------|-----------|--------|------------|
| Nyāyavārtika, Fasc. 1-6 @ /10/ each | | ••• | * | 8 | 12 |
| *Nirukta, Vol. IV, Fasc. 1-8 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | 5 | . 0 |
| *Nitisara, Fasc. 2-5 @ /10/ each | ••• | • • • • | 1 | 2 | 8 |
| Nityacarapaddhatih, Fasc. 1-7 @ /10/ each | • ••• | ••• | • ••• | -4. | . 6 |
| Nityacarapradipah Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. II, | Fasc. 1. @ | /10/ each | | . 5 | 10 |
| Nyayabindutika, Fasc. 1 @ /10/ each | •• | ••• | | 0 | 10 |
| *Nyāya Kusumāfijali Prakaraņa Vol. I, Fasc. 2 | 6 ; Vol. 11 | , Fasc. | • | • | |
| 1-3 @ /10/ each | ••• | • ••• | | 5 | . 0 |
| Padumawati, Fasc. 1-5 @ 2/ | .2. | • • • • | | 10 | 0 |
| Parigipta Parvan, Fasc. 35 @ /10/ each | • | ••• | ••• | 1 | 14 |
| Prakrita-Paingalam, Fasc. 1-7 @ /10/ each | ••• | ••• | • ••• | 4 | - 6 |
| Prithiviraj Rasa. Part II, Fanc. 1-5 @ /10/ ent | ւև | •••• | ••• | 3 | 2 |
| Ditto (English) Part II, Fasc. 1@1/ | | ••• | | 1 | 0. |
| Prakrta Laksanam Faso. 1 @ 1/8/ each | ••• | • | ••• | 1 | . 8 |
| Paraçara Smrti, Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. II, Fa | sc. 16 ; Vu | l. 11 I, | | | • |
| Fanc. 16 @ /10/ each | ••• | | | 12 | 8 |
| Paraçara, Institutes of (English) @ 1/- each | ••• | ••• | ••• | . 1 | . 0 |
| Prabandhacintāmaņi (English) Fasc. 1-3 @ 1/4/ | each | . • • • | ••• | 8 | 12 |
| Saddarana-Samuccaya, Fasc. 1.4 @ /10/ each | | | | ; 1 | . 4 |
| Sama Veda Saihhita, Vols. 1, Fasc. 7-10; II, | , 1-6 ; III, | 17; | | | ٠ . |
| 1V, 1.6; V, 1-8, @ /10/ ench | ••• | ••• | ••• | 19 | 6 |
| Sankhya Sutra Vrtti, Fasc. 1-4 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | 2 | 8 |
| Ditto (English) Fasc. 1-3 @ 1/- | encli | ••• | ••• | . 3 | U |
| Sankara Vejaya, Fasc. 2-3 @ /10/ each | | ••• | ••• | 1 | . 4 |
| Srāddha Kriyā Kaumudi, Fasc. 1-6 @ /10/ each | ••• | ••• | • • • • • | 3 | 12 |
| Sragdhara stotra (Sanskrit and Tibetan) | • • • | ••• | •• | 2 5 | 0 10 |
| Srauta Sutra Latyayan, Fasc. 1-9 @ /10/ each | ••• | ••• | • • • • • | | |
| ", ", Asbalayana, Fasc. 4-11 @ /10/ each | 1 | • • • • • | • | 5 | 0 |
| Sucruta Samhitá, (Eng.) Fasc. 1 @ 1/- each | ••• | ••• | ••• | 2 | Ú |
| Suddhikaumudi, Fasc. 1-4 @ /10/ each | | *** | • ••• | 12 | 8 |
| *Taittreya Brahmana, Fasc. 6-25 @ /10/ each Pratisakhya, Fasc. 1-3 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | í | 8 14 |
| *Taitterlya Sainhita, Fasc. 27-45 @ /10/ each | ••• | | ••• | 11. | 14 |
| Tandya Brahmana, Fasc. 7-19 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | - 6 | 14 |
| Tantra Värteka (English) Fasc. 1-6 @ 1/4/ each | ••• | ••• | ••• | 7 | 8 |
| Tattva Cintamani, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol. II, F. | | ol III Fo | | • | · |
| Vol. IV, Fasc. 1, Vol. V, Fasc. 1-5, Part IV, Vo | l II Fasc. | 1-12 @ /10 | / each | 23 | 12 |
| Tattvārthadhigama Sutram, Fasc. 1-3 @ /10/ ca | ch | (9) | | 1 | 14 |
| Trikanda-Mandanam, Fasc. 1-3 @ /10/ each | ••• | | | 1 | 14 |
| Tul'si Satsai, Fasc. 15 @ /10/ each | | ••• | | 3 | 2 |
| Upamita-bhava-prapanca-kathā, Fasc. 1-11 @ /10 | 0/ each | ••• | | 6 | 14 |
| Uvānagadasāo, (Text and English) Fasc. 1-6@1 | /- each | ••• | ••• | 6 | 0 |
| Vallala Carita, Fasc 1 @ /10/ | • ••• | ••• | ·* | 0 | 10 |
| Varsa Kriya Kaumudi, Fasc 1-6 @ /10/ each | · | *** | | 3 | 12 |
| *Vāyu Purāņa, Vol. I, Fasc. 3-6; Vol. II, Fasc | . 17, @ /10 | / each | ••• | в | 14 |
| Vidhāra Pārijata, Fasc. 1-8 Vol- II. Fasc. I @ |) /10/ each | ••• | • • • • | 5 | - 10 |
| Vivadaratnakara, Fasc. 1-7 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | 4 | ંલ |
| Vrhat Svayambhu Purana, Fasc. 1-6 @ /10/ en | ch | ••• | ••• | 3 | 12 |
| *Yoga Aphorisms of Patanjali, Fasc. 3-5 @/10/ | each | , ••• ` | ••• | 1 | , 14 |
| Yogasastra of Hemchandra Vol. I. Fasc. 1. (| 200 pages.:) | ••• | ••• | 1 | 4 |
| Tibelan Ser | ies. | | • | • ` | |
| Pag Sam Thi S'ift, Fasc. 1-4 @ 1/ cach | _ | | | . 4 | O |
| Sher-Phyin, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. II, Fasc. 1-3; | VALUE | 1.6 @ | 1/ 2001 | . 14 | Ü |
| Rtoga brjod dpag hkhri S'ih (Tib. & Sana. Avac | lana Kalnala | ta Val I | ., enci | | v |
| Fasc. 1-6; Vol. 11. Fasc. 1-5 @ 1/ each | ianio ikinpuiii | | • | 11 | Ó |
| | | :*** | ••• | | ", |
| Arabic and Persi | | . | | | |
| 'Alamgirnāmah, with Index, (Text) Fasc. 113 (| @ /10/ each | ••• | ••• | 8 | 2 |
| Al-Muqaddasi (English) Vol. I. Fasc. 1-3 @ 1/- | cach | ••• | | 3 | 0 |
| Ain-1-Akbari, Fasc. 1-22 @ 1/8/ each | | | • • • | 33 | 0 |
| Ditto (English) Vol. I, Fasc. 17, Vol. | II, Fasc. 1 | 5, Vol. 111 | Ι, | | |
| Fanc. 1-5, @ 2/- each | | ••• | ••• | 34 . | () |
| Akbarnamah, with Index, Fasc. 1-37 @ 1/8/ ea | ch | | | 55 | 8 |
| Ditto (English) Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. | II, Fasc. 1 | -4 @ 1/4/ | ench | 15 | 0 |
| Arabic Bibliography, by Dr. A. Sprenger, @ /10 | 9/ | ••• | | . 0 | 10 |
| *Badshahnamah, with Index, Fasc. 1-19 @ /10 | / eucļī | ••• | ••• | 11 | 14 |
| Conquest of Syrin, Fanc. 1-0 @ /10/ each | | ••• | • • • | 5 | 10 |
| Catalogue of Arabic Books and Manuscripts, 1-2 | | | ••• | 2 . | 0 |
| Catalogue of the Persian Books and Manuscrip | | brary of the | 16 | _ | _ |
| Asiatic Society of Bengal. Fasc. 1-3@1/en | CII | | | 3 | 0 |
| Dictionary of Arabic Technical Terms, and App | engix, Fasc. | 1-21 (4) 1/ | o/ each | | 8 |
| Farhang i-Rashidi, Fasc. 1-14 @ 1/8/ each | ••• | ••• | ••• | 21 | U |
| *The other Fasciculi of these works are out | of stock, an | d comple | te con | ian c | annot |

'The other Fasciculi of these works are out of stock, and complete copies cannot be supplied.

| | Tusy's list of Shy'sh Bool | ta, Fasc. 1-4 (4 | | Ra. | 4 | _ |
|--|--|--|--|--|--------------------------|---|
| | of Wiqidi, Fasc. 1-9 @ /1 | | ••• | ••• | 5 | 1 |
| | of Asidi, Fasc. 1-4 @ /10/ cory of the Persian Masnav | | 2/ each | ••• | 2 0 | 1 |
| | liphs, (English) Fasc. 1-6 | | ••• | ••• | 7 | • |
| [qbā]nāmah-i-Jah | ängiri, Fasc. 18 @ /10/ e | ach | ••• | ••• | 1 | 1 |
| | plement, 51 Fasc. @ 1/- es | юь | ••• | ••• | 51 3 | 1 |
| Mašsir-ul-Umarš. | ri, Fasc. 1-6 @ /10/ each Vol. I, Fasc. 1-9, Vol. II, | Faso, 1-9 : Vo | 3. III. 1-10 | : | U | 1 |
| Index to Vol | . I, Fasc. 10-11; Index | to Vol. II, I | asc. 10-12 | ; | | |
| | II, Fasc. 11-12 @ /1/ each | ••• | ••• | ••• | 35 | |
| | di, Fasc. 15 @ /10/ each wārikh, Fasc. 115 @ /10/ | | ••• | ••• | 8 | |
| Ditto | (English) Vol. I, | eaon Fasc. 17 : V | ol. II. Fuac | | 9 | |
| | Kes ; Vol. III, Fasc. 1 @ | | | ••• | 15 | |
| | bab, Fasc. 1-19 @ /10/ end | sh | ••• | ••• | 11 | j |
| Nukhbatu-l-Fikr, Nicemi's Whinedn | | 0 @ /10/ arch | ••• | ••• | 0 | 1 |
| | Emah-i-Iskandari, Fasc. 1 Fasc. 15 🍞 /10/ each | Z (A) / 1 Z/ ONCIL | ••• | ••• |] 3 | |
| Ditto | (English) Faso. 15 @ 1/ | ••• | ••• | ••• | 5 | |
| l'abaquāt-i- Nāşirī | , Faec. 15 @ /10/ each | • • • • | ••• | ••• | 3 | |
| | English) Fasc. 1-14 @ 1/ e | | ••• | ••• | 14 | |
| | ndex Shi of Ziysu-d-dIm Barui H | Tuen 1-7 @ /10 | / ench | ••• | 4 | |
| | hi, of Shams-i-Sirāi Aif, F | | | ••• | 8 | 1 |
| | oic Poems, Fasc. 12 @ 1/8 | | ••• | ••• | 3 | |
| | , (Eng.) Fasc. 1 @ 1/ | • ••• | ••• | ••• | 1 | |
| | c. 15 @ /10/ each I, Fasc. 19, Vol. II, Fasc | 18 @ /10/ 6 | ach | ••• | 3 10 | 1 |
| , VOL | , rado, 1.0, von 11, rado | . 1-0 (4) /10/ 6 | | ••• | •• | • |
| 2. PROGREDINGS 3. JOURNAL of t (8), 1874 (1) 1881 (7), 1 | ASIATIC SOCIETY ARCHES. Vols. XIX and 3 of the Asiatic Society from the Assiatic Society for 18' 81, 1875 (7), 1876 (7), 1877 882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 889 (10, 1890 (11), 1891 | KX @ 10/ each 1570 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 18 1885 (6), 18 | @ /8/ per N), 1872 (8), 879 (7), 1880 86 (8), 1887 | 1878) (8), 7 (7). | 20 | |
| 2. Productings 3. Journal of t (8), 1874 (7), 1 1881 (7), 1 1888 (7), 1 (8), 1895 (| ARCHES. Vols. XIX and 3 of the Asiatic Society from the Assiatic Society for 18 83, 1875 (7), 1876 (7), 1876 (8), 1884 (6), 1889 (10 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 189 | KX @ 10/ each 11870 to 1904 (70 (8), 1871 (7 (8), 1878 (8), 18 1885 (6), 18 (7), 1892 (8), 98 (8), 1899 (8 | 2 /8/ per N 1, 1872 (8), 879 (7), 1880 86 (8), 1887 1893 (11), 1, 1900 (7), | 1878) (8), 7 (7), 1594 1901 | 20 | |
| 2. Productings 3. Journal of t (8), 1874 (1881 (7), 1 1888 (7), 1 (8), 1895 ((7), 1902 (| ARCHES. Vols. XIX and 3 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18 81, 1875 (7), 1876 (7), 1884 (6), 889 (10 . 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1908 (8), 1904 (16), @ | KX @ 10/ each 11870 to 1904 (70 (8), 1871 (7 (8), 1878 (8), 18 1885 (6), 18 (7), 1892 (8), 98 (8), 1899 (8 | 2 /8/ per N 1, 1872 (8), 879 (7), 1880 86 (8), 1887 1893 (11), 1, 1900 (7), | 1878) (8), 7 (7), 1594 1901 | 20 | |
| 2. PRODREDINGS 3. JOHNAL OF t | ARCHES. Vols. XIX and 3 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18 83, 1875 (7), 1876 (7), 1876 (8), 1884 (6), 889 (10 1890 (11), 1891 (7), 1896 (81, 1897 (8), 186 9), 1903 (8), 1904 (16), @ No. to Non-Members | KX @ 10/ each 1570 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 1 1885 (6), 18 (7), 1892 (8), 98 (8), 1899 (8 1/8 per No. t | %/8/ per N), 1872 (8), 879 (7), 1880 86 (8), 1887 1893 (11),), 1900 (7), co Members | 1878) (8), 7 (7), 1894 1901 and | | |
| 2. PRODUCTIONS 3. JOHNAL OF to (8), 1874 (6), 1881 (7), 1 1888 (7), 1 (8), 1895 (7), 1902 (6) 2/ per N. B.—The fig. | tarches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18'81, 1875 (7), 1876 (7), 1876 (8), 1884 (6), 889 (10 . 1890 (11), 1891 (7), 1896 (81, 1897 (8), 1869), 1903 (8), 1904 (16), @No. to Non-Members | KX @ 10/ each 1570 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 1 1885 (6), 18 (7), 1892 (8), 98 (8), 1899 (8 1/8 per No. t | (2) /8/ per N), 1872 (8), 879 (7), 1886 86 (8), 1887 1893 (11),), 1900 (7), to Members | 1878) (8), 7 (7), 1894 1901 and | | |
| 2. PRODREDINGS 3. JOURNAL OF to (8), 1874 (6), 1881 (7), 1 1888 (7), 1 (8), 1895 (7), 1902 (6) 2/ per N. B.—The figs 4. Journal and | ARCHES. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18 8, 1875 (7), 1876 (7), 1876 (882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 889 (10 . 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 186 9), 1903 (8), 1904 (16), @ No. to Non-Members ares enclosed in brakets give Proceedings. N. S., 190 | KX @ 10/ each 1570 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 1 1885 (6), 18 (7), 1892 (8), 188 (8), 1899 (8 1/8 per No. to the number of 05, to date, @ | (2) /8/ per N), 1872 (8), 879 (7), 1886 86 (8), 1887 1893 (11),), 1900 (7), to Members | 1878) (8), 7 (7), 1894 1901 and | | |
| 2. PRODREDINGS 2. JOHNAL OF to (8), 1874 (6) 1881 (7), 1 1888 (7), 1 (8), 1895 (7), 1902 (6) 2/ per N. B.—The fig. 4. Journal and Members a | ARCHES. Vols. XIX and 2 of the Asiatic Society from the Assiatic Society for 18 B, 1875 (7), 1876 (7), 1877 882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 889 (10 · 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 186 (9), 1903 (8), 1904 (16), @No. to Non-Members ares enclosed in brakets given Proceedings. N. S., 190 and Rs. 2 per No. to Non-Members | KX @ 10/ each 1570 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 16 1885 (6), 18 1885 (6), 18 189 (8), 1899 (8 1/8 per No. tethe number of 15, to date, @fembers. | 78/ per N., 1872 (8), 879 (7), 1886 (8), 1883 (11), 1900 (7), 100 Members Nos. in eac. | 1878) (8), 7 (7), 1894 1901 and <i>k Vilu</i> s | | |
| 2. PRODREDINGS 2. JOURNAL OF to (8), 1874 (6), 1881 (7), 1 1888 (7), 1 (8), 1895 (7), 1902 (6) 2/ per N. B.—The fig. 4. Journal and Members at Members, 19 Discount of the control of the | tarches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Assiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1876 (8), 1884 (6), 1889 (10 . 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1899, 1903 (8), 1904 (16), @ No. to Non-Members ares enclosed in brakets giver Proceedings. N. S., 190 and Rs. 2 per No. to Non-Mo5, to date. Price varief 25% to Members. | KX @ 10/ each 1870 to 1904 (70 (8), 1878 (8), 1878 (8), 1885 (6), 188 (7), 1892 (8), 1899 (8), 1899 (8), 1899 (8), 1899 (8), to date, @fembers. | 78/ per N, 1872 (8), 879 (7), 1886 (8), 1885 (11),), 1900 (7), o Members 7 Nos. in eac. | 1878 0 (8). 7 (7). 1894 1901 and <i>V. lui</i> o. to | | |
| 2. PRODREDINGS 2. JOURNAL OF to (8), 1874 (6), 1881 (7), 1 1888 (7), 1 (8), 1895 (7), 1902 (6) 2/ per N. B.—The fig. 4. Journal and Members at Memoirs, 19 Discount 65. Centenary Re | ARCHES. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18'81, 1875 (7), 1876 (7), 1876 (8), 1884 (6), 889 (10 . 1890 (11), 1891 (7), 1896 (81, 1897 (8), 1869), 1903 (8), 1904 (16), @ No. to Non-Members ares enclosed in brakets give Proceedings. N. S., 190 and Rs. 2 per No. to Non-Monte of 25% to Members. | KX @ 10/ each 1570 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 1 1885 (6), 18 (8), 1892 (8), 1892 (8), 1899 (8 1/8 per No. to the number of 15, to date, @fembers. | 7/8/ per N.), 1872 (8), 879 (7), 1880 (8), 1887; 1893 (11),), 1900 (7), so Members Nos. in eac. 1-8 per N ber to nun | 1878) (8), 7 (7). 1894 1901 and A Vilue o. to nber. | | |
| 2. PRODREDINGS 3. JOURNAL OF to (8), 1874 (6), 1881 (7), 1 1888 (7), 1 (8), 1895 (7), 1902 (6) (2)/ per N. B.—The figst 4. Journal and Members at 5. Memoirs, 19 Discount Contenary Re A sketch of | carches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1876 (8), 1884 (6), 889 (10 . 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 186 (9), 1903 (8), 1904 (16), @ No. to Non-Members ares enclosed in brakets give Proceedings. N. S., 190 and Rs. 2 per No. to Non-Moof, to date. Price varif 25% to Members. view of the Researches of the Turki language as a | KX @ 10/ each 1570 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 1 1885 (6), 18 (7), 1892 (8), 1899 (8 1/8 per No. to the number of 15, to date, @ fembers. | 7/8/ per N.), 1872 (8), 879 (7), 1880 (8), 1887; 1893 (11),), 1900 (7), so Members Nos. in eac. 1-8 per N ber to nun | 1878) (8), 7 (7). 1894 1901 and A Vilue o. to nber. | m c. 3 | |
| 2. PRODUCTIONS 2. JOURNAL OF to (8), 1874 (6), 1881 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1902 (6) 2/ per N. B.—The figst 4. Journal and Members at Memoirs, 19 Discount (6). Centenary Re A sketch of R. B. Shaw | tarches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1877 (882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 889 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 186 (9), 1903 (8), 1904 (16), @ No. to Non-Members ares enclosed in brakets give Proceedings. N. S., 190 and Rs. 2 per No. to Non-Mo5, to date. Price varif 25% to Members. view of the Researches of tif the Turki language as sp (Extra No., J.A.S.B., 187 | KX @ 10/ each 1870 to 1904 (70 (8), 1878 (8), 1878 (8), 1885 (6), 188 (71, 1892 (8), 1899 (8) | 78/ per N., 1872 (8), 679 (7), 1886 (8), 1887 1893 (11),), 1900 (7), 1900 (| 1878) (8), 7 (7). 1194 11901 and A Vilus o. to nber. | me. | |
| 2. PROOMEDINGS 3. JOURNAL Of to (8), 1874 (6), 1881 (7), 1 1888 (7), 1 (8), 1895 (7), 1902 (6) 2/ per N. B.—The fig. 4. Journal and Members at Memoirs, 19 Discount of Centenary Re A sketch of R. B. Shaw Catalogue of J.A.S.B., 187 | tarches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Assiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1876 (8), 1884 (6), 889 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (81, 1897 (8), 1869), 1903 (8), 1904 (16), @ No. to Non-Members ares enclosed in brakets give Proceedings. N. S., 190 and Rs. 2 per No. to Non-Mod. To to date. Price varif 25% to Members. view of the Researches of the Turki language as sp (Extra No., J.A.S.B., 187 Mammals and Birds of Bu (5) | KX @ 10/ each 11570 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 11885 (6), 1892 (8), 1892 (8), 1892 (8), 1899 (8 1/8 per No. to the number of 15, to date, @ fembers. less from number Society from tooken in Easter 8) | 7/8/ per N.), 1872 (8), 879 (7), 1886 (8), 1887 (13), 1900 (7), so Members 7/80. in eac. 1-8 per N ber to num 1784-1883 m Turkistam | 1878) (8), 7 (7). 1194 11901 and A Vilus o. to nber. | me. 3 4 | |
| 2. PRODREDINGS 3. JOURNAL OF t | tarches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1876 (8), 1885 (6), 1889 (10 . 1890 (11), 1891 (7), 1896 (81, 1897 (8), 186 9), 1903 (8), 1904 (16), @ No. to Non-Members ares enclosed in brakets give Proceedings. N. S., 190 nd Rs. 2 per No. to Non-Mod. To to date. Price varif 25% to Members. view of the Researches of the Turki language as sp (Extra No., J.A.S.B., 187 Mammals and Birds of But 5) | KX @ 10/ each 11570 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 11885 (6), 1885 (6), 1892 (8), 1892 (8), 1892 (8), 1892 (8), to date, @fembers. less from number of society from soken in Easter 8) lociety, Bengal, lociety, Bengal, | 7/8/ per N.), 1872 (8), 879 (7), 1886 (8), 1887 (13), 1900 (7), so Members 7/80. in eac. 1-8 per N ber to num 1784-1883 m Turkistam | 1878) (8), 7 (7). 1194 11901 and A Vilus o. to nber. | 3 4 4 3 | |
| 2. PROOMEDINGS 2. JOURNAL Of to (8), 1874 (6), 1881 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1902 (6) 2/ per N. B.—The figst definition of the count of the cou | tarches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1877 (882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 889 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 186 (9), 1903 (8), 1904 (16), @ No. to Non-Members ares enclosed in brakets given Proceedings. N. S., 190 and Rs. 2 per No. to Non-Moof, to date. Price varif 25% to Members. view of the Researches of the Turki language as at (Extra No., J.A.S.B., 187 Mammals and Birds of But 15) | KX @ 10/ each 1870 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 18 (7), 1885 (6), 18 (7), 1892 (8), 1899 (8 1/8 per No. to the number of 50, to date, @fembers. les from number of the Society from boken in Easter (8) les from Raster (8) | 2 /8/ per N. 1, 1872 (8), 679 (7), 1886 68 (8), 1887 1893 (11), 1900 (7), 1 | 1878) (8). 7 (7). 1894 1991 and A Vilus o. to hber. No., | me. 3 4 | |
| 2. PROOMEDINGS 2. JOURNAL Of to (8), 1874 (6), 1881 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1902 (6), 2/per N. B.—The figst definition of the first description of the first descript | tarches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1877 (882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 889 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 186 (9), 1903 (8), 1904 (16), @ No. to Non-Members ares enclosed in brakets give Proceedings. N. S., 190d Rs. 2 per No. to Non-Moof, to date. Price varif 25% to Members. view of the Researches of the Turki language as as (Extra No., J.A.S.B., 187 Mammals and Birds of Buth 150 (1898 (18 | KX @ 10/ each 1870 to 1904 (70 (8), 1878 (8), 1878 (8), 18 1885 (6), 18 (71, 1892 (8), 1899 (8), 1899 (8), 1899 (8) 1/8 per No. to the number of 1895 (1898 from number solution in Easter 189 Isociety, Bengal, ach of New Individual of 1899 (8) | 2 /8/ per N. 1, 1872 (8), 679 (7), 1886 68 (8), 1887 1893 (11), 1900 (7), 1 | 1878) (8). 7 (7). 1894 1991 and A Vilus o. to hber. No., | 3 4 4 3 | |
| E. PRODREDINGS B. JOURNAL OF t (8), 1874 (6) 1881 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 29 per N. B.—The fig. Journal and Members a Members a 5. Memoirs, 19 Discount of R. B. Shaw Catalogue of J.A.S.B., 187 Catalógue of t 3. Mahābhārata 9. Moore and Parts 1-III 0. Tibotan Lict | tarches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Assiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1876 (8), 1885 (6), 1889 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (81, 1897 (8), 1869), 1903 (8), 1904 (16), @ No. to Non-Members ares enclosed in brakets give Proceedings. N. S., 190 and Rs. 2 per No. to Non-Mod. To to date. Price varies of 25% to Members view of the Researches of the Turki language as spread of the T | KX @ 10/ each 1870 to 1904 (70 (8), 1878 (8), 1878 (8), 1885 (6), 188 (7), 1892 (8), 1892 (8), 1899 (8 1/8 per No. to the number of 15, to date, @fembers. less from num he Society from poken in Easter 8) rrmah, by E. E. Bociety, Bengal, ach of New Indito. @ 6/ each to 1970 to 1 | 2 /8/ per N, 1872 (8), 879 (7), 1886 (8), 1887 (11), 1900 (7), 190 | 1878) (8), 7 (7), 1294 1901 and A V. lui o. to nber. No, | 3 4 4 3 40 | |
| E. PRODREDINGS B. JOURNAL OF to (8), 1874 (6) 1881 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1895 (7), 1902 (6) 2/ per N. B.—The figst 4. Journal and Members a 5. Memoirs, 19 Discount of Centenary Re A sketch of R. B. Shaw Catalogue of J.A.S.B., 187 7. Catalogue of S. Mahābhārata, 9. Moore and Parts 1—III 1 Tibetan Dieta | tarches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1877 (882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 889 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1869 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1869 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1869 (10. 1890 (11), 1891 (10. 1890 (11), 1891 (11) | KX @ 10/ each 1870 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 1585 (6), 18 1885 (6), 189 1885 (6), 189 189 (8), 1899 (8 1/8 per No. to the number of 05, to date, @ 16 fembers. less from num the Society from coken in Easter 8) urmah, by E. B cociety, Bengal, sach of New Indi to. @ 6/ each | 2 /8/ per N.), 1872 (8), 879 (7), 1886 (8), 1887 (19), 1900 (7), so Members Nos. in eac. 1884-1883 m Turkistan 1884 1884 ian Lepidop | 1878) (8), 7(7), 1894 1901 and **No., nber. No., pters., | 3 4 4 3 40 18 10 8 | |
| d. PROOMEDINGS JOURNAL Of to (8), 1874 (6) 1881 (7), 1 1888 (7), 1 (8), 1895 (7), 1902 (6) 2/ per N. B.—The figst Journal and Members as 5. Memoirs, 19 Discount of R. B. Shaw Catalogue of J.A.S.B., 187 7. Catalógue of 1 9. Mahabhārsta 9. Moore and Parts 1-III 0. Tibetan Dict 1. Ditto Gru 2. Kaçmīraçabd | tarches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1877 (882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 889 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1869 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1869 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1904 (16), @ No. to Non-Members ares enclosed in brakets give Proceedings. N. S., 190 and Rs. 2 per No. to Non-Mo5, to date. Price varif 25% to Members. view of the Researches of the Turki language as as (Extra No., J.A.S.B., 187 Mammals and Birds of Bu (5) | KX @ 10/ each 1870 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 18 1885 (6), 18 (71, 1892 (8), 18 1/8 per No. t the number of 05, to date, @ 16mbers. les from num the Society from tooken in Easter 8) surmah, by E. E dociety, Bengal, took @ 6/ each of New India. | 2 /8/ per N.), 1872 (8), 679 (7), 1886 68 (8), 1887 1893 (11),), 1900 (7), | 1878) (8), 7 (7), 1294 1901 and **No. to No., ptors, | me. 3 4 4 3 40 18 | |
| 2. PROOMEDINGS 3. JOURNAL Of to (8), 1874 (6) 1881 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1895 (7), 1902 (6) 2/ per N. B.—The figs 4. Journal and Members a 5. Memoirs, 19 Discount of 6. Centenary Re A sketch of R. B. Shaw Catalogue of J.A.S.B., 187 7. Catalógue of to 3. Mahābhārata, 9. Moore and Parts 1—III 0. Tibetan Dict 1. Tibetan Dict 1. Kaçmīraçabd 3. A descriptive | tarches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1877 (882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 889 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1869 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1869 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1869 (10. 1890 (11), 1891 (10. 1890 (11), 1891 (11) | KX @ 10/ each 1870 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 1585 (6), 18 1885 (6), 189 1885 (6), 189 1885 (6), 189 1885 (6), 189 1885 (6), 189 1885 (6), 189 189 (8), 1899 (8 1/8 per No. to the number of 55, to date, @ fembers. less from num the Society from ooken in Easter 8) 1800 (8), 1899 (8 1800 (8), 1899 (8 1800 (8), 1899 (8 1800 (8), 1899 (8 1800 (8), 1899 (8 1800 (8), 1800 (8) 1800 | 2 /8/ per N.), 1872 (8), 679 (7), 1886 68 (8), 1887 1893 (11),), 1900 (7), | 1878) (8), 7 (7), 1294 1901 and **No. to No., ptors, | 3 4 4 3 40 18 10 8 | |
| d. PRODREDINGS JOURNAL Of to (8), 1874 (6) 1881 (7), 1 1888 (7), 1 (8), 1895 (7), 1902 (6) 2/ per N. B.—The Age Journal and Members a 5. Memoirs, 19 Discount of R. B. Shaw Catalogue of J.A.S.B., 187 7. Catalogue of J.A.S.B., 187 8. Mahābhārata, 9. Moore and Parts 1-III 0. Tibetan Dict 1. Ditto Grus 2. Kaçmīraçabd 3. A descriptive the Asiatic 4. Memoir on 1 | tarohes. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1877 (882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 889 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 186 (9), 1903 (8), 1904 (16), @No. to Non-Members ares enclosed in brakets give Proceedings. N. S., 190 and Rs. 2 per No. to Non-Mof. to date. Price varif 25% to Members. View of the Researches of the Turki language as as (Extra No., J.A.S.B., 187 Mammals and Birds of Bu (5) | KX @ 10/ each 1870 to 1904 (70 (8), 1871 (8), 1878 (8), 1878 (8), 1885 (6), 1885 (6), 1898 (8), 1899 (8), | 2 /8/ per N.), 1872 (8), 879 (7), 1886 1893 (11),), 1900 (7), o Members Nos. in eac.) 1-8 per N. ber to nun 1784-1883 rn Turkistan llyth (Extra ian Lepidop , in the roon | 1878) (8), 7 (7), 1894 1901 and A V.lus o. to nber No., by | 3 4 4 3 40 18 10 8 3 1 | |
| 2. PRODREDINGS 3. JOURNAL Of to (8), 1874 (6) 1881 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1902 (6) 2/per N. B.—The fig. 4. Journal and Members as Memoirs, 19 Discount of R. B. Shaw Catalogue of J.A.S.B., 1877. Catalógue of J | tarches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1877 (882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 889 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 186 (9), 1903 (8), 1904 (16), @ No. to Non-Members ares enclosed in brakets give Proceedings. N. S., 190 and Rs. 2 per No. to Non-Mo5, to date. Price varif 25% to Members. view of the Researches of the Turki language as as (Extra No., J.A.S.B., 187 Mammals and Birds of Bu (5) | KX @ 10/ each 1870 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 18 1885 (6), 18 (71, 1892 (8), 18 18 (8), 1899 (8 1/8 per No. t the number of 05, to date, @ 16mbers. les from num the Society from tooken in Easter 8) surmah, by E. E society, Bengal, ach of New India (a) (8) each (b) (9) (8) each (c) (9) (8) each (c) (9) (8) each (c) (9) (9) (9) (9) (9) (9) (1899 | 78/ per N, 1872 (8), 679 (7), 1886 (8), 1887 (11), 1900 (7), 190 | 1878) (8), 7 (7), 1294 1901 and **No. to hber. No., pters, r, by | 3 4 4 3 40 18 10 8 3 | |
| d. PROOMEDINGS JOURNAL Of to (8), 1874 (6) 1881 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1895 (7), 1902 (6) 2/ per N. B.—The figs 4. Journal and Members a 5. Memoirs, 19 Discount of Centenary Re A sketch of R. B. Shaw Catalogue of J.A.S.B., 187 7. Catalógue of 6 5. Mahābhārata, 9. Moore and Parts 1—III 0. Tibetan Diet 1. Ditto Grun 2. Kaçmiraçabd 3. A descriptive the Asiatic 4. Memoir on 1 M. A. Stein 5. Persian Tra | tarches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Assiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1877 (882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 889 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 186 (9), 1903 (8), 1904 (16), © No. to Non-Members ares enclosed in brakets give Proceedings. N. S., 190 and Rs. 2 per No. to Non-Mo5, to date. Price varif 25% to Members. view of the Researches of the Turki language as as (Extra No., J.A.S.B., 187 Mammals and Birds of Bu (5) | KX @ 10/ each 1870 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 1585 (6), 18 1885 (6), 189 1885 (6), 189 1885 (6), 189 1899 (8), 1899 (8 1/8 per No. to the number of 05, to date, @ 16mbers. less from num the Society from to Haster 1800 1800 1800 1800 1800 1800 1800 1800 1800 1809 1870 1870 1880 | 2 /8/ per N. 1, 1872 (8), 1879 (7), 1886 1893 (11), 1900 (7), 190 | 1878) (8), 7 (7), 1294 1901 and **No. to hber. No., pters, r, by naikh | me. 3 4 4 3 40 18 10 8 3 | |
| 2. PROOMEDINGS 3. JOURNAL Of to (8), 1874 (6), 1881 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1902 (6) 2/ per N. B.—The fig. 4. Journal and Members and Members and Catalogue of J.A.S.B., 187 7. Catalogue of G. Mahābhārata, Moore and Parts 1—III 0 1tto Grumuz Kaçmiraçabd A descriptive the Asiatic 4 Memoir on 1 M. A. Stein Persian Tra | tarches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Asiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1877 (882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 889 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 186 (9), 1903 (8), 1904 (16), @ No. to Non-Members ares enclosed in brakets give Proceedings. N. S., 190 and Rs. 2 per No. to Non-Mo5, to date. Price varif 25% to Members. view of the Researches of the Turki language as as (Extra No., J.A.S.B., 187 Mammals and Birds of Bu (5) | KX @ 10/ each 1870 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 1585 (6), 18 1885 (6), 189 1885 (6), 189 1885 (6), 189 1899 (8), 1899 (8 1/8 per No. to the number of 05, to date, @ 16mbers. less from num the Society from to Haster 1800 1800 1800 1800 1800 1800 1800 1800 1800 1809 1870 1870 1880 | 2 /8/ per N. 1, 1872 (8), 1879 (7), 1886 1893 (11), 1900 (7), 190 | 1878) (8), 7 (7), 1294 1901 and **No. to hber. No., pters, r, by naikh | 3 4 4 3 40 18 10 8 3 1 | |
| 2. PRODREDINGS 3. JOURNAL Of to (8), 1874 (6), 1874 (6), 1881 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1888 (7), 1 1902 (6), 2 / per N. B.—The fig. 4. Journal and Members and Members and Catalogue of J.A.S.B., 187 7. Catalógue of (8), Mahābhārata, Moore and Parts 1—III (7), 2 / 2 / 3 / 4 / 4 / 4 / 4 / 4 / 4 / 4 / 4 / 4 | tarches. Vols. XIX and 1 of the Asiatic Society from the Assiatic Society for 18'8, 1875 (7), 1876 (7), 1877 (882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 889 (10. 1890 (11), 1891 (7), 1896 (8), 1897 (8), 186 (9), 1903 (8), 1904 (16), © No. to Non-Members ares enclosed in brakets give Proceedings. N. S., 190 and Rs. 2 per No. to Non-Mo5, to date. Price varif 25% to Members. view of the Researches of the Turki language as as (Extra No., J.A.S.B., 187 Mammals and Birds of Bu (5) | KX @ 10/ each 1870 to 1904 (70 (8), 1571 (7 (8), 1878 (8), 1585 (6), 18 1885 (6), 1892 (8), 1899 (8), 1899 (8) 1/8 per No. to the number of of the number of of the number of of the from number of the fro | 2 /8/ per N. 1, 1872 (8), 879 (7), 1886 889 (11), 1, 1900 (7), 10 Members 10 Nos. in eac. 11-8 per N. | 1878) (8), 7 (7), 1294 1901 and **No. to hber. No., pters, r, by naikh | me. 3 4 4 3 40 18 10 8 3 | |

. . . .

तं ज्ञापयाधुनापीति तयोत्तः कपिसीऽवदत्। त्रसाहबभदासस्य त्रेष्ठिनस्तनयः सुधीः ॥ ४८ ॥ एव रूपेच पश्चेषुः काम्खेन्दुस्तेजसा रविः। गाभीर्येण महाभोधिः चमया सुनिसत्तमः ॥ ४८ ॥ दानैकचिन्तामाणिकां गुणमाणिकारोइणः। प्रियालापसुधाकुण्डं वसुधामुखमण्डनम् ॥ ५०॥ खनूका खलु यहाऽस्य निखिनानपरान् गुचान्। गुणचूडामणे: शीलं यस्य न सवलति कचित्॥ ५१॥ कापिला कापिलाच्छुला तहुणान् कामविद्वला। चक्रीऽनुरागं, चपलाः प्रायेण दिजयोषितः ॥ ५२ ॥ सुदर्भनाभिसरणोपायं प्रतिदिनं ततः। कपिला चिन्तयामास परं ब्रह्मोव योगिनी ॥ ५३ ॥ चवरेखुर्नृवादेशाद्गामान्तरमुपेयुषि । कपिले, कपिलेयाय सुदर्भननिकेतनम् ॥ ५४ ॥ सा मायाविन्यवोचत्तमद्य विसुद्धदो महत्। गरीरापाटवं तेन ईतुना नाययाविह ॥ ५५ ॥ त्रपाटवं लिहिरहाइपुषी दिगुणं यत:। चतस्वामहमाज्ञातुं प्रेषिता सञ्चदा तव ॥ ५६ ॥ नैतज्जातं मयेत्युक्का तदैवागात्स तदृष्टम् । नान्यमायां हि शङ्कले सन्तः स्वयममायिनः ॥ ५० ॥ स तत्र प्रविश्व तूर्वे का नाम सुद्वदस्ति मे । सीवाच गम्यतामग्रे गयान: सुद्रदस्ति ते ॥ ५८ ॥

y .

किश्विच परिस्थाये पुनः प्रोचे सुदर्भनः। भवापि कपिसो नास्ति किसन्यव कचिद्ययौ ॥ ५८ ॥ सो वे स्थितो निवातेऽस्ति ग्ररीरापाटवादसी। मूलापवरकां गच्छ वयस्यं तत्र पास च ॥ ६० ॥ तवापि प्रविवेशायमपश्चन् सुद्धदं तत:। कपिले ! कपिल: कास्तीत्यवाच सरलागय: ॥ ६१॥ भववदा तती हारं सदनोहीपनानि सा। कि चित्रकाम्य खाङ्गानि च्छादयन्यच्छवाससा॥ ६२॥(युग्मम्) दृढबन्धामपि नीवीं स्वययिलाऽभिबन्नती। विलोललोचनाऽवोचद्रोमाघोदघिकच्का॥ ६३॥ नास्तीच कपिलस्तमालपिलां प्रतिजाग्टि । विभेदो भवतः को वा हयोः कपिलयोर्नेतु ॥ ६४ ॥ प्रतिजागरितव्यं किं कपिसाया इति सुवन्। सुदर्भनो निजगदे पुनः कपिलभायँया ॥ ६५ ॥ लद्दयस्यः भगंस लां यदाऽइतगुणं मम । तत: प्रश्ति मामेष दुनोति मदनच्वर: ॥ ६६ ॥ दिच्या मे विरद्वात्तीया खन्ननाऽपि लदागमः। भुवो ग्रीषाभितप्ताया दव मेघसमागमः ॥ ६०॥ चय नाथामि तदाध ! मसधीसायविद्वलाम्। निजाक्षेषसुधावर्षेराखासय चिराय माम् ॥ ६८॥ प्रपच्च: कोऽप्यसावस्या दुर्विचिन्स्यो विधेरपि। धिक् स्त्रीरिति विचिन्छोचे स प्रत्यत्पवधीरिदम्॥ ६८॥

युनां युक्तमिदं किन्तु 'पण्डकोऽ इमपण्डिते !। मुधा पुरुषवेषेण मदीयेनासि विश्वता॥ ७०॥ ततो विरक्ता सदा: सा याहि याहीति भाषिणी। हारसुहाटयामास निर्ययौ च सुदर्भन: ॥ ७१ ॥ स्तोकेन मुक्तो नरकद्वारादस्मीति चिन्तयन्। चेष्ठिस्तुर्दुतपदं प्रपेदे निजमन्दिरम् ॥ ७२ ॥ त्रतिराचसयः सूटादितशाकिनयञ्खनात्। मतिविद्युतश्वापनाद्दारुणाः किमपि स्त्रियः॥ ७३॥ एताभ्यो भीवरस्रीति प्रत्यत्रीषी दिस्य स:। नात: परं परग्रहे यास्त्रामि क्वचिदेकक: ॥ ७४ ॥ निर्मिमाणः स धर्म्याणि कर्माणि ग्रभकर्मठः। सतां मूर्त्त दवाचारी नावद्यं किश्वदाचरत्॥ ७५॥ एकदा तु यथाकालं पुरे तिस्मिनवर्त्तत । समयजगदानन्दपदिमन्द्रमहोत्सवः॥ ७६ ॥ सुदर्भनपुरीधाभ्यां सङ्घोद्यानं ययौ तृपः। साचादिव भरलालसन्द्रागस्तिविराजितः ॥ ७० ॥ दतः कपिलया युक्ताऽभया भूपतिमन्वगात्। समारुटा याप्ययाने विमान इव नाकिनी ॥ ७८ ॥ सुदर्शनस्य भार्याऽपि षड्भिः पुर्वेर्भनोरमा । तत्रागाचानमारु सतीधर्म द्वाङ्गवान् ॥ ७८ ॥

⁽१) क घर्डकी-।

तां दृष्टा कपिनाऽप्रच्छलीयं खामिन । वर्षिनी । रूपलावस्यसर्वेस्तभाग्डागार श्वायत: ॥ ८० ॥ ततस्तामभयाऽवादीन जातियमपि लया। सुदर्भनस्य यहिंची ग्रहतस्मीरिव स्वयम् ॥ ८१ ॥ तच्छुला विस्निता साइ कपिला देवि ! यदासी । सुदर्भनस्य ग्रहिषी तदस्याः कीयलं महत्॥ ८२॥ किमस्याः की यलमिति राज्ञियोज्ञा साऽव्रवीत्पृनः। इयन्ति पुत्रभाष्डानि यदसी समजीजनत्॥ ८३॥ स्वाधीनपतिका पुत्रानङ्गना अनयेदादि । तिलां की यसित्युक्ताऽभयया कपिलाऽवदत्॥ ८४॥ एवं देवि ! भवत्येव पतिर्यदि पुमान भवेत । सुदर्भनः पुनरयं 'पण्डः पुरुषवेषस्त् ॥ ८५ ॥ कथमेतत्वया जातं राज्ञेति गटिता ततः। सा सुदर्भन हत्तानां खानुभूतमचीक वत्॥ ८६ ॥ मभयाऽप्यव्रवीदेवं यद्येवं विश्वताऽसि तत्। मृदि ! 'पण्डः परस्तीषु न लयं निजयोषिति ॥ ८०॥ ततो विलचा कपिला प्रस्तापित्यस्यिता। विश्वता यदा इं मूढा प्राज्ञायाः किं तवाधिकम् ॥ ८८ ॥ प्रनयोचे मया सुन्धे ! रागतः पाणिना धृतः । द्रविद्वावाऽिप नि:संज्ञ: ससंज्ञ: किं पुन: पुमान् ॥ ८८ ॥

⁽१) क घर्षः।

⁽२) क मब्दः। खाच मब्दः।

सास्यमूचे कपिलाऽप्येवं मा गर्वसुद्द । गवें वहसि चेहेवि ! रम्यतां तसुदर्भन: ॥ ८० ॥ व्याजहाराभया देवी साहकारमिदं तत:। इला ! रिमतमेवैनं मया विधि सुदर्शनम् ॥ ८१ ॥ रमणीभिर्विटम्बाभिः कठोरा वनवासिनः। तपिखनोऽपि रिमताः कोऽसी सदुमना रुष्टी ॥ ८२ ॥ रमयामि न यद्येनं प्रविशामि तदाऽनलम्। प्रत्यालपन्यावुद्यानं प्रपेदाते चपिन ते ॥ ८३ ॥ 'तवारमयतां खैरं नन्दनेऽसरसाविव। मभयाकपिले यान्ते खं खं धाम गते तत: ॥ ८४ ॥ त्रय तताभया राज्ञी खप्रतिज्ञामजिज्ञपत्। धाविकां पण्डितां नाम सर्वेविज्ञानपण्डिताम् ॥ ८५ ॥ पण्डिताऽवीचदा: ! पुति ! न युक्तं मन्त्रितं खया । त्रज्ञे त्यापि न जानासि धैर्यमितं महाकानाम् ॥ ८६॥ जिनेन्द्रसुनिशुत्रूवानिष्कम्पीक्तमानसः। सदर्भन: खर्चसी तत्रतिज्ञां धिगिमां तव ॥ ८७ ॥ मन्योऽपि त्रावको नित्धं परनारीसङोदरः। किमुच्चते पुनरसी महासत्त्विधरीमणि: ॥ ১८ ॥ ब्रह्मचर्यधना नित्वं गुरवी यस्य साधव:। कर्य कार्येत सीऽब्रह्म गुब्मीसाद्युपासकः ॥ ८८ ॥

⁽१) ग तलाचारमता-।

सदा गुरुकु लासीनो ध्यानमीनात्रितः सदा। मानितुमभिषतुं वा स कयं नाम मकाते॥ १००॥ वरं फणिफणार ब्रग्डणाय प्रतिव्रव:। कदापि न पुनस्तस्य भीलोक्क नकर्मेषे ॥ १ ॥ प्रधाभयोचे कथमध्येकवारं तमानय। तत जर्द्धमधं सर्वे करिषामि न ते च्छलम्॥ २॥ विचिन्य चेतसा किचिटित्यवोचत पण्डिता। यदायं निषयस्ते तदस्यपायोऽयमेककः ॥ ३ ॥ पर्वाहे शून्धगेहादी कायोतार्ग करोति स:। तवास्वितो यदि परमानेतव्योऽन्यया तुन ॥ ४॥ उपाय: साधुरेषोऽस्मिन् यतितव्यं लयाऽन्वह्म । दख्तावत्यां तात्पर्याद्देव्यामीमित्युवाच सा॥ ५॥ ततः परं व्यतीतेषु दिवसेषु कियत्स्विप । विम्बानन्दकलीमुदीमहोसव छपाययी ॥ ६॥ भय राज्ञीसवीसेकविधिसोसुकचेतसा। त्रारचकाः समादिष्टाः पटहेनेत्यघोषयन् ॥ ७॥ सर्वेद्या सर्वे लोकेन की सुद्युव्यवमी चितुम्। पद्योद्यानिऽभिगन्तव्यमिति वो राजगासनम् ॥ ८॥ प्रातरेष्यचतुर्मासधर्मकर्मक्रियोग्ननाः। युला सुदर्भनस्तम् विषादादित्यचिन्तयत् ॥ ८ ॥ मन:प्रहमिदं प्रात्येत्यवन्दनकभेषे । उदानगतये चैतलवर्षं राजगासनम् ॥ १०॥

क उपायी भवलेवं तावदित्यभिचिन्य स:। समर्प्यीपायभं भूमिपतिमेवं व्यक्तित्रपत् ॥ ११ ॥ प्रातः पर्वदिनं युष्णत्रसादाहिद्धाम्यहम् । देवाचीदीनि तेनोस्रोऽत्मेने तन्त्रहीपति: ॥ १२ ॥ दितीयेऽक्रि जिनेन्द्राणां भक्त्या स्नातं विलेपनम्। प्रचीं च रचयंबैत्यपरिपात्रां चचार सः ॥ १३ ॥ ततः सदर्भनो रात्री ग्रहीला पौषधव्रतम्। कायोक्षर्गेष किसंधित्तस्यो नगरचलरे ॥ १४ ॥ पिकताऽप्यभयामूचे कदाचित्ते मनोरया:। पूर्व्यक्ते परमुद्यानमद्य लमपि मा गमः ॥ १५ ॥ शिरी में बाधत इति कलोत्तरमिलापते:। तस्वी राज्ञी प्रपच्चे डि सिडसारस्त्रताः स्त्रियः ॥ १६ ॥ ततो लेप्यमयौं काममूर्त्तिमाच्छाच वाससा। याने कला पण्डिताऽगात्रवेष्टुं राजवैष्मनि ॥ १०॥ विमेतदिति प्रच्छा इवें विभिः खब लिता तु सा। इत्यू वे पिक्कता भाग्छागारिकी कूटसम्पदाम् ॥ १८॥ प्ररीरकारणाहेवी नाखीखानं ययी तत:। पूजां सारादिदेवानां वेश्मन्धेव करिष्यति ॥ १८ ॥ इयं प्रविद्यते तस्रात्रितमा पुष्पधन्वनः। प्राचन्यासां देवतानां प्रवेग्या ग्राच मूर्त्तयः ॥ २०॥ तदिमां दर्शयिलैव याहीति हाःस्थभाविता। सा काममू त्तिमुद्वाव्याद्येयच जगाम च ॥ २१ ॥

सा प्रतीचारमोचाय खडीताऽपरमूर्त्तिका। 'दिस्तिय प्रविवेशाची नारीयां क्याकीशत्तम् ॥ २२ ॥ याने सदर्भनं न्यस्थोत्तरीयेच पिधाय च। दाःस्वैरस्त्रस्तिताऽनीयाऽभयायाः पष्डिताऽर्पयत् ॥ २३ ॥ पाविविकारा साध्नेकप्रकारं मदनातुरा। घभया संचीभयित्मित्यभाषत तं ततः ॥ २४ ॥ कन्दर्भों मां दुनोत्धेष नि:मद्धं निमितैः गरेः। कन्दपेप्रतिक्प'स्तिक्कृतोऽसि गरचं मया ॥ २५ ॥ गरसः गरनायातामात्ती व्रायस नाव ! माम्। परकार्ये महीयांसी श्वकार्यमपि कुर्वते ॥ २६ ॥ पानीतम्ब्यानाऽसीति कार्यः कीपस्वया न हि। कार्ये वाणे यदात्तीनां रहाते न खतु च्छलम् । २०॥ ततः सुदर्भनोऽप्युचैः परमार्धविचचनः। टेवताप्रतिमेवास्थालायोक्षर्गेष निस्नः ॥ २८ ॥ पुनरप्यभयाऽवादी मावद्यावमनो इरम्। नाय! सभाषमाणां मां तृष्णीक: किसुपेचरे ॥ २८ ॥ व्रतकष्टमिदं सुच मा क्रयास्वमतः परम्। मसंप्राप्तरा व्रतफलं विश्वि संसिष्टमात्मनः ॥ ३० ॥

⁽१) च दिक्तिचत्रविवेशाशी।

⁽१) बचाच -पर्स्वा चितोऽसि।

⁽३) खच-तृ शावभाव-।

ताम्यन्तीं याचमानां मां नम्नां मानय मानद !। दैवात्पतितमुखाङ्गे रतं ग्टह्यासि विं निष्ट ॥ ३१ ॥ 'कियदद्यापि सीभाग्यगर्वमुत्राटियश्वसि । इत्यालपन्या जग्रहे तया पाणी स पाणिना ॥ ३२ ॥ निबिडं मण्डलीभूतपीनोत्तृष्टसनं तया। भुजाभ्यां पश्चिमीनालमृदुलाभ्यां स सख्जी ॥ ३३ ॥ एवं तदुपसर्गेषु निसर्गेण स धीरधी:। धर्मध्याने नियलोऽभूत् किं चलत्यचलः कचित्॥ ३४॥ स दध्यी चेति चेन्युचे कयचिदहमितया। पारयामि तदोसर्गमन्यथाऽनश्नं मम ॥ ३५ ॥ चमानिताऽच घटितभुकुटि: कुटिबागया। चभया तं भाषियतुमित्यभाषत निर्भया ॥ ३६ ॥ मुमूषी ! मूर्ष ! माकाषीमीन्याया मेऽव'माननाम् । न विक्ति मानिनी नृषां नियद्वानुयद्वया॥ ३०॥ मनोभववयाया मे वयमाविय रे जड !। नो चेद्यमवर्ग याखस्यत नास्येव संगयः ॥ ३८ ॥ इति संरम्भकाष्टायां साऽऽवरोष्ट यथा यथा। धर्मधाने महालाऽसा'वाद्री हत्या तथा ॥ १८ ॥

⁽१) व विवद्यद्यापि।

⁽२) स -माननम्। सः ग स -मेव मान्धतास्।

⁽१) य स वादरोष्ट्र।

एवं कदर्थितो राब्रिं तया ध्यानाव सीऽचंसत्। किं चभ्यते महाभोधिः कापि नीदण्डताडनैः ॥ ४० ॥ ततः प्रेच्य प्रभातं सा स्वं लिलेख नखैवेषु:। को अपसी में बलात्वारकारीत्यु में ररास च ॥ ४१॥ ततः प्राइरिकास्तव संभान्ता यावदागमन्। कायोक्षर्गस्थितं तावइदृशुस्ते सुदर्भनम् ॥ ४२ ॥ पियावसभावत्येतदिति द्वतसुपेत्य तै:। विश्वप्तो भूपतिस्तवाययी पप्रच्छ चाभयाम् ॥ ४३ ॥ सीचे संप्रच्छा देव ! लामइं यावदिष्ठ स्थिता। एषीऽकस्मादिशायातो दृष्टस्तावत्यिशाचवत् ॥ ४४ ॥ एव मेव द्वीकासी मनावव्यसनी तत:। रिरंसुमीमयाचिष्ट पापिष्ठबाट्कोटिभिः ॥ ४५ ॥ कर्वे मधैष र मैषीरसतीवसतीरि । शक्यन्ते हि चणकवकारिचानि न चवित्म्॥ ४६ । ततः परं बलालारादेव एवं चकार मे। मया च पूरकतमन्यदवलानां बलं निष्ट ॥ ४० ॥ चित्रविदमसभाव्यमिति मला महीपति:। किमेतदिति पप्रच्छ बहुधैव सुदर्शनम् ॥ ४८॥ पृष्टोऽपि राज्ञा क्रपया किञ्चिकोचे सदर्भनः। परतापोपशास्यै हि निष्टमपि चन्दनम् ॥ ४८ ॥ ततः सन्भावयामास दोषं तस्यापि भूपति:। पारदारिकदस्यूनां तृष्णीकत्वं हि लचणम् ॥ ५०॥

इत्यादिदेश स क्रीधासक लेऽप्यत पत्तने। दोषप्रस्थापनां कला पाप एव निग्दश्चताम् ॥ ५१ ॥ मारचपुरुषैदीिण स धृलोत्पाटितस्ततः। वचसा सिद्यो राज्ञां मनसेव दिवीकसाम् ॥ ५२ ॥ स मण्डितो सुखे मचा गरीर रक्तचन्दनै:। करवीरस्त्रजा मुख्डे कर्ग्हे 'कोशकमालया ॥ ५३ ॥ खरमारोप्य विष्टृतसूर्प क्छितः स तैस्ततः । वाद्यमानेनानवेनारेभे स्वमयितुं पुरे ॥ ५४ ॥ कतापराधः ग्रुडान्ते बध्यतेऽसी सदर्गनः । नावदोषी तृपस्येति चक्र्राघोषणां च ते॥ ५५ ॥ न युक्तं सर्वधाऽप्येतने इ सन्धवती हम्म । दति लोकप्रघोषोऽभूद् हाहारवयुतस्ततः ॥ ५६ ॥ एवं च भ्रम्यमाणोऽगाद हारदेशे खवैश्नन:। त्रदृश्यत सहासत्या स मनोरमयाऽपि च ॥ ५० ॥ चिन्तयामास सा चैवं सदाचारः पतिमम । भूपतिय प्रियाचारी दुराचारी विधिर्भवम् ॥ ५८ ॥ र्दमप्यसद्यवा भुवमस्य महात्मनः। उपस्थितं फलमिदं प्राप्तनाग्रभवर्मणः ॥ ५८ ॥

⁽१) क की शिक्यालया।

⁽१) च विधतसूर्यकालयतैकातः। च विधतः सूर्यकालयतैकातः। च विधतः सूर्येन्यलयतैकातः।

कोऽपि नास्य प्रतीकारस्त्रयाप्येष भविष्यति। निसित्येति प्रविध्यानार्जिनार्चाः साऽर्चयत्ततः ॥ ६० ॥ कायोक्तर्गेष च स्थिता सोचे शासनदेवता:। भगवत्वी सम पत्युदींषसभावनाऽपि न ॥ ६१ ॥ परमत्रावकस्थास्य साविध्यं चेलारिष्ययः। तदाऽ इं पारियामि कायोक्षर्गमिमं खुलु ॥ ६२ ॥ चन्धं धैवंस्थिताया में भवत्वनग्रनं भवम्। धर्मध्वंसे पतिष्वंसे किं जीवन्ति क्वलस्त्रियः ? ॥ ६३ ॥ द्तव न्यधरारचाः श्रु लिकायां सुदर्भनम्। चलक्नीया खत्यानां राजाजा हि भयक्ररा ॥ ६४ ॥ खर्षानासनतां भेज श्लाध्यस्य महायानः। देवतानां प्रभावेन यमदंष्ट्राऽपि कुण्छति ॥ ६५ ॥ वधाय तस्य चारचैर्दृढं व्यापारित: शित:। करवालोऽपतलाग्छे पुष्पमाला च सीऽभवत् ॥ ६६ ॥ तहरा चितिरेत्य विज्ञप्तस्तेमें डीपति:। पारम प्रस्तिनीं वेगाद्ययाविधसुदर्भनम् ॥ ६० ॥ तमालिका महीपालोऽन्तापादित्यवीचत । त्रेष्ठित्रष्ठि विनष्टोऽसि दिच्याऽऽसीयप्रभावतः ॥ ४८ ॥ मया हि तावत्पापेन किं राज्ञाऽसि विनाशित:। नाय: सतामनायानां धर्मी जागित्तं सर्वया ॥ ६८ ॥ स्त्रीणां सायाप्रधानानां प्रत्ययात्वां निष्ठन्ति य:। चित्रस्थकर: पापो नापरो दिधवाइनात ॥ ७० ॥

किंच किचिदिदं पापं भवताऽप्यस्मि कारित:। त्रसक्तवमया साधी ! तदा प्रष्टोऽपि नावदः ॥ ७१ ॥ एवमालपता राजा करिस्थामधिरीप्य सः। नीला खड्म्यें स्विपितयन्दनैय विलेपितः॥ ७२॥ वसासङ्कारजातञ्च परिधाप्य सुदर्भनः। राजा पृष्टी राबिहत्तं यथातयमचीकथत्॥ ७३॥ भय राज्ञीं प्रति कुद्दी भूपतिर्निप्रहोद्यत:। सुदर्भनेन व्याविधि भिरः प्रक्षिप्य पादयोः ॥ ७४ ॥ 'ततः श्रेष्ठी कृपेषेभमारीष्य पुरमध्यतः। महाविभूत्या तहेन्म नायिती न्यायतायिना ॥ ७५ ॥ मभयाऽप्येतदाक्षांहिध्यात्मानं व्यपदात । परद्रोडकरा: पापा: खयमेव पतन्ति डि ॥ ७६ ॥ पिकताऽपि प्रव्यागात्पाटनीपुत्रपत्तनम् । भवसहेवदत्ताया गणिकायात्र सिन्धी ॥ ७० ॥ तत्रापि पण्डिता नित्यं तथाऽऽगंसल्यदर्भनम् । दर्भनेऽस्य यथा देवदत्ताऽभूत्रृभमुत्तुका ॥ ७८ ॥ सुदर्शनोऽपि संसारविरत्तो व्रतमग्रहीत्। उपस्त्य गुरो: पार्षे रव्रमभीनिधेरिव ॥ ७८ ॥ तप: लगाक एकाक विचारप्रतिमास्थित:। स क्रमादिइरन् प्राप पाटबीपुत्रपत्तनम् ॥ ८०॥

⁽¹⁾ सम्बद्धा

भिचार्थे पर्यटंस्तन दृष्टः पिष्डितया च सः। कथितो देवदत्तायाः सा तया तमजू इवत् ॥ ८१ ॥ भिचाव्याजात्तयाऽऽइतस्तवापि स सुनिर्ययौ । विसर्श्वसविधायैव सापायनिरपाययोः ॥ ८२ ॥ देवदत्ता तती हारं पिधाय तमनेकधा। दिनं कदर्धयामास चुचीभ स सुनिने तु॥ ८३॥ षय 'मुक्तोऽनया सायमुद्यानं गतवानसी। तवापि दृष्टोऽभयया व्यन्तरीभूतया तया ॥ ८४ ॥ कदर्धयितुमारेभे प्राक्रमस्मरणादसी। ऋषं वैरं च जम्तूनां नम्येळायामारेऽपि न ॥ ८५ ॥ क्रियमानी बहु तया महासस्वः सदर्भनः। मारोइत् चपकत्रेषिमपूर्वेकरणक्रमात्॥ ८६॥ ततः स भगवान् प्राप केवलज्ञानमुक्क्वलम् । तस्य केवलमिशमा सदायमे सुरासुरै: ॥ ८० ॥ चिह्धीषुर्भवाळामृन् स चन्ने धर्मदेशनाम् । सोकोदयायाभ्युदयस्तादृशानां हि जायते ॥ ८८ ॥ तस्य देशनया तत्राबुद्यान्तान्ये न केवलम् । देवदत्ता पण्डिता च व्यन्तरी च व्यवुद्यात ॥ ८८ ॥ स्त्रीसन्निधावपि तदेवमदूषिताला जम्तून् प्रबोध्य ग्रभदेशनया क्रमेण।

⁽१) च उ सम्मन्या साय-। च सम्मन्या सीऽय-।

स्थानं सुदर्भनमुनिः परमं प्रपेदे
जैनेन्द्रशासनजुषां न हि तहुरापम् ॥ १८० ॥
॥ इति सुदर्भनऋषिकयानकम् ॥ १०१ ॥

धम्यं कर्मण न पुरुषा एवाधिक्रियन्ते किन्तु स्त्रीणामप्यधि-कारसतुर्वणं सङ्गे तासामप्यङ्गभूतत्वात् ततः पुरुषस्य परदार-प्रतिषेधवत् स्त्रीणां परपुरुषगमनं प्रतिषेधयति—

ऐख़र्यराजराजोऽपि रूपमीनध्वजोऽपि च। सीतया रावण द्रव त्याच्यो नार्या नरः परः ॥ १०२॥

पेखर्येण विभवेन, राजराजी धनदः स इव राजराजः, आस्तामितरः। रूपेण सीन्दर्येण, मीनध्वजीऽपि स्नरीऽपि, आस्तामन्यः। त्याच्यः परिचरणीयः, नार्या स्त्रिया, परः स्वपतेरन्यो, नरः पुरुषः, क इव कया, सीतया रावण इव। सीताचरितमुक्तमेव॥१०२॥

स्त्रीपंचयोर्दयोरिय परकान्तासक्तत्वस्य फलमार — नपंसकत्वं तिर्यक्त्वं दीर्भाग्यं च भवे भवे । भवेद्वराणां स्त्रीणां चान्यकान्तासक्तचेतसाम् ॥१०३॥

नपुंसकलं षर्छलं, तिर्धक्लं तिर्धिभावः, दीर्भाग्यमनादेयता, भवे भवे जन्मनि जन्मनि, भवेत् जायेत, नराणां स्त्रीणां च। अन्यकान्तासक्तवेतसामिति। स्त्रिष्टं इयोविंशेषणम्। यदा पुरुषाणां तदा चन्यस्य कान्ता भार्या चन्यकान्ता तदासक्तचेत-साम्। यदा तु स्त्रीणां तदा चन्यः पत्युरपरः स चासी कान्तस कामयिता तचासक्रचेतसाम्॥ १०३॥

भन्नम्नानिन्दां कला नम्मचर्यस्वैष्टिकं गुणमाष्ट—
प्राणभूतं चरित्रस्य परब्रह्मैककारणम् ।
समाचरन् ब्रह्मचर्यं पूजितैरपि पूज्यते ॥ १०४॥

प्राचभूतं जीवितभूतं, चित्रस्य देशचारिचस्य सर्वचारिचस्य च, परब्रह्मचो मोचस्य, एकमहितीयं, कारणं समाचरन् पालयन्, ब्रह्मचर्यं जितिन्द्रियस्वोपस्वनिरोधलच्चणं पूजितेरिप सुरासुरमन्-जिन्द्रेः न केवसमन्वैः पूज्यते, मनोवाकायोपचारपूजाभिः ॥ १०४॥

ब्रह्मचर्यस्य पारलीकिकं गुणमाइ—

चिरायुषः सुसंस्थाना दृढसं इनना नराः। तेजस्विनो महावीयी भवेयुर्बस्मचर्यतः॥ १०५॥

चिरायुषो दीर्घायुषोऽनुत्तरसुरादिष्त्यादात्, योभनं संस्थानं समचतुरस्रलचणं येषां ते संसंस्थानाः सनुत्तरसुरादिष्त्यादादेव, दृढं बसवत् संद्वननमस्थिसच्चयरूपं वच्चम्द्रषभनाराचात्यं येषां ते दृढसंद्वननाः, एतच मनुजभवेष्त्यद्यमानानां देवेषु संद्वननाभावात्. तेजः यरीरकान्तिः प्रभावो वा विद्यते येषां ते तेजस्थिनः, महावीर्या बसवत्तमाः तीर्धकरचक्रवर्त्त्यादित्वेनोत्पादात्, भवेयु-र्जायेरन्, ब्रह्मचर्यतो ब्रह्मचर्यानुभावात्॥

पपान्तरञ्जोका:---

पम्यन्ति क्षणाकुटिनां कबरीमेव योजिताम्। तदभिष्वक्रजनानं न दुष्कर्मपरम्पराम्॥१॥ सीमितानीनां सीमलं: पूर्णः सिन्ट्ररेखनं। पत्वा: सीमन्तकास्यस्य नरकस्येति लच्चताम् ॥ २ ॥ भ्वक्तरीं वर्षिनीनां वर्षयन्ति नःजानते । मोचाध्वनि प्रस्थितानां पुरोगासुरगीमिमान् ॥ ३ ॥ भक्ष्रात्रयमापाङ्गामङ्गमामां मिरीचते । इतबुद्धिन तु निजं भन्नुरं इन्त जीवितम् ॥ ४ ॥ नासावंगं प्रयंसन्ति स्त्रीणां सरलसुन्ततम्। निजवंशं न पश्चिति भ्रायम्तमनुरागिषः ॥ ५॥ स्तीणां कपोले संक्रान्तमालानं वीच्य प्रधात । संसारसरसीपके मळानां वित्ति नी जडः ॥ ६॥ पिबन्ति रतिसर्वस्तव्द्वा विम्वाधरं स्त्रियाः। न बुध्यन्ते यत्नृतान्तः पिबत्यायुद्धिदानिशम् ॥ ७ ॥ योषितां दशनान् कुन्दसीदरान् बहु मन्वते। खदन्तभद्गं नेचन्ते तरसा जरसा क्षतम्॥ ८॥ स्मरदोलाधिया कर्णपाशान् पर्यात योषिताम्। क ग्होपक ग्हलु हितान् कालपाशांसु नाकानः ॥ ८॥ योषितां प्रोषितमतिर्मुखं पायत्यनुचणम् । चणोऽपि इन्त नास्यस्य कतान्तम् खवीचणे ॥ १०॥

नरः स्मरपराधीनः स्त्रीकग्ढमवलम्बते। नामनो वेश्वसूनदा म्हो वा कण्ठावलम्बनः ॥ ११ ॥ स्तीषां भुजलताबन्धं बन्ध्रं बुद्दाते कुधीः। न कर्मवस्थमेवीचमावानमनुशीचित ॥ १२ ॥ धत्ते स्तीपाणिभिः स्रष्टो 'द्रष्टो रोमाञ्चक एकान्। स्नारयन्ति न किं तेऽस्य कूटगासासिक एटकान् ॥ १३ ॥ कुचकुभी समालिका स्त्रियाः ग्रेते सुखं जडः। विद्याता नूनमेतस्य कुन्भीपाकी द्ववा व्यथा ॥ १४ ॥ मध्यमध्यासते सुन्धा सुन्धाचीयां चये चये। एतमध्यं भवाकोधिरिति नैते विविश्वते ॥ १५॥ धिगङ्गानां निवलीतरके क्रियते 'जन: । विवनी इसना द्वीतवनु वैतरकी व्रयम् ॥ १६॥ सारात्तें मकाति मनः पुंसां स्त्रीनाभिवापिषु । प्रसादेनापि किं नेदं साम्याभसि सुदाखदे ॥ १७ ॥ सारारोच्चानि:श्रेणीं स्त्रीणां रोमलतां विदु:। नरा: संसारकारायां न पुनर्लोइन्द्रश्वाम् ॥ १८ ॥ अचन्या जचनं स्त्रीणां भजन्ति विपुलं सुदा। संसारसिन्धी: पुलिनमिति नूनं न जानते ॥ १८ ॥ भजते करभोक्षामुक्नस्पमतिर्नर:। चनूक क्रियमाणं तै: सङ्गती खंन बुद्धाती ॥ २०॥

१) खनरो-।

⁽३) ख मनः।

⁽२) ख च, नैवं।

स्त्रीषां पादेर्षंन्यमानमात्मानं बहु मन्यते। इताशी न तु जानाति चेप्यमाणमधीगती ॥ २१ ॥ दर्भनात् सार्थनाच्छेषाद् या हन्ति शमजीवितम्। हेयोग्रविषमागीव वनिसा सा विवेकिभि: ॥ २२ ॥ रन्दुलेखेव कुटिला सम्येव चषरागिणी। निम्नगेव निम्नगतिर्वजनीया नितम्बनी ॥ २३॥ न प्रतिष्ठां न सीजन्धं न दानं नच गीरवम्। नच खान्यहितं 'वामाः पश्यन्ति मदनान्धलाः ॥ २४ ॥ निरङ्गा नरे नारी तलारीत्यसमञ्जसम्। यत्मु चा: सिंह धार्दू लव्याला चिप न क्षविते ॥ २५ ॥ दूरतस्ताः परित्वाच्याः प्रादुर्भावितदुर्मदाः । विम्बीपतापकारिन्यः करिन्य इव योषितः ॥ २६ ॥ स कोऽपि स्वयंतां मन्त्रः स देवः कोऽप्युपास्वताम्। न येन स्त्रीपिशाचीयं ग्रसते श्रीलजीवितम् ॥ २०॥ शास्त्रेषु त्रूयते यच यच लोकेषु गीयते। संवादयन्ति दु:शीलं तन्नार्थः कामविश्वलाः ॥ २६॥ संविग्छेत्रवाहिदंष्ट्राम्नियमजिल्लाविषाङ्गरान्। जगिक्किवांसना नार्थः कताः क्रूरेष वेधसा ॥ २८ ॥ यहि स्थिरा भवेदियुत्तिष्ठन्ति यदि वायवः। दैवात्तवापि नारीणां न खेन्ना खीयते मनः॥ ३० ॥

⁽१) च निरनारम्।

⁽२) कह रानाः।

यदिना मन्त्रतन्त्राधैर्वश्वान्ते चतुरा पपि। इन्द्रजालिमदं इन्त नारीभिः शिचितं कुतः ॥ ३१ ॥ भपूर्वा वामनेनामां स्वावादेषु वैदुषी। प्रत्यचाख्यप्रकत्यानि यदपश्चवते चवात् ॥ ३२ ॥ पीतीत्रासी यथा लोष्टं सबर्षं मन्यते जनः। तथा स्त्रीसङ्गर्ज दुःखं सुखं मोशान्यमानसः॥ ३३॥ जटी मुखी गिखी मीनी नम्नो वस्की तपस्ताथ। मद्याऽप्यमद्यायीलयेत्तदा मद्यां न रोचते ॥ ३४ ॥ काष्ट्रयन् कच्छ् रः कच्छूं यथा दुःखं सुखीयति। दुर्वारमसायाविशविवशो मैथुनं तथा ॥ ३५ ॥ नार्यो यैक्पमीयन्ते काञ्चनप्रतिमादिभिः। पालिक्यालिक्य तान्येव किसु कामी न द्यप्यति॥ ३६॥ यदेवाङ्गं कुकानीयं गोपनीयं च योषिताम्। तस्रैव हि जनी रच्चेत् केनान्धेन विरच्चताम् ॥ ३० ॥ मोडाटडड नारीषामकैमांसास्विनिमितै:। चन्द्रेन्दीवरकुन्दादि सदृचीक्रत्य दूषितम् ॥ ३८ ॥ नारीं नितम्बजघनस्तनभूरिभारा-मारीपयन्युरसि मूढिधियी रताय। संसारवारिनिधिमध्यनिमळानाय जानन्ति तां निष्ठ शिलां निजकगढवद्याम् ॥ ३८ ॥ भवोदन्बदेलां मदनसगयुव्याधहरिणीं मदावस्थान्तालां विषयसगढणामरभ्वम् ।

महामोहध्वान्तोचयबहुलपचान्तरजनीम्
विपत्खानिं नारीं परिहरत हे त्रावसुधियः ! ॥४०॥१०५॥
संप्रति मूर्च्छाफलमुपदर्शयंस्तवियम्बषाक्रपं पश्चममणुव्रतमाइ—

चसन्तोषमविश्वासमारकं दुःखकारणम्। मत्वा मूर्च्छाफलं कुर्यात्परिग्रहनियन्त्रणम्॥ १०६॥

दु:खकारणिमत्यसन्तीषादिभिस्तिभिः प्रत्येकमिभसंबध्यते।
प्रमन्तीषादीनि दु:खकारणानि मूर्च्छाया गर्डस्य फलत्वेन विज्ञाय
मूर्च्छाहितोः परिषद्धस्य नियन्त्रणं नैयत्यमुपासकः कुर्यादिति
योगः। तत्रासन्तीषस्तृत्यभावः, स दुःखकारणम्। मूर्च्छावान् दि
बद्गुभिरिप धनेने संतुष्यति, उत्तरोत्तरात्राकदर्यितो दुःखनेवानुभवति। परसंपदुक्षष्य द्वीनसंपद्मसन्तुष्टं दुःखाकरोति।

यदाह-

श्वसन्तोषवतां पुंसामपमानः पदे पदे । सन्तोषेश्वर्यसुखिनां दूरे दुर्जनभूमयः ॥ १ ॥ श्रविष्वासः खरूपि दुःखकारणम्, श्रविष्वस्ती श्वाश्वजीयै-भ्योऽपि शश्वमानः स्वधनस्य रचां कुर्वत्र कचिश्विस्ति। यदाष्ठ —

'जन्छणद खणद निष्ठणद रिलांन सुघद दिघावि घ ससंकी। लिंपद ठवेद सययं लंकियपिडलंकियं कुणद ॥ १ ॥

⁽१) जश्चनति चनति निष्कृति राह्मि न स्विधित दिशावि च सम्बद्धः। स्वित्यति स्थापवित सततं साञ्चित्वतिकाञ्चितं सरोति ॥ १ ॥

मूर्च्छीपरिगतयारशं प्राचातिपातादिकं प्रतिपद्यते । तथाडि—

तनयः पितरं पिता च तनयं भाता च भातरं हिनस्ति,
ग्रहीतलच्च कृटसाचित्यदायी बद्गन्तं भाषते, बलप्रकर्षात्ययिक
जनं सृणाति, खनति खात्रं, ग्रह्माति विन्दं, धनलोभात् परदारानभिगच्छति, तथा वेवाकषिपाग्रपात्यवाचिच्यादि च करोति।
मन्मवविषािव नथादिषु प्रविश्व काष्ठान्याकर्षति। ननु
दुःखकारणं मूर्च्छापलं ज्ञात्वा परिग्रहनियन्त्रचं कुर्यादिति केथं
वाची युक्तिः। चक्रमत्र। मूर्च्छाकारणत्वात् परिग्रहोऽपि मूर्च्छेव;
प्रववा "मूर्च्छा परिग्रहः" दित स्त्रकारवचनात् मूर्च्छेव परिग्रह
दित निवयनयमतिनोच्यते, मूर्च्छामन्तरेच धनधान्यादेरपिरप्रक्रतात्।

यदाच ---

भपरियद्ध एव भवेदस्त्राभरणायसङ्कातोऽपि पुमान्। समकारविरहितः 'सित समकारे 'सङ्गवात्रम्नः ॥ १॥

तथा —

यामं गेरं च विश्वन् कर्म च नोकर्म चाददानोऽपि। पपरिपद्योऽसमलोऽपरियद्यो नान्यया कवित्॥ १॥

⁽१) खब सन्।

⁽२) क सङ्गवास ? वः।

तथा--

'जं पि वत्यं व पायं वा कंबलं पायपुंछणं।
तं पि संजमलकाद्वा धारंति परिष्ठरंति च ॥ १॥
'न सो परिगाष्टो वृत्तो नायपुत्तेच ताइचा।
सुच्छा परिगाष्टो वृत्तो इद वृत्तं महेसिया॥ २॥

इति सर्वमवदातम् ॥ १०६॥

प्रकारान्तरेण परियष्ट्रनियम्बणमाइ---

परियद्गमहत्त्वादि मळाखेव भवाम्बुधी। महापोत द्रव प्राणी त्यजित्तस्मात् परियद्गम् ॥१००॥

परिग्रह्मत इति परिग्रहो धनधान्यादिस्तस्य महत्तं निरविधलं तस्माहेतो: मक्जलेव, श्रवस्थमेव मक्जित, प्राणी शरीरी, भवे संसारे, क इवक, श्रम्बुधी समुद्रे महापोत इव महायानपाव्यमिव, यथा निरविधनधान्यादिभाराकान्तः पोतः समुद्रे मक्जित, तथैवापरिमितपरिग्रहः प्राणी नरकादी निमक्जित ।

यदाद्य:---

⁽१) यहिष वस्तं वा पात्नं वा कम्मलं वा पाइपोञ्क्रनम्। तहिष संयमकञ्जार्थे धार्यनित परिसञ्जते च ॥ १ ॥

⁽२) न व परिधाइ उक्तः ज्ञातपुत्रेच ताविगा। सूच्या परिधाइ उक्तः इत्युक्तं महर्षिचा॥२॥

'महारंभयाए महापरिनाह्याए कुणिमाहारेचं पंचिदियवहेचं जीवा नरयाच्यं चर्ळाता।

तथा बद्धारश्वपरियञ्चलं च नारकस्थायुष इति यस्त्रादेवं तस्त्रास्त्रजेवियन्त्रयेत् परियष्ठं धनधान्यादिकपं मूर्च्छाकपं वा॥१०७॥

सामान्येन परियद्दीवानाइ —

वसरेगुसमीऽप्यच न गुगः कोऽपि विदाते । दोषास्तु पर्वतस्यूलाः प्रादुष्यन्ति परिग्रष्टे ॥१०८॥

चसरचिवो ग्रह्मासान्तः प्रविष्टसूर्यकिरचोपस्ताः स्या द्रव्यविग्रेषास्त्रसमोऽपि तत्रमाचोऽपि चत्र परिग्रष्टे न कवन गुचोऽस्ति, निष्ठ परिग्रह्मबसादासुचिकः पुरुषार्थः सिद्यति । यसु भोगोपभोगादिः स न गुणः प्रत्युत गर्बष्टेतुत्वाद्दोष एव । योऽपि जिनभवनविधानादिसच्चः परिग्रहस्य गुणः ग्रास्ते वर्ष्यते न स गुषः, किं तु परिग्रहस्य सदुपयोगव्यावर्षनं न तु तदर्यमेव परिग्रह्मारणं त्रेयः ।

यदाद्य:---

धर्मार्थं यस्य वित्तेष्ठा तस्यानीष्ठा गरीयसी। प्रचालनाष्टि पष्टस्य दूरादस्पर्यनं वरम्॥१॥

⁽१) मद्वारम्भतवा मद्वापरियद्गतवा कुविनाद्वारेच पश्चिम्द्रववधेन स्नीवा नरवातुम्बमर्जन्ति।

तथा--

'कंचणमणिसोवाणं यंभसङ्ख्योसियं सुवस्ततः।
जो कारिका जिण्डरं तभीवि तवसंजमी 'म्रिडिमी#॥१॥
व्यतिरेकमाङ् —

दोषासु, दोषाः पुनः पर्वतस्यृसा श्रातमञ्चान्तो वस्त्रमाणाः परिग्रहे सति प्रादुष्वन्ति प्रादुर्भवन्ति ॥ १०८ ॥

दोषासु पर्वतस्यूसा इति यदुक्तं तत् प्रपच्चयति—

सङ्गाह्मवन्त्यसन्तोऽपि रागद्वेषादयो दिषः । मुनेरपि चलेचेतो यत्तेनान्दोलितात्मनः ॥१०८॥

सङ्गात्परिम्हाहेतोभैवन्ति प्रादुर्भवन्ति भसन्तोऽपि उदया-वस्थामप्राप्ता भपि रागहेषप्रस्तयः श्रवः । सङ्गवतो हि तिन-बन्धनो रागः प्रादुर्भवति । सङ्गप्रतिपत्यिषु च हेषः, एवं मोइ-भयादयो वधवन्धादयो नरकपातादयस द्रष्टव्याः । तदिदं पर्वत-स्यूललं दोषाणाम् । कथमसन्तोऽपि रागादयो भवन्तीति, उच्चते,

नंचयनियसीनाचे यक्षसङ्ख्रूसिए सन्सत्ते । जो कारनेळा जियङ्रे तस्रोति तनसंजमो स्रचंतस्यो सि । एवं पाठो दस्यते ।

⁽१) काञ्चनमिष्योपानं साम्यसङ्कोन्कितं सुवर्षतसम् । यः कार्वेट्जनस्टङं ततोऽपि तपःशंयभोऽधिकः ॥ १ ॥

⁽२) क इ. ए. ट. व्यवंतग्रुको।

^{*} संबोधसत्तर्वती हा-

यत् यस्मासुनेरिप मास्तामन्यस्य चलेत् प्रश्नमावस्यायाद्यवित् चेतो मनः तेन सङ्केन षान्दोखितात्मन षस्यिरीक्षतात्मनः। सुनिरिप डि सङ्गानङ्गीकुवसुनित्वाद् भ्रायत्थेव।

यदाच--

'केषो भेषो वसणं पायासिक लेसभयविवागो प्र ।

मरणं धमाव्भंसो परई प्रत्याची सव्वाइं ॥ १ ॥

'दोससयमू जजालं पुव्विदिसिविविक्वियं जई वंतं ।

प्रत्यं वहसि पणत्यं कीस निरत्यं तवं चरिस ॥ २ ॥

'वहबंधणमारणसेहणाची काची परिगाई पत्यि ।

तं जइ परिगाही सिय जइधम्मी तो णणु पवंची ॥३॥ १०८ ॥

सामान्येन परिग्रष्टस्य दोवानभिधाय प्रकृतेन
त्रावकधर्मेषाभिसंबभाति—

संसारमूलमारकास्तेषां हेतुः परिग्रहः। तस्मादुपासकः कुर्यादल्पमल्पं परिग्रहम्॥११०॥

षारभाः प्राष्णुपमदीदयस्ते संसारस्य मूलम् ; एतदविवाद-

⁽१) केंद्रो भेदी व्यवनं व्यवावक्रेयभविषयावाव।सर्वं धर्मभंत्राः व्यरतिर्वात् वर्गीव ॥ १ ॥

⁽२) दोषयतमृबजासं पूर्विविविधितं विद् वान्तम् । सर्वे वहास समर्थे ससास्त्रित्वे तपसरस्य ॥ २ ॥

⁽३) वधवन्यनमारचसिधनाः काः परियम् न सन्ति । तदु बहि परियम् एव बतिधर्मस्तो नहु प्रपन्नः ॥ ३॥

सिषं, ततः वितं तेवामारकाणां हेतः कारणं, परिग्रष्टः, यत एवं तस्मादुपासकः साधूपासकः परिग्रष्टं धनधान्यादिकमरूपमरूपं नियतपरिमाणं कुर्यात्॥ ११०॥

पुनरिष सिंहावनीकितेन परिषद्दीषानाह—

मुष्णान्ति विषय।स्तेनाद्दति स्मर्पावकः ।

कस्यन्ति वनिताव्याधाः सङ्गेरङ्गीक्ततं नरम्॥१११॥

सङ्गेर्धनधान्यहिरक्यादिपरिग्रहेरङ्गोक्ततं वश्लोकतं यथा बहु-परिग्रहं कान्तारगतं पुरुषं चौरा मुक्कान्ति तथा संसारकान्तारगतं विषयाः ग्रन्दादयः संयमसर्वस्वापद्यारेण मुक्कान्ति निर्द्यनीकुर्वन्ति । यथा वा बहुपरिग्रहं नंष्टुमग्रक्तावन्तं दीप्तो दवान्निर्देहित तथा संसारकान्तारगतं मन्त्रायान्निष्यन्तादिना दग्रपकारेण विकारेण दहत्युपतापयति। यथा वा बहुपरिग्रहं कान्तारगतं व्याधा सुन्धका धनग्ररीरलोभेन क्यन्ति पसायितुमपि न ददति, तथा भव-कान्तारगतं वनिताः कामिन्यो धनार्थिन्यः ग्ररीरभोगार्थिन्यस् स्वातन्त्रग्रहत्तिनिषेधेन क्यन्ति । ग्रपि च । बहुनापि परिग्रहेण काङ्गावतां न द्वतिः सन्धवति ग्रपि त्वसन्तोष एव वर्दते ।

यसुनय:--

'सुवस्पर्यस्य य पव्यया भवे सिन्ना इ केलाससमा भसक्षया।

⁽१) शुत्रकेद्वयस्य च पर्वता भवे स्थः चलु चैलानममा अमङ्गादाः।

'नरस्य सुदस्य न तेष्ठि किंचि
दच्छा इ प्रागाससमा प्रयंतिषा ॥ १ ॥
'पुढवी सासी जवा चेष्य
दिरसं पस्रभिस्य ।
पिंडपुर्य्यं नासमगस्य
दद्भ विका तवं चरि ॥ २ ॥

कवयोऽप्याचु:---

द्धणा खनिरगाधेयं दुष्पूरा केन पूर्यते । या महिंदरिप चिप्तै: पूर्योरेव खन्यते ॥ १॥

तथा---

'तण्डा प्रखंडिप चिय विषये प्रचुत्रए वि सडिजण। सेलंपि समार्श्डिजण किंव गयणसा पारूटं॥१॥१११॥ एतदेवाड-

त्रप्ती न प्रतेः सगरः, कुचिकर्णी न गोधनैः। न धान्यैस्तिलकश्रिष्ठी, न नन्दः कनकोत्करैः॥११२॥

सगरो दितीयसक्रवर्त्ती, न षष्टिसचस्त्रसंख्यैः प्रतेः सन्तृष्टस्तृप्तोः अवत् । कुचिकणी नाम कदित् स बच्चभिरणि गोधनैने लक्षः ।

⁽१) नरस सुख्यं न तैः विश्वित् इच्छा समु खानायसमा सनन्तिना ॥१॥

⁽२) प्रथ्वी घालसो बना एव च्चिरवर्य पश्चिमः सङ्ग। प्रतिपूर्णे नासमेनस्य इति विहित्ता तपस्रेत्॥ २॥

⁽३) ह या स्वयं विषया एवं विभवान् स्वत्युष्टतान् स्वपि सन्धाः। वैसमपि समारक्षा सिंवा गगनस्य सार्ट्टम् ॥ १॥

तिलको नाम श्रेष्ठी न धान्धेस्तृप्तः । न वा नन्दन्रपतिः कनकरा-शिभिन्तृप्तः । ततोऽसन्तोषहेतुरेव परिषदः । सन्प्रदायगम्याव सगरादयः ।

स चायम्---

षासीत्पुर्यामयोध्यायां जितशत्रमेहीपति:। युवराज: सुमित्रोऽभूदुभाववनिमावतु:॥१॥ जितशतीरभूस्नुरजितसामितीर्थकत्। सगरसकावर्ती च सुमितस्य महाभुजः ॥ २ ॥ जितगत्सुमित्री च व्रतं जग्टइतुस्तत:। राजाऽभूदजितस्वामी सगरी युवराट् पुन: ॥ ३॥ प्रवत्राजाजितस्वामी गते कासे कियत्यपि। राजाऽभूतागरयक्रवर्ती ऋषभस्तुवत्॥ ४॥ मय षष्टिसङ्झाणि जित्तरे तस्य सुनवः। खेदच्छिदः संत्रितानां शाखा इव महातरीः ॥ ५ ॥ च्येष्ठो जङ्गः कुमारोऽभूत्तेषां सगरजवानाम्। तेनैकदा तोषितोऽदाहेवतेव पिता वरम् ॥ ६॥ लगसारेन दण्डादिरहैं: सह सबात्धव:। महीं विचरितं वाञ्छामीति जङ्गरयाचत ॥ ७॥ तइस्वा सगरेगापि विसृष्टः प्राचलस्तः। जज्ञुर्दृतसहस्रांशः सहस्रेम्ब्त्रमण्डलैः ॥ ८॥ ऋद्या महत्या भत्त्या चाईबैत्यानि पदे पदे। सीऽर्चयन् विचरनुवीं ययावष्टापदं क्रमात्॥ ८॥

तमष्टयोजनोच्छायं चतुर्योजनविस्तृतम् । पारोचलाचसोदर्यें जेड्ड्सितपरिच्छदः॥ १०॥ तचैकयोजनायाममईयोजनविस्नृतम्। विगय्युत्यतं चैत्यं चतुर्दारं विदेश सः॥ ११ ॥ विम्बानि खखनंस्थानमानवणीनि तत्र सः। षर्द्वतास्वभादीनां यथावत्पर्यपुजयत् ॥ १२ ॥ ववन्दे भरतभाष्ट्रयतस्तुपांच पावनान्। किश्विदिचिन्य यदातुर्वेरवस्वाच च ॥ १३॥ षष्टापदसमं स्थानं मन्ये कापि न विदाते। कारयामी वयं यव चैत्यमेतदिवापरम् ॥ १४ ॥ मुक्तीऽपि भरतं भुङ्क्ते भरतयक्रवर्त्त्यं हो। श्रैने भरतसारिऽसिांसेत्यव्याजादवस्थितः ॥ १५ ॥ एतदेव कृतं चैत्यमसाभिचे दिधीयते। भविषयार्थिवैरस्य लुप्यमानस्य रचणम् ॥ १६ ॥ ततः सरसङ्खाधिष्ठितमादाय पाणिना। स दक्डं भ्रामयामास परितोऽष्टापदाचलम् ॥ १० ॥ चेले योजनसङ्खं दीर्णा कृषाण्डवसङी। भ्वास्यता तेन भिवानि नागानां भुवनानि च ॥ १८ ॥ तैर्भीतै: ग्ररणं भेजे खखामी ज्वलनप्रभः। स न्नात्वाऽविधनोपेत्य जङ्ग्रमित्यव्रवीत् मुधा ॥ १८ ॥ भनन्तजन्तुनिर्घातकारणं किमकारणम्। भवित्रविद्धे मत्तेदिक्णं भूमिदारणम् ॥ २०॥

प्रजितसामिभारत्यैः प्रतैः सगरचित्रणः। किमेतित्वयते पापमरे रे । कुलपांसनाः ! ॥ २१ ॥ जक्रक्रे मयाऽत्रैत्य चैत्यं वातुमदः कतम्। युषाञ्चवनभक्षीऽभूदादचानाता सम्राताम् ॥ २२ ॥ प्रजानकतमागीऽदः सीढं ते मा क्षयाः पुनः। द्रत्यदीर्य निजं धाम जगाम व्यन्तनप्रभः ॥ २३ ॥ सानुजोऽचिन्तयळा इः क्षतेयं परिखा परम्। परिपूरिचते पांग्रपूरै: कालेन गच्छता ॥ २४ ॥ ततः स जदा दण्डेन गङ्गां तवाचिपद्रशम्। उपदूतानि तत्तीयैः पुनर्वत्रमानि भीगिनाम् ॥ २५ ॥ मुडोऽयैत्य समं नागकुमारैर्ज्वलनप्रभः। तान् दृष्टा भक्षासाञ्चले द्वानल द्रव द्वमान् ॥ २६ ॥ धिन्धमः खामिनः प्रष्टाः स्तीबानामिव पश्चताम्। क्रियेत्ययोध्यासविधे तस्युरागत्य सैनिकाः ॥ २०॥ स्वं मुखं दर्भयिषामी वस्थामीऽदः कथं प्रभोः। इति मन्त्रयतां तेषां कोऽप्येत्येत्यवदद् हिजः ॥ २८ ॥ क्ययिष्यास्यदो राज्ञो न च मोहो भविष्यति। उत्तरिष्यत्यवयं वो मा भूत व्याकुला ननु ॥ २८ ॥ द्रत्युक्ता सतकं किस्दादायानाधमभ्यगात्। राजदारे स्तापत्य द्व स व्यलपत्ततः ॥ ३० ॥ राजाऽप्रच्छि ततीऽवादीदयमेवः सतो मम। दष्ट: सर्पेण निषेष्टस्तहेवो जीवयखनुम् ॥ ३१ ॥

प्रयादिष्टैनेरेन्द्रेण नरेन्द्रेमेन्सकीशलम्। निजं प्रयुक्तं तवाभूत्तद्वस्मनिष्ठतोपमम् ॥ ३२ ॥ सतो जीवयितुं प्रका नायं ताविद्वजीऽप्ययम्। कर्यत च्छान्दसी बीध्य द्रत्यालीचीचिरेऽय ते॥ ३३॥ यिखान् वैश्लानि नो कोऽपि सतः पूर्वं ततोऽधुना। भ्रमानीयतां रचा जीवयामस्तया लसुम् ॥ ३४॥ ततो दास्यैर्नृपादेशात्पुर्थां यामेषु चेचितम् । ग्रहं न दृष्टं तिलाचित्रातो यत्र न कासन ॥ ३५॥ राजाऽप्यूचे मदीयेऽपि कुले कुलकरा सताः। भगवात्रवभस्नामी भरतस्त्रवर्त्वाप ॥ ३६ ॥ राजा बाडुबलिः सूर्ययगाः सोमयगा प्रि। चन्येऽप्यनेकशः केऽपि शिवं केऽपि दिवं ययुः ॥ ३० ॥ जितग्रतुः शिवं प्राप समित्रस्त्रिदिवं ततः । सर्वसाधारणं मृत्यं खस्नोः सच्मे न किम्॥ ३८॥ विप्रीऽप्यूचे सत्यमैतत्तवाऽप्येको हि मे सुत:। रचणीयस्वया दीनानाषत्राणं सतां व्रतम् ॥ ३८ ॥ षयीचे चक्रवर्खेवं इंडी ब्राह्मण ! मा सुइ:। ग्ररणं सरणाची चि भववैराग्यभावना ॥ ४० ॥ व्याजद्वार दिजोऽप्येवं यद्येवं साधु बुद्दासे। महीय ! मा सुष्ट: षष्टिसहस्तस्तसृत्युना ॥ ४१ ॥ ततः स यावद्भूपो हा किमेतदित्यचिन्तयत्। तावसंकितिताः सैन्याः सर्वमाख्यक्पित्य ते ॥ ४२ ॥

उदलेन ततस्तेन दाक्णेनाथ म्कितः।

पपात भूपतिर्भूमी पर्वतः पिवनिव सः ॥ ४३ ॥

लक्षसंत्रस्ततो राजा कदित्वा जनवरचणम्।

भेजे संसारवैराग्यं चिन्तयामास चेत्यसी ॥ ४४ ॥

प्रन्वयं मण्डियष्यन्ति प्रीणियष्यन्ति मां सुताः।

दत्याथा धिग्ममासारं संसारं जानतोऽप्यभूत् ॥ ४५ ॥

दिनेस्त्रिचतुरैः पच्चवैर्वाऽन्येषां भवेत्वयम्।

पुत्रस्तृतिरियनाचैरिप यन्ते बभूव न ॥ ४६ ॥

रहितं कथममी कुर्युस्तावन्तोऽपि ममात्मजाः।

ईट्यातिमकाण्डेऽयुरद्वताः प्राणितस्य ते ॥ ४० ॥

दस्यं विचिन्स्याय सुतैरस्विप्तिकः स तत्त्वये जङ्गसतं भगीरयम् । राज्ये निवेध्याजितनायसिक्षी प्रवक्य वव्राज तदत्त्वयं पदम् ॥ ४८ ॥

॥ इति सगरचिक्रक्यानकम् ॥

यामः सुघोषो नामाऽभूकाध्ये मगधनीवृतः । कुचिकणीभिधानय यामणीस्तत्र विश्वतः ॥ १ ॥ गवां यतसङ्खाणि तस्य संजित्तरे क्रमात् । बिन्दुना बिन्दुना हन्त भियते हि सरोवरम् ॥ २ ॥ गोपालानां पालनाय सोऽपैयामास गास्ततः । भव्या मम न ते भव्या इत्ययुध्यन्त ते बहिः ॥ ३ ॥ कुचिकाणी विभक्तीया चार्पयत् कस्यचित् सिताः।
काणाः कस्यापि कस्यापि रक्ताः पीताय कस्यचित् ॥ ४ ॥
प्रथक् प्रयगरप्येषु गोकुलानि न्यविगयत्।
सुद्धानो दिधपयसी सोऽवसत्तेषु च कमात्॥ ५ ॥
पन्वचं वर्षयामास गोष्ठे गोष्ठे स गोधनम्।
प्रथ्तो दिधपयसोः सुराया इव दुर्भदः ॥ ६ ॥
तस्याभवद्याजीर्णमध जहां सरद्रसम्।
प्रदीपनान्तः प्रतितस्येव दाची मद्दानभूत्॥ ७ ॥

ष्टा धेनवो ष्टा नवतर्णकास ष्टा ग्राह्मरा वः क्ष कदा च लाग्रे। स गोधनेरेवमद्यप्त एव स्वताऽय तिर्यगतिमाससाद ॥ ८ ॥

॥ प्रति कुचिकर्णकथानकम्॥

श्रेष्ठासीत्तिलको नाम पुरेऽचलपुरे पुरा।
पासी पुरेषु पामेषु चाकरोद्यान्यसंग्रहम्॥१॥
माषसुद्रतिलबी हिगोधूमचणकादिकम्।
ददौ सार्द्विकया धान्यं काले सार्द्वं च सोऽग्रहीत्॥२॥
धान्यैर्धान्यं धनैर्धान्यं धान्यं जीवधनैरि।
छपायैसाग्रहीद्यान्यं ध्यायन् धान्यं स तत्त्ववत्॥३॥
दुर्भिचकाले धान्येभ्यः प्रत्युपात्तेर्महाधनैः।
सभार परितो धान्यैरिवासी धान्यकोष्ठकान्॥४॥

पुनः सुभिन्ने धान्यं स क्रीला क्रीला समग्रहीत्।

समासादः पुमान् यत्र तत्रासितां न सुश्वति ॥ ५ ॥

कीटकोटिवधं नैषोऽजीगणत् कणसंग्रहे।

पौडां पश्चेन्द्रियाणामप्यतिभाराधिरोपणात् ॥ ६ ॥

नैमित्तः कोऽपि तस्यास्थ्रहाविदुर्भिष्यमेषमः।

सर्वस्तेनाथ सोऽक्रीणाल्मणान् पुनरद्धितकः॥ ७ ॥

सर्वस्तेनाथ सोऽक्रीणाल्मणान् पुनरद्धितकः॥ ७ ॥

सर्वस्तेनाथ सोऽक्रीणाल्मणान् पुनरद्धितकः॥ ७ ॥

सर्वस्तेनाथ सोऽक्षीणाल्मणान् पुनरद्धितकः॥ ७ ॥

सर्वस्तेनाथ सोऽक्षीणाल्मणान् पुनरद्धितकः॥ ७ ॥

सर्वस्तेनाथ सोऽक्षीणाल्मणान् पुनरद्धितकः॥ ७ ॥

सर्वस्तेनाथ स्त्रिक्षित्ति स्त्रिक्षामनिक्षाः।

स्वानाभावे ग्रहेऽक्षेणीत् किं न कुर्वति सोभवान्॥ ८ ॥

प्रश्ची जगदमित्रस्य मित्रस्येवोत्मानास्ततः।

दुर्भिष्यस्येष्यतो मार्गमीष्याश्वके दिने दिने॥ ८ ॥

पाय वर्षाप्रवेगेऽपि ववर्षीपेत्य सर्वतः।

धारासारैर्वनस्तस्य ष्टर्यं दारयविव ॥ १० ॥

गोधूममुद्रकलमायणकामकुष्टा
माषास्तिलास्तदपरेऽपि कणा विनम्स ।
यास्यन्ति संप्रति इहिति स तैरहातो
द्वारस्कोटजातमरणा'बरकं प्रपेदे ॥ ११ ॥

॥ इति तिसकत्रेष्ठिकयानकम् ॥
प्राच्यां महेन्द्रनगरीप्रतिविम्बिमवीचकैः ।
प्राच्या पाटलीपुत्रमित्यस्ति प्रवरं पुरम् ॥ १ ॥
पासीत्तत्रातिसुत्रामा प्रतुवर्गविस्त्रणे ।
तिखण्डवसुधाधीशो नन्दो नाम नरेखरः ॥ २ ॥

⁽१) कगळ-मरखो।

सीऽकराणां करं चक्री सकराणां महाकरम्। महाकराणामपि च कि चिचके करान्तरम्॥ ३॥ यं किश्वहोषस्त्याद्य धनिभ्यो धनमग्रहीत। छसं वहित भूपानां इसं निति नयं वदन् ॥ ४ ॥ सर्वीपायै र्वनं लोकाविष्कुपः स उपाददे। भपास ब्यिनुपी अर्थीनां पाचं नान्य इति स्वन् ॥ ५ ॥ तयाऽधं सोऽयशीक्षोकाक्षोकोऽभूविधनो यया। भूमावृषीयुचीषीयां न खलु प्राप्यते दृषम् ॥ ६ ॥ द्विरखनाचकाऽऽख्याऽपि तेन लोकेषु नामिता। प्रवृत्ती व्यवद्वारीऽपि चर्मणी नाणकैस्तदा ॥ ७ ॥ पाखिकिनीऽपि वैम्या भप्यसावर्थमद्ख्यत्। इतार्यन: सर्वभन्नी निष्ठ किश्विहिसुञ्चति ॥ ८ ॥ त्रीवीरमोचादेकोनविंगत्यस्यतेषु यः। सायेषु भावी किं सोऽयं कल्कीति जनवागभूत ॥ ८ ॥ षाक्रीयान् पश्चतोऽप्यस्य भूमिभाजनभोजनः । जनो ददी गतभयो, भयं भवति भाजने ॥ १०॥ स खर्षे: पर्वतां बक्रे पूरयामास चावटान्। भाष्डागाराणि चापूरि पूर्यकामसु नाभवत्॥ ११॥ पाकको तत्तवाधोधानावेनाव दितेविचा । तं प्रबोधयितुं वाग्मी दूत: प्रेषित चागमत्॥ १२॥ सर्वतोऽप्याह्रतश्रीकं नि:श्रीकं तं तथापि हि। दूतो भूपमथापख्यस्वा चोपाविश्त्पुरः ॥ १३ ॥

सोऽनुजाती कृपेणोचे त्रुत्वा मत्वामिवाचिकम्। कोपितव्यं न देवेन न हिताबाट्रभाषिणः॥ १४॥ भवर्षवादी देवस्य यः परम्परया त्रुतः। स प्रत्यचीकतो द्वादा न निर्मूला जनत्रुति:॥ १५॥ यन्यायतीऽर्धनेशोऽपि राजः सर्वयशिक्दे। ष्रप्येकं तुम्बिकाबीजं गुडभारान् विनाशयेत् ॥ १६ ॥ पासभूता: प्रजा राज्ञी राजा न च्छेत्तुमईति। क्राचादा प्रिप न क्राव्यं निजमग्रन्ति जात्वित्॥ १०॥ प्रजा: प्रवाण प्रवान्ति पोषिता एव ता ऋपम्। वच्चाऽपि न च्चनडुाही दत्ते दुग्धमपोषिता ॥ १८॥ सर्वदोषप्रसूर्लीभो लोभः सर्वगुणापहः। लोभस्तत्त्वच्यतामेतत्त्विति वित्त मत्रभुः॥ १८॥ नन्दोऽपि तद्रिरा दावदन्धभूरिव वारिचा। भत्युचाबाष्यममुचद् दन्धुकाम दवाश तम्॥ २०॥ राजदीवारिको जातु न वध्य इति नन्दराट्। ज्ञाय गर्भवेश्मानाः समिरोऽत्तिरिवाविमत्॥ २१॥ नासी सदुपदेशानां जवासक इवाश्वसाम्। योग्य इत्यास्थन् दूतोऽप्यगात् खखामिनोऽन्तिकम् ॥२२॥ नन्दोऽप्यन्यायपापीरीवेंदनादानदाव्यैः। रोगैरिशापि संप्राप्तः परमाधार्भिकैरिव ॥ २३ ॥ वेदनाभिद्रीवणाभिः पौद्यमानी यथा यथा। नम्द्यक्रम्, लोकोऽभूज्ञातानम्दस्तया तथा ॥ २४ ॥

पण्यमानी श्रम्णमानी दश्चमान इव व्यथाम्।

प्रवाप नन्दः, स्तोकं हि सर्वं ताहचपाप्पनः ॥ २५ ॥

ये भूतले विनिहिता गिरिवच कूटीभूताच येऽद्य सम काचनराग्रयस्ते।

कस्य स्युरित्यभिग्यणक्रविद्यप्त एव

मृत्वा निरक्तभवदुःखमवाप नन्दः ॥ २६ ॥

॥ इति नन्दक्षानकम् ॥ ११२ ॥

चि च योगिनामपि परिग्रहसुपग्रह्मतां साभिनिष्कतां मूलचितरायातित्याह —

तपःश्रुतपरीवारां श्रमसाम्बाज्यसंपदम् । परिग्रन्त्यन्त्रस्यास्त्यजेयुर्यीगिनोऽपि हि ॥ ११३॥

योगी रक्षत्रयप्राप्तिस्तहस्ती योगिनस्तेऽपि, षासतां प्रयग्जनाः ;
परिषष्ठ एव यष्टस्तद्वस्ताः पिशाचिकन इव श्रमसाम्त्राच्यसंपदं
स्वाधीनामपि त्यजियुः, श्रमस्य विद्यातायाः, साम्त्राच्यं परमैख्यं,
तद्ग्पा सम्पत् ताम्। साम्त्राच्यं च नैकािकनो भवतीत्याष्ट—
तपःश्रतपरीवारां तपसारित्रं, श्रतं सम्यग्ज्ञानं, ते एव परीवारः
परिच्छदो यस्त्रास्तां तथाविधाम्। श्रमसाम्त्राच्यसंपदं स्वाधीनां
परित्यच्य सुखार्थिनः परिषष्टस्ववतुत्थाः मूलसुच्छेयः सामिमच्छन्तीत्यर्थः ॥ ११३॥

रदानीमसन्तोषपजीपदर्भनपूर्वकं सन्तोषपजमाह— मसन्तोषवतः सीख्यं न शक्रस्य न चिक्रणः। जन्तोः सन्तोषभाजो यदभयस्येव जायते॥ ११४॥

सन्तोषरिक्तस्य तत्पलभूतं सीख्यं न यक्तस्य देवराजस्य, नापि चिक्तणो मनुजराजस्य; यक्तीस्यं सन्तोषवतो जिन्नाने जायते। कस्येवेत्याच — प्रभयस्य प्रभयक्तमारस्य श्रेणिकराज- पुत्रस्य। स चि पिक्रोपनीतमपि राज्यं परिद्वत्य प्रमसाम्बाज्यसम्पदं परिग्रहीतवानिति।

क्यानकं च सम्मदायगम्यम् । स चायम्—
प्रस्ती ह भरतचेत्रे केदारिमव सुन्दरम् ।
विश्वालशालिकमलं नाम्ना राजग्रहं पुरम् ॥ १ ॥
तत्र प्रसेनिजिकाम 'निमताशेषभूपितः ।
पितर्वारामिवालस्थमध्योऽभूत्पृथिवीपितः ॥ २ ॥
स्रीमत्पार्श्वजिनाधीश्रशासनाभोजषट्पदः ।
सम्यग्दर्शनपुष्णात्मा सोऽग्रुत्रतधरोऽभवत् ॥ ३ ॥
प्रोजसा तेजसा काम्या जितामरकुमारकाः ।
कुमारास्तस्य बहवो बभूतः त्रीणिकादयः ॥ ४ ॥
को राज्ययोग्य प्रत्येषां परीचार्थं महीपितः ।
पक्तत्र पायसस्यालान्यश्रनायैकदाऽऽप्यत् ॥ ५ ॥

⁽१) खच नामिता-।

ततो भोक्षं प्रवृत्तानां कुमाराचाममीचयत्। व्याचानिव व्यात्तवक्कान् सारमियान् स सारधी: ॥ ६ ॥ कुमारा दूतसुत्तस्थ्रापतक् ततः मासु । एकल् श्रेणिकस्तस्यो धियां धाम तथैव हि॥०॥ सोऽन्यस्थासात्पायसावं स्तोकं स्तोकं ग्रनां ददी। याविज्ञिलिहिरे म्बानस्तावश्च बुभुजे स्वयम् ॥ ८ ॥ येन केनाप्यपायेन निषेधिष्यत्यरीनयम्। भोस्तते च खयं पृथ्वीं राजा तेनेति रिष्मतः ॥ ८॥ राजा पुनः परीचार्थं सुतानामन्यदा ददी। मोदकानां करण्डांच पयस्क्षांच सुद्रितान् ॥ १० ॥ इमां मुद्रामभद्मनो भुद्यीध्वं मोदकानमृत्। पयः पिबत मा कदं किन्द्रमित्यादिशबृपः ॥ ११ ॥ विना श्रेषिकमितेषां कोऽपि नाभुत्र नापिबत्। बुविसाध्येषु कार्येषु कुर्युकर्जिखनीऽपि किम् ?॥ १२॥ चलयिला चलयिला श्रेणिकीऽय करण्डकम्। ब्भुज मोदकचोदं प्रलाकाविवरच्तुतम् ॥ १३॥ रीप्यश्रम्या घटस्याधी गलद्वाबिन्दुपूर्णया। स पयोऽपि पपौ किं हि दु:साधं सुधियां धियः ॥ १४ ॥ तत्रीचा तृपतिः प्रीतो जातेऽन्येद्यः प्रदीपने । यो यहुद्धाति महेडास्त्रस्थित्यादिशस्तान् ॥ १५ ॥ सर्वे ग्रहीला रतानि कुमारा निर्ययुस्ततः। भादाय भन्भां त्वरितः श्रेषिकसु विनिर्ययौ ॥ १६ ॥

किमेतलृष्टमित्युक्तो त्रपेष श्रेषिकोऽवदत्। जयस्य चिह्नं भन्धेयं प्रथमं पृथिवीभुजाम् ॥ १७ ॥ ष्रस्याः शब्देन भूपानां दिग्यात्रामङ्गलं भवेत्। रचणीया चमापासैः स्नामिस्तिदियमात्मवत्॥ १८॥ ततः परीचानिर्वोच्जातबुद्धिमेडीपतिः। तस्य प्रीतो ददी भन्धासार रत्यपराभिधाम् ॥ १८ ॥ राज्यार्रमानिनी मैनं राज्यार्रं सूनवीऽपरे। जासिषुरित्यवाजासी च्छेणिकं पृथिवीपतिः ॥ २०॥ प्रयक् प्रयक् कुमाराणां ददी देशावरेष्वरः। न किञ्चिच्छेणिकस्यासु राज्यमस्यायताविति ॥ २१ ॥ ततोऽभिमानी खपुराललभः काननादिव। नि:स्रत्य श्रेषिकोऽगच्छत्तूर्धं वेषातटं पुरम् ॥ २२ ॥ तत्र च प्रविधन् भद्राभिषस्य त्रेष्ठिनोऽय सः। कर्म साभोद्यं मूर्त्तीमवीपाविषदाप्षे ॥ २३ ॥ तदा च नगरे तस्मिन् विपुतः कसिदुव्सवः। नव्यदिव्यदुकूलाङ्गरागपीराऽऽकुलोऽभवत्॥ २४॥ प्रभूतकायकैरासीत् स श्रेष्ठी व्याकुलस्तदा । कुमारोऽप्यार्पयदद्ध्वाऽस्रो पुटाऽपुटिकादिकम् ॥ २५ ॥ द्रयं कुमारमाहाला उच्छे ही भूयि हमार्जेयत्। पुरुष्पुंसां विदेशेऽपि सहचर्यो नतु श्रियः ॥ २६ ॥ भवावितयपुष्यस्य कस्यातियिरसौत्यय। चैणिक: चेष्ठिना पृष्टी भवतामित्यभाषत ॥ २०॥

नन्दायोग्यो वरो दृष्टः खप्नेऽच निधि यो मया। भर्सी साचात् स एवेति श्रेष्ठी चेतस्यचिन्तयत्॥ २८॥ सीआविष्ट च धन्योऽस्मि यहवस्यतिथिर्मस । श्वसावलसमध्येन नतु गङ्गा समागता ॥ २८। संव्रत्याहं ततः श्रेष्ठी तं नीत्वा निजवेश्मनि । स्वययिता परिधाप्य सगीरवसभीजयत ॥ ३० ॥ एवं च तिष्ठंस्तक्षेत्रे श्रेणिक: श्रेष्ठिनाऽन्यदा। कन्यां परिषयेमां मे नन्दां नाचेत्ययाच्यत ॥ ३१ ॥ ममाज्ञातकुलस्यापि कथं दसे सुतामिति। त्रेणिकेनोक्त जर्चे स जातं तव गुणै: कुलम् ॥ ३२ ॥ ततस्तस्योपरोधेनोदधेरिव सतां हरि:। श्रीवात: पर्यगेषीत्तां भवदवलमङ्गलम् ॥ ३३ ॥ भुष्तानी विविधान् भीगान् सद वक्तभया तया। मतिष्ठकोणिकस्तव निकुच्च इव कुच्चरः ॥ ३४ ॥ श्रीचकस्य सक्यं तद्विवदाश् प्रसेनजित्। सहस्राचा हि राजानी भवन्ति चरलोचनै: ॥ ३५ ॥ चर्च प्रसेनजिद्रोगं प्रापाद्यान्तं विदिवाजम् । सुतं श्रेषिकमानेतुं शीघानादिचदौष्ट्रिकान् ॥ ३६ ॥ भीष्ट्रिकेश्यो 'न्नातयाऽऽर्मै: पितुरत्यर्त्तिवार्त्तया। नन्दां संबोध्य सम्बद्धं प्रतस्ये त्रेणिकस्ततः॥ ३०॥

⁽१) म चातवार्तः।

वयं पाखुरकुषा गोपासा राजयहे पुरे । भाहानमन्त्रप्रतिमान्यचराणीति चार्पयत् ॥ ३८ ॥ माऽन्या तातस्य रोगार्त्तेर्भदत्तिर्भृदिति द्वतम् । उद्दीं श्रेषिक भारता ययी राजग्रहं पुरम् ॥ ३८ ॥ तं दृष्टा सुदितो राजा इर्षनिवास्त्रिभः समम्। राज्येऽभ्यविश्वहिमलै: सुवर्षकलग्राम्ब्भि:॥ ४०॥ राजाऽपि संचारन् पार्षे जिनं पचनमस्कियान् । चतः गरणमापनी विषय त्रिदिवं ययौ ॥ ४१ ॥ विखं विख्याराभारं बभार त्रेणिकस्ततः । तेन सा गुर्विणी सुक्ता गर्भ नन्दाऽपि दुर्वे इन् ॥ ४२ ॥ तस्या दोच्चद इत्यासीमजाक्टा गरीरिणाम्। महाभूत्योपकुर्वाचा भवाम्यभयदा यदि ॥ ४३ ॥ विजयवाय राजानं तत्पिताऽपूरि दोहदः। पूर्णे काले च साऽस्त प्राची रविमिवार्भकम् ॥ ४४ ॥ दोहदार्घानुसारेण तस्याय दिवसे श्रम । चकाराभयकुमार इति मातामहोऽभिधाम् ॥ ४५ ॥ स क्रमाइवधे विद्या निरवद्याः पपाठ च। **प**ष्टवर्षीऽभवद्दत्तो दासप्तत्यां कलासु च ॥ ४६ ॥

सवयाः कलहे कोऽपि तं कोपादित्यतर्जयत्। किं त्वं जल्पिस यस्याची पिता विज्ञायते निष्ट ॥ ४० ॥ जर्वेऽभयक्रमारस्तं नत् भद्रः पिता मम । विता भद्रो भवसातुः प्रत्युवाचेति सोऽभयम् ॥ ४८ ॥ नन्दां प्रत्यभयोऽप्यूचे मातः ! को मे पितित्यव। षयं तव पिता भट्ट: श्रेष्ठी नन्देत्वचीकथत् ॥ ४८ ॥ भद्रस्तव पिता शंस मदीयं पितरं नत्। पुतेषेत्य्दिता नन्दा निरानन्देदमब्रवीत्॥ ५०॥ देशान्तरादागतेन परिचीताऽस्मि बेनचित्। मम च लिय गर्भस्वे तमीयु: बेचिदौष्ट्रिका: ॥ ५१ ॥ रइ: स किञ्चिद्का तै: सर्हेव कचिदप्यगात । पद्मापि तं न जानामि क्रतस्यः किंबिटित्य इम ॥ ५२ ॥ स यान् किश्विकाजस्य लामिति पृष्टाऽभयेन सा। पचराखार्पितान्येतानीति पत्रमदर्भयत्॥ ५३॥ तिह्रभाव्याभयः प्रीतोऽब्रवीसम पिता तृपः। पुरे राजग्रहे तव गच्छामी ननु संप्रति ॥ ५४ ॥ पाएक्य येष्ठिनं भद्रं सामगीसंयुतस्तत: । नान्देयो नन्दया साईं ययौ राजग्रहं पुरम् ॥ ५५ ॥ मातरं बिहरवाने विसुध सपरिच्छदाम। तत्र खल्पपरीवारः प्रविवेशाभयः पुरे ॥ ५६ ॥ इतस मेलितान्यासंस्तदा श्रेणिकभूभुजा। यतानि पर्वेकोनानि मन्त्रिणां मन्त्रसन्त्रिमा ॥ ५०॥

मन्त्रिपचगतीं पूर्णां कर्त्तुं नरपतिस्ततः। लोकी गवेषयासास कञ्चिदुल्गृष्टपूरुषम् ॥ ५८ ॥ ततस तत्परीचार्थे ग्रष्ककूपे निजोर्भिकाम्। प्रचिचेप चितिपतिसीकानित्यादिदेश च ॥ ५८ ॥ भादास्यति करेणैतामूर्मिकां यस्तटस्थित:। तस्य धीकौगलकीता' मदीया मन्त्रिधर्यता ॥ ६० ॥ तेऽयृचुर्यद्यक्यानुष्ठानमस्माह्यामिदम्। ताराः करेण यः कर्षेत् स इमामूर्मिकामपि ॥ ६१ ॥ ततीऽभयकुमारीऽपि संप्राप्तस्तत्र सिकातम्। जरे किंग्टचाते मैवा, किमेतदपि दुष्करम्॥ ६२॥ तं दृष्टा 'च जना दध्युः कोऽप्यसावतिशायिधीः। समये मुखरागो हि तृषामाख्याति पौर्षम्॥ ६३॥ जनुष ते महाभाग ! लं ग्टहाणे त्यमूर्मिकाम् । जर्मिकाकर्षणपणां धुर्यतां चेषु मन्त्रिषु ॥ ६४ ॥ ततोऽभयकुमारस्तामूर्मिकां कूपमध्यगाम्। पार्ट्रगोमयपिग्डेन निजघानोपरि स्थित: ॥ ६५ ॥ प्रचिप्योपरि तलालं ज्वलनं दृणपूलकम्। सदाः संशोषयामास गोमयं तन्महामतिः ॥ ६६ ॥ नन्दाया नन्दनः सद्यः कारयिलाज्य सार्याम्। वारिचाऽपूरयत् सूपं विस्मयेन च तं जनम् ॥ ६० ॥

⁽१) कचाट-क्रीती।

⁽१) चच ते।

तद्रोमयं श्रेषिकसः करेष तरसाऽऽददे। धीमितः सुपयुक्तस्य किसुपायस्य दुष्करम् ?॥ ६८॥ तस्मिन् खरूपे चारचैविष्मप्ते जातविस्मयः। कृपोऽभयकुमारं द्रागाचुडावात्मसिषी ॥ ६८ ॥ चभयं चेषिकः पुत्रप्रतिपच्याऽय सख्जे। बस्तरज्ञायमानोऽपि दृष्टी मोदयते मनः ॥ ७० ॥ कुतस्वमागतोऽसीति एष्टः त्रेषिकभूभुजा। वेबातटादागतीऽइमिति चाभिद्धेऽभयः॥ ७१॥ राजाऽप्रच्छद्भद्रमुख ! किं भद्र इति विद्युत:। येष्ठी तवास्ति तस्यापि नन्दानास्त्री च नन्दना ॥ ७२ ॥ पद्येवं सम्यगित्युक्ते तेन भूयोऽपि भूपति:। करे नन्दोटरिप्यासीत्निमपत्यमजायत ?॥ ७३॥ प्रवास्थलान्तदन्तांग्रत्रेणिः त्रेणिकस्रिदम्। देवाभयकुमाराख्यं सा नन्दनृमजीजनत्॥ ७४॥ किंदपः विंगुषः सीऽस्तीत्युदिते सति भूसुजा। जर्वे अयः स एवा इं खामि बसीति चिन्यताम् ॥ ७५ ॥ परिष्यच्याक्रमारोप्य समान्नाय च मूर्देनि । स्रेष्टात् स्वपयितुमिव सिषेच नयनाम्बुभि: ॥ ७६ ॥ कुशनं वसः ! ते मातुरिति एष्टे महीभुजा । इति विञ्चपयामास बहाम्बलिपुटोऽभय: ॥ ७७ ॥ चनुसारन्ती भृष्णीव लत्पादाभोजसङ्गमम्। स्वामिनायुषाती मेऽम्बा बाद्योद्यानेऽस्ति संप्रति ॥ ७८ ॥ ततो नन्दां समानेतुममन्दानन्दकन्दलः। न्ययुक्त सर्वभामगीमग्रेज्ञत्व तृपीऽभयम् ॥ ७८ ॥ ततः खयमपि प्राच्योलाको जिखितमानसः। नन्दामभिययौ राजा राजहंस दवासिनीम् ॥ ८०॥ ग्रिथिलीभूतवलयां क्योललुलितालकाम्। पनचनाचीं कवरीधारिणीं मलिनांश्रकाम् ॥ ८१ ॥ तनोस्तनिन्ना दधतीं दितीयेन्द्रकलातुलाम्। ददर्भ राजा सानन्दो नन्दामुद्यानवासिनीम् ॥८२॥(युग्मम्) नन्दामानन्य मृपतिर्नीला च स्वं निवीतनम्। पद्दराच्चीपदेऽकार्वीत् सीतामिव रघू इडः ॥ ८३ ॥ भिततः पितरि खस्य पदातिपरमाणुताम्। मन्वान: साधयामास दु:साधान् भूभुजी अय: ॥ ८४ ॥ त्रन्यदोक्जयिनीपुर्यासण्डप्रद्योतभूपति:। चिलतः सर्वसामया रोहं राजयहं पुरम् ॥ ६५ ॥ प्रचीती बद्दमुकुटा धतुर्देश परे कृपाः। तवायान्तो जनैर्दृष्टाः परमाधार्मिका दव ॥ ८६ ॥ पाट्रपटमुतैरम्बै: पाटयचिव मेदिनीम् । भागच्छन् प्रविधिभ्योऽय ग्रुत्रुवे श्रेषिकेन सः ॥ ८० ॥ किञ्चिच चिन्तयामास प्रयोतोऽद्य समापतन्। क्रूरयह दव मुद्दः कार्यी इतवलः कथम् ? ॥ ८८ ॥ ततीऽभयकुमारस्थीत्पत्तिकादिधियां निधे:। कृपतिर्मुखमैचिष्ट सुधामधुरया द्वशा ॥ ८८ ॥

यद्यार्थनामा राजानमभयोऽच व्यजिन्नपत्। का चिन्तोक्जयिनीयोऽच भूयाचुद्दातिधर्मम ॥ ८० ॥ यदि वा 'बुद्धिसाध्येऽचें मुखामस्त्रिक्या हुया। बुद्धिमेव प्रयोच्ये तद्दुद्धि जयकामधुक् ॥ ८१ ॥ पय बाच्चेऽरिसैन्यानामावासस्थानभूमिषु। . सोइसंपुटमध्यस्यान् दीनारान् स न्यचीखनत् ॥ ८२ ॥ प्रचोतन्यतेः सैन्येस्ततो राजग्रहं पुरम्। पर्यवेद्यत भूगोत: पयोधिसलिलेरिव ॥ ८३ ॥ चथेखं प्रेषयामास सेखं प्रद्योतभूपते:। भभयो गुप्तपुरुषै: पर्ववेतरभाषिभि: ॥ ८४ ॥ शिवादेवीचेब्रणयोभेंदं नेचे मनागपि। तमान्योऽसि शिवादेवीसम्बन्धेनापि सर्वदा ॥ ८५ ॥ तदवन्तीय ! विचम खामेकान्तिहते काङ्मया । Hard. सर्वे त्रेषिकराजेन भेदितास्तव भूभुजः ॥ ८६ ॥ दीनाराः प्रेषिताः सन्ति तेभ्यस्तान् कर्त्तुमाव्यसात्। ते तानादाय बद्धा त्वामर्पयिष्यन्ति मत्पितुः ॥ ८० ॥ तदावारेषु दीनारा निखाताः सन्ति तत्कृते। खानयिता प्रस्त को वा दीपे सत्यन्निमी चते ॥ ८८ ॥ विदिलेवं स भूपखेकस्यावासमचीखनत्। सबास्तव च दीनारास्तान् दृष्टाऽऽश्व पसायत ॥ ८८ ॥

⁽१) कगळ नुदार-।

⁽२) कगळ -वाञ्ळया।

नष्टे तत्र तु तत्तीन्यं विलीद्याब्यिमिवाखिलम्। इस्त्यःबाद्याद्दे सारं मगधेन्द्र: समन्तत: ॥ १०० ॥ नासारूढेन जीवेन वायुवाजेन वाजिना । तत: प्रद्योतन्त्रपति: कथिश्वत् खां पुरीं ययौ ॥ १ ॥ ये चतुर्दश भूपाला ये चान्येऽपि महारथा:। तेऽपि नेश: काकनागं इतं सैन्यं श्चनायकम् ॥ २ ॥ चसंयतलुललेगै न्कतयू चैच मीलिभि:। राजानमनुयान्तस्तेऽप्यापुरुक्वयिनीं पुरीम् ॥ ३ ॥ ग्रभयस्थैव मायेयं वयं नेह्यकारिणः। प्रत्यायित: सम्प्रण्यं तैरयोक्जयिनीपति: ॥ ४ ॥ कदाचिदूचेऽवन्तीशो मध्येसभममर्षणः। योऽपैयत्यभयं बद्धा मम सम्पत्यते स किम्॥ ५ ॥ पताकं इस्तमुत्चिप्य काऽप्येका गणिका ततः। व्यजित्रपदवन्तीशमसमस्ती ह कर्मणि ॥ ६ ॥ तामादिदेशावन्तीशो यद्येवमनुतिष्ठ तत्। करोम्यर्धादिसाहायं ब्रूहि किंतव संप्रति ? ॥ ७ ॥ सा च दध्यी यदभयो नोपायेर्गृह्यतेऽपरे: । धर्मच्च्या तदादाय साधयामि समीचितम् ॥ ८ ॥ ष्याचत ततस है हितीयवयसी स्त्रियो। ते तदेवापेयद्राजा ददी द्रव्यं च पुष्कलम् ॥ ८ ॥ कतादराः प्रतिदिनमुपास्योपास्य संयताः। बभूवुक्कटप्रज्ञास्तास्तिस्रोऽपि बहुश्रुता: ॥ १० ॥

तास्तिस्तोऽपि ततो जग्मः श्रेणिकालङ्कृतं पुरम्। जगवरी वच्चियतुं मायाया रव मूर्त्तयः ॥ ११ ॥ बाच्चोद्याने कतावासा सा पणस्त्रीमतिकता। पत्तनाम्तर्थयौ चैत्यपरिपाटीचिकीषया ॥ १२ ४ सा विभूत्याऽतिशायिन्या चैत्ये नृपतिकारिते। प्रविवेश समं ताभ्यां कला नैषेधिकीवयम् ॥ १३ ॥ मालवकेशिकोमुख्यभाषामधुरया गिरा। देवं वन्दित्मारेमे सपर्थां विरचय सा॥ १४॥ त्रवाभयक्रमारोऽपि ययौ देवं विवन्दिषु:। षाक्रवतीयां तामग्रे वन्दमानां ददर्भ च ॥ १५ ० देवदर्भनविन्नोऽस्या मा भूलविश्वता मया। हार्येवेत्यभयस्तस्यी मण्डपान्तर्विवेश न ॥ १६ ॥ प्रणिधानस्तिं सत्वा सा स्तारुतिसुद्या। यावदुत्तस्युषी तावदभयोऽभ्याजगाम ताम् ॥ १७ ॥ ताह्यीं भावनां तस्यास्तं वेषं प्रथमं च तम्। षभयो वर्षयामास सानन्दं च जगाद ताम् ॥ १८ ॥ दिच्या भद्रेऽधुना लाहक्साधर्मिकसमागमः। साधर्मिकात्परी बन्धुन संसारे विवेकिनाम् ॥ १८ ॥ का लं किमागमः का वा वासभूमिरिमे च के। यकाभ्यां खातिराधाभ्यामिन्दुलेखेव शोभवे ॥ २०॥ ब्याजद्वाराय सा व्याजत्राविकाऽवन्तिवासिनः। महेभ्यवणिजः पाणिग्टहीती विधवा लहम्॥ २१॥

इमे च मम पुत्रस्य कलने कालधर्मतः। विच्छाय्यभूतां विधवे भग्नहचे सते रव ॥ २२ ॥ वतार्थमापप्रच्छाते उभे भपि तदैव माम्। विपचपतिकानां हि सतीनां शरणं व्रतम्॥ २३॥ मयाऽप्युक्ते यहीचामि निर्वीराऽहमपि व्रतम्। गार्डस्यस्य फलं किन्तु रहन्नातां तीर्घवात्रया ॥ २४ ॥ वर्ते हि भावतः पूजा युज्यते द्रव्यती न तु। दत्य इं तीर्घयातार्घमिताभ्यां सङ् निर्घयी ॥ २५ ॥ अधित्यमभयोऽबोचदितयोभवताद्य नः। त्रातिचेयं सतीच्यानां तीर्घादप्यतिपावनम् ॥ २६ ॥ प्रत्युवाचाभयं साऽपि युक्तमाः भवान् परम्। क्रततीर्थीपवासाऽइं भवाम्यदातिथिः क्यम् ? ॥ २०॥ अव तिवष्टया द्वष्टीश्मयस्तामवदत्पृनः। चवर्यं सम तलातरागन्तव्यं निकेतने ॥ २८ ॥ साऽप्यूचे यत्चचेनापि जिमनो जन्म पूर्यते । पइं प्रातिदं वर्त्ताऽस्रीति जल्पेलयं सुधी: १॥ २८॥ यस्विदानीमियं भूयः खो निमन्त्राति चिन्तवन्। तां विस्वच्याभयसेत्यं वन्दिला खग्टहं ययी ॥ ३०॥ तां निमन्त्राभयः प्रातगृष्ठचैत्यान्यवन्दयत्। भोजयामास च प्राच्यवस्त्रदानादि च व्यधात्॥ ३१॥ निमन्त्रितस्तयाऽन्येयुर्मितीभूयाभयोऽप्यगात्। साधर्मिकोपरोधेन किं न कुर्वेन्ति तादृशाः ? ॥ ३२ ॥

तया च विविधैभीं चौरभयोऽकारि भोजनम्। चन्द्रशाससुरामित्रपानकानि च पायित: ॥ ३३ ॥ भुत्तोत्यितस्य तत्वालं सुष्वाप श्रेणिकात्मजः। षादिमा मद्यपानस्य निद्रा सद्दवरी खलु ॥ ३४ ॥ तं रचन स्थाने स्थाने स्थापित सापरे रथे:। भवन्तीं प्रापयामास दुर्जच्चच्च सस ॥ ३५॥ ततोऽभयान्वेषणाय त्रेणिकेन नियोजिताः। स्याने स्थानेऽन्वेषयम्तस्तत्रापीयुर्भवेषकाः॥ ३६॥ किमिन्नाभय प्रायात दत्युक्ता तेरवाच सा। इहाभय: समायात: परं यातस्तदैव हि ॥ ३० ॥ वचनप्रत्ययात्तस्या चन्यतेयुर्गवेषकाः। स्थाने स्थाने स्थापिताछी: साऽप्यवन्तीं समाययी ॥ ३८ ॥ सा प्रचच्छाऽभयं चच्छप्रद्योतस्यार्पयत्ततः। मभयाऽऽनयनोपायस्रक्षं च व्यजिन्नपत् ॥ ३८ ॥ तां प्रद्योतोऽप्यवाचैवं न साधु विश्वितं लया। यदम् धर्मविश्रवं त्वं धर्मच्छन्ननाऽऽनयः ॥ ४०॥ क्याममतिसंशंसी मार्जायेंव शकोऽनया। नीतिज्ञोऽपि ग्टडीतोऽसि जगादेत्यभयं च सः॥ ४१ ॥ श्वभयोऽप्यब्रवीदेवं लमेव मतिमानसि । यस्यैवं विधया बुद्धा राजधर्मः प्रवर्द्धते ॥ ४२ ॥ बिक्ततः क्रितिसाय चण्डप्रद्योतभूपतिः। राज्ञ संसमिवाची सीदभयं काष्ठपञ्जरे ॥ ४३॥

प्रानिभीकरथी देवी शिवा नलगिरि: करी। सोइजङ्घो लेखवाडो राज्ये रद्वानि तस्य तु॥ ४४॥ लोइनद्वं तृप: प्रैषीद्गृगुकच्छे मुद्दर्मुद्दः। तहतागतसंक्षिष्टास्तवत्या इत्य'मस्वयन् ॥ ४५ ॥ मायात्ययं दिनेनापि पश्चविंगतियोजनीम्। त्रसक्तद्वराष्ट्ररत्यस्मान् इत्यः संप्रत्यमुं ततः ॥ ४६ ॥ ते विस्रखेत्यदुस्तस्य शम्बले विषमोदकान्। तद्वसागम्बलं चान्यसमन्तादप्यपाइरन्॥ ४०॥ कचित्पत्यानमुक्कस्य नदीरीधसि शम्बलम्। तद्वोत्तुमवतस्थेऽसीऽभूवत्रशक्कुनान्यय ॥ ४८ ॥ शकुनक्रमु सोऽभुक्कोत्याय दूरं ययी ततः। चुधितो भोत्नुकामस्तदारितः शकुनैः पुनः ॥ ४८ ॥ दूरं गला भोक्षकामः शक्तनैर्वारितः पुनः। ततो गला स तस्विं प्रचोतस्य न्यवेदयत् ॥ ५०॥ ततो राज्ञा समाह्रय तत्पृष्टः श्रेणिकात्मजः। पांचेयभस्त्रामान्नाय जगाद मतिमानिदम्॥ ५१॥ पन्ति दृष्टिविषोऽत्राहिर्द्रव्यसंयोगसभाव:। षसी दन्धी भवेनूनं भस्तासुद्वाटयेदादि ॥ ५२ ॥ ततः पराचुखीऽरखे मीच इत्यभयीदिते। तयैव मुमुचे सद्यो दन्धा हन्ता सृतय सः॥ ५३॥

⁽१) क च -स्त्यम्।

विना बस्पनमोचलं वरं याचल मामिति। कृपेणोक्तेऽभयोऽवादीव्यासीभूतोऽलु मे वरः ॥ ५४ ॥ त्रग्यदाऽऽज्ञानसुसूख पातयित्वा निषादिनी । स्तरं नलगिरिभीम्यन् चीभयामास नागरान् ॥ ५५ ॥ पसाववशगो इस्ती वशं नेय: कथं लिति। राज्ञा प्रष्टोऽभयोऽघंसज्ञायबुदयनी तृपः ॥ ५६ ॥ पुत्रा वासवदत्ताया गान्धर्वाधीतये धतः। जगावुदयनस्तत्र समं वासवदत्तया ॥ ५०॥ तद्गीताकर्षनाचित्रो बद्दो नलगिरिः करी। पुनर्दरी वरं राजा न्यासीचक्रेऽभयस्तथा ॥ ५८॥ मभूदवन्यामन्येद्युनिर्विच्छेद प्रदीपनम् । पृष्टय तत्रतीकारं प्रचीतेनाभयोऽवदत् ॥ ५८ ॥ विषस्येव विषं वक्केविक्किरेव यदीषधम्। तदन्यः क्रियतां विक्रियेथा गाम्येत् प्रदीपनम् ॥ ६० ॥ तत्तवा विदधे राजाऽशाम्यत्तच प्रदीपनम्। खतीयं च वरं सीऽदावाासीचक्रेऽभयस तम् ॥ ६१ ॥ प्रितं सद्दर्येद्युक्कविन्यां समुखितम्। तत्रशास्य नरेन्द्रेष पृष्ट इत्यभयोऽव्रवीत् ॥ ६२ ॥ भागच्छन्खन्तरास्थानं देव्यः सर्वो विभूषिताः। युषान् जयित या दृष्ट्या कथनीया तुसा सस ॥ ६३ ॥

⁽१) साम -ध्यवने।

तथैव विदर्भ राजा राजगीऽन्या विजिता दृशा। देव्या तु शिवया राजा, कथितं चाभयाय तत्॥ ६४॥ त्रभावताभयोऽप्येवं महाराची शिवा स्वयम्। करोतु क्रविलग भूतानामर्चनं निधि ॥ ६५ ॥ यद्यद्भृतं शिवाक्पेणोत्तिष्ठत्यथवासते । तस्य तस्य मुखे देव्या चेप्यः कूरवलिः स्वयम् ॥ ६६ ॥ विद्धे शिवया तचाशिवशान्तिर्वभूव च। तुर्यं चादाहरं राजा ययाचे चाभयोऽप्यदः ॥ ६० ॥ स्थितो नलगिरी मेग्हीभृते लिय शिवाइगः। ग्रहं विशास्य स्निभी बरयदा बक्ततां चिताम् ॥ ६८ ॥ ततो विषय: प्रद्योतो वरान् दातुमशक्त्वन्। विससर्जान्नि किला कुमारं मगधियतु: । ६८॥ त्राश्रुत्रावाभयोऽप्येवं खयाऽऽनीतत्र्व्हलादसम्। दिवा रटन्तं पूर्मध्ये त्वां तु निष्याम्यसावहम् ॥ ७० ॥ ततोऽभयकुमारोऽगात् क्रमाद्राजयहे पुरे। कयमप्यवतस्ये च कश्चिलालं मद्दामितः ॥ ७१ ॥ ग्रहीत्वा गणिकापुत्रशै क्रपवत्यावयाभय:। विषयेषीऽगादवस्यां राजमार्गेऽयहीद्रहम् ॥ ७२ ॥ प्रयोतेनीचते ते च दारिके पथि गच्छता। ताभ्यां च सविलामाभ्यां प्रद्योतोऽपि निरीचितः॥ ७३॥ प्रचोतिन गरहे गला रागिणा प्रेषिता तत:। दूतिकाऽनुनयन्याभ्यां कुषाभ्यामपहस्तिता ॥ ७४ ॥

दितीयसिवपि दिनेऽर्घयमाना नृपाय च। तास्यां शनैः सरोषास्यामवामन्यत दूतिका ॥ ७५ ॥ खतीयेऽप्यक्रि निवेंदादेत्य ते याचितेऽनया'। जचतुष सदाचारी भाता 'नावेव रचति ॥ ७६ ॥ ततो बिंचगैतीऽसुष्मिन् सप्तमीऽक्कि समागते। पद्मायात् तृपऋवस्ततः सङ्गो भविष्यति ॥ ७०॥ ततोऽभयेन प्रद्योतसहगेकः प्रमानिजः। चबात्ती विदधे तस्य प्रद्योत इति नाम च ॥ ७८ ॥ र्रहणोऽयं मम भाता भाम्यतीतस्ततस्ततः। रिचतव्यो मया हा किं करोमीत्यवदक्तने॥ ७८॥ तं वैद्यसञ्चनयनच्छञ्जना प्रत्यष्ठं विष्ठः। रटलं मञ्चकारूढं निनायाते स्वाभयः ॥ ८० ॥ नीयमानस तेनोचै: स उद्यक्तयतुष्यथे। प्रचोतोऽइं क्रियेऽनेनेत्युदश्चवदनोऽरटत् ॥ ८१ ॥ सप्तमेऽक्रि तृपोऽप्येकस्तत प्रच्छन पाययौ। कामान्धः सिन्धुर इव बहसाभयपूरुषै: ॥ ८२ ॥ नीयतेऽसी वैद्यवेश्मेत्यभयेनाभिभाविषा । पर्यक्षेन समं जक्के पुरान्तः सं रटन् दिवा ॥ ८३ ॥ क्रोगि क्रोगि पुरा सुक्ते रथैरथ सुवाजिभि:। पुरे राजग्रहेऽनैवीलयोतसभयोऽभय: ॥ ८४ ॥

⁽१) कथा कतया।

⁽२) कास्त्र का बंघ।

ततो निनाय प्रद्योतं श्रेणिकस्य पुरोऽभय:। दधावे खन्नमाक्षय तं प्रति येणिको तृपः ॥ ८५ ॥ ततोऽभयकुमारेण बोधितो मगधेष्वरः। संमान्य वस्त्राभरणै: प्रद्योतं व्यस्जन्मदा ॥ ८६ ॥ श्रन्यदा गणभृद्देवसूधर्मस्वामिनोऽन्तिने । प्रवच्यासग्रहीत्कोऽपि विरन्तः काष्ट्रभारिकः ॥ ८०॥ विहरन स पुरे पौरै: पूर्वावस्थाऽनुवादिभि:। मभत्यंतीपाइस्थतागर्द्धतापि पदे पदे ॥ ८८ ॥ नावज्ञां सोदुमीयोऽत विद्वरामि तदन्यतः। इति व्यञ्जपयत् स त्रीसुधर्मस्वामिनं ततः ॥ ८८ ॥ सधर्मस्वासिमाऽन्यत विष्ठारक्षमहेतवे। भाष्टच्छाताभयः एच्छन् द्वापितस्तच कारणम् ॥ ८० ॥ दिनमेकं प्रतीचध्वमू हुं यस्त्रतिभाति व:। ति हि धत्तेत्वयाचिष्ट प्रणम्य श्रेणिकात्मजः ॥ ८१ ॥ सोऽय राजकुलालृष्टा रत्नकोटिवयीं विद्यः। दास्याम्येतामेत लोका: ! पटहेनेत्यघोषयत् ॥ ८२ ॥ ततसेयुर्जनाः सर्वेऽप्यवोचदभयोऽप्यदः । जलामिस्तीवर्जनी यसास्य रत्नोचयोऽस्वयम् ॥ ८३ ॥ लोकोत्तरमिदं लोकः खामिन् ! किं कर्त्तुमीखरः ?। द्रति तेष्वाभाषमाणेष्वभयोऽपौत्यभाषत ॥ ८४ ॥ यदि वो नेहमः कश्चिद्रवकोटीवयं ततः। जलाम्बिस्नीमुचः काष्ठभारिषोऽसु महामुनैः ॥ ८५ ॥

e y

सम्यगीद्दगयं साधुः पात्रं दानस्य युच्यते। सुधाऽसी जन्दरिस्माभिरिति तैर्जगदेऽभय: ॥ ८६ ॥ प्रस्य भक्तीपहासादि न कर्त्तव्यमतः परम। पादिष्टमभयेनैवं प्रतिपद्य ययुर्जनाः॥ ८०॥ एवं बुद्धिमञ्जासोधिः पित्सभित्तपरोऽभयः। निरी हो धर्मसंस्त्रो राज्यमन्वश्रिषत्यतः ॥ ८८ ॥ वर्त्तमानः खयं धर्मे स प्रजा प्रायवर्त्तयन् । प्रजानां च पशुनां च गोपायत्ताः प्रवृत्तयः ॥ ८८ ॥ राजा चक्रे जजागार यथा हादगधा स्थित । तया त्रावकधर्मेऽसावप्रमहरमानसः ॥ २००॥ बिहरङ्गान् ययाऽजेषीदुर्जयानिष विदिषः। पन्तरकानपि तथा स लोक इयसाधकः ॥ १॥ तमूचे त्रेणिकोऽन्येद्विस ! राज्यं लमात्रय। पदं यिथे यीवीरश्यूषासुखमन्वहम् ॥ २॥ पिवाजाभङ्गसंसारभी रुरित्यभयो (ब्रवीत्। यदादिशत तसाधु प्रतीचध्वं चगं परम् ॥ ३ ॥ दतस भगवान वीरः प्रवाच्योदायनं तृपम्। मक्म ग्डलतस्त्वाभ्यागत्य समवासरत्॥ ४॥ ततो गलाभयो नला पप्रच्छ चरमं जिनम्। राजिं कोऽन्तिमोऽधास्यत्तवैवोदायनं प्रभुः ॥ ५ ॥ गलोचे श्रेणिकं सोऽस्मि राजा चेत्र ऋषिस्तदा। श्रीवीरोऽन्तिमराजि शशंसीदायनं यतः ॥ ६ ॥

वीवीरं खामिनं प्राप्य प्राप्य खत्पुत्रतामि ।
नो छेत्ये भवदुःखं चेत्रात्तः कोऽन्योऽधमस्ततः ॥ ७ ॥
नान्नाऽष्टमभयस्तात ! सभयोऽिस्म भवादृश्यम् ।
सुवनाभयदं वीरं तच्छ्यामि समादिश् ॥ ८ ॥
तदलं मम राज्येनाभिमानसुखईतुना ।
यतः सन्तोषसाराणि सौख्यान्यादुर्मेहर्षयः ॥ ८ ॥
निर्वन्याद्वाद्यमाणोऽिष न यदा राज्यमग्रहीत् ।
तदाऽभयो व्रतायानुजन्ने रान्ना प्रमोदतः ॥ १० ॥
राज्यं खणमिव त्यक्का सन्तोषसुखभागसौ ।
दीचां चरमतीर्थेशवीरपादान्तिकेऽग्रहोत् ॥ ११ ॥
सन्तोषमेवमभयः सुखदं दधानः
सर्वार्थसिदिसुरधाम जगाम मृत्वा ।

सर्वार्धसिद्विसुरधाम जगाम मृत्वा । सन्तोषमेवमपरोऽप्यवलम्बमान-स्तान्युत्तरोत्तरसुखानि नरो समेत ॥ २१२ ॥

॥ इति यौत्रभयराजिषक्यानकम्॥ ११४ ॥

प्रक्रतं सन्तोषमेव स्तीति—

सिन्नधी निधयसस्य कामगव्यनुगामिनी।
अमराः किङ्करायन्ते सन्तोषो यस्य भूषणम्॥११५॥

निषयो महापद्मादयः, सनिषी सनिहिताः, कामगबी काम-

धेतुः, सा प्रतुगच्छतीत्येवंशीला प्रतुगासिनी, प्रसराः सुराः, किङ्करा द्वाचरित किङ्करायन्ते। तस्येति योगः। यस्य किम्; यस्य पुंसः सन्तोषो भूषणमलङ्करणम्।
तथात्रि—

सन्तृष्टा सुनयः शमप्रभावात्तृषात्रादिप रक्षसमूद्वान् पातयन्ति, कामितफलदायिनस सुरेन्द्रैरप्यचमद्यमिकयोपचर्यन्त इत्यव्र कः सन्देष्टः।

घवान्तरञ्जोकाः ---

'धनं धान्यं स्वर्णकृष्यकुष्यानि चेत्रवास्तृनी।
हिपाचतुष्याचेति स्युनेव बाद्याः परियष्टाः॥१॥
रागद्देषी कषायाः ग्रग्हासी रत्यरती भयम्।
छुगुषा वेदिमिष्यात्वे श्रान्तराः स्युचतुर्देश॥२॥
बाद्यात् परियहात्रायः प्रकुष्यन्यान्तरा भपि।
प्रावषो मूषिकालकंविषकोपद्रवा इव॥३॥
प्राप्तप्रतिष्ठानिप च वैराग्यादिमहादुमान्।
छब्गूलयति निर्मूलं परियहमहाबलः॥४॥
परियहनिषस्रोऽपि योऽपवर्गं विमार्गति।
लोहोडुपनिविष्टोऽसी पारावारं तितीर्षति॥५॥
बाद्याः परियहः पुंसां धर्मस्य ध्वंसहतवः।
तळाक्यानोऽपि जायन्ते समिधामिव वक्रयः॥६॥

⁽१) क सा च धनधान्यस्मां-। ड धान्यं धनं स्न-।

बाह्यानिप हि यः सङ्गान नियन्त्रयितुं चमः। जयेत् क्लीबः कथं सीऽन्तःपरियहचमूममूम्॥ ७॥ क्रीडोद्यानमविद्यानां वारिधिर्व्यसनार्णसाम् । कन्दस्तुष्णामहावन्नेरेक एव परिग्रहः॥ ८॥ घन्नो भाषयमुत्रास्ववेमक्रात्मुनीनपि । धनाधिलंन गद्भने धनरचापरायणाः ॥ ८॥ राजतस्त्ररदायाटवक्कितीयादिभीक्भि:। धनैकतानैर्धनिभिनिशास्त्रपि न सप्यते ॥ १०॥ द्भिंचे वा सुभिन्ने वा वने जनपरेऽपि वा। ग्रज्जाऽऽतज्जाकुलतया धनी सर्वत्र दुःखितः ॥ ११ ॥ निर्दोषा वा सदोषा वा सखं जीवन्ति निर्धनाः। बाध्यक्ते धनिनो सोने दोषैक्त्यादितैरिय ॥ १२ ॥ मर्जने रचणे नागे व्यये मर्वत्र दु:खदम्। धत्ते वर्णग्रहीताच्छभव्वलीलां धनं तृणाम् ॥ १३॥ धिम्धनं धनवन्ती यदेवामिषजिष्ट्यस्थः। स्वजनैरपि बाध्यन्ते शनकाः शुनकैरिव ॥ १४ ॥ इत्यमर्थं लभेयाहं रह्येयं वर्षयेय च। क्षतान्तदन्तयन्त्रस्थोऽपीत्याभां न त्यजेहनी॥ १५॥ विशाचीव धनाशेयं यावदुच्छृङ्गला भवेत्। तावत् प्रदर्शयेत्रणां नानारूपां विडम्बनाम् ॥ १६ ॥ यदीच्छिसि सुखं धर्मे मुक्तिसाम्बाच्यमेव च। तदा परपरीचारादेकामाशां वशीकुर ॥ १० ॥

खर्गीपवर्गनगरप्रवेशप्रतिरोधिनी। भीवा वक्रधाराभिराधैव हि महार्गला ॥ १८ ॥ पागैव राचसी पंसामाग्रैव विषमस्तरी। पाप्रैव जीर्षमदिरा धिगामा सर्वदीषमू: ॥ १८ ॥ ने धन्याः पुष्यभाजस्ते तस्तीर्णः क्रोगसागरः। जगसंमो इजननी यैराशाऽऽशीविषी जिता ॥ २०॥ पापवन्नीं दु:खखानिं सुखानिं दोषमातरम्। पार्या निराधीकुरते यस्तिष्ठति सुखेन सः ॥ २१ ॥ षाशादवाम्नेमे हिमा कोऽपि लोकप्यातिगः। धर्ममेघं समाधिं यो विध्यापयति तत्वणात् ॥ २२ ॥ दीनं जल्पन्ति गायन्ति तृत्यन्यभिनयन्ति च। षाशापिशाचीविवशा: पुमांसी धनिनां पुर: ॥ २३ ॥ न यान्ति वायवो यच नाप्यर्नेन्द्रमरीचय:। षाशामहोर्मयः पंसां तत्र यान्ति निरर्गलाः ॥ २४ ॥ येनाशायै दरे खाम्यं तेनात्तं दाखमात्मनः। भागा दासीकता येन तस्य स्वास्यं जगन्नये ॥ २५॥ नामा नैसर्गिकी पंसि या जीर्यति न जीर्यति । उत्पात एव कोऽप्येषा तस्यां सत्यां कुतः सुखम् ॥ २६ ॥ वलयो वलयाः पुंचां पिलतानि स्नजः कताः। किमन्यसम्बनं कला कतार्थोऽऽगा भविष्यति ॥ २० ॥ प्राप्तिस्योऽप्यतिरिचन्ते तेऽर्घोस्यका य पाप्रया । क्रोडीकरोति यानाथा ते तु खप्नेऽपि दुर्चभाः ॥ २८ ॥

यानर्थान् बहुभि'र्यत्नैरिच्छेताधियतं नरः। भयवसिंदा एवैते क्षते ह्याशानिमी सने ॥ २८ ॥ पुर्खीदयीऽस्ति चेत् पुंसां व्यर्धेवाशापिशाचिका। त्रय पुर्खोदयो नास्ति व्यर्थेवाशापिशाचिका ॥ ३०॥ प्रधीती पण्डितः प्राप्तः पापभीक्स्तपोधनः । स एव येन ज्ञिलाऽऽशां नैराग्यसुररीक्तनम् ॥ ३१ ॥ सुखं सन्तीषपीयूषजुषां यत् स्ववशासनाम् । तत्पराधीनहत्तीनामसन्तीषवतां क्षतः ॥ ३२ ॥ सन्तोषवर्मणि व्यर्था भाषानाराचपङ्क्रयः। ताः कथं प्रतिरोद्या इति मा साज्जलो भव ॥ ३३ ॥ वाकोनैकेन तहरिस यहाचां वाकाकोटिसिः। भाशापिशाची शान्ता च प्राप्तं च परमं पदम् ॥ ३४॥ तसन्यजाऽऽग्रावैवय्यं मितीकतपरिग्रहः। भजस्व दृष्यसाध्रत्वं यतिधर्मान्त्रत्तधीः ॥ ३५ ॥ मिष्याद्दग्भ्यो विशिष्यको सम्यग्दर्शनिनो जना:। तेभ्योऽपि देशविरता सितारकापरित्रहा: ॥ ३६ ॥ यामन्यतीर्धिका यान्ति गतिं तीव्रतपोज्ञषः। उपासका: सोमिलवत्तां विराह्मता श्रपि ॥ ३० ॥ मारी मारी हि ये बाला: कुशायेणैव भुक्तते। सन्तुष्टीपासकानां ते कलां नार्चन्त षोडग्रीम्॥ ३८॥

⁽१) खच -भिः होयैः।

⁽२ः उट भजस्वं भाव-। च भाव-।

ष्मप्यद्भुततपोनिष्ठस्तामितः पूरणोऽपि वा । सुत्रावकोचितगतेरितिहोनां गितं ययो ॥ ३८ ॥ षाश्रापिशाचिववशं कुरु मा स्म चेतः सन्तोषसुद्वष्ठ परिग्रष्टनिग्रहेण । त्रद्वां विधेष्ठि यतिधर्मधुरीणताया-मन्तर्भवाष्टकसुपैषि यथाऽपवर्गम् ॥ ४० ॥ ११५ ॥

इति परमाईतत्रीकुमारपालभूपालग्रुत्रृ विते घाचार्य-त्रीहेमचन्द्रविरचिते घध्याक्योपनिषवान्ति सञ्जातपदृषसे त्रीयोगग्रास्त्रे स्रोपग्नं हितीयप्रकाणविवरणम्।

प्रईम्

त्रतीयः प्रकाशः।

श्रयाणुत्रतव्यावर्णनानम्तरं गुण्वतानामवसरस्तवापि प्रथमं गुणवतमाइ —

दशस्विप क्रता दिन्नु यव सीमा न लङ्घाते । स्थातं दिग्विरतिरिति प्रथमं तद्गुणवतम् ॥ १ ॥

ऐन्ही, मान्नेयी, याच्या, नैर्म्हती, वाक्षी, वायव्या, कौबेरी, ऐशानी, नागी, ब्राम्मीत दश दिशस्तासु; मिपशब्दादेक- दिव्यादिदिस्विप, सीमा मर्यादा, कता प्रतिपन्ना, यत्र व्रते सित, न लक्ष्यते नातिक्रम्यते, तत्र्यमं गुणव्रतम्। उत्तरगुणक्ष्यं व्रतं गुणव्रतम्, गुणाय चीपकाराय भण्वतानां व्रतं गुणव्रतम्; स्थातं प्रसित्तं, तस्थाभिधानं दिग्विरतिरिति॥१॥

ननु हिंसादिपापस्थानविरितक्षपाणि युक्तान्यग्रुव्रतानि, दिग्वते तु कस्य पापस्थानस्य निवृक्तियेनास्य व्रतत्वमुच्यते। उच्यते। प्रवापि हिंसादीनामेव पापस्थानानां विरितरितदेवाह-

चराचराणां जीवानां विमर्दनिनवर्त्तनात्। तप्तायोगोलकल्पस्य सद्वतं ग्रहिणोऽप्यदः॥२॥ चरास्त्रमा द्वीन्द्रियादयः, प्रचराः स्थावराः एकेन्द्रियाः ; तेषां

XE

नियमितसीमाविष्वं क्तिंनां जीवानां, यिद्वमर्दनं यातायातादिना दिसा, तस्य निवर्त्तनादेतोरिदमिष दिसाप्रतिषेधपरमेव ग्रहस्य-स्वापि सद्वतम्। दिसाप्रतिषेधपरत्वे च, प्रसत्यादिप्रतिषेधपरताऽपि स्ववैव । यद्येवं, साधूनामिष दिग्विरतिवतप्रसङ्ग द्रत्याह—तप्ता-योगोलकस्पस्रेति । ग्रहस्यो द्वारभपरिग्रहपरत्वाद्यव यव याति, भुङ्क्ते, श्रेते, व्यापारान्तरं वा कुर्ते, तत्र तप्तायोगोलक दव जीवोपमदे करोति । ग्रहिचोऽपीत्यिपशब्दस्तप्तायोगोलकस्पस्रेत्यव सम्बद्धते ; तप्तायोगोलकस्पस्रापीत्यर्थः ।

यदाइ--

'तत्तायगोलकपो पमत्तजीवोऽणिवारियपसरो । स्वस्य किं न कुळा पावं तकारणाणुगमो ॥ १ ॥ साधूनां तु समितिगुप्तिप्रधानव्रत्याखिनां नायं दोष इति न तेवां दिग्बिरतिव्रतम् ॥ २ ॥

सोभसच्चणपापस्थानविरतिपरमपि चैतद् व्रतमित्याच-

जगदाक्रममागस्य प्रसरक्षीभवारिधेः। स्वलनं विद्धे तेन येन दिग्विरितः कृता॥ ३॥

लोभ एव दुर्लक्वात्वाद्वादिधिः समुद्रः प्रसरंसासी नानाविकाल्य-कक्कोलाकुलतया लोभवारिधिसः ; तस्य विशेषणं जगदाक्रममा-चस्य। वारिधिपचे जगक्कोकः, लोभपचे तु निःशेषमेव भुवनचयम्।

⁽१) तप्तायोगोषकत्यः प्रमत्तकीवोऽनिवारितप्रहरः। सर्वेत किंन कुर्वात् पापं तत्कारचातुनतः॥

सीभवगगी हि अर्द्वलोकगतां सुरसम्पदं मध्यलोकगतां च चक्र-वर्च्चादिसम्पदमधोलोकगतां च पातालप्रभुत्वादिसम्पदमभिलवं-स्त्रिभुवनमपि मनोर्थ्येराक्रामतीति लोभस्य जगदाक्रमणम्, तेन स्त्रुलनं प्रसर्दिनरोधः, तिहृदधे, येन किं, येन पुरुषेण दिग्विरति-विहिता। दिग्वरतो हि प्रतिज्ञातसीमातः परतोऽगच्छंस्तत्स्य-सुवर्णकृष्यधनधान्यादिषु प्रायेण लोभं न कुक्ते दतिलोभलच्य-पापस्थानविरतिपरता प्रस्त व्रतस्य।

षवान्तरञ्जोकाः--

तदेतद्यावक्रीवं वा सद्वतं रुष्ट्रमिधनाम्।

चतुर्मासादिनियमादयवा खल्पकालिकम्॥१॥

सदा सामायिकस्थानां यतीनां तु जितास्मनाम्।

न दिश्चि क्षचन स्थातां विरत्यविरती दमे॥२॥

चारणानां ष्टि गमनं यद्द्वं मेक्मूर्वनि।

तिर्यग्रुषकश्रीले च नेषां दिन्वरितस्ततः॥३॥

गन्तुं सर्वासु यो दिख्च विदध्यादविधं सुधीः।

स्वर्गदी निरवधयो जायन्ते तस्य सम्पदः॥४॥३॥

दितीयं गुणव्रतमाइ-

भोगोपभोगयोः संख्या शक्त्या यत्र विधीयते । भोगोपभोगमानं तद् हैतीयीकं गुणव्रतम् ॥ ४॥

भोगोपभोगयीर्वच्चमाणलचणयी:, संख्या परिमाणं, यत्र त्रते, विधीयते, क्या, प्रतथा प्ररीरमनसोरनाबाधया, तद्वीगीप-

भोगमानं नाम गुणव्रतं, हितीयमेव हैतीयीकम्; स्वार्धे टीकस्॥ ४॥

भोगोपभोगयोर्वच समाच —

सक्तदेव भुज्यते यः स भोगोऽन्नस्रगादिकः। पुनःपुनः पुनर्भीग्य उपभोगोऽङ्गनादिकः॥ ५॥

सक्तदेव एकवारमेव, भुज्यते सेव्यते इति भोगः ; भन्नमोदनादि, स्नग्मास्त्रं, भादिशब्दात्ताम्बूलविलेपनोहर्त्तन-भूपनस्नानपानादिपरिग्रष्टः । पुनःपुनरनेकवारं, भोग्यः सेव्यः, भन्नना वनिता, भादिशब्दाहस्त्रालङ्कारग्यक्षग्रयनासनवाहनादि-परिग्रष्टः ॥ ५ ॥

इदं च भोगोपभोगव्रतं भोक्तं योग्येषु परिमाणकरणेन भवति, इतरेषु तु वर्जनेनिति स्रोकदयेन तद्वजनीयानाच —

> मदां मांसं नवनीतं मधूदुम्बरपञ्चकम्। चनन्तकायमज्ञातफलं राची च भोजनम्॥६॥ चामगोरससंपृत्तं दिदलं पुष्पितीदनम्। दध्यइद्दितयातीतं कुथितात्तं च वर्जयेत्॥०॥

तत्र मदां दिधा-काष्ठनिष्यवं, पिष्टनिष्यवं च, मांसं तिधा-जलस्थलखचरमांसभेदेन। मांसग्रहणेन चर्मविधरमेदोमळानः परिग्रह्मन्ते। नवनीतं गोमश्रिष्यजाऽविसम्बन्धेन चतुर्वा। मधु त्रेधा-माचिकं, भामरं, पीत्तिकं च। उदुम्बरपञ्चकादयी यथास्थानं व्याख्यास्यन्ते॥ ६॥ ७॥

तत्र मद्यस्य वर्जनीयत्वहितृत् दोषान् स्नोकदशकेना ह—

मदिरापानमात्रेण बुिबर्नश्यित दूरतः । वैदग्धीबस्युरस्यापि दीर्भाग्येणेव कामिनी ॥ ८॥

वैदन्धीवन्धुरस्यापि क्षेत्रस्यापि पुंसी, मदिरापानमाचेण बुह्यनंग्यति चयं याति, दूरतो दूरं यावत्। सर्वधा विनम्धतीत्यर्थः। महोपमानं दीर्भाग्येणेव कामिनीति। वैदन्धीवन्धुरस्यापि दूरत इति चात्रापि सम्बद्धते। तेन यथा विदन्धस्यापि दौर्भाग्यदोषेण कामिनी नम्मति पलायते, दूरतो दूरादपि॥ ८॥

तद्या---

पापाः कादम्बरीपानविवशीक्षतचेतसः। जननीं हा प्रियीयन्ति जननीयन्ति च प्रियाम्॥ ६॥

कादस्वरी मदिरा, जननीं मातरं, हा इति खेदे, प्रियोयन्ति प्रियामिव जायामिवाचरन्ति, प्रियां च जननीयन्ति जननीमिवा- चरन्ति । मदिरामदविद्वललाज्जननीजाययोराचारव्यत्ययेन व्यव- हरन्तीत्यर्धः ॥ ८ ॥

तथा---

न जानाति परं खं वा मद्याच्चितिचेतनः। खामीयति वराकः खं खामिनं किङ्करीयति॥१०॥ मद्यादितोः चिलितवेतनो नष्टचैतन्यः सन्, स्वमानानं, परं वा चालव्यतिरित्तं, न जानाति । चत्र हेतुमाइ—यत चालानः मजानन् स्वं स्वामिनमिवाचरित, वराक्षेतन्य होनत्वादनुकम्य-नीयः । परमजानन् स्वामिनं नाथं किङ्करिमवाचरित ॥ १०॥

तथा---

मद्यपस्य शवस्थिव लुठितस्य चतुष्पथि।

मूचयन्ति मुखे खानो व्यात्ते विवरशङ्कया॥११॥
स्वष्टः॥११॥

तथा —

मद्यपानरसे मम्नो नमः खपिति चत्वरे । गूढं च खमभिप्रायं प्रकाशयति लीलया ॥ १२॥

मदाख पानं तत्र रस पासितास्तव मग्नी निषयः; मदा-पानव्यसनीत्यर्थः। यतं एव वस्त्रमपि स्त्रस्तमजानन् नग्नः स्विपिति चलरे, नतु ग्रष्ट एव। दोषान्तरं च, गूढं केनाप्यविदितं, स्वमभिप्रायं राजद्रोद्वादिकं, प्रकागयति प्रकटीकरीति, लीलया वस्त्रनताडनादिव्यतिरेकेणापि॥ १२॥

तथा--

वाकणीपानतो यान्ति कान्तिकीर्त्तिमितिश्रियः। विचित्राश्चित्ररचना विलुठत्कष्णलादिव॥१३॥ वाकणीपानतो मद्यपानात्, यान्यपगच्छन्ति, कान्तिः गरीर- तेजः, कीर्त्तिर्यशः, मितस्तात्कात्तिकी प्रतिभा, त्रीः सम्पत्। विचित्रा इत्याद्युपमानं स्पष्टम्॥ १३॥

तथा--

भूतात्तवद्वरीनर्त्ति रारटीति सशीक्षवत्। दाइज्वरार्त्तवद्वमी सुरापी लोलुठीति च॥१४॥

भूतासो व्यन्तरविशेषपरिग्रहीतः, त्रीक्यपि क्रियापदानि भृशाभीक्षयोर्थे ज्लुबन्तानि ॥ १४ ॥

तथा---

विद्धत्यङ्गग्रैथिन्धं म्लपयन्तीन्द्रियाणि च। मूर्च्छामतुच्छां यच्छनी हाला हालाहलोपमा ॥१५॥

हाला सुरा, हालाइलोपमा हालाइलो विषविभेषस्तत्-सहगी। साधारणधर्मानाइ—विद्धती कुर्वाणा मङ्गमैथिस्यं गरीरविश्यंस्युललम्, ग्लपयन्ती कार्याचमाणि कुर्व्वती, इन्द्रि-याणि चचुरादीनि; मूर्च्छा चैतन्याभावस्तामतुच्छां प्रचुरां यच्छन्ती। मङ्गमैथिस्थादयो हालाहालाहलयोः साधारणा धर्माः ॥१५॥

तथा-

विवेकः संयमो ज्ञानं सत्यं शीचं दया चमा।
मद्यात्प्रलीयते सर्वं तृष्या विज्ञक्षणादिव॥१६॥
विवेको ह्रेयोपादेयज्ञानं, संयम इन्द्रियवशीकारः, ज्ञानं

यास्त्रावबोधः, सत्यं तथ्या भाषा, शौचमाचारग्रहः, दया कवणा, चमा क्रोधस्यानुत्पाद उत्पन्नस्य वा विफलीकरणम् । मद्यान्यदा-पानात्, प्रसीयते नाशसुपयाति, सर्वे विवेकादि । यथा वक्किकणात् दृष्या दृष्यसमूद्यः । दृषानां समूद्यस्तृष्या, पागादित्वाद्याः ॥१६॥

> दोषाणां कारणं मद्यं मद्यं कारणमापदाम् । रोगातुर द्रवापथ्यं तस्मान्मद्यं विवर्जयेत्॥ १०॥

दोषाणां चौर्यपारदारिकालादीनां, कारणं हेतुः, मद्य-पानरतो हि किं किमकार्यं न कुर्वते ; दोषकारणलादेव चापदां वधवन्धादीनां, कारणं तस्मान्यदां विवर्जयेदित्युपसंहारः । रोगातुर द्वापव्यमित्युपमानम् ।

प्रवासरञ्जोकाः--

रसोद्भवास भूयांसो भवन्ति किल जन्तव:।
तस्मान्यदां न पातव्यं हिंसापातकभी कृषा ॥ १ ॥
दत्तं न दत्तमात्तं च नात्तं कृतं च नो कृतम्।
स्वोद्यराज्यादिव हा खेरं वदित मद्यप: ॥ २ ॥
स्वेद्यराज्यादिव हा खेरं वदित मद्यप: ॥ २ ॥
स्वेद्यादिनिभीको स्टक्कात्याच्छिद्य मद्यप: ॥ ३ ॥
सालिकां युवतीं वहां ब्राह्मणीं खपची मिष ।
भुङ्को परस्त्रियं सद्यो मद्योन्यादकदर्धित: ॥ ४ ॥
रटन् गायन् लुठन् धावन् कुष्यंसुष्यन् कदन् हसन्।
स्तस्त्रमम् स्रमंसिष्ठन् सुराप: पापराट् नट: ॥ ५ ॥

यूयते किल गाखेन मद्यादस्यक्षविष्णुना ।

इतं वृष्णिकुलं सर्वं ग्लोघिता च 'पुरी पितु: ॥ ६ ॥

पिवविष सृदुर्भद्यं मद्यपो नैव द्यप्यति ।

जन्तुजातं कवलयम् कतान्त इव सर्वदा ॥ ७ ॥

लीकिका भिष मद्यस्य बहुदोषत्व मास्यिता: ।

यत्तस्य परिहार्थेत्वमेवं पौराणिका जगु: ॥ ८ ॥

किसिद्धिस्तपस्तेपे भीत इन्द्र: सुरस्त्रिय: ।

चोभाय प्रेषयामास तस्यागत्य च तास्तकम् ॥ ८ ॥

विनयेन समाराध्य वरदाभिसुखं स्थितम् ।

जगुर्भद्यं तथा मांसं सेवस्ताबद्धा चेच्छ्या ॥ १० ॥

स एवं गदितस्ताभिर्द्धयोर्नरकहेतुताम् ।

प्रालोच्य मद्यरूपं च ग्रुवकारणपूर्वकम् ॥ ११ ॥

मद्यं प्रपद्य तद्द्योगान् नष्टधमस्थितिमेदात् ।

विदंशार्थमजं हत्वा सर्वमेव चकार सः ॥ १२ ॥

प्रवद्यमूलं नरकस्य पद्यतिं

भवद्यमूलं नरकस्य पहितं
सर्वापदां स्थानमकीर्त्तिकारणम् ।
ग्रभव्यसेव्यं गुणिभिविंगर्हितं
विवर्जयेमाद्यमुपासकः सदा ॥ १३ ॥ १० ॥

⁽१) साच पितः प्ररो।

⁽२) साचाञ -मात्रिताः।

षय मांसदोषाना ह--

चिखादिषति यो मांसं प्राणिप्राणापश्चारतः ।
उन्मूलयत्यसी मूलं दयाऽऽख्यं धर्मशाखिनः ॥ १८॥
चिखादिषति, खादितुमिच्छति, यः किषत्, मांसं पिणितं, पसी
प्रमान्, उन्मूलयति उत्खनति, किं तन्मूलं दयासंज्ञकं, कस्य धर्मप्राखिनः पुष्पष्ठचस्य, मांसखादने कयं धर्मतरोदियास्थं मूलसुन्नूस्यते इत्याद्य—प्राणिप्राणापश्चारतः प्राणिप्राणापश्चारादेतोः,
न दि प्राणिप्राणापश्चारमन्तरेण मांसं संभवतीति ॥ १८॥

षय मां चिखादिषविष प्राणिदयां करिष्यतीत्या च प्राणीयन् सदा मांसं दयां यो हि चिकी प्रति। ज्वलित ज्वलिन विश्वीं स रोपियतुमिक्किति॥ १८॥ सदा सर्वदा, मांसमयनीयन् मांसमयनिमवाचरन्, प्रतीयित क्वाचिमितवत् "प्राधाराचीपमानादाचारे" ॥ १।४।२४॥ इति क्वानि कपम्, दयां क्वपां, यः किवत्, हि स्फुटं, चिकी प्रति कर्तुमिक्किति। ज्वलतीत्यादिना निदर्भनम्, यथा ज्वलत्यमी विश्वीरोपणमयकाम्, तथा मांसमयनीयता दयाऽपि कर्तुमयको-त्यर्थः॥ १८॥

नन्यन्यः प्राणिनां घातकोऽन्यय मांसभचक इति कयं मांस-भचकस्य प्राणिप्राणापद्वरणमिति । उच्चते । भचकोऽपि घातक प्रवेखाद्व— इन्ता पलस्य विक्रोता संस्कृत्तां भच्नक्त्या।
क्रीताऽनुमन्ता दाता च घातका एव यन्मनुः ॥२०॥
इन्ता ग्रस्तादिना प्राणिनां प्राणिपद्यारकः, पलस्य विक्रेता यो
मांसं विक्रीणीते। पलस्येत्युत्तरेष्विष पदेषु सम्बन्धनीयम्। संस्कृत्ती
यो मांसं संस्कृतीति, भच्नकः खादकः, क्रेता यो मांसं क्रीणाति,
प्रमुमन्ता यः प्राणि द्विसया मांसमुत्याद्यमानमनुमोदते, दाता यो
मांसमितिष्यादिभ्यो ददाति; एते साचात्यारम्पर्येण वा घातका
एव प्राणिप्राणापद्यारका एव, यन्मनुरिति संवादार्थम् ॥ २०॥

मानवमेवोक्तं दर्भयति---

अनुमन्ता विश्वसिता निष्टन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपष्टर्ता च खादकश्चेति घातकाः॥२१॥
अनुमन्ता अनुमोदकः, विश्वसिता इतस्याङ्गविभागकरः, निष्टन्ता
व्यापादकः, क्रयविक्रयी क्रयविक्रयी विद्येते यस्य स तथा, क्रेता
विक्रेता चेत्यर्थः; संस्कर्ता मांसपाचकः, उपष्टर्ता परिवेष्टा,
खादको भष्टकः; एते सर्वे घातकाः॥२१॥

हितीयमपि मानवं श्लोकमाइ--

नाक्तत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पदाते क्वित्। न च प्राण्विषधः खर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥ २२॥ यावगाणिनो न हतास्तावनांसं नोत्पदाते, हिंसा चातिमयेन दःखावहा, तसानांसं विवर्जयेत्, स्त्यदात हिंसा निमित्तत्वात् वार्गृथ्यपदेश इति समानकर्गृकत्वमविष्डम्। न च खर्ग्य इति न खर्गानुत्पत्तिमात्रमभिषेतमपि तु नरकादिदु:खः हेतुता॥ २२॥

द्रदानीमन्यपरिहारेण भचकस्यैव वधकलमाइ—

ये भच्चयन्यन्यपनं खकीयपनपुष्टये।

त एव घातका यज्ञ वधको भचकं विना ॥ २३॥ भन्यपनमन्यमां सं स्मांसपृष्टिये ये भन्नयन्ति त एव परमार्थतो घातका न तु इन्तृविक्रीद्धप्रश्तयः । भव्र युक्तिमाइ—यद्यस्माद्य भचकं विना वधको भवति ; ततो इन्तृप्रश्तिभ्यो भन्नकः पापौयान्, स्वकौयपनपुष्टय इति हिंसाभिप्रायं स्वपनपोषण-माव्यप्रयोजनः कतिपयदिनजीवितः परजीवितप्रहाणं कुर्यात् । यदाइ—

'इंत्र्यं परपाये घप्पायं जी कुर्याति सप्पायं। घप्पायं दिवसायं कएय नासेति घप्पायं॥१॥ तद्या—

'एकसा कए नियजीवियसा बहुचाउ जीवकोडीचो। दुक्वे ठवंति जे केवि ताण किं असासयं जीयं १॥ १॥ २३॥

⁽१) इत्वा परपायान् कालानं वे कुर्वनि सपायस्। कलानां दिवसानां क्रोन नायवन्ति कालानसः॥

⁽२) एकस करे निजनीवितस्य बक्तका जीवकोटीः। इःस्ते स्थापयन्ति ये केऽपि तेषां किं शासती जीवः !॥

^{*} द मासको काण्या।

एतदेव सजुगुपामा ह-

मिष्टान्नान्यपि विष्ठासादस्तान्यपि मूत्रसात्।

स्युर्यस्मित्रङ्गकस्यास्य क्वते कः पापमाचरेत् ? ॥२४॥ निष्टात्वानि यालिमुद्गमावगोधूमादीनि तान्यपि विष्ठासादिष्ठाः लेन स्युः संपद्येरन्। अस्तानि पयः प्रस्तीनि तान्यपि मूत्र-साम् अलेन स्युः संपद्येरन्। यिक्तन् अस्य प्रत्यचस्य, अङ्गकस्य कुल्सितस्य गरीरस्य, कृते निमित्तं, कः सचेतनः पापं प्राणि- घातन्वणमाचरेत् विद्धीत ॥ २४॥

दरानीं मांसभचणं न दोषायेति वदती निन्दित—
मांसाशने न दोषोऽसीत्युच्यते येदुरातमिः ।
व्याधग्रध्रवसव्याप्तर्श्यालास्तेर्गुक्कताः ॥ २५॥
मांसभचणे न दोषोऽस्तीति यैक्चते दुराक्षभिर्दुःसभावैः,
यथा —

"न मांसभसणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला"॥१॥ इति।
तैर्व्याघा तुश्रकाः, ग्रम्ना हिंस्नाः पित्तिविश्रेषाः, वृका श्ररण्याकाः,
व्याघाः शार्दूलाः, श्रमासा जम्बुकाः, गुरुक्तताः उपदेशकाः
काताः। न हि व्याधादीन् गुरून् विना कि सिदैवंविषं शिच्चयित,
नचाशिचितं महाजनपूच्या एवसुपदिशन्ति। भपि च। निवृत्तिस्तु
महाफलिति वदद्विर्येषां निवृत्तिर्मेश्वाफला तेषां प्रवृत्तिनं दोषवतीति
स्वयमेव स्ववचनविरोध श्राविष्कृत इति किमम्यद् ब्रूमहे॥ २५॥

निक्तवसेनापि मांसस्य परिष्ठार्थलमाष्ठ—

मां स भव्यति। अनु यस्य मांसिम् द्वार्यम् ।

एतन्मांसस्य मांसत्वे निक्तां मनुरव्रवीत् ॥ ३६॥

मां स भव्यवितित अन स इति सर्वनामसामान्यापेषं योग्येनार्थेन

निराकाद्वीकरोति । यस्य मांसमद्यमि , दहित दहलोके,

पसुनेति परलोके, एतन्यांसस्य मांसत्वे मांसरूपतायां, निक्तां
नामधेयनिर्वनं मनुरव्रवीत् ॥ २६॥

मांसभच्चे महादीवमाइ--

मांसाखादनलुभ्यस्य देष्टिनं देष्टिनं प्रति ।

इन्तुं प्रवर्त्तते बुिहः शाकिन्या दूव दुर्धियः ॥ २०॥ मांसभवणसम्प्रस्य देषिनं देषिनं प्रति यं यं प्रस्रति जलचरं मन्स्यादिकं, स्थलचरं सगवराष्ट्रादि भजाऽविकादि च, खेचरं तित्तिरिसावकादि, भन्ततो मूषिकाद्यपि तं तं प्रति इन्तुं प्रननाय बुिहः प्रवर्त्तते; दुर्षियो दुर्बुहेः, शाकिन्या दव—यथा हि शाकिनी यं यं पुरुषं स्त्रियमन्यं वा प्राणिनं प्रस्रति, तं तं इन्तुं तस्या बुिहः प्रवर्त्तते, तथा मांसास्त्रादनसुश्चस्यापीति॥ २०॥

षि च मांसभिष्यामुत्तमपदार्धपरिष्ठारेण नीचपदार्थीपा-दानं मध्दुविवेगुष्यं दर्भयतीति दर्भयवाष्ट-

ये भच्चयन्ति पिशितं दिव्यभोन्येषु सत्स्वपि। सुधारसं परित्यन्य भुद्धते ते इलाइलम्॥ २८॥ दिव्यभोज्येषु सकसधातुनृंहतेषु सर्वेन्द्रियप्रीतिप्रदेषु चौरचैरेयीकिसाटीकृ चिंकारसासादध्यादिषु मोदकमण्डकमण्डिकाखाद्यकपर्यटकाष्ट्रतप्रादिषु इण्डेरिकापूरणवटकविटकापर्पटादिषु इन्नुगुडखण्ड्यकरादिषु द्राचासहकारकदसदािडमनासिकरनारङ्गखर्जूराचोटराजादनपनसादिषु च सत्स्विप तान्यनादृत्य ये मूढा
विस्नगन्धिनुगुपाकरं यूकाप्रधानानां वान्तिकरं मांसं भच्चयन्ति
ते जीवितृहिष्टिलस्तरसपरिहारेण जीवितान्तकरं हासाहसं
विस्नमेदं भुद्धते। बासोऽपि हि दृषत्परिहारेण सुवर्षमैवादन्त
इति बासादिप मांसभिचिणो बासाः ॥ २८॥

भश्चन्तरेच मांसभचवदीवमाइ--

न धर्मी निर्देयस्यास्ति पलादस्य कुतो दया। पललुब्धो न तद्देति विद्याद्दोपदिशिव्रहि ॥ २८ ॥

निर्देयस्य कपारहितस्य, धर्मी नास्ति; धर्मस्य दया मूलमिति ह्यामनिता। ततः प्रस्ति किमायातमत प्राह्म—पस्य क्रतो दया। पसादस्य मांसोपजीविनः, क्रतो दया नैव द्येत्यर्थः; भस्यकस्य वधकत्वेनोक्तत्यात्। वधकत्य कयं सदयो नाम इति पसादस्य निर्धमितास्वर्णो दोषः। नतु सचेतनः कथमामनि धर्माभावं सहेत। उत्थते। पस्तुन्धो न तहित्ति मांससोभेन न तत्पूर्वाधौक्तं जानाति। प्रय कथिषिद्याज्ञानीयात्ति स्ययं मांस- तुन्धो मांसनिवृत्तिं कर्तुमशक्तुवन् सर्वेऽपि मम सहशा भवन्तिति परेभ्यो मांसनिवृत्तिं कर्तुमशक्तुवन् सर्वेऽपि मम सहशा भवन्तिति परेभ्यो मांसनिवृत्तं कर्तुमशक्तुवन् सर्वेऽपि मम सहशा भवन्तित

जिणको मार्गे गच्छनेकया सर्पिष्या भित्ततस्तस्ते देवि भच्छ-न्तामनयेति बुद्द्या परेभ्यो नाष्ट्यातवानिति दितीयोऽपि तयैव दष्टो नान्येषां कथितवान् ; एवं यावस्तप्त दष्टाः । मांसभचकोऽपि मांसभचणात्स्वयं नरके पतन् "स्वयं नष्टा दुराक्तानो नामयन्ति परानपि" इति न परेभ्य उपदिश्वति ॥ २८ ॥

ददानीं मांसभचकाणां मृढतासुपदर्भयति —

केचिन्नांसं महामोहादग्नन्ति न परं खयम्। देवपिवतिथिभ्योऽपि कल्पयन्ति यदूचिरे॥ ३०॥

केचित् कुशास्त्रविप्रस्था महतो मोहात केवसं स्वयं मांसमग्रन्ति किन्तु देवेभ्यः पित्रभ्योऽतिथिभ्यस कस्पयन्ति, यद्यसादूचिरे तहर्मशास्त्रकाराः॥ २०॥

उन्नमेवाइ --

क्रीत्वा खयं वाऽप्युत्पाद्य परोपष्टतमेव वा । देवान् पितृन् समभ्यर्च्य खादन् मांसं न दुष्यति ॥३१॥

स्गपिचमांसिवषयमितच्छास्नं, तेन स्नापणमांसं विना व्याध-शाक्तानिकादिभ्यः कीला मून्येन। स्नापणमांसे तु देवपूजा-दावनिधिकतेः। तथा खयसत्पाद्य—ब्राह्मणो याञ्चया, चित्रयो स्गयाकर्मणा, भयवा परेणोपहृतं ढीकितं तेन मांसेन देवानां, पितृषां चार्चनं कला मांसं खादन दुष्यति; एतच महामोहा-दिति वदिक्रस्माभिद्षितमेव। खयमि हि प्राणिघातहेतुकं मांसं भचियतुमयुक्तं किं पुनर्देवादिभ्यः कल्ययितुम्। देवा हि सक्ततसभारलभाक्तानोऽधातुक्रयरीरा श्रकाविक्ताहाराः कथं मांसं भच्ययुः, श्रभच्यद्वास्तलल्यनं मोह एव। पितरस स्वस्नकत-दुष्कृतविम प्राप्तगितिविशेषाः स्वकर्मफल्यमनुभवन्तो न पुत्रादिकतेनापि स्वकतेन तार्यन्ते किं पुनर्मां सदीक नदुष्कृतेन। न च पुत्रादिकतं स्वकृतं तेषासुपतिष्ठते। न ह्यास्त्रेषु सेकः कोविदारेषु फलं दत्ते। श्रतिथिभ्यस सल्ताराहेभ्यो नरकपातहेतोमां सस्य दौक्रनं महते श्रधमीय। एवं परेषां महामोह वेष्टितम्। श्रुति-स्वृतिविहितत्वादनोद्यमेतदिति चेत्र। श्रुतिभाषितेष्वप्रामाणिकेषु प्रत्ययस्य कर्तुमग्रक्यत्वात्। श्रूयन्ते हि श्रुतिवचांसि—यथा पापन्नो गोस्पर्थः, दुमाणां च पूजा; क्षागादीनां वधः स्वग्यः। बाह्मण्योजनं पिद्यपीणनं, मायावीन्यधिदैवतानि; वक्की हुतं देवपीतिपदम्। तदेवंविधेषु श्रुतिभाषितेषु युक्तिकु श्रलाः कथं श्रुह्मीरन् ।

यदाइ --

स्पर्गीऽमेध्यभुजां गवामघहरो वन्द्या विसंज्ञा हुमाः
स्वर्गेन्छागवधारिनोति च पितृन् विप्रोपभुक्ताधनम् ।
प्राप्तान्छग्नपराः सुराः गिखिहुतं प्रीणाति देवान् हविः
स्कीतं फल्गु च वल्गु च स्रुतिगिरां को विक्ति स्त्रीसायतम् ? ॥१॥
तस्मान्यहामोह एवायं मांसेन देवपूजाऽऽदिकमित्यसं
विस्तरेण ॥ नतु मन्त्रसंस्कृतो विक्रिन दहति पचति वा, तन्मन्त्रः
संस्कृतं मांसं न दोषाय स्थात् ।

यद् मनु:---

श्वसंस्कृतान् पश्चमन्त्रेनीचाहिप्रः कथञ्चन ।

मन्त्रेलु संस्कृतानद्याच्छात्र्वतं विधिमास्थितः ॥ १ ॥
शास्त्रतो नित्यो वैदिक इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

चवाइ--

मन्तसंस्कृतमप्यद्याद्यवाल्पमिष नो पलम् । भवेज्जीवितनाशाय हालाहललवोऽपि हि ॥ ३२॥

सम्बसंस्कृतमि सम्बपूतमि , पलं नाद्यात्, न हि सन्वा प्रमने देश्वनप्रक्षितवस्त्रादिपापण्यक्षिं मांसस्य प्रतिवश्वन्ति । तथा सित सर्वपापानि काला पापन्नमन्त्रानुस्त्ररणमात्रात् कतार्थीभवेयुः । एवं च सर्वपापप्रतिविधोऽपि निर्धकः स्थात्, सर्वपापानां मन्त्रादेव नायप्रसक्तेः । प्रथ यथा स्तोकं मद्यं न मद्यति तथा स्वस्यं मांसं न पापाय स्थात् । उच्यते —यवास्प्रमपि यवतुस्त्रप्रमाणमिप नाद्यात् पलमिति संबध्यते, तदिप दोषाय, प्रतोत्तरार्धेन निद्यमनम् ॥ ३२॥

इदानीमनुत्तरं मांसस्य दोषसुपदर्भयनुपसंहरति— सद्यः संमृष्कितानन्तजन्तुसन्तानदूषितम् । नरकाध्विन पार्थयं कोऽश्रीयात्पिशितं सुधीः १॥३३॥ सद्यो जन्तुविशसनकाल एव संमृष्किता उत्यवा श्रनन्ता निगोद-रूपा ये जन्तविशेषां सन्तानः पुनः पुनर्भवनं तेन दूषितम् ।

यदाडु: -

'यामास य पक्कास य विषयमाणास मंसपेसीस ।
सययं चिय उववाची भणियी उ निगीयजीवाणं ॥ १ ॥
तत एव नरकाध्वनि पांचेयम्, पिशितभचणस्य पांचेयत्वे
पिशितमपि पांचेयमुक्तं, कोऽश्रीयात्पिशितं सुधीरित्युपसंद्वारः ।

प्रवासरश्चोकाः —

मांसलुश्चेरमर्थादैर्नास्तिकैः स्तोकदिर्धभः।
कुशास्त्रकारैवेयात्याद्गदितं मांसभचणम्॥१॥
नान्यस्ततो गतष्टणो नरकार्चिषदिन्धनम्।
स्त्रमांसं परमांसेन 'यः पोषियतुमिच्छिति॥२॥
स्ताष्ट्रं पुणानृगूयेन वरं हि ग्रह्मशूकरः।
प्राणिघातोद्ववैभीसैने पुनर्निर्घृणो नरः॥३॥
निःशेषजन्तुमांसानि भच्चाणीति य जिसरे।
नृमांसं वर्जितं शक्के स्ववधाशक्षयेव तैः॥४॥
विश्रेषं यो न मन्येत नृमांसपश्रमांसयोः।
धार्मिकस्तु ततो नान्यः पापीयानिष नापरः॥५॥
श्रक्षशोणितसन्भूतं विष्ठारसविवहितम्।
लोहितं स्थानतामाप्तं कोऽश्रीयादक्रमिः पलम् १॥६॥

⁽¹⁾ चामासुच पकासुच विषच्यमानासुमांसपेशीसु। स्ततमेव उपपाती भचितस्तु निगोइजीवानास्॥ १॥

^{(&}gt;) साचा अन्य बो वर्डीबह-।

षदो दिजातयो धर्म शौचमूलं वदन्ति च! सप्तभात्वदेशोत्यं मांसमग्रन्ति चाधमाः ॥ ७ ॥ येवां तु तुच्चे मांसाने सत्वणाभ्यवद्वारिणाम्। विषास्तं समे तेषां सत्यजीवितदायिनी ॥ ८॥ भचषीयं सतां मांसं प्राच्यक्विन हेत्ना। भोटनादिवदित्येषं ये चानुमिमते जडाः ॥ ८ ॥ गोसभावलासे सूचं पयोवन पिवन्ति किम् ?। प्राच्यक्तानिमित्ता च नीदनादिषु भच्चता ॥ १०॥ ग्राह्मदि ग्राचि नास्यादि प्राच्यक्तले समे यथा। त्रोदनादि तथा भच्यमभच्यं पिशितादिकम् ॥ ११ ॥ यसु प्राण्यङ्गमावलात् प्राष्ट्र मांसीदने समे। स्त्रीतमात्रात्रात्रप्रद्धाः स किं साम्यं न कल्पयेत ? ॥१२॥ पश्चेन्द्रयस्यैकस्यापि वधे तसांसभचगात्। यथा हि नरकप्राप्तिने तथा धान्यभोजनात्॥ १३॥ न हि धान्यं भवनांसं रसरक्तविकारजम्। श्रमांसभोजिनम्तस्रात्र पापा धान्यभोजिन: ॥ १४॥ धान्यपाने प्राणिवधः परमेनोऽवशिष्यतः ग्टिं चां देशयमिनां स तु नात्यन्तवाधकः ॥ १५ ॥ मांसखादकगतिं विस्थान्तः संख्यभोजनरता इंड सन्तः। प्राप्नवन्ति सुरसम्पद्सु श्रे-र्जनशासनजुषो ग्टिंचोऽपि ॥ १६ ॥ ३३ ॥

क्रमप्राप्तं नवनीतभचणदोषमा इ---

यत मूर्छिन्त तद्वाद्यं नवनीतं विवेकिभिः॥३४॥ यत मूर्छिन्ति तद्वाद्यं नवनीतं विवेकिभिः॥३४॥ यत्वमध्यं मुझर्तस्य यन्तर्मुइत्तं, तस्मात् परत जहुं, यतिशयेन स्त्याः सस्त्याः, जन्तराथयो जन्तसमूद्याः यस्मिन्नवनीते, मूर्च्छिन्ति उत्पद्यन्ते, तन्नवनीतं, नायं न भन्नणीयं, विवे-किभिः॥३४॥

एनमेवाधें भावयति —

एकस्थापि हि जीवस्य हिंसने किमघं भवेत् ?। जन्तजातमयं तत् को नवनीतं निषेवते ?॥ ३५॥ एकस्थापि हि जन्तोर्वधे किं निर्देष्टुमशक्यमघं पापं भवेत् तत्त-स्माज्जन्तजातं प्रक्रतमिसंस्ताज्जन्तजातमयं नवनीतं को निषेवते कः सविवेकोऽत्राति ?॥ ३५॥

क्रमप्रामाश्रुदोषाना ह--

श्रनेकजन्तुसङ्घातनिघातनसमुद्गवम् ।

जुगुपानीयं लालावत् कः स्वादयित माचिकम् १॥३६॥ अनेकस्य जन्तुसङ्गातस्य यिवधातनं विनायस्तस्यात् समुद्रवी यस्य तत्तवा। निधातनिमिति इन्त्यर्थायेति इन्तेषुरादिपाठात् णिजन्तस्य रूपम्। अयं परलोकविरोधी दोषः, जुगुपनीयं कुलानीयं, लालावक्वालामिव, अयमिइलोकविरोधी दोषः, कः

सचेतनः, स्वादयति भचयति, मिचकाभिः क्वतं माचिकं मधु। एतच भ्यामरादीनामुपलचणम्॥ ३६॥

दतनीं मध्भवकाणां पाणीयस्तां दर्भयति — भव्यन्माचित्रं चुद्रजन्तुलच्चयोद्ग्यम् । स्तोकजन्तुनिष्टन्तृभ्यः शीनिक्रेभ्योऽतिरिच्यते ॥३०॥ चुद्रजन्तुरनस्थः स्वादयवा चुद्र एव यः । यतं वा प्रस्तियेषां केचिदा नक्कबादिष ॥ १ ॥

तेषां चुद्रजन्तूनां लचाणि, लचयष्टणं वषुत्वोपलचणम्।
तेषां चयो विनागस्तस्मादुइवो यस्य तत्त्रया, तइचयन् स्तीकपम्बादिजन्तुनिष्टन्तृभ्यः शौनिकेभ्यः खद्दिकेभ्योऽतिरिच्यते चिकीभवति; भचकोऽपि घातक इत्युक्तप्रायम्॥ ३०॥

सौकिकानामप्युच्चिष्टभीजनत्याजिनामुच्चिष्टत्वायाधु परिष्ठर्भव्यमेवित्याष्ट्र---

एकेक कुसुमक्री डाद्रसमापीय मचिकाः।

यदमिन मधूष्किष्टं तदम्भन्त न धार्मिकाः ॥३८॥
एक्षेत्रस्य कुसुमस्य यः क्रोड चलक्कस्तस्याद्रसं मकरन्दमापीय
पीला, मिक्काः यदमिन चित्ररिना, तदुष्किष्टं मधु; धर्मे
चरिन धार्मिकास्ते नाम्रन्ति। मनुष्किष्टभोजनं हि धर्मी
सीकिकानाम्॥३८॥

नतु 'विदोषग्रमनं मधु' नातः परमीषधमस्तीति रोगीप गान्तये मधुभचिषे को दोष इत्याइ— सप्योषधक्तते जम्धं मधु प्रवस्तिबस्वनम् ।
भिच्चतः प्राणनाशाय कालकूटकाणोऽपि हि ॥३८॥
पाद्यां रसाखादलाम्पय्येन यावदीवधक्ततेऽपि श्रीवधितिमत्तमपि
मधु जम्बं यद्यपि रोगापहारकं, तथापि खन्नस्य नरकस्य
निवस्थनम्; हि यस्मात् प्रमादाक्यीवितार्थितया वा कालकूटस्य
विवस्य कणोऽपि लवोऽपि भिच्चतः सन् प्राणनाशाय भवति ॥३८॥

ननु सर्जूरद्राचादिरसवनाधु मधुरमिति सर्वेन्द्रियाप्यायकत्वात् कर्यं परिष्ठार्थे स्वादित्याष्ट्र—

मधुनीऽपि हि माधुर्यमबीधैरहही च्यते।
श्रासाद्यन्ते यदाखादाचिरं नरकवेदनाः॥ ४०॥
सत्यमस्ति मधुनी माधुर्ये व्यवहारतः, परमार्थतस्त नरकवेदनाः
हेतुत्वादत्यन्तकटुकत्वमेव। श्रवीधैरिति परमार्थपरिश्रीसनाविकत्तैः, नरकवेदनाहेतोरपि मधुनी माधुर्यवर्षनमबीधानामित्यहहेत्यनेन विषादो द्योत्यते। यस्य मधुन श्रास्तादाचरकवेदनाविरमासाद्यन्ते प्राप्यन्ते॥ ४०॥

पविव्यवात् मध् देवस्नानोपयोगीति ये मन्यन्ते तानुपश्चति—

सिचानामुखनिष्ठूातं जन्तुघातो इवं मधु ।

श्रश्ची पवित्रं मन्याना देवस्नाने प्रयुद्धते ॥ ४१ ॥

सिचानां मुखानि तैर्निष्ठ्रतं वान्तं जन्तुघातात्राणिघातादुइवी

यस्य तत्तादृशमपवित्रं मधु, पविव्रं श्रुचि, मन्याना श्रभि-

मन्यमानाः, देवानां प्रश्वरादीनां, स्नाने स्नानिमित्तं, प्रयुक्तते व्यापारयन्ति, प्रश्ने इत्युपद्यासे।

यथा ---

करभाषां विवाहे तु रासभास्तत्र गायना:। परस्परं प्रशंसन्ति घडो रूपमडो ध्वनि:॥१॥४१॥

क्रमप्राप्तान् पश्चोदुम्बरदोषाना इ—

उदुम्बरवटप्रचकाकोदुम्बरशाखिनाम् । पिप्पलस्य च नास्रीयात्फलं क्रिमकुलाकुलम् ॥ ४२॥

च दुम्बरवटम्र च क्षाको दुम्बरिका पिप्पलानां पञ्चो दुम्बरसं ज्ञितानां फलं नाम्रीयात्। प्रनम्भने कारणमा च — क्षमिक लाकुलं, एक सिम्बपि भले तावन्तः क्षमयः सम्भवन्ति ये परिसंख्यातुमपि न शकान्ते।

यज्ञीकिका चिप पेठ:--

कोऽपि कापि कुतोऽपि कस्यचिद्दं चेतस्यकस्याक्तनः
केनापि प्रविश्वत्युद्ध्वरफलप्राणिक्रमेण चणात्।
येनास्मिवपि पाटिते विघटिते विव्रासिते स्फोटिते
निष्यिष्टे परिगासितं विद्सिते निर्यात्यसौ वानवा॥१॥ इति॥४२॥

पञ्चोदुम्बरफलविरतानां सुतिमाइ---

चप्राप्नवन्नन्यभच्यमि चामी बुभुचया।

न भचयित पुण्यातमा पञ्चोदुम्बरजं फलम् ॥४३॥

यः पुच्यातमा पविवासा पुरुषः, स पञ्चोदुम्बरजं फलं न भचयित,

त्रास्तां सुलभधान्यफलसमृते देशे काले वा, यावहेशदीषात् काल-दोषाद्वा त्राप्तापुववय्यभक्तं धान्यफलादिभक्तं; त्रिप शब्द उत्तर-वापि सम्बध्यते; बुभुत्तया ज्ञामोऽपि क्रशोऽपि; प्रबुभुत्तितस्य स्वस्यस्य व्रतपालनं नातिदुष्करम्; यसु प्रप्राप्तभोज्यः सुत्वामस्य वृतं पालयति स पुष्णाकेति प्रशस्ति ॥ ४३॥

क्रमप्राप्तमनन्तकायनियमं क्षोकत्रयेण दर्भयति—

ग्रार्द्रः कन्दः समग्रोऽपि सर्वः किश्वलयोऽपि च।

स्तृष्ठी लवणतृत्वत्वक् कुमारी गिरिकर्णिका ॥ ४४ ॥

शतावरी विक्रदानि गुडूची कोमलािक्सका।

पक्षा्रक्षोऽस्तवक्षी च वक्षः श्र्करसंज्ञितः ॥ ४५ ॥

ग्रनन्तकायाः सूचीक्ता ग्रपरेऽपि क्रपापरैः।

मिध्यादृशामिविद्वाता वर्जनीयाः प्रयक्षतः ॥ ४६॥ पाद्रीऽग्रष्कः, ग्रष्कस्य तु निर्जीवलादनन्तकायलं न भवति। कन्दो भूमिमध्यगो दृष्ठावयवः समग्रोऽपि, सर्वे कन्दा इत्यर्थः। ते च सूरणग्राद्रेकलग्रनवळकन्दइरिद्राकर्भूरपलागकन्दग्रस्कालोढकक- वेक्कमुहरमुस्तामूलकग्रालुकपिण्डालुकहस्तिकन्दमनुष्यकन्दग्रस्थ-तयः; किग्रलयः पनादर्वाग् बीजस्थो च्छूनावस्था सर्वो न तु काचिदेव, सुद्दी वळतकः; लवणनान्त्रो दृष्ठस्य लक्, त्वगेव नलन्धे भ्रवयवाः; कुमारी मांसलप्रणालाकारपता, गिरिकर्षिका

⁽१) कच्-त्याना-।

वक्षीविश्रेषः, शतावरी वक्षीविश्रेष एव, विक्ठानि चक्रुरितानि दिस्लधान्यानि, गुडूची वक्षीविश्रेषः, कोमलाऽिक्सका कोमला धवद्यास्थिका चिक्किष्यका ; पक्राक्षः शाकमेदः, श्रम्तवक्षी वक्षीविश्रेषः, वक्षः श्र्म्परसंज्ञितः श्र्मरवक्ष दर्स्यर्थः ; श्र्मरसंज्ञितग्रद्यं धान्यवक्षनिषेधार्षम्। एते पार्यप्रसिद्याः। क्लेच्छप्रसिद्यालु चन्येऽि स्त्रोक्ताः ; स्यं जीवाभिगमः। चपरेऽि क्षपापरैः सुत्रावकेर्वर्जनीयाः। ते च मिष्यादृष्टीनामविज्ञाताः ; मिष्यादृशी द्विवस्त्रतीनिप जीवलेन न मन्यन्ते कुतः पुनरनन्त-कायान्॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

चय क्रमप्राप्तमञ्चातफलं वर्जियतुमाच-

खयं परेण वा जातं फलमदािष्टशारदः। निषित्वे विषफले वा मा भूदस्य प्रवर्त्तनम् ॥४०॥

षद्मातमिति संविधिविशेषानिर्देशात् खयमात्मना, परेष वा ष्योन, ज्ञातं फलमयाद्गचयेदिशारदो धीमान्; यत्तु खयं परेष वा न ज्ञातं तद्जातफलं वर्जयेत्; षज्ञातफलभचिष दोषोऽयम्, निषिषे फले विषफले वा षज्ञानादस्य विशारदस्य मा भूग्रहत्ति:। 'प्रज्ञानतो हि प्रतिषिष्ठे फले प्रवर्त्तमानस्य व्रतभक्षः, विषफले तु जीवितनाशः॥ ४०॥

[।]१) इ.च अज्ञानती।

चय क्रमप्राप्तं राविभोजनं निवेद्माइ --

त्रतं प्रेतिषशाचाद्यैः सञ्चरिक्तिनिरङ्ग्रैः । उक्तिष्टं क्रियते यत्र तत्र नाद्याद्दिनात्यये ॥ ४८॥ प्रेता त्रथमा व्यक्तराः, पिणाचा व्यक्तरा एव ; त्राद्यप्रचणाद्राच-सादिपरिषदः, निशाचरत्वाविरङ्ग्रैः सर्वेत सञ्चरिक्तः सर्ग्रीद-नोक्तिष्टमभोज्यं क्रियते यत्र दिनात्यये रात्री, तत्र नाद्यांच सङ्गीत ।

यदाद्य:--

'मालिंति मिष्ठियलं जामिणीसु रयणीयरा समंतेण। ते विद्वालेंति #फुडं रयणीए मुंजमाणं तु॥ ४८॥

तथा--

घोरास्वकारकृषाचैः पतन्तो यत्र जन्तवः ।
नैव भोज्ये निरीच्यन्ते तत्र भुञ्जीत को निश्चि १॥४८॥
प्रवतान्यकारनिरुद्धतोचनैः क्रमिपिपीलिकामिक्वकादयः पतन्तो
एततेलतकादौ भोज्ये न दृष्यन्ते यत्र, तत्र तस्यां निश्चि सचैतनः
को भुञ्जीत १॥ ४८॥

 ⁽१) मासयिन महीतसं यामिनीषु रजनीयराः समनात् ।
 तिऽपि च्यलिन च्युटं रजन्यां सञ्जानं सु॥ १॥
 ^{*} ते वि वर्तत च्य इति रत्नगेसरक्षरिकतत्रावकप्रतिक्रमच्युमदीकावाम् ।

राविभोजने दृष्टान् दोषान् श्लोकदृषेणाइ—

मेधां पिपीलिका इन्ति यूका कुर्याक्यलोदरम्।
कुरुते मिक्का वान्तिं कुष्ठरोगं च कोलिकः ॥ ५०॥
कार्यको दारुखार्डं च वितनीति गलव्यथाम्।
व्यञ्चनान्तर्णिपतितस्तालु विध्यति दृश्चिकः॥ ५१॥
विलम्ब गले वालः स्वरभङ्गाय जायते।
कुत्यादयो दृष्टदोषाः सर्वेषां निश्चि भोजने॥ ५२॥

पियोलिका कोटिका, चन्नादिमध्ये भुक्ता सती, मेधां बुदिविशेषं, इत्ति; पियोलिकित जाताविकवचनम्। तथा यूका जलोदरमुद्ररोगविशेषं कुर्यात्, तथैव मिन्नका वान्तिं वमनं करोति,
तथैव कोलिको मर्कटकः, कुष्ठरोगं करोति, कप्यको बदर्यादिसंबन्धी, दावखण्डं च काष्ठशकलं, तथैव गलव्यथां वितनोति,
व्यक्तनानि शाकादीनि तेषां मध्ये निपतितो द्वस्विकस्तालु विध्यति।
ननु पियोलिकादयः स्कालाब दृश्यन्ते, द्वस्विकस्तु स्थूलत्वाद् दृश्यत
एव तत्कथमयं भोक्ये निविशेत। उच्यते। व्यक्तनमिष्ठ वार्ताकुशाकरूपमिभिग्नेतं तहन्तं च द्वसिकाकारमेव भवतीति द्वसिकस्य
तक्षध्यपतितस्याकच्यत्वाह्नोच्यता सन्धवनीति। विकन्नस्य गले
वाल इत्यादि स्रष्टम्; एवमादयो राविभोजने दृष्टा दोषाः सर्वेषां
मिय्यादशामपि।

यदाद्य:---

'मेइं पियोलियाभो# इखंति वसणं च सिच्छ्या कुण्ड । जूया जलोयरत्तं ने कोलियभो कोटरोगं च ॥ १ ॥ बालो सरस्र भङ्गं कण्टो लग्गइ गलिय दारुं च । तालुन्यि विंधइ भली वंजणसञ्कान्य भुंजंतो ॥ २ ॥

श्रिप च। निशाभोजने क्रियमाणे श्रवश्रं पाक: संभवी तत्र च षड्जीवनिकायवधीऽवश्रंभावी, भाजनधावनादी च जलगतजन्तु-विनागः, जलोञ्कानेन भूमिगतकुत्युपिपीलिकादिजन्तुघातस्र भवति, तत्राणिरचणकाङ्क्षया श्रिप निशाभोजनं न कर्त्तव्यम्।

यदाइ: -

'जीवाण कुंघुमाईण घायणं भायणधीयणाईसु ।

एमाद्रयणिभोयणदीसे को साम्चिं तरद ? ॥५०॥५१॥५२॥

नतु यत्नात्रस्य न पाकी न वा भाजनधावनादिसंभवस्तिसं

मोदकादि खर्जूरद्राचादि च भच्चयतः क दव दीव दिखाइ—

⁽१) मेथां पिधीतिका झिता वननं च मित्रका करोति ।

बूका जलोहरत्वं कोलिकः कृष्टरोगं च ॥ १॥

बालः स्वरस्य भक्तं कस्यको लगति गन्ने दाव च ।

तालुनि विध्यति कलिस्बिक्षनमध्ये भुन्यमानः॥ २॥

* पिवीकिक्याचो ।

† जलोयरं

⁽२) जीवानां कुण्यादीनां घातनं भाजनघावनाहिषु। एवमाहिरजनीभोजनहोषानुकः कघायसः प्रक्रोति ?॥ १॥

नाप्रेच्यसूच्यजन्तूनि निग्यद्यात्प्राशुकान्यपि । षयुद्यत्वेवलज्ञानैर्नाहतं यद्गिषाऽशनम् ॥ ५३॥

प्राग्नकात्यपि भनेतनात्यपि उपलब्धत्वात्तदानीमपक्कात्यपि मोदकप्रलादीनि न निश्चदात्, कुतः भप्रेच्यस्च्यजन्तृनि भप्रेच्याः प्रेचितुमग्रकाः, स्ट्याः कुन्युपनकादयो जन्तवो यच तानि विशेषणद्वारेण हेतुवचनं, भप्रेच्यस्च्यजन्तुत्वादित्यर्थः ; यद् यसादुत्यविवस्त्रानेः वेवस्त्रानवस्त्रेनाधिगतस्च्योतरजन्तुसंपाते निजन्तुकस्वाद्वारस्थाभावादादतं निश्वाभोजनम् ।

यदुत्तं निशीयभाष्ये —

'जहिव हु फासगदव्यं कुंगूपणगावि तहिव दुप्पसा।

पञ्चकखनाणिणोवि हु राईभत्तं परिहरंति ॥ १ ॥

जहिव हु पिवीलगाई दीसंति पईवमाहरूकोए।

तहिव खलु पणाहत्रं मूलवयविराहणा जेण ॥ २ ॥ ५३ ॥

लीकिकसंवाददर्भनेनापि राजिभोजनं प्रतिविधित—

धर्मविद्वेव भुद्धीत कदाचन दिनात्यये।

बाह्या खिप निशाभोज्यं यदभोज्यं प्रचन्नते ॥५४॥

धर्मवित श्वतध्मेवदी न कदाचिविधि भुद्धीत, बाह्या जिन-

⁽१) बद्यपि खनु प्राम्यकृत्यं कुन्युपनका व्यपि तथापि दुर्द्याः । प्रत्वचत्तानिनेऽपि खनु रात्रिभक्तं परिकर्तन ॥ १ ॥ वद्यपि खनु पिपोक्तिकादवो बद्यन्ते प्रदीपाद्युद्द्योते । तथापि खनु समापीकें भूनवृत्विराधना वेन ॥ २ ॥

शासनबिहर्भूता सौकिकास्तेऽपि यत् यस्मात् निश्चि भोज्यमभोज्यं प्रचन्नते॥ ५४॥

येन शास्त्रेण बाह्या निशाभी ज्यमभो ज्यं प्रचचते तच्छास्त्रो-पद्ग्रेनार्थं तदायेति तच्छास्त्रमेव पठति —

तरु यथा---

चयौतेजोमयो भानुरिति वैद्विदो विदुः। तत्करैः पूतमिखलं शुभं कर्म समाचरेत्॥ ५५॥

तयी ऋग्यज्ञ:सामलच्चणा तस्यास्तेजः प्रकृतं प्रस्तुतमिस्मन् तयीतेजोमयो भानुरादित्यः, त्रयीतनुरिति द्यादित्यस्य नाम । दित वेदविदो जानन्ति । तत दित ग्रेषः । तत्करैभीनुकरैः पूतं पवित्रीकृतमिस्ति समस्तं ग्रभं कर्म समाचरेत्; तदभावे ग्रभं कर्मन कुर्यात्॥ ५५॥

एतदेवा ह -

नैवास्तिनं च स्नानं न श्रासं देवतार्चनम्।
दानं वा विद्यितं रात्री भीजनं तु विश्रेषतः ॥५६॥
प्राइतिरानी समिदायाधानं, स्नानमङ्ग्रम्थालनं, श्रासं पित्यकर्मं,
देवतार्चनं देवपूजा, दानं विश्राणनं ; न विद्यितमिति सर्वत्र
नजो योगः ; भोजनं तु विश्रेषती न विद्यितमिति। नज्ञ
नक्तभोजनं श्रेयमे श्रूयते, न च रात्रिभोजनं विना तद्ववति।
उच्यते। नक्तगन्दार्घापरिज्ञानादेवमुच्यते॥ ५६॥

तदेवा ह ---

दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे।

नतां तु तिविजानीयाद्म नतां निशि भोजनम् ॥५०॥ दिवसस्य दिनस्याष्टमे भागे पाषात्येऽदेपहरे यद्वोजनं तवतः मिति विजानीयात्। दिविधा हि ग्रन्टस्य प्रवृत्तिर्मुख्या गौषी च; तत्र कविन्मुख्यया व्यवहारः, कविन्मुख्यार्थवाधायां सत्यां गौष्या; नतागन्दस्य रातिभोजनलचन्मुख्यार्थवाधा, रातिभोजनस्य तत्र तत्र प्रतिषिद्यतादिति गौषार्थे एव नक्तग्रन्द्र हत्यसौ दिवसग्रेषभोजने वर्त्तते। तत्र निमित्तमुक्तं मन्दीभूते दिवाकरे, सुख्यार्थप्रतिषेधाच न निशि भोजनं नक्तम्॥५०॥

राविभोजनप्रतिषेषमेव परकीयेष स्नोकहयेनाह — देवैस्तु भुक्तं पूर्वाक्ते मध्याक्ते च्हिषिसत्या। चपराक्ते च पिट्टिभिः सायाक्ते दैत्यदानवैः ॥ ५८॥ सन्ध्यायां यचरचोभिः सदा भुक्तं कुलोहह !। सर्ववेलां व्यतिक्रस्य राचौ भुक्तमभोजनम्॥ ५८॥

पूर्वमङ्कः पूर्वाङ्गः तिसान् देवेर्भुतं, मध्यमङ्को मध्याङ्गस्तिस्तृषि-भिर्भुतं, भगरमङ्को भगराङ्गस्तिसान् पिष्टभिर्भुत्तम् ; सायमङ्कः सायाङ्को विकालस्तिसान् देखेदितिजैदीनवैदेनुजैर्भुक्तम् ; सन्ध्या रजनीदिनयोः प्रवेशनिष्काशी तस्यां यचैर्गुद्धाके रचोभी राचसै-भृताम् । कुनोद्दहित युधिष्ठिरस्यामस्यणम् । सर्वेषां देवादीनां वेला भवसरस्तां व्यतिकास्य रात्री सुक्तमभोजनम् ॥ ५८ ॥ ५८ ॥

॥ यायुर्वेदेऽप्युक्तम् ॥

एवं पुराणिन रात्रिभोजनप्रतिषेधस्य संवादमिभिधायायुर्वेदेन मंवादमाइ, प्रायुर्वेदेऽप्युक्तमित्यनेन।

षायुर्वेदसु---

इन्नाभिपद्मसङ्गोचश्वग्डरोचिरपायतः।

श्रती नक्तं न भीक्तव्यं सूच्यजीवादनादिष ॥६०॥ इह शरीरे हे पद्ये; इत्पद्यं च यदधीसुखं, नाभिषद्यं च यदूर्द्व-सुखं, ह्योरिष च पद्ययोः रात्री सङ्कोचः; कृतवण्डरोचिषः सूर्यस्वापायादस्तमयात्। श्रतो इत्यद्यनाभिषद्यसङ्कोचाहेतोनिक्तं रात्री न भोक्तव्यम्; सूच्यजीवादनादपीति हितीयं निश्चिभोजन-प्रतिविधकारणम्। सूच्या ये जीवास्तेषामदनं भच्चं, तस्यादिष रात्री न भोक्तव्यम्॥ ६०॥

परपचसंवादमभिधाय खपचं समर्थयते —

संसज्जीवसङ्घातं भुञ्जाना निश्चि भोजनम्।

राचसिभ्यो विशिष्यन्ते मूटात्मानः कथं नु ते १॥६१॥
संबध्यमानजीवसमूहं, भोजनं भोज्यं, भुञ्जाना निश्चि राची,
राचसेभ्यः क्रव्यादेभ्यः कथं नु कथं नाम, विशिष्यको भिद्यको,
राचसा एव ते रत्यर्थः। मूटालानी जङाः; पपि च, लस्थे
मानुषत्वे जिनधर्मपरिष्कृते विरतिरेव कर्तुमुचिता, विरतिष्ठीनसु
यङ्गपुच्छहीनः पश्चरेव॥६१॥

एतदेवा ह--

वासरे च रजन्यां च यः खादन्नेव तिष्ठति। शृङ्गपुच्छपरिभष्टः स्पष्टं स पशुरेव हि॥ ६२॥ स्पष्टम्॥ ६२॥

रानिभोजननिष्ठत्तेभ्योऽिष सिवशिषपुख्यवती दर्भयति—

श्रद्धी मुखेऽवसाने च यो हे हे घटिके त्यजन्।

निशाभोजनदोषन्तीऽश्रात्यसी पुख्यभाजनम्॥६३॥

श्रद्धो सुद्धे पारमे, षवसाने पिषमे भागे, हे हे घटिके, सुद्धत्तें सुद्धत्तें रातेः, प्रत्यासनं त्यजन् परिहरन्, योऽश्राति स पुख्यभाजनम्, निशाभोजनदोषन्न इति। निशाभोजने सम्पातिमजन्तु-सम्पातन्तवाषा ये दोषास्तान् जानन् रातिप्रत्यासनमपि सुद्धत्तं सुद्धत्तें सदोषत्वेन जानाति; धत एवागमे सर्वजवन्यं प्रत्याख्यानं सुद्धत्तें सदोषत्वेन जानाति; धत एवागमे सर्वजवन्यं प्रत्याख्यानं सुद्धत्तें सदोषत्वेन जानाति; धत एवागमे सर्वजवन्यं प्रत्याख्यानं सुद्धत्तें भोजनं करोति, तदनन्तरं रातिभोजनं प्रत्याख्याति॥६३॥

नतु यो दिवेव भुङ्को तस्य रात्रिभोजनप्रत्याख्याने फलं नास्ति, फलविगेषो वा कसिदुचातामित्य। ह—

श्रक्तत्वा नियमं दोषाभोजनाहिनभोज्यि । फलं भजिन्न निर्व्याजं न वृद्धिभाषितं विना ॥ ६४ ॥ नियमं निव्यत्तं, रातिभोजनादक्तत्वा दिने भोत्तं गीलमस्यासी दिनभोजी सोऽपि नियाभोजनविरतेः फलं निर्व्याजं निरुक्त्वा, न भजेत् न सभेत। कुत इत्याह — न वृद्धिभीषितं विना, वृद्धिः कालान्तरं, भाषितं जिल्पतं विना न स्थात्। सौकिकमेतद्, यथा भाषितमेव कलान्तरं भवेदिति॥ ६४॥

पूर्वीतस्य विपर्ययमाष्ट-

ये वासरं परित्यच्य रजन्यामेव भुञ्जते।

ते परित्यज्य माणिक्यं काचमाददते जडाः ॥६५॥ दिवसं परित्यज्य तच्छीलतया रात्रावेव ये अस्त्रते; दृष्टान्तः स्पष्टः॥६५॥

ननु नियम: सर्वेत्र फलवान्, तती यस्य 'रात्रावेव मया भोक्तव्यं न दिवसे' इति नियमस्तस्य का गतिरित्याइ —

वासरे सति ये श्रेयस्काम्यया निशि भुच्चते ।

ते वपन्त्यूषरचे ने शालीन् सत्यपि पल्वले ॥ ६६ ॥
श्रेयोहेती वासरभोजने सत्यपि कुशास्त्रसंकाराको हादा श्रेयस्काम्यया ये रात्रावेव भुक्तते ते शालिवपनयोग्ये पस्वले सत्यपि
जबरे चेने शालीन् वपन्ति। यथा ह्यूषरे चेने शालिवपनं
निरर्थकं, तथा रात्रावेव मया भोक्तव्यमिति निष्फलो नियमः।
प्रथमनिवृक्तिकृपो हि नियमः फलवानयं तु धर्मनिवृक्तिकृप
पत्थफलो विपरीतफलो वा॥ ६६॥

राविभोजनस्य फलमाइ--

उलूककाकमार्जारग्रध्रशम्बरग्रकराः । अहित्रसिकगोधास जायन्ते रात्रिभोजनात् ॥६०॥ राविभोजनादुन्कादिषु जन्म भवति । उन्नूकादय उपस्कर्णं ; तेनान्येष्यप्रभातियम् राविभोजिनो जायन्ते ॥ ६०॥

वनमालोदाइरणेन राविभोजनदीषस्य महत्तां दर्शयति— स्रूयते द्वान्यगपथाननादृत्येव लन्मणः।

नियाभोजनशपधं कारितो वनमालया ॥ ६८॥
त्रुयते रामायणे दशरधनन्दनी लच्मणः पित्रनिदेशात् सद्ध रामेण
सीतया च दिनणापणे प्रस्थितोऽन्तरा कूर्वरनगरे महीधरराजतनयां
वनमालामुपयेमे ; ततस रामेण सद्ध परतो देशान्तरं यियामन्
स्वभायां वनमालां प्रतिमोचयित स्व ; सा तु तिहरहकातरा
पुनरागमनमसन्भावयन्ती लच्मणं शपधानकारयत्। यथा प्रिये !
रामं मनीषितं देशे परिस्थाप्य यदाहं भवतीं स्वदर्शनेन न प्रीणवामि, तदा प्राणातिपातादिपातिकनां गितं वामीति ; सा तु तैः
शपधैरतुष्यन्ती यदि राद्विभोजनकारिणां शपधं करोषि, तदा
त्वां प्रतिमुद्धामि, नान्धधित तमुवाच ; स तधित्यभ्युपगत्य देशान्तरं प्रस्थितवान्। एवमन्यश्रपथाननादत्य लच्चणो वनमालया
राव्विभोजनश्रपथं कारितः। विशेषचरितं तु सत्यगौरवभयानेहः
लिख्यते ॥ ६८॥

शास्त्रं निदर्शनं च विना सकलजनानुभविसदं राविभोजन-विरती: फलमाच-

करोति विरति धन्यो यः सदा निणि भोजनात्। सोऽईं पुरुषायुषस्य स्यादवश्यमुपोषितः॥ ६८॥ यः कियदमिधनो हि रात्रिभोजनस्य विरितं करोति, सोऽहें पुरुषायुषस्योपोषितः स्यात्। उपवासस्य चैकस्यापि निर्जरा-कारणत्वासाहाफलत्वं पञ्चाशद्वषसिमातानां तूपवासानां कियरफलं सम्भाव्यते ; इदं च शतवर्षायुषः पुरुषानिधकत्योक्तम्। पूर्वकोटी-जीविनसु प्रति तदर्षसुपवासानां न्यायसिष्ठभेव ॥ ६८ ॥

तदेवं रातिभोजनस्य भूयांसो दोषास्तत्परिवर्जने तु ये गुणास्तान् वक्तुमस्माकमशिकतित्याच —

रजनीभोजनत्यागे ये गुणाः परितोऽपि तान्। न सर्वेत्ताहते कश्चिदपरो वक्तुमीखरः॥ ७०॥ षष्टम्॥ ७०॥

हष्टाः निवलिभिः सूच्यास्तस्यात्तानि विवर्जयेत्॥०१॥
इह हीयं स्थिति:—निविद्वावाः हेतुगम्याः, निवित्वागमगम्यास्तत्र
ये यथा हेलादिगम्यास्ते तथैव प्रवचनधरैः प्रतिपादनीयाः।
श्रागमगम्येषु हेतून्, हेतुगम्येषु खागममात्रं प्रतिपादयद्वाज्ञाः
विराधकः स्थात्।

यदाह ---

'को हेउवायपक्षिमा प्रेरधी प्रागमे य प्रागमित्री।

⁽¹⁾ यो हेत्रवाइपक्षे हेत्रक आगमे चागनिकः।

'सी ससमयपत्रवची सिहंतिवराष्ट्रची चन्नी ॥ १ ॥
इत्यामगीरससंप्रत्नाहदलादी न हेतुगम्यो जीवसङ्गावः, किन्लागमगम्य एव । तथा हि । चामगीरससंप्रते हिदले चादिमन्दात्पुष्पितीदने, चष्ट हितयातीते दिन्न, कुधिताने च, ये जन्तवस्ते
केवलज्ञानिभिर्दृष्टा इति जन्तुमित्रामगीरसमित्रहिदलादिभोजनं
वर्जयेत्। तङ्गोजनाहि प्राणातिपातलच्चणी दोषः । न च केवलिनां
निर्दोषलेनामानां वचनानि विपरियन्ति ॥ ७१ ॥

भिष च । न मदादीनि कुथितात्रपर्यवसानान्येवाभोच्यानि, किस्खन्यान्यपि जीवसंसित्तवहुलान्यागमादुपलभ्य वर्जनीयानी- त्याह-

जनुमिश्रं फलं पुष्पं पत्रं चान्यदिपि त्यजीत्। सन्धानमपि संसत्तं जिनधर्मपरायणः॥ ७२॥

जन्तुभिर्मित्रं फर्लं मधूकिबिक्वादेः, पुष्पमरिषिधमुमधूकादेः, पर्वं प्रावृषि तग्डुकीयकादेः, प्रन्यदिप मूलादि त्यजेत्। सन्धान-साम्ब्रफलादीनां यदि संसक्तं भवेत्, तदा जिनधर्मपरायणः क्षपानुत्वाच्यजेदिति संबन्धः। इदं च भीजनती भीगोपभीगयो-व्रितमुक्तम्; भीगोपभीगकारणं धनीपार्जनमिष भीगोपभीग उच्यते। उपचारात्। तत्परिमाणमिष भीगोपभीगव्रतम्। यथा त्रावकस्य खरकमेपरिद्वारेण कर्मान्तरेण जीविका। एतच

⁽१) स स्वसम्बद्धापकः सिद्धान्तविराधक्रीत्रम्यः ॥ १ ॥

सङ्घेपार्थमितिचारप्रकारण एव वच्चते। भवसितं भोगीपभीग-व्रतम्॥ ७२॥

भयानर्घट्ण्डस्य स्तीयगुणव्रतस्यावसरः तचतुर्देति स्नोक-दयेनाह-

यात्तं रौद्रमपध्यानं पापवामीपदेशिता।
हिंसीपकारिदानं च प्रमादाचरणं तथा॥ ७३॥
शरीरादार्थदराइस्य प्रतिपचतया स्थितः।
योऽनर्थदराइस्तच्यागस्तृतीयं तु गुणवतम्॥ ७४॥
भवक्षष्टं ध्यानमपध्यानं, तदनर्थदण्डस्य प्रथमो भेदः। तच्च
हेधा—श्रात्तं रौद्रं च ; तच ऋतं दुःखं तव भवमात्तं ; यदि
वा प्रत्तिः पौडा यातनं च, तच भवमात्त्रम्। तचतुर्वा—
प्रमनोज्ञानां शब्दादीनां संप्रयोगे तद्दिपयोगचिन्तनमसंप्रयोगप्रार्थना च प्रथमम्। शूलादिरोगसभवे च तदियोगप्रणिधानं तदसंप्रयोगचिन्ता च हितीयम्। इष्टानां च शब्दादीनां विषयाणां

यदाद्य:---

'त्रमणुखाणं सद्दाद्रविसयवत्यूण दोसमद्रलस्म । धणित्रं विद्योचित्रंतणससंपद्योगाणुसरणं च ॥ १ ॥

सातवेदनायाचावियोगाध्यवसानं, संप्रयोगाभिलावच हतीयम्।

देवेन्द्रचक्रवर्स्यादिविभवपार्थनारूपं निदानं चतुर्थम् ।

⁽१) समनोत्तानां ग्रद्धादिविषयवस्तूनां हेषमसिनस्य । स्रात्रचें वियोगियन्तनससंप्रयोगासुसर्यं च ॥ १ ॥

'तह स्तसीसरोगाइवेयणाए विभोभपणिष्ठाणं।
तदसंपभोगचिंता तप्पडियाराठलमणस्म ॥ २ ॥
'इष्ठाणं विस्याईण वेयणाए भ रागरत्तस्म ।
स्रविभोगन्भवसाणं तष्ठ संजोगाभिलासी भ ॥ ३ ॥
'देविंदचक्कविष्टत्तणाइगुणरिहिपत्यणामद्यं।
स्रमं नियाणचिंतणमस्माणाणुगयमचंतं ॥ ४ ॥
'ययं चठिव्यहं रागदोसमीहं कियस्म जीवस्म ।
स्रहन्भाणं संसारवह्यं तिरियगद्दमूलं ॥ ५ ॥
रोदयत्यपरानिति कद्रो दुःखहेतुस्तेन क्रतं तस्य वा कर्म
रोद्रम्। तच्चतुर्की—हंसानुबन्धि स्रषानुबन्धि स्तेयानुबन्धि धन-संरच्यानुबन्धि च ।

यदादु: --

^५ सत्तव इवे इबंधणद इणंकणमारणा इपणि इग्णं। सहको इग्रह घर्टा निग्वणमणसो इमिववागं॥१॥

- (१) तथा मूखियारोरोगादिवेदनायाः वियोगपिषधानम् । तद्धंप्रयोगिषिना तत्प्रतीकाराक्ष्रसमनसः ॥ २॥
- (२) इ. हानां विषयादी भां वेदनायाच रागरऋख। चावियोगाध्यवसानं तथा संयोगाभिनाषच ॥ ३॥
- (३) देवेन्द्रचक्रवर्त्तित्वादिगुचर्बिम।र्घनामयम् ।
 च्यमं निदानचिन्तनमञ्जानात्तुगतमत्वानम् ॥ ॥ ॥
- (8) एतत् चतुर्विधं रागद्वेषमो इनिङ्गतस्य जीवस्य । स्रातिध्यानं संसारवर्षनं तिस्थिमातिमृतस्य ॥ ५ ॥
- (५) · सन्त्र अवेधवन्त्र नद्शनाङ्गनमः। रखादिप्रविधानम् । खतिकोधयञ्च्यसं निर्धेषमनसोऽधमविषात्रम् ॥ १ ॥

'पिसुणास्यभास्यभ्यभ्यघायाद्ययणपणिद्याणं ।

मायाविणो भद्रसंधणपरस्य पच्छत्रपावस्य ॥ २ ॥

'तह तिब्बको इलोहाउलस्य भूभोवघायणमण्डां ।

परदब्बहरणचित्तं परलोगावायनिर्वक्षं ॥ ३ ॥

'महाद्रविसयसाहणधणसंरक्षणपरायणमणिहं ।

सब्बाभिसंकणपरोवघायकलुसाउलं चित्तं ॥ ४ ॥

'एयं चडब्बहं रागदोसमोहं कियस्य जीवस्य ।

रोह्ञ्काणं संसारवहणं निरयगद्दमूलं ॥ ५ ॥

एवमार्त्तरीद्रध्यानास्तकमपध्यानसनर्धदण्डस्य प्रथमो भेदः। पाप-कर्मीपदेशिता वस्त्रमाणा हितीयः। हिंसीपकारिणां श्रस्तादीनां दानमिति खतीयः। प्रमादानां गीतन्तत्तादीनामाचरणं चतुर्धः। श्ररीरादिनिमित्तं यः प्राणिनां दण्डः सोऽर्धाय प्रयोजनाय दण्डोऽर्थदण्डस्तस्य श्ररीराद्यर्थदण्डस्य यः प्रतिपचक्रपोऽनर्थदण्डो निष्प्रयोजनो दण्ड इति यावत्; तस्य त्यागोऽनर्थदण्डविरति-स्तृतीयं गुणव्रतम्।

⁽२) विशुनासभ्यासतङ्क्ष्मूतवाताद्दिवचनप्रविधानस्। सावादिनोऽतिसञ्जानपरस्य प्रव्यज्ञवापस्य ॥ २ ॥

^() तथा तीवकोधकोभाक्तसस्य भूतोपवातनमनार्यम्। परद्रव्यक्रसावक्तं परकोकाषायनिर्षेकस्॥ ॥ ॥

⁽३) शब्द्धिविषयसाधनधनसंरच्चपरायसमिष्टम्। सर्वाभिगङ्कतपरोपवातकनुषाकुम विसम्॥॥॥

 ⁽⁸⁾ एवं चतुर्विधं रागहेषमो इ। द्वितस्य जीवस्य ।
रौहध्यानं संव। रवर्षं नं नरकगतिमूलस् ॥ ५ ॥

यदाच ---

'जं इंदियसयणाई पडुच पावं करिज्ञ सो होइ। चर्ला दंडी एक्तो ससी उ चगरादंडी उ॥१॥७३॥७४॥ चपध्यानस्य स्रकृषं परिमार्ग चाह-

वैरिघातो नरेन्द्रत्वं पुरघाताग्निदीपने ।
खचरत्वाद्यपध्यानं मुद्धक्तित्यरतस्यजित् ॥ ७५ ॥
वैरिघातपुरघाताग्निदीपनादिविषयं रीद्रध्यानमपध्यानं, नरेन्द्रत्वं
खचरत्वमादिशव्दादपराविद्याधरीपरिभोगादि, तेष्वाक्तिधानरूपमपध्यानं, तस्य तत्परिमाणरूपं व्रतं सुद्धक्तीत्परतस्यजेदिति ॥७५॥
भय पापोपदेशस्रकृपं तिहरतिं चाइ--

ष्ठभान् दमय चित्रं क्षष ष्राष्ट्य वाजिनः।
दाचिष्याविषये पापोपदेशोऽयं न काल्पते॥ ७६॥
ष्ठभान् वस्तरान् प्रसङ्गादिना दमय दान्तान् कुरु; प्रत्यासीदित खतु वर्षाकालः, तथा चित्रं बीजावापभुवं कुष्ठ; ष्ठष्टः खतु
मिघो, यास्यित वापकालो, भता वा केदारा गाद्यन्तां, सार्वदिनत्रयमध्ये उप्यन्तां च त्रीष्टयः; तथा नेदीयोऽष्यः प्रयोजनं राज्ञासिति ष्राष्ट्य विवित्तकान् कुरु, वाजिनोऽष्वान्, उपलच्चणं चेत
दन्धेषां गीमो दवाम्निदानादीनाम्; ष्रयं पापक्ष उपदेशः, त्रावकाणां न कल्पते न युच्यते। सर्त्रेत्र पापोपदेशिनयमं कर्तुमशको-

⁽१) वहिन्द्रियस्त्रजनादीन् प्रतीत्व पापं कुर्यात् स भवति । सर्वे इयकः इतः सम्यस्तु समर्थदयक्तु ॥ १ ॥

भ्योऽपवादोऽयमुच्यते । दाचित्याविषय इति । बन्धुपुत्रादिविषय-दाचित्यवतः पापोपदेशोऽशक्यपरिष्ठारः । दाचित्याभावे तु यथा तथा मौखर्येष पापोपदेशो न कल्पते ॥ ७६ ॥

भव हिंसोपकारीणि तद्दानपरिहारं चाइ —

यन्तलाङ्गलशस्त्राग्निम् शलोद्रखलादिकम् ।
दाचिण्याविषये हिंसं नार्पयेत्करुणापरः ॥ ७०॥
यन्तं यक्तरादि, लाङ्गलं इलं, यस्तं खद्वादि, श्रानिविद्धः, मुगलमयोऽगं, उद्खलमुलूखलं, श्रादिश्रव्दादमुर्भस्त्रादिपरिग्रष्टः ।
हिंसं वल्, करुणापरः श्रावको नार्पयेत् ; दाचिष्याविषय इति
पूर्ववत्॥ ७०॥

भय प्रमादाचरणमनर्घदण्डस्य चतुर्धभेदं तत्परिष्ठारं च स्रोक्षमयेणाष्ट्र—

कृतृहलाद्गीतन्त्रसनाटकादिनिरीचणम्।

कामशास्त्रप्रसित्रश्च द्यूतमद्यादिसेवनम्॥ ७८॥

जलक्रीडाऽऽन्दोलनादिविनोदो जन्त्रयोधनम्।

रिवीः सुतादिना वैरं भक्तस्त्रीदेशराट्कायाः॥ ७८॥

रोगमार्गश्रमी मृक्ता खापश्च सक्लां निशाम्।

एवमादि परिहरित्रमादाचरणं सुधीः॥ ८०॥

कुतृहलाक्तीतुकादेतोर्गीतस्य दक्तस्य नाटकस्य पादिशन्दात्रकरणादिनिरीचणं, तेन तेनिन्द्रयेण यथोचितं विषयीकरणम्।

कुतू इल यहणा ज्जिनयात्रादी, प्रासिक्ष किनी चिन प्रमादा चरणम्। तथा कामगास्त्रे वास्यायनादिकते, प्रसितः पुनः पुनः परिजीननम्; तथा चूतमस्तकादिभिः क्रीडनम्; मद्यं सराः भादिशम्दासृगयादि ; तेषां सेवनं परिशीलनं ; तथा जलक्रीडा तडागजलयन्वादिषु मज्जनोयाज्ञनमृङ्गिकाच्छोटनादिरूपा ; तथा पान्दोलनं व्रचगाखादी दोलाखेलनं; पादिप्रव्हात्प्या-वचयादि ; तथा जन्तूनां कुक्टादीनां योधनं परस्ररेणाभ्या-इननम्; तथा रिपोः प्रत्रोः सम्बन्धिना पुत्रपीतादिना वैरम्; अयमर्थी येन तावलायश्विदायातं वैरं तद्यः परिवर्तुं न शक्तोति तस्यापि पुत्रपौवादिना यद्दैरं तग्रमादाचरणम् ; तथा भक्तकथा, यथा दरं चेदं च मांस्पाकमावमीदकादि साधु भोज्यं, साध्वनेन भुज्यते, पद्मपि वा इदं भोच्ये इत्यादिक्षा; तथा स्त्रीकथा, स्त्रीणां नेपयाङ्गरारावभावादिवर्णनरूपा "कर्णाटी सुरतीपचारचतुरा लाटी विदम्धिपयां' इत्यादिक्पा वा ; तथा देशकथा, यथा दिचणापयः प्रतुरान्नपानः स्त्रीसन्धोग-प्रधान:, पूर्वदेशो विचित्रवस्त्रगुडखण्डगालिमद्यादिप्रधान:, चत्तरापथे शूरा: पुरुषा जविनो वाजिनो गोध्मप्रधानानि धान्यानि सुलभं कुङ्गमं मधुराणि द्राचादा डिमक पित्यादीनि ; पिंसिरेशे सुखसार्गीन च वस्त्राणि सुलभा रचवः गीतं वारीत्वेव मादि; राट्कथा राजकथा, यथा शूरोऽस्मदीयी राजा, सधन-योड:, गजपितगींड:, प्रम्यपितसुरुष्क इत्यादि। एवं प्रतिकूला भाष भक्तादिकथा वाचा; तथा रोगो ज्वर।दिः, मार्गथमी मार्गखेटः, तौ मुक्का सकतां नियां खापो निद्रा। रोगमार्ग-त्रमयोन्त न प्रमादाचरणम्। एवमादिपूर्वोक्तखक्पं प्रमादाचरणं परिष्ठरेत्। सुधीः त्रमणोपासकः। प्रमादाचरितं च—

'मळं विसयकसाया निहा विगष्टा य पश्चमी भिषया।

एए पञ्च पमाया जीवं पाडिन्ति संमारे॥१॥

इति पञ्चविधस्य प्रमादस्य प्रपञ्चः॥ ७८॥ ५०॥

देशविशेषे प्रमादपरिशारमाह —

विलासहासनिष्टूातनिद्राक्तलहरुष्क्रयाः। जिनेन्द्रभवनस्यान्तराष्ट्रारं च चतुर्विधम्॥ ८१॥

जिनेन्द्रभवनस्थान्तरित्यादित श्रारभ्य संबध्यते; तेन जिनेन्द्र-भवनस्य मध्ये विलासं कामवेष्टां, ष्टासं कष्टकष्टधानं ष्टसनं, निष्ठातं निष्ठीवनं. निद्रां स्वापं, कलष्टं राटीं, दुष्कथां चौर-पारदारिकादिकथां, चतुविधं चाष्टारम्—श्रगनपानखाद्यस्वाद्य-स्वरूपं परिष्ठरेत्। परिष्ठरेदिति पूर्वतः सम्बस्धनीयम्। तत्राश्रनं श्रास्थादि मुद्रादि सक्कादि पेथादि मोदकादि चौरादि स्ररणादि मग्डकादि च।

यदाह ---

 ⁽१) भर्द्य विषयकषाया निष्ट्रा विक्रवाच पञ्चमी भिचिता।
 एते पञ्च प्रभाशः जीवं पातयन्ति संसारे ॥ १ ॥

योगगास्त्रे

४०२

'मसणं भोषणसत्तुगमुग्गजगाराद खळगिवद्यी य। खीरादस्रणाई मंडगपभिद्रं भ विखेषं॥ १॥

पानं सीवीरं यवादिधावनं सुरादि सर्वेद्याप्कायः कर्कटकजला-दिकं च।

यदाइ--

ेपाणं सोवीरजवीदगाइ चिक्तं सुराइयं चैव।
श्वातकामी सब्बो कक्कडगजनाइयं च तहा॥१॥
खाद्यं स्टूषान्यं गुलपपेटिकाखर्जूरनालिकेरद्राचाकर्कव्यास्त्रपनसादि।

यदाइ--

भित्तोसं दंताई खळ्यूरं नालिएरदक्खाई।
कक्किंगवगफणसाइ बडुविष्टं खाइमं नियं॥१॥
स्वादं दम्तकाष्टं ताम्बूलतुलसिकापिण्डार्जकमधुपिप्पलीसुग्हीमरिचजीरकडरीतकीबिभीतक्यामलक्यादि।

- (१) खाधनमोहनसङ्ग्रसस्त्रज्ञनार्थाद् खाद्यकविधिय। चीरादि स्तरच।दि मगडकानध्रति च विशेषम् ॥ १॥
- (>) पानं सीवीरववीदकाहि चिलं सुराहिकं चैव। क्षप्कायः सर्वेः कर्षटकजसाहिकं च तथा ॥ १॥
- (३) भक्तीयं इन्यादि खर्जूरं न। खिकेरव्राचादि । कर्कटिकाच्यमसादि बद्धविधं खादिमं भ्रेयस ॥ १ ॥

यदाइ---

'दंतवणं तंबीलं चित्तं तुलसीकुहेडगाईयं।
महपिप्पलिसुंठाई चषेगद्वा साइमं होइ॥१॥८१॥
उज्ञानि त्रीणि गुणवतानि।

भय चलारि शिचाव्रतान्युचम्ते, तवापि सामायिकदेशाव-काशिकपौषधोपवासातिथिसंविभागलच्चेषेषु चतुर्षु शिचाव्रतेषु प्रथमं सामायिकाख्यं शिचाव्रतमाइ—

त्यतार्त्तरीद्रध्यानस्य त्यत्तसावद्यकर्मणः।

मुद्धतें समता या तां विदुः सामायिकव्रतम् ॥ ८२॥ मुद्धतें मुद्धतेकालं, या समता रागदेषदेतुषु मध्यस्थता, तां सामायिकवृतं विदुः ; समस्य रागदेषविनिर्मुतस्य सतः, त्रायो ज्ञानादीनां लाभः प्रशमसुखरूपः, समायः ; समाय एव सामा- यिकम् ; विनयादिलादिकण् । समायः प्रयोजनमस्थेति वा सामायिकम् । तच सामायिकं मनीवाकायचेष्टापरिद्वारं विना न भवतीति त्यत्रात्तरीद्रध्यानस्थेत्युकं, त्यत्तसावद्यकर्मण् इति च ; त्यतं सावद्यं वाचिकं कायिकं च कर्म येन तस्य । सामायिकस्य स्थावकः स्टइस्थोऽपि यतिरिव भवति ।

⁽१) इन्तपायनं ताम्यूसं चित्रं त्वसीत्तं हेडकादिकम्। सञ्चिष्णांसस्स्कृतादिक्रमेकचा स्वादिनं भवति ॥ १ ॥

यदाच---

'सामाद्यंमि उ कए समणी दव सावणी दवद जन्हा।
एएण कारणेणं बहुसी सामाद्रयं कुळ्या ॥१॥
भतएव तस्य देवस्राव्रपूजादी नाधिकारः। नन्वगर्हितं कर्म
कुर्वाषस्य देवस्राव्रादी की दोषः; सामायिकं द्वि सावयव्यापारनिषेधान्नकं, निरवद्यव्यापारिविधानात्मकं च; तत्स्वाध्यायपठनपरिवर्त्तनादिवत् देवपूजादी को दोषः १। नैवम्। यर्तिदव
देवस्राचपूजनादी नाधिकारः। भावस्तवाधं च द्रव्यस्तवोपादानम्; सामायिकं च सित संप्राप्तो भावस्तव दति किं द्रव्यस्तवकरणेन १।

यदाष्ठ--

'दव्यस्य भोय भावस्य भोय दव्यसमा बहुगुणोत्ति नुदि सिया। प्रणि उपज्ञ प्रवयण मिणं कृष्णीविष्यं जिया बिंति॥१॥

इह त्रावकः सामायिककर्ता दिविधो भवति । ऋदिमानतृदि-कसः योऽसावतृदिकः स चतुर्षु स्थानेषु सामायिकं करोति ; जिनग्रहे, साधुसमीपे, पौषधगालायां, स्वग्रहे वा ; यत्र वा वित्राम्यति, निर्ञ्यापारो वा चास्ते तत्र च । तत्र यदा साधुसमीपे

 ⁽१) सामायिक एव कते त्रमण इव त्रावको भवति यणात्।
 एतेन कारणेन वज्ज्यः सामायिकं कुर्यात्॥ १॥

⁽१) द्रव्यक्तत्रच भावक्तत्रच द्रव्यक्तवो वक्तगुष इति वृद्धिः स्थात्। व्यनिष्णकनत्रचनमिहं घहजीवहितं जिना ज्वते॥ १॥

करोति तदायं विधि: ; यदि कस्मासिदिण भयं नास्ति, केनिचिद्विवादो नास्ति, ऋणं वा न धारयित ; मा भूत्तलृता-कर्षणापकर्षणिनिमित्तिस्तिसंक्षेत्रः ; तदा खग्रहेऽणि सामायिकं कत्वा देशें ग्रोधयन्, सावद्यां भाषां परिष्ठरन्, काष्ठलेष्टादिना यदि कार्यं तदा तत्खामिनमनुद्याप्य प्रतिलिख्य प्रमार्च्य च ग्रह्मन्, खेलसिद्वाणकादौँयाविवेचयन् विवेचयंस खाण्डिलं प्रत्यवेष्य प्रमुक्तय च ; एवं पश्चसमितिसमितस्त्रिगुतिगुतः साध्वा- व्ययं गत्वा साधूनमस्त्रत्य सामायिकं करोति यथा—

करीम भंते सामाइयं सावकां जोगं पचक्वामि जाव साझ पक्जुवासामि दुविष्ठं तिविष्ठेणं मणेणं वायाए काएणं न करीम न कारवेमि तसा भंते पिडकमामि निदामि गरिष्ठामि प्रणाणं वोसिरामि ॥

सामायिकस्त्रस्थायमर्थः — करीम अभ्युपगच्छामि; भंते इति गुरोरामन्त्रणम्, हे भदन्तः! भन्दते सुख्वान् कस्थाणवांस्य भवितः; भदुङ् सुख्वस्थाणयोः, अस्य भौणादिकान्तप्रत्ययान्तस्य निपातनात् रूपम्। आमन्त्रणं च प्रत्यच्य गुरोस्तदभावे परोचस्थापि बुद्धाा प्रत्यचीकतस्य भवितः; यथा जिनानामभावे जिनप्रतिमाया आरोपितजिनत्वायाः सृतिपूजासम्बोधनादिकं भवित, गुरोसाभिमुखीकरणं तदायक्तः सर्वो धर्म इति प्रदर्शनार्थम्।

यटाइ -

¹नाषस्य होइ भागी थिरयरको टंसचे चरिक्ते य। धवा भावकदाए गुरुकुलवासं न मुंचंति ॥ १॥ पायवा भवान्तहितुलाइवान्तः, भन्ते इत्यार्षलात् मध्यव्यन्त्रनलोपे क्यं भन्ते दति "चत एसौ पुंसि मागध्याम्" ॥ ८ । ४ । २८० ॥ द्रत्येकारीऽर्द्वमागधलादार्षस्य सामायिकमुक्तनिर्वचनम्। पापं, सञ्चावदीन सावदाः, युन्यते इति योगो व्यापारस्तं प्रत्यास्यामि ; प्रतीति प्रतिषेधे पाङाऽऽभिमुख्ये, स्थांक प्रकथने, ततस प्रतीपमभिसुखं स्थापकं सावदायोगस्य करोमीत्यर्थः। पद्यवा पद्मक्खामीति प्रत्याचचे, चित्रक् व्यक्तायां वाचीत्यस्य प्रत्याङ्पूर्वस्य रूपम् ; प्रतिषेधस्यादरेगाभिधानं करोमीत्यर्थः। जाव साह पळावासामि ; यावच्छन्दः परिमाणमर्यादाऽवधारण-वचनस्तत्र परिमापे यावसाध्ययुपासनं मम तावज्रत्यास्यामीति; मर्यादायां साध्रपर्युपासनादर्वाक्, भवधारणे यावलाध्रपर्युपासनं तावदेव न तस्मात्परत इत्यर्थः । दुविष्ठं तिविष्ठेणं ; हे विधे यस्य स दिविध: सावद्यो योग: स च प्रत्याख्येयत्वेन कर्म सम्पदाते ; चतस्तं दिविधं योगं करचकारचलचणमनुमितपिविधस्य ग्टइस्थः कार्मगकालात् प्रवस्त्यादिकतस्य व्यापारस्य स्वयमकरणेऽप्यनु-मोदनात् विविधेनेति करणे खतीया। मणेषं वायाए काएणं इति, विविधस्यैव सुबोपात्तं विवरणं, मनसा वाचा कायेन

⁽३) च्यानस्य भवति भागी स्थिरतरको दर्गने परिलेख। भन्या वावत्कवावां गुरुक्तववासंन सञ्चित्ति ॥ १ ॥

चेति, तिविधेन करणेन न करोमि न कारयामीति स्त्रीपात्तमेवं दिविधमित्यस्य विवरणम्। किं पुनः कारणमुद्देशक्रममितिलङ्गा व्यत्यासेन निर्देशः कतः। उच्यते। योगस्य करणाधीनतोपदर्श-नार्थम्। करणाधीनता हि योगानाम्, करणभावे भावात्तदभावे चाभावाद्योगस्य। तस्रोति, तस्य त्रत्राधिकतो योगः संबध्यते; त्रवयवावयविभावनचणसम्बन्धे षष्ठी; योऽयं योगस्त्रिकालविषय-स्तस्यातोतमवयवं प्रतिक्रामामि निवत्तं प्रतीपं क्रामामीत्यर्थः; निन्दामि जुगुपे गर्हामि स एवार्थः, केवलमात्मसाचिकौ निन्दा, गुक्साचिकौ गर्हा। भन्ते इति पुनर्गुरोरामन्त्रणं भत्त्यतिशय-ख्यापनार्थं न पुनर्त्तम्; त्रथवा सामायिकक्रियापत्यर्पणाय पुनर्गुरोः सम्बोधनम्। त्रनेन चैतत् न्नापितं भवति, सर्विक्रया-ऽवसाने गुरोः प्रत्यर्पणं कार्यमिति।

उतं च भाषकारेण--

'सामाइयपचपणवयणोवायं भयंतसहोत्ति।
सव्विकिरियावसाणे भिष्यियं पचपणमणेण ॥ १ ॥
प्रपाणिमिति; त्रात्मानमतीतकालसावद्ययोगकारिणम्; वासिरामीति, व्युत्स्रजामि; विग्रव्दो विविधार्थी विग्रेषार्थी वा;
उच्छन्दो स्रगार्थः। विविधं विग्रेषेण वा स्रगं स्रजामि
त्यजामोत्यर्थः। प्रव च करीम भंते सामाइयमिति वर्त्तमानस्र

⁽१) सामायिकप्रत्येषवचनोपायो भइन्तग्रद् इति । सर्विकयाऽवसाने भषितं प्रत्यर्थणसनेन ॥ १ ॥

सावद्ययोगस्य प्रत्याख्यानम्। सावक्रं जोगं पचक्खामीत्यना-गतस्य ; तस्य भंते पडिक्रमामीत्यतीतस्येति चैकालिकं प्रत्या-स्थानसृक्षमिति त्रयाणां वाक्यानां न पीनकत्त्वम्।

उत्तच---

भर्यं निंदामि पडुपम्नं संवरेमि भणागयं पचकवामीति। एवं क्रतसामायिक ईर्यापथिकायाः प्रतिकामति पद्मादागमन-मालीच यथाच्येष्ठमाचार्यादीन वन्दते, पुनरपि गुरुं वन्दिला प्रत्यपेच्य निविष्ट: ; शृणोति, पठति, पृच्छिति वा। एवं चैत्यभवने-ऽपि द्रष्टव्यम्। यदा तु स्वग्टहे, पोषधगालायां वा सामायिकं ग्रहीला तत्रैवास्ते तदागमनं नास्ति ; यसु राजादिमेहिंदिक: स-गर्यासञ्चरस्त्रस्वाधिक्दञ्ख्वचामरादिराजासङ्करवासङ्गतो हास्ति-काम्बीयपाटातिरथकव्यापरिकरितो भेरीभाष्ट्रारभरिताब्बरतलो बन्दिहन्दकोनाइनाकुनीक्षतनभस्तनोऽनेकसामन्तमग्डनेश्वराहम-इमिकासंप्रेच्यमाणपादकमलः पौरजनैः सयदमङ्ख्यापदर्श्वमानी मनोर्येद्वस्त्रयमानस्तेषाभेवाञ्चलिययान् लाजाञ्चलिपातान् श्रिर:प्रणामाननुमीदमान: श्रही धन्यी धर्मी य एवविधै-रप्यपेचेव्य इति प्राक्ततज्ञनैरिप श्लाष्यमानीऽकतसामायिक एव जिनासयं साध्वसितं वा गच्छति, तत्र गती राजककुदानि क्षत्रचामरीपानद्मुकुटखन्नरूपाणि परिचरति ; जिनार्चनं साधु-वन्दनं वा करोति, यदि लसी क्षतसामायिक एव गच्छेत् तदा गजाम्बादिभिरधिकरणं स्थात् ; तचन युज्यते कर्तुम् । तथा कत-सामायिकेन पादाभ्यामेव गन्तव्यम्, तचानुचितं भूपतीनामिति ।

भागतस्य च यदासी यावको भवति तदा न कोऽप्यभ्युत्यानादि करोति। भ्रष्य यथा भद्रकस्तदा पूजा क्षता भवत्विति पूर्वभैवासनं रच्यते। श्राचार्याच पूर्वभैवोत्यिता श्रामते मा उत्यानानुत्यान-कता दोषा भूविविति, भागतसासी सामायिकं करोतीत्यादि पूर्ववत्॥ ८२ ॥

सामायिकस्य महानिर्जरो भवतीति दृष्टान्तदारेणाह— सामायिकत्रतस्थस्य ग्रहिणोऽपि स्थिरात्मनः। चन्द्रावतंसकस्येव चीयते कर्म सञ्चितम्॥ ८३॥ ग्रहस्थस्थापि कतसामायिकस्य कर्मनिर्जरा भवतीति चन्द्रा-वतंसक उदाहरणम्।

तच सम्प्रदायगग्यम्। स चायम्--

प्रस्ति सानेतनगरं श्रीसङ्कितिननेतनम् ।

इसितेन्द्रपुरश्रीकं सिताई चैत्यनेतनैः ॥ १ ॥

तत्र स्नांकदृगनन्दो दितीय इव चन्द्रमाः ।

चन्द्रावतंसो राजाऽसीदवतंस इवावनैः ॥ २ ॥

स यथा धारयामास गस्त्राणि नागहेतवे ।

तीच्णानि शिचावशतो व्रतान्यपि तथा सुधीः ॥ ३ ॥

माघमासे विभावयां सोऽन्यदा वासवेश्मनि ।

प्रादीपञ्चलनं खास्यामीति सामायिके स्थितः ॥ ४ ॥

तच्छ्यापालिका ध्वान्तं खामिनो मा स्म भूदिति ।

याते प्राग्यामिनीयामे प्रदीपे तैसमिच्चपत् ॥ ५ ॥

गते यामे हितीयसिक्षिषि सा भक्तमानिनी।
जायती दीपके चीणतेले तेलं न्यधात्पुनः ॥ ६ ॥
वियामायास्त्रृतीयसिक्षपि यामे व्यतीयुषि।
मिक्कायां प्रदीपस्य तेलं चिचेप सा पुनः॥ ० ॥
विभातायां विभावर्यामवसानमयासदत्।
स्वमोत्पन्नव्यथाक्कान्ती राजा स इव दीपकः॥ ८ ॥

मामायिकं समिधगम्य निष्ठत्य कर्मे चन्द्रावतंसन्तृपतिस्त्रिदिवं ततोऽगात्। सामायिकव्रतज्ञाषो ग्रिष्टिणोऽपि सद्यः चौयेत कर्म निचितं सुगतिर्भवेश ॥ ८॥॥ इति चन्द्रावतंसराजर्षिकथानकम्॥ ८३॥

दितीयं शिचावतमाइ--

दिग्वते परिमाणं यत्तस्य संचिपणं पुनः । दिने रात्री च देशावकाशिकव्रतमुच्यते ॥ ८४॥

दिग्वते प्रथमगुणवते यद्दशस्ति दिस्तु गमनपरिमाणं तस्य दिवा रात्री चोपलचणत्वात्प्रदरादी च यत् सङ्घेपणं तद्देशावका-शिकवतम्। देशे दिग्वतग्रहीतपरिमाणस्य विभागे घवकाशो-ऽवस्थानं देशावकायः सोऽत्रास्तीति देशावकाशिकं "घतोऽनेक-स्त्ररात्"॥ ७। २। ६॥ इतीकः। दिग्वतसंचेपकरणमणुवतादि-संचेपकरणस्थाप्युपलचणं द्रष्टव्यम्। एवामपि संचेपस्थावश्यं कर्त्तेव्यत्वात्। प्रतिव्रतं च संचिपकरणस्य विभिन्नव्रतत्वे द्वादश व्रतानीति संस्थाविरोधः स्थात्॥ ८४॥

भय द्यतीयं शिचावतमाइ —

चतुष्यर्थां चतुर्थादिकुव्यापारनिषेधनम् । ब्रह्मचर्यक्रियास्नानादित्यागः पोषधव्रतम् ॥८५॥

चतुष्यवी श्रष्टमी चतुर्दशी-पूर्णिमा-श्रमावास्यालचणा, पर्वाणां समाद्वारयत्वावीं। पर्वग्रन्दोऽकारान्तोऽप्यस्ति: चतुर्यादिकं तपः, कुव्यापारस्य सावद्यव्यापारस्य निषेधः, ब्रह्मचर्थ-क्रिया ब्रह्मचर्यस्य करणं, सानादेः यरीरसत्कारस्य त्यागः। पादि-ग्रन्दादुइत्तनवर्णकविलेपनपुष्पगन्धविशिष्टवस्त्राभरणादिपरिग्रहः। पोषं पुष्टिं प्रक्रमाडमाँस्य धत्ते पोषधः स एव व्रतं पोषधव्रतम्। सर्वतः पोषध इत्यर्थः । दिविधं हि पोषधव्रतं देशतः सर्वतम । तत्राहारपोषधो देशतो विविच्चितविक्षतिरविक्षतेराचामान्त्रस्य वा सकदेव दिरेव वा भोजनिमिति। सर्वेतस् चतुर्विधस्याप्याद्यार-स्याहोरात्रं यावत्रत्याख्यानम् ; कुव्यापारनिषेधपोषधत् देशत एकतरस्य कस्यापि कुव्यापारस्याकरणं, सर्वतसु सर्वेषामपि क्षिविवावाणिच्यपाग्रपास्यग्रहकर्मादीनामकरणं. ब्रह्मचर्यपोषधी-ऽपि देशतो दिवैव रात्रावेव वा, सकदेव दिरेव वा स्त्रीसेवां मुक्का ब्रह्मचर्यकरणम्; सर्वतस्तु श्रहोरातं यावत् ब्रह्मचर्य-पालनम्। देशतः स्नानादेः शरीरसलारस्येकतरस्याकरणं सर्वतस्त सर्वस्थापि तस्थाकरणम्; इष्ट च देशतः कुव्यापारनिषेधपोषधं

यदा करोति तदा सामायिकं करोति वा नवा; यदा तु सर्वतः कारोति तदा सामायिकं नियमालारोति, अकरपे तु तरफलेन वश्वाते । सर्वतः पोषधव्रतं च चैत्यग्रहे वा, साधुमूले वा, ग्रहे वा, पोषध्यालायां वा त्यक्तमणिसवर्णादालकारी व्यपगतमालाविले पनवर्षेकः परिच्नतप्रचरणः प्रतिपद्यते। तच च क्रते पठति च पुस्तवं वाचयति धर्मध्यानं ध्यायति, यथैतान् साधुगुणानदं मन्द-भाग्यो न समर्थी धारियतुमिति। इइ च यदााहारग्ररीरसलार-ब्रच्चचर्यपोषधवत कुष्यापारपोषधव्रतमप्यन्यवानाभोगेनित्याद्या-कारी चार चपूर्वमं प्रतिपद्मते तदा सामाधिकमपि सार्थकं स्थात्। ख्नलात्पोषधप्रखाख्यानस्य स्वालाच सामायिकस्येति। तथा पोषधवताऽपि सावदाव्यापारा न कार्या एव ततः सामायिकमकुर्वः-स्तजाभाद्भस्यतीति। यदि पुनः सामाचारीविशेषात् सामायिक-मिव दिविधं विविधेनेत्येवं पोषधं प्रतिपद्यते तदा सामायि-कार्षस्य पोषधेनैव गतलाच सामायिकमत्यन्तं फलवत्। यदि परं पोषधसामायिक सचणं व्रतह्यं प्रतिपद्मं मयेत्यभिप्रायात फलवदिति ॥ ८५॥

ददानीं पोषधवतकर्तृन् प्रशंसति —

ग्रहिगोऽपि हि धन्यास्ते पुग्धं ये पोषधव्रतम् । दुष्पालं पालयन्त्येव यथा स चुलनीपिता ॥ ८६ ॥

यतयस्तावद् धन्या एव रटिंखोऽपि रटहस्या श्रपि ते धन्याः धर्मधनं

लन्धार: ये नि:सत्त्वजनदुष्पालं पुष्धं पवित्रं पोषधव्रतं पालयन्ति, यथा स चुलनीपितिति दृष्टान्तः ; स च सम्प्रदायगम्यः।

स चायम्---

श्रस्ति वाराणसी नामानुगङ्गं नगरी वरा। विचित्ररचनारम्या तिलकश्रीरिवावने: ॥ १ ॥ सुत्रामेवामरावत्यामविसुवितविक्रमः। जितग्रत्रभूत्रव धरित्रीधवपुङ्गवः ॥ २ ॥ त्रासीहरूपतिस्तस्यां महेभ्यय्ननीपिता । प्राप्ती मनुष्यधर्मेव मनुष्यतं क्रतीऽपि हि ॥ ३ ॥ जगदानन्दिनसास्यात्रक्षा क्प्यालिनी। श्यामा नामाभवद्वार्या श्यामेव तु हिनय्तै: ॥ ४ ॥ म्रष्टी निधानेऽष्टी बदावष्टी च व्यवदारगाः। इति तस्याभवन् इन्त्रचतुर्विंगतिकाटयः॥ ५॥ एकैकशो गोसइसैंदेशभि: प्रमितानि तु । तस्यासन् गोकुलान्यष्टौ कुलवेदसानि सम्पदाम् ॥ ६ ॥ तस्यां पुर्यामयान्येय् इयाने कोष्ठकाभिधे। भगवान् समवस्रतो विश्वरंखरमो जिनः॥ ७॥ ततो भगवतः पादवन्दनाय सरासराः। चेन्द्राः समाययुस्तत जितगतुष भूपतिः ॥ ८ ॥ पद्गां चचाल चुलनीपिताऽप्युचितभूषणः। वन्दितं नन्दितमनाः सीवीरं विजगत्पतिम् ॥ ८ ॥ €X

भगवन्तं ततो नलोपविश्य चुलनीपिता। गुत्राव परया भक्त्या प्राञ्जलिर्धर्मदेशनाम् ॥ १०॥ षयोत्यितायां सदसि प्रचम्य चरणी प्रभी:। दित विजयवासास विमीतसुसनीपितां ॥ ११ ॥ स्तामित्रसाद्यां बोधईतोविष्टरसे महीम्। अगहोधं विना नान्यो चार्यसङ्क्रमणे रवे:॥ १२॥ सर्वीऽपि याच्यते गला स दत्ते यदि वा नवा। चागल याचितो धर्मे दली हेतुः कपाव्य ते॥ १३॥ जानामि यतिधमें चेत् रुद्धामि खामिनोऽन्तिके। योग्यता परमियती मन्द्रभाग्यस्य नास्ति मे ॥ १४ ॥ याचे त्रावकधर्मे तु खामिन् ! देहि प्रसीद मे । चादत्ते अवावप्यद्शो भरणं निजमेव हि ॥ १५ ॥ यथासखं ग्रहाचेति खामिनाऽनुमतस्ततः। स प्रत्यास्थात्स्यूनिसंसां सवावादं च चीरिकाम्॥१६॥ प्रत्याख्यच स्वभागीयाः खामाया प्रपरस्त्रियम्। प्रष्टाष्ट्रकोव्यभ्यधिकं खणें निध्यादिषु विषु ॥ १०॥ व्रजिभ्योद्यानघाष्टभ्यः प्रत्याचस्यौ व्रजानपि । इलपच्यतीतोऽन्यां कवियोग्यां महीमपि ॥ १८॥ चन: शतेभ्यः पचभ्यो दिग्यायिभ्योऽपरं लनः । संवष्टदास पञ्चभ्यः प्रत्याचल्यी महामितः ॥ १८ ॥ दिगयात्रिकाणि चलारि चलारि प्रवहन्ति च। वाडनानि विना सी ध्य प्रत्याख्यदितराणि त ॥ २०॥ षन्यत्र गन्धकाषाय्याः प्रत्यास्थदक्कपुंसनम् । चाद्रीया मधुकयष्टेरितरहम्सधावनम् ॥ २१ ॥ यन्यतः चीरामलकात्रत्याच्यी फलान्यपि। सइस्रयतपाकाभ्यां तैलाभ्यां स्वचणान्तरम् ॥ २२ ॥ गथाचादन्यतः प्रवाचस्यावुहर्त्तनान्यपि । षष्टाभ्य भौष्टिनेभ्योऽभः कुर्यभयोऽधिकसळानम् ॥ २१ ॥ वस्तं प्रत्यास्यदन्यच कार्पासादस्त्रयुग्मकात्। विलेपनानि चान्यत कुङ्मागुरुचन्दनात् ॥ २४ ॥ पुष्पं प्रत्याख्यदन्यच पद्माळातिस्रजोऽपि 🔻 । कर्षिकानामसुद्राभ्यामन्यानि भूवणानि च ॥ २५ ॥ सुमोच भूपमगरतुरुष्काभ्यामघापरम्। श्रन्यास काष्ठपेयायाः पेया श्रपि समन्ततः ॥ २६ ॥ खख्डखादाद् पृतपूराचेतरत् खाद्यमत्यजत्। भोदनान्यपि नि:श्रेषाख्यन्यतः कलमीदनात्॥ २०॥ कलायमुद्रमाषेभ्य इतरं सूपमत्यजत्। गरकालभवासावें गोष्टतादपरं घृतम्॥ २८॥ याकं पराङ्गमण्डूकीयाकाभ्यामन्यमत्यज्ञत्। विना स्नेष्टान्सदास्यम्ते तीमनान्यपि सर्वतः ॥ २८ ॥ श्रमारिचीदकादन्यदुदकं पर्यवर्ज्जयत्। मुखवासं च ताम्बूलात्पञ्चसीगन्धिकाहते॥ ३० ॥ श्रवश्वानं हिस्तदानं प्रमादाचरितं तथा। पापक्रमीपदेशं नानर्धदण्डानवर्जयत्॥ ३१॥

एवं त्रावकधर्मं स सम्यक् सम्यक्कपूर्वकम्। सर्वातिचाररिंहतं प्रपेदे पुरतः प्रभोः ॥ ३२ ॥ भगवन्तं ततो नला गला च निजवेश्मनि। प्रतिपदं तथा धर्म स्वभार्याय न्यवेदयत् ॥ ३३ ॥ तेनाथ साऽप्यनुद्वाता रथमावञ्च तत्त्वणम्। चपित्य भगवत्पार्खे ग्टिइधर्ममिशित्रियत् ॥ ३४ ॥ तदा च गौतमो नला पप्रच्छेति जगत्पतिम्। महाव्रतधर: विं स्थाव वाऽयं चुलनीपिता ?॥ ३५ B श्रयोचे स्वामिना नैष यतिभर्मे प्रपत्स्यते। ग्टिइधर्मरतः किंतु ग्रत्वा सीधर्ममेष्यति ॥ ३६ ॥ षक्णाभे विमाने च चतुष्यस्योपमस्थिति:। ततसुरता विदेशेषूत्पदा निर्वाचिमेष्यति ॥ ३०॥ (युम्मम्) ग्रहभारं च्येष्ठपुत्रे न्यस्याय चुलनीपिता । तस्थी पोषधग्रालायां पालयन् पोषधव्रतम् ॥ ३८ ॥ तस्याच पीवधस्यस्य मायामिष्यालवान् सुरः। निशीधे वासिदागच्छत्पाम्बं व्रतिचांसया ॥ ३८ ॥ घोराकारः पुरोभूय खन्नमाळच भीषणम्। स इत्यूचे तमत्युचैयुलनी पितरं सुर: ॥ ४० ॥ भग्नार्थितप्रार्थेक रे । श्रमणीपासकव्रतम् । खया किमिदमारसं मदादेशेन सुचाताम्॥ ४१ ॥ मुच्चमीदं न चेत्तिऽये च्येष्ठपुत्रमष्टं तव। क्षाण्डमिव खद्रेन खण्डयिषामि खण्डमः॥ ४२ ॥

भवतः प्रेचमाणस्य पुरस्तत्पिश्रितान्य इम्। विद्वा कटाई पद्मामि शुलैभेच्यामि तत्त्रणात्॥ ४३॥ भाचमिषामि तमांसगीचितानि तथाऽधुना। प्रेचमाणो यथा डिलं स्वयमेव विपत्स्यमे ॥ ४४ ॥ देवस्व विद्वति तत्रवे चुलनीपिता। न चकम्पे केसरीव गर्जत्युर्जितमम्ब्दे ॥ ४५ ॥ श्रचीमं प्रेचमाणस् चुलनीपितरं सुरः। विभीषयित्कामस्तं तयैवोचे पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ एवं विभाषमाणस्य सुरस्य चुलनीपिता। न सम्युखमपि प्रेचा चन्ने शुन इव दिप: ॥ ४७ ॥ स विक्रत्य पुरो ज्येष्ठतनयं चुलनीपितु:। निस्तिं येन दृशंसाता पश्वद व्यशसत्ततः ॥ ४८ ॥ किला चिम्रा कटाशासस्त्रसांसानि पपाच च। बभ्रक च शितै: शुलैराचचाम च सीऽमर: ॥ ४८ ॥ मधिसेहे च तस्तवं तत्त्वज्ञ: चुलनीपिता। त्रन्यत्वभावनाभाजां स्वाङ्गच्छेदोऽपि नार्त्तये॥ ५०॥ श्रयोचे स सुरो रे रे! व्रतमद्यापि नोज्मसि। तद च्येष्ठमिव ते पुत्रं इति मध्यममप्यइम् ॥ ५१॥ ततीऽहमध्यमं पुत्रं तथैवोचे पुनः पुनः। निरीच्याचुभितंतं च कानिष्ठं चावधीत्मृतम् ॥ ५२ ॥ तताप्यानोक्य निष्मम्यं तं मुद्दः स सुरीऽव्रवीत्। नाद्याप्युडभसि पाखण्डं मातरं ते विश्वनिम तत्॥ ५३॥ भद्रां नामाय चुलनीपितुर्मातरमातुराम्। विकरोति स्म कदतीं कक्षं कुररीमिव॥ ५४॥ स सुर: पुनरप्यूचे सुच्यतां प्रकृतं त्वया । स्तकुटुम्बप्रचाशाय कत्यातुष्यमिदं वतम् ॥ ५५ ॥ भन्यया कुलमेढिं ते मातरं इरिणीमिव। इला भक्षामि पच्चामि भन्निययामि च चणात्॥ ५६॥ त्ततीऽप्यभीतं चुलनीपितरं वीच्य मीऽमरः। भद्रामाराटयत्तारं स्नान्यस्तामनामिव ॥ ५०॥ यया भार द्वोठस्वमुदरेषोदरंभरिः। मातरं इन्यमानां तां पछोत्यू वे पुनः सुरः॥ ५८॥ ष्रवैवं चिन्तयामास चेतसा चुलनीपिता। प्रही दुराला कोऽप्येष परमाधार्मिकोपम: ॥ ५८ ॥ पुत्रवयं मे पुरतो जघान च चखाद च। क्रवादिव समाम्बामप्यधुना इन्तुमुखतः ॥ ६०॥ यावत्र इन्यमूं तावद्रस्थामीति चचाल सः। क्तर्वाचिन सद्दाशब्दसुत्पेते च सुरेण खे ॥ ६१ ॥ तं च को बाइ बं श्रुखा भद्रा द्वतसुपैत्य तम्। किमेतदिति चाप्रच्छक्षोऽशंसत्तदशेषतः ॥ ६२ ॥ ततोऽभाषिष्ट भद्रैवं मिष्याहकोऽप्ययं सुरः। पोषधव्रतविन्नं ते चक्रे क्रित्रमभीषणैः ॥ ६३ ॥ पोषधवतभद्भस्य कुरुष्यासीचनं ततः। पापाय व्रतभक्षस्य स्थादनालोचनं यतः ॥ ६४ ॥

तथैव प्रतिपेदेऽथ तहाचं चुलनी पिता।
चकारालीचनां तस्य व्रतमङ्गस्य ग्रहधीः ॥ ६५ ॥
मथैकादश भेजेऽसी त्रावकप्रतिमाः क्रमात्।
सोपानानीव स स्वर्गसीधारोष्ठणकर्मणे ॥ ६६ ॥
निस्तिंपधारानिधितं स एवं त्रावकव्रतम्।
सचिरं पालयामास भगवहचनोचितम् ॥ ६० ॥
ततः संलेखनापूर्वं प्रपद्यानशनं सुधीः।
मत्वा सीधर्म उत्पेदे विमाने सोऽक्णप्रभे ॥ ६८ ॥

दुष्पालमेवं चुलनीपिता यथा
तत्पालयामास स पोषधव्रतम्।
ये पालयन्येव तथा परेऽप्यदो
हटव्रतास्ते खलु मुक्तिगामिनः ॥ ६८ ॥
॥ इति चुलनीपितः कथानकम्॥ ८६ ॥

द्दानीं चतुर्थं शिचाव्रतमाइ-

दानं चतुर्विधाशारपात्राक्शादनसग्ननाम् । त्रतिथिभ्योऽतिथिसंविभागव्रतमुदौरितम् ॥ ८० ॥

मितिथिश्वसिविधवीयुस्तवरिहितेश्यो भिचार्थं भोजनकाले उप-िस्तिथ्यः साधुश्यो, दानं विद्याणनं, चतुर्विधस्याधनपानखाद्यस्ताद्य-कृपस्याहारस्य, पात्रस्यालाव्वादेः, भाच्छादनस्य वस्त्रस्य कम्बलस्य वा, सद्यनो वसतेक्पलचणात्पीठफलकष्ययासंस्तारकादीनामिष । मनेन हिरस्थादिदाननिषेधस्तेषां यतेरनिधकारात्। तदेतदितिथि-संविभागवतस्थाते। मतिथेः सङ्गतो निहींषो विभागः पथात्-कर्मादिदोषपरिष्ठारायां भदानरूपोऽतिथिसंविभागस्तदूपं वतमः तिथिसंविभागवतम्। माष्ठारादीनां च न्यायार्जितानां प्रासुकैषणी-यानां कस्पनीयानां च देशकास्त्रभाषलारपूर्वकमात्रानुपष्ठबुद्धाः यतिभ्यो दानमतिथिसंविभागः।

यदूचु: --

'नायागयाचं कप्यशिकाणं अवपाणाईणं दव्याणं देसकाल-सदासकारकमञ्जूषं पराए भत्तीए भायाणुगाइबुदीए संजयाणं दाणं अतिहिसंविभागी।

चनूदितं चैतत्—

प्रायः ग्रहेस्तिविधविधिना प्रासुकैरेवणीयः कल्याप्रायः स्वयस्पन्नतेवेल् भिः पानकार्यः । काले प्राप्तान् सदनमसमयदया साधवर्गान् धन्याः केचित्परमविद्यता हन्तः ! संमानयन्ति ॥ १ ॥ प्रमानमित्वं खायं स्वायं भवेदय पानकं यतिजनिहतं वस्तं पातं सक्तम्बलप्रोञ्द्यनम् । वस्तिप्तस्वप्रपन्थं सुख्यं चरित्रविवर्षनं निजकमनसः प्रौत्याधायि प्रदेयस्पासकैः ॥ २ ॥

⁽१) न्यायागतानां कल्पनीयानां खद्मपानाहीनां ह्रव्याचां देशकास्वश्रहासत्कार-क्रमयुतं परया भक्त्या चात्मासुप्रसुद्ध्या संवतानां हानं चितिचर्गविभागः।

तथा--

'साइण कप्पणिकां जं निव दिसं कि हिंचि किंचि ति । धीरा जहुत्तकारी सुसावगा तं न भुंजंति ॥ १ ॥ 'वसहीसयणासणभत्तपाणभेसक्जवस्थपत्ताई । जहित न पळात्तधणी योवाची वि योवयं देह ॥ २ ॥

वाचकमुख्यस्वाह —

कि शिच्छु इं कल्पामकल्पां स्थात् स्थादकल्पामपि कल्पाम्।

पिण्हः शय्या वस्तं पातं वा मेषजाद्यं वा ॥ १ ॥

देशं कालं पुरुषमवस्थासुपयोगश्रृष्ठिपरिणामान्।

पसमीच्य भवति कल्पां नैकान्तात्कल्पतं कल्पाम्॥ २ ॥

नतु यथा शास्त्रे चाहारदातारः त्रूयन्ते न तथा वस्त्रादिदातारः,

न च वस्त्रादिदानस्य फलं त्रूयते तक वस्त्रादिदानं युक्तम्।

नैवम्! भगवत्यादौ वस्त्रादिदानस्य साचादुक्तत्वात्।

यथा—

'समणे निगांघे पासुएणं एसणिकोणं प्रसणपाणखाइम-साइमणं वत्यपडगाइकंबलपायपुंक्षणेणं पीठफलगसेकासंथारएणं पडिलाभेमाणे विश्वरहः।

⁽१) साधूनां कल्पनीयं यद् नापि इसं कश्चित् किञ्चित् तिश्चन्। भीरा बयोक्तकारियः सुन्नावक। सञ्चति ॥ १ ॥

⁽२) वस्तिगयनासनभक्तपानभैषञ्चवस्त्रपालाहि। यदापि न पर्याप्तसनः स्तोकाहिप स्तोवं हदात्॥ २॥

⁽३) चमचान् निर्यन्यान् प्राश्चितेन एवचीवेन स्वयनपानस्वाहिमस्नाहिनेन ६६

द्वाहारवत्तंयमाधारग्रीरोपकारकलाहस्तादयोऽपि साध्यो देयाः । संयमोपकारित्वं च यस्त्रस्य तावत् त्वस्त्रप्रचानसम्वा-निवारणार्थत्वेन, धमंग्रक्षध्यानसाधनार्थत्वेन, म्लानपीडापरि-हारार्थत्वेन, मृतकपरिष्ठापनार्थत्वेन च ।

यदाइ:---

'तणगण्डणानलसेवानिवारणा धन्मसुक्कभाणहा। दिहं कप्पमण्डणं गिलाणसरणहया चेव॥१॥ वाचकोऽप्याच---

गीतवातातपैदेंग्रैमंग्रकैशापि खेदित:।

मा सम्यक्तादिषु ध्यानं न सम्यक् संविधास्यति ॥१॥ इत्यादि पात्रस्थाप्युपयोगः, श्रग्रहस्थानादेर्ग्रहणेन तत्परिष्ठापनं, संसक्तान-स्थाविराधनात्। प्रमादात्पूतरकसिहतस्य तत्स्रुलोदकादेर्ग्रहणे सित तत्परिष्ठापनासुखं च। एवमादयोऽन्येऽपि पात्रग्रहणे गुजाः।

यदाडु:--

'ककायरक्खणहा पायगन्नणं जिणेन्तिं पद्मत्तं। जिभागुणा संभोए स्वंति ते पायगन्नणे वि॥१॥

वद्भापतद्यक्षमध्यपादमोष्क्रनेन पीठफखक्यव्याधंकारकेच प्रतिसाध्यमानान् विकारयति।

- (१) द्वस्यपृत्राध्नवस्थानवार्याय घर्मगुक्कध्यानार्थम् । हिएं कल्पयपृत्रं ग्लानसर्यार्थं चैत ॥ १ ॥
- (२) घटवाबरख्याचें पात्रयस्य जिनैः प्रतासन्। वे च गुचाः संभोगे भवन्ति ते पात्रयस्योऽपि ॥ ९ ॥

'चतरंतवालवुडा सेडा एसा गुरू मसडुवमी। साडारणोमाडालडिकारणा पायमाडणं तु॥ २॥

ननु तीर्धकराणां वस्त्रपात्रपरिभोगो न त्रूयते, तीर्धकर-चरितानुकारय तच्छित्राणां युक्तः। वदन्ति हि—

'जारिसयं गुरु लिक्कं सीरेण वि तारिरेण इविश्वसम्। इति मैवं वोच:—

यक्ति इपाणयस्तीर्थकराः, यपि चन्द्रादित्वी याविष्क्रखा गच्छितः , न तु पानीयविन्दुरप्यधः पति ; चतुर्विधन्नानवलाच ते संसत्तासंसत्तमसं सनसमत्रसं च जलादि न्नाला निर्दीषमेवोपाददते, इति नेषां पात्रधारणे गुणः । वस्त्रं तु दीचाकाले तीर्थकरा यपि ग्रह्मन्ति ।

यदाद्य:--

'सब्बे वि एगटूसेण निगाया जिणवरा चलकीसं।
न य नाम प्रसालिंगे न य गिष्टिलिंगे कुलिंगे वा ॥ १ ॥
परमार्षे च —

⁽१) म्लानवासहसात् शिकाकात् प्राप्त्यिकाद् गुरोरसहिष्णुवर्गात् । साधार्यावयकालिकार्यात् पात्रयक्षं तः॥ २॥

⁽२) बाड्यं गुर्सिक् विष्येचापि ताड्येन भवितव्यम्।

⁽१) सर्वेऽपि एकदू स्त्रेच निर्मता जिनवराचति विश्वति । न च नामान्यति क्षेत्र न च न्यास्त्रिक्षेत्र कृतिक्षेत्र वा ॥ १॥

'सेविम जे घर्षया जे घणागया जे घ वहमाणा ते सब्बे सीविष्ठधन्मी देसियव्यो त्ति कहु एगं देवदूसमादाय निक्डमिंस निक्डामंति निक्डमिस्नंति वा।

प्रविच्चोत्तरकालं च सर्ववाधासहत्वात वस्त्रेण प्रयोजनिमिति
यथाकथश्चित्तदपेतु नाम। गुक्लिङ्गानुवर्त्तनं च तिष्क्रिष्णाणां
यदुक्तं, तदैरावणानुकरणमिव सामान्यकरिणाम्। किं च। तीर्थकरानुकारमिष्क्रद्विमेठे निवसनमाधाकर्मिकादिपरिभोगर्केलाभ्यङ्गोऽङ्गारशकटीसेवनं द्यणपटीपरिधानं कमण्डलुधारणं बहुसाधुसध्ये निवासन्द्वश्चानां धर्मदेशनायाः करणं शिष्णशिष्णादीचादिकं सर्वमविधेयं स्थात्, तच कुर्वन्ति।

कम्बस्य च वर्षासु बिहानिगैतानां तात्कास्तिकष्टशवप्काय-रक्षणमुपयोगः, बालहहम्लानिमिक्तं वर्षत्यपि जलधरे भिक्षायै निःसरतां कम्बलाहतदेहानां न तथाविधाप्कायविराधना, उच्चार-प्रस्नवणादिपौद्धितानां कम्बलाहतदेहानां गच्छतामपि न तथा-विधा विराधना। छत्रायाच्छादितानां कम्बलमन्तरेणापि गच्छतां को दोष इति चेत्। न। 'छत्तस्य य धारणहाए' इत्यागमिन छत्रस्य प्रतिषिहत्वात् ॥ रजीहरणं पुनः साचाळीवरचार्थं प्रति-सिखनाकारित्वादुपयोगीति कस्तम विवादं कुर्यात्?। मुख-वस्त्रमिं सम्पातिमजीवरचणादुण्यमुखवातविराध्यमानवाद्यवायु

⁽१) सेने येऽतीता येऽनागता ये च वर्तमानास्ते सर्वे सोपधिधर्भी देख्य इति काला एकं देवद्रव्यमादाय निरक्तांमणुः निष्का।मन्ति निम्कृषिव्यन्ति वा।

कायजीवरचणामुखे धूलिप्रवेशरचणाचीपयोगि । पौठफलकयो-वैषीस पनककुन्यादिसंसक्तायां भुवि भूशयनस्य प्रतिषिद्यलाच्छयः नासनादावुपयोगः । प्रय्यासंस्तारकयोच श्रीतीण्यकालयोः गयनादावुपयोगः । वसतिस निवासार्थं यतीनामत्यन्तोपकारिणो ।

यदाह---

'जो दे इ उवस्मयं मुणिवराण णेगगुणजोगधारीण।
तेणं दिसा वस्यसपाणसयणासणविकष्मा ॥ १ ॥
'जं तस्य ठियाण भवे सम्बेसिं तेण तेसिमुवश्रोगो।
रक्षपरिपालणा वि, श्रतो दिसा एव ते सम्बे ॥ २ ॥
'सीयायवचीराणं दंसाणं तस्य बालमसगाणं।
रक्षंतो मुणिवसमे सुरलोयसुष्टं समक्तिण्य ॥ ३ ॥

एवं यदन्यद्योधिक सीपयिष्ठकं वा धर्मीपकरणं तसाधूनां धारयतां न दोषः ; तहातृगां तु सतरां गुण एव ॥

उपकरणमानं तु—

⁽१) वो इइ। त्युपात्रयं सुनिवरः चामनेक्युंचवोनधारिचाम्। तेन इत्तावस्त्रः सुपानग्यनासनिकत्याः ॥ १॥

^(*) बत्ताव स्थितानां भवेत् सर्वेषां तेन तेषासपयोगः। रचापरिपासना चापि, खतो इत्ता एव ते सर्वे ॥ २॥

 ⁽३) गीतातपचौरेभ्यो इंगेभ्यक्षचाच वाखनग्रकेभ्यः।
 रखन् सुनिष्टयभान् सुरखोकसुक्षं समर्जात ॥ ३॥

'जिया बारसक्वाभी घेरा चीइसक्वियो। भक्तायं पर्यवीसंत भभी उर्द उवमाडी॥१॥

इलाद्यागमादवगन्तव्यं, इइ तु प्रत्यगीरवभयाव प्रतन्यते। इड बड़ोजा सामाचारी। श्रावनेण पोषधं पारयता नियमालाध्रभ्यो दखा भीत्रव्यम्। कथम् १। यदा भीजनकाली भवति तदा पाक्षनी विभूषां कला प्रतित्रयं गला साध्न निमम्बयते ; भिन्नां रुष्त्री-तिति ॥ साधुनां च तं प्रति का प्रतिपत्तिः । उच्यते । तदैकः पट-सवमन्यो सुखानन्तकमपरी भाजनं प्रत्यवेश्वते ; माऽन्तरायदोषाः स्थापनादीवा वा भ्रविति। स च यदि प्रथमायां पौरुषां निमन्त्र-यते : पिस्त च नमस्कारमहितप्रत्यास्थानी, ततस्तमुद्यते। प्रथ नास्यसी तदा न रहच्चते, यतस्तद्दीढव्यं भवति । यदि पुनर्घनं स्रोत. तदा रहन्नते संस्थाप्यते च ; यो वा उदाटपीक्यां पारयति 'पारचकवानन्यो वा तसी तहीयते; पश्चान्तेन त्रावकेण समं सङ्घाटको व्रजति, एको न वर्त्तते प्रेषयितुं ; साधुपुरत: त्रावकसु मार्गे गच्छति, ततोऽसी ग्रहं नीत्वा तावासनेनोपनिमन्त्रयते : यदि निविशेते, तदा भव्यम्, भय न निविशेते, तथापि विनय-प्रयुक्ती भवति, ततीऽसी भक्तं पानं च खयमेव ददाति, भाजनं वा धारयति, स्थित एवास्ते यावद्दीयते। साधु पपि पश्चालार्मपरि-इरणार्थं सावशेषं रुद्धीतः, ततो वन्दिला विसर्क्कयित, पनु-

⁽१) जिना द्वाइयक्षाः स्वित्यवद्वरंगक्षियः। व्यावीयां पश्चविंगतिस्त स्वतं कर्वस्पयकः॥१॥

⁽२) खाच पारचके दातव्यो वातको।

गच्छित कितिचित्पदानि; ततः खयं भुङ्ते॥ यदि पुनस्तव यामादौ साधवो न भवित्त तदा भोजनवेलायां हारावलोकानं करोति, विश्वहभावेन च चित्तयित यदि साधवोऽभविष्यन् तदा निम्तारितोऽहमभविष्यमिति। एव पोषधपारणके विधि:। प्रन्यदा तु दस्वा भुङ्को, भुक्ता वा ददाशीति। प्रवान्तरस्रोकाः—

> प्रवादीनामिदं दानसृत्तं धर्मीपकारिकाम्। धर्मीपकारबाह्यानां खर्णादीनां न तकातम् ॥ १ ॥ दत्तेन येन दीप्यन्ते क्रोधलीभस्मरादयः। न तत्खर्णं चरित्रिभ्यो दद्याचारित्रनागनम् ॥ २ ॥ यस्यां विदार्यमाणायां स्त्रियन्ते जन्तुराशयः। चितेस्तस्याः प्रशंसन्ति न टानं करुणापराः ॥ ३ ॥ यदाच्छसं महाहिंसं तत्तदोन विधीयते। तट चिंस्रमना लोचं कथं दयाहिचचणः ?॥४॥ संमुर्क्काना सदा यत भूयांसस्त्रसजन्तवः। तेषां तिलानां को दानं मनागप्यत्मन्यते ?॥ ५ ॥ दबादर्बप्रस्तां गां यो हि पुष्याय पर्वणि। स्त्रियसाचासिव इडा। वर्ष्यते सोऽपि धार्मिकः॥ ६॥ यस्या चपाने तीर्थान मुखेनात्राति याऽश्रुचिम । तां मन्वानाः पविवां गां धर्माय ददते जडाः ॥ ७॥ प्रत्य इंदु समानायां यस्यां वसाः प्रपीचाते । खरादिभिजेन्तु भी तां ददा हां श्रेयरे कथम ? ॥ ८ ॥

स्वर्णमयी रूपमयी तिलमया ज्यमयपि। विभक्य भुक्यते धेनुस्तद्दातुः किं फलं भवेत् १॥८॥ कामगर्वकरी बन्धुस्त्रेष्टद्रमदवानलः। कत्ती: कलितकर्दुर्गेदुर्गितिहारक्षिका ॥ १०॥ मोचहारागेला धर्मधनचौरी विपत्नरी। या कन्या दीयते साऽपि श्रेयसे, कोऽयमागमः ?॥ ११ ॥ विवाइसमये मूटैर्भमेंबुद्या विधीयते। यस् यौतुकदानं तत्याङ्गस्मनि इतोपमम् ॥ १२ ॥ यत संक्रान्ती व्यतीपात वैधते पर्वषोरिष । दानं प्रवर्त्तितं लुर्स्यमुन्धसंमोद्यनं हि तत्॥ १३॥ मृतस्य द्वार्ये ये दानं तन्वन्ति तनुबुद्धयः। ते हि सिश्चन्ति सुग्रलं सलिले: पञ्चवेच्छया ॥ १४ ॥ विप्रेभ्यो भोजने दत्ते प्रीयन्ते पितरो यदि। एकस्मिन् भुतवत्यन्य: पुष्ट: किंन भवेदिह ? ॥ १५ ॥ भपत्यदसं चेद्दानं पितृषां पापसुक्तये। पुचेष तप्ते तपसि तदा मुक्तिं पिताऽऽप्रुयात्॥ १६॥ गङ्गागयादी दानेन तरिन्त पितरो यदि। 'तत्रोच्चन्तां प्ररोहाय 'ग्टहे दन्धा दुमास्तदा ॥ १०॥ गतानुगतिकोः त्रप्तं न दद्यादुपयाचितम्। फलन्ति इन्त ! पुर्व्यानि पुर्व्याभावे सुधैव तत् ॥ १८ ॥

⁽१) इस्य च तलोम्बनां।

⁽१) ञ विच्चरम्धाः।

न कोऽपि प्रकाते वातं पूर्णे काले सुरैरपि। दत्तोपयाचितस्तेषां विम्वस्ताणं महाइतम् ॥ १८ ॥ महोचं वा महाजं वा ऋोतियायीपकल्पयन्। दाताऽत्मानं च पात्रं च पात्रयेत्ररकावटे ॥ २० ॥ दददमीधया दाता न तथाऽचेन लिप्यते। जानविप यथा दोषं ग्रहीता मांसलोलप: ॥ २१ ॥ अपानप्राणिनो इला पात्रं पुण्कि ये पुनः। अनंकभेक घातेन ते प्रीसन्ति भुजक्रमम्॥ २२॥ न खर्णादीनि दानानि देयानीत्यईतां मतम। श्रवादीन्यपि पात्रेभ्यो दातव्यानि विपश्चिता ॥ २३ ॥ ज्ञानदर्भनचारित्रक्परत्नचयान्विताः। समितीः पञ्च विभ्नाणा गुप्तितितयशालिनः ॥ २४ ॥ महाव्रतमहाभारधरणैकधरत्वराः। परीषहोपसर्गारिचमूजयमहाभटाः ॥ २५ ॥ निर्ममला: शरीरेऽपि किसुतान्येषु वसुषु ?। धर्मीपकरणं मुक्का परित्यक्तपरित्रहाः॥ २६॥ दिचलारिंगता दीषैरदृष्टं भैचमावकम्। माददाना वपुर्धर्मयात्रामात्रप्रवृत्तये ॥ २० ॥ नवगुप्तिसनायेन ब्रह्मचर्येच भूषिता:। दन्तशोधनमानेऽपि परखे विगतसृष्ठाः ॥ २८ ॥ मानापमानयोर्जाभाजाभयोः सुखदुःखयोः। प्रशंसानिन्दयोईर्षशोकयोसुत्यवृत्तयः ॥ २८ ॥

क्षतक।रितानुमतिप्रभेदारभवर्जिताः। मोचैकतानमनसी यतयः पावसुत्तमम् ॥ ३० ॥ सम्यग्दर्भनवन्तसु देशचारित्रयोगिनः। यतिधर्में च्छवः पाचं मध्यमं ग्टहमेधिनः ॥ ३१ ॥ सम्यक्षमाचसन्तुष्टा व्रतशीलेषु 'नि:सङ्गः। तीर्घप्रभावनोद्युक्ता जघन्यं पात्रसुच्यतं ॥ ३२ ॥ क्यास्त्रयवणोत्पदवैराग्यादिष्यरियष्टाः। ब्रह्मचर्यरताः स्त्यमधार्षिसापरासुखाः ॥ ३३ ॥ घोरव्रता मौनज्ञवः कन्दमूलफलाशिनः। ग्रिलोञ्डरत्यः पत्रभोजिनो भैचजीविनः ॥ ३४ ॥ काषायवस्त्रा निर्वस्त्राः शिखामीग्ङ्गाजटाधराः । एकदण्डास्त्रिदण्डा वा ग्टहारण्यनिवासिनः॥ ३५॥ पचान्निसाधका यीचे गलनीधारियो सिने। भस्माङ्गरागाः खट्टाङ्गकपानास्थिविभूषणाः ॥ ३६ ॥ खबुद्या धर्मवन्तोऽपि मिष्यादर्भनदूषिताः। जिनधर्मिद्दिषो सूढाः कुपात्रं स्युः 'कुतीर्धिनः ॥ ३०॥ प्राणिप्राणापहरणा स्वावादपरायणाः। परस्तव्यचेषाताः प्रकामं कामगरभाः ॥ ३८ ॥ परियद्वारभारता न सन्तुष्टाः कदाचन । मांसाशिनो मदारताः कोपनाः कलचप्रियाः॥ ३८॥

⁽१) मच निःसृहाः)

⁽२) स्त्रच ञ क्षतीर्घिकाः।

क्रशास्त्रभावपाठेन सदा पिख्रतमानिनः। तत्त्वतो नास्तिकप्राया प्रपाविमति ग्रंसिता: ॥ ४० ॥ इत्यपातं कुपातं च परिष्ठत्य विविक्तिनः। पानदाने प्रवर्त्तन्ते सुधियो सोचकाङ्किणः ॥ ४१ ॥ दानं स्वात्मफलं पात्रे 'कुपावापावयोरिप । पाते धर्माय तच स्वादधर्माय तदन्ययोः ॥ ४२ ॥ पय:पानं भुजङ्गानां यथा विषविवद्ये । क्षपात्रापात्रयोदीनं तद्व द्वववहदये ॥ ४३ ॥ स्वादु चीरं यथा चिप्तं कटूनाबुनि दुष्यति। दानं दत्तं शुरमपि कुपानापावयीस्तथा ॥ ४४ ॥ दत्ता कुपावापावाभ्यां सर्वीर्थिप फलाय न। यात्राय दत्तो ग्रासोऽपि श्रदया स्थायाहाकतः॥ ४५ ॥ इयं मोचफले दाने पावापावविचारणा। दयादानं तु तस्वज्ञै: कुत्रापि न निषिध्यते ॥ ४६ ॥ श्रदाश्रदिकता भङ्गायत्वारः पाचदान्योः। पादाः ग्रहो हितीयो 'वैकल्पिको इन्ही तु निष्पली ॥१० दानेन भोगानाप्रोतीत्यविस्त्रयीव भाष्यते। प्रनर्घेपात्रदानस्य सुद्रा भोगाः कियत्पत्तम १॥ ४८ ॥ पात्रदाने फलं मुख्यं मोचः शस्यं क्रविरिव। यनासमिव भोगासु फलं स्वादानुषक्किकम् ॥ ४९ ॥

⁽१) ज स नलपातकपात्वयोः।

⁽३) गय दितीयस्त पाणिको-4

⁽२) क -द्वर्यात पामने।

जिनामां दानदातारः प्रथमे मोचगामिनः ।
घनादयो दानधर्माष्टोधिबीजसुपार्जयन् ॥ ५० ॥
जिनानां पारचे भिचादातृणां मन्दिराजिरे ।
ध्वित्विर्षपराः सद्यः मुष्यवृष्टिं व्यधः सुराः ॥ ५१ ॥
द्व्यतिथिसंविभागव्रतमेतदुदीचितं प्रपच्चेन ।
देवादेये पाव्रापावे जात्वा यथोचितं कुर्यात् ॥ ५२ ॥ ८० ॥
यद्यपि विवेकिनः यदावतः सत्पावदाने साचात्पारम्पर्येण वा
मोचः फलं, तथापि सुग्धजनानुग्रद्दाधं पात्रदानस्य प्रासद्विकं
फलमाड--

प्रस्य सङ्गमको नाम सम्पदं वत्सपालकः। चमत्कारकरीं प्राप मुनिदानप्रभावतः॥ ८८॥

पश्चेत्यनेन सुम्धबुहिमभिसुखयित। सङ्गमको नामिति सङ्गमकाभिः धानः, वत्सपालो वत्सपालनजीवकः, चमल्कारकरीं सम्पदं प्रापः; कुतः, सुनिदानप्रभावतः। प्रव्र सङ्गमकस्य पारम्पर्येण मोचोऽपि फलमस्ति, तथापि प्रासङ्गिकफलाभिधानरभसेन स नोक्तः। सङ्गमकचरितं च सम्प्रदायगम्यम्।

स चायम्-

मगधेष्वस्ति निःसीमरत्नप्राग्भारभास्तरम्। पुरं ससुद्रवद्राजग्टहं कुलग्टहं त्रियः॥१॥

⁽१) कागञास्य सुगन्ध्युदकपुष्पसक्रमः।

राजा पुरं तदपरैरनुक्क स्तिशासनः। श्राम श्रेणिकः पाकशासनः स्वःप्ररीमिव ॥ २ ॥ गालिगामेऽय धन्येति काचिदुच्छित्रवंशिका। वालं सङ्ग्रकं नाम समादाय समाययी ॥ ३ ॥ वसंस्तत्र स पौराणां वसक्षपाख्यचारयत। त्रमुक्षा द्वासी रोरवालानां सदुजीविका ॥ ४ ॥ त्रयापरेदाः संजाते तत्र कस्मिं सिदुस्तवे। पायसं सङ्गमीऽपश्यद् भुज्यमानं ग्रहे गरहे ॥ ५ ॥ गला स्त्रीहे जननीं ययाचे सीऽपि पायसम्। साऽप्य्वाच दरिद्राऽस्मि महेहे पायसं कुतः ?॥ ६॥ बालेन तेनाज्ञतया याच्यमाना मुहुर्मुहु:। सारन्ती पूर्वविभवं 'तारतारं बरोद सा॥ ७॥ तस्या रुदितदु:खेनानुविषक्षदया इव। त्रागत्व 'प्रतिवेशिन्यः पप्रच्छुर्दुः खकार गम्॥ ८ ॥ ताभ्योऽभ्यधत्त सा दुःखकारणं गह्नदाचरैः। चीरादादुव तास्तस्यै साऽपचत् पायसं ततः ॥ ८॥ खण्डाच्यवायसैर्भृत्वा स्थालं बालस्य तस्य सा। पार्पयस्ययौ चान्तर्गृष्ठं कार्येष केनचित्॥ १०॥ प्रवास्तरे च कीऽप्यागास्त्रिमीससुपीषित:। पारणाय भवोदन्वत्तारणायास्य नीरिव ॥ ११ ॥

⁽१) खगचड तारंतारं।

⁽२) वासामा प्रातिनेश्चिम्यः।

सोऽचिन्तयदिदं चिन्तामाणिक्यमिव चेतनम्। जक्रमः कल्पशाखीव कामधेनुरिवापशः॥ १२॥ साधु साधु मन्त्रासाधुमेद्वाग्येरयमाययी। कुतोऽन्यया वराकस्य ममेहक्पात्रसङ्ग्रमः ?॥ १३॥ भाग्योदयेन केनापि ममाद्य समपद्यत । चित्रं वित्रं च पात्रं च निवेगीसङ्गमी श्रायम् ॥ १४ ॥ दत्यसी खालमुत्पाद्य पायसं साधवे ददी। जयाद्दानुयद्दायास्य मद्दाकाक्षिकी सुनि: ॥ १५ ॥ ययी च स सुनिगें द्वासाधाद धन्याऽपि निर्ययौ। मन्ये भुतमनेनिति ददौ सा पायसं पुन: ॥ १६ ॥ तत्पायसमद्यप्तः सन्नानग्ढं ब्भुजिध्य सः। तदजी चेंन यामिन्यां सारन् साधुं व्यपदात ॥ १०॥ तेन दानप्रभावेण सीऽय राजग्रहे पुरे। गोभद्रेभ्यस्य भार्याया भद्राया उदरेऽभवत् ॥ १८॥ भानिचेत्रं सुनिष्यत्रं खप्नेऽपश्यच सा तत:। भर्तुः गर्गस्, सोऽप्यस्याः सूनुः स्यादित्यचीकथन् ॥ १८ ॥ चेद्दानधर्मकर्माणि करोमीति बभार सा। दोइदं, तं तु गोभद्रः पूर्यामास भद्रधीः ॥ २०॥ पूर्णे काले तती भद्रा द्यतिद्योतितदिगमुखम्। षसूत तनयं रत्नं विदूरं गिरिभूरिव ॥ २१ ॥ दृष्टस्त्रानुसारेष स्नोस्तस्य श्रभे दिने। चक्रतुः पितरी गालिभद्र इत्यभिधां ग्रुभाम् ॥ २२ ॥

'धात्रीभि: पञ्चभि: पाल्यमानः स वष्ट्रं क्रमात्। किञ्चिदूनाष्टवर्षः सन् विवाऽप्यध्यापितः कलाः ॥ २३ ॥ संप्राप्तयीवनशासी युवतीजनवन्नभः। सवयोभिः समं रेमे प्रद्युम्न इव नूतनः ॥ २४ ॥ तत्प्रश्रेष्ठिनीऽधैत्य कन्या दातिंगतं निजा:। प्रदातं शालिभद्राय भद्रानायं ययाचिरे ॥ २५ ॥ षय प्रष्टिशे गीभद्रः शालिभद्रेण सादरम्। सर्वेलचणसंपूर्णाः कन्यकाः पर्यणाययत् ॥ २६ ॥ शालिभद्रस्ततो रस्ये विमान इव मन्दिरे। विननास समं ताभि: पतिर्दिविषदामिव ॥ २० ॥ विवेदानस्मग्नोऽयं न रात्रं न च वासरम्। तस्यापूरयतां भोगसामग्रीं पितरी स्वयम् ॥ २८ ॥ त्रीवीरपादमूलेऽय गोभद्रो व्रतमग्रहीत्। क्षता चानग्रनं मृत्वा देवलोवां जगाम 'च ॥ २८ ॥ षविधन्नानतो त्राला पालिभद्रं निजासजम्। तत्प्र्यावर्जितः सोऽभूत्प्त्रवासस्यतत्परः ॥ ३० ॥ दिव्यानि वस्त्रनेपष्यादीन्यस्य प्रतिवासरम्। सभार्यस्थार्पयामास कल्पशाखीव सीऽमर: ॥ ३१'॥ यदाकार्चीचितं कार्यं भद्रा तत्तदसाधयत्। पूर्वदानप्रभावेण भोगान् सोऽभुङ्का केवलम् ॥ ३२ ॥

⁽१) खगचड पाल्यमानः संधात्रीभिः पञ्चभित्र-। (२) वसः।

विषिभिः केषिदन्येयुर्गृषीला रक्षकम्बलान् । शिविये वेणिकस्तां य महार्घलेन नायहीत ॥ ३३ ॥ ततस्ते विश्वजो जग्मः शालिभद्रनिवेतनम्। तदुक्तार्घेष तान् भद्राऽप्ययद्वीद्रवनम्बनान् ॥ ३४ ॥ मचोग्यो रुज्ञतामेको महामूखोऽपि कम्बनः। द्रस्यूचे चेत्रवादिव्या तदा च श्रेणिको तृपः ॥ ३५ ॥ राचाऽपि मुख्यपूर्वं ते कम्बलं विणजीऽर्थिताः। भद्रा जगाइ तान् सर्वान् कम्बलानित्यचीकयन् ॥ ३६ ॥ न्त्रेणिकः प्राहिणोदेकं प्रवीणं पुरुषं ततः। भद्रापार्खे मुख्यदानात्मम्बल(दानहेतवे॥ ३०॥ याचिता तेन भद्रोचे किःचा तान् रव्रकम्बलान्। शालिभद्रप्रियापादपोञ्कनीकतवत्यसम् ॥ ३८ ॥ कार्यं निष्यदाते किश्विज्ञीर्णेश्वेद्रव्यक्यते:। तह्रावाऽऽप्रच्या राजानमागच्छामून् ग्रहाण च ॥ ३८॥ पाख्यक्रवा स तद्रान्ने रान्नाचे चेन्नणाऽप्यदः। पायासामं विषाजां च रीतिहेकोरिवास्तरम् ॥ ४०॥ तमेव पुरुषं प्रेष्य श्रेषिकीन कुतृहलात्। पाकारित गालिभद्रे भद्रोपित्य व्यजित्रपत ॥ ४१ ॥ बहिने हि महीनाथ ! जात् याति मदासज: । प्रसादः क्रियतां देव ! सह्रहागमनेन मे ॥ ४२ ॥ कीतृहलाच्छे विकोऽपि तत्त्रया प्रत्यपद्यत । तं च चर्ण प्रतीच्याय साऽये भूत्वा गर्डं ययौ ॥ ४३॥

विचित्रवस्त्रमाणिकाचित्रकालसायौँ ततः। त्राराजहर्म्यं खग्रहाददृशोभां व्यथत्त सा ॥ ४४ ॥ तयाऽइहतस्ततो राजा क्रतां सद्यः सुरैरिव। विभावयन् इहशोभां शालिभद्रग्डइं ययौ ॥ ४५ ॥ स्तर्णस्तभोपरि प्रेङ्गदिन्द्रनीलाश्मतीरणम्। मौक्तिकखस्तिकश्रेणिदन्तुरद्वारभूतलम्॥ ४६॥ दिव्यवस्त्रक्षतोन्नोचं सगिसद्रव्यध्पितम्। भुवि दिव्यविमानानां प्रतिमानमिव खितम् ॥ ४० ॥ तहिवेश विशामीशो विस्मयस्रोरलोचनः। भूमिकायां चतुर्थां तु सिंहासन उपाविशत् ॥ ४८ ॥ सप्तम्यां भुवि भद्रैत्य ग्रान्तिभद्रं ततोऽवदत् । इहायातः त्रेणिकोऽस्ति तं द्रष्टुं चणमेहि तत्॥ ४८॥ मम्ब ! त्वमेव यद्देश्वित तमधे कारय खयम्। किं मया तन कर्त्तव्यं स भद्रामित्यभाषत ? ॥ ५० ॥ ततो भट्राऽप्यवाचैनं क्रेतव्यं वसु न हाद:। किम्बसी सर्वलोकानां युषाकसिप च प्रभुः॥ ५१॥ तक्कृत्वा गालिभद्रोऽपि सविषादमिनत्यत्। धिक् सांसारिकमैश्वयें यसमाप्यपरः प्रभुः॥ ५२॥ भागिभोगैरिवैभिमें भोगैरलमत: परम्। दीचां मङ्क्ष यहीचामि सीवीरचरणान्तिके ॥ ५३ ॥

⁽१) सामा - मुवामीवं। ६८

एवं संवेगयुक्तोऽपि स मातुकपरोधतः। सभावीऽभ्येत्य राजानमनमदिनयान्वित: ॥ ५४ ॥ सखजे श्रेणिकेनाय खाङ्के सत इवासित: । स्रेष्ठाच्छिरसि चान्नातः चवाचात्र्राव सोऽसुचत्॥ ५५ ॥ ततो भद्रा जगादैवं देवायं मुच्चतां यत: । मानुष्यमात्यगन्धेन मनुष्योऽप्येष बाध्यते॥ ५६॥ देवभूयं गतः श्रेष्ठी सभावस्यास्य यच्छति। दिव्यनेपव्यवस्त्राङ्गरागादीन् प्रतिवासरम् ॥ ५० ॥ ततो राजा विस्ट होऽसी ययी सप्तमभूमिकाम्। **४इव भोत्रव्यमिति विज्ञप्तो भद्रया तृप: ॥ ५८ ॥** भद्राटा चिष्यती राजा प्रत्यपदात तत्त्रया। सदाः साऽसाधयसवें श्रीमतां किं न सिध्यति ?॥ ५८ ॥ ससी सानीयतैलाम्बुचूर्णेस्तूर्णं ततो तृपः। चङ्गुलीयं तदङ्गुल्याः क्रीडावाप्यां पपात 'च ॥ ६०॥ यावदन्वेषयामास भूषतिस्तदितस्ततः। तावद्गद्राऽऽदिशहासीं वाप्यभोऽन्यत्र नाय्यताम् ॥ ६१ ॥ तथाक्तते तया चित्रदिव्याभरणमध्यगम्। चक्राराभं खाक्र्सीयं दक्षा राजा विसिषिये॥ ६२ ॥ किमेतदिति राच्चोक्ता दाखवीचदिहान्वहम् !। निर्माखं शालिभद्रस्य समार्थस्य निधीयते ॥ ६३ ॥

⁽१) कतत्।

सर्वया धन्य एवेष धन्योऽहमपि संप्रति। राज्ये यखेट्याः सन्ति विसमर्थेति भूपतिः ॥ ६४ ॥ बुभुजे सपरीवारी भूभुजामपणीस्तत:। चित्रालङ्कारवस्त्राद्यैरचितस रह ययी ॥ ६५ ॥ गालिभद्रोऽपि संसारविमोचं यावदिच्छति । अभ्येत्य धर्मसुद्धदा विद्यप्तस्तावदीदृशम् ॥ ६६ ॥ त्रागाचतुर्ज्ञानधरः सुरासुर्वमस्कृतः । मूर्त्ती धर्म द्वीद्याने धर्मघोषाभिधी सुनि: ॥ ६० १ ग्रालिभटस्ततो इर्षाटिधितद्य रथं ययौ। षाचार्यपादान् वन्दिला साधूंबोपाविश्रत्पुरः ॥ ६८ ॥ स स्रिदेंशनां कुर्वन् नला तेनेत्यप्रच्छात। भगवन ! कर्मणा केन प्रभुरन्धी न जायते १ ॥ ६८ ॥ भगवानप्यवाचेदं दीचां स्टब्सन्ति ये 'जनाः। ग्रशेषस्थापि जगत: स्वासिभावं भजन्ति ते ॥ ७० ॥ यदीवं नाथ ! तहला निजामापृष्का मातरम्। यहीष्यामि व्रतमिति शालिभद्रो व्यजित्रपत् ॥ ७१ ॥ न प्रमादो विधातव्य इत्युक्तः स्रिणा ततः। शालिभद्रो ग्टहं गत्वा भद्रां नत्वेत्यभाषत ॥ ७२ ॥ धर्मः श्रीधर्मघोषस्य स्रीरद्य मुखाम्बुजात्। विष्वदु:खविमोच्चियोपायभूतो मया श्रुत: ॥ ७३ ॥

⁽१) सचनराः।

चकार्वी: साध्वदं वस ! पितुसस्यासि नन्दन:। प्रमधंसित भद्राऽपि मालिभद्रं प्रमोदत: ॥ ७४ ॥ सीऽप्यवीचदिदं मातर्वं चेत्तत प्रसीद मे। यहीषामि व्रतमन्तं ननु तस्य पितुः सुतः ॥ ७५ ॥ साऽप्यवादीदिदं वत्स ! युक्तस्तेऽसी व्रतीव्यमः । किस्वत लोइचगकायर्वणीया निरम्तरम् ॥ ७६ ॥ सुक्तमारः प्रक्रत्याऽपि दिव्यभोगैस लालितः। स्यन्दनं तर्णका दव कयं त्वं वच्चसि व्रतम् ?॥ ७०॥ शालिभद्रोऽप्यवाचैवं पुसांसी भोगलालिता:। प्रसुष्टा व्रतकष्टानां कातरा एव नेतरे ॥ ७८ ॥ त्यज भोगान् क्रमात्रात्वेमात्वगन्धान् सइस्त च। इत्यभ्यासादुतं वत्र ! ग्रह्मीया इत्युवाच सा ॥ ७८ ॥ गालिभद्रस्ततो भद्रावचनं प्रतिपद्य तत्। भार्यामेकां तूलिकां च मुच्चति सा दिने दिने ॥ ८०॥ इतस तिसान् नगरे धन्यो नाम महाधनः। बभूव शालिभद्रस्य कनिष्ठभगिनीपति: ॥ ८१॥ ग्रालिभद्रखसा 'साशु स्वपयन्ती तु तं तदा। किं रोदिषीति तेनोक्ता जगादैति सगद्रदम् ? ॥ ८२ ॥ व्रतं ग्रहीतुं मे स्वाता त्यजत्येकां दिने दिने। भागीं च तुलिकां चाइं हितुना तेन रोदिमि ॥ ८३ ॥

⁽३) खच साञ्चः। उ धन्यं।

य एवं कुरुते फेरुरिव भीरुखपस्त्रासी। हीनसत्त्वस्तव भातित्यू वे धन्यः सनमेकम् ॥ ८४ ॥ सुकारं चेद्दृतं नाथ ! क्रियते किंन दि लया ?। एवं सहासमन्याभिभीर्याभिर्जगदेश्य सः ॥ ८५ ॥ धन्योऽप्यूचे व्रते विन्नो भवत्यस्तास पुर्श्यतः। त्रमुमन्त्रोऽद्य मेऽभूवन् प्रविज्ञामि तद् द्वतम् ॥ ८६ ॥ ता त्रप्यूतु: प्रसीदेदमस्त्राभिर्नर्भणोदितम् । मा स्रात्याची: त्रियोऽस्रांय मनस्तिन्! नित्यसासिता: ॥८०॥ त्रनित्यं स्त्रीधनाद्येतग्री'उभा नित्यपदेच्छया। प्रवर्धं प्रव्रजिष्यामीत्यालपन् धम्य उत्थितः ॥ ८८ ॥ लामनु प्रविज्ञाम एवसुक्षवती सताः। प्रत्वमन्यत धन्योऽपि धन्यंमन्यो सन्तामनाः ॥ ८८ ॥ इतस वैभारगिरौ श्रीवीर: समवासरत्। विदाश्वकार तं सद्यो धन्यो धर्मसृष्ट्रहिरा ॥ ८० ॥ दत्तदानः सदारोऽसावारुह्य शिविकां ततः। भवभीतो महावीरचरणी ग्ररणं ययौ ॥ ८१ ॥ सदार: सोऽयहीद् दीचां तती भगवदन्तिके। तच्छुला पालिभद्रोऽपि जितंमन्यः प्रतत्वरे ॥ ८२ ॥ सोऽन्वीयमानस्तदनु श्रेणिकेन महीभुजा। उपेत्य श्रीमद्वावीरपादमूलेऽयद्वीद् व्रतम् ॥ ८३ ॥

⁽१) खच प्रोक्शिख-।

ततः सपरिवारोऽपि खामी मिडार्थनन्दनः। विश्वत्वत्यतोऽगच्छत् सयूच इव इस्तिराट् ॥ ८४ ॥ धन्यस गालिभद्रस तावभूतां बसुत्रुती । मइत्तपस तैपात खन्नधारासहोदरम् ॥ ८५ ॥ पचाद् मासाद् हिमास्यास्त्रिमास्या मासचतुष्टयात्। श्रदीरनिरपेची ती चक्रतः पारणं सुनी ॥ ८६ ॥ तपसा समजायेतां निमासक्षिराक्षको । चर्मभस्त्रोपमौ गालिभद्रधन्यौ महासुनौ ॥ ८० ॥ षन्येयु: श्रीमद्वावीरखामिना सद्य तौ सुनी। भाजग्मत् राजग्रहं पुरं जनाभुवं निजाम् ॥ ८८ ॥ ततः समवसरणस्थितं नन्तुं जगत्पतिम्। चहाऽतिशययोगेनाच्छिनमीयुर्जनाः पुरात्॥ ८८॥ मासपार्णके प्रालिभद्रधन्यावुभावपि। कालि विद्वतुं भिचार्थं भगवन्तं प्रणेमतुः ॥ १०० ॥ माख्यार्घात्पारणं तेऽचेत्य्त्रः स्वामिना ततः। इच्छामीति भगन् गालिभद्री धन्ययुती ययी॥१॥ गला भट्राग्टइहारि तावुभाविप तस्तु:। तपः चामतयातीच न केनाप्युप चिती॥ २॥ त्रीवीरं ग्रालिभट्रं च धन्यमप्यदा वन्दितुम्। यामीति व्याकुला भद्राऽप्यज्ञासीदुसुका न ती ॥ ३॥ चयमेकमवस्थाय तत्र ती जग्मतुस्ततः। सइवी नगरदारप्रतोखा च निरीयतः ॥ ४॥

तदाऽऽयान्ती पुरे तिस्मिन्विक्षेतुं दिधसिपेषी । यालिभद्रस्य प्राग्जनामाता धन्याऽभवत्परः ॥ ५ ॥ शालिभद्रं तु सा प्रेच्य सन्द्वात'प्रस्तवस्तनी। वन्दिला चरणी भक्त्या दाभ्यामपि ददी दिध ॥ ६॥ त्रीवीरस्यान्तिके गत्वा तदालोच्य क्रताचालिः। गालिभद्रोऽवदत्स्वामिसात्रतः पारणं कथम् ?॥०॥ सर्वज्ञोऽप्याचचचेऽय ग्रालिभद्र ! महासुने !।. प्राग्जयमातरं धन्यामन्यदयम्बनयाजम् ॥ ८ ॥ कला पारणकं दभाऽऽपृच्छा च स्वामिनं ततः। वैभाराद्धिं ययौ गालिभद्रो धन्यसमन्त्रितः ॥ ८॥ शिलातले शालिभद्रः सधन्यः प्रतिलेखिते। पादपीपगमं नाम तवानशनमाश्रयत् ॥ १०॥ तदा च भद्रा तमाता श्रेणिक्य मश्रीपति:। प्राजग्मतुर्भित्तयुत्ती श्रीवीरचरणान्तिकम् ॥ ११॥ ततो भद्राऽवद्बन्धशालिभद्री क ती सुनी ?। भिचार्यं नागती कस्मादसाहेश्म जगत्पते । ॥ १२ ॥ सर्वज्ञोऽपि बभाषे तौ लहेश्मनि सुनी गती। जाती न त भवत्ये हागमनव्यय चित्तया ॥ १३ ॥ प्राग्जनामाता लासूनोर्धन्या यान्ती पुरं प्रति। ददी दिध तयोस्तेन पारणं चक्रतुष ती ॥ १४॥

⁽१) ड -प्रस्तव-।

चभावय महासची 'सखरी भवसुजिभतुम्। वैभारपर्वते गलाऽनगनं ती प्रचक्तः ॥ १५ ॥ श्रीणिकेन समं भट्टा वैभाराद्विं ययी ततः। तथास्थितावपश्यच तावश्मघटिताविव ॥ १६ ॥ तलाष्ट्रमय प्रश्चनी सारनी तत्सुखानि च। सारोदीद्रोदयन्तीव वैभाराद्रिं प्रतिखनैः ॥ १०॥ भायातोऽपि ग्टइं वस ! मया तु खल्पभाग्यया । न जातोऽसि प्रमादेनाप्रसादं मा जया मयि॥ १८॥ यदापि त्यत्तवासस्यं तथापि निजदर्भनात्। पानन्दयिषसि हगी पुरत्यासीत्मनोरयः ॥ १८ ॥ भारकीषासुना पुत्र ! शरीरत्यागइतुना । मनोर्षं तमपि मे भङ्क्षमस्य्वतोऽधुना ॥ २०॥ प्रारसं यत्तपस्तन न ते विज्ञीभवास्यहम्। किन्खेतलाकं ग्रतमं शिलातलिमतो भव॥ २१॥ प्रशोचे श्रेषिको इर्धसाने 'किमम्ब ! रोदिषि ?। र्देहग् यस्याः सुतः स्त्रीषु श्लमेका पुत्रवत्यसि ॥ २२ ॥ तत्त्वज्ञीऽयं महासत्त्वस्यज्ञा त्यगमिव त्रियम् । प्रपेदे स्वामिन: पादान् साचादिव परं पदम् ॥ २३ ॥

⁽१) खच सत्वरं।

⁽३) खडलं वैका।

⁽३) कगच किंनाम।

मसी जगत्स्वासिशिष्यानुक्षं तप्यते तपः ।

सुधाऽनृतप्यते सुन्धे ! किं त्यया स्त्रीस्त्रभावतः ? ॥ २४ ॥

भद्रैवं बोधिता राज्ञा विन्द्त्वा तौ सङ्गामनी ।

विमनस्त्रा निजं धाम जगाम श्रेणिकस्त्रथा ॥ २५ ॥

सत्ता ततस्तौ सर्वार्धसिङस्त्रगं बभूवतुः ।

सुरात्तमौ त्यस्त्रंगसागरप्रमितायुषौ ॥ २६ ॥

सत्पावदानफलसम्पदमितीयां

स प्राप सङ्गमक श्रायितवर्षमानाम् ।

कार्यो नरैरिवितयातियिसंविभागे

भाग्याधिभिनेनु ततः सततं प्रयवः ॥ १२० ॥

॥ इति सङ्गमककथानकम् ॥ ८८ ॥

उक्तानि दादशव्रतानि, श्रय सच्छेषमितचाररचणसचणं प्रस्तीतुमादः—

व्रतानि सातिचाराणि सुक्तताय भवन्ति न । चित्रचारास्ततो हियाः पञ्च पञ्च व्रते व्रते ॥ ८९ ॥

प्रतिचारो मालिन्यं तयुक्तानि व्रतानि न सुक्तताय भवन्ति, तद्र्थमेवैकैकिस्मिन् व्रते पञ्च पञ्चातिचाराः परिचरणीयाः । ननु सर्वविरतावेषातिचारा भवन्ति, संज्वलनोदय एव तेषामिभि-धानात्। यदाष्ट--

'सम्बेवि च चर्चारा संजलकायं तु उदयती हुंति।

मूलच्छिकं पुष होर बारसण्डं कसायायं ॥ १ ॥
संव्यलनोदयस सर्वविरतानामेव, देशविरतानां तु प्रत्यास्थानावरकोदय रित न देशविरतावितचारसभावः। युक्यतं चैतत्,
पत्थीयस्वात्तस्याः, कुन्युगरीरे व्रषाद्यभाववत्।

तथाडि--

प्रयमाणुत्रते स्यूचं सङ्खं निरपराधं दिविधं विविधेनेत्यादिविकासीविशेषितत्वेनातिस्स्मतां गते देशाभावात्वयं देशविराधनाकपा प्रतिचारा भवन्तु. प्रतः सवैनाश एव तस्योपपद्यते । मङाव्रतेषु तु तं संभवन्ति, मङ्खादेव ; इस्तिश्ररीरे द्रणपद्यवन्धादिवदिति । उद्यते । देशविरतावित्यारा न संभवन्तीत्यसङ्गतम् ।
उपासकदशादिषु प्रतिव्रतमतिचारपञ्चकाभिधानात् । प्रय भङ्गा
एव ते, न त्वतिचाराः । नैवम् । भङ्गाद्वेदेनातिचारस्यागमे
संमतत्वात् । यचोक्तम् । सर्वेऽप्यतिचाराः संञ्चलनोदय एव ।
तत्तत्वत्यम् । केवलं सर्वविरतिचारित्रमेवाश्रित्य तदुच्यते, न तु
सम्यक्तदेशविरती । यतः स्थेवि प्रचर्यारा द्रत्यादि गाद्याया
एवं व्याख्या संञ्चलनानामेवोदये सर्वविरतावितचारा भवन्ति,
श्रेषोदये तु मूलच्छेद्यमेव तस्याम् । एवं च न देशविरतावितचाराभावः ॥ ८८ ॥

⁽१) वर्षेऽपि च चातिचाराः वं व्यवनानां तु उदयतो भवन्ति । मूबच्छेदां प्रनर्भवति द्वाद्यानां कषायाचाम् ॥ १ ॥

तत्र प्रथमत्रते तानाइ —

क्रोधाइस्वश्क्वविच्छेदोऽधिकभाराधिरोपणम् । प्रहारोऽन्नादिरोधस्राहिंसायां परिकौर्त्तिताः॥८०॥

प्रहिंसायां प्रथमाणुव्रते प्रमी पञ्चातिचाराः — बन्धी रज्ज्वादिना गोमहिषादीनां नियम्बणम्; स्वपुतादीनामपि विनयपाहणार्थं क्रियते, पतः क्रीधादित्य्क्रम्; क्रीधात् प्रवलकषायीदयाची बन्धः स प्रथमोऽतिचारः १। इवः गरीरं लग्वा, तस्याः हिदो देधीकरणम्; सच पादवस्त्रीकोपहतपादस्य प्रतादेरपि क्रियते इति क्रोधादित्यतुवर्त्तते। क्रोधाद्यः क्रविच्छेदः स दितीयोऽति-चार: २। प्रधिकस्य वोद्मशकास्य भारस्यारीपणं गी-करभ-रासभ-मनुष्यादेः स्काथे पृष्ठे शिरसि वा वाहनायाधिरीपणम् ; इहापि क्रीधादित्यनुवर्त्तते, 'तेन क्रोधात्तदुपलचिताक्रीभादा यद्धिक-भारारोपणं स द्वतीयोऽतिचार: ३। प्रहारो सगुडादिना ताडनं क्रोधादेवेति चतुर्थोऽतिचार: ४। प्रवादिरोधो भोजनपानाई-निषेध: क्रोधादेवेति पञ्चमोऽतिचार: ५। पत्र चायमावध्यक-चृष्णीदातो विधि:। बन्धो द्विपदानां चतुष्पदानां वा स्थात्, सोऽपि सार्थकोऽनर्थको वा, तवानर्थकस्तावद् विधातुं न युच्यते, सार्थकः पुनरसी दिविध:, सापेची निरपेचय, तत्र सापेची यो दाम-यन्यिना शिथिनेन, यस प्रदीपनादिषु मीचिथितुं हे सुं वा शकाती। निरपेको यत् नियलमत्वर्धेच बध्यते। एवं तावत्

⁽१) कतत्।

चतुष्पदानां बन्धो दिपदानामपि दासदासीचीरपाठादिप्रमत्तः पुत्रादीनां यदि बन्धस्तदा सविक्रमणा एव बन्धनीया रच्चणीयास. यथाऽग्निभयादिषु न विनम्यन्ति ; तथा द्विपदचतुष्पदाः श्रावकेण त एव संग्रहीतव्या ये भवदा एवासते इति, इविच्छेदीऽपि तथैव। नवरम्। निरपेची इन्तपादकर्णनासिकादि यविर्देशं किनत्ति. सापेच: पुनर्गेष्डं वा पदवी किन्छादा दहेदेति; तथाऽधिक-भारोऽपि नारोपयितव्यः, पूर्वमेव हि या हिपदादिवाहनेन जीविका सा त्रावकेण मोक्तञा, प्रधान्याइसी न भवेत्; तदा हिपदीऽयं भारं खयमुरिचपति, पवतारयति च तं वाद्यति, चतुष्यदस्य तु यथोचितभारः किसिटूनः क्रियते. इलशकटादिषु पुनरुचितवेलायामसौ सुच्यत इति ; प्रश्वारोऽपि तथैव । नवरम् । निरपेच: प्रहारो निर्दयताडना, सापेच: पुन: त्रावकेणादित एव भीतपर्षदा भवितव्यं, यदि पुनः कीऽपि न करोति विनयं तटा तं मर्माण सुक्का लतया दवरकेण वा सक्तद् हिवी ताडयेदिति। तथा प्रवपानादिरोधो न कस्यापि कर्त्तव्यस्ती स्ववसुची प्रव सित 'सियते; स्त्रभोजनवेलायां तु ज्वरितादीन विना नियमत एवान्यान् विधृतान् भोजयित्वा खयं भुष्त्रीत ; प्रवादिरोधोऽपि सार्धकानर्धकभेदी बन्धवत् द्रष्टव्य:। नवरम्। सापैची रीग-चिकिसाधें स्थात्, भपराधकारिण च वाचैव वदेद्—भदा ते न दास्वर्त भोजनादि। ग्रान्तिनिमित्तं चोपवासादि कारयेत्।

⁽१) ड चिवेत।

⁽२) स वासेवं।

किं बहुना १ मूलगुणस्थाहिंसालचणस्थातिचारो यथा न भवति
तथा यतनया वर्त्तनीयम्। ननु हिंसैव त्रावकेण प्रत्यास्थाता
तती बन्धादिकरणेऽिष न दोषो हिंसाविरतेरखण्डितत्वात्;
प्रथ बन्धादयोऽिष प्रत्यास्थातास्तदा तत्करणे व्रतभक्त एव, विरतिखण्डनात्। किञ्च। बन्धादीनां प्रत्यास्थ्यत्वे व्रतियत्ता 'विष्ठीयेंत;
प्रतिव्रतमतिचारव्रतानामाधिक्यादिति। एवं च न बन्धादीनामतिचारतित। उच्यते — मत्यं हिंसैव प्रत्यास्थाता न बन्धादयः,
केवलं तत्रात्यास्थाने पर्यतस्तेऽिष प्रत्यास्थाता दृष्ट्याः, हिंसीपायत्वात्तेषाम्। न च बन्धादिकरणेऽिष व्रत्यसङ्गः किन्स्वतिचार
एव। कथम्। इह हिविधं व्रतम्- प्रन्तर्वृत्त्या बहिर्वृत्था च; तत्र
मारयामीति विकन्धाभावेन यदा कोपाद्याविधात्परप्राणप्रहाणमविगणयन् बन्धादी प्रवर्त्तते न च हिंसा भवति, तदा
निर्देयताविरत्यनपेचप्रवृत्तत्वेनान्तवृत्त्या व्रतस्य भङ्गः, हिंसाया
प्रभावाच बहिर्वृत्या पालनमिति। देशस्य भन्ननाहेशस्यैव
पालनादितचारव्यपदेशः प्रवर्त्तते।

तदुन्नम्---

न मार्यामीति क्रतव्रतस्य विनैव सृत्युं क इहातिचारः ?। निगद्यते यः कुपितो वधादीन् करोत्यसौ स्यानियमाऽनपेचः ॥१॥ सृत्यारभावानियमोऽस्ति तस्य कोपाइयाहीनतया तु भग्नः। देशस्य भङ्गादनुपालनाच पूच्या प्रतीचारमुदाहरन्ति ॥ २॥

⁽१) व विशोर्थते।

यचोत्तम् — व्रतियत्ता 'विभीयेंत इति । तदयुक्तम् । विश्वहार्ष्टिसा-सङ्गावे हि बन्धादीनासभाव एव । तत् स्थितमेतहन्धादयोऽति-चारा एव । बन्धादिग्रष्टगस्य चोपलचणलान्मस्यतन्त्रप्रयोगादयोऽ-न्येऽप्यतिचारतया ज्ञेया: ॥ ८०॥

षय हितीयस्य वतस्यातिचारानाह—

मिध्योपदेशः सहसाऽभ्यास्थानं गुद्धभाषगम् ।

विश्वस्तमन्वभेदस्य कूटलेखस्य सृन्दते ॥ ८१ ॥

मिय्योपदेशोऽसदुपदेशः, प्रतिपवसत्यवतस्य हि परपीडाकरं वचनससत्यमेव, ततः प्रमादात्परपीडाकरणे उपदेशे प्रतिचारी यथा,
वाद्मातां खरोष्ट्रादयो हन्यनां दस्यव इति । यहा । यथास्थितोऽर्धस्तथोपदेशः साधीयान्, विपरीतस्त प्रयथार्थिपदेशो यथा—परेण
सन्देशापवेन पृष्टे न तथोपदेशः । यहा । विवादे स्तयं परेण वा
प्रन्यतराभिसन्धानोपायोपदेश इति प्रथमोऽतिचारः १ । सङ्गा
प्रनालो याभ्यास्थानभसद्दाषाध्यारोपणं यथा—चीरस्व पारदारिको
विवादि । प्रन्थे तु सङ्गाऽभ्यास्थानस्थाने रङ्गस्थाभ्यास्थानं पठिताः;
व्याचचते च — रङ्ग एकान्तस्त्रम् भवं रङ्गस्थं रङ्गस्थेनाभ्यास्थानमभिग्रंसनमसद्ध्यारोपणं, रङ्गस्थाभ्यास्थानं यथा—यदि दृष्टा स्त्री
ततस्तस्यै कथ्यति,—षयं तव भक्ती तक्ष्यामितप्रसक्तः, प्रथ
सक्षी तत एवमाङ्ग्णयं ते भक्ती प्रीठवेष्टितायां मध्यमवयिः
योषिति प्रसक्तः, तथाऽयं खरकामो स्दुकाम इति वा परिङ्गति,

⁽१) बाज विधीर्धत-।

तथा स्तियमध्यास्थाति भर्त्तुः पुरः - यथा पत्नी ते कथयति एवमयं मां रहिस कामगर्दभः खलीकरोति, प्रथवा दम्पत्योरन्यस्य वा पुंसः स्तिया वा येन रागप्रकर्ष उत्पद्यते तेन ताह्या रहस्येनानेक-प्रकारेणाभियंसनं हास्यक्रीडादिना नलभिनिवेग्रेन; तथा सति व्रतमङ्ग एव स्थात्।

यदाइ

'सइसामक्छाणाई जाणंती जह करेका तो भंगो।

जह पुण णाभोगाई हिंती तो हो ह पह यारो ॥ १॥

इति हितीयोऽतिचारः २। तथा गुद्धां गूहनीयं न सर्वस्रे यत्कथनीयं
राजादिकार्थ्यसंबदं तस्थानिधकतिनैवाकारे कितादिभिक्तां लाऽन्यस्रे प्रकायनं गुद्धभाषणं यथा—एते ही दिसदं च राजविवहादिकं सन्त्रयन्ते, प्रथवा गुद्धभाषणं पेश्रन्यं यथा—हयोः
प्रोती सत्यामेकस्थाकारादिनीपसभ्याभिप्रायमितरस्य तथा
कथयति यथा प्रीतिः प्रण्याति। इति द्धतीयोऽतिचारः ३। तथा
विश्वस्ता विश्वासमुणगता ये सित्रक् सत्यादयस्तेषां सन्त्रो सन्त्रणं
तस्य भेदः प्रकायनं तस्थानुवादक् पत्वेन, सत्यत्वात् यद्यपि नातिचारता घटते तथापि सन्त्रितार्थपकायनजनितसक्वादितो सित्रकलवादिर्भरणादिसक्यवेन परसार्थताऽस्थासत्यत्वात् कथि इद्धान्यकपत्वेनातिचारतेव। गुद्धभाषणे गुद्धामाकारादिना विद्वायानिध-

⁽१) सहसाध्यायमानाहीन् जानन् वहि सुवौत् तती भन्नः। बहि पुनरनाभीगाहिध्यस्ततो भनत्वतिचारः॥१॥

कत एव गुद्धां प्रकाशयित, इन्ह तु खयं मन्द्रियत्वेव मन्द्रं भिनत्ती-त्यनयोभेंदः । इति चतुर्थोऽतिचारः ४। तथा कूटमसङ्गृतं तस्य लेखो लेखनं कूटलेखः, प्रन्यसङ्ग्पाचरसुद्राकरणम्, एतच यद्यपि कायेनासत्यां वाचं न वदामीत्यस्य न वदामि न वादयामीत्यस्य वा व्रतस्य भङ्ग एव, तथापि सहसाकारानाभोगादिना पित-क्रमादिना वाऽतिचारः ; प्रथवा प्रसत्यमित्यसत्यभणनं मया प्रत्यास्थातमिदं पुनर्लेखनमिति भावनया व्रतसापेचस्थाति-चार एवेति पञ्चमोऽतिचारः ५॥ ८१॥

षय हतीयव्रतातिचारानाइ --

स्तेनानुत्ता-तदानौतादानं हिट्राज्यलङ्गनम्।
प्रतिरूपिक्रया मानान्यत्वं चास्तेयसंत्रिताः॥ ८२॥

स्तेनासीरास्तेषामनुज्ञा-इरत यूयमिति इरणिक्तयायां प्रेरणा,
प्रिया स्तेनोपकरणानि कुशिकाकर्जरिकाघर्षितादीनि तेषा
भिष्णं विक्रयणं वा स्तेनानुज्ञा। प्रव च यदापि चीर्यं न
करोमि न कारयामीत्येवं प्रतिपद्मवतस्य स्तेनानुज्ञावतभङ्ग एव,
तथापि किमधुना यूयं निर्व्यापारास्तिष्ठत १, यदि वो भक्तादि नास्ति
तदाऽइं तइदामि १, भवदानीतमोषस्य वा यदि विक्रायको न
विद्यति तदाऽइं विक्रेष्ये १ इत्येवंविधवचनैसीरान् व्यापारयतः
स्वकत्यनया तद्मापारणं परिइरतो व्रतसायेचस्यासावतिचारः।
इति प्रथमोऽतिचारः १। तथा तच्छव्देन स्तेनपरामग्रीः स्तेनैरानीतमाद्भतं कनकवस्त्रादि तस्यादान ग्रहणं मूत्येन सुधिकया

वा तदानीतादानं, स्तेनानीतं हि काणक्रयेण मुधिकया वा प्रऋव ग्रह्मं बोरो भवति, तत्र बीर्य करणाषुत्रभङ्गः, वाणि ऋमेव मया क्रियते न चौरिकेत्यध्यवसायेन व्रतसापेचलात 'तहक इति भङ्गाभङ्गरूपोऽतिचारः । इति दितीयः २ । तथा दिषोविरुद्यो-राजोरिति श्रेष:, राज्यं नियमिता भूमि: कटकं वा तस्य सङ्घनं व्यवस्थाऽतिक्रमः ; व्यवस्था च परस्परविरुद्धराजक्तेव, तम्बद्धनं चान्यतरराज्यनिवासिन इतरराज्ये प्रवेश: इतरराज्य-निवामिनो वा प्रन्यतरराज्ये प्रवेधः, दिड्राज्यलङ्गनस्य यद्यपि खलामिना चननुचातस्य 'सामिजीवादत्तं तिखयरेणं तहेव य गुरू हिं' इत्यदत्तादानमञ्जायोगेन तत्नारिणां च चौर्यदण्ड-योगेन घटत्तादानकपलाइतभङ्ग एव, तथापि दिङ्राज्यलङ्घनं कुर्वता मया वाणिज्यमेव क्रतं न चौर्यमिति भावनया व्रतसापेनलाक्षोके च चौरोऽयमिति व्यपदेशाभावादतिचारता। दति ढतीय: ३। तथा प्रतिक्षं महग बीहीणां पसिन्नः, प्रतस्य वसा, हिङ्गी: खदिरादिवेष्ट:, तैलस्य सूत्रं, जात्यसुवर्षक्ष्पयो-र्युत्तिसुवर्णरूप्ये, दत्यादिप्रतिरूपेण क्रियाव्यवहारः, ब्रीह्यादिषु पलञ्जादि प्रक्रिप्य तत्तिहिकीणीते। यहा, श्रपह्नतानां गवादीनां समृङ्गाणामग्निपक्षकालिङ्गीफलखेदादिना मृङ्गाच्यधीमुखानि प्रगुणानि तिर्यग्वसितानि वा यथारुचि विधाया न्यविधत्विमव तेषामापाद्य सुखेन धारणविक्रयादि करोति। इति चतुर्थः ४।

⁽१) सामा वा भ-।

⁽१) कड - वाकात्विव।

तथा मीयतेऽनेनेति मानं कुडवादि, पलादि, इस्तादि, सस्यान्यत्वं हीनाधिकत्वं, हीनमानेन ददाति, पिधकमानेन ग्रह्माति। हित पश्चमः ५। प्रतिक्पिक्रिया मानान्यत्वं च पर-व्यक्षनेन परधनग्रहणक्पत्वाह्म एव, केवलं खात्रखननादिक-मिव चौर्यं प्रसिद्धं, मया तु विणक्षलेव कर्तति भावनया व्रत-रच्चणोद्यत्वादितिचारावेविति। प्रयवा स्तेनानुद्यादयः पञ्चाप्यमी व्यक्तचौर्यक्पा एव, केवलं सहसाकारादिना प्रतिक्रमव्यति-क्रमादिना वा प्रकारेण विधीयमाना प्रतिचारतया व्यपदिस्थन्ते। न चैते राजसेवकादीनां न सन्धवन्ति, तथाहि—प्रावयोः सप्ष्ट एव सन्धवः, हिड्राज्यलङ्गनं तु यदा सामन्तादिः कथित् स्वस्तामिनो वित्तमुपजीवित, तहिरुद्धस्य च सहायो भवित, तदाऽस्थातिचारो भवित, प्रतिक्पिक्रया मानान्यत्वं च यदा राजा भाष्डागारे द्रव्याणां विनिमयं मानान्यत्वं च कारयित, तदा राज्ञोऽप्यतिचारो भवित। एते च पञ्चाप्यस्तेयव्रतात्रिता प्रतिचाराः॥ ८३॥

षय चतुर्धवतातिचारानाइ—

दूलरात्तागमोऽनात्तागतिरन्यविवाहनम्।

मदनात्याग्रहोऽनङ्गक्रीडा च ब्रह्माणि स्मृताः ॥ ८४॥ ब्रह्माणि ब्रह्मचर्यवते, एतेऽतिचाराः स्मृताः। इत्वरी प्रतिपुर्वण-मयनगीला, विश्वा इत्वर्धः; सा चासावात्ता च कञ्चिलालं भाटीप्रदानादिना संग्रहीता, पुंवद्वावे इत्वरात्ता । ष्रथवा इत्वरं स्तोकमप्युच्यते, इत्वरं स्तोकमत्यमात्ता इत्वरात्ता, विस्पष्टपटुवत् समासः। भयवा इत्वरकालमात्ता इत्वरात्ता, मयूर्व्यंसकादित्वात् समासः, कालग्रव्यलीपय। तस्यां गम भावेवनम्।
इयं चात्र भावना-भाटीप्रदानादित्वरकालस्वीकारेण स्वकलतीकात्य विद्यां सेवमानस्य स्वबुद्धिकस्पनया स्वदारत्वेन व्रतसापेचचित्तत्वात्र भङ्गः, भस्पकालपरिग्रहाच वस्तृतोऽन्यकलत्वत्वाद्वङ्गः,
इति भङ्गाभङ्गरूपत्वादित्वरात्तागमोऽतिचारः। इति प्रथमः १।
तथा भनात्ता भपरिग्रहीता विद्या स्वैरिणी, प्रोषितभर्तृका
कुलाङ्गना वाऽनाथा तस्यां गितरासेवनम्। इयं चानाभोगादिना भतिकमादिना वा भतिचारः। इमी चातिचारी स्वदारसन्तोषिण एव, न तु परदारवर्जकस्य; इत्वरात्ताया विद्यात्वेन
भनात्तायाः स्वनाथतयैवापरदारत्वात्, भेषास्वितिचारा इयोरिपः;
इदं च स्वाऽनुपाति।

यदाद्य:---

'सदारसंतोषस्य इमे पञ्च श्रद्यारा जाणियव्या न समायरिश्रव्या। श्रम्ये लाहु: — इत्वरात्तागम: खदारसन्तोषवतोऽतिचारस्तत्त भावना क्रतेव, श्रनात्तागितस्तु परदारवर्जिन: । श्रनात्ता हि वेश्या यदा तां ग्रहीतान्यसक्तभाटिकामभिगच्छिति, तदा परदार-गमनजन्यदोषसभावात् कथित् परदारत्वाचाभङ्गत्वेन भङ्गाभङ्ग-रूपोऽतिचार: । इति हितीय: २। तथाऽन्येषां स्रस्वापत्यव्यतिरि-

⁽१) सहार्यनोषस्मे पश्चातिचारा चातव्याः, न समाचरितव्याः।

कानां विवाहनं विवाहकरणं कन्याफललिप्या, स्नेष्टसब्बन्धादिना वा परिणयनविधानम्। इदं च खदारसन्तोषवता खकलतात् परदारवर्जकोन च खकलत्रविद्याभ्यामन्यत्र मनोवाकायैमें युनं न कार्य्यं न च कार्र्णायमिति यदा प्रतिपत्नं व्रतं भवति, तदा प्रन्यविवाहकरणं मेथुनकारणमधेतः प्रतिषिद्यमेव भवति, तद्गती तु मन्यते—विवाह एवाऽयं मया विधीयते न सेथुनं कार्यते इति व्रतसापेक्तवादितचार इति कन्याफललिपा च सम्यग् दृष्टरव्युत्पन्नाऽवस्थायां सन्धवति। नन्वन्यविवाहनवत् खापत्यविवाह-नेऽपि समान एव दोषः। सत्यम्। यदि खकन्याया विवाहो न कार्यते, तदा खच्छन्दचारिणी स्थात्, ततम् गासनोपघातः स्थात्; विहितविवाहा तु पितिनियन्त्रितत्वेन न तथा स्थात्। परिऽप्याहः—

पिता रचति कौमारं भर्ता रचति यौवने।

पुत्रस् स्विति भावे न स्त्री स्वातन्त्राम हित ॥ १ ॥

यस्तु दाशाईस्य कषास्य चेटकराजस्य च स्वापत्येष्विप विवाहनियमः सूयते, स चिन्तकान्तरसङ्गावे द्रष्टव्यः । भन्ये लाहः—
भन्यस्य कलताऽन्तरस्य विशिष्टसन्तीषाभावात् स्वयं विवाहनमन्यविवाहनम् । अयं स्वदारसन्तुष्टस्याऽतिचारः । इति द्वतीयः ३ ।

सदने कामेऽत्याग्रष्टः परित्यक्तान्यसकलव्यापारस्य तदध्यवसायतः

योषामुखकचोक्रपस्थान्तरेष्वविद्यप्ततया प्रक्षिप्य प्रजननं महतीं
विलां नियलों स्तत एवास्ते, चटक इव घटकायां सृह-

मृड्यीषायामारोइति, जातबसत्त्रयय वाजीकरणान्य्पयुङ्क्ते ; भनेन खल्बीवधप्रयोगेण गजप्रमेकी तुरगावमर्दीव पुरुषो भवताति ब्हारा इति चतुर्धः ४। तथा अनङ्गः कामः, स च पुंस: स्त्रीपुंनपुंसकेषु सेवनेच्छा, इस्तकर्मादीच्छा वा वेदोदयात्। योषितोऽपि योषिवपंसकपुरुषासेवनेच्छा इस्तकमीदीच्छा वा, नपंसकस्यापि नपंसकपुरुषस्त्रीसेवनेच्छा इस्तकर्मादीच्छा वा। एयोऽनङ्गो नान्यः कथित् तेन तिस्मन् वा क्रोडा रमणमनङ्ग-क्रीडा। यदा। प्राष्टार्यैः काष्ठपुस्तफनमृत्तिकाचर्मादिभिर्घटितैः प्रजननै: खलिङ्गेन क्षतकत्योऽपि योषितामवाचदेशं भूयो भूयः कुयाति, केशाकर्षणप्रहारदानदन्तनखकदर्धनाऽऽदिप्रकारैय मोह-नीयकर्मावेशात् तथा क्रोडित यथा बलवान् रागः प्रस्यते। भगवाऽङ्गं देशवयवी सेय्नापेचया योनिर्सेहनं वा तहाति-रिकान्यक्रानि कुचकचोक्वदनादीनि तेषु क्रोडा मनक्रकीडा। रह च त्रावकाऽत्यन्तपापभीक्तया अग्नाचर्यं चिकोर्षुरिप यदा वेदोदयास हिन्तुतया तिंदधातुं न शक्तोति, तदा यापनामात्रार्थं खदारसन्तोषादि प्रतिपदाते। मैयुनमात्रेणैव च यापनायां सन्धवन्थां मदनात्यायहानक्रकीडे प्रधेत: प्रतिषिदे। तस्तेवने न च क्रसिद्-गुणः, प्रत्युत तालालिकी किदा राजयस्त्रादयस रोगा दोषा एव भवन्ति । एवं प्रतिषिद्याचरणाइको नियमाबाधनाचाभक्त इत्यति-चारावेती। यन्ये लन्ययाऽतिचारहयमपि भावयन्ति—स हि खदारसन्तोषी मैथुनमेव मया प्रत्याख्यातमिति खक्तव्यनया विक्यादी तत् परिचरति, नालिक्ननादि; परदारिववर्जकोऽपि परदारेषु मेथुनं परिहरति, नालिङ्गनादि; इति कथिषुतसापेष-लादितचारी। एवं खदारसन्तोषिषः पश्चातिचाराः परदार-वर्जकस्य तृत्तरे वय एवेति स्थितम्। धन्ये लन्यथाऽतिचारान् विचारयन्ति—

यथा-

'परदारविक्षणो पश्च हुन्सि तिश्चि च सदारसंतु ।

इत्योच तिश्चि पश्च व भंगविगपे हि भइयारा ॥ १ ॥

इत्यरकालं या परेण भाव्यादिना परिग्टहीता वैग्या तां गच्छतः परदारविजनो भङ्गः कथित् परदारत्वाक्तस्याः, लोके तु परदारत्वाक्रदेने भङ्ग इति भङ्गाभङ्गक्षपोऽतिचारः । भपरिग्टहीतायामनायक्रलाङ्गनायां या गितः परदारविजनः सोऽप्यतिचारः ; तत्कत्यनयाऽपरस्य भर्तुरभावेनापरदारत्वाहभङ्गः, लोके च परदारतया कटेभेङ्ग इति पूर्ववदितचारः । भेषासु त्रयो हयोग्दारत्या कटेभेङ्ग इति पूर्ववदितचारः । भ्रावास्वाह्या त्रयो ह्याग्दार्याच्या स्वप्यविवाह्या स्वप्यविवाद्या स्वप्यविवाद्या स्वप्यविवाद्या स्वप्यविवाद्या स्वप्यविवाद्या स्वप्यविवाद्या स्वप्यविवाद्या स्विचारः स्वप्यविवाद्या स्विचारक्षित्याः स्विचारक्षित्याः स्वप्यविवाद्या स्विचारक्षित्याः स्वप्यविवाद्या स्विचारक्षित्याः स्वप्यविवाद्या स्विचारक्षित्याः स्वप्यविवाद्या स्विचारक्षित्याः स्वप्यविवाद्या स्वप्यविवाद्याः स्वप्यविवाद्याः स्विचारक्षित्याः स्वप्यविवाद्याः स्विचारः । स्वप्यविवाद्याः स्विचारक्षेत्राः स्वप्यविवाद्याः स्वप्यविवादः स्वप्यविवा

⁽१) परदारवर्जिनः पश्च भवन्ति स्वयस्तु स्वहारवन्तुष्टे । स्विवास्त्रयः पश्च वा अङ्गविकस्पैरतिचाराः ॥ १ ॥

चारिणं वा खपितमितिक्रमादिनाऽभिसरत्या प्रतिचारः। श्रेषा-स्त्रयः स्त्रियाः पूर्ववत्॥ ८४॥

श्रय पश्चमव्रतस्याऽतिचारानाइ—

धनधान्यस्य कुप्यस्य गवादेः चेत्रवास्तुनः। हिराखहिमस्य संस्थाऽतिक्रमोऽत्र परिग्रहे ॥८५॥

श्रव त्रावकधर्मीचिते परिग्रहव्रते यः संख्याऽतिक्रमः सोऽतिचारः कस्य कस्येत्याह—धनं गणिमधरिममेयपरीक्षसचणम्।

'गणिमं जाईफलफोप्फलाइ धरिमंतु कुक्कुमगुडाइ। मैळां चोप्पडलोणाइ रयणवत्याइ परिच्छे कां॥१॥ धान्यं सप्तदमविधम्।

यदाइ--

यदाइ---

त्रीहिर्यवो मस्रो गोधूममुद्रमावितलचणकाः। भणवः प्रियङ्गकोद्रवमकुष्टकाः गालिराटकाः॥१॥ किञ्च कलायकुलस्यो सणसप्तदगानि धान्यानि।

धनं च धान्यं च धनधान्यं तस्य धनधान्यस्य । चत्रोत्तरत्र च समाहारनिर्देशः परिग्रहस्य पचिविधत्वज्ञापनार्धः । तथा सित ह्यतिचारपचकं सुयोजं भवति । कुप्यं कप्यसुवर्णव्यतिरिक्तं कांस्य-

⁽१) गिषमा आतिमनपूर्णमनादि घरिमा स जुङ्गमगुङाहि । मेर्यमच चवाचादि रक्षवस्थादि परिकादाम् ॥ १ ॥

लोइतास्त्रसीसकनपुरुद्वाखलिचारविकारोदिक्विकाष्ट्रमञ्चकम---चिकामस्रकरयगकटह्नप्रस्ति द्रयं, तस्य कुप्यस्य । गौरनड्रान-उनडुाही च, स पादिर्थस्य हिपदचतुष्यदवर्गस्य स गवादिः। प्रादिशन्दाना दिवनेषाऽविक करभरासभत्रगद्वस्यादिचत्व्यदानां इंसमयूरकुर्कुटश्वनसारिकापारापतचकोरादिपचि विपदानां पद्यी-उपवद्यादासीदासकर्मकरपदात्यादिमनुष्याणां च संग्रहः। चेतं सस्योत्पत्तिभूमिः, तत् विविधं, सेतुकेतूभयभेदात्। तत्र सेतुचे वं यदरघष्टादिजलेन सिचते. नेतुचेनमानागोदनपातनिषाद्यसस्यम् : उभयसुभयजलनिषाद्यसस्यम् । वालु ग्टहादि गामनगरादि च । तव ग्रहादि विविधं ; खातं भूमिग्रहादि, उच्छितं प्रासादादि, खातोच्छितं भूमिग्रइस्योपरि ग्रहादिसविवेश:। चेत्रं च वाल् चेति समाद्वारद्वतः। तथा द्विरखं रजतं, घटितं प्रघटितं चाऽनेकप्रकारं पानग्रादि, एवं सुवर्णमिषि, द्विरण्यं च हम चेत्यत्रा-ऽपि समाद्वारः । संख्या व्रतकाले यावक्वीवं चतुर्मासादिकानावधि वा यत्परिमाणं गरहीतं तस्या चित्रक्षम उत्तर्भनं संस्थातिक्रमा-ऽतिचार: ॥ ८५ ॥

ननु प्रतिपत्रव्रतसंख्याऽतिक्रमो भङ्ग एव स्थात्, कथमतिचारः ? इत्याच-

बस्वनाद्वावतो गर्भाद्योजनाद् दानतस्तथा।
प्रतिपद्मव्रतस्थेष पञ्चधाऽपि न युज्यते॥ ८६॥
न माचात् संस्थाऽतिक्रमः, किन्तु व्रतसापेचस्य बस्यनादिभिः

पञ्चभिद्धंत्भि: खब्द्या व्रतभक्तमकुर्वत एवातिचारी भवति ; बन्धनादयस यद्यासंख्येन धनधान्यादीनां परियष्ट्रविषयाणां सम्बधन्ते। तत्र धनधान्यस्य बन्धनात् संस्याऽतिक्रमो यथा---क्रतधनवान्यपरिमाणस्य कोऽपि सभ्यमन्यदा धनं धान्यं वा ददाति, तच व्रतभङ्गभयाचतुर्मास्यादिपरतो ग्रहगतधनादि-विक्रये वा कते यही धार्मीति भावनया बन्धनात्, यन्त्रचात्, रक्जादिसंयमनात्, सत्यद्वारदानादिक्पाद्वा स्त्रीकत्य तद् यह-एव तत् स्थापयतोऽतिचारः १। कुप्यस्य भावतः संस्थाऽतिक्रमो यथा-कुप्यस्य या संख्या कता तस्या: कयश्विद् हिगुणसे सति व्रतभङ्गभयाद् भावतो इयोईयोर्मीलनेन एकीकरणक्पात् पर्यायान्तरात् स्वाभाविकसंस्थावाधनात् संस्थामात्रपूरणाचाति-चारः। श्रववा भावतोऽभिप्रायाद्धिललचणादिवचितकालावधेः परतो ग्रहीष्यामि पतो नान्यसी देयमिति पराप्रदेयतया व्यवस्था-पयतोऽतिचार: २। तथा गोमिइषीवडवादेर्विवचितसंवसरादा-विधमध्य एव प्रसर्वे ऋधिकगवादिभावाद् व्रतभक्तः स्थादिति तद्भयात् कियत्यपि काली गति गर्भती गर्भग्रहणाहर्भस्यगवादिः भावेन बहिस्तदभावेन कथश्विद्वतभङ्गाद् व्रतिनोऽतिचार: ३। तथा चेत्रवासुनो योजनात् चेत्रवास्वन्तरमीसनाहृ हीतसंख्याया-प्रतिक्रमोऽतिचार:। तथा हि - किसैक मैव चेत्रं वास् चेत्यभिग्रह-वतोऽधिकतरतदभिलाषे सति व्रतभक्तभयात् प्राक्षनचेववातु-प्रत्यासन तद् रहीला पूर्वेण सह तस्यैकलकरणार्थे वृत्तिभिच्या-चापनयनेन तत्तत्र योजयतो व्रतसापेकत्वात् कथिहरित- षाधनाचातिचार: ४। तथा दिरखद्देकोर्दानादितरणाद् ग्रहीतसंख्याया प्रतिक्रमः। यथा केनापि चतुर्मासाद्यविधना दिरख्यादिसंख्या प्रतिपन्ना, तेन च तुष्टराजादे: सकाणात् तदिधकं तक्षकं तदन्यके व्रतमङ्गभयाद् ददाति पूर्णेऽवधी प्रष्ठीष्यामीत्यभिप्रायेणेति व्रतसापेचत्वादितचारः। एव ग्रहीत-संख्याऽतिक्रमः, पञ्चधाऽपि पञ्चभिरपि प्रकारेः, प्रतिपन्नवतस्य न्यावकस्य न युच्यते, कर्तुमिति ग्रेषः, व्रतमालिन्यहेतुत्वात्। पञ्चधित्युपलच्चमन्येषां सहसाकारानाभोगादीनाम्। उक्ता प्रशु-व्रतानां प्रत्येकं पञ्च पञ्चातिचाराः ५॥ ८६॥

भय गुषव्रतानामवसरः, तव्राऽपि प्रथमगुषव्रतस्य दिग्विरति-सचणस्याऽतिचारानाः —

स्मृत्यन्तर्धानमूर्ध्वाधिस्तर्यग्भागव्यतिक्रमः । चेवरहिस्य पञ्चेति स्मृता दिग्विगतिव्रते ॥८०॥

दिग्विरतिवरि पञ्चातिचाराः, इत्यनेन क्षेण, स्नृताः पूर्वाचार्यः ।
तदाया — स्नृतेयोजनयतादिक्पदिक्परिमाणविषयाया प्रतिस्वाकुललप्रमादिलमत्यपाटवादिनाऽन्तर्धानं भ्रंगः । तयाचि —
केनचित् पूर्वस्यां दिश्य योजनयत्रक्षं परिमाणं कतमासीत्,
गमनकाले च स्पष्टतया न स्मरति, किं गतं परिमाणं कतमृत
पञ्चायत् १ तस्य चैतं पञ्चायतमतिकामतोऽतिचारः यतमतिक्रामतो भङ्गः, सापेचलाचिरपेचलाचेति । तस्मात् स्मर्तस्वभिव ग्रज्दीतवतं, स्नृतिमूलं चि सर्वमनुष्ठानमिति प्रथमी-

ऽतिचार: १। तथा जहें पर्वततक्षिखरादेः, श्रधी ग्रामभूमि-ग्टह्कूपादेः, तिर्यक् पूर्वदिदिन्तु, योऽसी भागो नियमितः प्रदेशः, तस्य व्यतिक्रमः ; एते त्रयोऽतिचाराः । यसूत्रम्—

'उड्डिसिपमाणाइकमे श्रहोदिसिपमाणाइकमे तिरियदिसि-पमाणाइकमे इति॥

पतं च अनाभोगातिक्रमादिभिरेवाऽतिचारा भवित्त, अन्यथाप्रवृत्ती तु भङ्गा एव। यसु न करोमि न कारयामीति वा
नियमं करोति, स विविच्चतिचेत्रात् परतः स्वयं गमनतः
परेण नयनानयनाभ्यां च दिक्प्रमाणातिक्रमं परिइरति,
तदन्यस्य तु तथाविधपत्यास्थानाऽभावात् परेण नयनानयनयोने
दोषः २।३।४। तथा चेत्रस्य पूर्वादिदेशस्य दिग्वतविषयस्य
इस्तस्य सतः, वृद्धिर्वर्धनं पश्चिमादिचेत्रान्तरपरिमाणप्रचिपेण
दीर्घीकरणं, चेत्रवृद्धिरित पश्चमोऽतिचारः। तथा हि—किनापि
पूर्वापरिद्योः प्रत्येकं योजनयतं गमनपरिमाणं कृतं, स चोत्पत्रप्रयोजन एकस्यां दिशि नवितं योजनानि व्यवस्थाप्य अन्यस्यां
दिशि तु दश्चोत्तरयोजनयतं करोति, उभाभ्यामिप प्रकाराभ्यां
योजनयतद्वयरूपस्य परिमाणस्थाव्याइतत्वादित्येवमेकत्व चेत्रं
वर्धयतो व्रतसापेच्यत्वादितचार इति। यदि वाऽनाभोगात्
चेत्रपरिमाणमितिकान्तो भवित तदा निवर्तितव्यं, द्वाते वा न

⁽१) अर्ड्वहिक्पमाचातिक्रमोऽधोहिक्पमाचातिक्रमस्तिर्थग्हिक्पमाचाति-क्रमः॥

गन्तव्यम्, प्रन्योऽपि न विसर्जनीयः। प्रयानाम्मया कोऽपि गती भिवेत् तदा यत् तेन लब्धं, स्वयं वा विस्नृतितो गर्तन लब्धं तत् परिम्हर्तव्यम्॥ ८७॥

भव दितीयगुणवतस्य भोगोपभीगमानकपस्यातिचारानाइ--

सचित्तसीन सम्बद्धः सन्मिश्रोऽभिषवस्तथा । दुष्पक्कान्नार दूखेते भोगोपभोगमानगाः॥ ८८॥

सह चित्तेन चेतनया वर्तते यः स सचित्तः प्राष्टार एव, प्राष्टारसु दुष्णकाष्टार द्रव्यसादाक्तव्य सम्बध्यते, एवसुत्तरेष्ययाहारग्रब्दो योजनीयः । सचित्तसु कन्दसूलफलादिः एष्ट्रीकायादिवी । इष्ट्र च निवृत्तिविषयीक्ततप्रवृत्ती भद्मसद्भावेऽप्यतिचारासिधानं व्रतसापेच्ययानाभोगातिक्रमादिना प्रवृत्ती द्रष्ट्रव्यम् १ ।
तेन सचित्तेन सम्बदः प्रतिबदः सचित्तसंबदः, सचेतनवृत्तादिना
सम्बद्दो गुन्दादः पक्तफलादिवी, सचित्तान्तर्वीजः खर्जूरास्नादः,
तदाष्टारो हि सचित्ताष्टारवर्जकस्थानाभोगादिना सावद्याष्टारप्रवृत्तिक्रपत्वादितचारः । त्रथवा बीजं त्यच्यामि तस्यैव सचेतनत्वात्, कटाष्टं तु भचयिष्यामि तस्याचेतनत्वादिति बुद्दाा पक्षं
खर्जूरादिफलं मुखे प्रचिपतः सचित्तवर्जकस्थ सचित्तप्रतिबद्दाष्टारो
हितीयः २ । तथा सचित्तेन मित्रः ग्रबलः पाष्टारः सम्बत्राद्दारः ।
यथा—पार्ट्रकदािसवीजकुलिकािचभिटिकािदिमित्रः पूरणादिः,
तिलमित्रो यवधानादिवी, प्रयमप्यनाभोगातिक्रमादिनाऽतिचारः ।
प्रथवा सन्धवस्वित्तावयवस्थापक्ककिणकादेः पिष्टत्वादिना प्रचे-

तनमिति ब्द्या चाहारः सिबायाहारः व्रतसापेचलादतिचार इति खतीय: ३। मभिषवीऽनित्रद्रव्यसंधाननिष्यत्र: सुरासौवीरकादि:, मांसप्रकारखण्डादिवी, सुरामध्वाद्यभिस्वन्दिष्टच्यद्रयोपयोगी वा, भयमपि सावद्याहारवजेकस्यानाभीगातिक्रमादिनाऽतिचार इति चतुर्थः ४। तथा दुष्यको मन्दपक्षः स चासावाश्वारस दुष्पकाशारः, स चार्धस्त्रवर्णुकतन्दुस्यवगोधूमस्यूसमञ्हक'कर्कटकफसादिरै-हिकपत्यवायकारी यावता चांग्रेन सचेतनस्तावता परलोकमप्यप-इन्ति पृथ्कादेर्ष्यक्षतया सभावसाचेतनावयवत्वात् पक्कत्वेनाचेतन-इति भुञ्जानस्याऽतिचार इति पश्चमः ५। केचित् लपकाहारम-प्यतिचारत्वेन वर्णयन्ति । भपक्षं चाग्न्यादिना यदसंस्कृतम् । एष च सचित्ताहारे प्रथमातिचारेऽन्तर्भवति । तुच्छीषिभचणमपि केचिद्रिचारमाष्ट्र:। तुच्छीषधयय मुद्रादिकोमसिशस्वीरूपास्ताय यदि सचित्तास्तदा सचित्तातिचार एवान्तर्भवन्ति, भव भग्नि-पाकादिना श्रचित्तास्तर्ष्टिको दोष: ? इति । एवं रात्रिभोजनम-वादिनिवृत्तिष्विप श्रनाभोगातिक्रमादिभिरतिचारा भावनीयाः। एते पञ्चातिचारा भोगाभोगपरिमाणगता बोडव्या: ॥ ८८ ॥

भव भोगोपभोगातिचारातुपसंहरन् भोगोपभोगवतस्य लचणान्तरं तहतांचातिचारातुपदर्भयितुमाह— भमी भोजनतस्याज्याः कर्मतः खरकर्मतु । तस्मिन् पञ्चदश मलान् कर्मादानानि संत्यजीत्॥६६॥

⁽१) क -कटुकफब-।

षमी उत्तस्वरूपाः पञ्चातिचाराः, भोजनतो भोजनमाश्रित्य, त्याच्या वर्जनीयाः। भोगोपभोगमानस्य च व्यास्थानान्तरं— भोगोपभोगग्राधनं यद्रव्यं तदुपार्जनाय यत्कर्म व्यापारस्तदपि भोगोपभोगग्रब्देनोच्यते, कार्षे कार्योपचारात्। तत्व कर्मतः कर्मात्रित्य, खां कठोरं प्राणिवाधकं यत्कर्म कोष्टपालनगुप्ति-पालनवीतपालनादिरूपं तत्त्याच्यं, तस्मिन् खरकर्मत्यागलच्यो भोगोपभोगव्रते, पञ्चदम्य मलानतिचारान् संत्यजित्। ते च कर्मादानमञ्देनोच्यन्ते, कर्मणां पापप्रक्रतीनामादानानि कारणा-नीति कत्वा॥ ८८॥

तानेव नामत: स्रोवहयेन दर्शयति—

सङ्गारवनयकटभाटकस्फोटजीविका।
दल्तलाचारसकेयविषवाणिज्यकानि च॥१००॥
यन्त्रभीडा निर्लाञ्छनमसतीपोषणं तथा।
दवदानं सरःशोष दति पञ्चदय त्यजीत्॥१०१॥

जीविकाशब्दः प्रत्येकं सम्बध्यते । श्रष्ट्रारजीविका १ वनजीविका २ श्रकटजीविका ३ भाटकजीविका ४ स्फोटजीविका ५ । उत्तराघेंऽपि वाणिन्यशब्दः प्रत्येकमिसम्बध्यते । दन्तवाणिन्यं ६ लाजावाणिन्यं ७ रसवाणिन्यं ५ केशवाणिन्यं ८ विषवाणिन्यं १०; यन्त्रपीडा ११ निर्लाक्कनं १२ श्रसतीपोषणं १३ दवदानं १४ सरःशोषः १५ द्रत्येतान् पञ्चदशातिचारान् त्यजित् ॥ १०० ॥ १०१ ॥ क्रमेण पश्चदशाप्यतिचारान् व्याचष्टे, तचाङ्गारजीविकामास— त्रङ्गारभाष्ट्रकारणं कुम्भायः खर्णकारिता। ठठारविष्टकापाकाविति स्वङ्गारजीविका॥ १०२॥

यक्षारकरणं काष्ठदाहेनाऽक्षारिनिषादनं तिह्नियय, यक्षारकरणे हि षणां जीवनिकायानां विराधनासभाव:। एवं च ये येऽनि-विराधनारूपा भारभास्ते तेऽक्षारकर्मण्यन्तर्भवन्ति; प्रपञ्चाधं तु भेद-उत्तः। भाष्ट्रस्य चणकादिभजेनस्थानस्य करणं भाष्ट्रकरणं, भाष्ट्र-जीविकत्यर्थः। तथा कुभकारिता कुभकरणपाचनिक्तयनिमित्ता जीविका। तथा अयो लोष्टं तस्य करणघटनादिना जीविका। स्वर्णकारिता सुवर्णक्रप्ययोगीलनघटनादिना जीविका। कुभायः-स्वर्णान करोतीत्येवं घोलस्तस्य भावस्त्रत्ता। तथा ठठारत्वं ग्रुष्य-नागवक्रकांसपित्तलादीनां करणघटनादिना जीविका। इष्टका-पाकः इष्टकाकविक्तावीनां पाकस्तेन जीविका। इत्येवंप्रकारा भक्षारजीविका॥ १०२॥

भव वनजीविकामा र-

किन्ना किन्नवनपनप्रसूनफलविक्रयः।

काणानां दलनात् पेषाद् वृत्तिस्य वनजीविका॥१०३॥

किन्नस्य दिधाक्षतस्य पक्तिस्य वनस्य वनस्रतिससूहस्य

पनाणां प्रस्नानां फलानां च किन्ना किन्नां विक्रयो वनजीवि
केल्नरेण सम्बन्धः। काणानां च घरद्दादिना दलनाद देधी-

करणात्, शिलाशिलापुत्रकादिना पेषात् चूर्णीकरणाद्या हित्तः सा वनजीविका। वनजीविका च वनस्रतिकायादिचात-सम्भवा॥ १०३॥

भय भकटजीविकामाइ--

भक्टानां तदङ्गानां घटनं खेटनं तथा। विक्रयस्थिति भक्तटजीविका परिकीर्तिता ॥१०४॥

शकटानां चतुष्पदवाद्यानां वाह्यनानां, तदङ्गानां शकटाङ्गानां चक्रादीनां, घटनं खयं परेण वा निष्पादनं, खेटनं वाह्यनं, तद्य शकटानां सकटानां मेव सभावति खयं परेण वा; विक्रयस शकटानां तदङ्गानां च, इति सकलभूतोपमद्जननी गवादीनां च वध-वन्धादिहेतुः शकटजीविका प्रकीर्तिता ॥ १०४ ॥

षय भाटकजीविकामा ह—

शक्टोचलुलायोष्ट्रखराखतरवाजिनाम् । भारस्य वाह्रनाद् वृत्तिर्भविद्वाटकजीविका ॥१०५॥

यकटगब्द उक्तार्थः, उचाणो बनीवर्दाः, नुनाया मिष्ठवाः, उष्टाः करभाः, खरा रासभाः, प्रव्यतरा वेसराः, वाजिनोऽखाः, एतेषां भाटकनिमित्तं यहारवाष्ट्रनं, तस्माद् या वृत्तिः सा भाटकजीविका॥ १०५॥

षय स्कोटजीविकामाइ---

सरःकूपादिखननिशलाकुदृनकर्मभः। पृथिव्यारसासमृतैर्जीवनं स्फोटजीविका॥१०६॥

सरसः कूपस्य त्रादिग्रहणाद् वापीदीर्घिकारेः खननमोस्डकर्म, हलादिना वा चेत्रादेर्भूविदारणं; शिलाकुद्दनकर्म पाषाण-घटनकर्मः; एतेः पृथिव्याः पृथिवीकायस्य य त्रारम्भ उपमर्द-स्तस्य सम्भूतं सम्भवी येभ्यस्तैः पृथिव्यारम्भसभूतैः; उपलक्षणं चैतद् भूमिखनने वनस्पतित्रसादिजन्तुघातानाम्। एभिर्जीवनं स्कोटजीविकाः; स्कोटः पृथिव्या विदारणं तेन जीविका स्कोट-जीविकाः॥ १०६॥

घय दन्तवाणिच्यमाह—

दन्तकेशनखास्त्रित्वयोम्गो यष्टगमाकरे। नसाष्ट्रस्य विगज्यार्थं दन्तवागिज्यमुच्यते॥१००॥

दन्ता इस्तिनां उपलच्चणतादन्धेऽपि व्रसजीवावयवा दन्तग्रहणेन यह्मन्ते। तदेवाह — नेशासमयीदीनां, नखा घूनादीनां, प्रस्थीनि श्रहादीनां, त्वक् चिव्रकादीनां, रोमाणि इंसादीनां, तेषां ग्रहणं मूस्थादिना स्वीकारः, रोम्ण इत्येकवचनं प्रास्थङ्गत्वात्। श्राकरे तदुत्पत्तिस्थाने, व्रसाङ्गस्य व्रसजीवावयवस्य, वणिच्याभें वाणिच्यनिमित्तं; श्राकरे हि दन्तादिग्रहणात्र पुलिन्दानां यदा द्रव्यं ददाति तदा तत्प्रतिक्रयार्थं इस्वादिवधं ते कुर्वन्ति, भाकरग्रहणं चानाकरे दस्तादेग्रहणे विकये च न दीष इति भाषनार्थम्॥ १०७॥

भय लाचावाणिन्यमाह-

लाचामनःशिलानीलीधातकीटङ्गणादिनः।

विक्रयः पापसदनं लाचावाणिज्यमुच्यते ॥ १०८॥

षाचा जतु प्रवापि लाचायचणस्पम्पलचणमन्येषां सावद्यानां मनःशिलादीनाम्। तान्येवाच्च—मनःशिला कुनटी, नीली गुलिका,
धातकी हचविशेषः तस्याः त्वक् पृष्यं च मद्यसन्धानचितुधीतकी, टच्च्यः चारविशेषः; प्रादिशब्दात् संकूटादयो ग्टच्चन्ते,
तेषां विक्रयः। स च पापसदनं टच्च्यमनःशिलयोबीद्यजीवघातकः
त्वेन, नीस्या जन्तुघाताविनाभावेन, धातक्या मद्यद्देतुत्वेन तत्कास्त्रस्य च क्रमिहेतुत्वेन पापसदनत्वं ततस्त्विक्रयस्थाऽपि पापसदनत्वम्। सदेतद् लाचावाणिच्यम् चते॥ १०८॥

भ्रथ रसकेशवाणिज्ये एकेनैव स्रोकेनाच-

नवनीतवसाचौद्रमदाप्रभृतिविक्रयः।

दिपाचतुष्पाद्विक्रयो वाणिज्यं रसकेशयोः ॥१०८॥
नवनीतं दिधसारं, वसा मेदः, चौद्रं मध्न, मद्यं सुरा. प्रश्वतिग्रहणात् मज्जादिग्रहः। एषां विक्रयो रसवाणिज्यम्, दिपदां
मनुष्यादीनां चतुष्पदां गवाम्बादीनां विक्रयः केशवाणिज्यम्,
सजीवानां विक्रयः केशवाणिज्यमजीवानां तु जीवाङ्गानां

तिक्रयो दन्तवाणि च्यमिति विवेकः । रसकेशयोरिति यथा-संख्येन योगः । दीषासु नवनीते जन्तुसंमूर्च्छनं, वसाचीद्रयोः र्जन्तुचातो इवलं, मद्यस्य मदनजननं तहतकमिविचातचेति ; हिपाचतुष्पाहिक्रये तु तेषां पारवश्यं वधवन्धादयः चुत्पिपासा-पीडा चेति ॥ १०८॥

षय विषवाणिक्यमा ह--

विषास्त्रहलयन्त्रायोहरितालः दिवस्तुनः । विक्रयो जीवितम्रस्य विषवाणिज्यस्च्यते ॥११०॥

विषं यृङ्गिकादि तच्चोपलच्चणं जीवघातहित्नामस्त्रादीनाम्।
तान्धेवाच — यस्त्रं खद्गादि, इलं लाङ्गलं, यन्त्रमरघद्टादि, ययः
कुत्रीकुद्दालादिक्ष्णं, इरितालं वर्णकिविश्रेषः। यादिश्रब्दादन्धेषामुपविषाणां यहणम्। एवमादिवलुनो विक्रयो विषवाणिज्यं
विषादेविश्रेषणं जीवितम्नस्य प्रमीषां जीवितम्नत्वं प्रसिद्धमेव॥११०॥

त्रय यन्त्रपीडाकर्माह—

तिले चुसर्षपैरगड जलयन्ता दिपी डनम्।
दलते लस्य च क्रितिर्यन्त्रपीडा प्रकीर्तिता ॥१११॥
यन्त्रयन्दः प्रत्येकमिमसम्बध्यते। तिलयन्त्रं तिलपीलनी पकरणम्;
इच्चयन्त्रं को चुकादि, सर्वपैरण्डयन्त्रे तत्पीलनी पकरणे, जलयन्त्रमरघद्दादि, दलतेलं यत्र दलं तिलादि दीयते तेलं च प्रति-

ग्रज्ञते तहस्ततेसं तस्य क्रितिविधानिमिति, यम्यपीडा यन्त्र-पीडनं यम्त्रपीडाकमेषय पीडनीयतिसादिचीदात्तद्वतम्सजीव-वधाच सदोषत्वम्। सौकिका चिप ज्ञाचचते—दमस्नासमं चक्रमिति ॥१११॥

यय निर्लाब्यनकर्माष्ट--

नासाविधोऽङ्कानं सुष्काच्छेदनं पृष्ठगालनम् । कार्णकास्वलविच्छेदो निर्लाञ्क्रनसुदौरितम् ॥११२॥ नितरां लाञ्क्रनसङ्कावयवच्छेदः, तेन कर्म जीविका निर्लाञ्क्रनकर्म । तक्केदानाङ—नासाविधो गोमिश्वादीनाम्, पङ्कानं गवाखादीनां चिक्रकरणं, सुष्कोऽण्डस्तस्य च्छेदनं विधितकीकरणं गवाखादी-नामिव, पृष्ठगालनं करभाणां, गवां च कर्णकस्वलविच्छेदः । एषु अन्तवाधा व्यक्तेव ॥ ११२ ॥

प्रवासतीपोष्यमाच ---

सारिकाशुक्तमार्जारश्रवकुर्तुटकलापिनाम् ।
पोषो दाखास्र वित्तार्थमसतीपोषणं विदः ॥११३॥
पसत्यो दुःशीलास्तासां पोषणं, लिक्सतन्त्रम्, श्रकादीनां पुंसामिष
पोषणमसतीपोषणं, सारिका व्यक्तवाक् पिचविशेषः, श्रकः कीरः,
मार्जारो बिडालः, खा कुक्रः, कुक्रुटस्ताम्चचूडः, कलापी
मयूरः, पतेषां तिरसां पोषः पोषणं, दास्यास पोष इति वर्तते,
स च भाटीग्रहणार्थमसतीपोषः । एषां च दुःशीलानां पोषणं
पापहित्रेव ॥ ११३॥

भय दवदानसर:शोषाविक्षेत स्नोक्षेताइ —

व्यसनात् पुर्ण्यबुद्धाः वा दवदानं भवेद् द्विधा । सरःशोषः सरःसिन्धुच्चदादेरम्बुसंभ्रवः ॥ ११४ ॥

दयस्य दवाम्ने: लगादिद्हननिमित्तं दानं वितर्णं दवदानं, तच दिधा संभवति-व्यसनात् फलनिरपेचतात्पर्यात्. यथा वनेचरा एव-मेवाऽग्निं ज्वालयन्ति; पुण्यबुद्धा वा यथा मे दवा देया मरणकाले इयन्तो मम श्रेयोऽधें धर्मदीपोत्सवाः करणीया इति, भ्रयवा खगदाई सति नवलणाङ्गरोद्वेदाद् गावसरन्तीति चेत्रे वा सस्य-सम्पत्तिहद्योऽग्निञ्चालनम्। प्रत जीवकोटीनां वधः स्थात्। सरसः ग्रोषः सरःशोषः सरीयद्वणसुपलचणं जलागयान्तराणाम् । तदेवाइ-सर:सिन्धुइदादिभ्यो योऽम्बनो जलस्य संप्रवः सारणी-कर्षणं धान्यवपनार्थं, भादिग्रब्दात् तडागादिपरिग्रष्ठः । तवाऽखातं सर:, खातं तडागम् । सर:घोषे च जलस्य तहतानां चसानां तत्-म्नावितानां च षसां जीवनिकायानां वध इति सरःशोषदोषः। द्रत्युत्तानि पञ्चदश्यकमीदानानि, दिद्मात्रं चेदम्, एवंजातीयानां बह्ननां सावद्यकर्मणां न पुनः परिगणनिमिति। इइ चैवं विंगति-संख्याऽतिचाराभिधानमन्यचाऽपि पञ्चातिचारसंख्यया तजाती-यानां व्रतपरिणामकालुष्यनिबन्धनिवधीनामपरेषां संग्रह इति जापनार्थम्। तेन स्मृत्यन्तर्धानादयो यथासभावं सर्वेत्रतेष्वतिचारा द्द्रायाः। नन्बङ्गारकमीदयः कयं खरकमेष्यतिचाराः ?, खर-कर्मक्रपा एव द्वोतं। सत्यम्। खरकर्मक्रपा एवैतं, किन्खना-

भोगादिना क्रियमाणा प्रतिचाराः, उपत्य क्रियमाणाम् भङ्गा-एवेति ॥ ११४ ॥

भवानर्थदण्डविरितत्रतस्याऽतिचारानाह — संयुक्ताधिकरणत्वमुपभोगातिरिक्तता । मीखर्य्यमय कीत्कुच्यं कन्दर्पीऽनर्थदण्डगाः ॥११५॥

मनर्घदण्डगा इत्यनर्घदण्डविरतिव्रतगामिन एते पञ्चातिचारा:। तदाया - प्रधिक्रियते दुर्गतावाका त्नेनेत्यधिकर चमुद्रखला दिसं-युत्तम्, चटूखलेन सुग्रलं, इलेन फालः, गकटेन युगं, धनुषा गराः, एवमेकमधिकरणमधिकरणान्तरेण संयुक्तं संयुक्ताऽधिकरणं तस्य भावस्तस्तम्। इइ च त्रावकेण संयुक्तमधिकरणं न धारणीयम्। तथा सति हि यः किष्वत् संयुक्तमिषकरणमाददीत्, वियुक्तािष-करणतायां तु सुखेन परः प्रतिषेधयितुं प्रकाते। एतच चिस्नप्रदान-कपस्यानयदण्डस्यातिचारः १। तथा उपभोगस्योपलचणलाङ्गोगस्य चोक्तनिवैचनस्य यदितिरिक्तत्वंमितिरेकः सा उपभोगातिरिक्तता। भयं प्रमादाचरितस्याऽतिचारः। इइ च स्नानपानभोजनचन्दन-कुङ्मकस्तृरिकावस्त्राभरणादीनामतिरिक्तानामारश्रीऽनर्धदण्डः । भवाऽि वहसम्पदायः — मितिरतानि बह्ननि तैलामलकानि यदि ग्टब्साति, तदा तक्षीस्थेन बहव: स्नानार्थं तडागादी व्रजन्ति, ततस पूतरकाप्कायादिवधोऽधिक: स्यात्; न चैवं कस्पति, तत: को विधि: ? तत्र स्नाने चंह्ना तावहुष एव स्नातव्यम्, तदभावे तु तैलामलकेर्गृष्ट एव गिरो चर्षियिला तानि सर्वाणि गाटियला

तडागादीनां तटे निविष्टोऽस्त्रलिभिः स्नाति । तथा येषु पुष्पादिषु संस्रति: सश्ववति नानि परिहरति, एवं सर्वेत वाच्यमिति दितीयो-ऽतिचार: २। तथा मुखमस्याऽस्तीति मुखरोऽनासोचितभाषी वाचाट: तस्य भावो मीखर्थं धार्द्रापायमसभ्यासम्बद्धवन्ता-पिलम्, भगं च पापोपदेशस्यातिचारः, मौखर्यो सति पापोपदेश-सभावादिति ह्रतीय: ३। तथा कुदिति कुत्सायां निपातो, निपाता-नामानन्यात्। कुत् कुलितं कुचित भ्रन्यनीष्ठनासाकारचरण-मुखविकारै: सङ्चतीति कुल्चस्तस्य भाव: कौल्चम्, भनेक प्रकारा भग्डादिविडम्बनक्रिया इत्यर्थ:। श्रयवा कीक् श्रमिति पाठः, तत कुलितः कुचः कुकुचः सङ्गोचादिकियाभाक् तज्ञावः को कु चम्, प्रत च येन परी इसति, पात्मनस लाघवं भवति, न तादृशं वक्तं चेष्टितं वा कल्पते, प्रमादास्त्रयाचरणे चातिचार इति चतुर्थः ४। तथा कन्दर्पः कामस्तदेतुस्तत्रधानी वा वाक्प्रयोगी-ऽपि कन्दर्प:। इइ च सामाचारी---त्रावकेण न ताह्यं वक्तव्यं येन खस्य परस्य वा मोडोट्रेको भवतीति पद्ममः ५। एती द्वाविप प्रमादाचरितस्थातिचारी, इत्यवसिता गुणव्रताति-चारा:॥ ११५॥

भग शिचावतातिचारावसर:। तत्रापि सामायिकस्य
तावदितिचारानाः —

कायवाङ्मनसां दुष्टप्रिवाधानमनादरः।
गृत्यनुपस्थापनं च स्मृताः सामायिकव्रते॥११६॥

कायस्य वाची मनस्य प्रचिहितिः प्रणिधानम्, दुष्टं च तत्प्रचिधानं दुष्टप्रचिधानं सावद्ये प्रवर्तनं कायदुष्प्रचिधानं, वाग्दुष्पृचिधानं, मनोदुष्पृचिधानं चेत्यर्थः। तत्र प्रदीरावयवानां पाणिपादा-दीनामनिश्वतताऽवस्थापनं कायदुष्पृचिधानम्, वर्षसंस्काराभावी-ऽर्धानवगमसापलं च वाग्दुष्पृचिधानम्, क्रोधलोभद्रोष्टाऽभिमाने-ष्यादयः कार्यव्यासङ्गसन्धमस्य मनोदुष्पृचिधानम् ; एते चयोऽति-चाराः।

यदाषु:---

'मिनिरिक्खियापमिक्जिययिष्डकी ठाणमाइ विवन्ती।
हिंसाभावे वि न सो कडसामाइची पमायाउ॥१॥
कडसामाइड पुर्व्धि बुद्दीए पेडिजण भासिक्जा।
सद निरवक्जं वयणं मन्नइ सामाइयं न इवे॥२॥
सामाइयं तु काउं घरचिन्तं जो उ चिन्तए सही।
महवसहोवगची निरत्ययं तस्य सामाइयं॥३॥
तथाऽनादरोऽनुसाइ: प्रतिनियतवेलायां सामायिकस्थाकरणम्,

⁽१) चानिरोचिताऽप्रमार्जितस्विष्टिचे स्वानाहि सेवमानः । चित्रं साभावेऽपि न स कतसामाविकः प्रमाहात् ॥ १ ॥ कतसामाविकः पूर्वे युद्ध्या प्रेच्य भाषेत । सहा निर्वदां वचनमन्यचा सामाविकं न भवेत् ॥ १ ॥ सामाविकं त कत्वा स्टइ चिन्तां वस्तु चिन्तवेत् श्रादः । चार्तवयार्तीपगतो निर्वकं तस्य सामाविकम् ॥ १ ॥

यथा कथि चा करणम्, प्रबलप्रमादादिदोषात् करणानन्तरमेव पारणं च।

यदाहु:---

'काजण तक्वणं चित्र पारेद करेद या जिल्ल्काए।
प्रणविद्यसामादयं घणायराभी न तं सुदं॥१॥
इति चतुर्थः॥४॥ स्नृती स्नरणे सामायिकस्थाऽनुपस्थापनं
स्नृत्यनुपस्थापनं सामायिकं मया कर्तव्यं न कर्तव्यमिति वा,
सामायिकं मया कर्तं न कर्तमिति वा, प्रबलप्रमादाद्यदा न
स्नारति तदा प्रतिचारः, स्नृतिमूल्लाकोचसाधनाऽनुष्ठानस्य।
यदादः—

ैन सरद पमायजुक्तो जी सामादयं कया य कायव्यं।
कयमकयं वा तस्म द्व कयं पि विद्वलं तयं नेयं॥१॥
ननु कायदुष्पृणिधानादौ सामायिकस्य निर्धकत्वादिप्रतिपादने—
न वलुतोऽभाव एवोक्तः, प्रतिचारस्य मालिन्यक्ष्प एव भवतीति
कथं समायिकाभावे स भवेत् १, प्रतो भङ्गा एवेते नातिचारा द्दति
चेत्। उच्यते। प्रनाभोगतोऽतिचारत्वम्। ननु द्विविधं व्रविधेन
सावद्यप्रत्याख्यानं सामायिकां, तत्र च कायदुष्पृणिधानादौ प्रत्याख्यानभङ्गात् सामायिकांभाव एवं, तद्वङ्गजनितं च प्रायस्थिक्तं

 ⁽१) क्रत्वातश्चायमेन पारयति करोति वा यथेच्छम् ।
 व्यनवस्थितसामायिकमनादरादुन तत् गुद्धम् ॥ १ ॥

⁽२) न च्यरित प्रमादयुक्तो यः शामायिकं कहाच कर्तव्यम् । कतमक्षतं वातस्य खनुकतमपि विफलं तञ्ज्ञेयस्॥ १॥

विधेयं स्वात् मनोदुष्पृषिधानं चामकापरिष्ठारं मनसोऽनवस्वितत्वादतः सामायिकप्रतिपत्तः सकाधात्तदप्रतिपत्तिरेव श्रेयसी।
यदाष्ठः—षविधिकताहरमकतिमिति। नैवम्। यतः सामायिकं
दिविधं विविधेन प्रतिपत्रम्, तव्र च मनसा वाचा कायेन सावयं
न करोमि न कारयामीति षट् प्रत्यास्थानानि इत्येकतरप्रत्यास्थानभङ्गेऽपि भेषसङ्गावाश्विष्यादुष्कृतेन मनोदुष्पृणिधानमाव्रश्रदेख न सामायिकस्थात्यन्ताभावः, सर्वविरतिसामायिकेऽपि च तथाऽभ्युपगतम्; यतो गुप्तिभङ्गे मिष्यादुष्कृतं प्रायस्वित्तम् सामान् किञ्च सातिचाराद्यमुष्ठानादभ्यासतः कालेन
निरतिचारममुष्ठानं भवति।

यदाहुर्बोच्चा भपि-

षभ्यासो डि कर्मषां की श्रलमाव इति, न डि सक विपात-माचेषी दिविन्दुरिप गाविष निस्नतामा द्धाति।

न चाविधिकताद् वरमकतमिति युक्तम्, चस्यावचन-लादस्य।

यदाडु:---

'पविचित्रया वरमत्रयं प्रस्यवयणं भणन्ति समयत् । पायच्छित्तं जन्ना प्रकण गुरुषं कए लच्चं ॥ १ ॥ कीचित्तु पोषधमालायां सामायिकमेनेनैव कार्यं न बच्चिः, 'एगी

⁽१) चाविधिकताद्वरमकतमस्यावचनं भवना समयद्याः। प्राविचित्रं यकाद्कते गुरुषं कते चषुकस् ॥ १॥

भवीए' इति वचनप्रामाखादित्याष्ट्रः। नायमेकास्तो वचनास्तर-स्याऽपि अवणात्। व्यवष्ठारभाष्टेऽप्युक्तम् —

'राजसुयाई पञ्च वि पोसङ्सालाइ संमिलिया। इत्यलं प्रसङ्गेन ॥ ११६॥

एते पञ्चातिचाराः सामायिकव्रते उत्ताः, इदानीं देशावकाथिकव्रतातिचारानाच-

प्रेष्यप्रयोगानयने पुत्तलचेपणं तथा।

शब्दक्षपाऽनुपाती च व्रते देशावकाशिको ॥ ११० ॥
दिग्वतिविशेष एव देशावकाशिकव्रतम्, इयांसु विशेषः—
दिग्वतं यावज्ञीवं संवक्षरचतुर्मासीपरिमाणं वा, देशावकाशिकं
तु दिवसप्रइरमुह्नर्तादिपरिमाणम्। तस्य च पञ्चातिचाराः।
तद्यथा—प्रेष्यस्याऽऽदेश्यस्य प्रयोगो विविच्चतचेवाइहिष्युयोजनाय
व्यापारणम्, स्वयं गमने हि व्रतभङ्गः स्थादिति प्रेष्यप्रयोगः।
देशावकाशिकवृतं हि मा भूद् गमनागमनादिव्यापारजनितप्रास्थुपमद इत्यभिप्रायेण यद्यते, स तु स्वयं क्रतोऽन्येन कारित
इति न कथित् फले विशेषः; प्रत्युत स्वयं गमने ईर्यापयविश्ववेर्युणः, परस्य पुनरितपुण्यादीर्थ्यासमित्यभावे दोष इति
प्रथमोऽतिचारः १। श्रानयनं विविच्चतचेवाद् बहिः स्थितस्य
सवतनादिद्रयस्य विविच्चतचेत्रे प्रापणं सामर्थात् प्रेष्येण; स्वयं
गमने हि व्रतभङ्गः स्थात्, परेण तु श्रानयने न व्रतभङ्गः स्थादिति

⁽१) राजसुताद्यः पञ्चाऽपि पोषधवासायां संमिसिताः।

बुद्या प्रेथेण यदाऽऽनाययति स्रवेतनादि द्रव्यं तदाऽतिचार इति हितीय: २। तथा पुन्नला: परमाणवस्तत्नं चातसमुद्रवा बादर-परिचामं प्राप्ता लोष्टेष्टकाः काष्ठमलाकादयोऽपि पुत्तलास्तेषां चेपचं प्रेरचम्। विशिष्टदेशावग्रहे हि सति कार्यार्थी परती गमन-निषेधाद्यदा लोष्टादीन परेषां बोधनाय चिपति, तदा लोष्टादिपात-समनन्तरमेव ते तत्समीपमनुधावन्ति ; ततय तान् व्यापारयतः स्वयमनुपमदेवस्यातिचारी भवतीति हतीय: ३। गन्दरूपानु-पाती चेति प्रम्दानुपातो रूपानुपातय। तत्र खग्टइवृत्तिप्राका-रादिव्यविक्तिभूदेशाभिष्रहः प्रयोजने चत्पन्ने खयमगमनाद् व्यक्तिप्राकारप्रत्यासम्वर्गी भूला प्रभ्य्लासितादिगन्दं करोति, षाह्वानीयानां त्रोत्रेऽनुपातयति, ते च तच्छब्दत्रवणात्तसमीप-मागच्छन्ति इति गब्दानुपातीऽतिचारः। तथा रूपं स्नगरीर-सम्बन्धि उत्पन्नप्रयोजनः शब्दमनुचारयन्, याह्नानीयानां दृष्टावनु-पातयति, तद्दर्भनाच ते तसमीपमागच्छन्तीति रूपानुपातः। इयमव भावना - विविच्चितचेत्राह्यहः स्थितं कञ्चन नरं व्रतभङ्गभया-दाञ्चातुमग्रम् वन् यदा स्वकीयग्रस्यावगरूपदर्भनव्याजीन तमा-कारयति, तदा व्रतसापैचलाच्छन्दानुपातक्पानुपातावतिचारा-विति चतुर्वपश्वमौ ४। ५। इह चाद्यातिचारद्वयमव्युत्पन्नवृद्धि-तया, सहसाकारादिना वा; श्रन्यव्यं तु मायावितया श्रति-चारतां याति। पत दिग्वतसंचेपकरणवद् व्रतान्तराणामपि संचेपकरणं देशावकाशिकव्रतमिति हदाः। प्रतिचाराय दिग्-व्रतकरणस्यैव त्रूयन्ते न व्रतान्तरसंचिपकरणस्य, तत्कर्यव्रतान्तर-

संचेपकरणं देशावकाशिकव्रतम् ?। श्रवीच्यते। प्राणातिपातादि-विरमणव्रतान्तरसंचेपकरणेषु वधवन्धादय एवातिचाराः, दिग्-व्रतसंचेपकरणे तु संचिप्तत्वात् चेत्रस्य, प्रेष्यप्रयोगादयोऽतिचाराः। भिवातिचारसम्भवाच दिग्वतसंचेपकरणस्यैव देशावकाशिकत्वं साचादुक्तमिति॥ ११०॥

षय पोषधवतस्यातिचारानाइ-

उत्सर्गादानसंस्ताराननवेच्याप्रसच्य च । ज्ञनादरः स्मृत्यनुपस्थापनं चेति पोषधे ॥ ११८॥

उसार्यस्वण खेलसिंघाणका दीनामविश्व प्रमुच्य च स्थण्डिलादी उसर्गः कार्यः। अवैच्यं चच्चषा निरीच-णम्। प्रमार्जनं वस्त्रप्रान्तादिना स्थण्डिलादेरेव विश्व डीकरणम्। अथानविश्वाप्रमुच्य चोत्सगं करोति तदा पोषधन्नतमित्तचरतीति प्रथमोऽतिचारः १। श्रादानं यञ्चणं यष्टिपीठफलकादीनाम्, तदप्यवेश्व प्रमुच्य च कार्यम्, अनवेश्वितस्थाप्रमार्जितस्य चादान-मतिचारः। श्रादानग्रञ्चीन निचेपोऽप्युपलश्चते यश्चादीनाम्, तन सीऽप्यवेश्व प्रमार्च्य च कार्यः; श्रनवेश्वाप्रमुच्य च निचेपो-ऽतिचार इति दितीयः २। तथा संस्तीर्यते यः प्रतिपद्य-पोषधन्नतेन दर्भकुश्वकम्बलिवस्त्रादिः स संस्तारः, स चावेश्व प्रमार्च्य च कर्तव्यः, अनवेश्वाप्रमार्च्य च कर्पोऽतिचारः। इष्ट चानवेच्चपेन दुरवेच्चणम्, श्रप्रमार्जनेन दुष्पुमार्जनं संग्रञ्चते, नञः कुत्सार्थस्थाऽपि दर्शनात्, यथा कुत्सितो बाह्मणोऽबाह्मणः। यत् स्त्रम् — 'मण्डिलेडि मदुण्डिलेडि मसिकासंथारए, मण्यसिकामदुण्यसिकामस्थारए, मण्डिलेडि मदुण्डिलेडि म- ज्ञारपासवणसूमीए, भणमिक मदुण्यसिक मज्ञारपासवणसूमि॥

इति खतीयः ३। तथा भनादरः पोषधन्नतप्रतिपत्तिकरित्य-तायामिति चतुर्धः ४। तथा स्मृत्यनुपस्थापनं तिह्वयमेविति पश्चमः, पोषधे सर्वतः पोषधे, देशतः पोषधे तु नायं विधिः ५॥११८॥

षवातिविसंविभागवतस्वातिचारानाइ-

सचित्ते चिपणं तेन पिधानं काललङ्गनम् । मत्सरोऽन्यापदेशस तुर्यशिचावते स्मृताः ॥११८॥

सिचत्ते सजीवे पृथ्वीजलकुक्षीपचुक्षीधान्यादी, चेपयां निचेपो देयस्य वसुनः, तच भदानबुद्धाः निचिपति, एतळानात्यसी तुच्छबुद्धः यत् सिचत्तिनिक्तां न रुद्धतं साधव इत्यतो देयं चोपस्याप्यते न चाददते साधव इति लाभीऽयं ममिति प्रथमो-ऽतिचारः १। तथा तेन सिचत्तेन स्र्रणकन्द्पत्रपुष्पफलादिना तथाविधयेव बुद्धाः पिधत्ते, इति दितीयः २। तथा कालस्य साधूनासुचितभिचासमयस्य लङ्गनमितक्रमः, भयमर्थः—उचितो यो भिचाकालः साधूनां तं लङ्गयिला, भनागतं वा सुङ्के

⁽१) स्वप्रतिवेखितदुष्पृतिवेखितश्यासंस्तारके, स्वप्रमार्कितदुष्पृमार्जितश्या-संस्तारके. स्वप्रतिवेखितदुष्पृतिवेखितोद्यारमस्वस्यभूमौ, स्वप्रमार्कितदुष्पृमार्जितो-द्यारमस्वस्थाने।

पोषधवती। इति खतीयः ३। तथा मसरः कोपः यथा
मार्गितः सन् कुप्यति, सदिप मार्गितं न ददाति। प्रथवाऽनेन
तावद् द्रमकेण मार्गितेन दत्तम्, किमइं ततोऽपि इति इति
मालार्थ्याइदाति; प्रत्न परोत्रतिवैमनस्यं मालार्थ्यम्, यदुक्तमस्माभिरेवाऽनेकार्थसंग्रहे—मलारः परसम्पत्त्वसमायां तद्दति
कुधि। इति चतुर्थः ४। तथा प्रन्यस्य परस्य सम्बन्धीदं गुडखण्डादीति व्यपदेशो व्याजोऽन्यापदेशः, यदनेकार्थसंग्रहे—
प्रपदेशम् कारणे व्याजे लच्चेऽपि। इति पच्चमः ५। एते
पच्चातिचारासुर्यशिचाव्रते प्रतिथिसंविभागनान्ति स्मृताः। प्रतिचारभावना पुनरियम्—यदा प्रनाभोगादिना प्रतिचरित्त तदा
प्रतिचारः, प्रन्यथा तु भङ्गाः; इत्यवसितानि सम्यक्त्वमूलानि
दादशवतानि, तदितचारासाभिद्दिताः॥११८॥

रदानीमुक्त शेषं निर्दिशन् श्रावकस्य महाश्रावकत्वमाह—

एवं व्रतस्थिती भक्त्या सप्तचित्रां धनं वपन् ।

दयया चातिदीनेषु महाश्रावक उच्यते ॥ १२० ॥

एवं पूर्वीक प्रकारिण सम्यक्त्वमूलेष्यतिचारिव शुहेषु हादशसु

वतेषु स्थितो नियलचिक्तत्वेन निलीनः, सप्तानां चेत्राणां समा
हारः सप्तचेत्री जैनविम्बभवनागमसाधुसाध्वीश्रावकशाविकालचणा

तस्यां, न्यायोपाक्तं धनं वपन् निच्चिपन् ; चेषे हि बीजस्य वपन
मुचितमित्युक्तं वपसिति, वपनमिष चेत्रे उचितं नाऽचिषे इति

मप्तचेत्रामित्युक्तम् । चेत्रत्वं च सप्तानां क्रदमेव । वपनं च

सप्तचेनां यथोचितस्य द्रश्यस्य भक्त्या त्रह्या, तथाहि—जिन-विम्बस्य ताविद्दिशिष्टलच्चषलचितस्य प्रसादनीयस्य वचीन्द्रनीलाऽ-म्बनचन्द्रकान्तसूर्यकान्तरिष्टाङ्ककोतनविद्वमसुवर्णेक्प्यचन्द्रनोपल-सदादिभिः सारद्रश्यैविधापनम्।

यदाच ---

समृत्तिकामसिशिसातस्ययदाव-सीवर्षरत्नमिष्यम्दनचारुविम्बम् । सुर्विन्त जेनिम्ह ये स्वधनानुरूपं ते प्राप्नुविन्त त्रसुरेषु महासुखानि ॥ १॥

तयाहि-

'पासादमा पिडमा लक्खणज्ञुत्ता समत्तनद्वरणा।
जद्य पद्धापद मणं तद्य निकारमी विद्याणाद्य ॥ १ ॥
तथा निर्मितस्य जिनविम्बस्य प्रास्त्रोक्तविधिना प्रतिष्ठापनम्,
पष्टाभिय प्रकारेरभ्यर्चनं, याचाविधानं, विधिष्टाभरणभूषणं,
विचित्रवस्त्रेः परिधापनिमिति जिनविम्बे धनवपनम्।

यदाच---

गन्धैर्मास्वैर्वि निर्ययक्षस्तपरिमसैरक्षते पूँपदीपै: सावाज्यै: प्राज्यभेदैयवभिवपक्षते: पाकपूरी: फसैय । मभःसम्पूर्णपानैरिति कि जिनपतेर चेनामष्टभेदां कुर्वाचा वेज्यभाज: परमपदसुखस्तोममाराक्षभन्ते ॥ १ ॥

⁽१) प्रावादिता प्रतिभा बच्चच्युक्ता समस्ताबद्गरचा।

सचा प्रज्ञादयति मनस्तवा निर्भीयोमी विजानी हि॥

ननु जिनबिम्बानां पूजादिकरणे न किसदुपयोगः, न हि पूजादिभिस्तानि खप्यस्ति तुष्यस्ति वा, न चात्रप्ततृष्टाभ्यो देवताभ्यः फलमाप्यते। नैवम्। चिन्तामण्यादिभ्य इवाऽस्तरुः तुष्टेभ्योऽपि फलप्राप्तावरोधात्।

यदुत्रं वीतरागस्तोत्रेऽस्राभिः —

भगसत्रात् कर्यं प्राप्यं फलमेतदसङ्गतम् ?। चिन्तामण्यादयः किं न फलन्यपि विचेतनाः॥ १॥ तया —

'उवगाराभाविषा वि पुक्ताणं पूयगसा उवगारी।

मन्ताइसरणजलणादियेवणे जह तहेहं पि॥१॥

एष तावत् खकारितानां विम्वानां पूजादिविधिकृतः, श्रम्थकारितानामपि। श्रकारितानां च शाखतप्रतिमानां यथाहें
पूजनवर्धनादिविधिरतृष्ठेयः। विविधा हि जिनप्रतिमाः—भिक्तकारिताः खयं परेण वा चैत्थेषु कारिताः, या इदानीमपि मनुष्यादिभिविधाप्यन्ते ; मङ्गल्यकारिता या ग्रहेषु हारपत्रेषु मङ्गलाय
कार्यन्ते, शाखत्यनु श्रकारिता एव श्रधस्त्रियंगूईकोकावस्थितेषु
विनभवनेषु वर्तन्त इति। न हि कोकन्येऽपि तत्स्थानमस्ति

यत्र पारमेखरीभिः प्रतिमाभिः पविवितमिति। जिनप्रतिमानां च
वीतरागखक्षपाध्यारोपेण पूजादिविधिकृचित इति। जिनभवनद्येषे
स्वधनवपनं यथा—श्रष्यादिरहितभूमौ स्वयंसिदस्थोपलकाष्टादि-

⁽त) उपकाराभावेऽपि पूज्यानां पूजकसोपकारः। सन्त्राहिकारचञ्चसनाहिसेवने यथा तथेकारिय ॥ १॥

दनस्य ग्रह्मेन सूचकारादिस्तकानतिसन्धानेन स्त्यानामधिक-मृखवितरखेन षड्जीवनिकायरचायतनापूर्वकं जिनभवनस्य विधा-पनम्, सति विभवे भरतादिवद् रब्वशिलाभिवेदचामीकरकुष्टिमस्य मणिमय सम्भागान ख रब्रमयतोर प्रातालकारक तस्य विशाल-याचागनानकस्य गानभिद्धकाभिक्कभूषितस्तभादिप्रदेशस्य दश्च-मानकर्पूरकस्तृरिकागुरुप्रस्तिभूपसमुच्छलसूमपटलजातजलदग-द्वातृत्यत्वलकप्रकुलकोनाइनस्य चतुर्विधाऽऽतोद्यनान्दीनिनाद-नादितरोदसीकस्य देवाङ्गप्रश्रतिविचित्रवस्त्रोक्षोचखचितसुत्तावत्रु-लालक्क्षतस्य उत्पतिविपतद्वायवृत्यदेशावितंद्वादितवसुरसमूद्व-मिश्वमानुमोदनप्रमोदमानजनस्य विचित्रचित्रचित्रीयितसकल-सोकस्य चामरध्वजच्छनाद्यसङ्गारविभूषितस्य मूर्धारोपितविजय-वैजयन्तीनिवदिकि द्विणीरणलारमुखरितदिगन्तस्य कौतुकाचिप्त-सुरासुरिकवरीनिवडाऽइमइमिकाप्रारस्थसङ्गीतस्य ध्वनितिरस्त्रततुम्बुकमिक्को निरम्तरतालारसरासक इक्रीसक-प्रमुखप्रबन्धनानाभिनयनव्यप्रकुलाङ्गनाचमलारितभव्यलोकस्वा---श्मिनोयमाननाटककोटिरसाचित्ररसिकजनस्य जिनभवनस्यो-स्क्रगिरियक्रेषु जिनानां जबादीचाज्ञाननिर्वाचस्थानेषु समाति-राजवच प्रतिपुरं प्रतियामं पदे पदे विधापनम्; प्रसति तु विभवे दृषकुवादिक्पसाऽपि।

यदाइ--

यस्तृषमयीमपि कुटीं कुर्याइदात्तर्येकपुष्पमपि। भक्त्या परमगुक्भ्यः पुष्योन्मानं कुतस्तस्य ?॥१॥ किं पुनक्पचितदृढचनशिलाससुद्वातघटित्रजिनभवनम् । ये कारयन्ति ग्रुभमतिविमानिनस्ते सङ्घाधन्याः॥ २॥

राजादेसु विधापियतुः प्रसुरतरभाण्डागारयामनगरमण्डलगोकुलादिप्रदानं जिनभवनचेने वपनम्, तथा जीर्णयीर्णानां चैत्यानां
समारचनम्, नष्टभ्रष्टानां समुदरणं चेति । नतु निरवद्यजिनधर्मसमाचरणचतुराणां जिनभवनविम्बपूजादिकरणमनुचितमिव
प्रतिभासते षड्जीवनिकायविराधनान्नेतुत्वात्तस्य, भूमीखननदसपाटकानयनगर्तापूरणिष्टकाचयनजलप्नावनवनस्रतित्रसकायविराधनामन्तरेण न हि तद्भवति । उच्यते । य प्रारम्भपरिग्रष्टप्रसक्तः
सुदुम्बपरिपालननिमित्तं धनोपार्जनं करोति, तस्य धनोपार्जनं
विफलं मा भूदिति जिनभवनादौ धनव्ययः स्रेयानेव । न च
धर्मार्थं धनोपार्जनं युक्तम् ।

यत:---

धर्मायं यस्य वित्तेष्ठा तस्यानीष्ठा गरीयसी । प्रचालनाडि पद्मस्य दूरादस्पर्यनं वरम् ॥ १॥

इत्युक्तमेव। न च वापीक्ष्यतडागादिखननवदश्वभीदकें जिनभव-नादिकरणम्, श्रिपि तु सङ्गसमागमधर्मदेशनाकरणव्रतप्रतिपच्यादि-करणेन श्रभोदकेमेव। षड्जीवनिकायविराधना च यतनाकारि-णामगारिणां कपापरवशस्त्रेन स्वानिष जन्तून् रचयताम-विराधनैव।

यदाद्य:---

'जा जयमाणसा भवे विराष्ट्रणा सुत्तविष्टिसमगसा।
सा चोद निकारफला प्रब्भत्यविसी दिज्ञत्तसा। १॥
'परमरहस्ममिसीणं समत्तगिषिपिडगब्भिरियसाराण।
परिणामिषं पमाणं निच्छ्यमवलस्बमाणाणं॥२॥
यस्तु निजकुटुस्बार्थमिप नारसं करोति प्रतिमाप्रतिपदादिः, तस्य
मा भूक्षिनबिस्बादिविधापनमिष।

यदाष्ट्र:-

'देशाइनिमित्तं पि इ जे कायवहिमा इस पयद्दित ।
जिलपूमाकायवहिमा तिसमपवत्तणं मोशे ॥ १ ॥
इत्यलं प्रसङ्गेन । जिनागमचेत्रे च खधनवपनं यथा—जिनागमो
हि कुणास्त्रजनितसंस्कारिवषसमुच्छेदनमशामन्त्रायमाणो धर्माधर्मकत्याकत्यभच्याभच्यपेयापेयगम्यागम्यसारासारादिविवेचनहेतुः
संतमसे दीप इव, समुद्रे दीपमिव, मरी कल्यतक्रिव, संघारे
दुरापः । जिनादयोऽप्येतग्रामान्यादेव निसीयन्ते । यदवीचाम
स्तिषु—

यदीयसंयक्कवलात् प्रतीमो भवाद्यानां परमाप्तभावम् । क्कवासनापात्रविनाश्रनाय नमोऽलु तस्मे तब शासनाय ॥१॥

⁽१) या यतमानस्य भवेद् विराधना स्व्वविधिसमयस्य । सा भवति निर्वरफ्ताऽभ्यर्थनाविधोधियक्तस्य ॥ १ ॥

⁽२) परसरच्छास्योषां समस्तगिषिपटकश्वतसाराचाम्। परिचासितं प्रमार्च निष्यसवसम्मानानास् ॥ २ ॥

⁽३) देश्वादिनिभित्तमिष सन् वे कायवधे रूप्र प्रवर्तनी । जिनपूजाकायवधे तेषासप्रवर्तनं सोष्टः ॥ १ ॥

जिनागमबहुमानिना च देवगुरूधमोदयोऽपि बहुमता भवन्ति । किं च केवलन्नानादपि जिनागम एव प्रामाख्येनाऽतिरिचते । यदाहु:—

'भोहे सुभोवउत्तो सुयमाणी जद हु गिह्नद भस्दं। तं नेवनी वि भुष्ट्रद भपमाणं सुभं भवे दहरा॥१॥ एकमपि जिनागसवचनं भविनां भवनाभहेतुः।

यदाडु:---

एकमपि च जिनवचनावासान्त्रिवी इतं पदं भवति।

श्रूयको चानकाः सामायिकमात्रपद्सिद्धाः ॥ १ ॥ इति ॥
यद्यपि च मिष्यादृष्टिभ्य भातुरेभ्य इव पष्यात्रं न रोचते जिनवचनम्, तथापि नान्यत् स्वर्गापवर्गमार्गप्रकाशनसमर्थम् ; इति
सम्यग्दृष्टिभिस्तदादरेष श्रद्धातव्यम्, यतः कष्याणभाजिन एव
जिनवचनं भावतो भावयन्ति । इतरेषां तु कर्णशूसकारित्वेनासृतमपि विषायते । यदि चेदं जिनवचनं नाभविष्यत्, तदा धर्माऽधर्मव्यवस्थाश्न्यं भवात्मकूपे भुवनमपित्थत् । यथा च इरीतकीं भच्चयेद् विरेककामः इति वचनाद्दरीतकीभच्चणप्रभवविरेकलच्चमेन प्रत्ययेन सकलस्थाऽप्यायुर्वेदस्य प्रामास्थमवसीयते, तथा
प्रष्टाकृतिमक्तवेविककाचन्द्राक्षेपच्चारधातुवादरसरसायनादिभिराष्यागमोपदिष्टैर्वृष्टार्थवाक्यानां प्रामास्थनिस्ययेनाऽदृष्टार्थानामिप

⁽१) जोने खतोपयुक्तः खतत्तानी वहि सन् स्वातायुवम् । तद् केनल्यपि श्रद्कोऽप्रमासं खतं भनेहितरमा ॥ १ ॥

वाक्यानां प्रामाख्यं मन्द्धीभिनिश्चेतव्यम् । जिनवचनं च दुःषमाकाखवग्रादुच्छित्रप्रायमिति मत्वा भगविद्वनीगार्जुन-स्कन्दिलाचार्यप्रसृतिभिः पुस्तकेषु न्यस्तम् । ततो जिनवचनबद्य-मानिना तत् पुस्तकेषु लेखनीयं वस्त्रादिभिरभ्यर्चनीयम् ।

यदाच-

न ते नरा दुर्गतिमाप्नवित्त न मूकतां नैव जडस्वभावम्। न चान्धतां बुद्धिविद्यीनतां च ये लेखयन्तीद्व जिनस्य वाक्यम्॥१॥

लेखयन्ति नरा धन्या ये जिनागमपुस्तकम् ।
ते सर्वे वास्तयं द्वात्वा सिह्यं यान्ति न संग्रयः ॥ २ ॥
जिनागमपाठकानां वस्त्रादिभिरभ्यचेनं भिक्तपूर्वं संमाननं च ।
यदाष्ठ—

पठित पाठयते पठतामधी वसनभोजनपुस्तकवस्तिः।
प्रतिदिनं कुर्तते य उपग्रष्टं स रष्ट सर्वविदिव भवेतरः॥१॥
लिखितानां च पुस्तकानां संविम्नगीताधेंभ्यो बच्चमानपूर्वकं व्याख्यानाधें दानम्, व्याख्यायमानानां च प्रतिदिनं पूजापूर्वकं त्रवर्ण चिति। साधनां च जिनवचनानुसारेण सम्यक् चारिष-मनुपालयतां दुर्लभं मनुष्यजसा सफलीकुर्वतां स्वयं तीर्णानां परं तारियतुमुद्यतानामातीर्थक्ररगणधरिभ्य चा चैतिह्नदीचितेभ्यः सामायिकसंयतेभ्यो यथोचितप्रतिपच्या स्वधनवपनम्, यथा— उपकारिणां प्रासुकेषणीयानां, कल्पनीयानां चामनादीनां, रोगापद्यारिणां च भेषजादीनां, ग्रीतादिवारणार्थानां च वस्त्रादीनां, प्रतिलेखनाहेतो रजोद्यरणादीनां, भोजनाद्यधं

पात्राणां, भीपगाहिकाणां च दण्डकादीनां, निवासार्थमा-त्रयाणां दानम्। न हि तदस्ति यद्रव्यचेत्रकालभावापेचयाऽनुप-कारकं नाम, तत्सर्वस्त्रयाऽपि दानम्, साधुधर्मीद्यतस्य स्वप्रत-प्रत्रादिरपि समर्पणं च। किं बहुना १ यथा यथा मुनयो निरा-वाधवृत्त्या स्वयमनुष्ठानमनुतिष्ठन्ति, तथा तथा महता प्रयक्षेन सम्पादनम्, जिनवचनप्रत्यनीकानां च साधुधर्मनिन्दापराणां यथा-यित्त निवारणम्।

यदाह ---

'तह्मा सद सामखे भाणाभद्दिमा नो खलु उवेदा।
भणुक्लगेयरे दि भ भणुसद्दी द्वार दायव्या ॥ १ ॥
तथा रक्षमयधारिणीषु साध्वीषु साधिव्य यथोचिताद्वारादिदानं खधनवपनम्। ननु स्त्रीणां नि:सस्ततया दुःशीलखादिना च
मोचेऽनिधकारः, तत्कथमेताभ्यो दानं साधुदानतुष्यम् १ । छच्यते ।
नि:सस्त्वमसिषम्, बाद्मीप्रभृतीनां साध्वीनां ग्रह्वासपरित्यागेन
यतिधममनुतिष्ठक्तीनां महासस्तानां नाऽसस्त्वसभ्यवः।

यदाच --

बाह्मी सुन्दर्शार्या राजीमती चन्दना गणधराऽन्या।
प्राप देवमनुजमिहता विख्याताः ग्रीलसस्वाभ्याम् ॥ १ ॥
गाईस्येऽपि सुसस्वा विख्याताः ग्रीलवतीतमा जगति।
सीतादयः क्यं तास्तपिस 'विश्रीला विसस्वास १ ॥ २ ॥

⁽१) तकात् सित सामर्थोऽ त्त्राश्वरे नो खलूमेचा। व्यतकृतकेतरे हि चातुर्घिष्टभेवति हातस्या॥ १॥

⁽१) कडाच, विसत्त्वाविशीसास।

संखन्य राज्यन्यों पितपुत्रभाद्धवस्तुसम्बन्धम् ।
पारित्राच्यवद्यायाः किमसन्तं सत्यभामादेः ? ॥ ३ ॥
ननु मद्यापिन मिय्यात्वसद्यायेन स्त्रीत्वमर्च्यते ; न द्वि सम्यग्दृष्टिः
स्त्रीतं कदाचिद् बन्नाति दति कद्यं स्त्रीग्ररीरवर्तिन पामनो
सुत्तिः स्वात् ?। मैवं वोचः, सम्यक्तप्रतिपत्तिकाल एवाऽन्तःकोटीकोटिस्वितिकानां सर्वकर्मणां भावेन मिय्यात्वमोद्दनीयादीनां
चयादिसस्थवास्मिय्यात्वसद्दितपापकर्मसस्थवत्वमकारणम्, मोचकारण्येवस्यं तु तासु वक्तुसुचितम् । तच्च नास्ति ।

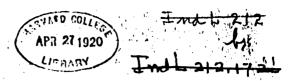
यत:--

जानीते जिनवचनं यहत्ते चरित चाऽऽियं का ग्रवसम् ।
नाऽस्वास्त्रवस्त्रवोऽस्वां नाइष्टिविरोधगितरस्ति ॥१॥ इति ॥
तिवास्त्रवस्त्रवाधनासु साध्वीषु साध्वद् धनवपनसुचितमिति । एतद्याधिकं यत् साध्वीनां दुःगोलेभ्यो नास्तिकेभ्यो
गोपनम्, खग्डद्रप्रत्याधन्ती च समन्ततो गुप्ताया गुप्तदाराया
वसतेर्दानम्, खस्त्रीभिष तासां परिचर्याविधापनम्, खपुत्रिकाषां
च तस्त्रविधौ धारषम्, व्रतोद्यतानां खपुत्रग्रदीनां प्रत्यपंषं
च, तथा विस्नृतकरपीयानां तत्स्मारणम्, प्रन्थायप्रवित्तस्थिवे
तिववारणम्, सक्तदन्यायप्रवृत्तौ शिच्चषम्, पुनः पुनः प्रवृत्ती
निष्ठरभाषणादिना ताडनम्, उचितेन वस्तुनो पचारणं चेति ।
व्यावकेषु खधनवपनं यथा—साधर्मिकाः खलु व्यावकस्य व्यावकाः,

⁽१) च-पकरचं।

| • Markandeya Purana, Fasc. 5-7 @ /10/ eac | h | ••• | · Ra. | 1 | 14 |
|---|----------------------|---|---|--------|----------|
| *Mimaina Darcana, Fasc. 10-19 @ /10/ eac | | ••• | ••• | 6 | . 4 |
| Nyāyavārtika, fasc. 1-6 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | 8 | 12 |
| *Nitisara, Fasc. 3-5 @ /10/ each | | | | 1 | 14 |
| Nityacarapaddhatih, Fasc. 1-7 @ /10/ eacl | h ··· , | | • • • • • | 4 | _6 |
| Nityacarapradipah Vol. 1, Fasc. 1-8; Vol. | . II, Fasc. 1 | 1-8. (cg /10/ | | 6 | 14 |
| Nyayabindutika, Fasc. 1 @ /10/ each | 9 4 . 17 | 7-1 II F -0 | | . 0 | 10 |
| Nyaya Kusumanjali Prakarana Vol. I, F | | | | 5 | • |
| 13 @ /10/ each Padumawati, Fasc. 15 @ 2/ | ••• | *** | • | 10 | ň |
| *Parigipta Parvan, Fasc. 3-5 @ /10/ each | ••• | ••• | | · i | 14 |
| Prākrita-Paingalam, Fasc. 1-7 @ /10/ each | ••• | ••• | • | 4 | 6 |
| Prithiviraj Rasa. Part II, Fasc. 1-5 @ /10 | / each | ••• | ••• | 3 | 2 |
| Ditto (English) Part II, Fasc. 1 | | ••• | ••• | 1 | 0 |
| Prakrta Laksanam Fasc. 1 @ 1/8/ each | ••• | ••• | ••• | . 1 | 8 |
| Parficara Smrti, Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. I | I, Fasc. 1-6 | ; Vol. III | , | * | |
| Fasc. 16 @ /10/ each | ••• | ` · · •••, | ••• | 12 | 8 |
| Paraçara, Institutes of (English) @ 1/- eacl | 1 , | | | | 0 |
| Pariksamukha Sutram | ••• | ,••• | | _ | 0 |
| Prabandhacintamani (English) Fasc. 1-3 @ | 1/4/ each | ••• | ••• | 8 | . 12 |
| Rasarnavam, Fasc. 1-2 | oh ··· | | | | 8 |
| Saidareana-Samuccaya, Fasc. 1-2 @ /10/ ea | CD | 111 1-7 | ••• | 1. | i. • • · |
| "Sama Voda Sainhita, Vols. J. Fasc. 7-10 | , 11, 1.0; | 111, 1-7; | | 19 | -a |
| 1V, 16; V, 1-8, @ /10/ each Samaraieca Kaha Fasc. 1-2, @ /10/ | ••• | ••• | ••• | i, | 4 |
| Sankhya Sutra Vrtti, Faso. 1-4 @ /10/ eac | oh | ••• | | 2 | 8 |
| Ditto (English) Fasc. 1-3 (| 2 1/- each | ••• | ••• | 8 | 0 |
| •Sankara Vijaya, Fasc. 2-8 @ /10/ each | | | ••• | 1 | 4 |
| Six Buddhist Nyaya Tracts | 19. | | | 12 | O |
| Sraddha Kriya Kaumudi, Fasc. 1-6 @ /10/ | | ••• | ••• | 3 . | 12 |
| Brauta Sutra Latyayan, Fasc. 4-9 @ /10/ es | | • • • | ••• | | 12 |
| ", ", Asbalayana, Fasc. 4-11 @ /10 | | ••• | ••• | | 0 |
| Sucruta Samhitá, (Eng.) Fasc. 1 @ 1/- eac | | ••• | ••• | ı | . 0 |
| Suddhikaumudi, Fasc. 1-4 @ /10/ each | | ••• | | • | 8 |
| Suryya Siddhanta fasc. 1 | | ••• | ••• | • | ā. |
| *Taittreya Brahmana, Fasc. 11-25 @ /10/ e Pratisakhya, Fasc. 1-8 @ /10/ e | | ••• | ••• | í | 14 |
| *Taitteriya Sanhitá, Fasc. 27–45 @ /10/ e | | | ••• | ıī | 14 |
| Tandya Brahmana, Fasc. 10-19 @ /10/ eac | | ••• | | б | 4 |
| Tantra Värteka (English) Fasc. 1-6 @ 1/4/ | each | | ••• | 7 | 8 |
| Tattva Cintamani, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol | II, Fasc. 2-1 | 10, Vol. III | i, Fasc. 1–2 | , | |
| Vol. IV, Fasc. 1, Vol. V, Fasc. 1-5, Part I | V, Vol. II, F | fasc. 1-12 (| g /10/ each | | 12 |
| Tattvärthadhigama Sutram, Fasc. 1-3 @ / | 0/ each | ••• | ••• | . 1 | 14 |
| Trikānda-Mandanam, Fasc. 1-3 @ /10/ each | h | ••• | ••• | 1 | 14 |
| Tul'si Satsai, Fasc. 15 @ /10/ each | £ 19 @ /10 | / asals | ••• | 8 6 | 2 14 |
| *Upamita-bhava-prapañca-kathā, Fasc. 1-2, Uvāsagadasāo, (Text and English) Fasc. 1 | | | ••• | ٠ . | 0 . |
| Vallala Carita, Fasc 1 @ /10/ | 0 (43 1/- 6402 | • | ••• | • | 10 |
| Varsa Kriya Kaumudi, Fasc 1-6 @ /10/ | each | | ••• | | 12 |
| "Vayu Purana, Vol. I, Fasc. 8-6; Vol. II. | Fasc. 17. 6 | 2 /10/ each | 1 | | 14 |
| Vidbāna Pārijata, Fasc. 1-8 Vol- II. Fasc | s. I @ /10/ e | ach | ••. | 5 | 10 |
| Ditto Vol. II, Fasc. 2-4 @ 1 | /4/ | S 8 | •• | . 8 | 12 |
| Vivadaratnakara, Fasc. 1-7@/10/ each | | ••• | | 4 | ď |
| Vrhat Svayamblill Purana, Fasc. 1-6 @ /1 | 0/ each | *** | 100 | | 12 |
| *Yoga Aphorisms of Patanjali, Fasc. 8-5 (| g/10/each | ••• | •• | | 14 |
| Yogasistra of Hemchandra Vol. I. Fasc. | Α. | | • • • | . 2 | 8 |
| Tibeta | n Series. | | | ` _ | |
| Baudhyastotrasangraha, Vol. I (Tib. & S. | nns.) | | • 1 • • • • | . 2 | 0 , |
| A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, F. Nyayabindu of Dharmakirti, Fasc. 1 | | /- each | • | . : | 0 |
| Pag-Sam S'hi Tifi, Faso. 1-4 @ 1/- cach | ••• | ••• | ••• | .] | Ü |
| Rtogs brjod dpag Akhri S'in (Tib. & Sans | Avadāna K | (alnalatā) | Vol. L | • | |
| Fasc. 1-7; Vol. II. Fasc. 1-6 @ 1/- ea | ch | Laipaiata y | · · · · · · · · · · · · · · · · · · · | . 13 | 0 |
| Sher-Phyin, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. II, Fasc | o. 1-3; Vol. | 111, Fasc, 1 | l-6, @ 1/ es | ch 14 | 0 |
| Arabio and | | | | | |
| 'Alamgirnamah, with Index, (Text) Fasc. | 1-18 @ /10/ | /each | , | . 8 | 2 |
| Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 13 | | | | . 8 | 0 |
| Ain-1-Akbari, Fasc. 1-22 @ 1/8/ each | | ••• | | . 33 | 0 |
| Ditto (English) Vol. I, Fasc. 17, | Vol. II, Fa | usc. 15, V | ol. III, | | |
| Ditto Index to Vol: 2. Fasc. 15, @ | 2/- each | •• | | . 86 | 0 |
| Akbarnamab, with Index, Fasc. 1-37 @ / | /d/ each | | • | . 55 | 8 |
| Ditto (English) Vol.'I, Fasc. 1-8 | , vol. 11, k | . 88C. 1.0 @ | | 17 | 8 · |
| Arabic Bibliography, by Dr. A. Sprenger, *Bādshāhnāmah, with Index, Fasc. 1-19 | (43/10/ @/10/aaaL | ••• | • • • | | 10 14 |
| - Designationing in and three transfer [- 18 | (A) \TO\ GHGII | ••• | • • • | . 11 | |
| AMM 11 T3 1. 11 A 11 | | | | | |
| 'The other Fasciculi of these works are | out of sto | ck and c | - | 1 4 | |
| *The other Fasciculi of these works are be supplied. | out of sto | ck and c | omplete con Digitized by | 1 4 | |

| Conquest of Syria, Faso, 1-9 @ /10/ each Rs. | 5 | 70 |
|--|-------------------|---------|
| Catalogue of Arabic Books and Manuscripts, 1-2 @ 1/- each | . 2 | . 0 |
| Catalogue of the Persian Books and Manuscripts in the Library of the | | . , |
| Asiatic Society of Bengal. Fasc. 1-3 @ 1/each Dictionary of Arabic Technical Terms, and Appendix, Fasc. 1-21 @ 1/8/each | . 31 | . 0 |
| Farnang-i-Rashidi, Fasc. 1-14 @ 1/8/ each | 21 | ŏ |
| Fibrist-i-Tust. or, Tusy's list of Shy'sh Books, Fasc. 1-4 @ 1/- each | 4 | . 0 |
| Futub-ush-Blam of Waqidi, Fasc. 19 @ /10/ each | . 2 | 10 8 |
| History of Gujarat | ī | ŏ |
| Haft Asman, History of the Persian Masnawi, Fasc. 1 @ /12/, esch | 0 | 12 |
| History of the Caliphs, (English) Fasc. 1-6 (# 1/4/ each | 7 | 8 |
| Iqbālnāmah-i-Jahāngirī, Fasc. 1-3 @ /10/ each | , 1 51 | 14 |
| Ma'agir-i-' Alamgiri, Faso. 1-6 @ /10/ each | 8 | 12 |
| Mangir-ul-Umara, Vol. I. Fasc. 1-9, Vol. II, Fasc. 1-9; Vol. III, 1-10; | • | |
| Index to Vol. I, Fasc. 10-11; Index to Vol. II, Fasc. 10-12; | . 0 E | ۸ |
| Index to Vol. III, Fasq. 11-12 @ /1/ each | 85 2 | 0 |
| Maghāzi of Wāqidi, Fasc. 1-5 @ /10/ each | 3. | 2 |
| Muntakhabu-t-Tawarikh, Fasc. 1-15 @ /10/ each | 9 | 6 |
| Ditto (English) Vol. I, Fasc. 1-7; Vol. II, Fasc. 1-5 and 3 Indexes; Vol. III, Fasc. 1 @ 1/ each | 18 | 0 |
| Muntakhabu-l-Lubab, Fasc. 1-19 @ /10/ each | . 16 11 | 14 |
| Nukhbatu-l-Fikr, Fasc. 1 @ /10/ | 0 | 10 |
| Nisami's Khiradnamah-i-lakandari, Fasc. 1-2 @ /12/ each | 1 | 8 |
| Qawaninu 's-Sayyad of Khuda Yar Khan 'Abbasi, edited in the original Persian with English notes by Lieut. Col. D. C. Phillott | | 0 |
| Riyaşu s-Salatiu, Faso 15 @ /10/ each | 5 3 | 2 |
| Ditto (English) Fasq. 1-5@1/ | 5 | Õ. |
| Tabaquat-I Nasiri, (English), Fasc. 1-14 @ 1/- each | 14 | 0 |
| Ditto Index Tarkh-i-Firits Shahi of Ziyau-d-din Barni Faso 1-7 @ /10/ each | . 1 | • 6 |
| Tarikh i-Firnsehähi, of Shams-i-Sirai Aif, Fasc. 1-6 @/10/each | . 8 | 12 |
| Ten Ancient Arabic Poems, Fasc. 1-2 @ 1/8/ each | 8 | . 0 |
| "Tuank-i-Jahangiri, (Kng.) Fasc. 1 @ 1/ | 1. | 0 |
| Zefernémely Vol. I. Free 1-9 Vol. II. Page 1-9 (10) | 8 | 10 |
| The state of the s | 10 | |
| ASIATIO SOCIETY'S PUBLICATIONS, | | |
| 1. ASIATIO RESEARCHES. Vols. XIX and XX @ 10/ each | 20 | 0 |
| 2. PROCEDENCE of the Asiatic Society from 1870 to 1904 @ /8/ per No. 3.1 JOURNAL of the Assiatic Society for 1870 (8), 1871 (7), 1872 (8), 1878 | | • |
| (8), 1874 (8), 1875 (7), 1876 (7), 1877 (8), 1878 (8), 1879 (7), 1880 (8), | : | • |
| 1881 (7), 1883 (6), 1883 (5), 1884 (6), 1885 (6), 1886 (8), 1887 (7), | | |
| 1888 (7), 1889 (10, 1890 (11), 1891 (7), 1892 (8), 1898 (11), 1894 (8), 1895 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1898 (8), 1899 (8), 1900 (7), 1901 | | |
| (7), 1902 (9), 1903 (8), 1904 (16), @ 1/8 per No. to Members and | • . | |
| @ 2/ per No. to Non-Members | ٠, | , |
| N. B.—The figures enclosed in brakets give the number of Nos. in each Volt | | |
| 4. Journal and Proceedings, N. S., 1905, to date, (Nos. 1-4 of 1905 are out of stock), @ 1-8 per No. to Members and Rs. 2 per No. to Non-Members | | |
| 7.5. Materials for Flora of the Malayan Peninsula, by Sir Geo. King. | | |
| (a) A. S. Gamble (Extra No. J. A. S. B. Vol. 14, & fasc. 1) | - 4 | 0 |
| Do Do (Extra No. J. A. S. B. Vol. 14 & Fasc. 2.) | 3 | . 0 |
| A Grammar and Dictionary of Kanawari, the Language of Kanawar in the Bashahr state, Punjab, compiled by Pandit Tika Ram Joshi, | | |
| and edited by H. A. Rose. (Ex. No. Jl. broc. Vol. 5, 1909.) | 8 | 0 |
| An Introduction to the Maillicli Dialect of the Bihari Language as | , | |
| spoken in North Bihar by Dr G. A. Grierson. Second Edition, Part I, Grammar. (Ex. No. Jl. broc. Vol. 5, 1909.) | | 0 |
| Sea Fishing (A lecture, by Dr Travis Jenkins) | . 5 | 8 |
| 6. Memoire, 1905, to date. Price varies from number to number. | | |
| Discount of 25% to Members. | | |
| 7. Centenary Review of the Researches of the Society from 1784-1888 8. Catalogue of the Library of the Asiatic Society, Bengal, Part I, | ; 8 | 0 |
| A to R. Dant O D to M. Dant O N to D | , 6 | 0 |
| 9. Moore and Hewitson's Descriptions of New Indian Lepidopters, | | _ |
| Parts 1-111, with 8 coloured Plates, 4to. @ 6/ each | . 18 | 0 |
| 10. Kaçmiraçabdamrta, Parts I & II @ 1/8/ 11. Persian Translation of Haji Baba of Ispahan, by Haji Shakh | . 3 | 0 |
| Ahmad-i-Kirmasi, and edited with notes by Major D. C. Phillott | . 10 | 0 |
| and the second s | | |
| Notices of Sanskrit Manuscripts, Fasc. 1-34 @ 1/each | . 34 . 5 | 0 |
| Nepalese Buddhist Sanskrit Literature, by Dr. R. L. Mitra N.B.—All Cheques, Money Orders, &c. must be made payable to the | | |
| | | _ |
| Take Society, only. |) 21 - | 12-10. |
| , , , , , , , , , , , , , , , , , , , | |) |
| | | |



•103t• •103t• •103t• •103t• •100t• •100t• •100t• **BIBLIOTHECA INDICA:**

A COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

NEW SERIES, NO. 140

योगशास्त्रम् ।

स्रोपचिविद्यस्थितम्।



THE YOGASASTRA.

With the commentary called SVOPAJNAVIVARANA.

SRÍ HEMACIJANDRĀCHĀRYA.

ÇÄSTRA VIÇÄRADA JAINĀCĀRYA

ÇRÎ VIJAYA DHARMA SÜRI.

FABCICULUS IV.

Calcutta:

PRINTED BY UPENDRA NATHA CHARRAVARTI, AT THE SANSKRIT PRESS, No. 5, Nandakumar Chawdhury's 2nd Lane.

AND PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL, 1, PARK STREET

1916.

୍ଦ୍ରର । • ହେଉା • • ହେଉା • • ହେଉା • • ହେଉା • • ହେଉ • • ହେଉା • • ହେଉ • • ହେଉା • • ହେଉା • • ହେଉା • • ହେଉା • • ହେଉ ନ୍ତି

LIST OF BOOKS FOR SALE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

No. 1, PARK STREET, CACUTTA, AND OBTAINABLE FROM

THE SOCIETY'S AGENT, MR. BERNARD QUARITCH, 11, GRAPTON STREET, NEW BOND STREET, LONDON, W.,

Complete copies of those works marked with an asterisk * cannot be supplied .- some

of the Fasciculi being out of stock. BIBLIOTHECA INDICA.

| | Sanskrit Series | | • | |
|-----|---|---------|-----|------------|
| | Advaitachints Kaustubha, Fasc. 1-8 @ /10/ each | Rs. | 1 | 14 |
| | Aitarēya Brāhmaņa, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. II, Fasc. 1-5; Vol. | | • | •• |
| | Francis Tol. 17 Page 1 8 (6) /16/ ageh | , | 14 | 6 |
| | Fasc. 1-5, Vol. IV, Fasc. 1-8 @ /10/ each | ••• | | - |
| | Aitereya Lochana. | ••• | 2 | 0 |
| | Amarkosha, Fasc. 1 | ••• | 2 | 0 |
| | • Apu Bhāshya, Fasc. 2-5 @ /10/ each | ••• | 2 | 8 |
| | Anumana Didhiti Prasarini, Fasc. 1 @ /10/ | ••• | 1 | 4 |
| | Aştasāhasrikā Prajňāpāramitā, Fasc. 1-6 @ /10/ each | • • • | 3 | lz |
| | 'Atmatattaviveka, Fasc. I | ••• | 0 | 10 |
| , | Açvavaidyaka, Fasc. 1-5 @ /10/ each | | 3 | 2 |
| | Avadana Kalpalatā, (Sana. and Tibetan) Vol. 1, Fasc. 1-10; Vol. 11. | | | |
| | t'nec. 1-10 @ 1/ each | | 20 | 0 |
| | Balam Bhatti, Vol. I, Fasc. 1-2, Vol II, Fasc. 1@/10/each | | 1 | 14 |
| | Baudbāyana S'rauta Sūtra, Fasc. 1-3 Vol. II, Fase 1-5 @ /10/ each | | 5 | Õ |
| • | Bhāsavritty | | ō | 10 |
| | Bhatta Dipika Vol. I, Fasc. 1-6; Vol. 2, Fasc. 1, @/10 each | | 4 | 6 |
| | | ••• | 2 | |
| | Bauddhastotrasungraha | ••• | | 0 |
| | Brhaddevata Fasc. 1-4@/10/each | | 2 | 8 |
| | Brhaddharma Purāņa Fasc 1-6@/10/each | ••• | 3 | 12 |
| • | Bodhiearyāvatāra of Çāntideva, Fasc. 1-6 @ /10/ each | ••• | 3 | 12 |
| | Cri Cantinatha Charita, Fasc. 1-3 | ••• | 1 | 14 |
| | Qataduşanî, Fasc. 1-2 @ /10/ each < | ••• | 1 | 4 |
| | Catalogue of Sanskrit Books and MSS., Fasc. 1-4 @ 2/ each | | 8 | 0 |
| | Qatapatha Brahmana, Vol I, Fasc. 1-7, Vol II, Fasc. I-5, Vol. | 111, | | |
| | Fasc. 1-7 Vol. V, Fasc. 1-4 @ /10/ each | | 34 | 6 |
| | Ditto Vol. VI, Fasc. 1-3 @ 1/4/ each | | 3 | 2 |
| | Ditto Vol. VII, Fasc. 1-5 @ /10/ | ••• | 3 | 2 |
| | Ditto Vol. 1X, Fasc. 1-2 | | ì | 4 |
| | Çatasāhasrikā Prajfiāpāramitā Part, I. Fasc. I-17 @ /10/ each | ••• | 10 | 10 |
| | *Caturvarga Chintamani, Vol. II, Fasc. 1-25; Vol. III. Part I, | ••• | 10 | 10 |
| | Fasc. 1-18. Part II, Fasc. 1-10. Vol. IV. Fasc. 1-6 @ /10/ each | | 36 | 14 |
| - | | • • • • | | 14 |
| | Ditto Vol. IV, Fasc. 7-8, @ 1/4/ each | ••• | 3 | В |
| . ' | Ditto Vol. IV, Faac. 9-10 @ /10/ | ••• | l | 4 |
| | Oloekavartika, (English) Fasc. 1-7@ 1/4/ each | - ::- | 8 | 12 |
| | Grauta Sutra of Cankhayana, Vol. I, Fasc. 1-7; Vol. II, Fasc. | 1-4; | | |
| | Vol. JII, Fasc. 1-4; Vol 4, Fasc. 1 @ /10/ each | ••• | 10 | 0 |
| | - Cri Bhashyam, Fa:c 1-3 @ /10/ each | | 1 | 14 |
| | Dana Kriya Kaumudi, Fasc. 1-2 @ /10/ each | ••• | 1 | . 4 |
| | Gadadhara Paddhati Kālasāra Vol. I, Fasc. 1-7 @ /10/ each | ••• | 4 | 6 |
| | Ditto Achārasārah Vol. II, Fasc. 1-4 @ /10/ each | ••• | 3 | 2 |
| ` | Gobhiliya Gribya Sutra, Vol. 1. @ /10/ each | | 3 | 2 |
| • | Ditto Vol. II. Fasc. :-2 @ 1/4/ each | ••• | 2 | 8 |
| | Ditto (Appendix) Gobhila Parisista | ••• | 2 | ő |
| | Ditto Grihya Sangraha | | ō |) <u>ö</u> |
| | 47. 3.4. | ••• | ĭ | 14 |
| | 70 1 1 73 . T | ••• | i | |
| | | ••• | - 1 | 4 |
| | Kāla Viveka, Fasc. 1-7 @ /10/ each | • • • | 4 | 6 |
| | Kātantra, Fasc. 1-6 @ /12/ each | ••• | 4 | 8 |
| | *Kūrma Purāņa, Fasc. 3-9 @ /10/ each | ••• | 6 | 10 |
| | Kiranavali, Fasc. 1-2 @ /10/ each | ••• | 1 | . 4 |
| | Madana Pārijāta, Fasc. 1-11 @ /10/ each | | 6 | 14 |
| | Mahā-bhāsya-pradipōdyōta, Vol. 1, Fasc. 1-9; Vol. 11, Fasc. 1-12 Vol. 1 | 111, | | |
| | Fasc. 1-10 @ /10/ each | | 19 | 6 |
| | Ditto Vol. IV, fasc. 1 @ 1/4 | | 2 | 8 |
| | Manutikā Sangraha, Fasc. 1-3 @ /10/ each | ••• | 1 | 14 |
| ٠, | Markandeya Purana, (English) Fasc. 1-9 @ 1/- each | ••• | 9 | ō |
| | *Mimāinsā Darçana, Fasc. 10-19 @ /10/ each | ••• | 6 | 4 |
| | • Murchahadha Vyakarana Fasc 1.4 @ /10/ each | ••• | 2 | 8 |
| | - Milkimubodine / Jakarane, 1 acc. 1-3 (2) /10/ cach | ~. | - | т |

Digitized by Google

समानधार्मिकाणां च सङ्गमोऽपि मङ्गते पुष्याय, किं पुनस्तदनु-कपा प्रतिपत्ति: १। सा च खपुत्रादिजकोत्सवे विवाईऽन्यस्मिवपि तथाविधे प्रकर्णे साधर्मिकाणां निमम्बणम्, विधिष्टभोजन-ताम्बूलवस्त्राभरणादिदानम्, पापित्रमम्नानां च स्वधनव्ययेना-ऽप्यभ्यदरणम्, प्रन्तरायदोषाच विभवचये पुनः पूर्वभूमिका-प्रापणम्, धर्मे च विषीद्तां तेन तेन प्रकारेण धर्मे खैर्यारीपणम्, प्रमाद्यतां च स्नार्णवार्णचीदना'प्रतिचीदनाऽऽदिकरणम् वाच-नाप्रच्छना'परावर्तनाऽनुप्रेचाधर्मकचादिषु यघायोग्यं विनियोजनं, विशिष्टधर्मानुष्ठानकरणार्थं च साधारणपोषधगासादैः करच-मिति। त्राविकासु धनवपनं त्रावकवदन्युनातिरिक्तसुन्नेतव्यम्। तत्र ज्ञानदर्धनचारित्रवत्यः शीलसन्तीषप्रधानाः सधवा विधवा वा जिनशासनानुरत्तमनसः साधर्मिकलेन माननीयाः। ननु स्तीषां कुत: गीलगालित्म ?, कुतो वारबवययुक्तत्म ?, स्त्रियो हि नाम लोकी लोकोत्तरे चाऽनुभवाच दोषभाजनलेन प्रसिद्धाः। एताः खल्ब-भूमिजा विवनम्दर्यः, चनभ्रसम्भवा वचाधनयः, ग्रसंत्रका व्याधयः, पकारणो सत्युः, पकन्दरा व्याच्चाः, प्रत्यचा राचस्यः ; पसत्यवच-नस्य, साइसस्य, बन्धुस्रेहविघातस्य, सन्तापहेतुलस्य, निविवेकलस्य च परमं कारचिमिति दूरतः परिद्वार्थाः, तलायं दानमंमानवासाख्य-विधानं तासु युक्तियुक्तम् ?। उच्यते । अनेकान्त एष:, यत् स्त्रीयां दोषबहुसलमुख्यते, पुरुषेष्यपि हि समानमितत्। तेऽपि क्राराशया दोवबहुसा नास्तिकाः क्रतम्नाः स्वामिद्रोष्टिणो देवगुरुवश्वकाष

⁽१) ड-चोइन-।

⁽१) ख-त-परिवर्तना-।

दृश्यन्ते। तहर्भनेन च महापुरुषाणामवद्मा कर्नुं न युच्यते, एवं स्त्रीणामि । यद्यपि कासान्तिहोषबहुलत्वमुपलभ्यते, तथापि कासांचिद् गुज्यबहुलत्वमप्यस्ति। तीर्थकरादिजनन्यो हि स्त्रीत्वेऽपि तत्तद्गुज्यगरिमयोगितया सुरेन्द्रेरिप पूच्यन्ते, सुनिभिरिप स्तृयन्ते। स्त्रीक्वका प्रपाहः—

निरतिश्यं गरिमाणं तेन युवत्या वदन्ति विद्वांसः।

तं कमपि वहति गर्भं जगतामपि यो गुब्भेवति ॥१॥ इति ॥ कायन खारीलप्रभावादिनं जलमिव, विषधरं रज्ज्ञमिव, सरितं खालमिव, विषमसतमिव कुर्वेन्ति । चतुर्वे चें च सक्वे चतुर्घमङ्ग ग्टइमेधिस्त्रियोऽपि। सुससाप्रभ्तयो हि त्राविकास्तीर्धकरैरपि प्रयखगुणाः, सुरेन्द्रेरिं खर्गभूमिषु पुनः पुनर्बेषुमतचारिताः प्रवलिमयालैरप्यचीभ्यसम्यज्ञसम्पदः, काश्विचरमदेशः, काश्वि-द्वितिभवान्तरितमोचगमनाः शास्त्रेषु त्रृयन्ते । तदासां जननीनाः मिव भगिनीनामिव खपुतीणामिव वात्तस्यं युक्तियुक्तमेवीत्पग्याम:। दुष्यसद्याचिषी नागिलाच्या व्रतिव्रतिनी त्रावकषदपिसमा सत्यत्री:। तलायं त्राविकाः पापवहनितानिदर्भनेन दूखन्ते ?। तस्माइरेश न परिचरणीयाः, वासास्यं चासां करणीयमित्यलं प्रसङ्केन। न केवलं सप्तचित्रां धनं वपन् महात्रावक उच्चते, किन्ध-तिदीनेष्वपि नि:स्वान्धवधिरपङ्गरोगार्तप्रसृतिषु क्रपया वैवलया धनं वपन्, नतु भक्त्या। भक्तिपूर्वकं दि सप्तचेत्रां यथोचितं दानम्। चतिदीनेषु त्वविचारितपात्वापाचमविख्ष्टकत्वनीया-इक्स्पनीयप्रकारं केवलयेव कर्णया स्वधनस्य वपनं न्याय्यम्। भगवन्तोऽपि हि निष्त्रमणकालेऽनपेचितपात्रापात्रविभागं कर्ष्या सांवत्तरिकदानं दत्तवन्त इति। तदेवं भन्न्या सप्तचेत्रगं दीनेषु चातिदयया धनं वपन् महात्रावक उच्यते। ननु त्रावक इत्युच्यताम्, महात्रावक इति तु महत्त्वविशेषणं किमधेमुच्यते ?। त्रावकत्वमविरतानामेकायणुत्रतधारिणां च शृषोतीति व्युत्पच्यो-च्यते; यदाह—

'सम्पत्तदंसगाई पहित्यहं जहजणा सुषेद य।
सामायारि परमं जो खलु तं सावयं विक्ति ॥ १॥
यदालुतां याति पदार्थेचिक्तनाद्
धनानि पात्रेषु वपत्यनारतम्।
किरत्यपुष्यानि सुसाधुरेवनादद्यापि तं यावकमाहुरस्त्रसा॥ २॥

इति निक्ताच नावकालं सामान्यस्थापि प्रसिद्धम्; विविधितसु
निरितचारसकाल्यत्तपारो सप्तचेत्रीलचा चेत्रे धनवपनाद्दर्धनप्रभावकातां परमां दधानो दौनेषु चात्यन्तकापापरो महात्रावकगन्देनोच्यत दत्यदीष: ॥ १२०॥

सप्तनेत्रां धनवपनं व्यतिरैकहारेण समर्थयते— यः सहाद्यमनित्यं च चित्रेषु न धनं वपेत्। कायं वराकस्वारित्रं दुस्वरं स समाचरेत् १॥ १२१॥

⁽१) संगाप्तहर्शनाहिः प्रतिहिनसं यतिजनात् ऋखोति च । सामाचारीं परमां यः खसुतं त्रावसं स्वते ॥ १ ॥

सदिति विद्यमानमसतो हि धनस्य कयं दानं भवेत् ? सदिप बाद्यं गरीराइहिभूतं पान्तरस्य तु कस्यचिद्दानं न ग्रक्यं कर्तुं, बाद्यमिष यदि नित्यमाकालस्यायि भवेत् तदा न दीयेताऽपि, इदं त्वनित्यं चीरजलज्वलनदायादपार्थिवादिहरचीयं प्रयत्व-गोपितमिष पुर्श्यस्योऽवश्यं विनश्यति ; यदस्यद्गुरव:—

'म्रत्यं चीरा विस्ंपंति उदासंति य दाइया।
राया वा संवरावेद बसा मोडीद कत्यद ॥ १॥
जसको वा विणानेद पाक्षियं वा पसावए।
भवदारिण निमाच्छे वसकोपद्यस्य वा॥ २॥
भूमीसंगोवियं चैव द्वरित वस्तरा सुरा।
उठिभक्ता जाद सब्वं पि सरक्ती वा परं भवं॥ ३॥

षनित्यमि खर्धनं कि चित्वेष्तं ग्रकाते, न चि बच्चतेलम-स्तीति पर्वता प्रभ्यक्यत्त इत्युक्तम् चेचेष्यिति, चेचाणि येषृतं धनं गतसच्चलचकोटिगुणं भवति । एवंविधायामि सामग्रां यः खर्धनं न वपेत् स वराकः निःसच्चयारितं मद्यासच्चिवनीयमतएव दुखरं कथं समाचरेत् ?; धनमात्रलुस्थो निःसच्चः कथं सर्वसङ्ग-त्यागक्षणं चारितं विद्धीत ?, धनाराधितचारित्रः कथं सद्गतिं

⁽१) क्वर्षं बौरा विज्ञुम्मानि, छह्। जयनि च हायाहाः ।
राजा वा संवारयति वसात् स्ट्यते कुमापि ॥ १ ॥
स्वस्तो वा विनामयति पानीयं वा भावसति ।
क्वपद्वारेच निर्मक्केत् व्यसनीप इतस्य वा ॥ २ ॥
भूमीसंगोपितमेव इर्रान व्यन्तराः सुराः ।
स्वस्ताय याति सर्वमपि स्वस्ताची वा परं भवस्य ॥ ३ ॥

प्राप्नुयात् ?, सर्वविरतिप्रतिपत्तिक लगारोपण फलो हि त्रावक -धर्मप्रासाद इति ॥ १२१ ॥

द्दानीं महात्रावकस्य दिनचर्थामाह— ब्राह्मे मुद्धर्त्ते उत्तिष्ठेत् प्रमेष्ठिस्तुतिं पठन् । किंधर्मा किंकुलसास्मि किंव्रतीऽस्मीति च स्मरन्॥१२२॥

पश्चदशसुह्नर्ता रजनी, तस्यां चतुर्दशो सुह्नर्ती ब्राह्मस्तस्ति सुन्ति हित् निद्रां जञ्चात् ; परमे तिहन्तीति परमेष्ठिनः पश्चार्षदादय-स्तेषां सुतिं नमी भरिष्टन्ताणमित्यादिक्पामात्यन्तिकतदषुमान-कार्यभूतां परममङ्गलाधे वा पठवव्यक्तवर्णामिति शेषः ।

यदाह --

'परमिद्विन्त्तणं माणसिमा रेखागएण कायव्यं। सुत्ता विणयपवित्ती निवारिया हो इ एवं तु॥ १॥

प्रस्थे त्वविधिषेणेव नमस्तारपाठमाइन सा काचिदवस्था यस्थां पचनमस्तारस्थानिधकार इति मन्यानाः। न केवलं पठन्, को धर्मी यस्थाऽमी किंधमी, किंकुलं यस्थाऽसी किंकुलः, किं वतं यस्थाऽसी किंवतोऽस्थीत्यइमिति च स्वरिच्दं भावतः स्वर्णम्। उपलच्चणतात्की गुरवो ममिति द्रव्यतः, कुत्र पामे नगरादी वा वसामीति चेचतः, कः कालः प्रभातादिरिति कालतस्रेत्यादि स्वरन्, धर्मस्य जैनादेः, कुलस्येच्हाकादेः, व्रतानामणुत्रतादीनां स्वरणे तिह्नहपरिष्ठारस्थेषकारत्वात्॥ १२२॥

⁽१) परमेडिचिन्तनं सानसे श्रव्यागतेन कर्तव्यस्। सुमा विनयप्रहित्तिनिवारिता भवति एवं छ॥ १॥

ततः--

श्रुचिः पुष्पामिषस्तोत्वेदेवमध्यच्ये वैश्रमि ।

प्रत्याख्यानं यथाशित क्रत्या देवग्रष्टं व्रजित् ॥१२४॥

श्रुचिरित मलोक्षगंदन्तधावनिज्ञालेखनमुखप्रचालन्गण्डूवकरणद्यानादिना श्रुचिः सिन्नत्यनुवादपरं लोकसिक्षे ज्ञायमर्थे

श्रुति नोपदेयपरम्, भप्राप्ते दि शास्त्रमर्थवत्। न दि मिलनः
स्नायात्, बुभुचितोऽश्रीयादित्यव शास्त्रमुपयुच्यते। भप्राप्ते
त्वामुद्यिके मार्गे नैसर्गिकमोद्यान्यतमस्विलुप्तालोकस्य लोकस्य
शास्त्रमिव परमं चच्चरित्येवमुत्तरवाऽप्यप्राप्ते विषये उपदेशः
सफल इति चिन्तनीयम्। न च सावद्यारभेषु शास्तृषां वाचनिक्यऽप्यनुमोदना युक्ता। यदाद्यः—

वृत्तं पि तसा न खर्म किमङ्गः । पुण देसणं काषं ॥ १ ॥
दति श्रुचित्तमनूर्य पुष्पामिषस्तोत्नैरित्यायुपदिश्रति—
विश्वान ग्रहे देवं मङ्गलचैत्यरूपं भगवन्तमर्द्रमाम्थ्यचे पूजयित्वा, पूजाप्रकारानाइ —पुष्पामिषस्तीत्नैरिति, पुष्पाणि कुसुमानि पुष्पपद्यणं सर्वेषां सुगश्चिद्रयाणां विलेपनधूपगन्धवासवस्ताभरणादीनामुपलचणम् । पामिषं भद्यं पेयं च, तच्च पक्षाचफलाऽचतदीपजलच्चतपूर्णपावादिरूपं, स्तीवं शकस्तवादिसङ्गूतगुणोक्तीतैनरूपं, ततः प्रत्याख्यानं नमस्तारसद्विताद्यदारूपं सद्वेतरूपं च

'सावळाणव ज्ञाणं वयणाणं जी न जाणए विसेसं।

⁽१) साबद्यानवद्यानां वचनानां यो न सानाति विशेषम् । स्क्रमपि तस्त्र न चसं विशक्तः ! प्रनर्देशनां करुप् ॥

यन्त्रिमहितादि कला यद्यामकीति मत्त्र्यनिक्तमणं, मित्रिस्यागतपसी इति सुप्रसिद्दमेव, देवग्रष्टं भिक्तिस्त्रेलक्ष्यं व्रजेद्वच्छेत्।
भव च स्नानविक्षेपनवर्णकविमिष्टवस्त्राभरणामहारमस्त्रपरिग्रष्टविभिष्टवाद्यमिशिष्णप्रभतीनां स्तरः सिद्दानां नोपदेशः।
भप्राप्ते मास्त्रमर्थविदित्युक्तमेव देवग्रष्टवजनविधिः पुनरयम्-यदि
राजा भवति तदा "मूल्याए दृष्टीए स्व्वाए दित्तीए स्व्वाए
जुईए स्व्ववतेणं स्व्वपोरिसेणं इत्यादिवचनात्रभावनानिमित्तं
महद्यी याति।

भय सामान्यविभवस्तदा भीदत्यपरिष्ठारेण लोकोपष्ठासं परिष्ठरम् व्रजति॥ १२३॥

নন: ---

प्रविष्य विधिना तत्र तिः प्रदिचिणयेक्जिनम् । पुष्पादिभिस्तमभ्यर्च्य स्तवनैकत्तमैः स्तुयात् ॥ १२४ ॥

तत्र देवग्रहे विधिना विधिपूर्वकं प्रविश्व निस्त्रीन् वारान् पदिचायेत् प्रदिचणीकुर्यात् ; जिनमई इद्दारकम्, प्रवेशविधिया-यम्-पृथ्यताम्बृलादिसिच सद्रव्याणां चुरिकापादुकाव्यचि सद्रव्याणां च परिहारेण कतो सरासङ्गो जिनविग्वदर्शने द्विज्ञालिबन्धं शिर-स्थारोपयन् मनसय तत्परतां कुर्विज्ञति पञ्चविधाभिगमेन नैषे-धिकीपूर्वं प्रविश्वति ।

⁽१) सर्वता ऋद्या, सर्वता दीप्त्रा, सर्वता दाला, सर्वत्तेन, सर्वेदी द्वेता ।

यदाइ — 'सिचित्ताणं दब्बाणं वि उसरणयाए, पवित्ताणं दब्बाणं वि उसरणयाए, एगज्ञसाडिएणं उत्तरासङ्गकरकेणं चक्खु-फारी पञ्जलिएमाईचं सणसो एगत्तीभावकरकेणंति।

यसु राजादि: चैत्यभवनं प्रविधित स तत्कालं राजि इति।

यदाच--

रेमवष्ट्र रायकच्यारं पश्च वररायकच्याक्वारं। खुमं इसीवाण्ड मच्छं तष्ट चामराघी य॥१॥

पुषादिभिरिति पुष्पयश्च मध्ययश्चे पाद्यक्तयोरिय यश्च-मिति न्यायप्रदर्भनार्थम्, तथाश्चि नित्यं विभिवतस्य पर्वेषि स्नात्र-पूर्वकं पूजाकरणमिति स्नात्रकाले प्रथमं सगन्धित्रीखण्डेन जिन-विकास तिसककरणम्।

तत:--

मीनकुरक्रमदागुरुसारं सारसगन्धिनियाकरतारम् ।
तारमिसन्मसयोद्यविकारं लोकगुरोर्देष्ठ धूपमुदारम् ॥ १ ॥
इति वचनादूपोत्चेपचम्, ततः सर्वेविध्यादिद्रव्याणां जलपूर्वेकलसे चेपणं, पसात् कुसमाद्यलिचेपपूर्वेकं सर्वोविधिकपूरकुङ्मत्रीखण्डागुरुप्रधतिभिर्जलमित्रेर्चृतदुग्धप्रस्तिभित्र स्नाव-

⁽१) सचित्रानां ब्रब्धायामि व्यवस्थतमा, व्यवित्रानां ब्रब्धायामि व्यवस्थतमा, प्रवासामि व्यवस्थतमा, प्रवासामि व्यवस्थितमा, प्रवासामिक प्रवासामिक व्यवस्थितमा, प्रवासामिक व्यवस्थितमा व्यवस्थित ।

⁽२) चप्रमुख राजवनुद्रानि पश्च वरराजवनुद्रक्पाचि । चन्नः वत्रत्वपानद् सुनुटं तथा चामराचि च ॥

करणम्, ततः सुरिभणा मलयजरसादिना विलेपनविधानम्, ततः सुगिन्धजाति-चम्पक-ग्रतपच-विचिक्तिल-कमलादिमालाभिभगवतोऽभ्यर्चनम्, रव्वसुवर्णमृक्ताभरणादिभिरलङ्करणम्, वस्त्रादिभिः परिधापनम्, पुरतस सिन्नार्थकगालितण्डुलादिभिरष्टमाङ्गलिकालेखनम्, तत्पुरतस बिलमङ्गलदीपदिधष्टतादीनां दीकनम्,
भगवतस भालस्यले गोरीचनया तिलककरणम्, तत भाराविकाद्युत्तारणम्।

यदाइ ---

'गत्यवरधूवसव्योसहीहि उद्यगाइएहिं चित्तेहिं।
सुरहिविलेवणवरकुसुमदामबिलदीवएहिं च ॥ १ ॥
सिड्ययदिष्टभक्खयगीरोभणमाइएहिं जहलाभं।
कञ्चणमोत्तिश्ररयणाइदामएहिं च विविहेहिं॥ २ ॥
पवरेहिं साहणेहिं पायं भावो वि जायए पवरो।
गय श्रद्रो उवश्रोगो एएसि सिया ण लट्ठयरो ॥ ३ ॥ त्ति।
एवं भगवन्तमभ्यचे पूज्यित्वा ऐर्यापिविकीप्रतिक्रमणपूर्वकं
श्रक्ष प्वादिभिर्दण्डकेषेत्यवन्दनं क्रत्वा स्तवनैः स्तोत्रैक्त्तमैक्तम-

⁽१) गञ्जनरभूपसर्वीषधीभिष्दकाहिकै चिलैः।
सुर्भिविषेपननरकुसुन्दास्विलिशेणकैय ॥ १ ॥
सिक्षार्थक-दिध्यस्त-नोरोयनाहिकै वैयासाभस्।
काञ्चनमौक्तिकरलाहिदासभिष्य विविधैः॥ २ ॥
प्रवरैः साधनैः प्रायो भानोऽपि सायते प्रवरः।
न यान्य उपनोग एतेषां स्वाहुसनो स्राराः॥ २ ॥ स्ति।

कविरिचतै: स्रूयाद गुणोकोर्तनं कुर्यात्। स्तोवाणां चोत्तमल-मिदमुत्तम्—

यघा—

पिक्कियागुचगतेर्गभीरैर्विविधवर्षसंयुक्तैः ।
भाषायविश्विष्ठजनकैः संवेगपरायचैः पुष्यैः ॥ १ ॥
पापनिवेदनगर्भैः प्रचिधानपुरस्तरैर्विचित्रार्थैः ।
भवविष्ठतादिगुचयुतैः स्तोचैच महामितयिष्ठतैः ॥२॥ इति ।
न पुनरेविष्ठैः—

एकं ध्याननिमीलनासुकुलितं चत्तुर्द्वितीयं पुनः पार्वत्या विपुले नितम्बफलके सङ्गारभारालसम् । प्रन्यदूरविकष्टचापमदनकोधानलोद्दीपितं सन्भोभिन्नरसं समाधिसमये नित्रवयं पातु वः ॥ १ ॥

तथा--

भया केयं स्थिता ते गिरसि श्रामिकता किंतु नामैतदस्या नामैवास्यास्तदेतत्परिचितमपि ते विस्तृतं कस्य हेतो:। नारीं प्रच्छामि नेन्दं कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दु-देंव्या निक्रोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शास्त्रमव्याहिभोर्व:॥१॥ तथा—

'पनमत पनयप्यकुपितगो बीच बणगावगापिडिबिंबं। तससु नखतप्पने सुं एकातसतनुथ सं लुइं ॥ १॥

⁽१) प्रथमत प्रथव मक्किपित गौरो चर्चा प्रख्य नप्रति विच्वम् । इयस्य नच्चरं खेषु एका द्यतस्य दृश्यः ॥ ॥

तथा--

तथा--

एतिकां गिरिस स्थितं मम पितः खण्डं सुधादीधिते-र्कालाटं किमिदं विलोचनिमदं इस्तेऽस्थ किं पद्मगः। इस्यं क्रीचिरिपोः क्रमादुपगते दिग्वाससः शूलिनः प्रश्ने वामकरोपरोधसुभगं देखाः स्मितं पातु वः॥१॥

उत्तिष्ठक्या रताक्ते भरमुरगपतो पाणिनेकेन काला धृत्वा चान्येन वासो विगलितकबरीभारमंसं वह्न्याः। भूयस्तत्कालकान्तिहिगुणितसुरतप्रीतिना घौरिणा वः प्रयामानिकः नीतं वपुरलसलसहाह लच्चााः पुनातु ॥ १॥ 'त्रतेन च सम्पूर्णी वन्दनाविधिकपलचितः।

यद्या---

रिति निसी हिय ति वि य पया हिणा ति वि चेव य पणामा।
तिवि हा पूमा य तहा मवस्य तियभावणं चेव ॥ १ ॥
तिदिसि निरक्षण विरद्दे भूमी द पम ज्ञणं च तिष्युत्ती।
वस्या दित्यं सुद्दातियं च तिवि हं च पणि हाणं॥ २ ॥
पुष्पामि म युद्द भिमा तिवि हा पूमा भवस्य तियगं तु।

⁽१) च एतेन।

⁽२) तिको नैवेधिकासिक्य प्रदेशियास्तय एव च प्रयोगाः । तिविधा पूजा च तथाऽवस्यातिकभावनं चैव ॥ १ ॥ तिदिग्निरीक्यविरितिर्भूमी प्रमार्जनं च तिकत्वः । वर्षोदितिकं सुद्रातिकं च तिविधं च प्रयिधानस् ॥ २ ॥ पुष्पामित्रस्तुतिभेदास्तिविधा पूजाऽवस्थातिकवं तः ।

'छ उमत्य-केवित्ति सं सिष्ठ सं भुवणनाष्ट्य ॥ ३ ॥ वसाष्ट्रतियं तु पुषो वंश्वत्यालम्बणस्यक्वं तु । मणवयणकायजणिषं तिविष्टं पणिष्ठाणमिव ष्टोष्ट ॥ ४ ॥ तथा —

'पंचंगो पणिवाभो घयपाठो हो इ जोगसुहाए।
वन्दन जिषसुहाए पणिहासं सुत्तसृत्तीए॥१॥
दो जाणू दोवि करा पंचमयं हो इ उत्तिमंगं तु।
सम्मं संपणिवाभो निभो पंचंगपणिवाभो॥२॥
भक्षोसंतरिभंगु लिको सागारेहिं दोहिं इस्टेहिं।
पिद्टोवरिकोप्परसंठिएहिं तह जोगसुहत्ति॥३॥
चत्तारि भंगुलाई पुरश्रो जाणाई जस्य पच्छिमभो॥
पायाणं उस्मगो एसा 'पुण हो इ जिणसुहा॥४॥

- (१) व्यास्य-केनिकालं सिद्धालं स्वननाथस्य ॥ १ ॥ वर्षादितिकातः सुनर्वर्षायां सम्बन्धकर्णं तः । सनो-वसन कार्यजनितं तिविधं प्रस्थिधानसपि भवति ॥ ॥ ॥
- (२) पञ्चाकः प्रिषपातः स्वपाठो भवति योगसद्या ।
 वन्दनं जिनसद्या प्रिषधानं सक्ताग्रक्ता ॥ १ ॥
 हे जात्तनी हो करौ पञ्चमकं भवत्युत्तमाष्ट्रं द्व ।
 सम्यक् संप्रिषपातो क्रेयः पञ्चाक्रप्रिषपातः ॥ २ ॥
 सम्योग्यानरितः कृष्टिकोशागाराभ्यां हाभ्यां कृषाभ्याम् ।
 एदरोपरिकूर्णरसं स्थिताभ्यां तथा योगसद्रेति ॥ २ ॥
 सत्यार्यकृषानि पुरत स्वनानि यह पश्चिकः ।
 पादयोदसर्गं एषा पुनर्भवति जिनसद्रा ॥ ॥ ॥
- (१) खगड खन्।

'मुत्तासुत्तीमुद्दा 'अत्य समा दोवि गविभया इत्या। ते पुष विडालदेरी लगा भने भलगत्ति ॥ ५ ॥ इत्यादि । ऐर्यापियकीप्रतिक्रमणपूर्वकं चैत्यवन्दनिमत्यक्तम्। ऐर्योपियकीसूत्रं व्याख्यायते-तच रच्छामि पिडकमिरुमित्यादि तस्र मिच्छामि दुवडमिलाना, इच्छामि पिडकमिर्च इरिया-विद्याए विराइणाए; इच्छामि मभिलवामि प्रतिक्रमितुं प्रतीपं क्रमितुम्, ईरणमीर्या गमनमित्वर्थः, तल्रधानः पन्या ईर्या-पय:, तत भवा ऐर्योपियकी ; काइसी ? विराधना जन्तवाधा, तस्या ऐर्यापियका विराधनायाः सकामात् प्रतिक्रमित्सिक्छामीति सम्बन्धः । प्रसिद्धं ब्याख्याने रेशीपधनिमित्ताया एव विराध-नायाः प्रतिक्रमणं स्थाद् न त् शयनादेवस्थितस्य क्रतलोचादेवी ; तस्मादन्यवा व्यास्थायते — ईर्यापयः साध्वाचारः, यदाइ - ईर्यापयो मीनध्यानादिकं भिन्नव्रतं तत्र भवा ऐर्यापिधकी : काऽसी १ विरा-धना साध्व।चारातिक्रमकृषा तस्या इच्छामि प्रतिक्रमित्मिति सम्बन्धः । साध्वाचाराऽतिक्रमस् प्राणातिपातादिकृपः । तत्र च प्राणातिपातस्यैव गरीयस्वम्, श्रेषाणां तु पापस्थानानामस्रैवान्त-भीवः, त्रत एव प्राणातिपातविराधनाया एवोत्तरः प्रपञ्चः। क सति विराधना ? गमणागमणे गमनं चागमनं च समाचारद्वन्यस्तिमन.

⁽१) स्त्राग्रितसम् यात्रसमी द्वाविष गर्भिती इस्ती। ती पुनर्ससाटदंगे सम्मावस्थावसम्माविति॥॥॥

⁽२) कगड समाजिहिं।

गमनं प्रयोजने सति बहियानम् शागमनं प्रयोजनसमाप्ती खखान एव गमनम् । गमनागमनिऽवि कथं विराधना ? इत्याइ -पाचकः मणे प्राच्याक्रमणे प्राणिनी हीन्द्रियादयस्तेषामाक्रमणं पादेन पीडनं प्राच्यात्रमणं तत्र ; तथा, बीपक्रमचे बीजाक्रमचे, प्रनेन बीजानां जीवलमाइ; तथा, इरिचक्समें इरिताक्रमणे; पनेन सकलवन-स्रते:, तथा, घोसाउत्तिंगपचगदगमहीमकडासंताणासंकमधे, घव-म्यायी जलविश्रेव:, इच चावग्याय ग्रह्म मित्रायतः श्रेषजलसन्धीग-परिचरबार्थम्, उत्तिंगा गर्दभाक्ततयी जीवाः, ते चिभूमी विवराचि क्वे नित, कीटिकानगराणि वा उत्तिंगाः ; पनकः पञ्चवर्षीकिः ; दकसत्तिका प्रतुपद्यतभूमी चिक्लिकः ; प्रथवा, दक्यम्देनाष्कायो ग्रमाते मृत्तिकाग्रम्देन तु पृथ्वीकाय इति : मर्कट: कोलिकस्तस्य सन्तानो जालकम्, ततबावध्याययोत्तिङ्गबेत्यादिङ्गसः. तेषां संक-सषमात्रमणं तिसान्। कियन्तीवा भेदेनाच्यातं गक्यन्ते ? इत्याइ-जी में जीवा विराष्ट्रिया ये केचन सर्वद्या मया जीवा विराधिता दः खे स्थापिताः ; ते च एगिंदिया एकं स्पर्धनमात्रमिन्द्रियं येषां ते एकेन्द्रिया: प्रथिश्वप्तेजीवायुवनस्पतिलच्चणाः ; बेदंदिया हे सर्भन-रसने दुन्द्रिये येवां ते दौन्द्रिया: क्रम्यादय: : तेदंदिया चौणि स्पर्भ-नरसनद्राणानि इन्द्रियाचि येषां ते चीन्द्रियाः पिपीलिकादयः; चउरिदिया चलारि सार्यनरसनद्वाणचन्नर्ज्ञचणानीन्द्रियाणि येषां ते चतुरिन्द्रिया भ्रमरादय: ; पंचिंदिया पच श्रीवान्तानि इन्द्रि-याणि येषां ते पश्चेन्द्रिया मूषकादयः। विराधनाप्रकारमाच मभिष्या प्रिमुखा प्रतासर्पेन घटिता:, उत्विप्य चिप्ता

वा; वित्तिमा वर्तिताः पुष्कीकताः धृतिचिक्तकादिना स्थिगताः ; लेसिमा मेथिताः पिष्टा भूम्यादिषु वा लिगताः ; संघादया संघातिताः मन्योन्यगानै रेकच लिगताः ; संघिष्टया संघिष्टताः मनाक् स्प्रष्टाः ; परिम्राविमा परितापिताः समन्ततः पीष्ठिताः ; किला-मिमा क्रिमा क्रानिमापादिता मारणान्तिकं समुद्घातं नीता दत्यर्थः ; उद्दवमा भवद्राविता उत्तासिताः ; ठाणाच द्वाणं संका-मिया खत्यानात् परस्थानं नीताः ; जीवियामी ववरोविया जीविताद् स्थपरोपिता मारिता दत्यर्थः ; तस्म तस्य मिष्ट्या दत्यार-भ्योक्षविराधनाप्रकारस्य सर्वस्य मिष्ट्यामि दुक्कडं मिष्या मे दुष्कृतम् एतद् दुष्कृतं मिष्या मे भवतु विपलं भवत्वत्यर्थः । सिष्ट्यामि दुक्कडं मिष्या मे स्थामि दुक्कडमित्यस्य पूर्वाचार्था निक्काविधिमुपदर्शयन्ति—

'मित्ति मिउमह्वस्थे कृति य दोसाण क्रायणे हो र ।

मित्ति भमेराए ठिभो दुत्ति दुगंक्यामि भप्पाणं ॥ १ ॥

कृति कडं मे पावं डित्ति य डिवेमि तं उवसमेणं ।

एसी मिच्छादुक्कडपयक्वरस्थो समायेणं ॥ २ ॥

एवमालोचनाप्रतिक्रमण्ड्यं हिविधं प्रायिष्त्तं प्रतिपद्य कायीस्मीलचणं प्रायिष्तं प्रतिपिक्ष्रिंदं सूतं पठति-तस्य उत्तरीकर्षणं

तद्यया —

⁽१) मीति सदु-मार्दवार्थे चेति च दोषाषां बादने भवति। मीत्वमर्यादायां स्थितो दु-इति जुगुश्च चात्वानस् ॥ १ ॥ क्वेति कर्तमे पापं खेति च खक्क्वामि तदुपयमेन। एव मिक्सादुक्कड (निष्यादुक्कृत) पदाचरार्थः समासेन ॥ २ ॥

पायच्छि सकरषेणं विसी ही करणेणं विस्न ही करणेणं पावाणं कन्याणं निग्घायषट्ठाए ठामि काचस्रमां। तस्यासीचितप्रतिकाम्तस्य विरा-धनाप्रकारस्य उत्तरीकरणादिना इत्भूतेन ठामि काउसागमिति योगः। तत्रीत्तरकरचं पुनः संस्कारदारेष परिष्करणमन्तर-स्योत्तरस्य करणमुत्तरीकरणम् ; प्रयं भाव: - विराधनस्य हि पूर्वमालीचनादिकं कृतं तस्यैव कायोक्सर्गकर्णम् स्वर्णम् तेन पापकर्मनिर्घातना भवति। उत्तरीकरणं च प्रायश्चित्तकरण-द्वारेण भवति इत्याद्य-पायच्छित्तकरणेणं प्रायो बाइस्येन चित्तं जीवं मनी वा श्रोधयति प्रायश्वित्तनः ; यहा, पापं क्रिनत्तीति पापिक्कत् पार्षेलात्पायिक्कतं तस्य करपेन हेतुभूतेन। प्राय-च विश्व हिद्दारेण भवतीत्याच - विसी ची करणेणं विशोधनं विश्विः भपराधमितनस्यामनो निर्मेत्रीकरणं विश्वेः करणं विश्व दिकरणं तेन हित्भूतेन। विश्व दिकरणं च विश्व स्थ-करणहारेष भवति पत पाष्ट-विसन्नीकरणेणं विगतानि ग्रस्यानि मायादीनि यस्याऽसी विश्रस्य:, श्रविश्रस्य विश्रस्य करणं तेन हितुभूतेन। किमित्याइ-पावाणं कचाणं निग्घा-यगट्ठाए पापानां संसारनिबन्धनभूतानां कर्मणां ज्ञाना-वरणीयादीनां निर्घातनार्थीय निर्घातनमुच्छेदः स एवार्धः प्रयो-जनं तस्मे, ठामि काउसामां भनेकार्यत्वादातूनां ठामि करोमि कायस्य उत्सर्गी व्यापारवतः परित्यागस्तम्। किं सर्वया ? नित्याध-भवता जसिवएणं भन्यती किसितात्, ततीया पश्चम्यर्थे, जहुं प्रलब्धं वा म्बसितमुक्किसितं तन्त्रक्षा योऽन्यो व्यापारस्तेन व्यापारवतः

कायस्य उसर्गे इत्यर्थः, उच्छिसितं हि निरोहुमशक्यम्, तिवरोधे सद्यः प्राणविघाताद्यापत्तेः।

यदाइ---

'जसासं न निक्ंभइ मिमगिहिमोवि किसुम चिट्ठाए। सज्ज मरणं निरोहे सुहुसुस्मासं तु जयणाउ॥१॥

एवं निःखसिताद्यपि नीससिएणं घ्रषः खसितं निःखसितं तस्मात्; खासिएणं काशितात्; क्रिएणं चुतात्; जन्भाइएणं विद्यत-वदमस्य प्रवन्तपवननिर्गमी जृत्भितं तस्मात्; उड्डएणं उद्वारितात्; वायिनसग्गेणं घपानेन पवननिर्गमी वातिनसर्गस्तस्मात्; भमिलए यरीरश्रमेराकस्मिक्याः; पित्तमुच्छाए पित्तपावच्यान्यनगमी हो सूर्ष्ठी तस्याः; सुदुमेष्ठं प्रंगसंचालिष्ठं सुद्योभ्यो लच्चालच्येभ्यो-ऽष्ठः सद्यारेभ्यो गावविचलनप्रकारेभ्यो रोमोद्रमादिभ्यः; सुदुमेष्ठं खेलसंचालिष्ठं सुद्योभ्यः खेलस्य श्रेषणः सञ्चारेभ्यः; प्रात्मनी ष्ट्रि वीर्ययुक्तद्रव्यतया चन्तः सुद्याश्रेषमचारः सन्भवतीत्यतोऽन्यत्रोच्यते सुदुमेष्ठं दिद्वसंचालिष्ठं सुद्योभ्यो दिष्टसचारेभ्यो निमेषादिभ्यः; सुद्या ष्ट्रि दिद्वसंचालिष्ठं सुद्योभ्यो दिष्टसचारेभ्यो निमेषादिभ्यः; सुद्या ष्ट्रि दिव्यारास्तदा सर्वया निरो हुं प्रक्रम्ते यदा एकस्मिन् द्रव्ये दिष्टनिवेशः स्थिरीकर्तुं प्रक्यतं, न च प्रक्यते कर्तुमिति । उच्च सितादिभ्योऽन्यत्र कायोत्सर्गं करोमीत्येतावता किसुकं भवति एवमाइएष्टं घागारेष्टं घभगो भविराष्टिभो हुळ्ज मे काउस्यगे एवमाइएष्टं घागारेष्टं घभगो भविराष्टिभो हुळ्ज मे काउस्यगे एवमादिभिक्षच्युसितनिः खसितादिभः पूर्वोक्तराकारेरपवादक्रपै-

 ⁽१) उच्चासंन निर्णित स्राभियाश्चिरित विस्त वेष्या।
 स्ट्रो सर्चं निरोधे भूच्योच्छासं स्र यतनया॥ १॥

रभम्नोऽविराधितो में कायोक्षनी भूयादिति सम्बन्धः ; पादिगन्दादम्यैरिप यदा प्रमनेविद्युतो वा च्योतिः स्प्र्यात तदा प्रावरणायोपधिष्रप्रणं कुर्वतो न कायोक्षग्रेभद्भः । ननु नमस्कारमेवाभिधाय किमिति तद्यप्रणं न करोति येन तद्वक्षो न
भवति ? । चच्चते—नाऽत्र नमस्कारेच पारचमेवाविष्यक्षययोक्षग्रेमानं क्रियते, किन्तु यो यत्परिमाणः कायोक्षग्रं उक्तस्तावन्तं कालं
प्रतीच्च तत उन्हें नमस्कारमपित्वा पारयतो भङ्गोऽपरिसमाप्तेऽपि
च पठतो भङ्ग एव, तस्ताद्यो यत्परिमाणः कायोक्षग्रं स्तिम् पूर्ण
एव नमो परिष्ठताणिमिति वक्तव्यम् । तथा मार्जारम् विकादेः
पुरतो गमनेऽयतः सरतोऽपि न भङ्गः । तथा चौरसंभिने राजः
संभिने वा प्रस्थानेऽपि नमस्कारसुचारयतो न भङ्गः । तथा सर्पदेष्टे
पाक्षनि परे वा साध्यादौ सन्नसा चचारयतो न भङ्गः ।

यदाषु:--

'घगिष-उच्छिन्दिज-बोहिषकीभार-दोहडको वा। षागारेहिं न भगो उसागो एवमाईहिं॥१॥

पाकियन्ते पाग्टश्चन्ते इत्याकाराः कायोक्षर्गीपवादप्रकारा इत्यर्थः, तैराकारैर्विद्यमानैरिप भग्नः सर्वया विनाशितः, न भग्नो-ऽभग्नः, विराधितो देशभग्नः, न विराधितोऽविराधितो भवेत्राम कायोक्षर्गः । कियन्तं कालं यावदित्याञ्च—जाव परिश्ंताणं भग-वंताणं नमोकारेणं न पारीम यावदिति कालावधारणे, याव-

⁽१) चान्युः च्छेश-वोधिक चोभादि दीर्घदष्टो वा। चाकारैने भन्न चत्वर्ग एवमादिभिः॥।॥

दर्शतां भगवतां सम्बन्धिना नमस्तारेण नमीपरिष्ठंताणमित्यनेन न पार्यामि न पारं गच्छामि ताविकामित्याह ताव कायं ठाषेणं मोषिणं भाषिणं चप्पाणं वोसिरामि तावत्तावन्तं कालं कायं देशं खानेनी हुंखानेन हेतु भूतेन जहुंखानमिश्र हा कायप्रसरनिषेधेने-त्यर्थ:, मौनेन वाग्निरोधल वर्षन,ध्यानेन मुभेन सद्विषये चिन्तामिभ-ग्टह्येत्वर्धः ; प्रणाणं पार्वत्वादासीयं कायं वीसिरामि व्यत्-स्रजामि कुव्यापारनिराकरमेन परित्यजामि । भन्ये तु भप्पामिति न पठिनत । त्रयमर्थः — पश्चविं शत्युक्कासमानं कालं यावटूर्द्ध-स्थानस्थितः प्रलम्बभुजो निरुद्ववास्प्रसरः प्रश्वस्त्रधानाऽनुगत-स्तिष्ठामि स्थानमीनध्यानिकयाव्यतिरेकेण क्रियान्तराध्यासद्वारेण व्युत्रजामि । पञ्चविंगत्युच्छासाय चतुर्विंगतिस्तवेन चन्देसु नि-मान्यरा इत्यमीन चिलितेन पूर्यन्ते, पायसमा जसासा इति वचनात्। संपूर्णकायोत्सर्भेय नमी अरहंताणमिति नमस्कारपूर्वेकं पारियत्वा चतुर्विंगितस्तवं सम्पूर्णं पठित । एवं सिबिहिते गुरी तक्षमचं गुरुविरहे तु गुरुखापनां मनसिक्कत्वा देयीपथप्रतिक्रमणं निर्वर्त्य चेत्यवन्दनमुल्कृष्टमारभ्यते, जघन्यमध्यमे तु चैत्यवन्दने ऐर्यापथिकीप्रतिक्रमण्मन्तरेणाऽपि भवतः। त्रव नमस्कारेण नमो चरहंताचित्रसनेन

वपुरेव तवाचष्टे भगवन् ! वीतरागताम् ।

न हि कोटरसंस्थेऽग्नी तक्भैवति शाडुनः ॥ १ ॥

इत्यादिना कविकतेन च जघन्या चैत्यवन्दना भवति ।

श्रन्थे तु प्रणासमाचक्षपां जघन्यां चैत्यवन्दनां वदन्ति ।

यदाइ-

प्रवामसु पश्चधा--

एकाङ्गः शिरमी नाम स दाङ्गः करयोद्देयोः ।

पयाषां नमने पाङ्गः करयोः शिरसस्तथा ॥ १ ॥

चतुर्षां करयोर्जान्वोन्मने चतुरङ्गकः ।

शिरसः करयोर्जान्वोः पञ्चाङ्गः पञ्चके नते ॥ २ ॥

मध्यमा तु स्थापनाईतस्तवदण्डकेन सुत्या चैकया भवति ।

'नवकारेण जस्त्रा दंडगधुरू जुगल मिक्समा पेया। संपुष्पा उक्कोसा विस्थिता खलु वंदणा तिविसा॥ १॥

द्रत्युष्णृष्टया चैत्यवन्दनया विन्दित्यकामी विरतः साधः त्रावक्षयं प्रविरतसम्यगृदृष्टिरपुनर्वस्थको वा यद्याभद्रको यद्योचितं प्रति-लेखितप्रमाजितस्यण्डलो भवनगुरी विनिविधितनयनमानसः संवेगवैराग्यवगादुत्पत्ररोमाञ्चकञ्चको सुदत्रपूर्णलोचनः प्रति-दुर्लभं भगवत्पादवन्दनिमिति बद्य मन्यमानो योगसुद्रया प्रस्वलि-तादिगुणोपेतं तदर्शनुस्मरणगभे प्रणिपातदण्डकस्त्रं पठित । तत्र च वयस्त्रिंग्यदालापका पालापकदिकादिप्रमाणाय वित्राम-भूमिक्पा नवसम्पदो भवन्ति । यदाष्ट्र--

> ैदी तिश्र चउर ति पंचा दोन्नि श्र चउरो य हुन्ति तिन्ने य। सक्रवए नव संपय तित्तीसं होन्ति श्रालावा ॥ १ ॥

⁽१) नमस्तारेष जधन्या दय्डकस्तृतियुगसादृ मध्यमा त्रेया। सम्मृषीत्कृष्टा विधिना खतु वन्दना तिविधा॥ १॥

⁽२) हो लयसतारस्तयः पश्च हो च चत्वारच भवन्ति लयस । यक्तस्तवे नव सम्पदास्तयस्तिं गदु भवन्ति स्वासापाः ॥ १ ॥

एताय यय। स्थानं नामतः प्रमाणतय कयियन्ते। व्यास्था नमोत्युणं घरष्टंताणं भगवंताणं तत्र नम इति नैपातिकं पदं पूजार्धे, पूजा च द्रव्यभावसद्योचः। तत्र करियरःपादादिद्रव्यसत्यासी द्रव्य-सद्योचः, भावसद्योचलु विश्वस्य मनशे नियोगः, पस्थिति भवतु। प्रार्थनेषा धर्मबीजमागयविश्वदिजनकत्वात्। णमिति वाक्या-लद्वारे। प्रतिशयपूजामर्षन्तीति पर्यन्तः।

यदा ह---

'त्ररहंति वंदणनमंसणाई घरहंति पूयसकारं। सिदिगमणं च त्ररिहा त्ररहंता तेण वृत्तंति ॥ १ ॥

सुग्हिषार्षः सित्रियत्रमुखे॥५।२।२६॥ इति वर्त्तमानकालिऽत्वश्। कणं वर्तमानकालविमिति चेत्, पूजारक्षस्याऽनुपरमात्। एष एव हि न्याय्यो वर्तमानकालो यत्नारस्यस्यापवर्गी नास्ति। तथा चरिष्ठन-नादर्हन्तः, परयस्र मोष्ठादयः साम्परायिककमेवस्वष्ठतवः, तेषा-मरीणामनेकभवगष्ठनव्यसनप्रापणकारणानां इननादर्हन्तः। तथा रजोष्ठननादर्हन्तः, रजस्र घातिकमेचतुष्टयं येनाव्यतस्याकनः सत्यपि ज्ञानादिगुणसभावस्ये घनसमूष्टस्यगितगभस्तिमण्डसस्य विवस्तत इव तद्गुणानामभित्यक्तिने भवति तस्य इननादर्षन्तः। तथा रष्ट-स्याभावादर्षन्तः; तथाष्टि—भगवतां निरस्तनिरवभिष्ठानावर्णादिकमेपारतन्त्राणां केवलमप्रतिष्ठतमनन्तमद्भुतं ज्ञानं दर्भनं चास्ति, ताभ्यां जगदनवरतं युगपग्रस्थन्तो जानतां पद्यतांच

⁽१) अर्डुनि वन्दन-नमस्नादार्ड्डाम पूजासत्कारम्.। विश्विमने च सर्हा सर्चनकेने स्थाने॥ ! ॥

रहस्यं नास्ति, तस्ताद्रहस्थाभावादर्ङन्तः । एषु निष्ववेषु प्रवीदरा-दिखादर्इदिति सिद्याति । प्रववा प्रविद्यमानं रष्ट एकान्तरूपी देगोऽन्तव मध्यं गिरिगुष्टादीनां सर्ववेदितया प्रच्छवस्य कस्त्राप्य-भावेन येवां तेऽरष्टोऽन्तरस्तेभ्योऽरष्टोन्तर्भ्यः । प्रववा प्ररष्ट्रस्थः चौषरागलात् कचिद्य्यासिक्तमगच्छद्भाः । प्रववा प्ररष्ट्रस्थो रागदेषष्टेतुभूतमनोत्तेतरविषयसंपर्वेऽपि वौतरागलादिकं स्तं स्त्रभावमत्यज्ञद्भाः । प्ररिष्टंताष्यिति पाठान्तरं वा ; तत्र कर्मारिकन्त्रभ्यः ।

पाड च--

'षडविष्ठं पि षु कमां घरिभूयं हो इ सयसजीवाणं।
तं कमामरिष्ठंता घरिष्ठंता तेच वृष्ठंति ॥ १ ॥
घर्ष्ठंताचिमत्यिप पाठान्तरम्। तत्र घरीष्ठदृभ्योऽनुपजायमानिभ्यः, चौचकमेबीजलात्।

∵उत्तच —

दम्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवित नाष्ट्रः। कर्मबीजे तथा दन्धे नारीष्ट्रति भवाष्ट्ररः॥१॥

ग्राव्हिकाल पर्वच्छन्दस्वैव प्राक्तते क्वव्यमिच्छन्ति ; यदय-मवीचाम -- "उवार्वति" ॥ पार १११॥ चकाराददिताविष, तेभ्यो-ऽर्वदभ्यो नमीऽस्विति नम: प्रव्योगाचतुर्थी, "चतुर्था: वष्ठी" ॥ पार १११॥ दित प्राक्ततस्त्राचतुर्था: स्वाने वष्ठी । बहुवचनं चार

⁽१) चर्रिविषयि चन्नु सर्गाऽरिसूतं भवति वस्त्रजीवानास् । तत् सर्गारिकनारोऽर्कनकोनोच्यने ॥ १ ॥

हैतव्यवच्छेदेनाऽई इहुत्वस्थापनार्थम्, विषयबहुत्वेन नमस्तर्तुः फलातिगयभ्रापनार्थे च। एते चाऽईन्तो नामायनिकभेदा इति भावाईत्राम्पदिग्रहार्थमाह भगवद्वाः—

भगोऽक्षेत्रानमाद्यातम्ययगोवैराग्यमुक्तिषु। क्यवीर्यप्रयक्षेत्र्यात्रीधर्मेग्वर्ययोनिषु॥१॥

इति वचनादर्भयोनिवर्जमिष्ठ हाद्यधा भगगन्दसार्थः स विद्यते येवां ते भगवन्तः, निन्दावर्जं भूस्यादिष्वर्धेषु मतुः ; ज्ञानं तावहर्भिनवासात प्रश्तति पादीचाती मतिश्रताविधलचणं दीचाननारं खघातिकर्मचतुष्टयच्याद् मनःपर्यायचानसहितम्, घातिचये चाननामनन्तविषयं नि:श्रेषभावाभावस्रभावावभासकं कीवलज्ञानम् । १ । माहात्म्यं प्रभावातिगयः, तत्र सर्वेकस्थाणकीषु नारकाणामि सुखीत्पादकलेन नित्यसन्तमसेष्विप नरकेषु प्रकाशजनकालेन गर्भनिवासात् प्रस्ति कुलस्य धनादिवर्धनेना-ऽप्रचतसामनानां च प्रचलेतिमारिवैरोपष्टतिवर्जितराज्यकरबे-नाऽतिहद्यमाहष्टिप्रसत्युपद्रवरिष्ठतजनपदत्वेन चित्रतासनसकत-सुरासुरप्रवातपादपद्मलेन चाऽवसेयम्। २। यशसु रागद्वेषपरीष-ष्ट्रीपसर्भपराक्रमसमुखमाकालप्रतिष्ठं यसर्वेदा दिवि सुरसुन्द-रीभि: पाताने नागक वाभिगीयते सुरासुरैनित्यमभिष्ट्रयते च ।३। वैराग्यं मबन्नरेन्द्रलच्छीमनुभवतामपि यत तत रतिर्नाम, यदा तु सर्वविषयत्यागपूर्वेकं प्रवच्यां प्रतिपद्यन्ते तदाऽसमिभिरिति, यदा तु चीषकर्मणो भवन्ति तदा सुखदु:खयोभेवमोचयोरी-दासीन्यमिति विविधमप्यतिशायि भवति ।

यदवीचाम वीतरागस्तोत्रे—

यदा मक्चरिन्द्रश्रीस्वया नाघोपभुज्यते।
यत्र तत्र रितर्नाम विरक्तत्वं तदापि ते॥ १ ॥
नित्यं विरक्तः कामेभ्यो यदा योगं प्रपद्यमे।
प्रजमिभिरिति प्राज्यं तदा वैराग्यमस्ति ते॥ २ ॥
सुखे दुःखे भवे मोचे यदौदासीन्यमीपिषे।
तदा वैराग्यमेवेति कुच नाऽसि विरागवान् ॥३॥ इति ।४।
मुक्तिय सक्तक्तेयप्रशायलच्या समिष्ठितेवेति। ५।

रूपं तु—

'सब्बसुरा जद्ग कवं घंगुद्वपमाणयं विचिष्वका। जिल्पायंगुद्वं पद्म न सोहर तं जहिंगाली॥१॥

द्ति निदर्भनात् सिषं सर्वातिमायि। ६। वीयं च मेरोर्दण्ड-रूपतां धरिनास छनक्पतां कतुं सामर्थ्यम् त्रूयते; डि तत्काल-जातेनैव त्रीमहावीरेण मक्तमद्वापनोदाय वामपादाकुष्ठेन मेर-पर्वतः प्रकान्मितः । ७। प्रयतः परमवीर्यसमुख एकरात्रिक्यादि-महाप्रतिमाभावहेतुः समुद्वातमेनेम्यवस्थाव्यङ्गः। ८। दच्छा तु जन्मान्तरे स्रजन्मिन तीर्थकरजन्मिन च दुःखपङ्कमम्बस्य जगत उद्यिणितिमयवती। ८। त्रीर्घातिकमीच्छेदविकमावाप्तकेवला-क्रोकसम्पत्तः, प्रतिगयसुखसम्पद्यातुपमा। १०। धर्मः पुन-रनात्रवी महायोगात्मको निर्श्वराफ्लोऽतित्रयेयान्। ११। ऐक्ययं तु

⁽¹⁾ श्वरंश्वरा विद् रूपमङ्गुष्ठप्रमायकं विकुर्वेदः। स्निम्पादाकुरं प्रति न योभते तद् वयाङ्गारः॥ १॥

भिक्तभरावनम्बिद्यपितिविश्वितसमवसर्गप्रातिशार्योदिक्पम्।१२। एवभूता एव प्रेचावतां स्तीतव्या इत्याभ्यामासापकाभ्यां स्तीत-व्यसम्पद्ता। साम्प्रतमात्रा हेतुसम्पद्ग्यते— पादगराणं तित्यय-राणं सयंसंबद्धाणं — पादिकरणशीला पादिकरणहेतवी वा पादि-कराः सकन्नीतिनिबन्धनस्य ज्ञतधर्मस्येति सामर्थाद्गस्यते तेभ्यः। यद्यपि सेवा हादशाङो न कटाचित्रासीत. न कटाचित्र भवति, न कदाचित्र भविष्यति, प्रभूच भवति च भविष्यति चेति वचनाद् नित्या द्वादशाङ्गी; तथाध्यश्रीचया नित्यत्वं गन्दापेचया तु स्वस्ततीर्थेषु युत्रधर्मादिकरत्वमविष्डम्। एतेऽपि कैवत्यान मरापवर्गवादिभिरतीर्धकरा एवेष्यन्ते सक्ततस्त्रचये कैव-ल्याभावादिति वचनादिति तदापोचार्धमाच-तीर्धकरेभ्यस्तीर्यते संसारसमुद्रोऽनेनिति तीर्थं तच प्रवचनाधारसत्विधसन् : प्रथमगण-भरो वा; यदाइ: - 'ति खं भन्ते ! ति खं ति खयरे ति खं गोयमा ! परिष्ठा ताव नियमा तित्यं करे तित्यं पुण चाउवसे समणसंचे पटमगणहरे वा, तलारणगीलास्तीर्धनाराः। न चाक्तरस्रचये कैवलां न भवति, घातिकर्भवये श्रघातिकर्मभः कैवलाखा-बाधनात्। एवं ज्ञानकैवस्ये तीर्यकरत्वसुपपदाते, सुक्रकैवस्ये तु तीर्थकरत्वमस्माभिरपि नेष्यते। एतेऽपि सदा शिवानुग्रहात् कैबिदोधनन्त इचन्ते, यदाइ — महिशानुग्रहाद् बोधनियमा-विति तित्राकरणार्थमाइ -- खयंसंयुद्देभ्य: खयमात्मना तथा-

⁽१) त्रीयं भगवन् । तीर्थं तीर्थंकरकीर्थं गीतम ! कर्कंकाविषयमात् तीर्थं-करकीर्थं प्रनम्रत्वर्थः समयसङ्कारम्यमगस्य रो वा।

भव्यतादिसामगीपरिपाकात्र तु परोपदेशात सभ्यगविपर्ययेच बुद्धा प्रवगततत्त्वाः खयंसंब्द्धास्तेभ्यः। यदापि भवान्तरेषु तथा-विधगुरु सिधानाय सबीधा स्तेऽभूवन्, तथापि तीर्धकरजयानि परोपदेशनिरपेचा एव बुद्धाः, यद्यपि च तीर्थकरजयान्यपि सीकान्तिक विद्रावचनात् ''भयवं तित्यं पवत्तेष्ठ' इत्येवंसचणाद् दीचां प्रतिपद्यन्ते, तथापि वैतालिकवचनानन्तरप्रवृत्तनरेन्द्रया-वावत् स्वयमेव प्रवच्यां प्रतिपदान्ते । इदानीं स्तोतव्यसम्पद् एव हितुविश्रेषसम्पद् श्रते - पुरिसोत्तमाणं पुरिससी हाणं पुरिसवर-पुरुदी पाणं पुरिसवरगन्ध इसीणं — पुरि गरीरे प्रयमात् पुरुषा विशिष्टकार्मीदयादिशिष्टसंस्थानवत्त्ररीरवासिनः सत्त्वास्तेषा-सङ्जतयाभव्यतादिभावतः त्रेष्ठाः पुरुषोत्तमाः ; मत्तमाः तथाहि - प्रासंसारमेते परार्थव्यसनिन उपसर्जनीततस्तार्था चपचित्रक्रियावन्तोऽदीनभावाः सफलारिश्वणो हटानुगयाः कतन्त्र-तापतयोऽनुपद्दतिचा देवगुरुवद्दमानिनो गसीरागया इति। न खल्यसमारचितमपि जात्यरबं समानमितरेण। नच समारचितोऽपि काचादिजीत्यरबीभवति। एवं च यदाइः सीगताः -- नास्तीइ किंदिभाजन सत्त्व इति, सर्वे बुद्दा भविष्यन्ति इति च ; तत् प्रत्युक्तम्। एते च बाज्ञार्थेर्सवादसत्यवादिभिः संस्कृताचार्येशिष्यै-र्निक्पमानस्तवाची एवेष्यको चीनाधिकाभ्यामुपमा स्विति वचनाः त्तावच्छेदार्थमाइ-पुरुषसिंहभ्यः पुरुषाः सिंहा दव प्रधानाः

⁽१) भगवं सीधं प्रवतं बत ।

गीर्थादिगुणभावेन पुरुषसिंहा:, यथा सिंहा: ग्रीर्थादिगुणयोगिन: तथा भगवन्तोऽपि कार्भश्रवन् प्रति शूरतया तदुच्छेदं प्रति क्र्रतया कोधादीन प्रत्यसङ्गतया रागादीन प्रति वीर्ययोगेन तप:कर्म प्रति वीरतया स्थाताः, तथा एवामवन्ना परीष हेषु, न भयमुपसर्गेभ्यः, न चिन्ताऽवि इन्द्रियवर्गे, न खेद: संयमाध्वनि, न प्रकम्पो ध्याने, न चैवमुपमा स्वातहारेण तदसाधारणगुणाभिधानादिति। एते च सचाक्तिष्ये: सजातीयीपमायोगिन एवेष्यत्ते विजातीये-नीयमायां तत्त्रहम्धर्मीपस्या प्रकृषत्वाद्यभावप्राप्तिः। यदाद्यः--ते विक्षीपमायोगे तद्यभाषस्या तदवलुत्वमिति तद्वापीहायाह--पुरुषवरपुण्डरीकेभ्यः पुरुषा वरपुण्डरीकाणीव संसारजला-सङ्गादिना धर्मकलापेन पुरुषवरपुण्डरीकाचि तेभ्यः, यद्याहि पुण्डरीकाणि पद्धे जातानि जलेन विधितानि तद्भयं विद्यायी-परि वर्तन्ते प्रकृतिसुन्दराणि च भवन्ति निवासी भवनलच्याः. त्रायतनं चच्राबानस्ख प्रवर्गुणयोगतो विशिष्टतिर्थयमरासरैः चैव्यन्ते सुखहेतवी भवन्ति ; तथा भगवन्तीऽपि कर्मपङ्के जाता दिव्यभोगजलेन वर्धिता उभयं विद्वाय वर्तन्ते, सुन्दरासातिशय-योगेन निवामो गुणसम्पदः, इतवः परमानन्दस्य कीवल।दिगुण-भावेन तिर्यम्नरामरै: सेश्यलो निश्चित्तसुख हेतवस जायको इति भित्रजातीयोपमायोगेऽप्यर्थती विरोधाभावेन यथोदितदीषा-ऽसभाव:। यदि तु विजातीयोपमायोगीन तहर्मापत्तिरापाद्यते तर्षि सिंहादिसनातीयोपमायोगे तद्यभागां पश्चादीनामव्यापत्तिः स्वादिति। एतेऽवि यद्योत्तरं गुणक्रमाभिधानवादिभि: सुरगुरी-

विनिये हीनगुषोपमापूर्वकमधिकगुणोपमार्हा रूखको प्रभिधान-क्रमाभावे चभिषेयमपि तद्दक्रमवदसदितिवचनादैतिवरासा-याच - पुरुषवरमन्धद्वस्तिभ्यः पुरुषा वरगन्धद्वस्तिन दव वरगजेन्द्रा इव पुरुषवरगत्यञ्चस्तिनः यथा गत्यञ्चस्तिनां गत्येनैव तद्देशविज्ञा-रिषः चुद्रगजा भन्यन्ते तहदिति परचक्रदुर्भिचमारिप्रस्तयः सर्व एवीपद्रवगजा भगवतामचिन्खपुण्यानुभावानां विश्वारपवनगन्धादेव भज्यन्ते, न चैवमिभधानक्रमाभावेऽभिधेयमपि क्रमवदसदिति वाच्यम् । सर्वेगुणानामेकादाःन्योऽन्यसंवालितत्वेनावस्थानात्, तेषां यथार चि स्तोत्राभिधाने न दोष:। एवं पुरुषोत्तमत्वादिना प्रका-रेव स्तोतव्यसम्पद एव हेतुविगेषसम्पत्तृतीया ।३। ९दानीं स्तोत-व्यसम्बद्ध एव सामान्येनीपयोगसम्बद्धमात्र - स्रोगुत्तमार्थं स्रोग-नाष्ट्राषं लोगष्ट्रियाणं लोगपर्यवाणं लोगपळोपगराणं-समुदायेष्वपि प्रवृत्ताः प्रव्हा भनेकथा भवयवेष्विप प्रवर्तन्ते इति न्यायादादापि स्रोकाग्न्देन तत्त्वतः पञ्चास्तिकाया उच्चन्ते, धर्मादीनां हिन-र्द्र्याणां भवति यव तत् चित्रं तैर्द्र्यः सन्न सोकस्तिहिपरीतं चालीकास्यमिति वचनात्। तथापीष्ठ सीकग्रन्देन भव्यसत्त्वसीक एव परिग्रमाते, सजातीयोलार्ष एवोत्तमलोपपत्ते:। प्रभव्यापेचया सर्वभव्यानामप्य्त्तमत्वात्रैवामतिशय उत्तः स्थात्। तत्व भव्यस्वलीकस्य सक्तकस्याणनिबन्धनत्या भव्यलभावे-नोत्तमा लोकोत्तमास्त्रेभ्यः, लोकनायेभ्यः, इष्ट लोकप्रब्देन बीजाधानादिना संविभतो रागाखुगद्रवेभ्यो रचणीयो विशिष्टो भव्यतीकः परिग्रज्ञते प्रसिन्नेव नायत्वीपपत्तेः, योगच्रेमक्रवाव

इति ववनात्, तदि इ येषामेव बीजाधानो द्वेदपोष गेंगींगः, चेमं च तत्तदुषद्रवरचयेन ते एव भव्या सोकायब्देन ग्टच्चम्से, न चैते योगचेम सक्तनभव्यसत्त्वविषये कस्यचित्रभवतः सर्वेषामेव सृति-प्रसङ्गात्तसाद्तास्यैव लोकस्य नाया इति तथा लोकहितेभ्यः, इह लोकगन्देन सकल एव सांव्यवशारिकादिभेदभिन: प्राणिवर्गी ग्टब्राते, तस्रे सम्यग्दर्भनप्रकृपण्यसणयोगेन हिता स्रोकहिताः, तथा लोकप्रदीपेभ्यः, प्रत लोकप्रब्देन विशिष्ट एव देशनावंश्विभ-सिंच्यात्वतमोऽपनयनेन यथाई प्रकाशितन्त्रेयभावः संज्ञिनोकः परि-ग्टब्रात तं प्रत्येव भगवतां प्रदीपत्वीपपत्तेः । नच्चन्धं प्रति प्रदीपः प्रदीपो नाम । तदेवंविधं स्रोकं प्रति प्रदीपा सीकप्रदीपाः, तथा लोकप्रद्योतकरेभ्यः, इह लोकप्रन्तेन विधिष्टचतुर्देशपूर्वविक्रोकः परिग्टहाते, तत्रैव तत्त्वतः प्रद्योतकरत्वोपपत्तेः, प्रद्योतं च सप्त-प्रकारं जीवादिवसुतस्वं तत्प्रद्योतकरणञ्च विधिष्टानामेव पूर्वविदां भवति, तेऽपि षट्खानपतिता एव त्रूयन्ते, न च तेषां सर्वेषामपि प्रयोत: सभावति, प्रयोती हि विशिष्टतस्वसंवेदनयोग्यता सा च विशिष्टानामेव भवति। तेन विशिष्टचतुर्देशपूर्वविक्रोकापेचया प्रकोतकरा एवं लोकोत्तमत्वादिभिः पश्वभिः प्रकारैः परार्थ-करणाः स्तीतव्यसम्पदः सामान्येनीपयोगसम्पञ्चत्वी । ४। इदानी-मुपयोगसम्पद एव हेतुसंपदुच्यते। चभयदयाणं चक्ख्दयाणं ममादयाणं सरणदयाणं बोडिदयाणं - इड प्रभयं सप्तधा इड-परनोका-ऽऽदाना-ऽजमादा-ऽऽजीव-मरण-म्राघाभेदेनैतयतिपन्नतो-ऽभयं विशिष्टमात्मनः खास्यं निःश्रेयमे धर्मभूमिकानिबन्धनभूतं

धतिरित्यन्येषां तदित्यंभूतमभयं गुणप्रकर्षयोगादिनन्यमित्रयुक्त-लात् मर्वेषा परार्थक।रिलाद् भगवन्त एव ददतीत्यभयदा-स्तेभ्यः ; तथा चत्त्वदेभ्यः, इच चत्त्वविधिष्टमामधर्मक्षं तत्त्वाव-बोधनिबस्पनं रुद्यते। तत्र श्रहेत्यन्येषां तहिहीनस्याचन्-षत इव वलुतत्वदर्भनायोगाद्, न च मार्गाऽनुसारिणी यदा सुखेनावायते सत्यां चास्यां कस्याणचन्न्यो भवति वसुमत्त्व-दर्भनम्, तदियं धर्मकत्यद्वमस्यावन्यवीजभूता भगवद्वा एव भव-तीति चचुर्देदतीति चचुर्दाः ; तथा मार्गदेभ्यः, इह मार्गी भुजङ्गमनिकायामतुत्वी विशिष्टगुषस्यानावाप्तिप्रवणः वाही चयोपग्रमविशेषोऽयमसुमन्ये सुखेत्याचचते पस्मित्रसति न यथोचितगुचस्थानावाप्तिर्मार्गविषमतया चेत:सवन्तनेन प्रति-बखोपपत्ते:, मार्गय भगवद्वा एवेति मार्गे ददतीति मार्गदाः ; ंतया गरगदेभ्यः, इड गरगं भयातेत्रागं तच संसारकान्तार-गतानामितप्रवसरागादिपीडितानां समाखासनस्थानकस्यं तत्त्व-चिन्ताक्यमध्यवसानं विवदिषेत्यन्येषामस्त्रं सति तत्त्वगोचराः ग्रुत्रुवा-त्रवष-ग्रइष-धारष-विज्ञानी-हाऽपीह-तत्त्वाभिनिवेशाः प्रजागुणा भवन्ति। तत्त्वचिन्तामन्तरेण तेषामभावात् सन्धवन्ति तु तामनारेणाऽपि नदाभासा न पुनः खार्थसाधकलेन भाव-सारा:, तत्त्वचिन्तारूपं गरणं भगवद्वा एव भवनीति गरणं ददतीति गरगदाः ; तथा बीधिदेभ्यः, रह बीधिर्जिन-प्रगीतधर्मावाप्ति:, इयं पुनर्ययाप्रवृत्त-भपूर्व-भनिवृत्तिकरण-व्यव्यापाराभित्रकामभित्रपूर्वपत्रिभेदतः प्रश्रमसंविगनिर्वेदानु- कम्पास्तिक्याभिव्यक्तिसचणं तत्त्वाधैत्रदानं सम्यग्दर्भनस्चते विज्ञितिरित्यन्येषां पञ्चकमध्येतदपुनर्बन्धकस्य, पुनर्बन्धके यथी-वितस्यास्याभावादेते च यथोत्तरं पूर्वपूर्वफलभूताः, तथा हि-पभयफलं चन्नु: चन्नु:फलं मार्गः मार्गफलं गर्यम्, गर्ग-फलं बोधि: सा च भगवडा एव भवतीति बोधि ददतीति बोधिदाः । एवमभयदानचन्नुदीनमार्गदानग्ररणदानबोधिदानिभ्यो यथोदितोपयोगसिहेन्पयोगसम्मद एवं हेत्सम्मद्रता; साम्मतं स्तीतव्यसम्पद एव विशेषीपयीगसम्पद्गते —धन्मदयाचं धना-टेसगाणं धनानाग्रगाणं धनासारशीणं धनावरचा उरन्तचकः वहीणं - धर्मदेग्य:, इड धर्मबारिनधर्मी राज्यते स च यति-त्रावक-सम्बन्धिभेदेन देवा यतिधर्मः सर्वेषावद्ययोगविरतिल्वणः: त्रावकधर्मेलु देशविरतिकृपः, स चायसुभयकृपोऽपि भगवद्गा एव इेलन्तराणां सहावेऽपि भगवतामेन प्रधानहेत्तलादिति धर्मे ददतीति धर्मदाः, धर्मदत्वं च धर्मदेशनाद्वारेणैव भवति नान्धये-त्याच - धर्मदेशकेभ्य:, धर्मे प्रसुतं यथाभव्यमवस्थतया देशय-न्तीति धर्मदेशकाः, तथा धर्मनायकेभ्यः, धर्मीऽधिकत एव तस्य नायकाः स्वामिनस्तदशीकरणभावात् तदलवीऽवाप्तेस्तत्रक्षष्टपन् भोगात् तद्याचातानुपपत्तेष धर्मनायकाः. तथा धर्मसारथिभ्यः प्रसुतस्य धर्मस्य स्वपरापेश्वया सम्यक्षप्रवर्तनपासनदमनयोगतः सारवयो धर्मेगारवयः, तथा धर्मेवरचतुरन्तचक्रवर्तिभ्यः, धर्मः प्रतृत: स एव विकोटिपरिश्वतिया सुगतादिपणीतधर्मचका-पेचया उभयलोक हितत्वेन चक्रवत्वी दिचक्रापेचया च वरं प्रधानं प्रतस्त्रणां गतीनां नारकतिर्थग्नरामरस्त्रचणानामन्तो यसात् तचत्रन्तं चक्रमिव चक्रं रीद्रमिष्यालादिभावग्रमुखवनासेन वर्तन्ते रत्येवंगीला धर्मवरचत्ररन्तचक्रवर्तिनः चाउरन्तेति सस्-चादिलादालमेवं धर्मदलादिभिः पचिभः स्तीतव्यसम्पदेव विगे-षोपयोगसम्पद्काः। ६ । इदानीं

सर्वे पश्चत् वा सावा तत्त्विसष्टं तु पश्चत् ।

कीटसंख्यापरिज्ञानं तस्य नः क्षोपयुच्यते १॥१॥ पति सर्वदर्शनप्रतिचेपेषेष्टतस्वदर्शनवादिनः सीगतान् प्रतिचिपति-प्रणादिष्टवयवरनाणदंसम्बद्धानं विष्यदृक्षत्रमाणं — पप्रतिष्ठते सर्वः वाऽप्रतिस्वलिते वरे चायिकत्वात् प्रधाने ज्ञानदर्भने विशेष-सामान्यावबोधकपे धारयतीति पप्रतिष्ठतवर्ष्णानदर्भनधरास्तिभ्यः, पप्रतिष्ठतवर्षणानदर्भनधरत्वं च निरावरणत्वेन सर्वज्ञानदर्भन-स्वभावतया च, ज्ञानपष्टणं चादी सर्वा सम्ययः पाकारोप-योगोपयुक्तस्वेति ज्ञापनार्थमिति। एते च के सिस्तस्वतः स्वस्वव्या-दृक्षस्वान एवेष्यन्ते यदाष्ट

ज्ञानिनी धर्मतीर्धस्य कर्तारः परमं पदम् । गत्या गच्छन्ति भूयोऽपि भवं तीर्धनिकारतः ॥ १॥

> दन्धेत्वन: पुनक्पैति भवं प्रमथ्य निर्वाणमध्यनवधारितभीक्निष्ठम्। सृक्तः स्वयं कतभवस्य परार्धग्रूर-

स्वच्छासनप्रतिइतेष्विष्ठ मोष्टराज्यम् ॥ १ ॥ इति ।

तिवृत्त्वर्थमाइ - व्यात्त्त्तच्छ ब्रभ्यः, छादयतीति छत्र ज्ञानाव-रचादिघातिकमें तदस्योग्यतालचचो भवाधिकारस, स्यावतं निवृत्तं छन्न येभ्यस्ते तथाविधाः, नाऽचीष संसारे भपवर्गः चीषे च जन्मपरिग्रह इत्यसत्, ईत्वभावात्। न च तीर्धनिकारजन्मपरा-भवी हेत् खोवां मी हाभावाद मी है वा पपवर्ग इति प्रलापमात्रमेव-सप्रतिहतवर्ज्ञानदर्शनधरत्वेन व्यावृत्तच्छ्यतया च स्तीतव्यसम्पद एव सकारचा स्वरूपसम्पत्। एतेच कन्धिता विद्यावादिभिः परमा-र्थतो जिनादय एवेष्यसी भान्तिमातमसहिद्येति वचनात् एतः षापोद्दाय पाइ - जिणाणं जावयाणं रागादिजेखलाव्यिनाः, न च रागादीनामसत्तं प्रतिप्राच्यत्तभवसिद्धलात्। न चाऽत्रभवीऽपि भानाः सुखदुःखाद्यमुभवेष्वपि भान्तिपुसङ्गात्, एवं च जेयसभावा-जिनलमविष्डम्। एवं रागादीनेव सदुपदेशादिना जापयम्तीति जापकाः तेभ्यः, एतेऽपि कालकारणवादिभिरमन्तिशिष्यभीवती-ऽतीर्णीदय एवेष्यत्ते काल एव क्रत्सं जगदावर्तयसि इति वचनात् एलविरासायाच — तिखाणं तार्याणं — सम्यग्त्रानदर्भनचारिवपी-तेन भवार्णवं तीर्णवन्तः तीर्णाः, न चैषां तीर्णानां पारगतानाः मावर्तः सभावति तज्ञावे मुत्त्वसिद्धेः, एवं च न मुत्तः पुनर्भवे भवतीति तीर्णेलिसिहः. एवं तारयन्ति भन्यानपीति तारका-स्तेभ्यः, एतेऽपि परोचज्ञानवादिभिर्मीमांसकभेदैरबुदादय एवे-चन्ते प्रत्यचा हि नी बुद्धिः प्रत्यचीऽर्थः इति वचनात् एतदाव-च्छेदार्थमाइ - बुद्दाणं बोद्दयाणं - प्रज्ञाननिद्वाप्रसप्ते जगत्यपरीप-देशेन जीवाजीवादिक्षं तस्त्रं खसंविदितन जानेन बुदयन्तो बुदाः, न चाखसंविदितेन ज्ञानेनार्यज्ञानं सभावति। न ज्ञाहष्टप्रदीयो बाज्ञमधं प्रत्यचीकरोति, न चेन्द्रियवदस्त्रसंविदितस्याऽपि ज्ञानस्था-र्घप्रत्यचीकरणमिन्द्रियस्य भावेन्द्रियत्वात् तस्य च स्वसंविदित-कपत्वात्

यदाष्ट---

भप्रत्यचोपसभस्य नार्थदृष्टिः प्रसिद्धाति ॥

एवं च सिद्धं बुद्धलमेवमपरानिष बोधयन्तीति बोधकास्तेभ्यः, एतिऽपि कगल्कर्गृत्तीनमुक्तवादिभिः सन्तपनिवनियेस्तस्वतोऽमुक्तादय एविष्यन्ते, ब्रह्मवद् ब्रह्मसङ्कतानां स्थितिरिति वचनात् एति दरा-चिक्तीर्षयाऽऽइ — मृत्ताणं मोत्रगाणं – चतुर्गतिविपाक चिक्रकर्मवन्ध-मुक्तलान् मुक्ताः कतकत्या निष्ठितार्घा इत्यर्थः, न च जगल्कर्तरि सर्ये निष्ठतार्थेलं सभावति, जगल्करणेन कतकत्यत्वायोगात् होनादि-करणे च रागदेकाऽनुषद्भः, न चान्यताऽन्यस्य सयः सभावति एक-तराभावप्रसङ्कात् एवं च जगल्कर्तरि स्थाभावाद् मुक्तत्वसिद्धः, एवं मोचयन्त्यन्यानपीति मोचकास्तेभ्यः एवं च जिनत्वजापकत्वतीर्थं-त्वतारकत्ववुद्धत्ववेषकत्वमुक्तत्वमोचकत्वेः स्वपरिक्तिसिद्धेराम्बर्णावत्वत्वविद्धः, स्वपरिक्तिसिद्धेरामाच्यानपति सोचकास्तेभ्यः एवं च जिनत्वजापकत्वतीर्थं-त्वतारकत्ववुद्धत्ववेषकत्वमुक्तत्वमोचकत्वेः स्वपरिक्तिसिद्धेरामाच्यान्यत्वत्वविद्धाः सम्बद्धिः एवं च जिनत्वजापकत्वतीर्थं-त्वत्वव्यविद्धाः सम्बद्धिः एवं च जिनत्वजापकत्वतीर्थं-त्वत्वव्यविद्धाः सम्बद्धिः एवं च जिनत्वजापकत्वतीर्थं सम्बद्धाः स्ववद्धिः स्वर्थवित्यविद्धाः स्वत्वद्धाः सर्वे पर्यन्तित्वविद्धाः सर्वद्धाः सर्वे पर्यन्तित्वविद्धाः सर्वद्धाः सर्वे पर्यन्तित्वविद्धाः सर्वद्धिः स्वत्वस्वावद्धे निद्धारणत्वातः

चत्रच —

स्थितः ग्रीतांग्रवक्तीयः प्रक्तत्या भावग्रहया। चन्द्रिकावच विज्ञानं तदावरणसभ्यवत्॥ १॥

न करणाभावे कर्ता तत्पलसाधक इत्ययनैकान्तिकम्, परनिष्ठितप्रवक्षस्य तरण्डकाभावेऽपि प्रवनदर्भनात् इति बुडि-लवणं करणमन्तरेणाऽपि श्रामनः सर्वन्नत्वसर्वदर्शित्वसिद्धः। त्रन्यस्वाइ-ज्ञानस्य विशेषविषयत्वाद् दर्शनस्य च सामान्यविषय-लात्. तयो: सर्वाधिविषयलमयुक्तं तदुभयस्य सर्वाधिविषयलादि-त्युचित निह सामान्यविशेषयोभेंद एव, किन्तु ते एव पदार्थीः समविषमतया संप्रजायमानाः सामान्यविशेषग्रव्हाभिधेयतां प्रति-पद्मन्ते ततव ते एव ज्ञायन्ते ते एव दृष्यन्ते द्ति युक्तं ज्ञान-दर्भनयो: सर्वार्धविषयत्वमिति। नतु ज्ञानेन विषमताधर्भ-विशिष्टा एव गम्यन्ते न समताधर्मविशिष्टा श्रपि दर्भनेन च समताधर्मविग्रिष्टा एव गम्यन्ते न विवसताधर्मविशिष्टा श्रपि। ततस जानदर्शनाभ्यां समताविषमतालचणधर्महयाऽग-ष्ट्रणादयुक्तमेव तयोः सर्वार्धविषयत्विमिति न, धर्मधर्मिणोः सर्वेषा-भेदानभ्युपगमात्। ततवाभ्यन्तरीक्ततसमतास्यधर्माण एव विष-मताधर्मविशिष्टा ज्ञानेन गम्यन्ते अभ्यन्तरीक्वतविषमताच्य-धर्माण एव समताधर्मविशिष्टा दर्शनेन गम्यन्ते इति ज्ञान-दर्शनयोनीऽसर्वाधिविषयत्विमिति सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनस् तेभ्यः। एते च सवगताकाशदिभिर्मक्राले सति न नियतस्थानस्था एवेचान्ते। यदाइस्ते – "मुताः सर्वेत्र तिष्ठन्ति व्योमवत्तापवर्जिताः" इति ।

तिवराकरणार्वमाष्ट्र-सिवमयलमक्षमणंतमक्ष्यमव्यावाष्ट्रमपुष-रावित्ति सिहिगद्दनामधेयं ठाणं संपत्ताणं-श्रिवं सर्वीपद्रव-रहितलात्, भचलं खाभाविकप्रायोगिकचलनिक्रयारिहतलात्, पदजं व्याधिवेदनार हितं तिववस्वनयोः शरीरमनसीरभावात. भनन्तमनन्तप्रानविषयत्वयुक्तत्वात्, प्रचयं विनाधकारचाभावात्. षव्याबाधमकर्मेलात्, पपुनराहत्तिः, न पुनराहत्तिः संसारेऽवतारो यस्रात सिंदिगतिनामधेयं सिद्यन्ति निष्ठितार्थो भवन्यस्थां जन्तव इति सिहिर्लीकाम्तदिवसच्चा सैव गम्यमानलाइति: सिहि-गतिरेव नामधेयं यस्य तत्त्रवा, स्थानं तिष्ठन्यसिविति स्थानं व्यवहारतः सिविवेचम्। यदाषुः—'दृष्ठ बुन्दिं चद्रसा चं तहा-गंतृष सिन्धार रति। निययतस्त स्वस्तक्पमेव सर्वे भावा चात्रभावे तिष्ठन्तीति वचनात्, विशेषचानि च निरूपचरितलेन यद्यपि मुक्ताबान्येव भूयशा सञ्चवन्ति तथापि खानखानिनोरभेदोपचारा-देवं व्यपदेशः, तदेवंविधं स्थानं सम्प्राप्ताः सम्यगशिक्कर्मविच्ला खरूपगमनेन परिचामान्तरापच्या प्राप्तास्तेभ्यः, न हि विभूनामेवं-विधप्राप्तिसभाव:, सर्वगतले सति सदैकासभावलात्, नित्यानां चैकरूपतया प्रवस्थानं तद्वावाव्ययस्य नित्यलात्। पतः चेवतो-उसर्वगतपरिषामिनाभेवैवं प्राप्तिः सन्धवति, पत एव काय-प्रमाणमालोति सुस्थितं वचनं तेभ्यो नम इति क्रियायीगः एवंभूता एव प्रेचावनां नम लाराची पावन्तमङ्गतस नमस्तारी

⁽१) इइ घरीरं त्यक्का तत्र गला सिध्यति।

मध्यव्यापीति जित्तभया अधिते एव नान्ये इति प्रतिपादियतुसुप-संइरताइ — नमी जिणाणं जिषभयाणं – नमी जिनेभ्यो जित्तभयेभ्य इति तदेवं सव्ववृणं सव्यदिसीणमित्यत धारभ्य नमी जिणाणं जिषभयाणमित्येवमन्तेस्त्रिभिसालापकः प्रधानगुणाऽपरिचयप्रधान-फलावापिक्तपा सम्पन्नवमी । ८। श्रन स्तिग्रस्तावान पौनक्त्रयग्रहा करणीया। यदाइ —

> 'सन्भाय-क्याण-तव-घोसहेसु चवएस धुर-पयापेसु । सन्तगुणिकत्तपेसु य न होन्ति पुचकत्तदीसा घो ॥ १ ॥

एताभिर्नविभिः सम्प्रिः प्रणिपातदण्डल उचते, तत्पाठानन्तरं प्रणिपातकरणािकनजन्मादिषु स्वविमानेषु तीर्थप्रवृत्तेः
पूर्वमिप यक्तोऽनेन भगवतः स्तौतीति यक्तस्तवोऽप्युच्चते, प्रयच्च
प्रायेण भावाई दिषयो भावाई दध्यारोपाच स्थापनाई तामिष पुरः पञ्चमानो न दोषाय प्रणिपातदण्डकानन्तरं चाऽतीतानागतः
वर्तमानजिनवन्दनार्थं केचिदेतां गाथां पठन्ति—

ेज म अर्भा सिद्धा जे म भिवसंति णागए काले।
संपद्म वहसाणा सब्बे तिविष्ठेण वंदामि॥१॥
सुगमा चेयम्। ततस्रोत्याय स्थापनाई दन्दनार्थः जिनसृद्रया
मिर्हितचेदयाणमित्यादिस्तं पठति। मर्हतां पूर्वीक्रस्वकृपाणां

⁽१) स्वाध्याव-ध्यान-तप-श्रीषषेषू परेश-स्तुति-प्रहानेषु । सङ्गाकीर्तनेषु चन भवन्ति पुनक्कारोवास्तु ॥ १ ॥

⁽२) वे चातीताः सिद्धा वे च अविष्यन्यनागते कासे। सम्प्रति च वर्तमानाः सर्वातृ (त्रिविचेन वस्ते ॥ > ॥

चैत्यानि प्रतिमाचचणानि पर्इचैत्यानि - चित्तमन्तः करणं तस्य भावः कमे वा वर्षद्वढादिलात् व्यपि चैत्यं बहुविषयले चैत्यानि तवार्डतां प्रतिमा डि प्रग्रस्तममाधिचित्तोत्पादकलादर्डचेत्यानि भष्यन्ते तेवां किं वन्दनादिप्रत्ययं कायोक्सर्गं करोमीति सम्बन्धः — कायस गरीरस एलार्गः कताकारस स्थानमीनधानकिया-व्यतिरेकेण क्रियान्तराध्यासमधिकत्य परित्यागस्तं करोमि। वंद्ववित्तपाए -- वन्दनप्रत्ययं वन्दनमभिवादनं प्रश्चसकाय-वाज्ञनःप्रवृत्तिरित्यर्थः तत्प्रत्ययं तिविमित्तं कथं नाम कायी-बार्गादेव मम वन्दनं स्थादिति विश्वपाए इत्यार्धत्वाति इमेवं सर्वेत्र द्रष्टव्यम् । तथा पूजनवित्तपाए पूजनप्रत्ययं पूजननिमित्तं पूजनं गत्मास्यादिभिरभ्यचेनम्, तथा सकारवित्तमाए सलार-प्रत्ययं सलारनिमित्तं सलारः प्रवरवद्माभरणादिभिरभ्यर्चनम्, नतु च यतेः पूजनसलारावनुचितौ द्रव्यप्तवलात्; त्रावकस्य तु साचात्पू जास्तारकर्तुः कायोत्सर्गद्वारेच तत्प्रार्थना निष्फला, उचते. साधोर्द्रव्यस्तवप्रतिषेधः करणमधिकत्व न पुनः कारणातु-मती, यत उपदेशदानतः कारचनद्वावी भगवतां च पूजासकार-दर्भनात् प्रमोदेनानुमतिरपि।

यटाइ---

'सुव्यद्ग्यवद्गरिसिणा कारवणं पि श्र श्रणुहियमिमस्र। वायगमन्येस तहा भागया देसणा चेव ॥ १॥

⁽१) सुव्रतिकश्च्यविषा कार्यमपि चातुष्टितमस्य। वाषकपन्येषुतचा स्थागता देशना चैत्र॥ १॥

त्रावत्रस्त सम्पादयविष एती भावातिश्रयादिधकसम्पादनाधै पूजासलारी प्रार्थयमानी न निष्मलारमा: तथा सम्माणवित्रपाए-समानप्रत्ययं समाननिमित्तं समानः सुत्यादिभिगुंषोत्रतिकरणं मानसपीतिविशेष इत्यन्ये; प्रथ वन्दनादयः किंनिमित्त-मिलाइ - बाहिनाभवत्तिपाए-बोधिनाभीऽईलागीतधर्मावाप्तिस्तत-प्रस्थवं तनिमत्तं बीधिलाभोऽपि किनिमत्तमित्वाह-निवन-सगावत्तियाए-जन्माद्यपनगीभावेन निरूपनगी मोचस्तवाययं तिविभित्तं ननु साध्यावकयोबीधिलाभीऽस्येव तिलां सतस्तस्य पार्यनया बोधिसामम्सो मोचोऽप्यनभिस्तवसीय एव. उच्चते क्तिष्टकमीद्यवशेन बोधिलाभस्य प्रतिपातसभावाद् असामारे च तस्यार्थमानत्वात्रिक्पसर्गीऽपि तहारेण प्रार्थत एवेति युक्तोऽनयो-क्पन्यास: ; भयं च कायोत्सर्भः क्रियमाणीऽपि श्रदादिविकलस्व नाभिन्नवितार्थप्रमाधनायाऽन्निमत्याः — सदाए मेहाए धिर्प धार-णाए प्रणुपेश्वाए वर्माणीए ठामि काउममं—श्रदा मिथाल-मोश्रनीयभमेचयोपग्रमादिजन्योदकप्रसादकमणिवचेतसः प्रसाद-जननी तया ऋदया न तु बलाभियोगादिना, एवं मेधया न जडलेन मेधा च सच्छास्त्रयष्टणपट्ः पापश्चताऽवज्ञाकारी ज्ञानाव-रणीयचयोपगमजियत्तभर्मः, भववा मेधया मर्यादावर्तितया माऽसमञ्जसलेन एवं धृत्या मन:समाधिलचणया न रागद्वेषाचा-कुलतया एवं धारणया पर्वत्रणाविस्मरणकृषया न तु तच्छ्न्य-तया एवमनुप्रेचयाऽई दुणानामेव सुदुर्सुदुरनुस्मर्षेन, न तद्दैक्ष्येन वर्धमानतयेति यहादिभिः प्रत्येकमभिस्यक्ष्यते यहादौनां क्रमो-

पन्यासी साभाविद्या त्रदायां दि सत्यां नेधा तद्वावे धृतिस्ततो धारचा तदम्बनुप्रेचा इंडिरप्यासामेव। तिष्ठामि करोमि कायी-बागें ननु प्राकरोमि कायो सर्गमित्यक्तं सामाते तिष्ठामीति विमर्थमुखते ?, सत्यं सत्सामीय्ये सहयत्ययी भवतीति करोमि करिषामि इति क्रियाऽभिमुख्यं पूर्वमुक्तमिदानीं लासकतरलात् क्रियाकानिष्ठाकालयोः कथचिदमेदात् तिष्ठाम्येवाइमिति किं सर्वया तिष्ठामि कायोक्षमें नेलाइ - पत्रत्यजसिएणमिलादि-व्यास्थातं पूर्वं कायोत्सर्भवाष्टो च्छ्वासमात्रो न त्वत्र ध्येयनियमी-उस्ति कायोक्सर्गान्ते च यद्येक एव तती नमी परिष्ठंतात्रमिति नमस्तारेष पारियत्वा बत्र चैत्यं वन्दनां सुर्वेत्रस्ति तत्र यस भगवत: सिविहितं स्थापनारूपं तस्य सुत्तिं पठति । पय बहुवः स्तत एक एव खुति पठति, पन्धे तु कायोक्सर्गस्थिता एव शृखन्ति यावत् सुतिसमाप्तः, ततः सर्वेऽपि नमस्तारेष पारयन्तीति तद-नन्तरं तस्वामेवावसिंध्यां ये भारते वर्षे तीर्यक्रतो प्रभूवन् बैजामेवैकचेवनिवासिनामासबीपकारिलेन कीर्तनाय विंगतिस्तवं पठति, पठन्ति वा।

तथा--

लोगसा उच्चीयगरे धयातित्ययरे जिले।

यरिष्ठंते कित्तरसां चउवीसंपि केवली॥१॥

यरिष्ठंत इति विशिष्यपदम् पर्छत उक्तनिर्वचनात्, कीर्तयिष्ये नामीचारचपूर्वेकं स्तीष्ये, ते च राज्याद्यवस्थासु द्रव्यार्डन्तो

भवन्तीति भावार्षच्यप्रतिपादनायासु—केवलिन उत्पन्नकेवल-

| "Nimble (Ond Palition) Wal I Fore 1 @ Re 1.4 | | Re. | 1 | . 4 |
|--|--|-----------|--|-----------------------------------|
| *Nirukta, (2nd Edition) Vol. I. Fasc. 1 @ Rs. 1-4 | | ••• | 8 | . 2 |
| *Nyāyavārtika, Fasc. 2-6 @ /10/ each | 1 | ••• | 4 | 6 |
| Nityacarapaddhatib, Fasc. 1-7 @ /10/ each | /10/ each | ••• | 7 | 8 |
| Nityācārapradīpa Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. II, Fasc. 1-4. @ | 7.07 0002 | | Ü | 10 |
| Nyayabindutika, Fasc. 1 @ /10/ each | each | ••• | ĭ | 14 |
| Nyaya Kusumanjali Prakarana Vol. II, Fasc.13 @ /10/ | OUCH . | | i | 4: |
| Nyaya Vartika Tatparya Parisudhi, Fasc. 1-2 @/10/each | ••• | ••• | 2 | 0 |
| Nyayasarah | ••• | ••• | _ | ŏ |
| Padumawati, Fasc. 1-6 @ 2/each | ••• | ••• | 10 4 | 6 |
| Prakrita-Paingalam, Fasc. 1-7 @ /10/ each | , ,,,, | ••• | • . | |
| Paracara Smrti, Vol. I, Fasc. 2-8; Vol. II, Fasc. 1-6; Vo | 1 111, | • | 11 | |
| Fasc. 1-6 @ /10/ each | ••• | ••• | 11 | 14 · |
| Paragara, Institut to of (English) @ 1/- each | ••• | | ! | 0 |
| Pariksamukha Sur am | ••• | ••• | ī | . 0 |
| Prabandhacintāmaņi (English) Fasc. 18 @ 1/4/ each | ••• | • • • | 8 | 12 |
| Rasarnavam, Fasc. 1-3 | ••• | • • • • • | 3 | 12 |
| Ravisiddhanta Manjari, Fasc. 1 | ••• | ••• | 0 | . 10 |
| Saddarsana-Samuccaya, Fasc. 1-2 @ /10/ each | ••• | ••• | . 1 | 4 |
| Samaraices Kaha Fasc. 1-5, @ /10/ each | ••• | ••• | 3 | 3 |
| Sankhya Sutra Vrtti, Fanc. 1-4 @ /10/ each | ••• | ••• | 2. | 8. |
| Ditto (English) Fasc. 1-8 @ 1/- each | ••• | ••• | 8 | 0. |
| Six Buddhist Nyaya Tracts | ••• | | 0 | 10 |
| Srāddha Kriyā Kaumudi, Fasc. 1-6 @ /10/ each | ••• | ••• | 8 | 12 |
| Sucruta Samhita, (Eng.) Fasc. 1 @ 1/- each | ••• | | 1 | 0 |
| Suddhikaumudi, Fasc. 1-4 @ /10/ each | ••• | ••• | 2 | 8 |
| Sundaranandam Kavyam | | ••• | 1 | 0 |
| Suryya Siddhanta Fasc. 1-2 @ 1-4 each | ••• | • • • • | 2 | 8 |
| Syainika Sastra | ••• | ••• | 1 | . 0 |
| *Taittreya Brahmana, Fasc. 11-25 @ /10/ each | | | 9 | 6 |
| Taitterlya Samhita, Fasc. 27-45 @ /10/ each | | ••• | 11 | 14 |
| Tandya Brahmana, Fasc. 10-19 @ /10/ each | ••• | | ď | 4 |
| Tantra Varteka (English) Fasc. 1-10 @ 1/4/ each | | ••• | 12 | 8. |
| *l'attva Cintamani, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol. II, Fasc. 2-10, V | ol. III. Fas | c. 1-2. | | - ' |
| Vol. IV, Fasc. 1, Vol. V, Fasc. 1-5, Part IV, Vol. I1, Fasc. | 1.12 @ /10 | each | 23 | 12 |
| Tattva Cintamani Didhiti Vivriti, Vol. I, Fasc, 1-6; Vol. 1, | Fe. 1. @ /1 |)/ each | 4 | 6 |
| Tattva Cintamani Didhiti Prakas, Fasc. 1-5, @/10/each | | · | 3 | 2 |
| Tattvärthadhigama Sutram, Fasc. 1-3 @ /10/ each | ••• | ••• | ĭ | 14. |
| Tirthacintamoni, Fasc, 1-3, @ /10/ each | ••• | ••• | ī | 14. |
| Trikāņda-Maņdanam, Fasc. 1-3 @ /10/ each | | ••• | ī | 11 |
| Tul'si Satsai, Fasc. 1-6 @ /10/ each | . *** | | 3 | 2 |
| *Upamita-bhava-prapanca-katha, Faso. 1-2, 5-13 @ /10/ eac | | . *** | 6 | 14 |
| Uvangadasao, (Text and English) Fasc. 1-6 @ 1/- each | | | 6 | · 0 |
| Vallala Carita, Fasc 1 @ /10/ | ••• | | ŏ | 10 |
| Varsa Kriys Kaumudi, Fasc 16 @ /10/ each | | ••• | 8 | 12 |
| Vāyu Purāņa, Vol. I, Fasc. 3-6; Vol. II, Fasc. 1-7, @ /10 |) / each | | 6 | 14 |
| Vidbāna Pārijata, Fasc. 1-8 Vol- II. Fasc. I @ /10/ each | | ••• | 5 | 10 |
| Ditto Vol. II, Fasc. 2-5 @ 1/4/ | ••• | ••• | 5 | .0 |
| Virginate Para 1 7 G /10/ - 1 | ••• | ••• | 4 | ď |
| Vrhat Svayambhū Purāņa, Fasc. 1-6 @ /10/ each | •••, | . • • • • | 3 | 12 |
| | ••• | ••• | _ | |
| Yogasāstra Fasc. 1-3 | ••• | ••• | 3 | 12 |
| Amarkosha Tibetan Series. | | | ο. | ^ |
| | ••• | ••• | 2 | 0. |
| Baudhastotrasangraha, Vol. I | | ••• | 2 | 0 |
| A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1-4 @ 1/- each | n | ' ··· . | 4 | 0 |
| Nyayabindu of Dharmakirti, Fasc. 1 • | ••• | ••• | 1 | 0 |
| Pag-Sam S'hi Tifi, Fasc. 1-4 @ 1/- cach | | ••• | . 🕯 . | . 0 |
| Rtogs brjod dpag kkhri S'ifi (Tib. & Sans. Avadāfia Kalpal | ata vol. I, |) | • | |
| Fasc. 110; Vol. II. Fasc. 110 @ 1/- each | • | | 20 | 0 |
| Sher-Phyin, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. II, Fasc. 1-3; Vol. III, F | | . ; •••• | | |
| Arabic and Persian Series. | | 1/ each | 14 | 0 |
| f tearth andhan Talan N | | 1/ each | _ | |
| Amal-i-Salih, or Shan Jahan Namah | | 1/ each | 2 | 0 |
| Amal-i-Salih, or Shan Jahan Namah Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-4 @ 1/- cach | | 1/ each | 2 | 0 |
| Amal-i-Salih, or Shan Jahan Namah Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-4 @ 1/- cach Ain-i-Akbarl, Fasc. 1-22 @ 1/8/ cach | ************************************** | 1/ each | 2 | 0 |
| Amal-i-Salih, or Shan Jahan Namah Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-4 @ 1/- cach Ain-i-Akbari, Fasc. 1-22 @ 1/8/ each Ditto (English) Vol. II, Fasc. 1-5 Vol. III | ************************************** | 1/ each | 2 4 33 | 0 |
| Amal-i-Salih, or Shan Jahan Namah Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-4 @ 1/- cach Ain-i-Akbarl, Fasc. 1-22 @ 1/8/ each Ditto (English) Vol. II, Fasc. 1-5 Vol. III Index to Vol. II, @ 2/- each | ************************************** | 1/ each | 2 4 33 | 0 0 |
| Amal-i-Salih, or Shan Jahan Namah Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-4 @ 1/- cach Ain-i-Akbarl, Fasc. 1-22 @ 1/8/ each Ditto (English) Vol. II, Fasc. 1-5 Vol. III Index to Vol. II, @ 2/- each Akbarnāmah, with Index, Fasc. 1-37 @ 1/8/ each | Tasc 1-6, @ , Fasc. 1-5, | 1/ each | 2 4 33 | 0 |
| Amal-i-Salih, or Shan Jahan Namah Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-4 @ 1/- cach Ain-i-Akbari, Fasc. 1-22 @ 1/8 (each Ditto (English) Vol. II, Fasc. 1-5 Vol. III Index to Vol. II, @ 2/- each Akbarnāmah, with Index, Fasc. 1-37 @ 1/8/ each Akbarnāmah, English Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. II, Fasc. 1-8 | Tasc 1-6, @ , Fasc. 1-5, | 1/ each | 2 4 33 22 55 | 0 0 |
| Amal-i-Salih, or Shan Jahan Namah Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-4 @ 1/- cach Ain-i-Akbari, Fasc. 1-22 @ 1/8/ each Ditto (English) Vol. II, Fasc. 1-5 Vol. III Index to Vol. II, @ 2/- each Akbarnāmah, with Index, Fasc. 1-37 @ 1/8/ each Akbarnāmah, English Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. II, Fasc. 1-Fasc. 1-2 @ 1/4/ each | Tasc 1-6, @ , Fasc. 1-5, | 1/ each | 2 4 33 22 55 | 0 0 8 |
| Amal-i-Salih, or Shan Jahan Namah Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-4 @ 1/- cach Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-5 @ 1/- cach Al-i-Akbarl, Fasc. 1-22 @ 1/8/ each Ditto (English) Vol. II, Fasc. 1-5 Vol. III Index to Vol. II, @ 2/- each Akbarnāmah, with Index, Fasc. 1-37 @ 1/8/ each Akbarnāmah, English Vol. II, Fasc. 1-8; Vol. II, Fasc. 1-Fasc. 1-2 @ 1/4/ each Arabic Bibliography, by Dr. A. Sprenger, @ /10/ | Tasc 1-6, @ , Fasc. 1-5, | 1/ each | 2 4 33 22 55 | 0 0 0 8 4 10 |
| Amal-i-Salih, or Shan Jahan Namah Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-4 @ 1/- cach Aln-i-Akbarl, Fasc. 1-22 @ 1/8/ each Ditto (English) Vol. II, Fasc. 1-5 Vol. III Index to Vol. II, @ 2/- each Akbarnāmah, with Index, Fasc. 1-37 @ 1/8/ each Akbarnāmah, English Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. II, Fasc. 1- Fasc. 1-2 @ 1/4/ each Arabic Bibliography, by Dr. A. Sprenger, @ /10/ Conquest of Syria, Fasc. 1-9 @ /10/ each | 1.6, @ 7, Vol. 111, | 1/ each | 2 4 33 22 55 21 0 5 | 0 0 8 |
| Amal-i-Salih, or Shan Jahan Namah Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-4 @ 1/- cach Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-5 @ 1/- cach Al-i-Akbarl, Fasc. 1-22 @ 1/8/ each Ditto (English) Vol. II, Fasc. 1-5 Vol. III Index to Vol. II, @ 2/- each Akbarnāmah, with Index, Fasc. 1-37 @ 1/8/ each Akbarnāmah, English Vol. II, Fasc. 1-8; Vol. II, Fasc. 1-Fasc. 1-2 @ 1/4/ each Arabic Bibliography, by Dr. A. Sprenger, @ /10/ | 1.6, @ 7, Vol. 111, | 1/ each | 2 4 33 22 55 | 0 0 0 8 4 10 |
| Amal-i-Salih, or Shan Jahan Namah Al-Muqaddasi (English) Vol. I, Fasc. 1-4 @ 1/- cach Aln-i-Akbarl, Fasc. 1-22 @ 1/8/ each Ditto (English) Vol. II, Fasc. 1-5 Vol. III Index to Vol. II, @ 2/- each Akbarnāmah, with Index, Fasc. 1-37 @ 1/8/ each Akbarnāmah, English Vol. I, Fasc. 1-8; Vol. II, Fasc. 1- Fasc. 1-2 @ 1/4/ each Arabic Bibliography, by Dr. A. Sprenger, @ /10/ Conquest of Syria, Fasc. 1-9 @ /10/ each | 7, Vol. 111, | | 2 4 33 22 55 21 0 5 | 0 0 0 8 4 10 10 |

"The other Fasciculi of these works are out of stock and complete copies cannobe supplied.

| Catalogue of the Persian Books and Manuscripts in the Library of the Ka. 3 Lasiatic Scotety of Bengal. Fasc. 1-3 @ 1/each | 0 |
|--|-------------------|
| Ditto of Zabardast Khan Farnang-i-Rashidi, Fasc. 1-14 @ 1/8/ each Farnang-i-Rashidi, Fasc. 1-14 @ 1/8/ each Sach Farnang-i-Rashidi, Fasc. 1-14 @ 1/8/ each Farnang-i-Rashidi, Fasc. 1-14 @ 1/8/ each | _ |
| Faras Nama, of Hashini Ditto of Zabardast Khan Farnang-i-Rashidi, Fasc. 1-14 @ 1/8/ each 21 Farnang-i-Rashidi, Fasc. 1-14 @ 1/8 Books Fasc 1-4 @ 1/- each | 8 |
| Ditto of Zabardast Khan Farnang-i-Rashidi, Fasc. 1-14 @ 1/8/ each Fibriat-i-Tusi, or, Tusy's list of Shy'ah Books, Fasc. 1-4 @ 1/- each 4 | . 0 |
| Farnang-i-Rashidi, Fasc. 1-12 (4) 1/5 wash. Fasc. 1-4 (2) 1/- each 4 | Ö · |
| | 0 |
| | () 8 |
| Hadidacii II, tiadidac, (1000 a 200) | Ŏ |
| History of the Persian Masnawi, Fasc. 1 @ /12/ each 0 | 12 |
| Hisatory of the Caliphs, (English) Fasc. 1-6 @ 1/4/ sach 7 | 8 14 |
| Igalnamah-i-Jahangiri, rasc. 15 (gg /10/ entil | 0 |
| Na agir-i-Hahimi, Part I, Fasc. 18 @ 2/ each 6. Ma agir-i-Hahimi, Part I, Fasc. 18 @ 2/ each 6. 6. 6. 6. 6. 6. 6. 6. 6. 6. 6. 6. | 0 |
| Ma'āgir-i-Rahīmi, Part 1, Fasc. 1-9 (4) 27 esc. 19; Vol. III, 1-10; Maa'āgir-ul-Ūmarā, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol. II, Fasc. 1-9; Vol. III, 1-10; Index to Vol. II, Fasc. 10-12; Index to Vol. II, Fasc. 10-12; | |
| There to Vol III Fasc 11-12@/1/each 35 | _ |
| Ditto (Eng) Vol. 1, Pasc. 12, @ 1/4/ eacu | _ |
| Memoirs of Tanmasp | |
| Muntakhabu-t-Tawarikh, Fasc. 110 (2) /10/ each |) 6 |
| Muntakhaou-t-lawarian, (English) Vol. I, Fasc. 1-7; Vol. II, Fasc. 1-5 and 3 Indexes; Vol. III, Fasc. 1 @ 1/ each | 3 0 |
| armatchebu.l.I.nbab. Fasc. 1-19 @ /10/ each | _ |
| Ditto Part 5, Fasc. 1-2 (g 1/- tack | 1 0) 10 |
| NT. Libbatu l. Kikr. Pasc. 1 (62 / 10/ | í 18 |
| | 1 0 |
| O | 5 0 |
| Thereian with kindlian notes by Libut, Col. 17. C. I millow | 3 2 |
| Troplish Kaso leeb (6) 1/ | 5 0 1 14 |
| Shah Alam Nama Tadhkira i khughnavisan | 1 , 14 1 0 |
| Tadhkira-i-khughnavisan Tubaquat-i-Nasiri, (English), Fasc. 1-14 @ 1/- each Index | 4 0 |
| Ditto Index | 1 0 |
| marker than Shahi of Zivan-d-din Barni Fasc. I (4 / JU/ caun | 8 12 |
| Tarign 1-Fire Beach, of Dames Fasc. 12 @ 1/8/ each | 3 (|
| The Mahani 'L Lughat: A Grammar of the Turki Language in Tersian | 1 8 |
| Tuenk-i-Jahangiri, (Eng.) Fasc. 1 (4) 1/ | 3 2 |
| Wis-o-Ramin, Fasc. 15 @ /10/ each Zafarnamah, Vol. I, Fasc. 19, Vol. II, Fasc. 18 @ /10/ each | 10 16 |
| | |
| ASIATIO SOCIETY'S PUBLICATIONS. 1. ASIATIO RESEARCHES. Vols. XX @ 10/ each | 80 0 |
| o' Propertings of the Asiatic Society from 1875 to 1899 (1900 to 1902 | |
| are out of stock) (a) /8/ ner NO. | |
| 8. JOURNAL of the Assistic Society for 1875 (8), 1871 (7), 1872 (8), 1873 (8), 1874 (8), 1875 (7), 1876 (7), 1877 (8), 1878 (8), 1879 (7), 1880 (8), | |
| 1001 /7\ 1880 (8\ 1888 (K) 1884 (K) 1880 (O), 1000 (O), 200 (I) | |
| 1888 (7), 1889 (10, 1890 (11), 1891 (7), 1892 (8), 1890 (7), 1891 | |
| (8), 1895 (7), 1895 (8), 1897 (8), 1895 (8), 1895 (8), 1895 (7), 1902 (9), 1903 (8), 1904 (16), @ 1/8 per No. to Members and | |
| / GO/ man No to Non Members | 16. |
| N. B.—The figures enclosed in brakets give the number of Nos. in each Volume. 1. Journal and Proceedings, N. S., 1905, to date, (Nos. 1-4 of 1905 are out of the state of the | ••• |
| | |
| Memoirs, 1905, to date. Price varies from admitted to | |
| Discount of 20% to members. | 8 0 |
| | 8 0 |
| a Moore and Hewitson's Descriptions of New Indian | 18 0 |
| Parts 1-111, with 8 coloured Plates, 400. (4 0) and | 3 0 |
| | 10 0 |
| 10. Persian Translation of Half Bloom by Major D. C. Phillott | 10 0 |
| A Camebrit Manuscrints Fasc. 1-34 @ 1/ each | |
| Notices of Sauskity Manuaction, | o () Treasurer |
| N. R.—All Cheques, Money Orders, &c. mass be made payaged | * Tâwaiilar |
| Asiatic Society," only Books are supplied by V. P. P. | 14.9.16 |



BIBLIOTHECA INDICA:

A Collection Of Oriental Works

PUBLISHED BY TRE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

योगशास्त्रम्।

स्रोपन्नविवर्षम् इतम्।



THE YOGASĀSTRA

With the commentary called SVOPAJNAVIVARANA

ŠRÍ HEMACIIANDRĀCHĀRY
GASTRA VIĢĀRADA JAINĀCĀRYA

CRĪ VIJAYA DHARMA SŪRI

AND PUBLISHED BY THE

SIATIC SOCIETY OF BENGAL, 1, PARK STREET.

LIST OF BOOKS FOR SALE

AT THE LIBRARY OF THE

ASIATIO SOCIETY OF BENGAL.

No. 1, PARK STREET, CALCUTTA,

AND OBTAINABLE PROM

THE SOCIETY'S AGENT, Mr. BERNARD QUARITUH, 11, GRAFTON STREET, NEW BOND STREET, LONDON, W.

Complete copies of those works marked with an asterisk * cannot be supplied - some of the Pasciculi being out of stock.

BIBLIOTHECA INDICA.

Sanskrit Series

| Street to Ser | | | | Hn. | ٨n. |
|--|-----------------|-------------------|---------------|-----|------|
| Acvavaidyaka, Fasc. 1-5 @ /10/ each | | | | 3 | 7. |
| Advaita Brahma Siddhi (Text), Fasc. 1-4 @ /10/ | | ••• | | 2 | - 8 |
| Advaitachinta Kaustubha, Fasc. 1-3 @ /10/ ea | | ••• | | ī | 11 |
| Agni Purana (Text), Fass. 1-14 @ /10/ each | | ١ | | 8 | 12 |
| Aitareya Amnyaka of Rig-Veda (Text), 2-4 @ | /10/ each | | | ĭ | 1+ |
| Aitareya Brahmana, Vol. I, Fasc. 1-5; Vol. | II. Fasc. | 1 5 : Vol | 111, | • | • |
| Fasc. 1-5, Vol. IV, Pasc. 1-8 @ /10/ each | | | | 14 | 6 |
| Aitereya locana. | ••• | ••• | | 2 | ŭ |
| Amarakosha, Fasc. 1—2 | | | | 4 | ŭ |
| *Ann Bhashyam, (Text), Fasc. 2-5 @ /10/ each | | | | 2 | 8 |
| Anumana Didhiti Prasarini, Fasc. 1-3 @ /10/- | | | | ì | 14 |
| *Aphorisms of Sandilya (English), l'asc. 1 @ 1/- | | ••• | • • • | i | 70 |
| "Aştasahasrika Prajfiaparamita, Fasc. 1-6 @ /10 | | ••• | | 3 | ١ž |
| Atharvana Upanishadas (l'ext), Fauc. 1-5 @ /10 | | • • • • | | 3 | 2 |
| The Annual Control of the Control of | • | | 1 | ī | 4 |
| Avadana Kalpalata, (Sans. and Tibetan) Vol. 1 | Kanc 1-15 | Not II. | ••• | _ | • |
| Hanc. 1-12 @ 1/ ench | 1 1100. 1-10 | | | 25 | 0 |
| Balam Blatti, Vol. I, Fasc. 1-2, Vol II, Fasc. | 1 @ /10/ ## | adı i | •• | ī | 14 |
| Bardic and Historical Survey of Rajputana | A Descrip | tivé Catalou | me of | • | ••• |
| Bardic and Historical Manuscripts. Sec. I | Prose C | hranicles l | art I | | |
| Indhaua Qiaia | , | | u. v ., | 1 | .0 |
| Do Do Neo I, Prose Chron | ioles. Part | II. Bikanir | State | i | 6 |
| Do Do Sec. 2, Bardic Poetr | v. Part [.] | Bikanir Stat | 4 | i | 0 |
| Bardic and Historical Survey of Rajputana | Vacanika | Kāthora R | utana | • | |
| Singhaji ri Mahesadasèta ri Khuriya Joga ri Ke | | | | ı | b |
| Banddhastotrasangraha | | 20111011111111111 | | 2 | Ü |
| Baudhayana S'rauta Sutra, Fasc. 1-3; Vol. II, I | Tago 1.5 : 1 | Val III. Ka | me I | • | • |
| @ /10/ each | | | | 5 | 16 |
| Bhamati (Text), Fasc. 1 8, @ /10/ ench | ••• | ••• | | 5 | Ü |
| Bhāsavritty | ••• | ••• | | Ü | 1 |
| Bhātta Dipikā Vol. I, Fasc. 1-6; Vol. 2, Fasc. | 1.9 @ // | 0 each | | 5 | |
| Bodhicaryavatara of Cantideva, Fasc. 1-7 @/10 | \/ ench | o each | ••• | 4 | 6 |
| Brahma Sutras (English), Pasc. 1, @ 1/- | y each | ••• | ••• | i | 0 |
| Brinddouth Fasc. 1-4 @ /10/ each | ••• | ••• | ••• | 2 | 8 |
| Brhaddharma Purapa Fasc 1-6 @ /10/ each | | | | 3 | 12 |
| Catadusani, Faso. 1-2 @ /10/ each | ••• | ••• | | ĭ | 14 |
| *Catalogue of Sanskrit Books and MSS., Fasc. | 1_4 @ 9/ | l. | | Ė | - (- |
| Catapatha Brahmana, Vol I, Fasc. 1-7; Vo | 1-1 (G 2/ 6 | . [.K. V | | 0 | |
| Faso. 1-7; Vol. V, Fasc. 1-5 @ /10/ each | i II, rasc | 3. 1-5, 40 | 1. 111, | 14 | |
| Ditto Vol. VI, Fasc. 1-3 @ 1/4/ | anah | ••• | | 3 | , d |
| Ditto Vol. VII Frac 1-5 @ /10/ | eacii | ••• | ••• | 3 | 12 |
| Ditto Vol. VII, Fasc. 1-5 @ /10/ Ditto Vol. 1X. Fasc. 1-2 | ••• | ••• | | | 2 |
| Çatashasrikā Prajfiāpāramitā Part, I. Fasc. I1 | 9 Dave II | France 1 4 | a .1 | 1 | • |
| each | 0, 1 410 11, | . 1100. 1, (c | <i>y</i> /10/ | 11 | 14 |
| *Caturvarga Chintamani, Vol. II, Fasc. 1-2 | 5 . Val II | I Dant I | ••• | • • | |
| Fasc. 1-18. Part II, Fasc. 1-10; Vol. IV. Fas | o , | in and | | 36 | 14 |
| Ditto Vol. IV, Fasc. 7, @ 1/4/ eac | o. 1-0 (m.). | O ERCII | ••• | 1 | |
| Ditto Vol. 17, Fasc. 7, (2) 1/4/ eac. | | ••• | ••• | i | 11 |
| *Chandah Sutra (Text), Fasc. 1-3, @/10/ each | ••• | ••• | . • • | i | 11 |
| Clockavartika, (English) Fasc. 1-7 @ 1/4/ each | •• | ••• | ••• | | |
| *Crauta Sutra of Apastamba (Text, Fasc. 2-17, | @ /10/ 02/ | | ••• | 8 | 12 |
| "Cleanta Sates of Canklessens Val 1 13 | 暖/10/6 配 | ыц 11 г | | 10 | U |
| *Crauta Satra of Canklisyana, Vol. 1, Fasc. Vol. III, Fasc. 1-4; Vol 4, Fasc. 1 @ /10/ e | 1-/; YUI. | | . 1-1; | 10 | 6 |
| Ori Bhashyam (Text), Fasc 1-3 @ /10/ each | | ••• | • | 10 | 1.0 |
| Cri Cantinatha Charita Lasa 1.4 | ••• | ••• | ••• | 1 | 14 |
| Cri Cantinatha Charita, Fasc. 1.4 | • • • | | | 2 | 8 |

जानाइ।वार्रेत रुखर्थ:, पनेन जानातिश्य उत्त: ; तत्तंख्यामाइ---चतुर्विंगतिमपि पपिगन्दादन्यानपि किंविभिष्टान स्रोकस्यो-ह्गीतकरान् लोकाते प्रमाणेन दृष्यत इति लोकः, पृष्ठास्तिकाया-याकस्तस्योद्द्योतकरचयीलान् केवलालोकदीपेन सर्वलोकप्रकाय-करणगीलान् रत्यर्थः, ननु केवलिन रत्यनेनेव गतार्थमेतक्कोको-इग्रोतकरणगोला एव हि नेवलिन:। सत्यम्। विज्ञानाऽद्वैतनिरासे-नोह्गोतकरा:, उह्गोत्यस्य भेददर्भनार्थम्, लोकोह्गोतकरत्वं च तत्-स्तावकानामुपकाराय न चाऽनुपकारिणः कोऽपि स्तौति इत्यप-कारक लप्रदर्भ नाया इ -- धर्म तीर्धक रान् ; धर्म जन्न खरूप: तीर्थत-6नेन तीर्थं धर्मप्रधानं तीर्थं धर्मतीर्थं धर्मग्रहणाद् द्रव्यतीर्धस्य नदारे: शाक्स।दिसम्बन्धिनस प्रधर्मप्रधानस्य परिशारः, तलारण-गोना धर्मेतीर्थनराः तान् सदेवमनुजाऽसुरायां पर्वदि सर्व-भाषापरिचामिन्या वाचा धर्मतीर्धप्रवर्तकानित्यर्थः, चनेन पूजा-तिश्रयी वागतिशयसीतः। प्रपायापगमातिशयमाइ—जिनान रागद्वेषादिजेतृनित्यर्थः।

यदुक्तं कीर्तियचामीति तत्कीर्तनं कुर्ववाइ--

5.

उसममितिषं च वंदे संभवमितनंदणं च सुमदं च।

पडमप्पष्टं सुपासं जिणं च चंदप्पष्टं वंदे ॥ २ ॥

सुविष्टिं च पुष्पदंतं सीभल सिक्कंस वासुपुक्कं च।

विमलमणंतं च जिणं धन्मं संतिं च वंदामि ॥ ३ ॥

कुंगुं घरं च मित्रं वन्दे सुणिसुक्वयं निमित्रिणं च।

वंदामि रिट्ठनेभिं पासं तष्ट वहमाणं च ॥ ४ ॥

समुदायार्थः सुगमः। पदार्थसु विभन्यते, स च सामान्यतो विशेषतय। तव सामान्यतः ऋषति गच्छति परमपदिमिति मरवभ:, "चहत्वादी" ॥ ८ । १ । १३१ ॥ इत्युत्वे उसहो । हवभ इत्यपि, वर्षति सिञ्चति देशनाजसेन दुःखाम्निना दग्धं जगत्, इत्यस्यान्वर्थः, "वृषभे वा वा" ॥ ८ । १ । १३३ ॥ इति वकारेण च्छत उलेऽस्यापि उसहो । विशेषतस्य जवीवंषभो लाव्छनमभूहग-वतः, जनन्या च चतुर्देशानां खप्रानामादाव्यभो दृष्टस्तेन ऋषभो द्यवभी वा। १। परीवडादिभिन जित इति प्रजितः, तथा गर्भस्थे भगवति जननी चूर्त राज्ञा न जिता इत्यजित:। २। सन्धवन्ति प्रकर्षेण भवन्ति चतु स्त्रिंगदतिगयगुषा प्रस्नितित सभावः, गं सुखं भवत्यस्मिन स्ति इति शक्यवी वा, तत्र "शषी: सः" ॥ ८।१।२६०॥ द्रित सत्वे सकाव:, तथा गर्भगतेऽप्यस्मिन् श्रभ्यधिकसस्यसकावा-क्षभाव:। ३। भ्राभनन्दाते देवेन्द्रादिभिरित्यभिनन्दन: तथा गर्भाषस्ति एवाऽभीच्यं मन्नायभिनन्दनात् प्रभिनन्दनः। ४। सु श्रोभना मतिरस्थेति सुमतिः, तथा गर्भस्थे जनन्याः सुनिधिता सतिरभूदिति सुमति:। ५। निष्यकृतामक्षीकत्य पद्मस्येव प्रभा यस्याऽसी पश्चमभः, तथा पद्मग्रयनदोष्ट्रदो मात्त्रदेवतया पूरित द्रति, पद्मवर्णेय भगवानिति पद्मप्रभः। ६। श्रोभनाः पार्का पस्वेति सुपार्षः, तथा गर्भस्ये भगवति जनन्यपि सुपार्का जातिति सुपाखी: । ७। चन्द्रस्वेव प्रभा न्योत्स्वा सौम्यलेखाविशेषोऽस्वेति चन्द्रप्रभः, तथा देव्यासन्द्रपानदोष्ठदोऽभूत्, चन्द्रसमवर्षेस भगवा-निति चन्द्रप्रभ: । प्र। श्रीभनी विधि: सर्वेत्र कीश्रलमस्येति

सुविधिः, तथा गर्भस्ये भगवति जनन्यप्येविमिति सुविधिः, पुष्प-किकामनीहरदन्तलात् पुष्यदन्त इति हितीयं नाम। ८। सक्तसस्वसन्तापश्रणाच्छीतसः, तथा गर्भस्ये भगवति पितुः पूर्वीत्पनाऽचिकित्यपित्तदाही जननीकरसागीद्वपशान्त इति गीतलः । १० । सकलभुवनस्याऽपि प्रशस्यतमत्वेन श्रेयान्, श्रेयां-सावंसावस्थेति प्रवोदरादिलात् त्रेयांसी वा, तथा गर्भस्थेऽस्मिन् केनाप्यनाकास्तपूर्वा देवताधिष्ठितप्रय्या जनन्या प्राकास्तेति श्रेयो जातमिति त्रेयांस: ।११। वसवी देवविशेषा:, तेषां पूच्यो वसुपूज्य:, प्रजादित्वादिण वास्पुच्य: तथा गर्भस्थेऽस्मिन वसु हिरच्या तैन वासत्रो राजकुलं प्रजितवानिति वासुपूज्यः, वसुपूज्यस्य राज्ञी-ऽयमिति वा "तस्येदम" ॥ ६।३।६०॥ इत्यणि वासुपूज्यः । १२। विगतमलो विमलः, विमलानि वा जानादीन्यस्येति विमलः, तथा गर्भस्य मात्रर्भतिस्ततुत्र विमला जातेति विमल: । १३। भनन्त-कमींग्रान् जयति, भनन्तेवी ज्ञानादिभिर्जयति भनन्तजित्, तथा गर्भस्ये जनन्या श्रनन्तरत्नदाम दृष्टम्, जयति च तिभुवनेऽपीति त्रनन्तजित, भीमो भीमसेन इति न्यायादनन्त इति । १४। दुर्गती प्रपतन्तं सत्त्वसङ्गातं धारयतीति धर्मः, तथा गर्भस्थे जननी दानादिधर्मपरा जातीत धर्म: । १५ । ग्रान्तियोगात्. तदात्मकालात्, तलार्मृलाद्वा ग्रान्तिरिति, तथा गर्भस्थे पूर्वीत्पनाऽशिवशान्तिरभूदिति शान्ति: ।१६। कु: एष्वी, तस्यां स्थितवानिति निकत्तात् कुन्यः, तथा गर्भस्थे जननी रक्षानां कुर्यं राग्निं दृष्टवतीति कुन्युः। १०।

सर्वी नाम महासत्त्व: कुली य उपकायते। तस्याऽभिवृद्यये वृद्धेरसावर उदाष्ट्रत: ॥ १॥

दित वचनादरः। तथा गर्भस्य जनन्या स्त्री सर्वरत्नमयीऽरी दृष्ट इत्यरः । १८ । परीषद्वादिमक्रजयानिक्तानाक्षिः, तथा गर्भस्वे मातुः एक ऋतौ सर्वेत्सरिक समास्य गयनीयदो इदो देवतया पूरित इति मिन्नः। १८। मन्यते जगतिस्त्रकाचाऽवस्थामिति सुनि: "मनेक्देतौ चास्य वा" (उषा-६१२) इति इप्रत्यये उपान्यस्त्रोलम्, शोभनानि व्रतान्यस्थेति सुवतः, सुनियासी सुवतय सुनिसुवत:, तथा गर्भस्ये जननी सुनिवस्वता जातीत सुनिसुत्रतः। २०। परीवद्योपसर्गदिनामनाद् "-नमेसु वा" (छपा-६१३) पति विवस्येनीपान्यस्येकाराभावपचे निमः, तथा गभैस्ये भगवति परचक्रकृपैरपि प्रचितः क्रतिति निसः । २१। धर्मचक्रस्य नीमवन्नेमिः, तथा गर्भस्य भगवति जनन्या रिष्टरब्रमयो मद्दानीमर्देष्ट इति रिष्टनीमः, चपिवमादि-ग्रब्दवत् नञ्पूर्वेलेऽरिष्टर्निमि:। २२। पग्रवित सर्वभावानिति निक्तात पार्षः. तथा गर्भस्य जनन्या निशि गयनीयस्ययाः उन्धकार सर्पो इष्ट इति गर्भानुभावोऽयमिति मला पश्चतीति पार्खः, पार्खीऽस्य वैयाहत्यकरस्तस्य नायः पार्खनायः, भीमी भीमसेन इतिवत् पार्षः । २३ । उत्पत्तेरारभ्य ज्ञानादिभिवधित इति वर्धमानः, तथा भगवति गर्भस्ये ज्ञातकुलं धनधान्याः दिभिवंधेत इति वर्धमानः । २४।

विश्वेषाऽभिधानार्थसंग्राष्ट्रिकाश्चेमाः श्रीभद्रवाषुखामिप्रणीता

गाघा:---

'जरुसु उसहलक्षणमुसमं सुमिणिका तेण उमहिजणो।
प्रक्षेस जेण प्रजिपा जणणी प्रजिपो जियो तम्हा॥१॥
प्रिम्मृणा सासित सम्भवो तेण वृत्तद भयवं।
प्रिम्मृण्या सासित सम्भवो तेण वृत्तद भयवं।
प्रमिनन्दद प्रमिक्वं सक्षो प्रभिनन्दणो तेण ॥२॥
जणणी सव्वत्य विणिच्छएस सुमदत्ति तेण सुमद्रजिणो।
प्रमस्यणिमा जणणीद डोहलो तेण परमाभो॥३॥
गग्भगए जं जणणी जाय सुपासा तभी सुपासिजणो।
जणणीद चंदिप्यणिमा डोहलो तेण चंदाभो॥४॥
सव्वविष्ठीस प्रकुसला गग्भगए जीण होद सुविहिजिणो।
पिउणो दाहोवसमो गग्भगए सीम्मो तंणं॥५॥

⁽१) जर्शेक्ट वससाञ्क्रन स्वयं खात्रे तेन वंशिता । च जे चु वेना जिता जननी का जितो जिन सम्बात् ॥ १ ॥ जिस संभूतानि स्व्यानीति संभवस्तेनो च्यते भगवः न्। च जिन न्हस्त्रभो च्छां यकोऽभिनन्हनस्तेन ॥ १ ॥ जननी धर्मत विभिन्नवेचु स्वमतिरिति तेन सुनितिजनः। पद्मयवने जनन्या दो इस्सेन पद्माभः ॥ १ ॥ गर्भगते व जनन्या को इस्सेन पद्माभः ॥ १ ॥ गर्भगते व जनन्या चन्द्रपाने दो इस्सेन चन्द्राभः ॥ ८ ॥ सर्विधिष् च कृष्णा गर्भगते वेन भवति सुविधिजनः। पद्मित्रीं च कृष्णा गर्भगते वेन भवति सुविधिजनः। पद्मित्रीं च कृष्णा गर्भगते वेन भवति सुविधिजनः।

'महरिइसिकार्हणिया डोइसो हो र तेण सिकांसो।

पूण्र वासवो जं प्रिक्सणं तेण वसुप्रको॥ ६॥

विमलतण्डु हिजणणो गब्भगण तेण हो र विमलजिणो।

रयणविचित्तमणंतं दामं सुमिषे तणोऽणंतो॥ ०॥

गम्भगण जं जणणो जाय सुधमात्ति तेण धमाजिणो।

जाभो प्रसिवोवसमो गब्भगण तेण संतिजिणो॥ ८॥

युद्धं रयणविचित्तं कुंयुं सुमिणिया तेण कुंयु जिणो।

सुमिषे घरं महरिहं पासर जणणो घरो तन्हा॥ ८॥

वरस्र हिमक्सयणिया डोइसो तेण हो र मिक्रजिषो।

जाया जणणो जं सुव्ययत्ति सुणिसुव्यभो तन्हा॥ १०॥

पणया प्रचंतिनवा दंसियमित्ते जिणिया तेण प्रमी।

रिहर्यणं च निमं उप्ययमाणं तभो निमी॥ ११॥

⁽१) महाई गयारोह ये दोह दो भगति तेन ने बांसः।
पूज्यित वासनी यमभिक्य तेन वास पूज्यः ॥ ६ ॥
विन्नतत् नुद्धिजननी गर्भगते तेन भगति विम्न जिनः।
रक्षविविष्यमननं दान स्त्री ततो तेन भगति विम्न जिनः।
गर्भगते यळाननी जाता सुधमैति तेन धमिकिनः।
स्त्रीर्विष्यमो गर्भगते तेन धान्तिजनः॥ ८ ॥
स्त्रूपं रक्षविविष्यं कृत्युं स्त्री तेन कृत्यु जिनः।
स्त्रीर्रं महाई पस्त्रित जननी, सरस्त्रकात्॥ ८ ॥
वरस्ररिभमा स्त्रायन दो इस्सेन भगति मिस्न जिनः।
स्राता जननी यत् सुन्नतेति सुनिस्न त्राक्षात्॥ १० ॥
प्रस्ताः प्रस्तान्यपा द्धितमाने जिने तेन निमः।
रिटरक्षं च ने सिस्त्यातनं ततो ने सिनः॥ ११॥

'मणं सयणे जर्णणी जंपासद तमसि तेण पासजिणो।
वड्दद य नायकुलं ति घ तेण जिणो वदमाणु सि॥ १२॥
दित कीर्तनं कला चेत: ग्रहाधें प्रणिधानमाइ—

पवं मए प्रभिष्युपा विद्वपरयमला पद्मीणजरमरणा।
चलवीसं पि जिणवरा तित्ययरा मे पसीपन्त ॥ ५ ॥
एवमनन्तरोदितेन विधिना मयेत्यात्मनिर्देशः, प्रभिष्टुता प्राभिमुख्येन लुताः स्वनामिभः कीर्तिता इत्यर्थः। विंविश्रिष्टास्ते,
विधूतरजोमलाः—रजव मलं च रजोमले, विधूते प्रकम्पिते पनेकार्यत्वादपनीते वा रजोमले यैस्ते विधूतरजोमलाः, बध्यमानं च
कर्म रजः. पूर्ववदं तु मलम्, प्रथवा बदं रजो निकाचितं मलम्,
प्रथवा पर्यापयं रजः, साम्परायिकं मलमिति। यतस्वेवंभूता पत
एव प्रचीणजरामरणाः कारणाभावात्। चतुर्विश्रतिरिष, प्रपिग्रष्टादन्येऽपि जिनवराः श्रुतादिजिनेभ्यः प्रक्रष्टाः ते च तीर्यकरा
इति पूर्ववत्, मे मम्, किं १ प्रसीदन्तु प्रसादपरा भवन्तु। ते च
वीतरागत्वाद्यद्यि स्तृताः तोषम्, निन्द्त्तस्य हेषं न यान्ति,
तथाऽपि स्त्रोता सुतिफलम्। निन्द्तस्य निन्दाफलमाग्नोत्येव, यथा
विन्तामणिमन्दाद्याराधकः: यदवोचाम वीतरागस्तवे—

भप्रसन्नात् कथं प्राप्यं फलमेतदसङ्गतम्। चिन्तामस्यादयः किंन फलन्यपि विचेतनाः १॥१॥

 ⁽१) सर्घे श्वाने जननी यत् प्रस्तति तमसि तेन पार्श्वजिनः ।
 वर्षते च कातकृष्यभिति च तेन जिनो वर्धसान इति ॥ १२ ॥

इत्युत्तमेव। षथ यदि न प्रसीदन्ति, तिलां प्रसीदन्खिति हथा प्रनापेन ?। नैवम्। भक्त्यतिश्यत एवसभिधानिऽपि न दोषः। यदाइ—चौषक्तेया एते निष्ट प्रसीदन्ति, न तत्स्तवोऽपि हथा, तत्स्तवभावविश्रहेः, प्रयोजनं कर्मविगम इति ॥ ५॥

तथा--

कित्तिय वंदिय मिड्या जिए लोगसा उत्तमा विदा।
यादगावीडिलामं समाडिवरमुत्तमं दिंतु॥ ६॥
कीत्तिताः खनामिमः प्रोत्ताः. विन्दतास्त्रिविधयोगेन सम्यक् सुताः,
महिताः पुष्पादिभिः पूजिताः। मद्या दित पाठान्तरम्, तत्र
मयका मया। के एते ?, दत्याड-ये एते लोकस्य प्राणिवगेस्य कर्ममस्तक्षद्धाभावेनोत्तमाः प्रक्रष्टाः, सिद्यान्ति स्म सिद्धाः क्रतक्रत्याः
दत्यर्थः, यरोगस्य भाव पारोग्यं सिद्धलं तदर्थम्, बोधिलाभः पर्छग्रणीतधर्मप्राप्तिरारोग्यवीधिलाभः, स द्धानदानो मोचायेव भवति
तम्, तदर्थं च समाधिवरं वरसमाधि परमस्तास्यक्ष्यं भावसमाधिमित्यर्थः, प्रसावित तारतम्यभेदादनिकधेव, प्रत पाडउत्तमं सर्वीत्वष्टं ददत् प्रयच्छन्तः, एतच भन्नयाच्यतः।
यत उन्नम्—

'भासा चसचमोसा नवरं भत्ती इ भासिचा एसा । न चु खीच पिळादोसा दिंति समाज्ञिंच बीजिंच ॥१॥ इति

 ⁽१) भाषा चासम्बद्धवा नवरं भक्तप्रशासितैषा।
 व खनु चीचप्रेमहोषा हदति समाधि च नोधि च ॥ १ ॥

तथा--

चंदेस निमालयरा पाइसेस प्रहिषं पयासयरा।
सागरवरगन्धीरा सिहा सिहिं सम दिसन्तु॥ ७॥
"पचम्यास्तृतीया च"॥ ८। १। १३६॥ दति पचम्यर्धे सप्तमी,
पतसन्द्रेभ्योऽपि निर्मलतराः सकलक्षममलापगमात्, पाठान्तरं
वा चन्देष्ठिं निमालयरा, एवमादित्येभ्योऽप्यधिकं प्रकाशकराः,
केवलोद्योतेन लोकालोकप्रकाशकत्वात्।
छक्तं च—

'चंदाइचगडाणं पडा पयाचेद परिमिषं खित्तं।
केवलियनाणलको लोयालोयं पयाचेद ॥१॥
सागरवरः खयभूरमणाख्यः समुद्रः, परीवडीपसर्गाद्यचीभ्य-खात् तस्मादिप गभीराः, सिडाः कर्मविगमात् क्रतक्तव्यः, सिडिं परमपदप्राप्तिम्, सम दिशम्तु प्रयच्छम्तु। एवं चतुर्विग्रतिस्तवसुक्ता सर्वलोक एवाऽई बेत्यानां वन्दनाद्यधें कायोस्तर्गकरणायेदं पठित, पठिन्त वा। सळलोए घरिइंतचेदघाणं करिम काउसमामित्यादि वोसिरामीति यावत्। व्याख्या पूर्ववत्। नवरम्, सर्वचासौ लोकस्य घरिस्तर्थगूर्ध्वमेदस्तस्मांस्त्रेलोक्ये दत्यधः, घधोलोके हि चमरादि-भवनेषु, तिर्यम्बोके हीपाचलच्योतिष्कविमानादिषु, कर्धलोके सौधर्मादिषु सम्खेवाई बेत्यानि, ततस्य मीलचैत्यं, समाधिकारण-मिति सूलप्रतिमायाः प्राक् सुतिकक्ता। इदानीं सर्वेऽई नास्तहुणा

⁽१) चन्द्राहित्सयकाणां प्रभापकाणस्ति परिमितं चेत्रम्। वेविककानकाभो चोकाचोकं प्रकाणस्ति ॥ १ ॥

इति सर्वलोकसंग्रष्ठः, तदनुसारेण सर्वतीर्धकरसाधारणी स्रतिः।
गन्यया गन्यकायोत्सर्गे प्रन्या स्रुतिरिति न सम्यगितप्रसङ्गादिति
सर्वतीर्धकराणां स्रुतिरुक्ता। इदानीं येन ते भगवन्तस्तदभिष्टिताय
भावाः स्पुटसुपलभ्यन्ते तत्रदीपस्थानीयं सम्यक् स्रुतमर्इति कीर्तनम्, तवाऽपि तत्रणेतृन् भगवतः प्रथमं स्तौति—

पुक्खरवरदीवहें धायइखंडे च जम्बुहीवे च। भरहेरवयविदेहें धन्माइगरे नमंसामि ॥ १॥

भरतं भरतचेत्रम्, ऐरवतमेरवतचेत्रम्, विदेष्ठमिति भीमो भीमयेन
पति स्वायाद् मण्डाविदेण्ण्वेत्रम्, एवं समाण्डारण्यः, तेषु भरतेरवतिवदेण्णेषु धर्मस्य श्रुतधर्मस्यादिकरान् स्त्रतः प्रथमकरण्यीलान्,
नमस्यामि स्तृवे। का यानि भरतेरवतमण्डाविदेण्ण्येत्राण्यः ,
प्रत्याण्ड—पुष्कराणि पद्मानि, तेर्वरः पुष्करवरः स चासौ ण्रीप्य
पुष्करवरण्डीपः दृतीयो श्रीपः, तस्याधं मानुषोत्तराचनादर्वाग्भागवर्ति, तत्र हे भरते, हे ऐरवते, हे मण्डाविदेण्णे, तथा धातकीनां
ख्युणानि वनानि यखान् म धातकीख्युणे हीपः तस्मिन्, हे भरते,
हे ऐरवते, हे मण्डाविदेणे। जम्ब्या लपल्डितः तत्रधानो वा श्रीपो
लम्बृहीपः, प्रचेकं भरतमेकसेरवतमेकं च मण्डाविदेण्णस्यताः पण्डदयकमभूमयः, श्रीषास्वकमभूमयः। यदाण्ड—"भरतेरवतविदेणः
कर्मभूमयोऽन्यत्र देवज्ञक्तरकुष्वस्यः" (तस्वा-२।१६) मण्डत्ररचेत्रप्रधान्याण्डीकरणात्पखानुपूर्व्या निर्देगः। धर्मादिकरत्वं यथा
भगवतां भवति तथा प्रपोक्षयेयवादनिराकरणावसरे प्राग्निर्णीतम्।
नन्वेवमपि कर्यं धर्मादिकरत्वं भगवताम्, 'तप्पुष्विषा परण्यां

इति वचनाद् वचनस्थानादित्वात् ?। नैवम्, बीजाङ्गुरवसदुप-पत्तः-बीजाङ पङ्गो भवति पङ्गास बीजमिति। एवं भगवतां पूर्वजन्मनि श्रुतधर्माभ्यासासीर्थकरत्वम्, तीर्थकतां च श्रुतधर्मादि-करत्वमदुष्टमेव। नचाऽयं नियमः श्रुतधर्मपूर्वकमेवाङ्गत्वमिति, मक्देव्यादीनां श्रुतधर्मपूर्वकत्वाभावेऽपि केवलज्ञानश्रवणादित्यसं प्रसङ्गेन। एवं श्रुतधर्मादिकराणां सुतिक्ता। इदानीं श्रुत-धर्मस्याह—

> तमितिमरपडलविषंसणस्य सुरगणनिरंदमिहिशस्य । सौमाधरस्य वंदे पप्फोडिश्रमोष्टजालस्य ॥ २ ॥

तमोऽचानम्, तदेव तिसिरम्, प्रथवा बह्रसृष्ट निध्यं चानावरणीयं कर्म तमः ; निकाचितं तिसिरं, ततस्तमस्तिमिरस्य,
तमस्तिमिरयोवी पठलं हन्दम्. तिह्यंसयित विनाययतीति
नन्धादिलादने तमस्तिमिरपटलविष्यंसनस्तस्य, प्रचानिरासेनेवाऽस्य प्रवृत्तेः । सुरगणेषतुर्विधाऽमरिनकायेनेरिन्द्रेयक्रवर्त्तादिः
भिर्मेहितः पूजितस्तस्य । प्रागममिहमां हि कुर्वन्त्येव सुरासुरादयः । सोमां मर्थादाम्, सीमायां वा धारयतीति सीमाधरस्तस्य,
युत्तधमे इति विशेष्यम्, ततः कर्मणि हितीया, तस्याय "क्षिद् हितीयादेः" ॥ ८ । १ । १ १ ४ ॥ इति प्राक्ततस्त्रात् षष्ठी, प्रतस्तं वन्दे, तस्य वा यसाहात्मं तहन्दे इति मस्तस्ये षष्ठी ; प्रथवा तस्य वन्दे वन्दनं करोमीति । प्रकर्षेण स्कोटितं विदारितम्, मोहजासं मिष्यालादिक्षं येन स तथा तस्य । श्रुतधमें हि सित विविकानो मोहजालं मिष्यालादिक्षं विलयमुप्रयात्येव ॥ इसं सुतमभिवस्य तस्वैव गुक्षोपदर्भनदारिकाश्यमादगोचरतां प्रति-पादयबाह-

> काईजरामरकसोगपणासणस्य काजाकपुक्खलिसालसुष्ठावष्टसः। को देवदाषवनरिंदगकिषमसः

भयस सारस्वलन्भ कर प्रमायम् १॥ ३॥ कः सचेतनः, धर्मस्य स्नुत्रधर्मस्य, सार सामर्थम्, स्पलभ्य विद्याय स्नुत्रधर्मिदितेऽनुष्ठाने प्रमादमनादरं कुर्यात् १, न कस्वित् कुर्यादिल्खर्थः । किंविशिष्टस्य स्नुत्रधर्मस्य १, कातिर्जन्म, करा वित्रसा, मरणं प्राणनाशः, शोको मानसो दुःखविश्रेषः, तान् प्रयाशयति प्रपनयति, कातिजरामरण्योकप्रणागनः तस्य, स्नुत्रधर्मीक्तानुष्ठानादि कात्यादयः प्रप्रयत्येव, प्रनेनास्यानर्थप्रतिघातित्वमुक्तम् । कस्यमारोग्यमप्रति शस्यति इति कस्याणम्, पुष्कलं सम्पूर्णम्, न च तदस्यं किन्तु विश्वलं विस्तीर्थमवन्भूतं सुखमावद्यति प्रापयतीति कस्याणपुष्कल-विश्वलं विस्तीर्थमवन्भूतं सुखमावद्यति प्रापयतीति कस्याणपुष्कल-विश्वलं सुखमवाप्यत एव, प्रनेन चाऽस्य विश्वष्टार्थप्रापकत्वमाद्य । देवानां दानवानां नरेन्द्राणां च गणैरचितस्य पूजितस्य, सुरगवनरेन्द्र-महितस्य इति, प्रस्तेव निगमनं देवदानवित्यादि । यतस्वेवमतः—

सिन्ने भी । पयमो नमी जिषमए नंदी सया संयमे
देवंनागसुवस्य किन्नरगणस्यम्भूमभाविच्य ।
सोगो जत्य परहिमो जगिमणं तेलुकमचासुरं
भयो वर्डट सासयं विजयमो धम्मुत्तरं वर्डट ॥ ४ ॥

सिद्धः फलाञ्यभिचारेण प्रतिष्ठितः, प्रथवा सिद्धः सक्तलगयव्यापक-लेन निकोटिपरिश्वलेन च प्रस्थातस्त्रस्मिन्, भो दल्वितिश्रयिना-मामन्त्रणम्, प्रयम्तु भवन्तः, प्रयतोऽइं यद्याश्रह्येतावन्तं कालं प्रक-र्षेण, यतः इत्यं परसाचिकं प्रयतो भूत्वा पुनर्नेमस्कारोति, नमी जिनमए नमो जिनमताय, प्राक्ततला चतुर्थाः सप्तमौ। प्रसिंख सति नन्दिः समृद्धिः। सदा सर्वेकालम्, संयमे चारिचे भूयात्। चक्तं च-(')'पढमं नाणं तभो दया'। किं विधिष्टे संयमे ?. देवनाग-सुपर्षे किनरगर्थै: सद्भुतभावेनार्चिते – देवा विमानिन:, नागा धरणादयः, सुपर्णा गरुडाः, किन्नरा व्यन्तरिविधेषाः उपसच्च येवाकां, देविमत्यनुस्तारः इन्दःपूरके, तथा च संयमवन्तीऽर्चन्त एक देवादिभि:। यत्र जिनमते, किं यत्र ? लोकनं सोकी जानम्, प्रति-हितः तद्दशीभूतः, तथा जगदिदं ज्ञेयतया प्रतिहितमिति योगः ; केचियान्यलोकमेव जगयान्यले, यत पाइ — हैलोकामर्खासुर-माधाराधियक्षम्। भयमित्यभूतो धर्मः श्रुतधर्मी वर्धता हिसमुपः यातु, शाखतमिति कियाविशेषणं शाखतमप्रच्या वर्धतामिति ; विजयतः परवादिविजयेन, धर्मीत्तरं चारित्रधर्मीत्तरं वर्धताम्, पुनर्वदाभिधानं मोचार्थिना प्रत्यहं ज्ञानहिद्यः कार्या दति प्रदर्भ-नार्थम्। तथाच तीर्थकारनामकर्मेष्टेतृन् प्रतिपादयतोक्तम्--'चपुळ्वनाचग्रहचे' इति । प्रविधानमेतन्त्रोच्चवीजक्तं परसार्थ-तोऽनाशं सारूपमेविति प्रणिधानं कला श्रुतस्येव वन्दनादाधें कायो-

⁽१) प्रथमं जानं तती इया।

सागीं यठित पठिन्त वा। सुप्रसाभगवधी करिम काउसमा-मिलादि वीसिरामीति यावदर्थः पूर्ववत्। नवरम्—श्रुतस्थेति प्रवचनस्य सामायिकादिर्विन्द्सारपर्यन्तस्य भगवती यथोमाद्या-स्मादियुक्तस्य, ततः कायोसार्गकर्षं पूर्ववत्यारियता श्रुतस्य स्तिं पठिति। ततस्य चनुष्ठानपरम्पराफन्नभूतेभ्यः सिद्वेभ्यो नमस्कार-करणायेदं पठित पठिन्त वा—

सिंदाणं बुद्धाणं पारगयाणं परम्परगयाणं ।
सोधमास्वगयाणं नमो सया सम्बस्दिष्ठाण ॥ १ ॥
सिंद्धान्ति स्म सिंद्धाः ये येन गुषेन निष्यताः परिनिष्ठिताः
सिंद्धोदनवद् न पुनः साधनीया इत्यर्थः, तभ्यो नम इति योगः ।
ते च सामान्यतः कर्मादिनिद्धा प्राप भवन्ति,
यथोक्तम्—

'कामी सिप्पेय विकास मंते जोगेय घागमे। प्रस्थ जन्ता प्रभिष्पाए तवे कामाक्खए इस ॥ १॥

तत्र कमे पाचार्योपदेगरिहतं भारवद्यनकिषवाणिच्यादि, तत्र सिन्धः, परिनिष्ठितः, मद्यगिरिसिद्यत्। शिष्यं लाचार्योपदेशजं तत्र निद्यः, कोकासवधिकवत्। विद्या जपद्योमादिना फनदा, मन्त्रो जपादि-रिद्यतः पाठमात्रसिद्यः; स्त्रीदेवताऽधिष्ठाना विद्या, पुरुषदेवताधि-

⁽१) कर्माच चित्रो च विद्यायां मन्त्रे योगे चागमे। कर्षे वालाञः मभिगावे तपश्चिक कर्मच व इति ॥ ३॥

हानसु मन्त्रः । तत्र विद्यासिं पार्यखपुटवत्, मन्त्रसिं स्तन्धाकर्षकवत्। योग पौष्ठिसंयोगः, तत्र सिद्यो योगसिंदः पार्यसमितवत्, पागमो द्वादणाङ्गं प्रवचनं तत्राऽसाधारणाणीवगमासिदः
पागमसिद्यो गौतमवत्, प्रथी धनम्, स इतरासाधारणो यस्य
सोऽयंसिद्यो मन्त्रणविण्वत्। जले स्थले वा यस्याऽविद्या यात्रा स
यात्रासिद्यख्यक्रकवत्। यमथ्रमभिष्रति तस्थे तथैव यः साधयित
सोऽभिष्रायसिद्योऽभयकुमारवत्। यस्य सर्वोत्तृष्टं तपः स तपःसिद्यो
हिद्यद्वारिवत्। यः कमंचयेण ज्ञानावरणीयाद्यष्टकर्मनिर्मू सनेन
सिदः स कमंचयसिद्यो मददेवीवत्। प्रतः कर्मादिसिद्य्यपोइन
कर्मचयसिद्यपरिषद्वाधमाद्य—वृद्येभ्यः प्रज्ञानिद्राप्रसुप्ते जगित
पपरोपदेशेन जीवादिक्षं तस्वं बुद्यक्तो बुदाः, बुद्यतानक्तरं
कर्मचयं कत्वा सिद्या इत्यर्थः, तेभ्यः। एते च संसारनिर्वाणोभयपरित्यागस्थितमन्तः कैसिदिष्यक्ते—

न संसारे न निर्वाषे स्थितो भुवनभूतये। प्रविन्यः सर्वसोकानां चिन्तारक्वाधिको सद्दान् ॥ १॥

इति वचनात् । एतित्ररासार्धमाइ—पारगतिभ्यः पारं पर्यन्तं संसा-रस्य प्रयोजनवातस्य वा, गताः पारगताः तिभ्यः ; एते च यहच्छा-वादिभिः के सिहरिद्रराज्यापिवदक्तमसिहत्वेनाऽभिष्धीयन्ते, तहुउदा-सार्थमाइ—परम्परगयाणं—परम्परयाः चतुर्देशगुणस्थानक्रमारो-इरूपया, चयवा कयश्चित् कर्मचयोपशमादिसामग्राः सम्यग्दर्धनं तस्मात् सम्यग्ज्ञानं तस्मात् सम्यक्चारित्रमित्वेवभूतया गता सुति स्थानं प्राप्ताः परम्परागताः तेभ्यः। एते च कै सिदनियत् देशा प्रभ्युपगस्यन्ते,

यत क्रियचयस्तम विज्ञानसम्वतिष्ठते।

बाधा च सर्वद्याऽस्त्रेष्ठ तदभावात जातुचित्॥ १॥

इति वचनात्, एतिवरासायाष्ठ लोकायसुपगतिभ्यः लोकायसीष
त्याग्भारास्थायाः पृथिस्था उपरिचेत्रं तदुप सामीप्येन तदपराभिवदिश्वतया निःशेषकर्मचयपूर्वकं गताः प्राप्ताः।

छक्षं च—

' जल य एगो सिदो तत्य य प्रषंता भवक्वयविमुद्धा । प्रकाशमणाबाइं चिट्ठंति सुद्दी सुद्धं पत्ता ॥ १ ॥ तेभ्य: । नवु चीषकर्मषो जीवस्य क्यं लोकागं यावद्गतिः ? । उच्यते—पूर्वप्रयोगादियोगात् । यदाइ—

पूर्वप्रयोगिसिवेबिश्वच्छेदादसङ्गभावाच । गतिपरिचामाच तथा सिवस्थोध्येगितिः सिवा॥१॥ नतु सिविचेबात्परतोऽधस्तिर्यग्वा कस्नाच गच्छन्तिः १, चवाऽप्युक्तम् —

्नाऽधो गौरवविगमादसङ्गभावाच गच्छिति विसुक्तः। जीकान्तादपि न परं प्रवक दवोपग्रहाभावात्॥१॥

⁽१) बस् चैतः विद्वसान् चानना भव्यविस्ताः। चन्द्रोत्वनगदार्थं तिर्दान सुखिनः सुखं प्राप्ताः॥ १॥

योगप्रयोगयोषाभावात्तिर्यंग तस्य गतिरस्ति । तस्मातिषस्योध्यं द्वालोकान्ताइतिभैवति ॥ २ ॥ इति ॥

नमः सदा सर्वसिर्वभ्यः—नमो नमोऽस्, सदा सर्वकालं, सर्वसिर्वभ्यः—सर्वे साध्यं सिर्व येषां ते सर्वसिर्वाः तेभ्यः, ष्रध्या
सर्वसिर्वभ्यः तीर्थसिर्वादिभेदेभ्यः, यथोक्तम्—'तित्यसिर्वा १ प्रतित्यसिर्वा २ तित्ययरसिर्वा ३ प्रतित्ययरसिर्वा ४ स्यंत्रद्वसिर्वा ५ प्रतित्यसिर्वा २ तित्ययरसिर्वा ३ प्रतित्ययरसिर्वा ४ स्यंत्रद्वसिर्वा ५ प्रतित्यसिर्वा २ तित्ययरसिर्वा ३ प्रतित्ययरसिर्वा ४ स्यंत्रद्वसिर्वा ५ प्रतित्वः
सिर्वा १ नपुंसकलिङ्गसिर्वा १० सिर्वाः ११ प्रविक्रःसिर्वा १२ गिडिलिङ्गसिर्वा १३ एगसिर्वा १४ प्रणेगसिर्वा १५ ।
तत्र तीर्वे चतुर्विधयमणसङ्गे उत्यत्रे सिर्वा १४ प्रणेगसिर्वा १५ ।
तत्र तीर्वे चतुर्विधयमणसङ्गे उत्यत्रे सिर्वा वे सिर्वाः ते तीर्थसिर्वाः ।१। प्रतीर्वे जिनान्तरे साधुव्यवच्छेदे सित जातिस्मरणादिनाऽवाप्तापवर्गमार्गाः सिर्वाः प्रतीर्थसिर्वाः, मर्वदेवीप्रस्तयो वा,
तदा तीर्थस्याऽनुत्पन्नत्वात् ।२। तीर्थकरसिर्वाः तीर्थकरत्वमनुभूय
सिर्वाः ।३। प्रतीर्थकरसिर्वाः सामान्यकेवलित्वे सित सिर्वाः ।४।
स्वयं बुद्वाः सन्तो ये सिर्वाः ते स्वयंबुद्वसिर्वाः ।५। प्रत्येकबुद्वाः
सन्तो ये सिद्वाः ते प्रत्येकबुद्वसिर्वाः ।६। स्वयम्बुद्वप्रत्येकबुद्वयोख
बोध्यपिश्यतलिङ्गक्ततो विशेषः—स्वयंबुद्वा दि बाह्यप्रत्ययमन्त-

⁽१) तीणसिद्धाः, चतीर्थसिद्धाः, तीर्यकरसिद्धाः, चतीर्थकरसिद्धाः, स्रयमुद्ध-सिद्धाः, प्रत्ये बनुद्वसिद्धाः नुद्वनोधितसिद्धाः, स्त्रीसिक्कसिद्धाः, एकपिक्कसिद्धाः, नपुंतकसिक्कसिद्धाः, स्विक्कसिद्धाः, स्विक्कस

रेण बुध्यन्ते, प्रत्येकबुदासु बाह्यप्रत्ययेन द्वषभादिना कर-कण्डादिवत्, उपिष्तु खयंब्हानां पात्रादिहीदग्रधा, प्रत्येकबुहानां प्रावरणवर्जी नवविधः ; स्वयंब्हानां पूर्वीधीतस्त्रतिऽनियमः, प्रत्येक-ब्हानां तु नियमतो भवत्येव ; लिङ्गपितपत्तिलु खयंब्हानां गुरुसिवायि भवति, प्रत्येकब्दानां तु देवता लिङ्गं प्रयच्छति ; बुदा पाचार्या पवगततस्वाः तैबीधिताः सन्ती ये सिदाः त बुद्धबोधितसिद्धाः । ७। एते च सर्वेऽपि केचित् स्त्रीलिङ्गसिद्धाः, केचित् पुंलिङ्गसिदाः, केचित् नपुंसकलिङ्गसिदाः। ननु तीर्थकरा पापि किं स्त्रीलिङ्गसिंहा भवन्ति ?, उच्चते, भवन्त्येव — यदुक्तं सिह-प्राभृते—'सब्बयोवा तित्ययरिसिन्ना, तित्ययरित्ये नोतित्य-यरिं पसंखेळागुणा. तित्ययरितित्ये नोतित्ययरिसिं हाणी पसं-खिजागुणाची, तिखयरितिखे नीतिखयरितदा चरंखेळागुणा दति। नपंसकलिङ्गसिदासुतीर्थकरसिदान भवस्थेव, प्रत्येक-ब्दसिदासु पुंलिङ्गसिद्धा एव । ८।१०। खलिङ्गेन रजीइरणादिना द्रव्यतिङ्गेन सिदाः खलिङ्गसिदाः ।११। प्रन्येषां परिवाजकादीनां लिङ्गेन विदा प्रन्यलिङ्गिव्हाः। १२। यदिलिङ्गविदा मब्देव्या-दय: ।१३। एकैकचिन् समये एकाकिन: विदाः एकसिदा: ।१४। एक िया समये प्रशेत्तरं यतं यावत् विद्या पनिक विद्याः ।१५। यत उत्तम्---

⁽१) सर्वेक्षोकाक्षीर्यक्रोसिझाक्षीर्यं करतीर्थे नोतीर्थकरसिझा खसंस्थेव-गुकाः, तीर्थकरोतीर्थे नोतीर्थकरीसिझा खसंस्थेवगुषाः, तीर्थकरीतीर्थं नोतीर्थकर-सिझा खसंस्थेयगुकाः।

'बत्तीसा चड्याला सही बाइत्तरी य बोदव्या। जुलसीई इत्साउई दुरिडममहोत्तरसयं च॥१॥

नन्वेने सिडमेदाः षाद्ययोस्तीर्धसिडाऽतीर्धसिडयोरेवाऽन्तर्भवन्ति, तीर्धकरसिडादयो हि तीर्धसिडा वा स्युरतीर्धसिडा वेति। सत्यम्, सत्ययन्तर्भावे पूर्वभेदडयादेवोत्तरभेदाप्रतिपत्तेरज्ञातज्ञापनार्धं भेदा-भिषानमदृष्टमिति। इत्यं सामान्येन सर्वसिडनमस्त्रारं कला पास-वोपकारित्वाहर्तमानतीर्थाधिपतेः श्रीमन्त्रज्ञातेरवर्षमानस्वामिनः स्तृतिं करोति—

> जो देवाण वि देवो जं देवा पंजली नमंसंति। तं देवदेवमिष्डणं सिरसा वन्दे मण्डावीरं॥ २॥

यो भगवान् महावीरो देवानामि भवनवास्त्राहीनां पूज्यत्वाद् देव:, यत एवाइ —यं देवा: प्राम्मलयो विनयरचितकरसम्पुटा: सन्तो नमस्त्रन्त प्रणमन्ति, तं भगवन्तं देवदेवै: यक्तादिभिर्मिहतं पूजितम्, वन्दे शिरसा उत्तमाङ्गेन.चादरप्रदर्शनाधं चैतत्। तं कं ? महावीरम्, विशेषेण ईरयति कर्म गमयति याति वा शिवमिति वीरः, महांसासी वीरस महावीरस्तम्। इत्यं सुतिं कत्वा पुनः परापकाराय पालसाववहये च फलप्रदर्शनपरसिटं पठति —

> इको वि नसुकारो जिखवरवसहस्य वहसाणस्य । संसारसागराची तारेइ नरंव नारिंवा॥ ३॥

⁽१) हालिंगहरुवलारिंगत् वरिक्षामतिच वीद्याः। चतुर्गीतिः वस्तुवतिकरिहत्वरोत्तरम्यतं च ॥ १॥

एकोऽप्यासतां बद्धवः, नमस्तारो द्रव्यभावसंकीचलचणः, जिनवर-हवभाय — जिनाः युताविधिजिनादयः तेषां वराः कीविलिन्दोषां हषभः तीर्थकरनामक्रमोदियादुक्तमो जिनवरहष्ठभस्तस्ते। स च ऋषभादिरिप भवतीत्याद्य — वर्धमानाय यद्धात्कृतः सिवति ग्रेषः। किम् ! संसर्षं संसारस्तिर्यम्नरनारकाऽमरभवाऽनुभावलचणः स एव भवस्थितिकायस्थितिभ्यामनेकधावस्थानेनाऽलस्थपारत्वाद्यागर दव संसारसागरः, तस्मात् तारयित पारं नयतीत्यर्थः। किमि-स्थाद्य! — नरं वा नारीं वा-नरग्रद्यणं पुरुषोक्तमधर्मप्रतिपादनार्थम्, नारीयद्यणं तासामिप तद्वव एव संसारचयो भवतीति ज्ञापनार्थम्। यथोक्तं यापनीयतन्त्रे—

ेनी खलु इत्यी घजीवो, न यावि घभव्या, न यावि दंगण-विरोडिणी, नो घमाणुस्मा नो घणायरियचणका, नो घमंखेळा-उघा, नो घडकूरमई, नो घणुवसन्तमोष्ठा, नो घसुडाधारा, नो घसुडवींदी, नो ववसायवळिषा, नो घपुव्यकरणविरोडिणी, नो नवगुष्णद्वाचरिष्ठमा, नो घजोग्गा लहीए, नो घक्षाषभायणं ति कहं न उत्तमधमासा साहगा १ इति।

⁽१) नो खबु स्त्री खजीवः, न चाप्यभ्रत्या, न चापि इर्धनविरोधिनीः नो खमालुष्यः, नो खनार्थीत्पद्यः, नो खसंस्थेवायुष्ट्याः, नो खतिकृरमितः, नो खतुप-मान्तमोक्षाः, नो खगुद्धाचाराः, नो खगुद्धगरीराः, नो व्यवसायविर्धताः, नो खपूर्व-खरखविरोधिनीः, नो नवगुचस्थानरिक्षताः, नो खबोग्या खब्धाः, नो खबस्याप-भाजनिविति कर्ष भोजनमधर्मेखं बाधिका १ इति।

भयसत्र भावः, सित सस्यग्दर्शने परया भावनया क्रियमाण एकोऽपि नमस्तारस्त्रयाभूतस्याध्यवसायस्य हेतुभैवति यद्याभूतात् त्रेणिमवाप्य निस्तरति भवीदिधिमिति। भतः कार्ये कारणीप- चारादेवसुच्यते। न च चारित्रस्य वैफल्यम्, तद्याभूताध्यवसायस्यैव चारित्रस्यत्वादिति। एतास्तिस्यः सुतयो गणधरक्रतत्वाद् नियम्मे चेनिस्तु भन्ये भपि सुती पठन्ति—

उज्जितमेलिस हर दिक्ला नाणं निसी हिया जस्म तं धमाचक्कविं घरिहनेमिं नमंसामि ॥ ४ ॥ चत्तारि घट्ट दस दी घ वंदिघा जिणवरा घटवीसं। परमहनिहि घट्टा सिंहा सिंहिं सम दिसंतु॥ ५ ॥

सुगमे। एवमेतत्पिठिलोपचितपुष्यसभार उचितेष्वीचिल्लेन
प्रवित्तिति भ्रापनार्थे पठित पठिन्ति वा वियावसगराणं सिन्तगराणं सम्मदिष्टिममास्थिराणं करिम काउसमां वैयावल्यकराणां प्रवचनार्थे व्याप्रतभावानां गोमुख्यचाऽप्रतिचक्ताप्रस्तीनां ग्रान्तिकराणां सर्वनीकस्य सम्यग्दृष्टिविषये समाधिकराणाम्, एषां सम्बन्धिनां षष्ठाः सप्तम्यर्थलादेति द्विषयमेतान् वाश्वित्यः
करोमि कायोक्षर्गम्। भन वन्दनादिप्रत्ययमित्यादि न पठ्यते,
भिष्ते भन्यत्रोच्छ्वितिनेत्यादि, तेषामिवरतत्वात्, रत्यमेव तद्वावव्ववेषपकारदर्भनात्। एतद्वाख्या च पूर्ववत्। नवरं सुतिवैयावत्यकराणां पुनस्तेनेव विधिना उपविष्य पूर्ववत् प्रणिपातदण्डकां
पठित्वा सुक्ताग्रिक्तसुद्रया प्रणिधानं कुर्वन्ति।

यथा --

जय वीयराय! जगगुर्द! हो ह सम तुह प्रभावकी भयवं!।
भविनव्येको सम्माषुसारिका द्र्ठफलसिदी ॥ १ ॥
लोगविद्वचाको गुद्द जवपूषा प्रत्यकरणं च ।
सहगुर्दे जोगो तव्ययक्षेत्रणा प्राभवसस्त्रका ॥ २ ॥

जय वीतराग! जगहुरो! इति भगवतिस्त्र नोकनाथस्य नुद्धां सिक्षधानार्धमामस्वयम्, भवतु जायतां मनित्याक्रनिर्देशः, तव प्रभावतः तव सामस्यंन, भगविविति पुनः सम्बोधनं भक्त्यिति प्रयस्थापनार्थम्। वितं तदित्याइ—भवनिर्वेदः संसारिनवेदः। न दि भवादिनिर्विसो मोचाय यतते, प्रनिर्वेसस्य तत्राति-वश्वासोचे यत्नोऽयत्न एव, निर्जीवित्रयातुस्यत्वात्। तथा मार्गाऽनुसारिता प्रमद्धद्विजयेन तत्त्वानुसारिता, तथा इष्टफ्ल-सिद्धिसमतार्थनिष्यत्तिः ऐइनौकिकी, ययोपग्रद्धीतस्य वित्तास्यः भवति तस्माचोपादेयप्रवृत्तिः। तथा सोक्षविद्धत्यागः सर्वजनिन्दादिस्रोक्षविद्धाः तृष्ठानवर्जनम्।

यदाइ —

'सब्बद्ध चेव निंदा विसेषणी तद्य गुषसिमद्याणं।

एज्ञथमाकरणद्वस्यं रीटा जचपूर्यणिक्याणं॥१॥

बहुजनविद्यसंगो देसाचारसः संघणं चेव।

एव्यणभी उपातदा दाणादवियडमवेषो॥२॥

(१) सर्वस्य चैर निन्दा विशेषतस्य च स्वयस्य स्वानः स्। स्वजुधके करण इसनं रीठा जनपूजनीया नास्॥१॥ वञ्जनविष्यसङ्घो देशाचारस्य सङ्घनं चैव। उत्तवभोगच तथा दानादिविषटमन्यसात्॥२॥ 'साइवसविद्या तो सो सद सामत्यिका भपिडयारी भ। एमाइयादं दृखं सोगविद्यादं ग्रेभादं॥ ३॥

गुर्जनस्य पूजा उचितप्रतिपत्तिर्गुर्वजनपूजा, गुरवस्य यद्यपि धर्माचार्था एवीचन्ते तथापी समातापित्रादयोऽपि ग्रह्मन्ते । यदुक्तम्—

> माता पिता कलाचार्य एतेवां जातयस्तवा। हदा धर्मीपदेष्टारी गुरुवर्गः सतां मतः॥१॥

परार्थनरणं सस्वार्थनरणं जीवनीनसारं पौरविषक्रमेतत्।
सत्येतावति नीनिने सीन्द्रयं नोनोत्तरधर्माधिनारी भवतीत्याइ-ग्रभगुरुयोगो विधिष्टचारित्रयुक्ताचार्यसम्बन्धः, तथा तद्दचनसेवा सनुर्वचनसेवना, न जातुचिदयमिहतसुपदिम्मति, भाभवमाससारमञ्जूषा सम्मूर्णो। इदं च प्रणिधानं न निदानरूपम्,
प्रायेष निस्सद्गाभिनावरूणतात्। एतश्चाप्रमत्तसंयतादर्वान्
कर्तव्यम्, भप्रमत्तादीनां मोचेऽप्यनभिनावात्। तदेवंविधग्रभफन्तप्रणिधानपर्यन्तं चैत्यवन्दनम्॥ १२४॥

इदानीमनन्तरकरणीयमाइ -

ततो गुद्धगामभ्यर्गे प्रतिपत्तिपुरःसरम् । विद्धीत विशुद्धात्मा प्रत्याख्यानप्रकाशनम्॥१२५॥

⁽१) साधुवतने स्वस्य सति सामर्थोऽप्रतिकारच। यनमारिकानि इत्सं सोकनिवद्वानि चेतानि॥१॥

ततीऽनन्तरं गुरूषां धर्माचार्याणां देववन्दनार्धेमागतानां स्नावादिदर्भनधर्मकथाद्यथं तचैव स्थितानामभ्यणें छचिते सभीपे, छचितलं चार्धचतुर्थइस्तप्रमाणात् चेवाद् बहिरवस्थानम्, प्रति-पत्तिव्यास्थासमाना वन्दनकादिक्या वा, तत्पुरः सरं तत्पूर्वकं, विदधीत कुथ्यात्, विग्रहात्मा निर्मलचिक्तो न तु दक्षादियुक्तः, प्रत्यास्थानस्य देवसमीपे कातस्य प्रकाशनं गुरोः पुरतः प्रक-टनम्; विविधं हि प्रत्यास्थानविधानमात्मसाचिकं देवसाचिकं गुरुसाचिकं च ॥ १२५॥

प्रतिपत्तिपुरः सर्मित्युक्तमिति गुरुप्रतिपत्तिं स्रोकदयेन दर्भयति—

षभ्यत्यानं तदालोकिऽभियानं च तदागमे।
शिरस्यञ्जलिसंग्लेषः स्वयमासनढीकनम् ॥१२६॥
षासनाऽभियशे भक्त्या वन्दना पर्य्युपासनम्॥
तदानिऽनुगमश्चेति प्रतिपत्तिरियं गुरोः॥ १२०॥

प्रभ्युष्टानं समभूममासनत्यागः, तदानीकी गुरूषामालीकने सित, प्रभियानमभिमुखं गमन तदागमे गुर्वागमे, शिरसि मस्तके गुरूदर्भनसमकालमञ्जलसंग्लेषः करकोरककरणं नमो स्वमासम्प्राणंति वचनोचारपूर्वकं स्वयमित्यात्मना न तु परप्रेष्णंन प्राप्तनदौकनमासनस्विधापनम् ॥१२६॥ प्राप्तनाऽभिग्रन्तः प्राप्तन स्वविधेषु गुरुषु स्वयमासितव्यमित्यभिग्रन्तः पासनाभिग्रनः, भन्न्या भित्रपूर्वकं वन्दना पञ्चविग्रत्यावस्यकविश्वषं वन्दनं स्थानस्थितानां च गमनादिव्याकुललाभावे पर्सुपासनं सेवा, तेषां गुरूषां याने

गमनेऽनुगमनं पृष्ठतः कतिपयपदानुसरणिमयं प्रतिपत्ति वपचार-विनयक्ष्या गुरोर्धमीचार्यस्य ॥ १२०॥ ततो गुरुपार्स्वे धर्मदेशनां श्रुत्वा—

ततः प्रतिनिष्ठत्तः सन् स्थानं गत्वा यथोचितम् । सुधीर्धर्माऽविरोधेन विदधीतार्थचिन्तनम् ॥ १२८॥

भतो देवग्रहात् प्रतिनिद्यत्ती व्याद्यत्तः सन् ययोचितं स्थानं
गला ययोचितमिति यदा राजादिस्तदा धवलग्रहं यद्यमात्यादिस्तदा करणम्; भय विणगदिस्तदा भाषणमिति सुधीर्जुहिमान् विदधीत भर्यचिन्तनमर्थोपायचिन्तां धर्माविरोधेनेति धर्मस्य
जिनधर्मस्य भविरोधेन भवाधया। भव चार्यचिन्तनमित्यनुवाद्यं
तस्य स्वतःसिहत्वात्, धर्माविरोधेनेति विधेयमप्राप्तत्वात्। धर्माविरोधस राज्ञां दरिद्रेष्वरयोमीन्यामान्ययोदत्तमनीचयोमीध्यस्थान न्यायदर्भनात्, नियोगिनां च राजार्थप्रजार्थसाधनेन,
विण्ञां च सूटत्लासूटमानादिपरिहारेण पश्चद्यक्रमीदानपरिहारेण च बोहव्यः॥ १२८॥

ततो माध्याद्भिकों पूजां कुर्यात् कृत्वा च भोजनम् ॥ तिद्विः सङ् शास्त्रार्थरङस्यानि विचारयेत् ॥ १२८॥

ततस्तदनन्तरं माध्याक्रिकीं मध्याक्रकासभाविनीं पूजां जिनसपर्थ्यां सुर्यात् सत्या विधाय च भोजनमित्यनुवादः । माध्य-क्रिकीपूजाभोजनयोय न कासनियमः । तीव्रबुभुचोर्डि बुभुचा- कालो भोजनकाल इति रुढेर्मध्याक्रादर्वागिप ग्रहीतप्रत्याख्यानं तीरियत्वा देवपूजापूर्वकं भोजनं कुर्वत दुखित । प्रत्न चाऽयं विधि:—

'जिनपूत्री चित्रदाणं परियणसभालणा उचियकि चं। ठाणुवएसीय तष्ठापचक्छ। चस्रासभारणं॥१॥

तथा भोजनाऽनन्तरं सक्षवतो ग्रन्थिसिश्तादेः प्रत्याख्यानस्य करणं प्रमादपरिजिष्ठीर्षोष्ठं प्रत्याख्यानं विना न युक्तं चण-मप्यासित्म्। ग्रास्त्रार्थीनां रष्ट्यान्यैदंपर्थ्याणि विचारयेदिदमित्यं भवति निति वा सम्प्रधारयेत्, कयं, सष्ट साधें कैस्तिष्ठितः तच्छा-स्त्रार्थरस्यं विदन्ति ये तैः, गुरुमुखात् स्त्रतान्यपि ग्रास्त्रार्थ-रष्ट्यानि परिग्रीन्ननाविकन्तानि न चेतसि सुदृद्धप्रतिष्ठानि भवन्तीति काला॥ १२८॥

ततय सन्धासमये क्रत्वा देवार्चनं पुनः । क्रतावश्यककर्मा च कुर्यात् खाध्यायमुत्तमम् ॥१३०॥

ततस्तदनन्तरं यो हिर्मुङ्को स विकालसमये पन्तर्मुझर्ताद-वीग् भोजनं काला सन्ध्यासमये पुनस्तृतीयवारं देवार्चनं काला साधुसमीपं गला भूमिकौचित्येन षड्विधावस्थकं सामायिकः चतुर्वियतिस्तव वन्दनक-प्रतिक्रमण-कायोक्षर्ग-प्रत्याख्यानलच्चां कुर्थात्; तत्र सामायिकमार्तरीद्रध्यानपरिचारेण धर्मध्यानपरि-

⁽१) जिनपूजी वितदानं परिजनसंभाजनस्वित कालास्। स्थानोपदेशचा प्रत्यास्थानस्य संभरणस्य ॥१॥

करणेन शत्रुसिवद्यणका सनादिषु समता, तस पूर्वमेवोक्तम्। चतु-विंग्रतेस्तीर्धकराणां नामोत्कीर्तनपूर्वकं स्तवी गुणकीर्तनं तस्य च कायोत्सर्गे मनसाद्रमुध्यानं श्रेषकालं व्यक्तवर्षपाठः। प्रयमपि पूर्वमुक्तः। वन्दनं वन्द्रनायोग्यानां धर्माचार्याणां पद्मविंग्रत्याव-ग्यकविश्वतं द्वाविंग्रहोषरितं नमस्करणम्। तत्र पद्मविंग्रतिराव-ग्यकानि यथा —

^१दुघोणयं घडाजायं कियक्तमां बारसावयं। च उसिरंतिगुत्तं च दुपवेसं एगनिक्दमणं॥ १॥ इति ।

दे अवनमने इच्छामि खमासमणो वंदिलं जावणिजाए निसीहियाए इत्यभिधाय गुरोव्छन्दानु ज्ञापनाय प्रथममवनमनम्।१। यदा पुनः क्रानवर्गी निष्त्रात्त इच्छामीत्यादिस्त्रमभिधाय पुनव्छन्दोऽनु ज्ञापनायैव तदा दितीयम् २। तथा
ययाजातं जातं जन्म तच्च हेधा प्रमवः प्रव्रज्यायञ्चणं च। तत्र
प्रसवकाले रिचतकर मंपुटो जायते प्रव्रज्याकाले च ग्रज्ञीतरजोइरण मुख्य स्त्रिक इति ययाजातमस्य स ययाजातस्त्रयाभूत एव
वन्दते इति वन्दनमिष ययाजातम् । ३। तथा द्वाद्यावर्ताः
काय वेष्टाविभेषा गुक्चरण न्यस्त इत्रिः स्थापन कृपा यिसंस्तद्
दादगावर्तमित्त च प्रथमप्रविष्टस्य भन्दो कायं दत्यादि स्त्रोचारण गर्भाः षडावर्ताः निष्क्रम्य पुनः प्रविष्टस्याऽपि त एव
षडिति दादग । १५। चत्वारि शिरांसि यस्मिन् तच्चः। श्रिरः

⁽१। द्वप्रपनतं ययाजातं क्रतकर्मद्वादयावर्तम्। चद्वाधारः त्विगुर्भः च द्विपवेषमेकनिष्कृतस्यस्॥ १॥

प्रथमप्रविशे चामचाकाले शिष्याचार्ययो रवनम च्छिरो हयम्, निष्क्रस्य पुन: प्रविशे तथेव च शिरो हयम्। १८। निग्रतं मनोवाकाय-कामी भग्निम्। २२। तथा प्रथमो उनुचाप्य प्रविशे हितीयः प्रनिर्मेत्व प्रविश हित हो प्रविशी यत्र तद् हिप्रविशमिकं निष्क्रमण्यमावश्यक्या निर्मेच्छतो यत्र तदेक निष्क्रमण्यम्। २५। हार्निशहोषा यथा

'भगाठियं च यह्ढं च पित्र पिरिपिषियं।

टोलगर भंकुसं चेव तहा कच्छभरिंगिमं॥१॥

मच्छोव्यत्तं मणसा य पग्डं तह य वेदयावतं।

भयसा चेव भयंतं मेत्ती गारवकारणा॥२॥

तेणिमं पडणीमं चेव कर्डं तिक्वयमिव य।

सढं च होलिमं चेव तहा विपिल्र चिमं॥३॥

दिट्ठमदिट्ठं च तहा सिंगं च करमोभणं।

मालिसमनालितं जणं उत्तरचूलिमं॥४॥

⁽१) स्वनाहतं च साक्षं च प्रविश्वं परिपिश्वितस् ।

टोबगित सङ्क्षं च तथा बच्छपरिङ्गितस् ॥१॥

मत्योहृत्तं मनसा च प्रदृष्टं तथा च वेदिकावद्वस् ।

भयाद् चैव भजमानं मेशी गौरवकारसम् ॥२॥

सौनिकं प्रस्वभीकं चैव दणं तर्जितमेव च ।

यठं च शीबतं चैव तथा विपरिकृश्वितस् ॥१॥

हण्महण् च तथा प्रदृष्टं च करभोचनस् ।

साञ्चिलमाञ्चिलस् मुनस्तर्व्यातस् ॥॥॥

'मूमं च टड्टरं चेव चुडलिं च भपच्छिमं। बत्तीसदीसपरिसुद्धं किइकमां परंजए॥ ५॥

चनाहतं सभामरिकतं वन्दनम् । १। स्तव्यं मदाष्टकवशीकतस्य वन्दनम् ।२। प्रविश्वं वन्दनं ददत एव पलायनम् ।३। परिपिष्डितं प्रभूतानां युगपदन्दनम्, यदा कुचे हपरि इस्ती व्यवस्थाप्य परिपि-िष्डितकरचरणस्याऽस्यक्तसूत्रोधारणपुर:सरं वन्दनस् ।४। टीलगति तिङ्डवदुत्म्रत्योत्म्नुत्य विसंस्थुलं वन्दनम ।५। प्रद्वाश्यमपकरणे चोल-पदृक्तादी इस्ते वा अवज्ञया समाक्रथ पङ्ग्रेन गजस्येवाचा-र्यस्रोर्ध्वस्थितस्य प्रयोजनान्तरव्यगस्य वा वन्दनकार्थ-मासन उपवेशनम्। न दि पूज्याः कदाचिदप्याकर्षेणमर्हन्ति, भविनयलादस्य, यहा रजीइरणमङ्गयनकारहयेन ग्रहीला वन्दनम्, यदि वाऽश्वामानास्य इस्तिन इव शिरोनमनोबमने कुर्वाणस्य वन्दनम् । ६। कच्छपरिङ्गितमूर्श्वेखितस्य तित्तिसणयरा द्रत्यादिस्त्र-मुचारयत उपविष्टस्य वा पड़ी कार्य काय इत्यादिस्त्रमुचारयती-ऽयतोऽभिमुखं पश्चादभिमुखं च रिङ्गतश्वलतो वन्दनम्।७। मह्यो-दृइत्तमुत्तिष्ठविविशमानी वा जलमध्ये मत्य द्वोद्दर्भते उद्देशते यत तत्। यदा एकं वन्दिला दितीयस्य साधीर्दुतं दितीयपार्म्बन रेच-कावर्तेन मत्यवत् पराष्ट्रत्य वन्दनम्। ८। मनसा प्रदुष्टं शिष्यस्त-लाम्बन्धी वा गुक्णा किञ्चित्पक्षमभिहितो यदा भवति तदा मनसो दूषितलाइ मनसा प्रदुष्टं, यहा वन्द्रो हीन: केनचिहुणेन

⁽१) सूकं च ढड्ढरं चैव चुडलिचापचिसम्। द्वातिंगहोसपरिग्रुवं त्रतिकर्मे प्रयुक्षीत ॥ ५॥

ततीऽइमेवविधेनाऽपि वन्दनं दापयितुमारस इति चिन्तयतो वन्दनम् ।८। विदिकाबदं जानुनोक्परि इस्ती निवेश्य पधी वा पार्क्योवी उक्षके वा जानु करदयान्तः कलावा इति पश्चीभ-वेंदिकाभिषेषं युत्रं वन्दनम् ।१०। बिभ्यत् सङ्गात् कुलात् गच्छात् चेत्राहा निष्कासियथिऽइमिति भयाद् वन्दनम् ।११। भजमानं भजते मां सेवायां पतितो सम पाये वा सम भजनं करिचति ततीऽइमपि वन्दनसलां निष्ठोरकं निवेशयामीति बुद्या वन्दनम् ।१२। मेवीतो मम मिवमाचार्य पति, पाचार्येणेदानीं मैवी भविति वा वन्दनम्।१३। गौरवाद्यन्दनकसामाचारीकुशकोः ऽइमिति गर्वादन्येऽप्यवगच्छन्त मामिति यथावदावर्तादीना-राधयतो बन्दनम् ।१४। कारचाद् ज्ञानादिव्यतिरिक्ताइस्तादिः सामहितीवैन्द्रनम्, यदा ज्ञानादिनिमित्तमपि स्रोकपूज्योऽन्येभ्यो वाऽधिकतरी भवामीत्यभिप्रायती वन्दनम्, यद्दा वन्दनकमूत्र्य-वयीक्ततो सम पार्थनाभङ्गं न करिष्यतीति बुद्धा वन्दनम् ।१५। स्तैनिकं सम जाववं भविष्यतीति परेभ्य पात्मानं निगृष्ट्यती वन्दनम् भयसर्थः -- एवं नाम शीघ्रं वन्दते यथा स्तीनवत् कीनचिद् दृष्ट: बेनचिन्नेति ।१६। प्रत्यनीकमाहारादिकाले वन्दनम् ।१०। यटाइ-

> 'विक्खित्तपराक्षते पमत्ते मा कयावि वंदिका॥ पाक्षारं च करिते नीक्षारं वा जक्र करेद्र॥ १॥

⁽१) व्याचिप्रपराभूतान् प्रमत्तान् मा कदापि यन्दिशः। चाइ।रंच कर्वतो नीइ।रंग यदि करोति॥१॥

् दष्टं क्रोधाधातस्य गुरीर्वेन्दनमात्मनावा क्राह्वेन वन्दनम् ।१८। तर्जितमवन्द्यमानी न कुप्यसि वन्द्रमानसाविशेषज्ञतया न प्रसी-दिस इति निर्भेर्त्तियतो यहा बहुजनमध्ये मां वन्दनं दापयंस्तिष्ठसि जास्यते मया तवैकाकिन इति धिया तर्जन्या ग्रिरसा वा तर्ज-यती वा वन्दनम् ।१८। शठं शाख्येन विश्वशार्थं वन्दनं ग्लानादि-व्यवदेशं वा कला न सम्यग्वन्दनम्।२०। श्रीलितं हे गणिन् वाचक ! किं भवता वन्दितेनेत्यादिना चवजानती वन्दनम् ।२१। विविति कंचितम्, पर्धवन्दित एव देशादिक्याकरणम् ।२२। दृष्टादृष्टं तमसि खितः केनचिदन्तरित एवमेवास्ते दृष्टस्त बन्दत इति ।२३। युक्तं प्रहो कायं काय इत्याद्यावर्तानु चारयती ललाटमध्यदेशम-स्प्रातः शिरसो वामदिष्ये युक्के स्प्रातो वन्दनकरणम् ।२४। करः कर इव राजदेवभाग इव घईलाणीतो वन्दनककरोऽवध्यदातव्य इति धिया वन्दनम् ।२५। मोचनं लीकिककर। इयं मुक्ता न मुखाम है वस्तकरादिति बुद्धा वस्तम् ।२६। पाश्चिष्टानाश्चिष्टमत्र चतुर्भक्की, सा च प्रहो कार्य काय इत्याद्यावर्तकाली भवति रजोडरणस्य शिरसव कराभ्यामाञ्चेषणं, रजोइरणस्य न शिरसः, शिरसी न रजोद्दरणस्य, न रजोद्दरणस्य नाऽिव शिरमः। चत्र प्रथमः ग्रुदः शेवासु दुष्टाः । २०। न्यूनं व्यञ्जनाभिलापावश्यकैरसम्पूर्णम् ।२८। उत्तरवृतं वन्दनं दस्वा मद्यता ग्रब्देन मस्तवेन वन्दे इत्यभि-धानम्। २८। सूत्रं प्रालापाननु चारयतो वन्दनम्। ३०। ट ख्टरं महता शब्देनोच। रयतो वन्दनम्। ३१। चुडली उल्युकं यथोल्युकं ग्रह्मते तथा रजोइरणं ग्रहीत्वा वन्दनं यदा यत्र दीर्घहरतं

प्रसार्थ वन्दे इति भणतो वन्दनम्, प्रयवा इस्तं श्रमयित्वा सर्वान् वन्दे इति वदतो वन्दनम्। ३२। वन्दनके च श्रिष्यस्य वडिभि-लापा भवन्ति, तदाया इच्छा प्रमुद्धापना प्रव्यावाधं याचा यापना प्रपराधचामणा च,

यदाइ --

'इच्छा य प्रणुषावणा प्रव्यावाहं च जत्त जवणा य।
प्रवराहखामणा चिय छठाणा हु'ति वन्द्षए॥१॥
गुरुवचनान्यपि घडेव यथा छन्देन प्रनुजानामि तथिति तुभ्यमिप वर्तते एवमहमिप चमयामीति।

यदाइ---

'कंदेन प्रणुजाणामि तहित तुम्मि वहह एवं।
प्रहमिव खामीमि तुमै पालावा वंदणरिहस्स ॥ १ ॥
एते च हये प्रणि यथास्थान स्वाच्यास्थायां दर्गयिषान्ते।
सुनं च—

इच्छामि खमासमणी वंदिचं जावणिकाए निसीहियाए प्रमुजाण्ड में सिउगाइं निसीहि प्रश्लो कायं कायसंकासं खमणि-क्यों में किलामी प्रप्यकिलंताणं बहुसुभेण में दिवसी वहसंती जत्ता में जवणिका च में खामीम खमासमणो देवसिषं वहसंसं

⁽१) द्रका चातुत्तापना स्रव्यावाधं च यात्रा यापना च। स्रपटाधकामणा चैव घट्स्थानानि भवन्ति वन्द्रनके॥१॥

⁽२) छन्देनात्त्रज्ञानामि तथेति तवाऽपि पर्तते एवस् । स्वकृमपि चमसामि तवासापाद् वन्दनाईन्सः ॥ १॥

भाविकाए पिडक्रमामि खमासमणाणं देवसिभाए भासायणाए तित्तीसबयगए जं किंचि मिच्छाए मणदुक्रडाए वयदुक्रडाए कायदुक्रडाए को हाए माणाए मायाए सी हाए सब्बका सियाए सब्बम्ब्छावयाराए सब्बधना इक्रमणाए भासायणाए जो मे भर-भारो कभी तस्य खमासमणी! पिडक्रमामि निंदामि गरिष्ठामि भूषाणं वीसिरामि।

व्याख्या — प्रत हि शिक्षो गुरुवन्दनेन विन्दितुकामः पूर्वे लघुन्वन्दनपुरः सरं संदंशकी प्रसच्घोपविष्ट एव मुखविस्त्रकां पश्चविद्यति कत्वः प्रत्युपेचते, 'तया च शरीरं पश्चविद्यतिकत्व एव प्रसच्च परैष विनयेन मनोवाक् कायसंश्रहो गुरोः सकाशादात्मप्रमाणात् चेताद बिहः खितोऽधिच्यचापवदवनतकायः करहयग्रहीतरकोष्टरचादिव्यत्वायोग्यतः एवमाह — इच्छामि प्रभिलवामि प्रमेन बलाभियोगः परिष्ठतः, चमात्रमणः 'चमूबि सहने' इत्यस्य विस्वादिष्ट चमा सहनमित्यर्थः, त्राम्यति संसारविषये खिन्नो भवति तपस्यत्तीति वा, नन्धादित्वात् कर्तरि प्रने त्रमणः, चमाप्रधानः त्रमणः वमात्रमणः तस्य सम्बोधने प्राक्षते खमासमणो ! "डो दीर्घी वा" ॥ (सिडहेम॰ ८१२१८)॥ इति प्रामन्त्रे सेर्डीकारः, चमाग्रहणेन मार्दवार्जवादयो गुणाः स्चिताः । ततस्य चमादिगुणोपलिचत्यत्रप्रधान !। प्रनेन वन्दनार्हलं तस्यैव स्चितम्, किं कर्तः विन्दितं नमस्कर्तः भवन्तमिति गम्यतं, कया, यापनीयया नेषेधिका, प्रत नैषेधिकोति विशेष्णं, यापनीययिति विशेषणम्,

⁽१) चतवा।

'विधू गत्याम्' इत्यस्य निपूर्वस्य चित्र निवेधः प्राचातिपातादि-निवृत्तिः स प्रयोजनमस्या नैविधिकी तनुः, तया कीट्टग्या, यापनीयया 'यांक प्रापणे' पस्य णिगन्तस्य व्यागमे यापयतीति यापनीया प्रवचनीयादिलात् कर्तर्यनीयः तया, प्रक्रिसमन्बितया इत्यर्थः। प्रयं समुदायार्थः । हे त्रमणगुणयुत्तः ! प्रहं गतितसमन्वित-गरीर: प्रतिविद्यपापिक्रयस त्वां वन्दित्मिच्छामि। प्रत विश्वाम:। पत चान्तरे गुर्व्यदि व्याचिपवाधायुक्तस्तदा भणति प्रतीचखेति। तच बाधादिकारणं यदि कथनयोग्यं भवति तदा कथयति प्रन्यथा तु निति चूर्षिकारमतम्, हत्तिकारस्य तु मतं विविधेनिति भवति सनमा वचमा कारीन प्रतिविद्योदसीलर्थः । ततः शिष्यः संवेपवन्दनं करोति। व्याचेपादिरिहतसे हुतः तदा वन्दनमनु जातुकामः इन्दे-निति वदति छन्देनाऽभिप्रायेष ममाऽपि एतदभिष्रतमित्यर्थः । ततो विनेयोऽवयहाद् बहिःस्थित एवैवमाह प्रमुजानीत प्रमुमन्यध्यं मे इति पालनिर्देशे, किं, मितवासाववयहव मितावयहः, इहा-चार्यस्य चतस्रषु दिच् पालपमाणं चेत्रमवग्रहः, तस्मिवाचार्या-**अनुभा विना प्रविष्टं न कस्पते,**

यदा ह ---

ं पायणमाणमित्तो च उहिसं छोद्र प्रवगछो गुरुणी। जणाणुचायस्य सयान कप्पए तस्य पविसेचं॥१॥

⁽१) स्रातंप्रमासमात्रस्तिर्देशं भवत्ववयः हो गुरोः। स्वनत्तत्तातस्य सदा न कत्वते तत्र प्रवेष्टुम्॥१॥

ततो गुरुभेणति - पतुजानामि । ततः शिष्यो भवं प्रसुच्य नैषेधिकीं कुर्वन् गुर्ववयहे प्रविश्वति । निसीक्षीति निषिद्वसर्वाग्र-भव्यापारः सन् प्रविशाम्यहमित्यर्थः । ततः संदंशप्रमार्जनपूर्वेक-मुपविश्वति। गुक्पादान्तिकं च भूमी निधाय रजो इरणं तमाध्ये च गुरुचर वयुगलं संख्याय मुखवस्त्रिकया वामक की दारभ्य वाम-इस्तेन दिवापकर्णे यावसलाटमिविच्छत्रं च वामं जातु ति:१ प्रसुच्य मुखविस्निकां वामजानूपरि स्थापयति। ततोऽकारी-चारणसमकालं रजीचरणं कराभ्यां संस्प्रय चीकारीचारण-समकालं ललाटं स्थाति। ततः काकारीचारणसमकालं रजी-इरणं सृष्टा यंकारोचारणसमकालं ललाटं सृगति। पुनस काकारीचारणसमकालं रज़ीहरणं स्ट्रश यकारीचारणसम-कालं लनाटं स्पृगित। ततः संफासमिति वदन् शिरसा पाणिभ्यां च रजोहरणं सुधित। ततः धिरसि बदाञ्जलिः 'खम-णिका भे किलामी' इत्यारभ्य 'दिवसी वदकंती' यावट गुरुमुखे निविष्टदृष्टिः पठित । प्रथस्तात् कायोऽधःकायः पादलचणस्तं प्रति कायेन निजदेहेन इस्तललाटलच्चेन संस्पर्ध पामर्थस्तं 'करोमि' इति गर्यते । एतद्धि ममानुजानीध्वमित्यनेन योगः । भावार्यसन्तुकार्य हिन्संसाभी न कार्यः। ततो विक्त-खम-णिच्चो चमणीयः भीक्ष्यः, मे भविकः, विकामी क्रमः संसामे सित देहरला निक्पः। तथा, प्रपाकिलंताची प्रत्यं स्तोकं क्वान्तं क्वमी

⁽१) च हिलः पर्चिचीकला प्रस्टका।

येवां तेऽल्यक्कान्तास्तेवामत्ववदनान। मित्यर्थः, वहुमुभेष वहु च तच्छुभं च वहुग्रभं तेन वहुमुखेनित्यर्थः, भे भवताम्, दिवसो वद्व-कांतो दिवसो त्यातिकान्तः। भन दिवसग्रहणं रात्रिपचादी-नामुपलच्चणं द्रष्टव्यम्। एवं योजितकरसंपुटं गुरोः प्रतिवचन-मौचमाणं शिष्यं प्रत्याह गुदः—'तह ति' तथित प्रतिश्ववणे, पत्र तथाकारः यथा भवान् ब्रवीति तथित्यर्थः। एवं तावदाचार्यगरीर-वार्ता एष्टा। भय तपो नियमविषयां वार्ता एच्छ्वाह—जत्ता भे, 'ज' दत्यमुदात्तस्वरेषोचारयन् रजोहरणं कराभ्यां स्पृष्टा रजोहरण-लताटयोदन्तरास्व 'त्ता' दति स्वरितेन स्वरेषोचार्यं, उदात्तस्वरेष 'भे' दत्युचारयन् गुदमुखनिविष्टहिष्टं साटं स्पृगितं, याचा संयम-तपोनियमादिलच्चा चायिकचायोपश्रमिकीपश्रमिकभावलचणा वा भे भवताम् 'चक्षपंति' दति गम्यते। भवान्तरे गुरोः प्रति-वचनम् 'तुरभं पि वहद्द' मम तावदुक्षपंति, भवतोऽप्युक्षपंति।

षधुना नियम्बणीयपदाधैविषयां वार्ताः एच्छन् पुनरप्याष्ठ विनेयः—जविष्णं च भे, 'ज' इत्यनुदासस्वरेण रजोष्ठरणं स्पृष्टा 'व' इति स्वरितस्वरेण रजोष्ठरणनलाटयोरन्तराले चचार्य णिशम्द-सुदासम्बरेणोचारयन् कराभ्यां सलाटं स्पृशित, न पुनः प्रतिवचनं प्रतीचते, पर्धसमाप्तत्वात् प्रश्रस्य; ततो 'क्लं' इत्यनुदासस्वरेणो-चार्य कराभ्यां रजोष्ठरचं स्पृशन् पुनरेव रजोष्ठरणललाटान्तराले 'च' इति स्वरितस्वरेणोचार्यं भें इत्युदासस्वरेणोचारयन् कराभ्यां सलाटं स्पृष्टा प्रतिवचनं शुश्रम् प्रस्वावास्ते ; जविष्टकं च यापनीयमिन्द्रियनोदन्द्रियोपशमादिना प्रकारेणावाधितं च भे भवतां 'गरीरम्' इति गम्यम्। एवं परया भक्त्या प्रच्छता विनेयेन विनय: क्रतो भवति। भवान्तरे गुक्राइ-एवं भाम यापनीयं च मे इत्यर्धः। इदानीमपराधचामणां क्वेन् रजोश्रणोपरि-न्यसहस्तमस्तको विनेय इदम।इ-'खामीम खमासमणो ! देव-सियं वर्कमं चमयामि चमात्रमण ! दिवसे भवी दैवसिकस्तं व्यतिक्रममदायकरणीययोगविराधनारूपमपराधन्। प्रवानारे च गुर्वदित — 'चह्मवि खामेमि' चह्मपि चमयामि दैवसिकं खं व्यतिक्रमं प्रमादोद्ववम्। ततो विनेयः प्रचमन् चमियला 'पावसिपाए' इत्यादि जो मे पर्पारी कपी' इत्यन्तं खकीया-तिचारनिवेटनपरमासोचन।ईप।यश्विससूचवं सूत्रं 'तस खमा-समचो पडिक्रमामिं इत्यादिकं च प्रतिक्रमचाईप्रायिक्ताभि-धायकं पुनरकरपेनाभ्युखित चाकानं शोधियचामीति बुद्या-ऽवयद्वाद् नि.स्रत्य पठित,—प्रवश्यं कर्तेश्येषु चरणकरणेषु भवा क्रिया भावश्यकी तथा भावेवनाहारेण हेतुभूतथा यदसाध्वनुष्ठितं तस्मात् प्रतिक्रमामि निवर्ते ; दूर्यं सामान्येना-भिधाय विशेषेणाभिधत्ते—ज्ञमात्रमणानां संबन्धिन्या दैवसिक्या ज्ञानाद्यायस्य प्रातमा खण्डमा प्राप्तातमा तया, किंविप्रिष्टया, चयस्त्रिं घटन्यतस्या वयस्त्रिं श्रत्नां स्थानामा श्रातनानामन्यतस्या कयाचित्, उपनन्नचलाद् हाभ्यां तिस्रभिरिष्,्यतो दिवसमध्ये सर्वी प्रिय संभवित ; तास वक्ताने ; यत् कि चित् क दालस्वन-मात्रिय मिय्यया मियायुक्तेन क्रमयेत्यर्थ:; मियाभावीऽत्रा-सीत्यभादिलादकारे मिष्या, एवं क्रोधयेत्यादाविष ; मनसा

दुष्मृता मनीदुष्मृता तया प्रदेवनिमित्तयेत्वर्यः ; वाग्दुष्मृतया भसभ्यपद्वादिवचननिमित्तया, कायदुष्कृतया भासन-गमन-खानादिनिमित्तया, क्रीधया क्रीधयुक्तया, मानया मानयुक्तया, मायया मायायुक्तया, सीभया सीभयुक्तया; पर्य भाव:-क्रीधा-द्यतगतेन या काविद विनयभंगादिसच्चाऽऽगातना कता तयेति। एवं दैवसिकाशातनोत्ता। पश्चना पच-चतुर्मास-संवक्षरकालकता इडभवान्यभवगतातीतानागतकालकता च या पागातना तस्याः संग्रहाधैमाइ—'सव्यकालियाए' मर्देकालेषु भवा सार्वका लिकी तया। पनागतकाले कथमा शातना संभव: १ इति चेत्। उचते,—'म्बोऽस्य गुरोरिदमिदं वानिष्टं कार्तास्मि' इति चिन्तया। इत्यं भवान्तरेऽपि तद्वधादिनिदानकरणेन संभवत्येव । सर्व एव मिष्योपचारा माख्यानगर्भाक्रियाविशेषा यस्यां मा सर्वेभिष्योपचारा तथा। सर्वे धर्मा पष्टी प्रवचनमातरः सामान्धेन करणीयश्यापारा वा तेवामतिक्रमणं सङ्गनं विराधनं यस्यां सा सर्वधर्मातिक्रमणा। एवं भूतयाऽऽधातनया यो मया-तिचारोऽपराधः क्रतो विडितस्तस्यातिचारस्टें हे चमात्रमण्। युषासाचितं प्रतिज्ञमामि चपुनः करणेन निवतं ; तथा, दुष्टकम-कारियं निन्दास्यातानं भवीडिग्नेन प्रशान्तेन चेतसा; तथा, गर्ह पालानं दुष्टकर्मकारिणं युपासाचिकम्; व्युलृजाग्यालानं दृष्टकर्मकारिषं तदनुमतित्याग्रीन। एवं तत्रस्य एवाधीवनतकायः पुनरेवं भणति—'इच्छामि खमासमणी' इत्यारभ्य यावद् 'वीसि-्रामि' इति : परमयं विश्वेष:—भवग्रहाट् बहिर्निष्णमस्रहित भावश्यकीविरहितं दश्ककस्त्रं पठित । वन्दनकविधिविशेष-संवादिकासिमा गाथा:—

'मायारसा च सूलं विषमो सो गुणवमो म पडिवत्ती।
सा म विश्विदंशामो विश्वी हमी बारसावत्ती॥१॥
हो उमहाजामो विश्वं संखासं पमळ चकुहुम्रट्ठाणो।
पि लेशियमुष्टपत्तीपमिळामोविरमदेश्वो॥२॥
चट्ठेचं परिसंठिमकुप्परट्ठिभपदृगीनिममकामो।
स्वतिपिश्वपच्छदो पवयणकुच्छा जह न होई॥३॥
वामगुलिमुष्टपोत्तीकरस्मानतस्य जत्तरयहरणो।
मविषय जहोत्तदोसं गुबसंमुष्टं भणद पयडमिणं॥४॥
दच्छामि खमासमणो दचाई जा निसीष्टियाए ति।
हांदेगं ति सुणेचं गुबवयणं चमाइं जाए॥ ॥॥

⁽१) सावारस्य स् मूर्वं विनयः स गुख्यन्य प्रतिपत्तिः।
सा च विधिवन्द्नाद् विधिर्वं द्वाद्यावर्तः॥।॥
भूता यथानातो विष्टः संदर्यं प्रस्टन्योत्कुटुनस्थानः।
प्रतिकिखितस्खनस्थिनस्याप्रमानितोषरिषदेशार्थः॥२॥
छत्वाय प्रतिसंस्थितकूर्षरस्थितपृक्षावनतकायः।
दुक्तिपिष्टतप्यार्थः प्रवचनकृत्या यथा न भवति ॥२॥
वामानुनिस्खनस्तिकातस्य मुग्तस्तिस्थ्यस्तुक्तरनोष्ट्रसः।
स्वपनीय वयोक्तदोषं गुद्रसंस्थं भण्ति प्रकटिसद्म् ॥॥॥
दुःस्थामि स्वमात्रम्य ! द्रस्थादि यायद् नैषेधिक्येति।
सन्देनेति सुत्वा गुद्रवचनमन्दर्भं याति ॥५॥

'मणुजाणह में मिलगहमणुजाणामि ति भाषिए गुक्णा।
लगह खेलं पविसर पमका संडासए निमिए ॥ ६ ॥
वामद सं रयहरणं पमका भूमीए संठवेलाण।
सीसपुत्र चेण हो ही ककां ति तभी पठममेव ॥ ० ॥
वामकरगिहणपोत्ती एगहेसेण वामकाणी।
पारंभिजाण णिडालं पमका जा दाहिणो काणी॥ ८ ॥
पान्यु च्छितं वामयजाणुं निस्ताण तस्य सृहपोत्तिं।
रयहरणमञ्भदेसीचा ठावए पुक्रपायजुगं॥ ८ ॥
सुपसारिमवाहुजुभी जक्लु भलंतरं भपुसमाणो।
जमलट्ठिभगापाणी भकारसृजारयं पुसर ॥ १० ॥
पान्युं स्वर्ण स्वर्ण स्वर्ण सेसपुत्र चेतं।
तो करजुमलं निक्का होकारोचारसमकालं॥ ११ ॥

⁽१) चतुवानीश्रं मे मितायपहमसुवानामीति भाषिते गुद्या।
चयपहचेनं प्रविधित प्रसच्छ संदंधं निर्धादेत् ॥६॥
वामदर्थं एकोष्टरचं प्रसच्छ सूनी संस्थाय।
किरःस्वर्धनेन भविष्यति कार्यमिति ततः प्रवस्ति ॥७॥
वामकरस्वद्भीतसुखयस्तिक एकदेशेन वामकर्षात्।
च्यारस्य बनाटं प्रसच्छ बायद् दिवयः वर्षः ॥८॥
च्यापुच्छवं वामकलातु च्यात्म स्वव्यव्यक्तिमान्।
रकोष्टरचमध्यदेशे स्वापनेत् पूच्छपादयुनम् ॥८॥
च्यापारितवास्त्रम् जयदुनचान्तरमञ्ज्यन्।
बमकस्थितायपाणिरकारसञ्चायन् स्वृथति ॥०॥
च्यान्तरपरिवर्षितकरतवस्त्रभीव विरःस्वर्धनानम्।
ततः करदुनवं नवेद् कोषारोज्ञारस्यकायम् ॥११॥

'पुण हेट्ठा सुइकरयल काकारसमं ठिक्कि रयहरणं।

यंसहेणं समयं पुणी वि सीसं तहचेष ॥ १२ ॥

काकारसमुद्रारणसमयं रयहरणमालुहेजण।

य त्ति य सहेण समं पुणी वि सीसं तहचेष ॥ १३ ॥

संफासं ति भणंतो सीसेणं पणमिजण रयहरणे।

उन्नामिषमुहंजिल घव्याबाहं तथी पुच्छे ॥ १४ ॥

खमिण्ठो भे किलामी घप्यकिलंताणं बहुसुभेणं भे।

दिण पक्खो विस्ती वा वहसंती ह्य तथी तुसिणी ॥ १५ ॥

गुक्णा तह त्ति भणिए जत्ता जवणा य पुच्छियव्या य।

परिसंठिएण इणमी सराण जोएण कायव्यं ॥ १६ ॥

तत्य य परिभासेमी मंदमहविषेषगाहणट्ठाए।

नीउच्चमउभसाषी सरजुक्तीषी ठवियव्या ॥ १० ॥

EX

⁽१) पुनर्धसाद् स्यक्तरतसं काकारममं स्यापनेद् रकोइरणम्।
वंगळ्न समकं पुनर्पि गिरस्तचैन ॥१४॥
वाकारसस्वारणसमकं रकोइरणमास्तिष्य।
व इति च गळ्न समं पुनर्पि गिरस्तचैन ॥१६॥
संमार्थ इति भण्नृ गिरसा प्रच्या रकोइरणे।
स्वानितमूर्थाञ्चिकरव्यावाधां ततः प्रच्छेत् ॥१८॥
सम्बीनो भवद्भिः कामो ज्यक्तानानां बस्तगुभेन भवताम्।
दिनं पणो वर्षं वा व्यतिकान्तमिति ततस्तृष्योकः ॥१५॥
गुरुणा तस्ति भिष्तते वाला वापना च प्रस्था च।
परिसंस्थितेनेदं सराणां वोगेन कर्तव्यम् ॥१६॥
तल च परिभाषाम् सन्दमतिविनेवदाइषार्थम्।
नीचीव्रमस्तमाः सर्युक्तवः स्थापित्वस्थाः ॥१०॥

'नी घो तत्यगुदत्तो रयहरणे उच घो उदत्ती उ।
सी वे निदंसणी घो तदंतराल स्मि सिर घो य ॥ १८ ॥
घणुदत्तो च जकारो त्ता सिर घो हो इ से उदत्तसरी।
पुणरिव जवणिसहा च नुदत्ता ई सुणे घळा ॥ १८ ॥
छां चणुदत्तो च पुणो च सारि घो से उदत्तसरणा सो।
एवं रयहरणा इस तिस हाणे सुंसरा खेया ॥ २० ॥
पढ सं पावत्तति गं वसदुगे णं तु र इय सणुक ससी।
बीयावत्ताण ति गं ति हि ति हिं वसे हि निप् फ वं ॥ २१ ॥
रयहरण स्मि जकारं त्ताकारं कर जुएण स उस स्मि।
सेकारं सी सिमा च का उंगुक्णो वयं सणस्मा ॥ २२ ॥
तुब्सं वि वह इ त्ति य गुक्णा सणि प्रस्मि से स घावत्ता।
दुस्मि वि का उंतु सिणी जा गुक्णा स णि प्रसि ति ॥ २३॥

(१) नीषस्त्रातुरासो रजोडरणे छन्नक छरासस्तु।

शीर्षे निर्धानीयसहन्नराखे स्वरित्य ॥१८॥

खतुरास्य जकारः सा स्वरितो भवति भे छरासस्यरः।

पुनर्राप जविषयद्धा खतुरासाहयो सातव्याः ॥१८॥

क्वां खतुरास्त्र पुनच स्वरितो भे छरासस्वरनामः।

एवं रजोडरणादिषु तिषु स्थानेषु स्वरा स्रोवाः ॥२०॥

प्रथमसावर्ततिकं वर्षोदिकेन तु रिचतमत्तकमयः।

हितीयावर्तानां तिकं तिभिस्तिभिवेर्षेनिष्यसम् ॥२१॥

रजोडरणे जकारं साकारं कर्युगेण मध्ये।

भेकार शिरसि च कत्वा गुरोवंचः प्रस्णु ॥२१॥

तवाणि वर्तत इति च गुरुणा भिष्यते भेषावर्ती।

हावणि कत्वा द्वाणोको यावद गुरुषा भिष्तनीवनिति ॥२१॥

ंभइ सीसी रयहरणे कयंजली भणइ सविणयं सिरसा।
खामीम खमासमणी! देवसिमाइवइक्कमणं ॥२४॥
महमवि खामीम तुमे गुरुणाऽणुखाए खामणे सीसो।
निक्खमइ उमाहाभो मावसियाए भणेजण ॥२५॥
भोणयदेहो मवराइखामणं सव्यमुचरेजण।
निंदियगरहिमवोसहसव्यदोसो पिडकंतो ॥२६॥
खामिसा विणएणं तिगुस्तो तेण पुणरवि तहेम।
उमाहजायणपविसणदुमोणयं दो पवेसं च ॥२०॥
पठमे क्षमावसा बीयपवेसिमा हंति क्षमेव।
ते म भहो इचाई भमंकरेणं पउस्तव्या ॥२८॥
पठमपवेसे सिरनामणं दुष्टा बीमए म तह चेव।
तेणेम वर्डसिरंतं भिण्यमिणं एगनिक्समणं॥२८॥

⁽१) व्यव शिष्यो रजोडरणे कताञ्चिक्तिणित स्विनयं शिरसः।

व्यन्यामि चन। व्यन्य ! दैवसिका हिव्यितिक्रमण्यम् ॥ १८॥

व्यडमीय चनयामि त्यां गुरुणा । तृत्ताते चनणे शिष्यः ।

निक्तामत्यवप्रदाराव्यक्या भिष्यता ॥ १५॥

व्यवनतदेषोऽपराभचमणं सर्वस्थायं ।

निन्दितगण्डितव्यत्यृष्टसर्वदोषः प्रतिक्रान्तः ॥ १६॥

व्यववित्या विनवेन त्रिगुप्तस्तेन पुनर्पितचेत्र ।

व्यवप्रवाचनप्रवेशनिक्तावनतं ह्योः प्रवेशं च ॥ २०॥

प्रचमे पद्धावती हितीयप्रवेशे भवन्ति प्रदेशं च ॥ १८॥

प्रचमप्रवेशे स्थादयोऽसंकरेण प्रयोक्तिष्याः ॥ १८॥

प्रचमप्रवेशे शिरोन। मनं हिधा हितीयके च तथेव ।

तैनैव व्यत्युकास्यनं भिष्यतिमद्भिक्तिक्रमण्यम् ॥ १८॥

^१एवमद्वाजाएगं तिगुत्तिसहिषं च दुंति चत्तारि । वेवेमुं खित्तेमुं पचवीमावस्त्रया दुंति ॥२०॥

'तित्तीसचयराए' दत्युक्तमिति, व्रयक्तिंगदागातना विवेचनी— गुरी: पुरती गमनं शिषस्य निष्कारणं विनयभक्कदेतुत्वादाशातना, मार्गदर्शनादिकारणे तु न दोष:, गुरी: पार्ष्काभ्यामपि गमनम्, पष्ठतोऽप्यासवगमनम् नि:म्बासच्चतक्षेत्रपातादिदीवप्रसङ्गात् ; ततय यावता भूभागेन गच्छत पाशातना न भवति तावता गन्तव्यम्।१।२।३। एवं पुरतः, पार्श्वतः, पृष्ठतय स्थानम्। ৪। খার্। तथा, पुरत: पार्क्त: पृष्ठतो वा निषदनम्। ৩। ১। ১। पाचार्येष सहीचारभूमिं गतस्याचार्यात् प्रथममेवाचमनम् ।१०। गुरोरासापनीयस्य कस्यचिच्छिषेष प्रथममासपनम् ।११। प्रिथ-स्याचार्येष सम्र बिर्शितस्य पुनिनेहत्तस्याचार्योत् प्रयमभेव गमना-गमनालोचनम्। १२। भिचामानीय शिष्येष गुरी: पूर्वे ग्रैचस्य कस्यचित् पुरत पालीच पषाद् गुरोरालीचनम्। १३। भिचा-मानीय प्रथमं गैचस्य कस्यचिद्पदर्भ गुरीदेशैनम्। १४। भिचामानीय गुरुमनाएच्छा ग्रेचाणां ययादचि प्रभूतभैचादानम् ।१५। भिचामानीय ग्रैचं कचन निमन्त्रा पदाद गुरोदपनिम-न्त्रचम्।१६। शिष्येष भिचामानीयाचार्याय यत् किश्वद् दत्ता सिन्धमधुरमनोज्ञाद्वारशाकादीनां वर्षगन्धरसस्पर्धवतां

⁽१) एवं वयाजातेकं तिग्रप्तियक्तिं य भवन्ति पत्वारि । ग्रेमेषु केलेषु पश्चविंयतिरावस्त्रकाः भवन्ति ॥१०॥

द्रव्याणां खयसुपभीगः ।१९। रात्री 'पार्याः ! कः खपिति जागर्ति वा ?' इति गुरी: पृच्छतोऽपि जायताऽपि शिष्येणाप्रतिश्रवणम् । १८। श्रेषकालेऽपि गुरौ व्याइरित यतः तत्र स्थितेन शयितंन वा शिष्येण प्रतिवचनदानम्। १८। प्राह्नतेनासनं गयनं वा त्यक्का संनिष्टितीभूय 'मस्तकेन वन्हे' इति वदता गुक्वचनं योतव्यम्, तदक्वेत पात्रातना । २० । गुरुषा पाइतस्य शिषस्य किमिति वचनम्, भणितव्यं च मस्तकेन वन्दे इति। २१। गुरुं प्रति ग्रिष्यस्य त्वंकारः । २२ । गुक्षा म्बानादिवैयाहस्यादिहेतोः 'इदं क्व' इत्यादिष्टः 'लमेव किंन कुक्वे' इति 'लमससः' इत्युक्ते 'त्वभव्यनसः' इति च शिष्यस्य तजातवचनम् । २३। गुरी: पुरतो बहो: कर्कग्रस्थोचै:खरस्य च ग्रिष्येण वदनम्। २४। गुरी क्यां कथयति 'एवमेतत्' इत्यन्तराले शिष्यस्य वचनम् । २५ । गुरौ धर्मकयां कथयति 'न सारसि त्वमेतमधैम्, नायमधैः संभवति' इति शिष्यस्य वचनम्। २६। गुरी धर्मे कथयति सीमनस्य-रिंतर्य गुरुत्तमननुमीदमानस्य 'साधृत्तं भवितः' इत्यप्रशंसतः शिष्यस्योपहतमनस्त्वम्। २०। गुरी धर्मं कथयति 'इयं भिन्ना-. वेला सुत्रपौरुषीवेला, भोजनवेला' रत्यादिना शिष्येण पर्धक्रेद-नम । २८ | गुरी धर्मकवां कथयति 'मइं कथयिषामि' इति शिष्येण कथाच्छेदनम्। २८। तथा, त्राचार्येण धर्मकथायां क्रतायामनुत्यितायामेव पर्षदि खस्य पाटवादिन्नापनाय शिष्येण मविशेषं धर्मकथनम्। ३०। गुरी: पुरत उचासने समासने वा शिष्यस्रोपवेशनम् । ३१। गुरो: श्रयासंस्तारकादिकस्य पादेन

घटनम्, पननुषाय इस्तेन वा सार्थनम्, घटयिता सम्हा वाऽचा-मणम्; यदाइ,—

'संघद्दत्ता कायेण तहा उवहिषामित ।
खमेह भवराहं में वहळ न पुण ति म ॥१॥ ३२ ।
गुरी: श्रय्यासंस्तारकादी स्थानं निषदनं श्रयनं चेति ।३३।
एतदर्थसंवादिन्यो गाथा: —

'पुरमो पक्खास के गमणं ठाणं निसी मणं ति नव।
से हे पुष्यं पाइम इ पालव इ तह य पालीए ॥१॥
पस्या इपमा लोइ प पडिटंस इ देई उवनिमंति इ।
से हस्य तहा हार इ लुदो नि बाद गुकपुर मो ॥२॥
रामो गुकस्य वयमो तुसिणी सृणिरो वि से सकाले वि।
तस्य गमो वा पडिसुणे इ बेद किंति व तुमं ति गुदं॥३॥

⁽१) संबद्धा कावेन तथोपधीनामित । कामसापराधं में बहेडु न पुनरिति च ॥१॥

⁽२) प्रतः पञ्चावद्ये गमनं स्थानं निषदनमिति नव।

शैचे पूर्वमाचमित व्यावपति तथा चाकोचवित ॥१॥
व्यावादिकमानोच्या प्रतिदर्धवित दहास्तुपनिमन्त्रवित।
शैचस्य तथाइरति बुन्धः स्मिग्धादि गुरुप्रतः ॥१॥

रात्नौ गुरोर्बदतस्तृष्णीं चोताऽपि शेषकाचेऽपि।

तत्न गतो वा प्रतिस्त्योति नशेति विमिति वा स्वमिष गुरुम्॥१॥

'तळ्जाएणं पिंडिसणइ बेद बहु तह कहंतरे वयद । एविममं ति न सरिस नी सुमणे भिंददे पिरसं ॥४॥ हिंदद कहं तहाण्डियाद पिरसाद कहद सविसेसं। गुरुपुरणो विनिसीयद ठाइ समुचासणे सेहो ॥५॥ संघटद पाएणं सेळ्जासंयारयं गुरुसा तहा। तस्येव ठाइ निसियद सुग्रद ग्रवसेहोत्ति तेसीसं॥६॥

दह यद्यपि यितरिव वन्दनककर्तिको न त्रावकः, तथापि यतेः कर्तुभणनात् त्रावकोऽपि कर्त्ता विश्वेयः, प्रायेण यतिकियानु-सारेणैव त्रावकियापृहत्तेः ; त्रूयते च कृष्णवासुदैवेनाष्टादणानां यतिसहस्राणां हादशावतिवन्दनमदायि, इत्याशातना प्राप यत्यनु-सारेण यथासंभवं त्रावकस्य वाच्याः। एवं वन्दनकं दत्त्वाऽवयह-मध्यस्थित एव विनयोऽतिचारालोचनं कर्तुकामः किञ्चिदवनत-कायो गुरं प्रतीदमाह—'इच्छाकारेण संदिसह देवसियं प्रालो-एमि' इति । इच्छाकारेण निजेच्छ्या, संदिशत प्रान्तां ददत, देवसिकं दिवसभवम् 'त्रतीचारम्' इति गम्यम् ; एवं राव्रिकपा-चिकादिकमपि दृष्ट्यम्, प्रालोचयामि मर्यादया सामस्थेन वा प्रकाशयामि । इह च दैवसिकादीनामयं कालिनयमः—यथा

⁽१) तळातेन प्रतिकृत्ति स्वीति बद्ध तथा कथान्तरे यहति।

एवमिद्धिति न क्षर्रास्त नो सीमनस्यं भिनत्ति प्ररिषद्भ् ॥॥॥

क्षिनत्ति कथां तथासुत्यितायां परिषद्धि कथयति सविशेषम्।

गुक्पुरतो विनिषीहति तिष्ठति समोञ्जासने ग्रेकः॥॥॥

संबद्ध्यति पादेन ग्रव्यासंस्तारकं गुरोक्षया।

तत्नैव तिष्ठति निषीहति येतेऽपयेक इति त्याक्ष्मंग्रु॥॥॥

देविसकं मध्याक्रादारभ्य निगीयं यावद् भवित, राविकं निगीयादारभ्य मध्याक्रं यावद् भवित, पाचिकचातुर्मासिकसांवस्तरिकाचि पचाद्यन्ते भविता। भनानारे 'भालोभक्ष' इति गुक्वचनमाकष्णे एतदेव शिष्यः समध्यवाद्य—'इच्छं भालोएमि' इच्छाग्यभ्युपगच्छामि गुक्वचः, भालोचयामि पूर्वग्भ्युपगतमधं क्रियया
प्रकाशयामौति। इत्यं प्रस्तावनामभिधायालोचनामेव साचाल्कारेचाइ—'जो मे देवसिभो भद्रभारो कभो काद्रभी वाद्रभो माचसिभी उद्युक्तो उद्यागो भक्षपो भक्षरियालो दुल्भाभो दुव्विचितिभो भवायारो भिष्विद्यव्यो भनावगपाउमो नाणे दंसचे
चिरत्ताचिरत्ते सुए सामाद्य तिषदं गुक्तीषं चडवदं कसायाणं
पंचवदमबुव्ययाणं तिच्हं गुक्वयाणं चडवदं सिक्खावयाणं
वारसिवहस्त सावगधमस्त जं खंडिभं जं विराहिणं तस्त्र
मिच्छामि दुक्कडं'।

व्याख्या — यो मया दिवसे भवी दैवसिकोऽतिचारोऽतिक्रमः कती निवितितः, स पुनरतिचार ज्याधिमेदेनानेकधा भवित, प्रत एवाइ — 'काइपी' कायः प्रयोजनं प्रयोजकोऽस्थातिचारस्थिति कायिकः, एवं वाइपी वाक् प्रयोजनमस्य वाचिकः, एवं मनः प्रयोजनमस्य ताचिकः, एवं मनः प्रयोजनमस्येति मानस्वितः, उस्पृत्तो स्वाटुल्वान्त उस्पृतः स्वमति-क्रम्य कत इत्यर्थः, उद्यागी मार्गः चायोपप्रमिको भावस्तमित-क्रान्त उद्यागः चायोपप्रमिकभावस्वागिनौद्यिकभावसंक्रमः क्रत इत्यर्थः, प्रकप्पो कस्पो न्यायो विधिराचारस्यक्तरस्थापार इति यावत्, न कस्पोऽकस्पोऽतद्र्य इत्यर्थः, करकीयः सामान्येन

कर्त्तव्यः, न करचीयोऽकरणीयः, हेतुहेतुमझावसात्र यत एवीसूत्रो ऽत एवीसामें इत्यादि, उन्नस्तावत् कायिकी वाचिकय । पश्चना मानसिकमाइ-दुन्भामी दृष्टी धाती दुर्धात एकायचित्त-तयाऽऽर्तरीष्ट्रसचापः, दुव्विचिंतिघो दुष्टो विचिन्तितो दुर्विचिन्तितः, पश्चभ एव चलचित्ततया 'जं थिरमज्भवसायं तं भागं जं चलं तयं चित्तं रित वचनात्, यत एवे संभूतस्तत एव प्रणायारी षाचरणीय: त्रावकाणामाचार:, न ग्राचारीऽनाचार:, यत एवाना-चरणीयोऽत एव प्रणिच्छियव्यो पनेष्टव्यः मनागपि मनसापि न एष्टच्य पास्तां तावत् वार्तव्यः, यत एवेत्यंभूतोऽत एव प्रशावग-पाउगो पत्रावकप्रायोग्यः - प्रभ्यपेतसम्बद्धाः प्रतिपद्मागुव्रतस् प्रतिदिवसं यतिभ्यः सकाशात् साधूनामगारिणां च सामाचारीं श्वाेतीति त्रावकस्तस्य प्रायोग्य उचितः त्रावकप्रायोग्यः, न तथा, यावकातुचित इत्यर्थः। प्रयं चातिचारः क विषये भवतीत्याइ--'गापे दंसणे चरित्ताचरित्ते' इति, ज्ञानविषये, दर्शनविषये, स्यूल-सावद्ययोगनिवृत्तिभावाद्यारितं च सुद्धासावद्ययोगनिवृत्त्यभावाद्या-रितं च चारित्राचारित्रं तिसान् देशविरितिविषये दत्यर्थः। प्रधुना भेदेन व्याचष्टे—सुए श्रुतविषये, श्रुतग्रहणं मत्य।दिश्वानोपस्रचणम्, विपरीतप्रकृपणा, भकालस्वाध्यायसातिचारः, सामाद्रए सामायिकविषये, सामायिकग्रहणात् सम्यक्कसामायिकदेश-विरतिसामायिकयोर्प्रचम्। तत्र सम्यक्कसामायिकातिचारः शक्वादि:। देशविरतिसामायिकातिचारं तु भेदेनाइ-तिगई

⁽१) यत् स्थिरमध्यवसानं तद् ध्यानं यत्रसं तित्रसम्।

गुत्तीणं तिस्णां गुप्तीनां 'यत् खण्डितम्' द्रायादिना सर्वेष योगः,
मनोवाक्कायगोपनात्मिकास्तिस्तो गुप्तयो व्याख्याताः, तासां
चात्रद्वानिवपरीतप्रकृपणाभ्यां खण्डना विराधना च, चतुर्णां क्रोधमानमायालोभलचणानां कवायाणां प्रतिविद्यानां कर्षनात्रद्वानविपरीतप्रकृपणाभ्यां च; पञ्चानामण्डततानां स्रयाणां गुणस्रतानां
चतुर्णां ग्रिचास्ततानामुक्तस्कृपाणाम्, प्रणुस्ततिद्विज्ञनेन
द्वाद्यविषस्य त्रावक्षभस्य यत् खण्डितं देशतो भन्नम्, यद्
विराधितं स्तरां भन्नं न पुनरेकान्ततोऽभावमापादितम्, तस्य
मिच्छा मि दुक्कणं तस्य दैविषकाद्यतिचारस्य ज्ञानादिगोचरस्य,
तथा गुप्तीनां, कवायाणां द्वादणविधत्रावक्षभस्य च यत् खण्डनं
विराधनं चातिचारकृपं तस्य मिस्यिति प्रतिक्रमामि दुष्कृतमितदकर्तव्यमिदं ममेत्यर्थः।

षतानारे विनेय: पुनरप्यधीवनतकाय: प्रवर्धमानसंविगो
मायामदिवप्रमुत्त पाल्मन: सर्वातिचारविश्वहाधे स्त्रमिदं पठित'सव्यस्न वि देवसिय दुर्श्वितिय दुग्भासिय दुर्श्विष्ठिय इच्छाकारेष
संदिस ।' सर्वाष्यपि त्रुप्तपष्ठीभानि पदानि । ततोऽयमधै:—
सर्वस्मापि दैवसिकस्याणुत्रतादिविषये प्रतिषिद्वाचरणादिना जातस्वातिचारस्रेति गम्यते ; पुन: कौष्टमस्य, दुर्श्विन्ततस्य दुष्टमार्तरौद्रध्वाजतया चिन्तितं यन स तथा तस्य दुशिन्ततोद्ववस्रेत्यर्थः ;
प्रनेन मानसमतीचारमा इ ; दुष्टं सावद्यवायूपं भाषितं यन तत्
तथा तस्य दुर्भाषितोत्पन्नस्रोत्यर्थः, प्रनेन वाचिकं स्चयित ; दुष्टं
प्रतिषिद्धं धावनवन्नाचादिकायिक्रयाक्रपं चेष्टितं यन तत् तथा तस्य

दुयेष्टितोइवस्येत्यर्थः, भनेन काधिकमाहः, भस्यातिचारस्य किमिलाइ - इच्छाकारेण संदिसहिति, पाकीयेच्छया मम प्रति-क्रमणाचां प्रयच्छत, रत्य्चा तृशीको गुरुमुखं प्रेचमाण प्रास्ते। ततो गुरुराइ--'पडिक्सन्द' प्रतिकामत । तत: शिष्य: प्राइ--'इच्छं' इच्छाम्येतद् भगवइचः, तस्र तस्य दैवसिकातिचारस्य मिच्छा मि दुक्कडं मालीयं दुष्कृतं मिथेति नुगुप रूलर्थः। तथा, दितीयच्छन्दनजावयहान्तः स्थित एव विनेयोऽधीवनतकायः स्रापराधचामणां चिकीर्षुर्गुतं प्रतीदमाइ — 'इच्छाकारेण संदि-सह' इति, इच्छाकारेण स्वकीयाभिनाषिण न पुनर्बनाभियोगा-दिना, संदिशत पाचां प्रयच्छत यूयम्। प्राचादानस्यैव विषय-मुपदर्शयत्रिदम। इ-'त्रव्भुहित्रो चिन्ह चिन्नंतरदेवसित्रं खामेिम' ष्रभ्यतितोऽसि प्रारम्बोऽसि षदम्, प्रनेनाभिनाषमात्रस्य व्यपोहेन चमणाक्रियायाः प्रारम्भमाइ—'पिक्मितरदेवसिपं' इति दिवसा-भ्यन्तरसंभवम् प्रतीचारम्' इति गम्यते, चमयामि मर्षयामि, इत्येका वाचना। प्रन्ये लेवं पठिन्त-'इच्छामि खमासमणी प्रविभाष्ट्रियो प्रक्ति प्रविभंतरदेवतिषं खामेलं प्रति, प्रच्छामि मभिलवामि 'चमयितुम्' इति योगः, हे चमात्रमण ! न नेवल-मिच्छामि, किन्तु 'परभृहिषो पन्हि' इत्यादि पूर्व्ववदेव। स्वाभिप्रायं प्रकाश्य तृणीमास्ते यावद् गुकराइ—'स्वामेइ' इति चमयखेलार्थः। ततः स गुरुवचनं बहु मन्यमान प्राष्ट्र—'इच्हं खामीमि' इति, इच्छं इच्छामि भगवदात्राम्, खामीमि चमयामि च स्वापराधम्। प्रनेन चमणिक्रयायाः प्रारक्षमा इ।

विधिवत् पश्चिमिरक्षेः सृष्टधरणीतलो सुखविस्त्रक्षया स्थितिवदन-देश इदमाष्ट—'जं किंचि अपित्तयं परपत्तिषं भन्ने पाणे विषए वियावचे पालावे संलावे उचासणे समासणे पंतरभासाए उविद-भासाए जं किंचि मञ्भ विणयपरिष्ठीणं सुष्टुमं वा बायरं वा तुम्भे जाणक प्रष्टं न याणामि तसा मिल्का मि दुक्क ।

व्याख्या—जं किंचि यत् किचित् सामान्यतो निरवभेषं वा, पपत्तियं पार्वेलादप्रीतिकमप्रीतिमात्रम्, परपत्तिषं प्रक्रष्टम-प्रीतिकं परप्रत्ययं वा परहेतुकम्, उपजचणत्वादस्थामप्रत्ययं चेति द्रष्टव्यम्, युषाद्विषये सम जातं युषाभिवी सम जनितसिति वाकाशेष:, 'तस्र मिच्छा मि' इत्युत्तरेष संबन्ध:। तथा, भत्ते भन्ने भोजनविषये, पापे पानविषये, विषए विनयेऽभ्यत्यानादिक्पे, विषावचे वैयाप्रत्ये वैयाद्वस्ये वा भीवधपयादिनाऽवष्टभाष्क्रपे, पालावे पालापे सक्तव्यक्पे, संलावे संलापे मिय:क्याक्पे, उज्ञासके गुरोरासनादु भैरासने, समासणे गुर्वासनेन तुः श्रे पासने, पंतर-भासाए प्रन्तर्भावायां गुरोर्भाषमाणस्य विचालभावणक्षायाम्, भवरिभासाए चपरिभाषायां गुरोभीषणानन्तरमेव विश्रेषभाषण-क्पायाम् ; एषु भन्नादिषु जं किंचि यत् कि चित् समस्तं सामा-न्यतो वा, मडभ मम, विजयपरिष्ठीणं विनयपरिष्ठीनं शिचावि-युक्तं 'संज्ञातम' इति श्रेष:। विनयपरिज्ञीनस्यैव देविध्यमाञ्च-'सुडुमं वा बायरं वा' सुक्तमस्पप्रायिक्तविशोध्यम्, बादरं बृहत्पायिकत्तविशोध्यम् ; वाशम्दौ इयोरपि मिष्यादुष्कृतविषयत्त-तुष्यतोद्भावनार्थी, तुब्भे जानहिति यूयं जानीय, सकसभाववेदक-

खात्, घइं न याणामि घइं पुनर्न जानामि, मूढलात्; तथा 'यूयं न जानीय प्रच्छवकतलादिना, घइं जानामि, खयं कत-लात्; तथा, यूयं न जानीय, परेण कतलादिना, घइं न जानामि, विद्यरणादिना; तथा, यूयमपि जानीय. घइमपि जानामि, इयो: प्रत्यचलात्' एतदपि द्रष्टव्यम्; तस्स तस्य षष्ठी-सप्तम्योरभेदात् तिस्वप्रीतिकविषये विनयपरिष्ठीणविषये च मिच्छा मि दुक्कडं मिच्या मे दुक्कृतमिति खदुषरितानुपात्तस्य चं खदोषप्रतिपत्तिसूचकं वा प्रतिक्रमणमिति पारिभाषिकं वाक्यं प्रयच्छामौति ग्रेष:; प्रथवा, तस्येति विभक्तिपरिणामात् तद्रगी-तिकं विनयपरिष्ठीनं च मिच्या मोच्यस्य मित्रपरिणामात् तद्रगी-तिकं विनयपरिष्ठीनं च मिच्या मोच्यस्य मितपरिणामात् तद्रगी-तिकं विनयपरिष्ठीनं च मिच्या मोच्यस्य मितपरिणामात् तद्रगी-तिकं विनयपरिष्ठीनं च मिच्या मोच्यस्य मितपरिणामारा चर्मकानितं विवयस्य प्रतिक्रमणे भवत इति क्रला वन्दनकानन्तरं ते व्याख्याते, प्रत्यथा प्रतिक्रमणे तयोरवसर:; वन्दनकस्य च फलं कर्मनिर्जरा, यदाष्टु:—

'वंदणएणं भंते! जीवे किं भक्तिणइ?। गोभमा! मह कम्मपयडीभो निविडवंधणवद्याभी सिटिलवंधणवद्याभी करेइ, चिरकालिटइमाभी भप्पकालिटइमाभी करेइ, तिव्वाणुभावाभी मंदाणुभावाभी करेइ, बहुपएसगाभी भप्पपएसगाभी करेइ, भणाइमं च णं भणवदगं संसारकंतारं नो परिभष्टइ। तथा,—

⁽१) वन्दनकेन भगवन् ! जीवः किमर्जयति ? । गौतम ! स्रष्ट कर्मप्रक्रतीर्निक-स्वन्यनवद्याः शिवनवन्यनवद्याः करोति, विरकासस्यितिका स्रत्यकासस्यितिकाः करोति, तीव्रास्त्रभावा सन्दास्त्रभावाः करोति, वद्यप्रदेशिका स्रत्यप्रदेशिकाः करोति, स्वनादिकं सानकं संवारकान्तारं गो पर्यटति ।

्वंदषएणं भंते! जीवे किं पिळाणदृशा गोत्रमा! वंदणएणं नीयागोत्तकमं खवेद उद्यागोत्तं निबंधद, सोइमां र णं प्रपाडिइयं पाणाफलं निव्यत्तेद्र।

तया,—

रैविष भोवयारमाण स्म भंजणा पूचणा गुकजणस्य ।

तित्ययराण य चाणा सम्मधन्याराष्ट्रणा किरिचा ॥१॥

चय प्रतिक्रमणं—प्रतीत्युपसर्गः प्रतीपे प्रातिकुत्त्ये वा ; क्रमू

पादविषेपे, चस्य प्रतिपूर्वस्य भावान डत्तस्य प्रतीपं क्रमचं प्रति
क्रमणम् ; चयमर्थः—ग्रभयोगिस्योऽग्रभयोगान्तरं क्रान्तस्य ग्रभि
च्वेव क्रमणात् प्रतीपं क्रमणम् ; यदाष्ट,—

ख्यानाद् यत् परस्थानं प्रमादस्य वशाद् गतः ।
तनेव क्रमणं भूयः प्रतिक्रमणमृष्यते ॥१॥
प्रतिक्र्लं वा गमनं प्रतिक्रमणम् ; यदाष्ट,—
चायोपगिमकाद् भावादौदियिकवर्णं गतः ।
तनापि च स एवार्थः प्रतिक्र्लगमात् स्मृतः ॥१॥
प्रति प्रतिक्रमणं वा प्रतिक्रमणम् ; उत्तं च,---प्रति प्रतिक्रमणं वा ग्रमिष्ठ योगेषु मोचपलदेषु ।
निःग्रस्थस्य यतेर्येत् तद् विश्वेयं प्रतिक्रमणम् ॥१॥

⁽१) वन्दनकेन भगवन् ! जीवः किमर्जवति १। गौतम ! वन्दनकेन नीचनोल-कर्म चपवति, चत्रगोलं निवक्षाति, सौभाग्यं वावतिकृतसाचाफ्खं निवर्तविति ।

⁽२) विनवोपचारमानस्य भजना पूजना गुरुजनस्य। तीर्यकरायां चाचा सृतधर्मीराधना जिवा ॥ १॥

तचातीतानागतवर्तमानकालचयविषयम्। नन्धतीतविषयमेव प्रतिक्रमणम्, यत उक्तम्,—"'चद्रयं पिडक्रमामि, पडुप्पनं संव-रेमि, चणागयं पचक्डामि" दति, तत् कयं विकालविषयता १। उच्यते - चच प्रतिक्रमण्यान्दोऽश्वभयोगनिवृक्तिमानार्थः,

> रेमिच्छत्तपाडिकमणं तहेय प्रस्नंजमे पाडिकमणं। कसायाण पाडिकमणं जोगाण य प्रप्पस्याणं॥१॥

ततम निन्दाहारेणाग्रुभयोगनिव्देशिष्यमतीतिवषयं प्रतिक्रमणन्, प्रत्युत्पन्नविषयमपि संवरहारेण' मनागतमपि प्रत्याख्यानहारेणिति न कथिद् दोष:। तच्च दैविसिकादिभेदात् पच्चधा—
दिवसस्यान्ते दैविसिकम्, राचेरन्ते राविकम्, पचस्यान्ते पाचिकम्,
चतुर्णां मासानामन्ते चातुर्मासिकम्, संवक्षरस्थान्ते सांवक्षरिकम्। पुनर्हेधा—ध्रुवम्, मध्रुवं च। ध्रुवं भरतेरावतंषु प्रथमचरमतीर्थकरतीर्थेषु, पपराधो भवतु वा मा वा, चभयकालं प्रतिक्रमणम्। मध्रुवं मध्यमतीर्थकरतीर्थेषु विदेन्नेषु च कारणजाते
प्रतिक्रमणम्; यदान्न,—

'सपिडक्रमणो धन्मो पुरिमस्म य पिच्छमस्म य जिणसा।
मिज्भमयाण जिणाणं कारणजाए पिडक्रमणं॥१॥
प्रतिक्रमणविधिसैताभ्यो गाथाभ्योऽवसेयः,—

⁽१) खतीतं प्रतिक्रमामि प्रत्युत्पद्यं संद्योमि, खनागतं प्रत्यास्थामि ।

⁽२) भिष्यात्वपतिकामयां तथैवाशंयमे प्रतिकामचास् । काषायाचां प्रतिकामयां योगामां चाप्रचलानास् ॥ १॥

⁽६) सप्रतिक्रमचौ धर्मः प्रथमस्य च पित्रमस्य च किनस्य। मध्यमदानां जिनानां कारचे जाते प्रतिक्रमचस् ॥ १॥

'पञ्चितहायारितस्विहिन्दिस् साहू सावगो वावि।
पि क्षमणं सह गुरुणा गुरु विरहे कुण इ इको वि॥ १॥
वंदिन्तु चे इचा इंदानं च नरा इए खमासमणे।
भू निहिम्सिरी सयला इयारिमच्छो के छंदे इ॥ २॥
सामा इच्छा विम्ह कि ता स्था मामिश्वा इं।
सुन्तं भिष्म पलं विम्नभ्य कुण्यर धरियप हिरण्यो ॥ ३॥
घोडगमा इदो से हिं विरहिष्मं तो करे इ न्यमं।
नाहिम हो जा गुरं च नरं गुल ठ विभक्ष डिप हो॥ ४॥
तस्य य धरे इ हिम्म ज हक्षमं दिणक ए मई मारे।
पारे नुमुकारिष पढ इ च न्वी स्थय दं छं॥ ५॥
सं डासगे पम व्या च विषय पलगाविभय वा हु जुमो।
सु इ च तो प इ का यं च विषय पलगाविभय वा हु जुमो।
सु इ च तो च वा यं च पे इ ए पंच वी स इ हा॥ ६॥

⁽१) पश्चिवधाषारिवर्शिक्षं हेतारिक साधः त्रावको वापि ।

प्रतिक्रमणं एक ग्रवणा ग्रवां वरके करोलेकोऽपि ॥ १ ॥

विद्या जैलानि इत्वा चत्रराहिकान् क्षमात्रमणान् ।

भूनिक्रित्रयराः सक्षाति पार्यास्यादुन्तृतं द्द्यात् ॥ २ ॥

सामायिकपूर्वानन्ता में स्वापयितं काबोल्यगं मल्यादि ।

स्त्रमं भणित्वा प्रवस्वितस्वक्ष्यप्रेरपरिधानः ॥ ३ ॥

योटकाहिद्रोषेविरिक्तिं ततः करोति खल्यगं ।

नाभ्यभोजान् ध्यं यद्ररकृषस्य। पितकटोपहः ॥ ॥ ॥

तल् च धारवित स्वदंवे यधाक्रमं दिनकता । तिचारान् ।

पार्यावा नमस्तारेष पर्वात चत्रविं यतिस्वद्रस्त्रम् ॥ ॥ ॥

संदंषं प्रस्तक्योपविद्यास्यन्वतिवास्युगः ।

स्वानन्तमं च कावं च प्रस्ति पञ्चविंयतिधा ॥ ६ ॥

'उद्विश्वेष सिवणयं विद्या गुरुणो करेद किद्रक्यां।
बसीसदोसरिहमं पणवीसावस्मगिवसुद्धं॥ ७॥
पह सम्ममवणमंगो करज्ञमिविह्यिरिमपुत्तिरयहरणो।
परिचितिम मदमारे जङ्गमं गुरुपरो वियडे॥ ८॥
मह उवविसिन्तु सुत्तं सामाद्यमाद्यं पिठय पयमो।
मदभुद्वियमो निह द्वाद पठद दुह उद्विमो विहिणा॥ ८॥
दाजण वंदणं तो पणगादसु जदसु खामए तिस्थि।
किद्रक्यमं करे मामरिममादगाहातिगं पठद॥ १०॥
दय सामाद्रयजसम्मसुत्तमुच्चरिय काउस्सम्मिठमो।
चितद उज्जोयदुगं चरित्तमद्रयारसुद्धिकए॥ ११॥
विहिणा पारिय समात्तसुद्धिने च पठद उज्जोमं।
तह सव्यक्षोमभर्दंतचेद्रयाराइणोसमं॥ १२॥

⁽१) उत्वितस्थितः विविश्वं विधिना वृदोः करोति व्यतिकर्मा ।

वार्तियहोषरिक्तं पञ्चविंयत्वावस्यकविद्युवस् ॥ ० ॥

व्यव सस्यगवनताष्ट्रः करयुगविधिष्टतः स्त्रिकारको करणः।

परिचिन्तयत्वितिष्ठारान् यचाक्रमं गुरुपुरो विस्तृतान् ॥ ८ ॥

व्यथितिस्य स्त्रं सामासिकाहिकं पठित्वा प्रयतः।

सम्युत्वितोऽक्षीत्वाहि पठिति विधीत्वितो विधिना ॥ ८ ॥

रचा वन्दनं ततः पश्चकाहितु वितिष्ठ चामयेत् तिः।

वितिकर्भ कुर्योदाचार्योक्त्रमञ्ज्ञार्य कायोत्वर्गस्थितः।

दिन्तयत्वसुद्दोतिव्यं चारित्वातिष्ठ। रग्नुविवते ॥ ११ ॥

विधिना पारियत्वा सम्यक्षग्निविचते चारेद्रदृद्दोतस्।

तवा सर्वकोकार्भवैत्वाराधने त्वार्गस्य ११ ॥

'काउं उक्जीगगरं चिंतिय पारेष सुबसमासी।

पुकारवरदीवड्ढं कड्ढर सुप्रसोष्ट्रणनिमिस्तं॥१३॥

पुण पण्यवीसोस्सासं उस्सम्गं कुण्य पारए विष्ट्रिणा।

तो सयलकुसलिकिरियाफलाण सिष्ठाण पढर थयं॥१४॥

'घष्ट सुप्रसमिष्टिचें सुप्रदेवीए करेर उस्सम्गं।

चिंतेर नमोक्कारं सुण्य वदेर व्य तीर धुरं॥१५॥

एवं खेसस्रीए उस्सम्गं कुण्य सुण्य देर धुरं।

पढिजण पंचमंगलसुवविसय पमक्त संडासे॥१६॥

पुव्यविष्टिचेव पेष्टिय पुत्तिं दाज्जण वंदणं गुरुणो।

पुक्रविष्टिचेव पेष्टिय पुत्तिं दाज्जण वंदणं गुरुणो।

सक्त्यां श्रेष्ट तिस्थि वद्यमाणक्षरस्सरो पढर।

सक्त्यां थवं पढिच कुण्य पिष्ठित्तन्तस्सम्गं॥१८॥।

⁽१) जलोदृद्योतकरं चिन्नयित्या पारवित गुद्धसम्बद्धः। पुन्करवरद्वीपार्थं पठित श्वतगोधननिभित्तम्॥ १२॥ पुनः पञ्चित्रसम्बद्धाः सस्त्वार्थं करोति पारवित विधिना। ततः सम्बद्धाः प्रवित्वामनानां सिद्धानां पठेत् स्वस्म ॥ १८॥

⁽२) सथ स्वतसन्दिष्ठितोः स्वतदेव्याः क्वर्याद्वसर्गम् । चिन्तवेदु नमस्कारं स्टब्ध्यादु वदेदु वा तस्याः स्वतिम् ॥ १५ ॥ एवं क्षेत्रस्यां चस्वर्गं क्वर्यात् स्टब्ध्याद् द्द्यात् स्वतिम् । पिठत्वा पञ्चमङ्गनस्वतियेत् प्रस्टक्य संदंधम् ॥ १६ ॥ पूर्वविधिनैव प्रेच्य वस्तिकां दक्षाः वन्दनं गुरोः । इच्चामोऽत्यास्तिमितं भिष्वता सात्भ्यां तिष्ठेत् ॥ १० ॥ गुरस्तित्पञ्चे स्तुतोस्तिस्रो वर्धमानाच्यरसरः पठेत्। यक्षस्ववं स्ववं पठित्वा क्यात् प्रायवित्तोस्वर्णम् ॥ १८ ॥

'एवं ता देविषयं राइयमिव एवमेव नविर ति । पढमं दा जं मिच्छा मि दुक्क पढ इसकत्य यं ॥ १८ ॥ चित्रं करे इ विहिषा चस्मगं चित्रं य चक्को थं। बीयं दंसण सुषीए चित्रं तत्य इममेव ॥ २० ॥ तहए निसाय इमारं जहक्कमं चित्रं ज्ञण पारे इ। सिहत्य यं पढित्ता पमक्त संडास मुविस इ॥ २१ ॥ पुन्तं व पुत्तिपे हण वंदण मालो यस त्तपढणं च। वंदण खामण वंदण गाहाति गपढण मुस्स मो ॥ २२ ॥ तत्य य चित्रं इस संजम जोगाष न हो इ जिंग में हाणी। तं पिंडवक्जामि तवं हस्था संता न का उमलं ॥ २२ ॥ एगा इगुणती स्णयं पि न सहो न पंचमा समिव। एवं चड ति दुमासं न समस्यो एगमा सं पि ॥ २४ ॥

⁽१) एवं तावद् दैवसिकं रातिकमधेशमेव नवरं तत् ।

प्रवणं दत्त्वा भिय्वा ने दुन्तृतं पठेत् घक्रसावस् ॥ १८ ॥

एताव ज्ञुर्याद् विधिनोत्ध्यां चिन्तवेद्योदस् ।

दितीयं दर्यनग्रद्धी चिन्तवेत् तत्तेद्रमेव ॥ २० ॥

रहतीवे नियातीचारं यचाक्रमं चिन्तवित्वा पारवेत् ।

सिक्षस्वं पठित्वा प्रसन्ध्य संदंशस्पविधेत् ॥ २१ ॥

पूर्वामव विद्यकामेच्यां वन्दनमान्धोचस्त्वपठनं च ।

वन्दनस्वस्वावन्दनगाचात्विकपठनस्त्वावः ॥ २२ ॥

तत् च चिन्तवेत् संवस्वोगानां न भवति वेन से द्वानिः ।

तत् प्रतिपद्ये तपः षड् सामांस्तावष्ट् न कतुम्बस् ॥ २५ ॥

एकाद्येकोनत्विगद्रनक्षमि न सङ्गो न पञ्च मासानिष ।

एवं चतुरस्तं नृ हो मासी न समर्थ पक्षनासमिष ॥ २४ ॥

'जा तं पि तरस्यं चलतीसदमादमं दुष्ठाणीए।
जाव चलत्यं तो पायंबिलाद जा पोरिस नमो वा॥ २५॥
जं सक्षं तं दियए धरेत्तु पारेत्तु पेष्ठए पोत्तिं।
दालं वंदणमसदो तं चिय पचकलए विदिषा॥ २६॥
दृष्कामो प्रणुसिंहं ति भणिय लविसिम पदद तिसि युद्दे।
सिनसहेषं सक्षत्ययाद तो चेद्रए वंदे॥ २०॥
पद्र पिक्लियं चल्हसिदिणिम पुत्रं व तत्य देवसिमं।
सुत्तंतं पिलक्षमिलं तो समामिमं कमं कुण्यद्र॥ २८॥
सुद्रपोत्ति वंदण्यं संबुद्दाखामणं तद्रालीए।
वंद्रष पत्त्रेयक्लामणं च वंदण्यमद्र सुत्तं॥ २८॥
सुत्तं पत्रेष्ठाणं लस्सगो पुत्ति वंदणं तद्र य।
पत्रांतियक्लामणं तद्र चलरो योभवंदण्या॥ ३०॥

⁽१) स्वातमि स्वाद्योनं चहिन्दां यहादिकं विकास्या।

बावज्ञ हुव्ये पार्याक्वादि वावत् पौक्षीं नमो वा ॥ २५ ॥

वत् यकां तद् ज्ञुद्धवे पार्याक्वा पारवेत् प्रेकेत विक्रिकाम् ।

इक्वा वन्द्रनमगठस्तदेव प्रत्याख्यावाद् विधिना ॥ २६ ॥

इक्वामोऽस्वाक्विति भिष्यत्वोपित्य पठेत् तिकाः स्तुतीः ।

सद्यक्षेत्र यक्तस्तवादि तत्त्रक्षेत्व। नि थन्देत् ॥ २० ॥

स्वा पाण्चिकं चहुई यीदिने पूर्वमिन तत्न दैविक्वस् ।

स्त्रान्तं प्रतिक्रस्य ततः सन्यितमं क्रमं सुर्वात् ॥ २८ ॥

सक्तविक्षका वन्द्रवकं संबुद्धक्षमध्या तथाक्षोत्यः ।

वन्द्रवं प्रत्येकं चमका च वन्द्रवक्षमध्य स्त्रम् ॥ १८ ॥

स्त्रमस्युत्यानस्त्रात्वी विस्तिका वन्द्रवं तथा च ।

पार्यान्वक्षमस्या तथा चत्यारि कोभवन्द्रवक्षानि ॥ १० ॥

'पुव्यविश्विषय सब्बं देवसियं वंदणाइ तो कुणइ।

सेक्रास्ती उत्समी भेषो संतिष्ठयपढणे घ॥ ३१॥

एवं चिय चन्नासे वित्से घ जश्कमं विश्वी णेषी।

पन्छ चन्नास वित्सेस नवित्त नामिया नाणशं॥ ३२॥

तश्च चन्मगोक्को घा बारस वीसा समंगलिग चला।

संदृष्टखामणं ति एष सक्त साष्ट्रण जहसंखं॥ ३३॥

प्रतिक्रमणस्व्रविवरणं तु ग्रन्थविस्तरभयाद् नोक्तम॥

भय कायोत्सर्गः । कायस्य प्ररीतस्य स्थानसीनध्यानिक्रयास्थितितेक्षान्यनी स्कृसितादिभ्यः क्रियान्तराध्यासमधिकत्य य
स्तरिकेषान्यनी स्कृसितादिभ्यः क्रियान्तराध्यासमधिकत्य य
स्तर्भास्थागो 'नमो भरहंताणं' इति वचनात् प्राक् स कायोसर्गः । स च द्विविधः, चेष्टायामिभभवे च । चेष्टायां गमनागमनादावीर्यापथिकादिप्रतिक्रमणभावी, भ्रभिभवे स्पर्मजयार्थम्; यदाहः—

ेसी उस्समी दुविही चेट्टाए श्रीसभवे श्र नायस्वी। सिक्वायरिया पढमी उसमाभिजंजभी बीशी॥१॥

⁽१) पूर्वविधिनैव सर्वे दैवसिकं वन्द्रनादि ततः कुर्यात्। यखासुर्युत्सर्गे भेदः मान्तिस्वयण्यने च ॥ ११ ॥ यवनेव चत्नमंसि वर्षे च यचाक्रमं विधिर्भेवः। पच्चचत्रमंसिवर्षेत्व, नवरं नाष्ट्रि नागात्वम् ॥ ११ ॥ तचोत्सर्गण्द्योता हाद्य विधातः समक्किष्वसायातारिंगत्। संबुद्धचम्चाक्तिस्वः पञ्च सप्त साधूनां यथासंस्थम् ॥ ११ ॥

⁽२) स उत्सर्गी दिविधसेटायामभिभवे च त्रातव्यः। भिक्तेसायां प्रचम उत्सर्गाभियोजने दितीयः॥ १॥

तत चेष्टाकायोक्षगीऽष्ट-पश्चविद्यति-सप्तविद्यति-विद्यती-पश्चयती-प्रष्टोत्तर-सहस्रोक्ष्णामान् यावद् भवति, प्रभिभवकायोक्षगैसु
सृह्तीदारभ्य संवक्षरं यावद् बाषुवलेरिव भवति । स च कायोक्षगै
चिक्कित निषय-प्रियतभेदेन त्रेषा । एकेक्बियतुर्घी—चिक्किती-क्कितो द्रव्यत चिक्कित कर्ष्यत्यानं भावत चिक्कितो धर्भष्यान-ग्रक्तष्याने इति प्रथमः । तथा, द्रव्यत चिक्कित कर्ष्यत्यानं भावतोऽनुिक्कितः क्रणादिलेग्यापरिचाम इति हितीयः । द्रव्यतो नोिक्कितो नोर्धित्यानं भावत चिक्कितो धर्मध्यान-ग्रक्तष्याने इति द्रतीयः । न द्रव्यतो नािप भावत चिक्कित इति चतुर्थः । एवं निषय-ग्रियत्योरिप चतुर्भक्षी वाच्या ।

दोवरिक्तिय कायोत्सर्गः कार्यः। दोवायेकविंगतः;—

प्राकुश्वितेकपादस्य घोटकस्येव स्थानं घोटकदोवः।१। खरवात
प्रकम्पिताया स्ताया द्रव कम्पनं सतादोवः।२। स्तश्वभवष्टभ्य

स्थानं स्तश्वदोवः।३। कुष्णमवष्टभ्य स्थानं कुष्णदोवः।४। मास्ति

प्रिरोऽवष्टभ्य स्थानं मास्तदोषः।५। इस्ती गुष्णदेगे स्थापयित्वा

गवर्या द्रव स्थानं गवरीदोषः।६। ग्रिरोऽवनस्य कुस्तवध्या द्रव

स्थानं वधृदोषः।७। निगडितस्येव विद्यतपादस्य मिसितपादस्य

वा स्थानं निगडदोषः।८। नगभेकपर्याजान् चोस्तपद्रस्य

स्थानं सम्बोत्तरदोषः।८। दंग्रादिवारपार्थमञ्चानाद् वा स्तने

चोसपद्रकं निबध्य स्थानं स्तनदोवः; 'धानीवद् बासार्थं स्तना
वुद्रमय्य स्थानं वा' द्रस्येके।१०। पार्ची मीसियत्वाऽगचरकी

विस्तार्थं, प्रङ्गुष्ठी वा मीसियत्वा पार्ची विस्तार्थं स्थानं ग्रकटो-

र्षिकादोष: ।११। व्रतिनीवत् पटेन ग्ररीरमाच्छादा संयतीदोष: ।१२। खलीनिमव रजोहरणं पुरस्कृत्य स्थानं खलीन-दोषः ; पन्ये खलीनार्तद्यवद्रध्वीधःशिरःकम्पनं खलीनदीषमाष्टुः ।१२। वायसस्येवेतस्ततो नयनगोसकस्त्रसस् टिगवेचणं वा वायसदोषः ।१४। षट्पदिकाभयेन कपित्यवश्चोज्ञपष्टं संहत्य मुष्टी रहिता खानं कपित्यदीषः ; 'एवमेव मुष्टिं बद्ध्वा खानम्' इत्यन्ये।१५। भूताविष्टस्येव शीर्षं कम्पयतः स्थानं शीर्षोत्कम्पित-दोष: ।१६। मूकस्येवाव्यक्तग्रन्दं कुर्वत: स्थानं मूकदोष: ।१७। पालापकगणनार्धमङ्गलीयालयतः स्थानमङ्गल्दोषः ।१८। व्यापा-रान्तरनिक्पणार्थे भूसंज्ञामैवमेव वा भूतृत्तं कुर्वतः स्थानं भ्रदीष: ।१८। निषयमानवाक्ष्या इव ब्डब्डारावेच स्थानं वाक्षणीदोवः ; 'वाक्षणीमत्तस्येव घूर्णमानस्य स्थानं वाक्षणीदोषः' इस्रने ।२०। चनुप्रेचमाणस्थेवीष्ठपुटे चलयतः स्थानमनुप्रेचा-टोष: ।२१।

१ यदाषु: ;---

'घोडग लया य खंभे कुड्डे माले य सविर वहु णियले। संबोक्तर थण उद्दी संजद खिलिणे य वायस कविहे॥१॥ सीसोकंपिय मूद यंगुली भमुदा य वादणी पेदा। दित। एके लिन्यानिप कायोलार्गदोषानाहुः, यथा—

⁽¹⁾ घोठको खता च स्तम्भः तुद्धां नालं च यवरी वधूर्निगछः। सन्वोत्तरं सान छिर्दिसेंबती खन्नीनं च वाबसः कपित्यः॥१॥ योगेत्कि स्मितं सूत्रोऽक्रुलिर्भ्यूच वास्त्यो प्रेसा।

निष्ठीवनं वपुःस्पर्धः प्रपञ्चबहुला स्थितिः।
स्त्रोदितविधेर्न्यूनं वयोऽपेचाविवर्जनम् ॥१॥
कालापेचाव्यतिकान्तिव्यचिपासक्तिचित्तता।
लोभाकुलितचित्तत्वं पापकार्योच्यमः परः ॥२॥
कत्याकत्यविमृदत्वं पिष्टकाद्यपरि स्थितिः। इति।
कायोसर्गस्यापि फलं निर्जरेवः यदाहः—
'काउस्मगे जह संदिगस्स भळंति संगुवंगादं।
दय भिंदंति स्विद्या महविद्यं कम्मसंघायं॥१॥
कायोसर्गस्त्रार्थः प्राग् व्याख्यात एव॥

षय प्रत्याख्यानम् प्रति प्रवित्तप्रतिवृत्ततया या सर्यादया ख्यानं प्रकायनं प्रत्याख्यानम्। तच हेथा सृत्रगुषक्षप्रसृत्तरः गुषक्षपं च। सृत्रगुषा यतीनां सङ्गावतानि, त्राथकाषामण्यः व्रतानि; छत्तरगुषालु यतीनां पिष्कविद्यद्यादयः, त्रावकाषां तु गुषवत शिचावतानि। सृत्रगुषानां तु प्रत्याख्यानतं दिंधा-दिनिष्ठत्तिकपत्वात्, छत्तरगुषानां तु पिष्कविद्यद्वगदीनां दिन्यृता-दीनां च प्रतिपच्चनिष्ठत्तिकपत्वात्। तच खयं कतप्रत्याख्यानः काले विनयपूर्वकं सम्यगुपयुक्तो गुक्वचनमनुचरन् खयं जानन् प्रस्थेव गुरोः पार्थ्वे प्रत्याख्यानं करोति। प्रत्ये चतुर्भक्ते। द्योर्ज्ञत्वे प्रयमो सङ्गः ग्रदः ।१। गुरोर्ज्ञत्वे प्रिष्यस्थान्नत्वे दितीयः। तव तत्वालां ग्रिष्यं संचेपतः प्रवोध्य यदा गुकः प्रत्याख्यानं कारयित

⁽१) कार्योत्सर्गे यथा संस्थितस्य भक्कानेऽक्रोपाक्रानि। एवं भिन्दन्ति सुविक्तितः चष्टविधं कर्मसंपातस् ॥१॥

तदाऽयमिष ग्रहः, भन्यया लग्रहः ।२। गुरीरक्त शिष्यस्य क्रले स्तियः । भयमिष तथाविधगुरीरप्राप्ती गुरुवसुमानाद गुरीः पित्र-पित्रस्य-मातुल-च्येष्ठभावादिलं साचित्रं कुर्वतस्तृतीयः ग्रहः, . भन्यया लग्रहः ।३। हयोरक्तले चतुर्धः, भसावग्रह एव ।४।

उत्तरगुणप्रत्याख्यानं प्रतिदिनोपयोगि दिविधम्—संकेतप्रत्या-स्थानमदाप्रत्याख्यानं च। तत्र संकेतप्रत्याख्यानं त्रावकः पौद-श्यादिप्रत्याख्यानं कत्वा चित्रादो गतो गरहे वा तिष्ठम् 'भोजन-प्राप्तेः प्राक्त प्रत्याख्यानरहितो मा भूवम्' दत्यङ्गुष्ठादिकं संकेतं करोति—'यावदङ्गुष्ठं मुष्टिं प्रत्यिं वा न मुखामि, गर्डं वा न प्रविधामि, खेदिबिन्दवो वा यावद् न गुष्यन्ति, एतावन्तो वोच्छासा यावद् न भवन्ति, जलाईमिखिकायां यावदेते बिन्दवो न गुष्यन्ति, दौपो वा यावद् न निर्वाति तावद् न भुक्ते' दति; यदाहुः—

ध्यंगुहसुद्विगंठी घरसे जसास ि वृगजो इक्खे।
एषं संकेय भणियं धीरिष्टं प्रणंतनाणी ष्टिं॥१॥
नवकार पीरिसीए पुरिम इंटेकासणे गठाणे य।
पार्यां बस्त भक्तद्वे चरसे प्रभागां विगर्भ ॥२॥

⁽१) चाकुरसियन्विग्रङ्खेरोच्छायसिव्यक्तकोतिम्न न्। एतत् सङ्केतं भणितं धीरैरनन्तज्ञानिभिः ॥।॥ नवस्तारः पौद्वी पूर्वार्थ एकायनवेकस्थानं च। चावामाच्छमभक्तार्थस्योऽभियको विकृतिः॥१॥

चडा कालस्त द्विषयं प्रत्याख्यानमहाप्रत्याख्यानम्। तच नमस्तारसिहतं, पौरुषी, दिनपूर्वार्धः, एकाश्रनम्, एकस्थानकम्, चाचामाक्तम्, उपवासः, चरमम्, चभिषदः, विकृतिनिषेधवित दग्रविधम्; यदाद्यः—

नन्वेकाश्रनादिप्रत्याख्यानं कथमद्याप्रत्याख्यानम्; न हि
तत्र कालनियमोऽस्ति ? सत्यम्, भद्याप्रत्याख्यानपूर्वाख्येकाग्रनादीनि प्रायेण क्रियन्त इत्यद्याप्रत्याख्यानत्वेनीच्यन्ते । प्रत्याख्यानं चापवादक्रपाकारसिंदतं कर्तव्यम्, भन्यथा तु भद्गः स्थात्,
स च दीषाय ; यदाद्यः—

^१वयभंगे गुरुदोसो घेवस्म वि पालणा गुचकरी श्रो। गुरुलाववं च षेयं धमास्मि श्रभो श्र भागारा ॥१॥

ते च नमस्कारमिहतादिषु यावन्तो भवन्ति तावन्त छपदग्रिन्ते। तत्र नमस्कारमिहते सृहूर्तमात्रकाले नमस्कारोचारणावसाने प्रत्याख्याने द्वावाकारौ भवतः। प्राक्रियते विधीयते
प्रत्याख्यानभद्रपरिद्वारार्धमित्याकारः प्रत्याख्यानापवादः। नतु
वालस्यानुक्रत्वात् सक्तेतप्रत्याख्यानमेवेदम्। नैवम्, सद्वितग्रन्देन
सृद्र्तस्य विशेषणात्। प्रथ सृहूर्तग्रन्दो न त्रूयते, तत् कथं तस्य
विशेष्यत्वम् १। उच्यते—पद्वाप्रत्याख्यानमध्येऽस्य पाठात्, पौक्षीप्रत्याख्यानस्य वच्चमाणत्वादवश्यं तदर्वाग् सृहूर्तं एवावशिष्यते।
प्रथ सृहूर्तद्वयादिकमिष क्रतो न सभ्यते १। उच्यते—प्रस्थाकार-

⁽१) व्रतभञ्जे गुरुहोषः स्तोबस्थापि पावना गुणवरी हा। गुरुवाषयं च सेवं भर्मेश्तरवाकाराः ॥१॥

लादस्य। पौरुषां प्रि षडाकाराः, तदस्मिन् प्रत्यास्थाने प्राकारप्रयानि स्वस्य एव कालोऽविधिष्यते। स च नमस्कारेष सिंहनः, पूर्णेऽपि काले नमस्कारपाठमन्तरेष प्रत्यास्थानस्थापूर्य-माणलात्; सत्यपि नमस्कारपाठ सङ्गृतीस्थन्तरे प्रत्यास्थानभङ्गात्। तत् सिंहमेतत्—सङ्गृतेमानकालं नमस्कारपिंहतं प्रत्यास्थान-मिति। प्रथ प्रथम एव सुद्धते इति कुतो स्थते १।, स्व-प्रामास्थात्, पौरुषीवत्। स्वं चेदम्:—

चगगए स्रे नमोकारसिंहमं पश्चक्खाइ च विवाहं पि माहारं मसमं पाणं खाइमं साइमं मसत्ययाभीगेयं सहसागारेणं वीसिर्ह।

व्याख्या— उन्नते स्रे सूर्योन्नमादारभ्येत्यर्थः, नमस्कारेण परमेि स्तिन सिन्ति युक्तं नमस्कारसिन्तं प्रत्याख्याति, "सर्वे धातवः करोत्यर्थेन व्याप्ताः" दितन्यायाद् नमस्कारेण सिन्तं प्रत्याख्यानं करोति । इदं गुरोरनुवादभन्नगा वचनम् । शिष्यसु 'प्रत्याख्यामि' दत्येतदाञ्च । एवं 'व्युत्तृजति' दत्यनापि वाच्यम् । कथम् ? । चतुविधिमिति, न पुनरेकविधादिकम्, भाषारमभ्यवद्यायं 'व्युत्तृजति' दत्युत्तरेण योगः । इदं चतुर्विधाष्टारस्थेव भवतीति संप्रदायः, रात्रिभोजनवततीरणप्रायत्वादस्य । भग्रनमित्याच्याष्टारचातुर्विध्यक्तीतेनम् । भग्रनादय भाषाराः पूर्वं व्याख्याताः । भव्य नियमभन्नभयादाकारावाष्ट् — भष्यत्यणाभोगेणं सष्ट्रसागारेणं, भव्य पञ्चम्यर्थं दृशीया, भन्यत्रानाभोगात्, सष्ट्रसाकाराञ्च ; एतौ वर्जयत्वेत्यर्थः । तन्नानाभोगोऽत्यन्ति विस्तृतिः । सष्ट्रसाकारोऽतिप्रह्नन्तयोगानिवर्तनम् । व्युत्तृजति परिष्टरितः ॥

षय पौरवीप्रत्याख्यानम्—

णोरिसिं पश्चक्खाइ जगाए सूरे चलव्यक्षं पि भाक्षारं श्रसकं पाणं खाइमं साइमं श्रक्षत्वणाभोगेणं सक्षतागारेणं पच्छवेणं कालिणं दिसामोहेणं साबुवयपेणं सव्यसमाहिवस्तिभागारेणं वोसिरद्र॥

पुरुषः प्रमाषमस्याः पौरुषौ काया तद्युत्तः कालोऽपि पौरुषौ प्रहर इत्यर्थः, तां प्रत्याख्याति पीत्वीप्रत्याख्यानं करोतीत्यर्थः। कथम् ?। चतुर्विधममन पान खाद्य खाद्यलचर्य 'व्युत्सृजित' दत्युत्तरेण योगः। भन षडाकाराः। प्रथमी ही पूर्ववत्। चन्यव प्रच्छनकानात्, दिग्मोद्यात्, साध्वचनात्, सर्वसमाधि-प्रच्छवता च कासस्य, यदा मेघेन रजसा प्रत्ययाकाराच । गिरिका वाम्तरितलात् सूरो न दृश्यते, तत्र पौक्षीं पूर्कां प्राला भुष्तानस्यापूर्णीयामपि तस्यां न भष्तः ; प्रात्वा त्वर्धभुन्नेनापि तथैव स्थातव्यं यावत् पौरुषी पूर्णा भवति, पूर्णीयां ततः परं भोक्तव्यम् ; न पूर्णेति जाते तु भुज्ञानस्य भङ्ग एव । दिग्मोद्यतु यदा पूर्वीमिप पश्चिमीत जानाति तदाऽपूर्णीयामिप पौरुषां मोहाद भुद्धानस्य न भट्टः, मोहविगमे तु पूर्ववदर्धभुन्नेनापि स्थातव्यम्; निरपेचतया भुद्धानस्य भङ्ग एवति। साध्वधनं 'चद्घाटा पौरवी' रत्यादिकं विश्वमकारवम्, तत् त्रुत्वा भुष्मा-नस्य न भन्नः, भुद्धानेन तु जाते, प्रन्येन वा कथिते पूर्ववत् तथैव स्थातव्यम् । तथा, क्षतवी द्वीप्रत्यास्थानस्य समुत्रवतीव्रशूलादि-दुःखतया संजातयोरार्त-रौद्रध्यानयोः सर्वधा निरासः सर्वसमाधि- स्तस्य प्रत्ययः कारणं स एवाकारः प्रत्याख्यानापवादः सर्वसमाधिप्रत्ययाकारः ——समाधिनिमित्तमौषधपव्यादिप्रहत्तावपूर्णायामपि
पौर्वां भुङ्के तदा न भङ्ग इत्यर्थः । वैद्यादिर्वा क्रतपौरुषीः
प्रत्याख्यानीऽन्यस्यातुरस्य समाधिनिमित्तं यदाऽपूर्णायामपि
पौरुष्यां भुङ्के तदा न भङ्गः, प्रधेभुके त्वातुरस्य समाधी मर्षे
वीत्पन्ने जाते सति यथैव भीजनस्य त्यागः॥

सार्धपीक्षीप्रत्यास्थानं पीक्षीप्रत्यास्थान एवान्तर्भूतम् ॥ भव पूर्वार्धप्रत्यास्थानम्—

स्रे जगए पुरिमाड्ढं पश्च कडाइ च डिब्ब इं पि भाहारं श्रमणं पाणं खाइमं माइमं भव्यणाभोगेणं सहसागारेणं पष्क्रकोणं कालेणं दिसामोहेणं साहुवयणेणं महत्तरागारेणं सब्बसमाहियत्तिया-गारेणं वोसिर्णः

पूर्वं च तदधं च पूर्वाधं दिनस्याद्यं प्रवर्षयं पूर्वाधं प्रत्या-स्थाति पूर्वाधेप्रत्यास्थानं करोति । षडाकाराः पूर्ववत् । 'महत्त-रागारेणं' इति, महत्तरं प्रत्यास्थानानुपालनलभ्यनिर्जरापेचया बहत्तरिर्जरालाभहेतुभूतं पुरुषान्तरासाध्यं ग्लानचैत्यसंघादि-प्रयोजनं तदेवाकारः प्रत्यास्थानापवादो महत्तराकारस्यसात् 'सन्यत्र' इति योगः । यचाचैव महत्तराकारस्थाभिधानं न नमस्कारसहितादौ, तत्र कालस्थात्यत्वं महत्त्वं च कारण-माचचतं।

⁽१) उद्योग।

तथैकांगनप्रत्याख्यानम्। तत्राष्टावाकाराः, यत् स्त्रम्:--

एकासचनं पश्चक्षार चलिवां पि प्राहारं प्रास्थं पाचं खारमं सारमं प्रख्यकाभोगेणं सहसागारेणं सागारिषागारेणं पालंटचपसारचेणं गुद्दपत्स्भृहापेणं पारिहाविषयागारेणं महत्तरा-गारेणं सव्यसमाहिवत्तिषागारेणं वोसिरह ॥

एकं सक्कद्रशनं भोजनम्, एकं वासनं पुताचलनती यन तदेकाशनमेकासनं च ; प्राक्षते हयोरिष 'एगासचं' इति रूपम्, तत् प्रत्याख्याति—एकाशनप्रत्याख्यानं करोतीत्वर्धः । प्रचा-धावन्त्वी च हावाकारी पूर्ववत् । सागारिमागारेषं सह भगारेष वति हति सागारः स एव सागारिको ग्रहस्तः स एवाकारः प्रत्याख्यानापवादः सागारिकाकारस्त्रकादन्यम् । ग्रहस्त्रसमस्तं हि साधूनां भोक्षं न कस्त्रते, प्रवचनोपघातसंभवात् ; मत एवोक्तम् ;—

ं । चिकायदयावंती वि संजभी दुक्क कुंगर बीहिं। भाषार नीष्टार दुगुंकियपिंडगडमे भ ॥ १ ॥

तत्र भुद्धानस्य यदा सागारिकः समायाति, स यदि चन-स्तदा चमं प्रती चते, प्रय स्थिरस्तदा स्वाध्यायादिव्याघाती मा भूदिति ततः स्थानादम्यपोपविष्य भुद्धानस्थापि न भङ्गः। स्टब्स्थस्य तु येन दृष्टं भोजनं न जीर्यति स सागारिकः:। पाउं-टणपसारपेणं — पाउंटपं पाकुचनं जक्वादेः संकोचनं प्रसारचं च तस्येवाकुचितस्य ऋज्करणम्, पाकुचने प्रसारचे चासदिक्षातया

⁽१) षट्वावद्वावानिष थंवतो दुर्वभं करोति वोधिस्। भाः इ।रे नीकारे ज्युसितिवयङ्गक्षे व ॥ १ ॥

कियमाचे किचिदासनं चलित ततीऽन्यच प्रत्याख्यानम्। गुकपन्भुद्वाचेचं गुरीरभ्युत्वानाईस्थाचायैस्य प्राघुचकस्य वाऽभ्युत्वानं
प्रतीत्वास्। नत्यजनं गुर्वभ्युत्वानं ततोऽन्यच। प्रभ्युत्वानं चावस्यकत्तीव्यत्वाद् भुद्धानेनापि कर्तव्यमिति न तत्र प्रत्यास्थानभद्यः।
पारिद्वाविष्यागारेणं परिष्ठापनं सर्वेद्या त्यजनं प्रयोजनमस्य
पारिष्ठापनिकमनं तदेवाकारः पारिष्ठापनिकाकारः, ततोऽन्यच।
तत्र हि त्यच्यमाने बहुदोषसंभवात्, प्रात्रीयमाचे चागमिकन्यायेन गुणसंभवाचे गुर्वाच्या पुनर्भुद्धानस्य न भद्यः। वोसिरद्र
दित, प्रनिकासनमग्रनाद्याहारं च परिहरति॥

भवेतस्थानतम्। तत्र सप्ताकाराः। भत्र स्त्रम्—एकद्वाषं प्रक्षादः द्रत्याचेतायनवत्। भाकुश्चनप्रसारकाकारवर्जभेकम- दितीयं स्थानमङ्गविन्यासरूपं यत्र तदेवस्थानं प्रत्याख्यानम्। यद् यथा भोजनकालिऽङ्गीपाङ्गं स्थापितम्, तिसंस्त्रधास्थित एव भोक्तस्यम्। सुखस्य पाणिश्चायक्यपरिङ्गारत्वाञ्चलनं न प्रतिविद्यम्। भाकुश्चनप्रसारकाकारवर्जनं चैकायनतो भेदश्चापनार्थम्, भन्यथै-कासनभेव स्थात्॥

षयाचामास्त्रम्। तत्राष्टावाकाराः। षत्र स्त्रम् ;—
षायंविसं पञ्चक्याद् प्रवर्णाभोगेणं सङ्सागारेणं सेवासेवेशं

⁽१) च-न वर्जनम्।

⁽२) च-च तस ग्र-।

चित्रत्वित्रीयं गिष्ठत्वसंसद्वेषं पारिहाविषयागारेषं मण्ल-रागारेषं सव्यसमाष्ट्रिवत्तियागारेषं वोसिरदः।

षाचामोऽवस्नावषम्, प्रमं वतुर्धी रसः, एते च प्रायेष व्यञ्चने यत्र भोजने घोदन-कुल्याष-सन्नुप्रश्रुतिके तदाचामान्तं समयभाषयोच्यते, तत् प्रत्याख्याति—पाचामान्द्रप्रत्याख्यानं करोतीत्वर्धः। पाद्यावस्थाय त्रय पाकाराः पूर्ववत्। सेवालेवेचं सेपो भोजनभाजनस्य विक्रत्या तीमनादिना वाऽऽचाम। साप्रत्या-च्यातुरकत्यनीयेन सिप्तता, पसेपो विकत्यादिना सिप्तपूर्वस्य भोजनभाजनस्वैव इस्तादिना संलेखनतोऽलिप्तता, लेपवालेपव लेपालेपं तसादन्यत्र — भाजने विक्रत्याद्यवयवसङ्गाविऽपि न भङ्ग प्रत्यर्थः। छन्छित्तविवेगेचं शुष्कीदनादिभन्ने पतितपूर्वस्थाचामा-बाप्रखाखानवतामयोग्यसाद्रवविकत्यादिद्रव्यस्रोत्चिप्तस्रोह्सस विवेकी निः ग्रेषतया त्याग उत्विप्तविवेक उत्विप्तत्याग इत्यर्थः, तस्मादन्यत-भोक्षव्यद्रव्यस्याभोक्षव्यद्रव्यस्पर्गनापि न भक्क इति भाव:। यत्तृत्वेषुं न मकां तस्य भोजने भन्नः। गिन्नत्यसंसद्देशं ग्रहस्यस्य भन्नदायकस्य संबन्धि करोटिकादिभाजनं विक्रत्यादि-द्रयोषीपसितं ग्रहस्मसंस्रष्टं, ततीऽन्यतः। विक्रत्यादिसंस्रष्टभाजनेन हि दीयमानभन्नमक्तराष्ट्रव्यावयविमर्त्रं भवति, न च तद् भुष्तान-स्वापि भद्गः, यद्यकस्पाद्रव्यरसी बहु न ज्ञायते । वीसिरद् इति---पनाचामासां चतुर्विधाद्वारं च व्युक्तजिति॥

भवाभक्तार्धप्रत्याख्यानम्। तत्र पश्चाकाराः, यत् सूत्रम् ;— स्री चलाए भव्भत्तद्वं पश्चक्खार चचित्रद्वं पि भाषारं भस्यं पाणं खादमं सादमं प्रवत्यगाभीगेणं सहसागारेणं पारिद्वाव-णियागारेणं मञ्जरागारेणं सव्यसमाहिवसियागारेणं वोसिरद्र।

स्रे उत्तते स्यौत्तमादारभ्य, सनैन च भोजनानकारं प्रत्याख्यानस्य निषेध द्रत्याचः भक्तेन भोजनेनार्यः प्रयोजनं भक्तार्थः, न
भक्तार्थोऽभक्तार्थः, सम्मवा न विद्यते भक्तार्थोऽस्मिन् प्रत्याख्यानविश्वेषे सोऽभक्तार्थं चपवास द्रत्यर्थः। साकाराः पूर्ववत्। नवरं
पारिष्ठापनिकाकारे विश्वेषः। यदि व्रिविधाच्चारस्य प्रत्याख्याति
तदा पारिष्ठापनिकं कत्यते, यदि तु चतुर्विधाच्चारस्य प्रत्याख्याति
पानकं च नास्ति तदा न कत्यते, पानकं तृष्टिते कत्यते। वोसिरद् दित भक्तार्थमशनादि च व्युक्षृत्रति॥

भय पानकम्। तत पोदवीपूर्व्वार्धेकाश्रनेकस्थानाचामा-काभकार्वपत्याखानिवृत्वर्गतत्रतुर्विधाद्वारस्य प्रत्याखानं न्याय्यम्। यदि तु तिविधाद्वारस्य प्रत्याखानं करोति तदा पानकमात्रित्य वडाकारा भवन्ति, यत् स्त्रम्;—

पाणसा लेवाडेण वा प्रलेवाडेण वा प्रच्छेण वा बहुलेण वा ससिखेण वा परिखेण वा वीसिरह।

इह 'यन्यत्र' इत्यस्यानुहत्ते स्तृतीयायाः पश्चम्यर्थस्वात् स्विवालेख विति स्नत्तेषाद् वा पिष्कसस्तेन भाजनादीनामुपसेपकारकात् स्वर्जूरादिपानकादन्यत्न तद् वर्जयिस्त्रेस्यर्थः। विविधाद्यारं 'व्युस्नुजति' इति योगः। वाश्यन्दोऽसेपक्ततपानकापेच्ययाऽवर्जनीय-स्वाविश्विषयोतनार्थः, प्रसेपकारिचेव सेपकारिणाप्युपवासादेने भद्गदित भावः। एवमसेपक्तताद् वाऽपिष्कस्वात्; प्रष्टाद् वा निर्मलादुणोदकारे:; बहुलाद वा गडुलात् तिलतन्दुलधावनारे:, सिक्याद वा भक्तपुलाकोपितादवस्तावणारे:, पिक्याद वा सिक्यवर्जितात् पानकाष्टारात्॥

भय चरमम्। चरमोऽन्तिमो भागः। स च दिवसस्य भवस्य चेति हिथा। तहिषयं प्रत्यास्त्रानमपि चरमम्। इड च भवचरमं यावस्त्रीवम्। तत्र हिविधेऽपि चलार भाकारा भवन्ति; यसूत्रम्;—

दिवसचिरमं भवचिरमं वा पश्चक्खाइ चछिवदं पि घाडारं पस्यं पाणं खाइमं साइमं घन्नत्यणाभीगेषं सहसागारेणं मह-चारागरिणं सव्यसमाहिवचित्रागारेणं वोसिरद् ।

नतु दिवसचरिमप्रत्याखानं निष्फलम्, एकाधनादिप्रत्या-खानेनेव गतार्धत्वात्। नेवम्, एकाधनादिनं द्वाष्टाचाकार-मेतच चतुराकारम्, पत पाकाराणां संचिपकरणात् सफलमेव। पत एवेकाधमादिकं देवसिकमेव भवति, रात्रिभोजनस्य त्रिविधं त्रिविधेन यावज्जीवं प्रत्याख्यातत्वात्। ग्रष्टस्यापेच्या पुनरिद-मादित्योद्गमान्तम्, दिवसस्याचोरात्रपर्थ्यायतयापि दर्धनात्। तत्र येषां रात्रिभोजननियमोऽस्ति, तेषामपौदं सार्धकम्, प्रतुवादक-त्वेन स्वारकत्वात्। भवचरमं तु द्वाकारमपि भवति। यदा जानाति मच्चरपर्वसमाधिप्रत्ययक्षपाभ्यामाकाराभ्यां न प्रयो-जनम्, तदाऽनाभोगसच्चाकाराकारौ भवतः, प्रकुष्यादेरना-भोगेन सच्चाकारिण वा मुखे प्रचेपसंभवात्। पत एवेदमना-कारमप्युचितं, पाकारदयस्यापरिद्वार्यत्वात्॥ षयाभिग्रहप्रत्याख्यानम् । तस दण्डप्रमार्जनादिनियमरूपम् ।
तत्र चलार पाकारा भवन्ति, यथा, ष्रव्रत्यणाभीगेणं सहसागारेणं
महत्तरागारेणं सब्बसमाहिवत्तिषागारेणं वोसिर्द्र। यदा
लगावरणाभिग्रहं रुद्धाति तदा 'चोलप्रगागारेणं' दति पश्चम
पाकारो भवति, चोलप्रकाकारादन्यवेत्यर्थः ॥

भय विक्ततिप्रत्याख्यानम्। तत्र नव, भष्टी वाऽऽकाराः ; यत् स्त्रम्—

विगर्भो पचक्खार प्रत्रत्यगाभोगेणं सद्वसागारेणं लेवालेवेणं गिहत्यसंसट्टेणं उक्खित्तविवेगेणं पड्यमिक्खएणं पारिहावणि-पागारेणं महत्तरागारेणं सव्यसमाहिवस्तिपागारेणं वोसिरर्।

मनसो विक्रितिहितुत्वाद् विक्रतयः, ताय दय, यदाष्टः ;—
'कीरं दिष्ट नवणीचं घयं तष्टा तिक्षमिव गुड सक्तां।
सष्टु संसं चैव तष्टा घोगाष्टिसगं च विगर्देघी ॥ १॥

तत पश्च श्रीराणि, गोमिश्चिश्रीशृंगलकासंबस्धभेदात्। दिध-नवनीत-ष्टतानि तु चतुभंदानि, उष्ट्रीणां तदभावात्। तेलानि चत्वादि, तिलातसीलद्दासर्वपसंबस्धभेदात्। ग्रेषतेलानि तु न विक्ततयः, लेपकतानि तु भवन्ति। गुड इश्लरसकाथः। स दिधा, पिण्डो द्रव व। मद्यं देधा काष्ठ पिष्टो इवत्वात्। मधु नेधा,— माश्विकम्, कौत्तिः भामरं च। मासं व्रिविधम्, जल-स्थल-खचरजन्तू इवत्वात्; प्रथवा मासं त्रिविधम्, चर्म-क्धिर-मांस-

⁽१) चीरं दिध नवनीतं छतं तथा तैलमेव गुडो भदास्। सञ्ज्ञारं चैव तथाऽवनाहिमकं च विकतसः॥१॥

भेदात्। प्रवगार्हन स्नेष्ठबोलनेन निर्वृत्तसवगारिसं प्रकायम् "भावादिसः" (सिष्ट्रिम-६।४।२१।) दतीमः, यत् तापिकायां ष्ट्रतादिपूर्णीयां चनाचलं खाद्यकादि पचते, तस्त्रामेव तापिकायां तेनेव छतन हितीयं खतीयं च खाद्यकादि विकति:, तत: परं पकावानि योगवाहिनां निर्विक्ततिप्रत्याख्यानिऽपि कत्यनी। मध्येनेनेव पूपकेन तापिका पूर्वत तदा दितीयं पकाचं निविक्ति-प्रत्याख्यानेऽपि कल्पते, लेपकतं तु भवति । इत्येषा द्वसामा-चारी। एतासु च दशसु विक्रतिषु मद्यमांसमधुनवनीतसच्चा-यतस्रो विकतयोऽभक्षाः। श्रेषासु षड् भक्षाः। तत्र भक्षासु विक्रतिष्वेकादिविक्रतिप्रखाख्यानं षड्विक्रतिप्रखाख्यानं च निर्वि-क्रतिकसंज्ञं विक्रतिप्रत्याखानिन संग्रहीतम् । पाकाराः पूर्वेवत् । नवरम्, गिइत्यसंसद्देषं इति ग्रइस्वेन स्वप्रयोजनाय दुन्धसंस्रष्ट भोदनो दुग्धं च तमतिक्रम्योक्षर्षतवलार्यक्रमानि यावदुपरि वर्तते तदा तद् दुम्बमविक्रतिः, पश्चमाङ्गुकारको विक्रतिरव। न्यायेनान्यासामि विक्रतीनां रहस्थासंस्ट खमागमादवसेयम्। उक्तिक्तिविगेषं इति, उत्चिप्तविवेक पाचाभाक्तवदु इतुं शकासु विक्रतिषु द्रष्टव्यः, द्रवविक्रतिषु नास्ति । पडुच मक्खिएणं दति, -प्रतीत्य सर्वया क्चमण्डकादिकमपेश्य मचितं स्टेडिनमीवसी-कुमार्योत्पादनाय स्त्रचणक्रतविशिष्टखादुतायासाभावाद् सचित-मिव यद् वर्तते तत् प्रतीत्य म्नचितं म्नचिताभासमित्यर्थः । इह चायं विधि:-यदाहुक्या तैलादि ग्रशीला मण्डकादि म्बचितं तदा कन्यते निर्विक्ततिकस्य, धारयातु न कन्यते। व्युक्तृजित विकतिं त्यज्ञतीत्यर्थः । इष्ट च यासु विकतिषूत्विप्तविवेकः संभवति तासु नवाकाराः, चन्यासु तु द्रवद्भपास्त्रष्टी । एतदर्थसंवादिन्छो गाद्याः—

ेदो चेव नमुकार घागारा छत्र पोरिसीए छ।
सत्तेव य पुरिमक्के एकासणगन्मि घडेव ॥ १॥
सत्तेगद्वाचस्म छ घडेव य घंविलिम्म घागारा।
पंचेव घग्भत्तहे छपाचे चरिम चत्तारि॥ २॥
पंच चछरो घभिमाई निव्विए घड नव य घागारा।
घषाछरचे पंच छ इवंति सेसेसु चत्तारि॥ ३॥

नत् निर्विकतिक एवाकाराभिधानाद विक्रतिपरिमाणप्रत्या-खाने कृत पाकारा प्रवगम्यन्ते ?। उच्चते—निर्विक्रतिकग्रश्चे विक्रतिपरिमाच्छापि संग्रशे भवति, त एव पाकारा भवन्ति ; यथा—एकासनस्य पौक्ष्याः पूर्वार्धस्येव च स्त्रेऽभिधानेऽपि हासनकस्य सार्धपौक्षा प्रपार्धस्य च प्रत्याखानमदृष्टम्, प्रप्र-मादृष्ठदेः संभवात्। पाकारा प्रत्येकासनादिसंवन्धिन एवान्थे-ष्वपि न्याय्याः, पासनादिग्रव्हसाम्यात् चतुर्विधाष्टारपाठेऽपि

⁽१) डावेन ननस्तारे धाकारी षट्च पौक्षां हा। छत्तेन च पूर्वार्थे एकावनेऽस्तेन ॥ १ ॥ छत्तेनस्यानस्त तस्तेन वाचानास्त्ते खाकाराः। पश्चैनाभक्तार्थे षट् पानके चर्मे चत्वारः॥ १ ॥ पश्च चह्नरोऽभिष्यके निर्विक्ततिकेऽस्त नन चाकाराः। स्वाप्तरचे पश्च हा भन्निम ग्रेवेड चत्वारः॥ १ ॥

हिविधिविधिष्ठारप्रस्थाख्यानवत्। ननु ह्यासनादीनि प्रिसयष्टप्रस्थाख्यानानि, ततस्तेषु चलार एवाकाराः प्राप्नवन्ति।
न, एकासनादिभिलुल्ययोगच्चेमलात्। प्रन्ये तु मन्यन्ते,—एवं हि
प्रस्थाख्याने संख्या विभीर्येत। तत एकासनादीन्येव प्रस्थाख्यानानि, तदभक्तसु यावसिष्ठिणुस्तावत् पौरुष्यादिकं प्रत्थाख्याति, तदुपरि पन्यसिष्ठतादिकमिति। प्रत्याख्यानं च स्पर्भनादिगुणोपेतं सुप्रत्याख्यानं भवति;

यदाहु: --

^१फासिषं पालियं चेव सोष्टिषं तीरिषं तष्टा। किडियमाराष्टियं चेव एरिसयिका पयद्रष्यव्यं ॥ १ ॥

तत्र सृष्टं प्रत्याखानकाले विधिना प्राप्तम् ।१। पालितं पुनः-पुनक्पयोगप्रतिजागरचेन रिच्चतम् ।२। श्रोभितं गुर्वोदिप्रदत्त-शेषभोजनायेवनेन ।३। तीरितं पूर्वेऽपि कालावधी किश्विलाला-वस्थानेन ।४। कीर्तितं भोजनवेलायामसुकं मया प्रत्याखात-मधुना पूर्वे भोक्ष श्लुचारचेन । ५। पाराधितमिभिः प्रकारैः संपूर्वे निष्ठां नीतमिति । ६।

प्रत्याखानस्य चानन्तर्येष पारम्पर्येण च फलमिदम् ;—
रेपचक्वाणिक कए पासवदाराष्ट्रं ष्टुंति पिष्टिपादं ।
पासवदारपिष्ठाचे तण्डावुच्छेपणं डोड ॥ १ ॥

⁽१) स्पृष्टं पाबितं चापि योभितं तीरितं तथा। कीर्तितमाराधितं चैवेडये प्रवृतिनस्यम् ॥ १ ॥

⁽२) प्रत्याख्याने क्षते खास्त्रवहाराच्यि भवन्ति पिहितानि । खास्त्रवहारपिधाने तृष्णाः खुच्छेरनं भवति ॥ २ ॥

'तण्डातुच्छेएण य पाउलीवसमी भवे मणुद्धाणं।
पाउलीवसमेण पुणी एचक्खाणं डवद सुदं॥ २ ॥
तत्ती चिरत्तधमी कमाविवेगी पपुष्यकरणं च।
तत्ती केवलणाणं सासयसीक्खी तभी मोक्खी ॥३॥
न चावग्रकतिष्यमावग्रकं चैत्यवन्दनाद्येव व्यावकस्य, न षड्विधमिति वक्तं युक्तम्,

ेसमणेण सावएण य भवस्रकायव्ययं इवद जन्हा। भंतो भन्नो निसिस्त्रय तन्हा भावस्त्रयं नाम ॥ १ ॥

इत्यागमे त्रावनं प्रत्यावश्यकस्थोक्तत्वात्। न चात्र चैत्यवन्द-नाद्येवावश्यकं वक्तुमुचितम्, 'शंतो श्रष्ठो निसिस्स य' इति काल-ह्याभिधानात्, चैत्यवन्दनस्य च चैकालिकत्वेनोक्तत्वात्। श्रमु-योगहारेष्विप 'जसं समणो वा समणी वा सावए वा साविया वा तिचित्ते तन्मणे तक्षेचे तदट्ठोवठक्ते तदिष्ययकरणे तन्मावणा-भाविए उभग्रोकालं भावसायं करेड, से तं लोउक्तरिश्रं भावा-

⁽१) त्रच्याव्युच्छेदेन चात्रकोषयमो भवेद् मतुष्याचाम्। ऋतुकोषयमेन पुनः प्रत्याख्यानं भवति गुत्रम् ॥ ६॥ तत्यारित्यधर्मः कर्मावपाकोऽपूर्वकरणं च। ततः केवसत्तः नं याचनसौद्यस्ततो मोचः॥ १॥

⁽२) जनपोन जावकेण चाव्यक्ततैव्यकं भवति यसात्। जनोऽक्रो नियस्त साहावस्यकं नाम ॥ १ ॥

⁽३) यत् त्रमचो वा त्रमची वा त्रावको वा त्राविका वा तिव्रसस्त्रस्तासका कहे-श्यक्षदचीप्युक्तस्त्रहिषैतकर्णसङ्कावनाभावित एक्षयकासमावश्यकं कुर्वात्, तक्को-कोसरं भावावश्यकम् ।

वस्रयं इति वचनात् त्रावकस्वाप्यावस्वकमुक्तमेव। ततः कत-वड्विधावस्वकर्मा स्वाध्यायम्, प्रस्तृतविध्यादेः पश्चनमस्कारस्य वा परिवर्तनं क्वर्यात् ; पथ्वा, स्वाध्यायं पश्चविधं वाचना प्रश्च-परिवर्तना-ऽनुप्रेचा-धर्मकथारूपं क्वर्यात्। यस्तु साधूपात्रयमा-गन्तुमग्रक्तो राजादिवी सष्टिको वा बद्मपायः स स्वय्ष्ट एवा-वस्यकं स्वाध्यायं च करोति। उत्तममित्युत्तमनिर्जराहितुम्, यदाह ;—

ेवारसिवस्था वि तवे सन्भितरबास्ति कुसलदिहे। निव सत्यि निव स सोसी सन्भायसमं तवीक्यां॥ १॥ तथा,

ेस उभाए व पसर्य भागं जागर च सव्यपरमस्यं। सउभाए वहंतो खबे खबे जार वेरमं॥१॥ इस्यादि॥१३०॥

> न्याय्ये काले ततो देवगुरुसृतिपविवितः। निद्रामल्पामुपासीत प्रायेशाब्रह्मवर्जकः॥ १३१॥

न्याय्यो न्यायादनपेतः कालः, संच रावेः प्रश्नमयामोऽर्धरात्रं वा ग्ररीरसात्म्येन, तत इति खाध्यायकरचाननारं, निद्रामच्या-सुपासीतिति क्रिया। कथ्यूतः सन् ? देवगुरुस्मृतिपविवितः—

⁽१) द्वादयिकीयि तपि वाभ्यन्तरवाञ्चे क्रयसदिहे। नामस्त नापि च भविष्यति स्वाध्यायसमं तपःसभी ॥ १ ॥

⁽१) साध्यावेन प्रयसंध्यानं जानाति च सर्वपरचार्णम्। स्वाध्यावे वर्त्तनानः चले चले वाति वैरान्यस्॥१॥

देवा घर्ष ब्रहारकाः, गुरवो धर्मा चार्यः, तेषां स्नृतिर्मनस्यारोपणं तया पवितितो निर्मलोभूताका। उपलच्च चैतचतः गर्यगमनदुष्कृतगर्धा-सुक्ततानुमोदना-पचनमस्कारस्मरणप्रस्तीनाम्। न
ह्येतत्स्मरणमन्तरेष पविचता भवति। तच देवस्मृतिः—"'नमो
वीयरायाणं सव्यसूणं तिलोकपूर्याणं जच्च हिमवत्युवार्षणं" दत्यादि।
गुरुस्मृतिय—"धन्यास्ते ग्राम-नगर-जनपदादयो येषु मदीया
धर्माचार्या विद्यान्ताः" निद्रामस्यामिति। निद्रामिति विशेष्यम्,
पन्यामिति विशेषणम्। विशेषणस्य चाच विधिः, "सविशेपणे दि विधि-निषेषौ विशेषणस्य चाच विधिः, "सविशेपणे दि विधि-निषेषौ विशेषणस्य चाच विधिः, "सविशेपणे दि विधि-निषेषौ विशेषणस्य चाच विधिः, दर्शनावरणीयकर्मीदयेन निद्रायाः स्वतः सिद्यलात्, 'सप्राप्ते दि प्रास्त्रमर्थवत्' दत्युक्तप्रायम्। मब्रह्म मेथुनं तद् वर्जयति सब्रह्मवर्जकः, प्रायेणेति
बाद्येन, ग्रदस्थत्वादस्य ॥ १३१॥

पुनस् ---

निद्राच्छेदे योषिदङ्गसतत्त्वं परिचिन्तयेत् । स्यूलभद्रादिसाधूनां तिव्ववित्तं पराम्यगन् ॥१३२॥

परिषतायां रात्री निद्राया उद्देरे सति योषिदङ्कानां स्त्री-गरीराणां सतस्तं स्वरूपं परितसिन्तयेत्। किं कुर्वन् ? स्यूस-

⁽१) ननो नीतरागेभ्यः चर्चचेश्यक्तैबोक्यपूजितेभ्यो वचास्थितवस्तुनाहिभ्यः। ८०

भद्रादीनां साधूनां तिवहत्तिं योविदश्वः निहत्तिं परास्थान् षतुस्मरन्।

स्मृतभद्रचरितं संप्रदायगग्यम् । स चायम् ;---

पस्ति सीधप्रभाजालधूपधूमेर्निरस्तरैः। नितगङ्गार्कजासङ्गं पाटनीपुत्रपत्तनम् ॥ १ ॥ तत्र निखण्डपृथिवीपतिः पतिरिव श्रियः। समुरखाति विषलान्दो नन्दो नामाभवद् कृपः ॥ २ ॥ विसंकट: त्रियां वासीऽसंकट: शक्टी धियाम । यकटाल दित तस्य वभूवामात्यपुद्धव: ॥ ३ ॥ तस्याभूकोरष्ठतनयो विनयादिगुवास्यदम्। प्रस्थूलधीः स्थूलभद्रो भद्राकारनिशाकरः॥ ४॥ भितानिष्ठः कनिष्ठोऽस्य श्रीयकोऽजनि नन्दनः। नन्दराड्इदयामन्दानन्दगोधीर्षचन्दन: ॥ ५ ॥ बभूव तत्र कोशिति विश्वा रूपश्चियोर्वशी। वशीक्ततजगचेतासेतीभूजीवनीविधः॥ ६॥ भुषानी विविधान् भोगान् स्यूत्रभद्री दिवानिशम्। चवासावस्ये तस्या दादगान्दानि तनानाः ॥ ७ ॥ त्रीयकस्वष्गरचोऽभूद् भूरिवित्रक्षभाजनम्। द्वितीयमिव द्वदयं नन्दस्य पृथिवीपते: ॥ ८ ॥ तत्र चासीद् वरबचिर्नाम द्विजवरायणी:। कवीनां वादिनां वैयाकरणानां घिरोमणि: ॥ ८ ॥

खयंकतेनवनवैरष्टोत्तरप्रतेन सः। हत्तेः प्रहत्तोऽनुदिनं तृपावस्ताने सुधीः ॥ १०॥ मिष्यादृगिति तं सन्त्री प्रश्रांस न जातुचित । तुष्टोऽप्यस्मै तुष्टिदानं न ददौ तृपतिस्ततः ॥ ११ ॥ प्रात्वा वरविस्तत्र दानाप्रापणकारणम्। भाराधितुमारेभे ग्टिइचीं तस्य मन्त्रिणः ॥ १२॥ संतुष्टया तयाऽन्येदाः कार्यं प्रष्टोऽब्रवीदिदम् । राजः पुरस्ताद् मलाव्यं तव भर्ता प्रशंसत् ॥ १३ ॥ तया तद्परोधेन तिहत्रप्तोऽवदत् पति:। मिष्यादृष्टेरसुष्याइं प्रशंसामि कद्यं वचः ?॥ १४॥ तयोक्तः साम्रहं मन्त्री तत् तथा प्रत्यपदात । भन्धकीबालमूर्जीणामाग्रही बलवान् खलु॥ १५॥ राज्ञ: पुरस्तात् पठत: काव्यं वरक्चेस्तत:। चहो ! सुभाषितमिति वर्षयामास मन्त्रिराट्॥ १६॥ दीनार्थतमष्टायं ततीऽसी नृपतिर्ददी। राजमान्यस्य वाचापि जीव्यते चानुकूलया ॥ १० ॥ दीनाराष्ट्रोत्तरगते दीयमाने दिने दिने। किमेतद् दीयत इति भूपं मन्त्री व्यक्तित्रपत् ?॥ १८॥ भयोचे तृपतिर्मित्वन् ! दश्लोऽस्मे ललप्रांसया । वयं यदि खयं दश्नो दश्न: विं न पुरा तत: १॥ १८॥ मन्त्राप्यूचे मया देव ! प्रशंसा नास्य निर्ममे । काष्यानि परकीयानि प्रश्रयंस तदा लाइम् ॥ २०॥

पुरो नः परकाव्यानि खकीक्तस्य पठत्ययम्। किमैतत् सत्यभावेनेत्यभाषत कृपस्ततः ॥ २१ ॥ एतत्पिठतकाव्यानि पठन्ति बालिका चिप । दर्शयिषामि वः प्रातरिखूचे सचिवीऽपि च ॥ २२ ॥ यचा यचदत्ता भूता भूतदत्ता तथैषिका। वेषा रेषेति सप्तासन् प्राज्ञाः पुत्येोऽस्य मन्त्रिषः ॥ २३ ॥ जयाइ ज्यायसी तासां सकदुत्रं तथेतराः। दित्यादिवारक्रमतो खद्मन्ति सा यथाक्रमम् ॥ २४ ॥ राज्ञः समीपं सचिवो हितीयेऽक्रि निनाय ता:। तिरस्कारिकालिताः समुपावेशयच सः ॥ २५ ॥ षष्टीत्तरयतं स्रोकान् खयं निर्माय नैत्यिकान्। जर्वे वरविद्या प्रव्यमुख्येष्ठमन् विरे ॥ २४ ॥ तती वरक्चे कष्टी राजा दानं न्यवारयत्। छपायाः सचिवानां **डि नियडानुयडचमाः ॥ २०॥** तती वरविर्मेखा यन्त्रं गङ्गाजले न्यधात्। तबाध्ये वस्त्रवहं च दीनारग्रतमष्ट्युक् ॥ २८ ॥ प्रातगेङ्गामसी सुला यन्त्रमाक्रमदंक्रिया। दीनारास्ते च तत्पाचानुत्पत्य न्यपतंस्ततः ॥ २८ ॥ 'स एवं विदधे नित्यं जनस्तेन विसिष्मिये। तच त्रुत्वा जनत्रुत्वा राजाऽशंसच मन्त्रिये ॥ १० ॥

⁽१) च यवं च।

ददं यदास्ति सत्यं तत् प्रातवीचामहे स्वयम्। प्रत्युक्ती मन्त्रिणा राजा तत्त्रवा प्रत्यपद्यत ॥ ११ ॥ दस्वा शिकां चरः सायं प्रेषितस्त्व मित्रणा। गरस्तम्बनिकीनोऽस्थात् पचीवानुपलचितः ॥ ३२ ॥ तदा वर्वचिर्मेला इनं मन्दाकिनीजले। दीनाराष्ट्रोत्तरमतमस्यं मास्य ययी गरहे ॥ ३३ ॥ तज्जीवितिमवादाय दीनारग्रत्यिमेष त्। चरः समर्पयामास प्रच्छतं वरमन्त्रिषे ॥ ३४॥ भव गुप्तात्तदीनारयत्यिर्मन्त्री निमालये। ययी राजा समं गङ्गामागाद वरक्चिस्तदा ॥ ३५ ॥ द्रष्टुकामं तृपं दृष्टोल्ष्टमानी सविस्तरम्। स्तीतं प्रवहते गङ्गां सूढो वरविस्ततः ॥ १६॥ स्तत्यन्तेऽचालयद् यन्तं यदा वरक्चिः पदा। दीनारग्रस्थितत्यत्य नापतत् पाणिकोटरे ॥ ३० ॥ द्रव्यं सीऽन्वेषयामास पाणिना तक्कले ततः। ^१तस्थावपर्यास्तूषाको भूती ष्टशे हि मीनभाक् ॥ ३८॥ इत्यूचे च महामात्यः किंते दत्ते न जाइवी। न्यासीकतमपि द्रव्यमन्वेषयसि यद् सुडु: १॥ ३८॥ उपसच्च रहाणेदं निजद्रव्यमिति ब्र्वन्। सोऽर्पयामास दोनारग्रत्यिं वरक्चे: करे ॥ ४० ॥

⁽१) च छ -ववस्यं तू-।

दीनारप्रत्विना तेनोकार्षे प्रदुत्विनेव सः। दगामासादयामास मरबादपि दुसादाम् ॥ ४१ ॥ विप्रतारियतं सोकं सायमत्र चिपत्यसी। द्रव्यं प्रातः पुनर्गृद्वातीत्यूचे सचिवो ऋपम् ॥ ४२ ॥ साध् जातमिदं इश्वेत्यालपन् मन्त्रिपुङ्गवम्। विसायसोरनयनः स्वीत्रमागाद् मशीपतिः ॥ ४३ ॥ षमर्षेषो वरक्चिः प्रतिकारं विचिन्तयन्। ग्रइखरूपं सचिवस्थापृच्छचेटिकादिकम् ॥ ४४ ॥ तस्याय कथयामास काचित् सचिवचेत्रादः। . भूपति: त्रीयको द्वाहे भोच्चते सन्विवेदमनि ॥ ४५ ॥ सळाते चात्र प्रस्नादि दातुं नन्दाय मन्तिचा । शक्तियाचां राज्ञां हि शक्तमावसुपायनम् ॥ ४४ ॥ समासादा च्छलज्ञस्तच्छलं वरबविस्तत:। चवकादि प्रदायेति जिसक्पाखापाठयत् ॥ ४० ॥ न वेस्ति राजा यदसी गकटाल: करिष्मित। व्यापाद्य नन्दं तद्वाच्ये त्रीयकं स्थापियचित ॥ ४८ ॥ स्थाने स्थाने च पठतो डिम्थानेवं दिने दिने। जनस्त्या तदत्रीषीदिति चाचिन्तयद् तृपः ॥ ४८ ॥ बाबका यत्र भावनी भावनी यत्र योचितः। भोत्यातिकी च या भाषा सा भवत्यन्यया निष्ठ ॥ ५०॥ तत्रत्ययाधे राजाय प्रेषितो मन्त्रिवस्मनि । प्रकषः सर्वमागत्य यथादृष्टं व्यक्तिज्ञपत् ॥ ५१ ॥

ततय सेवावसरे मन्त्रिणः समुपेयुषः। प्रणामं कुर्वती राजा कीपात् तस्त्री पराशुख: ॥ ५२ ॥ तज्ञावचोऽय वेग्सेत्यामात्यः त्रीयकमववीत्। राज्ञोऽस्मि जापितः केनाप्यभक्तो विदिवनिव ॥ ५२ ॥ प्रसावकसादसाकं कुलच्य उपस्थित:। रच्चते. वसः। क्रवृषे यदादिशमिमं मम ॥ ५४ ॥ नमयामि यदा राजे शिरिक्खास्तदासिना। प्रभन्नः खामिनो वध्यः पितापीति वदेस्ततः ॥ ५५ ॥ जरसापि यियामी मय्येवं याते परासुताम । लं मल्लाखरहस्तको मन्दिष्यसि चिरं ततः॥ ५६ ॥ श्रीयकोऽपि बदनेवमवदद् गद्गदस्वरम्। तात ! घोरमिदं कर्म खपचोऽपि करोति किम् १॥ ५०॥ प्रमात्योऽप्यव्रवीदेवमेवं कुर्वन् विचारणाम् । मनीरथान् पूरयसे वैरिकामेव केवलम् ॥ ५८ ॥ राजा यम इवोइग्हः सकुट्ग्बं न इन्ति माम्। यावत्, तावमामैकस्य चयाद् रच कुट्यकम् ॥ ५८ ॥ मुखे विषं तालपुटं न्यस्य मंस्यामि भूपतिम्। शिर: परासोर्मे किन्द्रा: पिखड़त्या न ते तत: # 40 B विभैवं बोधितस्तत् स प्रतिपेदे चकार च। गुभोदकीय धीमनाः कुर्वन्यापातदाक्णम् ॥ ६१॥ भवता किमिदं वस ! विदधे कर्म दुष्करम्। ससंभामिति प्रोक्तो तृपेच श्रीयको वदत्॥ ६२॥

यदैव खामिना जाती द्रोच्चयं निष्ठतस्तदा। भर्नित्तानुसारिण सत्यानां हि प्रवर्तनम् ॥ ६३ ॥ सत्यानां युज्यते दोषे खयं ज्ञाते विचारणा। स्वामिन्नाते प्रतीकारी युज्यते न विचारणा ॥ ६४ ॥ कतीर्धदेशिकं नन्दस्ततः त्रीयकमत्रवीत्। सर्वव्यापारसिंहता सुद्रेयं ग्रह्मतामिति ॥ ६५ ॥ भय विश्वपयामास प्रवस्य श्रीयको ऋपम्। ख्लभद्राभिधानोऽस्ति पिटतुच्यो ममायजः ॥ ६६ ॥ पित्रप्रसादाद् निर्वाधं को गायास्त निकेतने। भोगानुषभुद्धानस्य तस्याच्या द्वादमागमन् ॥ ६०॥ षाइयाय स्मृत्तमद्रस्तमधं भूभुजोदितः। पर्यासीचासुमादेशं करिचामीत्यभाषत ॥ ६८ ॥ षवीवासीचयेत्युक्तः स्यूत्रभद्री महीभुना । भगोकविनकां गला विममभंति चैतसा ॥ ६८ ॥ गयनं भोजनं सानं यचान्यत् सुखसाधनम्। कासेऽवि नामुभूयको रोरेरिव नियोगिभिः ॥ ७० ॥ नियोगिनां खान्यराष्ट्रचिन्ताव्यये च चैतसि । · प्रेयसीनां नावकामः 'पूर्णेकुष्णेऽश्वसामिव ॥ ७१ ॥ त्यका सर्वमपि खाधे राज्ञी ध्ये कर्वतामपि। चपद्रवन्ति पिशुना चह्रदानामिव हिका: ॥ ७२ ॥

⁽१) च पूर्वे।

यया खरेडद्रविणव्ययेनापि प्रयत्यते। राजार्थे, तहदाबार्थे यत्वते किं न धीमता १ ॥ ७३ ॥ विस्थीवं व्यधात् केशोत्पाटनं पच्चसृष्टि सः। रस्रकम्बलद्याभी रजोहरणसप्यय ॥ ७४ ॥ तत्रव स महासच्ची गला सदसि पार्थिवम्। पालीचितमिदं धर्मलाभः स्तादित्यवीचत ॥ ७५ ॥ ततः स राजसदनाद् गुष्ठाया इव केसरी। नि:ससार महासार: संसारकरिरोषण: ॥ ७६ ॥ किमेष कपटं कला यायाद् वेध्याग्टइं पुन:। रत्यप्रत्ययतः स्मापी गवाचेण निरैचत ॥ ७० ॥ प्रदेशे शबदुर्गन्धेऽप्यविकूणितनासिकम्। यान्तं दृष्ट्वा स्यूलभद्रं नरेन्द्रोऽधूनयक्किरः ॥ ७८ ॥ भगवान् वीतरागोऽसावस्मिन् धिग् मे कुचिन्तितम्। द्यातानं निनिन्दो चैनेन्दस्तमभिनन्दयन् ॥ ७८ ॥ स्यूलभद्रोऽपि गला श्रीसंभूतिविजयान्तिके। दीचां सामायिकोचारपूर्विकां प्रत्यपद्यत ॥ ८०॥ ग्रहीला श्रीयकं दोिषा ततो नन्दः सगीरवम । सुद्राधिकारे निः येषव्यापारसङ्गिते न्यधात ॥ ८१ ॥ चकार त्रीयको राज्यचिन्तामविहतः सदा। साचादिव मकटालः प्रक्रष्टनयपाठवात् ॥ ८२ ॥ स नित्यमपि कोशाया विनीतः सदने ययौ। चेदाद आतुर्विषयादि जुलीनैर्वेष्ट मन्यते॥ ८२॥

28

स्यूसभद्रवियोगाती श्रीयकं प्रेश्व साऽवदत्। पष्टे दृष्टे चि दुःखार्ता न दुखं धर्तुमीयते ॥ ८४ ॥ ततस्तां त्रीयकोऽवोचदार्ये ! किं कुर्मेष्ठे वयम । पसी वरकचि: पापीऽचातयक्तनकं हि न: ॥ ८५ ॥ भवाष्डोत्यितवचानिप्रदीपनसङ्घोदरम् । स्यूलभद्रवियोगं च भवत्वा प्रकरोदयम् ॥ ८६ ॥ खळाम्यासपकोशायां यावद रह्योऽस्यसी खलः। तावत् प्रतिक्रियां काश्विद् विचिन्तय मनस्तिनि ! ॥ ८० ॥ तदादिशोपकोशां यत् प्रतार्थे कथमप्यसी। विधीयतां वरकचिर्भद्यपानकचिस्त्वया ॥ ८८ ॥ प्रेयोवियोजनाट् वैराट् दाचिष्याट् देवरस्य च। तत् प्रतिज्ञाय सा सबीऽप्युपकोशां समादिशत्॥ ८८ ॥ कोगायास निदेशेनोपकामा तं तथा व्यधात । यद्या पपी सुरामेष स्त्रीवगै: क्रियते न किम ? ॥ ८० ॥ सरापानं वरविः स्वैरं भट्टी दा कारितः। चपकोगिति कोगाये गर्मसाय निगात्वये ॥ ८१ ॥ पय कोगामुखात् सर्वे ग्रयाद यीयकोऽपि तत्। भेने च पिढवैरस्य विचितं प्रतियातनम् ॥ ८२ ॥ यकटालमहामात्यात्ययात् प्रस्ति सीऽप्यभूत्। भद्दी वरक्विभूपसेवावसरतत्परः ॥ ८३ ॥ स प्रत्यचं राजकुत्ते सेवाकाली समापतन्। राजा च राजनोकैय सगीरवसहस्यत ॥ ८४ ॥

पन्यदा नन्दराड् मन्त्रिगुणसारणविह्नलः। सदसि श्रीयकामात्यं जगादैवं सगहदम् ॥ ८५ ॥ भितामान् प्रक्रिमान् नित्यं प्रकटाली महामितः । भभवद् मे महामात्यः शक्तस्येव ब्रहस्पतिः ॥ ८६ ॥ एवमेव विपन्नीऽसी दैवादच करोमि किम् ?। मन्ये शुन्यमिवास्थानमहं तेन विनासन: ॥ ८७ ॥ उवाच श्रीयकोऽप्येवं किं टेवेड विद्धारी। इदं वरकचि: सर्वे पापं व्यक्ति सदाप: ॥ ८८ ॥ सत्यमेष सरां भट्टः पिवतीति तृपोदिते। म्बोडमं दर्शयितास्मीति श्रीयकः प्रत्यवीचत ॥ ८८ ॥ त्रीयक्तु दितीयेऽक्रि सर्वेषामीयुषां सदः। स्ववंसा शिक्षितेनाग्रं पश्चमेकैकमार्पयत् ॥ १००॥ तलालं मदनफलरसभावनयाऽश्वितम्। दुरात्मनी वरक्वेरपैयामास पक्कम् ॥ १॥ कुतस्यमद्भगामोदमिदमित्यभिवर्णिन:। घातं राजादयो निन्ध्नीसाये खं खमब्बन् ॥ २ ॥ मोऽपि भट्टोऽनयद् घातं घाणाये पद्भनं निजम्। चन्द्रहाससुरां सखी राचिपीतां ततीऽवसत्॥ ३॥ धिगमं सीधुपं ब्रह्मबन्धं बन्धवधीचितम्। सर्वेरित्याक्र्यमानी निर्ययी सदसीऽय सः॥ ४ ॥ ब्राह्मणा याचितास्तेन प्रायश्विसमचीक्षवन् । तापितवपुषः पानं सुरापाणाचचातकम् ॥ ५ ॥

मूषया तापितमय पपौ वरविश्वपु। प्राणेष सुसुचे सवास्तत्रदाष्ट्रभयादिव ॥ ६ ॥ स्यूलभद्रोऽपि संभूतविजयाचार्यसिवधी। प्रव्रक्यां पालयामास पारहम्बा श्रुतास्बुधे: ॥ ७ ॥ वर्षाकालेऽन्यदाऽऽयाते संभूतविलयं गुक्म्। प्रणम्य सूर्भा सुनय इत्यरः इतिभग्रहान् ॥ ८॥ परं सिंहगुहादारे क्षतीसर्ग उपीवित:। भवस्थास्ये चतुर्मासीमेकः प्रत्यश्र्षोदिदम् ॥ ८॥ दृग्विषास्विनदारे चतुर्मासीसुपोषित:। खास्यामि कायोक्षगंग हितीयोऽभ्यग्टहीदिति ॥ १० ॥ उदार्गी कूपमण्डूकासने मासचतुष्टयम्। स्यास्याम्य्योषित इति खनीयः प्रत्यपद्यतः ॥ ११ ॥ योग्यान् मला गुदः साधून् यावत् तानन्वमन्यत । खूलभद्रः पुरोभूय नलेवं तावदब्रवीत् ॥ १२ ॥ कोशाभिधाया वैद्याया गरहे या चिनशालिका। विचिववामगास्त्रीत्रवरणालेख्यगालिनी ॥ १३ ॥ तवाक्षततपः कर्मविश्रेषः षड्रसाधनः। खाखामि चतुरी मासानिति मैऽभियइ: प्रभी ! ॥ १४ ॥ जालोपयोगाद् योग्यं तं गुबस्तवात्वमन्यत । साधवय ययु: सर्वे खं खं स्थानं प्रतिश्रुतम् ॥ १५ ॥ स्यूलभद्रोऽपि संप्राप कोशाविष्यानिकेतनम्। प्रभ्यस्थी ततः कोशाप्यादितास्त्रसिरयतः॥ १६॥

सुक्तमार: प्रक्तत्यासी रकास्तका द्वीदणा। व्रतभारेण विधुरोऽनागादिति विचिन्त्य सा॥ १७॥ उवाच खागतं खामिन्। समादिश करोमि किन्?। वपुर्धनं परिजनः सर्वमितत् तवैव हि ॥ १८ ॥ चतुर्माची वसत्ये मे चित्रशालेयमप्येताम्। इत्यूचे स्यूचभद्रोऽपि सा तूचे रहन्नातामिति ॥ १८ ॥ तया च तस्यां प्रगुषीक्षतायां भगवानपि। कामस्थानेऽविश्रद् धर्म इव स्वयसवस्या ॥ २०॥ भव सा षड्रसाद्वारभीजनाननारं सुनी:। विश्वेषक्षतशृङ्गारा चोभाय समुपाययी ॥ २१ ॥ सोपविष्टा पुरस्तस्योलुष्टा काचिदिवासराः। चतुरं रचयामास इावभावादिकं सुदुः ॥ २२ ॥ करणानुभवकीडोहामानि सुरतानि च। तानि तानि प्राक्तनानि स्नारयामास साऽसज्जत् ॥ २३ ॥ यद् यत् चीभाय विदधे तया तत्र महासुनी। तत् तर् मुधाऽभवर् यहर् वच्चे नखविलेखनम् ॥ २४ ॥ प्रतिवासरमध्येवं तत्त्वीभाय चकार सा। जगाम स तु न चीभं मनागपि महामना: ॥ २५ ॥ तयोपसर्गकारिच्या प्रत्युतास्य महामुनी:। भादीप्यत भ्यानवक्रिमें ववक्रिरिवाश्वसा ॥ २६ ॥ लिय पूर्विमवाज्ञानाद् रन्तुकामां धिगीश! माम्। पाकानमिति निम्दन्ती साऽपतत् तस्य पादयी: ॥ २० ॥

सुनेस्तर्खेन्द्रियजयप्रकार्षेच चमलृता। प्रपेदे यावकलं सा 'ग्रहीलेवमभिष्रहम् ॥ २८ ॥ तृष्ट: कदापि कस्मेचिद ददाति यदि मां ऋप:। विना पुर्मासमिकं तमन्यव नियमो मम ॥ २८ ॥ गते तु वर्षासमये ते चयोऽपि हि साधवः। निर्व्यूटाभिग्रहा एयुर्गुद्यादान्तिकं क्रामात् ॥ ३० ॥ भायान् सिंहगुहासाधुरही ! दुष्करकारक !। तव खागतमित्यूचे किचिदुत्याय स्रिचा ॥ ३१ ॥ स्रिचा भाषिती तद्दायान्तावितरावि । समे प्रतिज्ञानिवीं है समा हि खामिस लिया ॥ ३२ ॥ भवायानां स्वृत्तभद्रमुखाय गुदरब्रवीत्। दुष्करदुष्करकार! महाकान्! खागतं तव ॥ ३३ ॥ सास्याः साधवस्तेऽयाचिन्तयवित्यहो ! गुरीः । ददमामकाषं मन्त्रिपुचताहितुकं ननु ॥ २४ ॥ यदासी षड्रसाहार: क्रतदुष्करदुष्कर:। इदं वर्षोन्तरे तर्षि प्रतिज्ञास्त्रामहे वयम् ॥ ३५ ॥ एवं मनिस संस्थाप्य सामग्रीस्ते महर्षयः। कुर्वाचाः संयमं मासाबष्टावगमयन् क्रमात् ॥ १६ ॥ उत्तमर्थ दव प्राप्ते काले दृष्टः पुरी गुरी:। साध्व: सिंहगुहावासी चकारित प्रतिश्रवम् ॥ ३० ॥

⁽१) ग ए च -प्रहीबैंद-।

कोगाविध्यायः है नित्यं षड्रसाहारभोजन:। भगवन् ! समवस्थास्ये चतुर्मासीमिमामहम् ॥ ३८ ॥ स्यूनभद्रेण मात्मयदितदङ्गीकरीत्ययम्। विचार्येत्यपयोगेन जाला च गुकरादिशत्॥ १८॥ वसः ! माभिग्रणं कार्वीरतिदुष्करदुष्करम् । स्यूलभद्रः चमः कर्तुमद्रिराज दव स्थिरः ॥ ४० ॥ न दि मे दुष्करोऽप्येष कयं दुष्करदुष्करः ?। तदवयां करिषामीत्युवाच स सुनिर्गुरम् ॥ ४१ ॥ गुरुक्षेऽसुना भावी भंगः प्राक्तपसीऽपि ते। चारोपितोऽतिभारो हि गानभङ्गाय जायते ॥ ४२ ॥ गुरोर्वची ध्वमन्याय वीरंमच्यो मुनिः स तु। चनीनकेतनं प्राप कोशायासु निकेतनम् ॥ ४३ ॥ स्यूलभद्रसाधेयेशायाति मन्ये तपस्त्रासी। भवे पतन् रचाणीय इत्युत्याय ननाम सा॥ ४४॥ वसत्ये याचितां तेन सुनिना चित्रशालिकाम्। कोशा समर्पयामास स सुनिस्तत्र चाविश्रत्॥ ४५॥ तं भुक्तवब्रसाहारं मध्याक्रेऽय परीचितुम्। कोशापि तत्र लावकाकोशभूता समाययौ ॥ ४६ ॥ चुचीभ स मुनिर्मङ्ग पङ्गजाचीमुदीच्य ताम्। स्त्री ताइग् भोजनं ताइग् विकाराय न किं भवेत् ? ॥४०॥ सारात्यी याचमानं तं कोशाप्येवमवोचता वयं हि भगवन् ! वेग्या वग्या: स्नो धनदानत: ॥ ४८ ॥

स मुनिव्याजद्वाराथ प्रसीद स्मलोचने !। पद्मासु भवति द्रव्यं किं तेलं वालुकाखिव ? ॥ ४८ ॥ नेपालभूपोऽपूर्वस्रे साधवे रहकाम्बलम्। दत्ते तमानयेखूचे सा निर्वेदयितुं सुनिम्॥ ५०॥ ततस्वाल नेपालं प्रत्यकालेऽपि बालवत्। पिक्सायामिलायां स निजन्नत इव खबलन् ॥ ५१ ॥ तव गला महीपालाद् रवक्षम्बलमाप्य च। स मुनिर्वेत्तितो वर्कन्यासंस्त्रत्र च दस्यवः ॥ ५२ ॥ षायाति सचमित्याख्यद् दख्नां यकुनस्ततः। किमायातीत्यप्रच्छच दस्युराड् दुस्थितं नरम् ॥ ५३ ॥ षागच्छन् भिचुरिकोऽस्ति न कश्चित् तादृशोऽपरः। दत्यभंसद् द्रुमाक्डसीरसेनापते: स तु ॥ ५४ ॥ साधुस्तनाय संप्राप्तस्तैविधत्य निरूपित:। कमप्यर्थमपम्बद्धिमुचे च मलिक्क्चेः ॥ ५५ ॥ एतक्कचं प्रयातीति व्याष्टरच्छकुनः पुनः। सुनिं चीरपति: प्रोचे सत्यं बृष्टि किमस्ति ते ? ॥ ५६ ॥ वेग्याक्ततेऽस्य वंशस्यान्तः चिप्तो रत्नवम्बनः। पस्तीत्युक्ते सुनियोरराजेन मुसुचेऽय सः ॥ ५० ॥ स समागत्य कोशाये प्रददी रव्रकस्बसम्। चिचेप सा ग्रहस्रोत:पद्में नि:ग्रह्मीव तम् ॥ ५८ ॥ प्रजलाद् सुनिरायेवं न्यचिप्यश्चिकर्दमे। महामूखो द्वासी रव्यवस्थलः कस्युकिएठ ! किम् ? ॥५८॥

भव को गाय्यवाचैवं कम्बलं सूद ! गोचिस । गुजरत्नमयं खभ्ने पतन्तं खंन ग्रीचिस ॥ ६०॥ तत् युत्वा जातसंवेगो मुनिस्तामित्यवोचत । बोधितोऽस्मि लया साधु संसारात् साधु रिचतः ॥ ६१ ॥ पवान्यतीचारभवान्युक्यूखयितुमात्मनः। यास्यामि गुरुपादान्ते धर्मलाभस्तवानघे ! ॥ ६२ ॥ को यापि तमुवाचैवं सिष्या मे दुष्कृतं लयि। ब्रह्मव्रतस्थयाप्येवं मया यदसि खेदित: ॥ ६३ ॥ पाशातनीयं युपाकं बोधहितोर्मया कता । चन्तथ्या सा गुरुवच: श्रयध्वं यात सत्वरम् ॥ ६४ ॥ रच्छामीति भणिला च गुर्वन्तिकम्पेत्य सः। ्र ग्रहीलालोचनां तीच्यमाचचार पुनस्तपः ॥ ६५ ॥ राचा प्रदत्ता की शापि तुष्टेन रिवनिऽन्यदा। राजायत्ति प्रित्राय विना रागेष सा तु तम् ॥ ६६ ॥ रवृत्तभद्रं विना नान्यः पुमान् कोऽपीत्यइनियम् । सा तस्य रियनोऽभ्यचें वर्षयामास वर्षिनी ॥ ६०॥ रथी गला गरहोद्याने पर्यक्वे च निषद्य स:। तनानीरस्नायिति स्वविज्ञानमद्र्ययत्॥ ६८॥ माकन्दलुम्बी बापेन विव्याध तमपीषुणा। पुक्रें उन्होन तमप्यन्येनेत्या इस्तं घराष्यभूत्॥ ६८॥ हन्तं किला चुरप्रेष बाषत्रेषिमुखस्थिताम्। तुम्बीं स्वपाणिनाऽऽक्षथाधीनस्तस्त्रे स पार्पयत्॥ ७०॥

इदानीं मम विज्ञानं पछोत्यासप्य सापि हि। व्यधत्त सार्षणं राघिं तस्त्रीपरि ननर्ते च ॥ ७१ ॥ सूचीं चिम्रा तब राशी पुष्पपत्नैः पिधाय ताम्। सा ननर्त च नो सूचा विद्वा राशिय न चतः ॥ ७२ ॥ ततः स अवे तृष्टोऽस्मि दुष्करेणासुना तव। याचल यद् ममायत्तं ददामि तद्र भ्वम् ॥ ७३ ॥ सोवाच विं मयाऽकारि दुष्करं येन रिम्नतः। द्रदमप्यधिकं चास्रात् किमभ्यासेन दुष्करम् ?॥ ७४॥ विश्वास्त्रवीच्छेदोऽयं कृत्यं चेदं न दुष्करम्। पशिचितं स्यूलभद्रो यचके तत्तु दुष्करम् ॥ ७५ ॥ दादशाब्दानि बुभुजि भोगान् यत्र समं मया। तचैव चित्रशालायां तस्यी सोऽखण्डितवतः ॥ ७६ ॥ दुग्धं नकुलसंचारादिव स्त्रीणां प्रचारतः। योगिनां दूचते चेत: स्यूसभद्रमुनिं विना ॥ ७० ॥ दिनमेकमपि स्थातुं कोऽसं स्त्रीसंनिधी तथा ?। चतुर्मासीं यथा तस्यी स्यूसभद्रोऽचतव्रतः ॥ ७८ ॥ चाचारः वड्रसंखित्रशासावासोऽक्रनान्तिके । प्रायोकं व्रतनोपायान्यस्य लोचतनोरपि ॥ ७८ ॥ विलीयन्ते धातुमया पार्धे वक्केरिव स्त्रियाः। स तु वच्चमयो सन्धे स्यूसभद्रो^१ सङ्गामुनिः ॥ ८० ॥

⁽¹⁾ 医耳·허萸明-1

ख्लभद्रं महासत्तं जतदुष्करदुष्करम्। व्यावर्ष्य युक्ता मुद्रैव मुखे वर्षयितुं परम् ॥ ८१ ॥ रिधकोऽप्यथ पप्रच्छ य एवं वर्ष्यते त्वया। को नाम खूनभद्रोऽयं महासत्त्विशरोमणिः ?॥ ८२॥ साप्यूचे प्रकटासस्य नम्दभूपासमन्त्रिषः। तनयः खूलभद्रोऽयं तवाचे वर्षयामि यम् ॥ ८३ ॥ तच्छुत्वा सोऽपि संभान्त रत्युवाच कताष्त्रतिः। . एवोऽस्मि किङ्करस्तस्य स्यूलभद्रमञ्जामुनै: ॥ ८४ ॥ संविम्नं साथ तं जाला विदधे धर्मदेशनाम्। प्रत्यवुष्यत सद्दुविमीदिनिद्रामपास्य सः॥ ८५॥ प्रतिबुद्धं च तं बुद्धा साऽऽख्यद् निजमभिग्रहम्। तत् श्रुत्वा विस्मयोत्पुक्कचोचनः सोऽब्रवीदिदम् ॥ ८६ ॥ बोधितोऽइं लया भद्रे ! खूलभद्रगुणोक्तिभि:। यास्त्रामि तस्त्र पत्यानं भवत्येवाद्य दर्शितम् ॥ ८७ ॥ कस्यापमलु ते भद्रे ! पालय स्वमभियहम्। उक्केवं सद्गुरो: पार्खे गला दीचां स पाददे ॥ ८८ ॥ भगवान् ख्राभद्रोऽपि तीवं व्रतमपालयत्। हादगाब्दप्रमाणय दुष्कातः समभूत्तदा ॥ ८८ ॥ तीरं नीरनिधेर्गला साधुसंघीऽखिलीऽप्यय। गमयामास दुष्कालं करासं कालराविवत्॥ ८०॥ पराखमानं तु तदा साधूनां विस्नृतं श्वतम् । पनभ्यसनती नश्यत्यधीतं धीमतामपि ॥ ८१ ॥

संघोऽय पाटलीपुत्रे समवायं विनिर्भमे । यदकाध्ययनोहेमाचासीद यस्य तदाददे ॥ ८२ ॥ ततस्वाटग्राङानि श्रीसंघोऽमेसयत्तदा । दृष्टिवादनिमित्तं च तस्त्री किश्विद् विचिन्तयन् ॥ ८३ ॥ संघीऽस्मरद् भद्रबाष्टीर्दृष्टिवादस्तरस्ततः। तदानयन हेती च प्रजिघाय सुनिहयम् ॥ ८४ ॥ गला नला सुनी तो तिमत्यूचाते कतास्त्रकी। समादियति वः संचस्तवागमनष्ठेतवे ॥ ८५ ॥ सोऽप्युवाच महाप्राणध्यानमारस्यमस्ति यत्। भविष्यति ततो हेतोर्न तवागमनं मम ॥ ८६ ॥ तहचस्ती मुनी गला संघस्याशंसतामय। संघोऽप्यपरमाञ्चयादिदेशेति सुनिहयम् ॥ ८० ॥ गला वाच: स पाचार्यी यः त्रीसंवस्य गासनम्। न करोति भवेत् तस्य दण्डः क इति ग्रंस नः ॥ ८८ ॥ संघवाद्य: स कर्त्तव्य दति विक्त यदा स त। तर्षि तहण्हयोग्योऽसीत्याचार्यो वाच्य उचकै: ॥ ८८ ॥ ताभ्यां गला तथैवीक्त पाचार्यीऽप्येवसूचिवान् । मैवं करोतु भगवान् संघः किन्तु करोलदः ॥ २०० ॥ मयि प्रसादं कुर्वाण: त्रीसंघ: प्रश्विणोत्विष्ठ । शिषान मेधाविनस्तेभ्यः सप्त दास्यामि वाचनाः ॥ १ ॥ तनैकां वाचनां दास्ये भिचाचर्यात पागतः। ष्मन्यां च कालवेलायां बिह्मभूम्यागतोऽपराम् ॥ २ ॥

भन्यां विकासवेसायां तिस्त्र भावध्यके पुन:। रीत्यत्येवं संघकायं मलार्यस्याविवाधया ॥ १॥ ताभ्यामेत्य तथास्थाते त्रीसंघीऽपि प्रसादभाक्। प्राडियोत् स्यूसभद्रादिसाध्य पश्चर्ती ततः ॥ ४॥ तान् स्रिवीचयामास तेऽप्यस्या वाचना इति। उद्भक्तेयुर्निजं स्थानं स्यूखभद्रस्ववास्थित ॥ ५ ॥ नोइच्यसे किमिल्युत्तः स्रिवा सोऽव्रवीदिदम्। नीइच्छे भगवन् ! किन्तु ममाल्या एव वाचनाः ॥ ६॥ स्रिक्चे मम ध्यानं पूर्णप्रायमिदं तत:। तदन्ते वाचनासुभ्यं प्रदास्यामि त्वदिष्क्या॥ ७॥ पूर्णे ध्याने तत: स्रिरिच्छया तमवाचयत्। हिवस्तूनानि पूर्वीण दश यावत् पपाठ सः॥ ८॥ विश्वारक्रमयोगेन पाटसीपुवपत्तनम्। त्रीभद्रबाहुरागत्य बाह्मोद्यानमित्रियत् ॥ ८ ॥ विश्वारक्रमयोगेन व्रतिन्योऽव्रान्तरे तुताः। भगिन्यः खूलभद्रस्य वन्दनाय समाययुः॥ १०॥ वन्दित्वा गुरुमुस्ताः स्यूसभद्रः क नु प्रभो !। इष्टापवरकेऽस्तीति तासां मूरि: शशंस च ॥ ११ ॥ ततस्तमभिचेलुस्ताः समायान्तीर्विलीका सः। षासर्यदर्भनकते सिंइक्पं विनिर्मने ॥ १२ ॥ दृष्टा सिंइं तु भीतास्ताः स्रिमेत्य व्यक्तिप्रपन्। च्चेष्ठायं जपसे सिंहस्तव सोऽचापि तिष्ठति ॥ १३॥

त्रात्वीपयोगादाचार्योऽप्यादिदेशेति गच्छत । वन्दध्वं तत्र वः सोऽस्ति च्येष्ठार्यो न त केसरी ॥ १४ ॥ ततोऽयुक्ताः पुनस्तप खरूपस्यं निरूप्य च। ववन्दिरे खूलभद्रं ज्येष्ठा चास्यद् निजां कथाम् ॥ १५ ॥ त्रीयकः सममस्माभिर्दीचां जयाइ किन्खसी। चुधावान् सर्वदा कर्तुं नैकभक्तमपि चमः ॥ १६॥ मयोक्तः पर्युषणायां प्रत्याख्याद्यय पीत्रवीम्। स प्रत्याख्यातवानुक्ती सया पूर्वेऽवधी पुन: ॥ १७ ॥ प्रतीचल चर्च प्रलास्याचि पूर्वार्धमप्ययि !। भवा यावत लया चेत्यपरिपाटी विधीयते ॥ १८ ॥ तथैव प्रतिपेदेऽसी समयेऽभिद्वितः पुनः। तिष्ठेदानीमस्वपार्धमिति चन्ने तयैव सः॥ १८॥ प्रत्यासवाऽधुना राविः सुखं सुप्तस्य यास्यति। तवात्यास्याज्ञभक्तार्थमित्युक्तः सीऽकरीत् तया ॥ २०॥ तती निश्रीय संप्राप्ते सारन् देवगुरूनसी। च्चत्पीड्या प्रसरस्था विषद्य विदिवं ययौ ॥ २१ ॥ ऋविघातो मयाऽकारीत्युत्ताम्यन्ती ततस्व इम्। पुर: श्रमचसंघस्य प्रायसित्ताय ढोकिता ॥ २२ ॥ संघोऽप्यूचे व्यथायीदं भवत्या श्रहभावया । प्रायिक्तं ततो नेइ कर्तव्यं किश्विदस्ति ते ॥ २३ ॥ ततोऽइमित्ववीचं च साचादास्थाति चेळिनः। ततो द्वदयसंवित्तिर्जायते सम्, नान्यया ॥ २४ ॥

प्रवार्थे सकलः संघः कायोक्षर्गं ददावय । एत्य शासनदेव्यूचे ब्रुत कार्यं करोमि किम् ? ॥ २५ ॥ संघोऽप्येवसभाविष्ट जिनपार्श्वसिमां नय। सोचे निर्विद्मगत्यर्थे कायोक्तर्गेष तिष्ठत ॥ २६॥ मंघे तत्रतिपेदाने मां सार्मेषी किनान्ति । ततः सीमन्धरस्वामी वन्दितो भगवान् मया ॥ २०॥ भर्तादागताऽऽयंयं निदीवेत्यवदिकानः। क्रपया मिविमित्तं च व्याचक्रे चुलिकाइयम्॥ २८॥ ततोऽइं हिवसन्देश देवानीता ययात्रयम्। त्री वंघ स्थापि तवती चृलिका हितयं च तत्॥ २८॥ दत्यास्थाय स्मूलभद्रानुत्राता निजमात्रयम् । ता ययुः ख्रुसभद्रोऽपि वाचनार्धमगाद् गुरुम् ॥ १० ॥ न ददी वाचनां तस्याऽयोग्योऽसीत्यादिशन् गुनः। दीचादिनात् प्रश्रत्येषोऽप्यपराधान् व्यचिन्तयत् ॥ ३१ ॥ चिन्तयिला च न श्वागः सारामीति जगाद च। काला न मन्यसे भान्तं पापमित्यवदद् गुदः ॥ ३२ ॥ खूनभद्रस्ततः स्मृत्वा पपात गुरुपादयोः। न करिचामि भूयोऽदः चम्यतामिति चात्रवीत्॥ ३३ ॥ न करिष्यसि भूयस्वमकाषीयेदिदं पुन:। न दाखे वाचनां तेनेत्वाचार्यास्त्रमन्चिरे ॥ १४ ॥ स्यूसभद्रस्ततः सर्वसंघेनामानयद् गुरुम्। महतां कुपितानां हि महान्तोऽसं प्रसादने ॥ १५॥

स्तिः संघं बभाषेऽय विचक्रेऽसी ययाधुना।
तयाऽन्ये विकरिष्यने मन्दसस्वा षतः परम्॥ १६॥
पविश्वान पूर्वाष सन्तु मन्दार्खा एव तत्।
पस्वालु दोषदण्डोऽयमन्यशिषाक्ततेऽपि वि॥ १०॥
स संचेनात्रशादुक्तो विवेदेत्युपयोगतः।
न मत्तः श्रेषपूर्वाषामुच्छेदो भाष्यतलु सः॥ १८॥
प्रत्यस्य श्रेषपूर्वाषा प्रदेयानि त्वया निश्व।
प्रत्यभिगाश्च भगवान् स्यूलभद्रमवाचयत्॥ १८॥
सर्वपूर्वधरोऽयासीत् स्यूलभद्रो सशासुनिः।
प्राप्य षाचार्यकं भद्रभविनः प्रत्यबोधयत्॥ ४०॥

त्रीस्पूनभद्रमुनिराप दिवं क्रमेष । एवंविधप्रवरसाधुजनस्य सर्व-संसारसीस्थविरतिं विस्त्रोद् मनीषी ॥२४१॥१३२॥

॥ इति त्रीस्यूसभद्रक्यामकम्॥

स्त्रीभ्यो निवृत्तिमधिगम्य समाधिसीनः

योषिदङ्गसतत्तं कलापकेनाच-यक्तच्छक्तन्मलश्चेषामच्जास्थिपरिपूरिताः। स्नायुस्यूतां बहीरम्याः स्त्रियस्वसीप्रसिविकाः॥१३३॥ यक्तत् कालखण्डम्, यकद् विष्ठा, मला दन्ताद्युपलेपाः, श्चेषा कषः, मच्ना षष्ठो धातः, षस्थीनि पश्चमी धातः, एभिः

⁽¹⁾ ड च -अड्स- ।

परिपूरिताः स्त्रियः स्त्रीयरीराचि, चर्मप्रवेविका भस्ताः, चतएव बहिरेव रम्याः। भस्ता हि मध्ये पूतिद्रव्यपूरिता चिप बाद्ये रम्या भवन्ति, स्त्रियोऽप्येवम् ; भस्ताच स्यूता भवन्ति, चतएव स्नायुस्यूताः स्नायुभिः स्नसादिभिः स्यूता इव स्यूताः ॥ १३३॥

तथा---

बिहरन्तर्विपर्यासः स्त्रीयरीरस्य चेद् भवेत्। तस्यैव कामुकः कुर्याद् राधुगोमायुगोपनम्॥१३४॥

बहियान्तय, तयोर्विपर्यासी विनिमयः विश्वभीगोऽन्तर्भवेत्, धन्तर्भागो वा बहिः, स्त्रीयरीरस्य स्त्रीदेशस्य चेद् यदि भवेत्, तदा तस्येव स्त्रीयरीरस्य कामुकः कामी रुप्रगोमायुगीपनं रुप्रगोमायुग्यो रच्च कुर्यात्। रुप्रगोमायुग्रश्णं दिवानियं रच्चणीयताप्रतिपादनार्थम्; रुप्रा हि दिवा प्रभविष्णवः, गोमा-यवय रात्री। तत् स्त्रीयरीरस्य विपर्याये नक्तंदिनं कामुको रुप्रगोमायुरच्चण्याकुल एव स्थात्, दूरे तत्परिभोगः ॥ १३४॥

तथा---

स्तीयस्त्रेषापि चेत् कामी जगदेतिकागीषति । तुक्कपिक्कमयं यस्त्रं किं नादत्ते समूठधीः १॥१३५॥

स्त्रेय यस्त्रं स्त्रीयस्तं तेन जगिंदजयार्थसुपात्तेन, प्रपीत्यनादरे, चेद् यदि, कामो मद्ययः, एतळागत् चैसोक्यात्मकम्, जिगीवित जेतुमिच्छति, तदा स भूदधीः कामः तुच्छं काकादीनां यत् पिच्छं तद्ययं यस्त्रं किं नादत्ते कुती हेतीर्ने सम्माति ?। षयमधै: —यदासारेष रसास्रग्मांसमेदोऽस्थिमकाश्रुक्तपूरितेन बहु-प्रयासन्नभ्येन स्त्रीकृपेष श्रस्त्रेष जिगीवत्ययम्, तदा तुच्छं विच्छ-मेव सुलभमपूति च किं नादत्ते ? इदं हि विस्नृतमस्य मूटिधियः, यज्ञीकिकाः पठन्ति ;—

मर्ने चेद् मधु विन्देत किमधें पर्वतं व्रजेत् १।
इष्टखार्थं स्व संसिदी को विद्वान् यद्धमाचरेत् १॥१॥१३५॥
तया, इदमपि निद्राच्छेदे चिन्तयेत् ;—

सङ्कल्पयोनिनानेन इहा ! विश्वं विडम्बितम् । तदुरखनामि सङ्कल्पं मूलमस्येति चिन्तयेत् ॥१३६॥

सक्ष्यः कल्पनामात्रं योनिः कारणं यस्य न तु वास्तवं कि चित् कारणमित्यर्थस्तेन, भनेन सक्तजगसंवेदनसिहेन, कहा इति खेरे, विक्षं जगद् ब्रह्म-इरि-इर-संक्रन्दनप्रश्रति कङ्कीटपर्यवसानं तेस्तेः स्त्रीदर्भनालिङ्गनस्मरणादिभिः प्रकारे-विंडिक्वितं विगोपितम्। त्रूयते हि पुराणि—इर गौरीविवाहोस्रवे पुरोहितीभूतः पितामहो, गौरीप्रणयप्रार्थनासु हरः, गोपीचाटु-कर्मणा त्रीपतिः, गौतमभार्यायां रममाणः सहस्रकोचनः, ब्रह्मसते-भार्यायां तारायां चन्द्रः, प्रकायामप्यादित्यो विडक्वातं प्रापितः। तदनेनासारणासारहित्द्ववेन चयद् विक्षं विडक्वातं तदसाम्प्रतम्। तत् तस्मादिदानीमस्येव जगहिडक्वनकर्तुः सङ्गल्यक्वाचं मूल-मृत्खनामि छन्न्वयामि। इति स्त्रीयरीरस्याग्रचित्वमसारत्वं सङ्गल्योन्युपकरणत्वं च विचिन्तयेदिति प्रक्रतयोजना ॥ १३६॥

तथा, इरमपि निद्राच्छेरे चिन्तयेत्— यो यः स्थाद्वाधको दोषस्तस्य तस्य प्रतिक्रियाम् । चिन्तयेद् दोषमुक्तेषु प्रमोदं यतिषु व्रजन् ॥१३०॥

यो यो राग-देष-क्रोध-मान-माया-लोभ-मोइ-मन्नथा-उत्त्या-मलरादिदोषो बाधक वित्तप्रशान्तिवा हिकायास्तस्य तस्य दोषस्य प्रतिक्रियां प्रतीकारं चिन्तयेत्; तथा हि—रागस्य वैराग्यम्, देषस्य मैत्रो, क्रोधस्य चमा, मानस्य मार्दवम्, मायाया चार्जवम्, लोभस्य सन्तोषः, मोइस्य विवेकः, मन्त्रयस्य स्त्रीशरीराशौचभावना, चस्त्राया चनस्यत्वम्, मल्लरस्य परसंपदुत्वर्षेऽपि चिन्तानावाधा च प्रतिक्रिया मता। इदं चाशकामिति नाशकानीयम्, दृश्यन्ते हि सुनयस्तत्त्वद्वेषपरिद्वारेण गुणमयमालानं विश्वतः। चत्र एवा ह—दोषसुक्तेषु यितषु प्रमोदं व्रजन्। सुकरं हि दोषसुक्त-सुनिदर्शनेन प्रमोदादालान्यपि दोषमो चणम्॥ १३०॥

तथा---

दुःस्यां भवस्थितिं स्थेमा सर्वजीवेषु चिन्तयन्। निसर्गसुखसर्गं तेष्ट्रपवर्गं विमार्गयेत् ॥१३८॥

दुखां दु:खहेतुम्, भवस्थितिं संसारावस्थानम्, चिन्तथन् विस्थान्, सर्वजीवेषु तिर्थग्-नारक-नरा-ऽसरेषु ; तथाष्टि—तिरश्चां वध-बन्ध-ताडन-पारवध्य-ज्ञुत्-पिपासा-ऽतिभारारोपणा-ऽङ्गच्छेदा-दिभिः, नारकाणां च स्वाभाविक-परस्परीदीरित-परमाधार्मिक-कतचेव्रानुभावजवेदनामनुभवतां क्रकचदारण-कुन्भीपाक-कूट- यासानीसमास्रेष-वेतरचीतरणादिभिः, नराणां च दारिद्राव्याधि-पारवव्यवधवन्धादिभिः, सुराणां चेर्चा-विषाद-विपचसंपद्दर्भन-मरणदु:खानुचिन्तनादिभिर्दु:खेव भवस्थितः, तां खेन्ना खेरेंच चिन्तयंस्तेषु सर्वजीवेष्यपवर्गं मोचन्, विंविश्रिष्टम् ? निसर्गसुख्यगें निसर्गेच सुख्यंसर्गी यत्र तम्, विमार्गयेदाशंसेत्—कणं तु नाम सर्वे संसारिचः सकलदु:खविमोचेण मोचेण संयुक्णेरिवति ॥१३८॥

द्रदमपि निद्राच्छेदे चिनायेत्-

संसर्गेऽप्युपसर्गाचां दृढवतपरायणाः।

धन्यास्ते कामदेवाद्याः **याघ्यास्तीर्थक्रतामपि ॥१३८॥**

संसर्गेऽपि संबस्वेऽपि, उपसर्गाषां सुरादिकतानाम्, दृढवत-परायषाः प्रतिपद्मवतपालनपराः, कामदेवाद्याः कामदेवप्रभृतयः, धन्या धर्मधनं लन्धारः, त इति भगवदुपासकत्वेन प्रसिद्धाः । धन्यत्वे विश्रेषद्वेतुमाष्ठ—- आध्याः प्रश्रस्यास्तीर्धकतां श्रीमकाष्ठा-बौरस्य, पूजायां बहुवचनम् ।

कामदेवकथानकं च संप्रदायगम्यम् । स चायम्,--
पनुगङ्गं पतदं प्रत्रेषीभिरिव चाकभिः ।

पैत्यध्वजे राजमाना चम्पेत्यस्ति महापुरी ॥ १ ॥

भोगिभोगायतभुजस्तभः कुलग्टइं त्रियः ।

जित्रमनुरिति नाना तस्त्रामासीद् महीपतिः ॥ २ ॥

प्रभूद् ग्रहपतिस्तस्यां कामदेवाभिधः सुधीः ।

पात्रयोऽनेकलोकानां महात्रव्रिवाध्वनि ॥ १ ॥

सस्मीरिव स्थिरीभृता क्पसावस्थामासिनी। पभृद् भद्राक्ततिभेद्रा नाम तस्य सप्रसिची ॥ ४ ॥ निधी षट् खर्षकोट्यः षड् हडी षड् व्यवद्वारगाः। वजाः षट् चास्य दशगोसहस्रमितयोऽभवन् ॥ ५ ॥ तदा च विचरम्बी तत्रोवींमुखमण्डने । पुरुषभद्राभिधीचाने त्रीवीरः समवासरत् ॥ ६ ॥ कामदेवोऽच पादाभ्यां भगवन्तस्पागमत्। श्वाव च त्रोवसुधां स्वामिनी धर्मदेशनाम ॥ ७॥ कामदेवस्ततो देवनरासुरग्ररीः प्ररः। प्रवेटे हाटग्रविधं ग्रहिधमें विश्वहधी: ॥ ८॥ प्रत्याख्यात् स विना भद्रां स्त्रीर्वजान् षड्वजीं विना। निधी हवी व्यवहारे षट् षट कोटीविंना वसु ॥ ८ ॥ इलपश्चमतीं मुक्काऽत्याचीत् चेवास्यमांसि तु । दिग्यात्रिकाणि वोदृणि पच पच मतान्धृते ॥ १० ॥ दिग्याविकाणि चलारि चलारि प्रवहन्ति च। विद्याय वद्दनान्येष प्रत्याख्यद् वद्दनान्यपि ॥ ११ ॥ विनेकां गत्मकाषायीं स तत्याजाकुमार्जनम्। दन्तधावनमध्यादीमपास्य मध्यष्टिकाम ॥ १२ ॥ फ्टते च चौरामलकात् फलान्यन्यानि सोऽसुचत्। प्रभ्यकं च विना तैले सहस्रगतपानिमे ॥ १३ ॥ विना सुगन्धिगन्धाकासुद्दर्भनकमत्वजत् । विनाष्ट्रावीष्ट्रकानभस्कुभान् मळानकर्म च ॥ १४ ॥

ऋते च चौमयुगलाट् वस्त्रं सर्वमवर्जयत्। चन्दनागुरुष्ठस्यान्यपास्यान्यद् विलेपनम् ॥ १५ ॥ जातीस्तर्जं च पद्मं च विना कुसुममत्यजत्। कर्णिकां नामसुद्रां च विद्यायाभरचान्यपि ॥ १६॥ तुबक्तागुबधूपेभ्य ऋते धूपविधि जडी। ष्टतपूरात् खण्डखाद्यादन्यद् भन्यमवर्जयत् ॥ १०॥ काष्ठपेयां विना पेयामोदनं कन्तमं विना। माससुद्रकसायेभ्य ऋते सूपं च सीऽसुचत् ॥ १८॥ तत्याज च घृतं सर्वस्ते गारदगोष्टतात्। याकं खस्तिकमण्ड्रकाः पद्माश्वाचापरं जडी ॥ १८॥ षन्यत् स्रेशः स्नदास्यस्मात् तीमनं वारि खाश्यसः। जदो सुगन्धितास्त्रजाद सुखवासमयापरम् ॥ २०॥ ततः प्रभुं स वन्दित्वा ययौ निजनिकेतनम्। तद्वार्यायेत्य जवाइ खाम्यये त्रावकत्रतम् ॥ २१ ॥ कुट्म्बभारमारीय च्येष्ठपुत्रे ततः स्वयम्। तस्वी पौषधगासायामप्रमादी व्रतेषु सः॥ २२॥ तख्षस्तस्य तवाय निगीये चीभहेतवे। पित्राचक्पभद् मिष्यादृष्टिः कोऽप्याययी सुरः ॥ २३ ॥ शिरोक्डा: शिरस्यस्य कर्कशाः कपिशल्विषः। चकासामासुरापकाः केदार इव शासयः॥ २४॥ भाष्डभित्तनिभं भालं बसुपुच्छोपमे सुवी। कर्षी सूर्याक्रती युग्मचुजीतुस्या च नासिका ॥ २५॥

उष्ट्रीष्ठनस्विनावीष्टी दधनाः फालसविभाः। जिल्ला सर्पीपमा समञ्ज वाजिवासिधसोदरम् ॥ २६ ॥ तप्तमूवानिभे नेत्रे इनू सिंइइनूपमी। इलास्यतुल्यं चिबुकं गीवोष्ट्रगीवया समा॥ २०॥ उर: पुरकपाटोर भुजी भुजगभीवणी। पाणी शिलाभावङ्गुखः शिलापुचकसित्रभाः॥ २८॥ पातालतुल्यमुदरं नाभिः कूपसङोदरा। शिश्रं चाजगरप्रायं हषणी कुतपोपमी । २८ ॥ जक्के तालहुमाकारे पादी ग्रैलिशकोपमी। कोलाइसरवीऽकाण्हाग्रनिष्वनिभयानकः॥ ३० ॥ स मूर्प्नाखुस्रजं विश्वत् कच्छे च सरटस्रजम्। नक्षलान कार्णिकास्थाने इङ्गदस्थाने च पद्मगान् ॥ ३१ ॥ क्रुद्वान्तकसमुहिचप्रतर्जनाङ्गु सिदार्यम् । उदस्यनपनोशासिं कामदेवं जगाद सः ॥ ३२॥ मप्रार्थितप्रार्थेक ! रे ! किमारस्थिमदं लया । किं स्वर्गमपवर्गं वा वराक ! त्वमपी च्छासि ? ॥ ३३ ॥ मुचारसमिदं नो चेदनेन निशितासिना। तरोरिव फलं स्कन्धात् पातियश्वामि ते शिरः ॥ ३४ ॥ तर्जग्रताचित्र में वं समाधेर्न चचाल सः। गरभः ग्रेरिभारावैः किं चुन्यति कदाचन ?॥ ३५॥ कामदेव: ग्रभधानाद् न चचाल यदा तदा। व्याजचार तथैवायं दिस्त्रिस्त्रिदशपांसनः॥ ३६॥

तवाप्यच्चभ्यतः सोऽस्य चीभायेभं वपुर्श्यभात्। स्वमत्त्रमनासीका विरमन्ति खसा न हि॥ ३०॥ सोऽधत्त विषषं तुष्टं सजलाश्रीदसोदरम् । सर्वतोऽप्येत्व मिष्यालं राग्रीभूतमिवेकतः ॥ ३८ ॥ स दीर्घदावपाकारं विवायश्वसम् । धारयामास कीनायभुजदक्कविडम्बकम् ॥ ३८ ॥ किचिदाकुचितां शुक्तां कालपाशामिवोद्यन्। कामदेवं जगादैवं देव: कूटैकदैवतम् ॥ ४० ॥ मायाविन् ! सुचातां माया सुखं तिष्ठ मदाच्चया । पाखक्तुक्षा केन त्वमस्त्रेवं विमोहित: ? ॥ ४१ ॥ न चेद् सुच्चम् धर्मं शुष्डादण्डेन तद् 'हूतम्। क्रकामि लामितः खानाद् नेषामि च नभीऽक्रुचे ॥४२॥ व्योक्तः पतन्तं दन्ताभ्यां प्रेषियश्वामि चान्तरा। भवनम्य ततस्ताभ्यां दारियचामि दादवत् ॥ ४३ ॥ पादै: कर्दममदें च लां मदि चामि निर्देयम्। एकविच्हीकरिचामि तिलविष्टिमिव चचात्॥ ४४॥ चबात्तस्त्रेव तस्त्रेवं घोरं व्याहरतीऽपि हि। नोत्तरं कामदेवोऽदाद् ध्यानसंसीनमानसः ॥ ४५ ॥ चसंच्भितमी चिला कामदेवं दृढागयम्। हिस्त्रियत्रभाविष्ट तथैव स दुरागयः ॥ ४६ ॥

⁽१) ड च धुवस्।

ततोऽप्यभीतं तं प्रेच्य शुख्डादख्डेन सीऽग्रहीत्। व्योमन्युच्छालयामास प्रतीयेष च पूसवत् ॥ ४० ॥ दन्त्यामास दन्ताभ्यां पादन्यासैममर्दे च। धर्मकर्मविष्वानां किमक्तत्यं दुराव्यनाम् ?॥ ४८॥ चिषिष्ठे च तत् सर्वे कामदेवो महामनाः। मनागपि च न स्थेयें जही गिरिरिव स्थिर: ॥ ४८ ॥ तस्मिन्नचित ध्यानादीद्रश्चेनापि कर्मणा। सदर्ध: सर्वक्षं स विदधे विवधाधम: ॥ ५०॥ देव: पूर्ववदेवोचे स तं भापियतुं तत: । कामदेवस्त नाभैषीद् ध्यानसंवर्भितः सुधीः ॥ ५१ ॥ भयो भ्यस्तथोज्ञा तं निर्भीतं प्रेच्य द:सर:। ्यातीद्यमिव वधेण स्वभोगेनाभ्यवेष्टयत् ॥ ५२ ॥ नि:श्कभेव दशमैदेंदशको ददंश तम्। स तु ध्यानसुधामग्नी न तहाधामजीगणत्॥ ५३॥ दिव्यक्पं ततः कला चृतिचोतितदिङ्मुखम्। सुर: पौषधमालायां विवेशवस्वाच च ॥ ५४ ॥ धन्योऽसि कामदेव। खं देवराजीन संसदि। प्रशंसाऽकारि अवतोऽसिंहणुस्तामिहागमम्॥ ५५॥ प्रभवः प्राभवेषापि वर्षयम्ति श्रवस्वपि । पतः परीचितोऽसि खं नानाक्पस्ता मया ॥ ५६ ॥ त्वां यथाऽवर्णयच्छक्रस्तथैवासि न संग्रयः। चम्यतामपराधी मे परीचणभवस्वया ॥ ५०॥

प्रययाविभाषायेवं स देवो देवसञ्चिति । कामदेवोऽपि श्रहात्मा प्रतिमां तामपारयत् ॥ ५८ ॥ उपसर्गसिष्णुं तमञ्जाविष्ट खयं प्रभुः। सभायां भगवान् वीरी गुरवी गुचवस्नाः ॥ ५८ ॥ कामदेवो हितीयस्मिन्न पारितपोषधः। विजगत्स्वामिनः पादवन्दनार्धमयागमत्॥ ६०॥ जगद्गुद्रभाषिष्ट गीतमप्रस्तीनित । ग्टिं इसे में उप्यसाविवसुपसर्गान् विसोठवान् ॥ ६१ ॥ सर्वसङ्गपरित्यागाट् यतिवर्भपरायसै:। तिष्ठियेषेण सीढव्या उपसर्गा भवाद्यः ॥ ६२ ॥ कर्मनिर्मूचनोपायान् त्रावकप्रतिमास्ततः । एकाद्यापि गित्राय कामदेव: क्रमेख ता: ॥ ६२ ॥ सोऽय संलेखनां जला प्रपेदेऽनग्रनव्रतम्। यरं समाधिमापनः कालधर्मसुपाययौ ॥ ६४ ॥ सीऽक्षामि विमानिऽभृद् चतुष्यस्थितिः सुरः। चुला ततो विदेष्ठेषूत्यदा सिष्टिं व्रजिचाति ॥ ६५ ॥ यथोपसर्गेऽपि निसर्गधैर्यात स कामदेवो व्रततत्परं: सन्। स्राच्योऽभवत् तीर्वक्ततां तवाऽन्धे-ऽप्येवंविधा धम्यतमाः पुनांसः ॥ ६६॥१३८ ॥ ॥ इति कामदेवकथानकं संपूर्णम् ॥

द्रमपि निद्राच्छेदे चिनायेत्—

जिनो देवः क्रपा धर्मी गुरवो यत साधवः। श्रावकत्वाय कस्तसी न श्लाघेताविमूढधीः १॥१४०॥

त्रावका उक्तनिर्वचनास्तेषां भावः त्रावकलं तस्ते त्रावकलाव को न स्राचित ?—सर्वः स्नाचेतेव, मुझा मोइमूढान्। पत एवाइ—प्रविमूढधीः ; मृढबुढीनां द्वातस्वदिर्धनां तैमिरिकाणा-मिव चन्द्रहितय-शङ्कपीतिमदिर्धनां मा भूत् सावकलाय स्नाचा, प्रमूढबुइयस्त तस्वदिर्धिलात् साधना इव। तस्ते इति, तस्तंबन्धिनं वच्छन्द्रमाइ—यत्र त्रावकले जिनो रागादिदीषजेता देवः पूच्यो न तु रागादिमान्, क्रपा दुःखितदुःखप्रष्टाणेच्छा, धर्मीऽनुष्ठेयक्पो न तु हिंसाकको यागादिः, साधवः पञ्चमहावतरताः, गुरवीः धर्मीपदेष्टारो न तु परिप्रहारश्वसक्ताः ॥ १४०॥

तथा, निद्राच्छेरे तांसान् मनोरथान् सप्तभिः स्रोकेराइ--

जिनधर्मविनिर्मुक्ती मा भूवं चक्रवर्खिष । स्यां चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्माधिवासितः॥१४१॥

जिनधर्मेष प्रान-दर्भन-चारित्रक्ष्णेण विनिर्भुत्ती रहित-यक्तवर्थिप सार्वभौमोऽपि मा भूवं मा जनिषि, तस्य नरकामूल-। खात्; किन्तु स्यां भवेगं चेटोऽपि दासोऽपि दरिद्रोऽपि दुःस्थितो-ऽपि, क्रयंभृतः ? जिनधर्मेषोत्रस्वक्ष्णेणाधिवासितः ॥ १४१ ॥ तथा---

त्यक्तसङ्गी जीर्णवासा मलक्रिव्नक्षेवरः । भजन् माधुकरीं वृत्तिं मुनिचर्यां कदा श्रये १॥१४२॥

त्यक्ता रहराहिणीप्रस्तयः सङ्गा येन सत्यक्तसङ्गः, जीर्षे अरद् वासी यस्य स जीर्णवासाः, मलेन क्तित्रं कलेवरं यस्य स मलक्कित्रकलेवरः, मधुकरस्थेयं माधुकरी माधुकरीव माधुकरीव माधुकरी विक्तिस्वा तां भजन् सेवमानः, यदाष्ट्रः ;—

श्लिष्ठा दुमस्य पुष्पेस भगरो चाविषद रसं।
न य पुष्पं किलामेद सो य पौषेद चप्ययं ॥ १ ॥
एमेए समणा मुत्ता जे लोए संति साष्ट्रणो।
विद्यंगमा व पुष्पेस दानभत्तेसणे रया॥ २ ॥
वयं च वित्तिं लग्भामो न य कोवुवष्टमाद।
घष्टागडेस रीयंते पुष्पेस भगरा जहा॥ ३ ॥

मृनीनां चर्या सूलगुणोत्तरगुणकृषा तां कदा कर्ष्ट अधे अधिषामि, कदाकद्वीनेवा ॥ ५ । ३ । ८ ॥ इति वर्त्ताति वर्तमाना ॥ १४२ ॥

⁽१) वया हुमस्य प्रत्येषु श्रमर चापिवति रसस्।
न च प्रत्यं क्रमयति स च प्रीचात्वात्वानम् ॥१॥
यवमेते त्रमचा सक्ता वे खोके सन्ति साधवः।
विश्वकृत्मा दव प्रत्येषु हानभक्तेषयो रताः॥२॥
वयं च हत्तिं लघ्यामो न च कोऽप्यप्रक्यते।
वयाकतेषु रीयन्ते प्रत्येषु श्रमरा वया॥१॥

तथा---

त्यजन् दुःशीलसंसर्गं गुरुपाद्रजः स्पृथन् । कदाइं योगसभ्यस्यन् प्रभवेयं भवक्किदे ॥ १४३ ॥

दुः श्रीला लीकिका लोकोत्तराय। तत्र लीकिका दुः श्रीला विट-भट-भण्ड गणिकादयः, लोकोत्तरालु पार्श्वस्थावसम्बद्धश्रील-संस्त्रायशाच्छन्दास्तैः संसभें संवासादिकपं, त्यजन् परिचरन्। न च तन्त्राचेण भवतीत्थाच —गुक्पादरजः स्थ्रमन्। प्रनेन सत्-संसभेमाच। न चैतावताप्यलमित्याच —योगमभ्यस्यन् योगो रक्षत्रयं ध्यानं वा तमभ्यस्यन् पुनः पुनः परिश्रीलयन् कदाचं प्रभवियं प्रभविष्यामि। कस्यै १ भविष्यदे संसारोष्टिदाय ॥१४३॥

तथा-

महानिशायां प्रक्तते कायोत्सर्गे पुराद् बहि:। स्तम्भवत् स्कन्धकषणं 'वृषाः कुर्युः कदा मयि॥१४४॥

महानिशायां निशीध, कायोक्षर्गे प्रकृते प्रारम्भे पुराद् बहिनेगराद् बाह्मप्रदेशे स्तम्भ इव स्तम्भवद् मिय स्कन्धकवणं स्कन्धकष्ठूयनं कदा हवा उक्षृष्टपथवः कुर्युः करिष्यन्ति । इदं च प्रतिमाप्रतिपत्रत्रावकविषयम्, तस्यैव पुराद् बहिष्कृतकायोक्षर्यस्य शिलास्तमभन्नाम्या हवभैः स्कन्धकषणसंभवः ; प्रेष्पितयत्यवस्थापेचं वा, यतीनां जिनकस्थिकादीनां सर्वदा कायोक्षर्भसंभवात् ॥१४४॥

⁽१) ड कहा कुर्युश्राम ।

तथा --

वने पद्मासनासीनं क्रोडस्थितसगार्भकम् । कदाऽऽत्राखन्ति वक्को मां जरनो सगयूथपाः ॥१४५॥

वनेऽरख्ये पद्मासनं वक्षमाणं तेनासीनसुपविष्टम्, पिंस्तलेन क्रोडे एकाके स्थिता खगाभेका सगडिक्या यस्त्र तं कोडस्थित-सगाभेकम्, एवंविधं सामपरिकर्मग्रदीरं कदा वक्रो पान्नास्थित्न, के, सगयूयपा सगयूयाधिपतयः, किंविशिष्टाः, जरन्तो हदाः। जरन्तो दि यथा कथित् न विष्यसन्ति, परमसमाधिनियसता-संदर्भनात् तेऽपि विष्यस्ताः सन्तो जातिस्वभावाद् वक्रो पाजि-मन्ति ॥ १४५॥

तया -

शवी मित्रे त्वेष खेषे खर्षेऽस्मिन मणी मृदि। मोचे भवे भविष्यामि निर्विशेषमितः कदा ॥१४६॥

यती रिपी, मिचे सुद्धदि, दृषे यथादी, छोषे छीसमूई, खर्षे काखने, प्रसन्युपले, मची रहे, स्रदि स्तिकायाम्, मोचे कर्मवियोगनवाचे, भवे कर्मसंबन्धनवाचे, निर्वियेषमितस्ख्यमितः कदा भविचामि। यहमित्रादिषु निर्वियेषमितिखमप्यस्थापि भवेत्, पसी तु परमवैराग्योपगतो मोच-भवयोरिप निर्वियेषस्त मर्थयते, यदाह ;—

मोचे भवे च सर्वेत्र नि:साकी मुनिसत्तमः । इति ।

एते च मनोरवाः क्रमेषोत्तरोत्तरप्रकर्षवन्तः, तथा हि—प्रथमे स्रोके जिनधर्मातुरागमनोरवः, दितीये तु यतिधर्मपरिष्ण मनोरवः, व्रतीये तु यतिधर्मपरिष्ण मनोरवः, व्रतीये तु यतिचर्याका हा धिरोष्ट्रषमनोरवः, चतुर्षे तु कायोक्षगीदिमनोरवः, पद्मने तु गिरि गुष्टाव्यवस्थितमुनिष्यी-मनोरवः, षष्टे तु परमसामायिकपरिपाकमनोरवः ॥१४६॥

पदानीसुपसंचरति--

प्रिधरोढुं गुणश्रेणिं निःश्रेणीं मुक्तिविश्मनः । परानन्दलताकन्दान् कुर्यादिति मनोरयान् ॥१४०॥

षिरीदुमारीदुं गुषश्चेषिसुत्तरीत्तरगुषस्वाध्नक्ष्पाम्, विं-विशिष्टाम् ? निःश्वेषीमिव निःश्वेषीम्, वस्य ? सुक्तिस्वष्यस्य विस्मनो मन्दिरस्य, कुर्योद् विद्ध्यात्, इति श्लोकषट्वेनीक्तान् मनोरयान्, विंविशिष्टान् ? परानन्दस्ताकन्दान् परबासा-वानन्दस्य स एव सता तस्याः कन्दान् कन्दभूतान्। यथा प्रि कन्दाक्षता प्रभवति तथैतेस्थोऽपि मनोरथेस्थः परो य जानन्दः परमसामायिकक्षः स प्रभवति । सप्तभः कुसकम् ॥१४७॥

भघोपसंहरति--

द्रत्या होरात्रिकीं चर्यामप्रमत्तः समाचरन् ।
यथावदुक्तवृत्तस्थो ग्रहस्थोऽपि विश्वध्यति ॥१४८॥
दित पूर्वीक्रक्रमेख, षहीरात्रे भवामाहोराविकीं चर्या समाचारक्षामप्रमत्तः प्रमादरहितः समाचरन् सम्यक् कुर्वन्, उक्षं

^(?) ㅋघ-ㅋ奪- |

जिनागमिऽभिद्धितं यद् वृत्तं प्रतिमादिलच्यं तत्र तिवृत्तीत्युत्त-वृत्तस्यः, क्रायम् ? यथावत् सम्यग्विधिना, ग्रह्मोऽपि यतिल-मप्राप्तुवन्नपि विश्वध्यति चीत्रपापो भवति ।

चय पुनः काः प्रतिमाः, यासु खितो ग्रह्मोऽपि विश्वध्यति ? उच्यते — श्रह्मादिदोषरिहतं प्रशमादिलिङ्गं स्थैर्धोदिभूषणं मोच-मार्गपासादपीठभूतं सम्यग्दर्भनं भय स्रोभ-सक्वादिभिरप्यनित-चरन् मासमातं सम्यक्लमनुपासयित, इत्येषा प्रथमा प्रतिमा ।१।

हो मासी यावदखिष्डतान्यविराधितानि च पूर्वप्रतिमा-नुष्ठानसिहतानि हादणापि व्रतानि पास्त्रयतीति हितीया ।२।

त्रीन् मासानुभयकात्तमप्रमत्तः पूर्वीक्रप्रतिमानुष्ठानसिहतः सामायिकमनुपालयतीति त्रतीया । १।

चत्रो मासांसत्तव्यर्था पूर्वप्रतिमानुष्ठानसहितोऽखिष्ठतं पीषधं पासयतीति चतुर्थी । ।।

पश्च मासांसतुष्यर्थां ग्रहे तद्द्वारे चतुष्यये वा परीषद्वीप-सर्गोदिनिष्कम्पकायोत्सर्गः पूर्वोक्तप्रतिमानुष्ठानं पालयन् सकतां राजिमास्त दति पश्चमी । ५।

एवं वद्यमाणास्ति प्रतिमासु पूर्वपूर्वप्रतिमानुष्ठानिष्ठिता प्रविधाः, नवरं वद्मासान् ब्रह्मचारी भवतीति वष्ठी ।६। सप्त मासान् सिचत्ताष्टारान् परिष्ठरतीति सप्तमी ।७। पष्टी मासान् स्वयमारशं न करोतीत्यष्टमी ।८। नव मासान् प्रेष्टेरप्यारशं न कारयतीति नवमी ।८। दय मासानासार्धनिष्यक्माष्टारं न शुक्क इति दयमी ।१०। एकादय मासान् त्यक्तसङ्गो रजोडरणादिसुनिवेषधारी क्रत-केथोत्पाटः खायत्तेषु गोकुलादिषु वसन् प्रतिमाप्रतिपत्राय त्रमणोपासकाय 'भिषां दत्त' इति वदन् धर्मलाभगष्दोचारण-रहितं सुसाधुवत् समाचरतीत्येकादशी। उक्षं हि:—

'दंसणपिडमा नेषा समास्त जुमस जा रहं बुंदी।
कुणहक लंकरिष्मा मिच्छत्त खमीवसमभावा॥१॥
बीषा पिडमा पीया सुहाणुळ्यधारणं।
सामार्मपिडमाभो सुहं सामार्यं पिषा ॥२॥
पहमीमार्पळेस समां पोस्रहपालणं।
सेमाणुहाणजुत्तस चल्ही पिडमा रमा॥३॥
निकंपी कालसमं तु पुळ्जसगुणसंजुषी।
करेर पळ्रारेस पंचमिं पिडवन्नभी॥४॥
कहीए बंभयारी सो फास्माहार सत्तमी।
वज्जे सावळामारंभं महमिं पिडवन्नभी॥५॥

⁽१) इर्घनप्रतिमा जेवा सम्यक्त्ययुतस्य वेष्ट् तसः ।
कुराष्ट्रक्तस्य रिह्ता निय्यात्वस्य वेष्ट्र तसः ।
हितीया प्रतिमा जेवा गुढा खुन्नतपात्वनम् ।
सामायिकप्रतिमातः गुढं सामायिकमपि च ॥ २ ॥
स्वस्याहिपवेस्य सम्यक् पौषधपासनम् ।
येवास्तानयुक्तस्य चस्रवीं प्रतिमेयम् ॥ २ ॥
निव्कस्यः कावोत्सर्ये सुपूर्वे क्षित्रस्य स्थाः ।
सरोति पर्वरात्नीषु पश्चमीं प्रतिपञ्चकः ॥ ४ ॥
सन्त्रां मञ्जाचारी स पास्तकाष्ट्रारः सप्तस्याम् ।
वर्जवेद् सावदामारकामस्मी प्रतिपञ्चकः ॥ ५ ॥

'भवरेणावि भारंभं नवसी नो करावए।
दसमीए प्रणोहिंहं फासुभं पि न भुंजए ॥ ६ ॥
एकारसी इ निस्तंगो भरे सिंगं पिडमाइं।
कायसोभो सुसाइ व्य पुव्युक्तगुणसायरो ॥०॥ इति॥१४८॥

संति पश्चिमः श्लोकि प्रिश्चममाद्यसोऽयावश्यक्योगानां भद्गे सृत्योरयागमे ।
कृत्वा संखेखनामादी प्रतिपद्य च संयमम् ॥१४८॥
जन्मदीचाज्ञानमो चस्थानेषु श्लीमदर्शताम् ।
तदभावे ग्रहेऽरग्ये स्यग्डिले जन्तुवर्जिते ॥१५०॥
त्यक्ता चतुर्विधाद्यारं नमस्कारपरायणः ।
याराधनां विधायोचेश्वतुःशरणमाश्रितः ॥१५१॥
दृष्टलोके परलोके जीविते मरग्ये तथा ।
त्यक्ताश्यसां निदानं च समाधिसुधयोच्चितः ॥१५२॥
परीषद्रोपसर्गेभ्यो निर्भोको जिनभक्तिभाक् ।
प्रतिपद्येत मरग्यमानन्दः श्रावको यथा ॥१५३॥

व्याख्या-स त्रावकः, प्रधानन्तरम्, प्रावश्यका प्रवश्य-

⁽१) खपरेणाप्पारम्। नवस्यां नो कारवेत्। दशस्यां प्रनक्ष्मिं प्राधकमपि न सञ्जीत ॥ ६ ॥ यकादध्यां निखाको धरेश्विषं प्रतियक्षम् । कतस्योवः सुसाधुरिव पूर्वोक्वगुक्ससहरः॥ ७॥

करणीया ये योगाः संयमन्यापारास्तेषां भक्के कर्तुमग्रक्तावित्वेकं कारणम्; प्रथ हितीयं-सत्योरागमे सत्युषमये संप्राप्ते, संशिष्यते तनू क्रियते गरीरं कषायायानयेति संशिखना, तत्र गरीरसंशिखना क्रिमेण क्रमेण भोजनत्यागः, कषायसंशिखना तु क्रोधादिकषाय-परिहारः। तत्र प्रथमायाः कारणभिदम्,—

'देहिमा पर्सलिहिए सहसा धालिहिं खिळामाचेहिं। जायह घटनभाणं सरीरिणो चरमकालिमा ॥ १ ॥

द्वितीयाया: पुन^ररिदम् ;---

रैन ते एयं पसंसामि किसंसाह सरीरयं। कीस ते चंगुली भग्गा भावं संलिह मा तुर!॥१॥

इत्यादिना प्रवन्धेनोक्तम् । संयमं च यथीचित्येन प्रतिपद्यते ।
तत्रेयं सामाचारी ;—श्वावकः किल सकलस्य श्रावकधर्मस्थोद्यापनार्धमिवान्ते संयमं प्रतिपद्यते तस्य साधुधर्मग्रीवस्तृतेव
संलेखना, यदाः ;—श्वंलेखणा च चंते न निभोभा जेण पव्यभद्य
कोई । ततो यः संयमं प्रतिपद्यते स संयमानन्तरं काले
संलेखनां कल्वा मरणं प्रतिपद्यते ; यसु न संयमं प्रतिपद्यते तं प्रति
सक्तो ग्रन्थः 'भानन्दश्रावको यथा' इतिपर्यन्तः संबध्धतं ॥१४८॥

⁽१) देचेऽसंखिचिते सङ्सा घात्रिभः खिदामानैः। जायत कार्तध्यानं ग्रहीरिचन्रसकासे ॥ १ ॥

⁽१) गडच-नः।

⁽१) न ते एतत् प्रयंशामि क्षयं शाधो ! चरीरकम् । ककात् तेऽकृष्ठिभैमा भावं संक्षिक मा त्वरस्व ॥ १ ॥

⁽४) संवेखना त्वनी न नियोगाडु वेन प्रव्रजति कोऽपि।

त्रीमदर्भे हहारकाणां जन्म-दीचा-मान मी चर्णानेषु; तत्र जन्म-स्वानानि,—

'दक्खागुभूमि चन्भा सावत्य विचीय कोसलपुरं च।
कीसंबी वाषारसि चंदाचण तह य कायंदी ॥ १ ॥
भहिलपुरं सीहपुरं चंपा कंपिक उन्भ रयणपुरं।
तिन्नेव गयपुरसी मिहिला तह चेम रायगिष्टं ॥ २ ॥
सिहिला सीरियनयरं वाणारसि तहय चेम कुंडपुरं।
एसभाईण जियाणं जमानभूमी जहासंखं॥ ३ ॥

दीचास्थानानि,---

रेष्ठसभो च विणीचाए बारवर्ष्ण चरिहवरनेसी। चवसेषा तिस्ययरा निक्षंता जन्मभूमीसु॥१॥ ष्ठसभो सिद्ययविष्म वासुपुष्को विष्ठारगिष्ठगिष्म। धन्मो च वप्पगाए नीलगुष्ठाए सुणीनामो॥२॥

⁽१) इ.स्वाकुथ्र्मिरयोध्या त्रावसी विनीता कोयवपुरं च । कीयामी वाणारसी चन्द्रानना तथा च कावन्दी ॥ १ ॥ अह्बिपुरं सिंकुपुरं चन्या कम्मिसाव्योध्या रक्षपुरस् । व्यवासायि गजपुरं सिधिसा तथाचैव राजन्दकृत् ॥ २ ॥ सिधिसा यौर्यनगरं वासारसी तबैव कुर्यस्परम् । स्वभादीनां जिनानां जन्मभुत्यो वसार्यस्यस्य ॥ ३ ॥

⁽३) इत्यभो विनीतावां द्वारवावामरिष्टवरनेषिः। ध्वययेषाकीर्धकरा निष्कान्ता लक्षभूभीषु॥ ॥ इत्यभः विद्वार्थवने वासुपूक्तो विकारस्टक्ते। धर्मच वप्नगावां नीवगुक्तावां सनिभासा॥ ३॥

'पासमपयिमा पासी वीरजिखिंदी प नायसंखिमा। प्रवसेसा निक्लंता सङ्संबवणिमा उक्जाणे॥ ३॥

ज्ञानस्थानानि ;—

रेचसभस्य पुरिसताले वीरस्तोक्जुवालिपानईतीरे। वैसाण नेवलाई जेसुकाणेसु पव्यदमा॥ १॥

मोचखानानि ;---

ैश्वद्वावयचंपीक्तिलपावासंभेश्वसेलसिष्ठनेस् । एसभ-वसुपुक्त-नेमी वीरो सेसाय सिंहिगया॥१॥

तदभावे जना-दीचा-ज्ञान-मोज्ञस्थानप्रास्थभावे ग्रहे यतिवस-त्यादी, परण्ये प्रमुख्यादिषु सिहिचेत्रेषु, तेष्यपि भवं निरीक्ष्य प्रमुख्य च जन्त्विवर्जिते स्थण्डिले, दरं च जन्मादिस्थानेष्यपि दृष्ट्यम् ॥१५०॥ त्यक्का परित्यच्य चतुर्विधाहारमधन-पान खाद्य-खाद्य रूपम्, नमस्तारः पश्चपरमेष्ठिस्तवः, तत्परायणस्तदमुद्यारण-परः, द्याराधना ज्ञानाद्याराधना तामतिचारपरिहारेण विधाय चतुर्णामर्हत्-सिह-साधु-धर्माणां धरणं तेषु स्नात्मसमर्पणं चतुः-

⁽१) म्हान्त्रसप्दे पार्त्वी वीरिकानेन्द्रच ज्ञातषग्छे। मानोसा निकासना सङ्ग्राम्बरण उदाने॥ १॥

⁽२) ऋषभस्य प्ररिमताचे नीरस्वजुनासिकानहीतीरे। ग्रेषाचां केवचानि बेषुद्यानेषु प्रव्राजनाः॥ १॥

⁽३) कारापर-चन्नीकायमापापारं मेतमेलामसरेषु । ऋषभ-वासपूक्त नेमनो वीरः घेषाच सिद्धिगताः ॥ १॥

गर्यं तदात्रित:, यदाषु:---'चरचंते सर्यं पव्यकामि, सिदे सर्यं पव्यजामि, साह सरणं पव्यजामि, वेवलिपदत्तं धर्मं सरणं पव्यक्रामि ति ॥१५१॥ पाष्टारपरिष्ठारप्रतिपत्तिय पश्चविधाति-चारपरिचारेच कार्या ; तदेवाच- प्रचलीके प्रचलीकविषये धन-पूजा-कीर्त्यादिष्याग्रंसा, परलोके परलोकविषये खर्गीदावाग्रंसा, जीवितं प्राचधारचम्, तत्र पूजादिविश्रेषदर्शनात्, प्रभूतपरिवारा-वसीकनात्, सर्वसीकञ्चाघात्रवणाचैवं मन्धते जीवितमेव त्रेय:, प्रत्यास्थातचतुर्विधाद्वारस्थापि यत एवंविधा सदुहे ग्रेनीयं विभूति-र्वर्तत इत्याग्रं मा. मरणं प्राणत्यागः, तत्र यदान कचित् तं प्रति-पवानमनं प्रति सपर्यया भाद्रियते, न च किसत् आघते, तदा तस्यैवंविधिसत्तपरिचामी जायते, यदि शीम्नं स्निये प्रत्यागंचा, तां त्यक्का, निदानं च 'भस्रात् तपसी दुरनुचराळकान्तरे चन्नवर्ती, वासुदेव:, महामण्डलेखर:, सुभग:, रूपवान् स्थाम्' इत्यादि-प्रार्थनां त्यका. प्रनः किंविशिष्टः ? समाधिसधयोचितः समाधिः परमखास्था स एव सुधाऽसतं तयोचितः सितः ॥१५२॥ परीषद्रेभ्यो निर्भयो जितपरीषद्व दत्यर्थः. तत्र मार्गाच्यवन-निर्जरार्थे परि-षद्यन्त इति परीषद्याः, ते च द्वाविंग्रतिः, तद्यवा ;---चुत्पिपासा-भीतोषाटं भ्रमभक्तनाम्सारतिस्त्रीचर्यानिषद्याभयाऽ।कोभवभयाञ्चाsनाभरोगद्धवस्प्रभेमसस्तारप्रजाजानदर्भनस्वसाः, तेषां सय-चैवम् ;---

⁽१) चईतः घरचं प्रपद्ये, विद्वान् घरचं प्रपद्ये, वाधून् घरचं प्रपद्ये, वेश्वि-प्रचर्म धर्मे घरचं प्रपद्य द्रति ।

चुदार्तः प्रक्रिभाक् साधुरेषणां नातिसङ्घयेत्। भदीनो विद्वलो विद्वान् यात्रामात्रोद्यतस्तत् ॥ १ ॥ विवासितः पशिखोऽपि तस्त्वविद दैन्यवर्जितः। न भौतमुद्रवं वाञ्छेदेषयेत प्रासुकोदकम् ॥ २ ॥ बाध्यमानीऽपि शीतेन लग्-वस्त्र-त्राचवर्जित:। वासोऽकलां। नाददीत ज्वलनं ज्वलयेट् न च ॥ ३ ॥ डचीन तसी नैवीणां निन्देच्छायां च न स्मरित । वीजनं मञ्जनं गाचाभिषेकादि, च वर्जयेत्॥ ४॥ दष्टोऽपि दंग्रैर्मगर्नै: सर्वोच्चारप्रियत्ववित । वासं हेवं निरासं न कुर्यात्, कुर्याद्पेश्वणन् ॥ ५ ॥ नास्ति वासीऽग्रभं चैतद् तनेच्छेत् साध्वसाधु वा। नाम्चेन विश्वतो जानकांभालाभविचिवताम् ॥ ६ ॥ न कदाप्यरतिं क्यादि धर्मारामरतिर्यति:। गच्छं स्तिष्ठं स्त्रयासीनः स्वास्यामेव समात्रयेत ॥ ०॥ दुर्ध्यानसङ्गपद्वा हि मोचद्वारागेलाः स्त्रियः। चिन्तिता धर्मनाशाय चिन्तयेटिति नैव ता: ॥ ८ ॥ यामाद्यनियतस्थायी स्थानाबन्धविवर्जित:। चर्यामेकोऽपि कुर्वीत विविधाभिग्रहेर्युतः ॥ ८ ॥ समानादी निषदायां स्त्रादिक पटक वर्जिते। द्रष्टानिष्टानुपसर्गान् निरीष्टो निर्भय: सर्हत्॥ १०॥ शुभाशभायां गय्यायां विषहेत सुखासुखे। राग-हेषी न क्वींत प्रातस्य। च्येति चिन्तयेत ॥ ११ ॥ चाक् छोऽपि चि नाकोशेत् चमात्रमणतां विदन्। प्रत्युताक्रीष्टरि यतिसिक्तयेदुपकारिताम् ॥ १२ ॥ सहित इन्यमानोऽपि प्रतिइन्याद् मुनिर्ने तु । जीवानाशात् ऋषो दीष्ट्यात् चमया च गुचार्जनात् ॥१३॥ नायाचितं यतीनां यत् परदत्तोपजीविनाम्। याञ्चा दुःखं प्रतीच्छेत् तद् नेच्छेत् पुनरगारिताम् ॥ १४ ॥ परात् पराधें खाधें वा सभेतावादि नापि वा। माबेद् न लाभाद् नालाभाद् निन्देत् खमधवा परम् ॥१५॥ चित्रजेत न रोगेभ्यो न च काङ्केचिकि व्यातम्। . पदीनसु सहेद् देशाळानानी भेदमात्मन: ॥ १६ ॥ प्रभूताच्यागुचेसले मंस्तृतेषु स्वणादिषु । सहित दु:खं तत्स्पर्भभविमच्छेद् न तान् सहून् ॥ १७ ॥ यीचातपपरिक्तिनात् सर्वोङ्गीषाद् मसाद् सुनि:। नी दिजेत न सिद्धासेट् नी दर्तयेत्, सहत तु ॥ १८ ॥ उत्याने पूजने दाने न भवेदभिसाषुकः। भसलारि न दीन: स्थात् सलारि स्थात प्रवंवान् ॥ १८ ॥ प्रजां प्रजावतां पश्चवात्मन्यप्राज्ञतां विदन्। न विषीदेद् नवा माद्येत् प्रज्ञीत्वर्षसुपागतः ॥ २०॥ ज्ञानचारित्रयुक्तोऽस्मि च्छद्मस्थोऽचं तथापि चि। दल्जानं विषद्गेत ज्ञानस्य क्रमसाभवित्॥ २१ ॥ जिनास्तदुत्रं जीवो वा धर्माधर्मी भवान्तरम्। परोचलाद सवा नैव चिन्तयेत् प्राप्तदर्भनः ॥ २२ ॥

यारीरमानसानिव स्वपरप्रेरितान् मुनि:।

परीषद्वान् सहेताभीविकायमनसां वशी ॥ २३ ॥

ज्ञानावरणीये विद्ये मोद्यनीयान्तराययो:।

कर्मस्दयमाप्तेषु संभवन्ति परीषद्वाः ॥ २४ ॥

वेद्यात् स्थात् चृत् द्वषा शीतमुणां दंशादयस्तथा।

चर्या श्रय्या वधी रोगस्तृणसर्श्यमत्वाविष ॥ २५ ॥

प्रज्ञाज्ञाने तु विज्ञेयी ज्ञानावरणसंभवी।

प्रन्तरायादलाभोऽमी च्छ्जस्थस्य चतुर्दश्य ॥ २६ ॥

चृत् पिपासा शीतसृणां दंशायर्था वधी मलः।

शय्या रोगस्तृणसर्शी जिने वेद्यस्य संभवात्॥ २० ॥

तथा, लपसर्गेभ्यो निर्भीतः, तत्रोप सामीप्येन लपसर्जनादुपस्च्यत एभिरिति वा, लपस्च्यन्त इति वोपसर्गाः, ते च ;—

दिव्यमानुषतरयाक्यसंवेदनभेदतः।

चतुष्पुकाराः प्रत्येकमिष ते खुश्वतुर्विधाः ॥ १ ॥

हाखाद् हेषाद् विमर्शाच तिक्यश्वताच देवताः।

हाखाद् हेषाद् विमर्शाद् दुःगीलसङ्गाच मानुषाः ॥ २ ॥

तैरयास् भयक्रोधाहारापत्यादिरचणात्।

घटनस्तक्षनश्चेषप्रपातादाक्यवेदनाः ॥ ३ ॥

यद्या वात-पित्त-कफ-संनिपातीज्ञवा भमी।

परीषहोपसर्गीणामेषां सीठा भवेदभीः ॥ ४ ॥

जिनेष्वाराधनाकारिषु भक्तिभाक् बहुमानभाक्, 'जिनैरिप हि संसारपारावारपारीचैः पर्यन्ताराधनानुष्ठिता' इति बहुमानात्। तथा च ;---

'निव्यायमंतिकिरिया सा चोइसमेष पढमनाइसा।
सेसाय मासिएणं वीरिजिशिंदसा छहेण ॥ १ ॥
एवंभूत: सन् मरणं समाधिमरणं प्रतिपद्येत, पानन्दश्रावको
यथिति संप्रदायगम्यम् । स चायम् ;—

पद्यपाद्यापरपुरं परमाभिर्विभृतिभिः।
नान्ना वाणिजक्याम इति ख्यातं महापुरम्॥१॥
तत्र प्रजानां विधिवत् पितेव परिपालकः।
जित्रश्चिरित ख्यातो बभूव पृथिवीपितः॥२॥
पासीद् ग्टहपतिस्तस्मिन् नयनानन्दिदर्भनः।
पानन्दो नाम मेदिन्यामायात इव चन्द्रमाः॥३॥
सभ्मेचारिणी तस्य कपलावस्यद्वारिणी।
बभूव गिवनन्देति ग्रशाङ्कस्येव रोहिणी॥४॥
निधी वही व्यवहारे चतस्त्रोऽस्य पृथक् पृथक्।
हिरस्थकोटयोऽभूवंखलारस त्रजा गवाम्॥५॥
तत्पुरादुत्तरप्राच्यां कोज्ञाकाख्योपपत्तने।
पानन्दस्थातिबहवो बन्धुसंबन्धिनोऽभवन्॥६॥
तत्पुरोपवने दृतिपलाग्री समवासरत्॥७॥

⁽१) निर्वाचननिक्रवासाचतुर्देशेन प्रवसनावस्य। श्रेषाचां मासिकेन वीरिजनेन्द्रस्य घटेन॥१॥

जितग्रमुप्ते ही नाथस्त्रिजगनाथमागतम्। त्रुता ससंभामीऽगच्छद् वन्दितुं सपरिच्छदः ॥ ८ ॥ मानन्दोऽपि ययी पद्मां पादमूने जगत्पतेः। कर्णपीयूषगण्डूवकत्यां ग्रत्राव देशनाम् ॥ ८ ॥ प्रधानन्दः प्रणम्यां की विजगत्खामिनः पुरः। जयान दादशविधं गरिहधमें महामनाः ॥ १०॥ शिवनन्दामन्तरेष स्त्री: स तत्याज हम तु। चतस्त्रयतसः खर्षकोटीर्निध्यादिगा विना ॥ ११ ॥ प्रत्याचस्यौ व्रजानेष ऋते च चतुरी व्रजान्। चेत्रतागं च विद्धे इनपच्चमती विना॥ १२॥ गकटान् वर्जयामास पञ्च पञ्च गतान्यृते । दिग्यावाव्यापृतामां च वहतां चानसाममी ॥ १३ ॥ दिग्याविकाणि चत्वारि स सांवडनिकानि च। विद्वाय वद्दनान्यन्यवद्दनानि व्यवज्ञयत्॥ १४॥ प्रपरं गन्धकाषायाः स तत्याजाङ्गपुंसनम्। दन्तभावनमाद्रीया मध्यष्टेरृते अश्री॥ १५॥ वर्जयामास च चीरामलकादपरं फलम्। प्रभ्यक्षं च विना तैले सहस्रधतपाकिमे॥ १६॥ त्रम्यत् सुरभिगन्धाका।दुद्दर्भनकमत्यजत्। षष्टभ्य भौष्ट्रिकपयस्तुक्षेभ्योऽन्यश्च मक्जनम्॥ १७॥ भपरं चौमयुगलाद् वासः सर्वमवर्जयत्। श्रीखण्डागुरुषुरुणान्यवास्थान्यद् विलेपनम् ॥ १८ ॥

ऋते च मानतीमास्यात् पद्माच कुसुमं कडी। कर्षिकानामसुद्राभ्यामन्यचात्रीवभूववम् ॥ १८ ॥ तुरुष्कागुरुधूपेभ्य ऋते धूपविधिं जडी। ष्टतपूरात् खण्डखाद्यादपरं भच्चमत्यजत् ॥ २०॥ काष्ठपेयां विना पेयां कलमादन्यदोदनम्। माससुद्रवाचीभ्य ऋते सूपमपावारीत् ॥ २१ ॥ ष्टतं च वर्जयामास विना शारदगोष्टतात्। · शाकं खस्तिकमण्डूकों पानकां च विना नही ॥ २२ ॥ ऋते खेडा खदाराख्यात् तीमनं चाम्यु खाम्युनः। पश्चसुगन्धिताम्बूलाद् सुखवासं च सोऽसुचत्॥ २३॥ पानन्दः शिवनन्दाया चपेत्याय ससंमदः। ष्मीषं कवयामास ग्रहिधमें प्रतित्रुतम् ॥ २४ ॥ शिवाय शिवनन्द।पि यानमात्रश्च तत्त्ववम्। भगवत्पादमूलेऽगाद् ग्रहिधर्मार्थिनी ततः ॥ २५ ॥ तत्र प्रवस्य चरची जगन्नयगुरी: पुर:। प्रपेदे शिवनन्दापि ग्टिं इसमें समाहिता ॥ २६ ॥ प्रभिरुद्धा ततो यानं विमानमिव भासुरम्। भगवद्याक् सुधापान सुदिता सा गर्ड ययी ॥ २०॥ भय प्रणम्य सर्वेष्णिति पप्रच्छ गौतमः। महाबायं किमानन्दी यतिधमें यहीष्यति ? ॥ २८ ॥ विकासदर्भी भगवान् कथयामासिवानिति। श्रावकव्रतमानन्दः सुचिरं पास्रियचित ॥ २८ ॥

ततः सौधर्मनास्पेत्सौ विमाने चार्यप्रभे। भविष्यत्यमस्वरञ्जतुष्यस्थीपमस्थिति: ॥ ३०॥ सततं जागककस्य हाटश्रवत्यालने । धानन्दस्य ततोऽतीयुर्द्वीयनानि चतुर्दश्य ॥ ३१ ॥ निधान्ते चिन्तयामास सीऽन्येद्यिति शुक्षधी:। पात्रयः त्रीमतामस्मि भूयसामिष्ठ पत्तने ॥ ३२ ॥ विचित्रयिक्तया तेषां मा स्म स्वलमइं क्वचित । पक्रीकर्तेऽस्मिन् सर्वेच्चप्रचारे धर्मकर्माण ॥ ३३॥ ततो मनसिकत्यैवं प्रातकत्याय कत्यवित । को जाने पोषधमालां सुवियालामची करत ॥ ३४ ॥ निमन्त्रा सित्रसंबन्धिबान्धवादीनसावद्य । भोजियलाऽखिलं च्येष्ठे भारं पुत्रेऽध्यरीपयत्॥ ३५॥ ततव पुत्रमित्रादीन् सर्वानप्यनुमान्य सः। ययी पीषधणालायां धर्मकर्मविधिसाया ॥ ३६ ॥ तस्यीतम सह। व्यासी कर्मेव क्रययन् वपु:। धर्मं भगवदादिष्टमात्मानमिव पालयन् ॥ ३०॥ नि:श्रेषिकत्यां स्वर्गापवर्गसीधाधिरोष्ट्रणे । त्रावकप्रतिमापङ्क्तिमावरोष्ठ क्रमेण सः॥ ३८॥ तपसा तेन तीवेण शुष्कास्त्रक्पिशिताङ्गकः। चर्मवेष्टितयद्याभी महासत्त्वी बभूव सः॥ ३८॥ धर्मजागर्यया जायतिशीयसमयेऽन्यदा । भभग्नस्तपसानन्द्येतस्येवमचिन्तयत् ॥ ४०॥

यावदुत्यातुमीघोऽचि ग्रन्दायितुमपीम्बरः। धर्मीचार्येच भगवान् यावद् विहरते सम ॥ ४१ ॥ संलेखनासुभयवापि कत्वा मारणान्तिकीम्। तावचतुविधाद्वारप्रत्याख्यानं करोम्यद्वम् ॥ ४२ ॥ चिनायिलैवमानन्दस्तयैव विदधेऽपि च। विसंवदित चिन्तायाचेष्टितं न महाबानाम ॥ ४३ ॥ निराकाइन्स कालेऽपि समलाध्यवसायिन:। तस्य जन्नेऽवधिन्नानं तटावरणग्रहितः ॥ ४४ ॥ तवाजगाम भगवान् श्रीवीरो विश्वरंस्तदा। द्रतिपलाशे समवामरचको च देशनाम् ॥ ४५ ॥ गौतमस तदा भिचाचयया प्राविशत पुरे। ः भात्तावपानः कोन्नाके ययावानन्दभूषिते ॥ ४६ ॥ मिलितं तन भूगांसं लोकं संजातविस्मयम । रैचा चन्ने गणधरोऽन्योग्यमित्यभिभाविषम् ॥ ४०॥ शिषो जगहुरोवीरस्थानन्दो नाम पुष्पधी:। प्रपत्नानग्रनीऽस्तीइ निरीष्ठः सर्वेद्यापि ष्टि ॥ ४८ ॥ गीतमस् तदाकर्षं प्राम्यमुस्पासकम्। द्रति बुद्या जगामाय तत्पोषधनिकेतनम् ॥ ४८ ॥ चकसाद् रब्रह्याभं तमचिन्तितमागतम्। दृष्टा सानन्दमानन्दोऽवन्दतैवस्वाच च ॥ ५०॥ भगवन् ! तपसाऽनेन क्तिष्टमुखातुमचमः । इडेज्यनभियोगेन यथा पादी सुशामि ते॥ ५१॥

उपेत्य पुरतस्तस्य तस्यूषोऽस्य महामुनै:। प्रवन्दत विधानन्द्यरची शिरसा स्पृशन्॥ ५२॥ किं भवत्यविधितानं भगवन् ! ग्रहमिधिनः १। दत्यानन्देन प्रष्ट: सवामित्यूचे महासुनि: ॥ ५३ ॥ भानन्दीऽयावदत् स्वामिन् ! तर्हि मे ग्रहमेधिनः । भवधिन्नानमुत्पेदे गुन्पादप्रसादतः ॥ ५४ ॥ भापं च योजनशतीं पूर्वीसी दिचणीदधी। पश्चिमाओं च वीचेऽइसुदीचां ला हिमाचलात्॥ ५५॥ जध्वं सौधर्मकलादा पछामि भगववहम । घधी रहाप्रभायासु प्रव्या चा लीलुपाद् वनात्॥ ५६॥ मुनिक्चेऽविधिन्नानं जायते ग्रहमिधनः। न त्वियमात्रविषयं स्थानस्थालोचयास्य तत ॥ ५०॥ मानन्दोऽप्यव्रवीदेतदस्ति मे तत्, सतामपि। भावानामभिधाने किं भवेदासोचना कचित् ?॥ ५८ ॥ भवेदा लोचना मी चेद् नमु तद् यूयमेव हि। पालोचनामाददीध्वं स्थानस्थामुख संप्रति ॥ ५८ ॥ मानन्देनेत्यभिष्ठिते सामको गौतमस्ततः। ययी त्रीवीरपादान्ते भक्तपानाद्यदर्भयत् ॥ ६० ॥ त्रानन्दस्यावधित्रानमानविप्रतिपत्तिजम्। वादं चावेदयाचाको गीतमस्तं जगहरोः ॥ ६१॥ पालोचनीयं तटिष्ठ किमानन्देन किं मया ?। गीतमेनीत विज्ञप्ते भवतित्यादिशत प्रभुः ॥ ६२ ॥

तथैव प्रतिपेदे तद् विदधे च तथैव सः ।

चमयामास चानन्दं चमिषं चमिषां वरः ॥ ६३ ॥

वर्षाणि विंग्रतिमिति प्रतिपास्य धर्म
मानन्द पासददयानग्रनेन खत्युम् ।

जन्ने सुरोऽक्षविमा नियरे विदेष्ठे
षूत्पद्य यास्त्रति पदं परमं ततस्य ॥६४॥१५३॥
॥ इति भानन्दश्राद्यवयानकम् ॥

षय प्रक्षतस्य त्रावकस्थोत्तरां गितं स्रोकद्येनाह—
प्राप्तः स कल्पेष्टिन्द्रत्वमन्यद्वा स्थानमृत्तमम् ।
मोदतेऽनुत्तरप्राज्यपुख्यसंभारभाक् ततः ॥१५४॥
च्युत्वोत्पद्य मनुष्येषु भुक्षा भोगान् सुदुर्लभान् ।
विरक्षो मुक्तिमाप्नोति शुद्धातमान्तर्भवाष्टकम् ॥१५५॥

व्याख्या—स यावको ययोक्तयावकधर्मपरिपासनात् कर्सेषु सौधर्मादिषु, सम्यग्दृष्टीनामन्यत्रोत्पादाभावात्, इन्द्रत्वं प्रक्रत्वम्, प्रन्यद् वा सामानिक-त्रायिखंग-पारिषद्य-सोकपासादिसंविध्य खानं पदं प्राप्तः, उत्तमित्याभियोग्यादिस्थानव्यवच्छेदार्धम्, तत्रोत्पक्षय मोदते प्राप्तरत्नविमानमद्यानमञ्जनवापीविषित्ररत्न-वस्नाभरणः सुरसुन्दरीचामरव्यजनव्याजवार्यमाणमौति-मन्दार-

⁽१) डच-नधरी।

मास्वमध्यतीऽइमइमिकाविवासमायातिवद्यकोठीचाटुकारजयकयध्विविप्तिविध्वितिनभोक्षणो मनोमात्वपरित्रमसमिस्तितसकसवैषयिकसुखलालितो नानासिद्यायतनयात्वासमुत्पबद्धविप्रकर्षः सन्
प्रमोदभाग् भवित । षय हेतुमाइ — प्रमुत्तरा प्रनम्यसाधारचाः
प्राच्या बहवो ये पुष्यसंभारास्तान् भक्तते तहाल् ॥ १५४ ॥ ततः
कर्त्यस्युत्वा मनुष्यायुर्निवन्धेन च्यवनमनुभूय मनुष्येषु विशिष्टदेशजातिकुलबलेख्यक्वपवस्त्यचीदारिकप्ररीरत्वेन लग्म लग्धाः,
भुक्काऽनुभूय भोगान् यच्द-क्व-रस-गन्ध-स्वर्धकच्चानकतपुष्येरितप्रयेन दुलभान्, यत् 'किस्विद् निमित्तमवाष्य सांसारिकेश्वः
सुखेभ्यो विरक्तो वैराग्यस्यैव परमप्रकर्षयोगेन सर्वविद्यति प्रतिपद्य
तत्रैव जन्मनि चपकत्रेस्थाक्रमणक्रमेष वेवक्तज्ञानसुत्याद्य निःग्रेषकर्मनिर्मूलनेन ग्रदाला सुक्तिमाप्नोति। प्रथ न तत्रैव जन्मनि
सुक्तिस्तदा कियस्तु जन्मानरेषु सुक्तः स्यादित्याइ — 'प्रन्तर्भवाएकम्' इति भवाष्टकाभ्यन्तर इत्यर्थः ॥ १५५ ॥

प्रकाशनयोक्षमधैसुपसंहरति —

द्रति संचेपतः सम्यग्रव्यवयमुदीरितम् । सर्वीऽपि यदनासाद्य नासादयति निर्वृतिम् ॥१५६॥

इति प्रकाशपयेष रक्षत्रयं ज्ञानदर्भनचारित्रात्मकं योगलेन प्रत्याख्यातसुदीरितं कथितम्। कथम् ? सम्यग् जिनागमाविरीधेन। विस्तरस्यासर्वविदा वक्तुमथस्यत्वादाङ—संचेपतः। रक्षत्रयं विना-

⁽१) ड च किञ्चन।

उन्यतोऽपि कारणाद् निर्वाणप्राप्तिं यद्यमानं प्रत्याद्य—सर्वीऽपि, षास्तां कसिदेकः, यद् रद्वव्रयमनासाद्य काकतालीयेनापि न्यायेन नाम्नोति निर्वृतिं मोचम्। न स्वत्राततस्त्वोऽश्रद्धानो नवं कर्म निर्वाप्तन् पूर्वीपासानि कर्माणि स्वक्रधानवलेनाचपयन् संसार-वन्धनाद् सुक्तिमाम्नोतीति सर्वं समस्त्रसम् ॥ १५६॥

॥ इति परमार्डतत्रीकुमारपालभूपालश्चत्रृषिते धाचार्य-त्रीहेमचन्द्रविरचितिऽध्यालोपनिषत्रान्त्र संजातपदृबस्ये त्रीयोगशास्त्रे स्वोपत्रं खतीयप्रकाश्चविवरणम् ॥३॥

॥ घर्डम् ॥

यय चतुर्यः प्रकाशः।

-: +:--

धर्मधर्मिणोर्भेदनयमधिकत्यात्मनी रत्ननयं मृतिकारणत्वेनोक्तम्। इदानीमभेदनयात्रयेणात्मनो रत्ननयेणैकत्यमाच---

श्रात्मेव दर्भनन्नानचारिताख्यथवा यते:। यत्तदात्मक एवेष श्रीरमधितिष्ठति॥१॥

श्रविति भेदनयापेश्वया प्रकारान्तरस्थाभेदनयस्य प्रकाशनार्थम्। पालेष न ततो भिन्नानि दर्धनन्नानचारित्राणि।
यतेरिति संबन्धिपदम्। प्रत्नोपपित्तमाइ—यदृ यस्नात् तदालक
एव दर्भन-न्नान-चारित्रालक एव तदभेदमापन्न एवेष प्राला
यरीरमधितिष्ठति। प्रालभिन्नानां हि दर्भनादीनां नालनि
सुत्तिहेतुत्वं स्थात्, देवदत्तसंबन्धिनामिव यन्नदत्ते॥१॥

चभेदमेव समर्थियतुमाहः—

चात्मानमात्मना वित्ति मोष्ठत्यागाद्य चात्मनि । तदेव तस्य चारिनं तज्ज्ञानं तच्च दर्शनम् ॥ २॥

भावानं कर्मतापत्रमात्मस्याधारभूते भावाना खयमेष यो वेक्ति जानीते। एतच जानं न मूटानां भवतीत्याइ—मोइ- त्यागात्। तदेवाबाज्ञानमेव तस्याबानयारिनम्, प्रनायवरूप-त्वात्; तञ्ज्ञानं तदेव ज्ञानम्, बोधरूपत्वात्; तच दर्भनं तदेव दर्भनम्, यद्यानरूपत्वात्॥ २॥

पाक्रपानमेव स्तीति--

षात्मान्नानभवं दुःखमात्मन्नानेन इन्यते । तपसाप्यात्मविन्नानहीनैश्लेतुं न मक्यते ॥ ३॥

इस सर्वं दुःखमनाकाविदां भवित, तदाकाज्ञानभवं प्रतिपचमूतेनाकाज्ञानेन शास्यित चयसुपयाित तम इव प्रकाशिन। ननु
कार्मचयहितुः प्रधानं तप उक्तम्, यदाषुः,—'पृष्ट्यं दुचिन्नाणं
दुप्पिडकांताणं काडाणं कामाणं विषद्त्ता मोक्छो न स्य प्रवियद्त्ता
तवसा वा भोसदत्ता द्रत्याह,—तपसािप पास्तामन्येनानुष्ठानेन
तदाकाज्ञानभवं दुःखमाकाविज्ञानहीिनेन च्छेत्तं शकाते, ज्ञानमन्तरेण तपसोऽस्प्रफलस्वात, यदाष्टः—

'जं प्रवाणी कवां खवेद बहुपाहिं वासकोडीहिं। तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेद जसासमित्तेष ॥ १॥

तत् स्थितमेतत्—बाद्यविषयव्यामोष्टमपद्याय रद्वत्रयसर्वस्त-भूते पालक्वाने प्रयतितव्यम्, यदाद्वर्षद्वाः परि—पाला रे स्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य इति। पालक्वानं च

⁽१) पूर्वे दुचरितानां दुचरिकान्तानां कतानां कर्मणां नेहियत्वा मोचो नाच्यनेहियत्वा तपद्या वा चपवित्वा।

⁽२) बद्तानी वर्ष चपवति बद्धवाभिवैषेकोटिभिः। तज्ज्ञानी तिभिनुप्रः चपयस्य कासमालेख ॥ १ ॥

नासनः कर्मभूतस्य प्रयक् कि चित्, पांप त्वासनिषद्भूपस्य स्वरं-वेदनमेव सम्यते, नातोऽन्यदासम्मानं नाम, एवं दर्भनपारिते पांप नासनो भिन्ने। एवं च चिद्रूपोऽयं ज्ञानाद्यास्थाभिरभिधीयते। ननु विषयान्तरस्युदासेन कि मित्यासम्मानमेव सम्यते, विषयान्तरम्मान-मेव ह्याजानरूपं दुःस्वं किन्यात्। नैवम्, सर्वविषयेभ्य प्रास्तन एव प्रधानत्वात्, तस्यैव कर्मनिबन्धनग्ररीरपरिग्रहे दुःस्वितत्वात्, कर्म-चये च सिदस्यरूपत्वात्॥ ३॥

एतदेवाइ...-

भयमात्मैव चिद्रूपः भरीरी कर्मयोगतः । ध्यानाग्निदम्धकर्मा तु सिहात्मा स्थान्निरञ्जनः ॥ ४ ॥

भयमिति सक्तसमाभप्रतिष्ठिति विद्वृपसेतनस्त्रभावः, उपयोग-लक्षणत्वाच्यीवस्य; तथा, स एव शरीरी भवति, कर्मयोगात्, न त्वन्ये विषयाः; तेन न विषयान्तरमानं रूप्यते। भाक्षेत च गुक्कध्यानाग्निद्रभक्तर्भाऽशरीरः सन् मुक्तस्वरूपो भवति निरम्बनो निर्मसः। भरोऽपि कारणादासमानं रूप्यते॥ ४॥

तथा--

चयमात्मैव संसारः कषायेन्द्रियनिर्जितः। तमेव तदिजेतारं मोचमार्चमनीषिणः॥ ५॥

'श्रयमान्नेव' इति पूर्ववत् । संसारी नारक-तिर्यग्-नरा-ऽमर-क्रपतया । विविधिष्टः सन् ? क्रवायेन्द्रियनिर्श्वितः क्रवाये- रिन्दियेश पराभूतः। तमेव चात्मानं तिह्नजितारं कवायेन्द्रिय-जेतारं मोचमाहः। न हि खक्पबाभादन्यो मोचः। याऽप्या-नन्दक्पता सापि खक्पबाभक्षेव। तस्मादाक्षञ्चानसुपासनीयम्, दर्भन-चारिव्रादेरत एव सिहेरिति॥ ५॥

'कवायेन्द्रियनिर्जितः' इत्युक्तम्, तत्र कवायान् विद्वचीति— स्युः कवायाः क्रीधमानमायालीभाः शरीरिवाम् । चतुर्विधास्ते प्रत्येकं भेदैः संज्वलनादिभिः ॥ ६॥

क्रोधमानमायालोभाः कषायग्रव्स्वाचा भवन्ति कचन्ते चिंद्यन्ते प्राणिनोऽस्मिन्ननेनित वा, कषः संसारः कमे वा तस्याया लाभाः प्राप्तय इति काला, चयवा, कषं संसारमयन्त एभिरिति काला। ते च ग्ररीरिणां संसारिणां न तु सुक्तानाम्। ते च क्रोधादयः प्रत्येकां चतुविधाचतुष्प्रकाराः संज्वन्ननादिभिभेदैः। तत्र क्रोधः संज्वन्ननः, प्रत्यास्थानावरणः, अप्रत्यास्थानावरणः, भनन्तानुवन्धी च। एवं मानः, माया, लोभचेति॥ ६॥

संज्यसगदीनां सचणमाइ--

पत्तं संज्वलनः प्रत्याख्यानी मासचतुष्टयम् । चप्रत्याख्यानको वर्षे जन्मानन्तानुबस्रकः ॥ ०॥

पर्च मार्गार्थमभिव्याप्य संज्वलनः क्रोधी मानी माया लीभश्व भवति । संज्वलन इति त्वणाग्निवदीषच्च्चलनात्मकः, परीषष्टादि-संपाति सपदि ज्वलनात्मको वा । प्रत्यास्थानी भीमो भीमसेन इति न्यायेन प्रत्याख्यानावरणः प्रत्याख्यानं सर्वविरितमाहणोतीति कत्वा। स मासचतुष्टयमभिव्याप्य भवति। प्रप्रत्याख्यानोऽप्रत्या-ख्यानावरणः, नञोऽत्याधित्वादत्यमपि प्रत्याख्यानमाहणोतीति कत्वा। स वर्षे संवत्सरमभिव्याप्य भवति। प्रनन्तं भवमनु-वम्नातीत्वन्तानुबन्धकः, मिय्यात्वसङ्चरितत्वादस्थानन्तभवानु-विश्वतम्। स जन्म जीवितकालमभिव्याप्य भवति। प्रसन्नचन्द्रादेः चणमाविद्यतीनामपि कवायाणामनन्तानुबन्धित्वम्, प्रन्थवा नरकयोग्यकमीपार्जनाभावात्॥ ७॥

इति कालनियमक्षते संज्वलनादिलचयेऽपरितृषंक्षचयानार-माइ—

वीतरागयतिश्राह्यसम्यग्दृष्टित्वघातकाः। ते देवत्वमनुष्यत्वतिर्यन्तृनरकप्रदाः॥ ८॥

लगज्दः प्रत्येकमिप संबध्यते, तेन वीतरागलस्य, यितलस्य, व्यावकलस्य, सम्यग्दृष्टिलस्य च क्रमेण घातकाः, तथाङ्गि— संज्वलनीदये यितलं भवति न पुनर्वीतरागलम्; प्रत्यास्थाना-वरणोदये व्यावकलं भवति न पुनर्यतिलम्; प्रप्रत्यास्थानावरणोदये सम्यग्दृष्टिलं भवति न पुनः व्यावकलम्; प्रनन्तानुबन्ध्युदये सम्यग्दृष्टिलं भवति । एवं वीतरागलघातकलं संज्वलनस्य, यितलघातकलं प्रत्यास्थानावरणस्य, व्यावकलघातकलमप्रत्या-स्थानावरणस्य, सम्यग्दृष्टिलघातकलमनन्तानुबन्धिनः स्थितं लचणं भवति । उत्तराधेनामीषां प्रस्तदायकलमाइ—ते संज्वल-

नादयो देवलादिफन्नदायकाः ; तथा हि— संव्यन्ताः क्रोधादयो देवगितम्, प्रत्यास्थानावरणा मनुष्याितम्, प्रप्रत्यास्थानावरणा मनुष्याितम्, प्रप्रत्यास्थानावरणा सिर्व्यन्तित्। एतेषां च संव्यन्तादिभेदानां चतुर्णां कथायाणां स्वष्टद्वान्तक्षय्यते स्वर्णाज-एथिवीराजि-पर्वतराजिसद्द्याः क्रोधाः संव्यन्तादिभेदाः, तिनिधन्ता-काष्टा-ऽस्थि-ग्रेनस्थाः सद्यायत्वारो मानाः, प्रवन्धन-गोम् विका-मिष्यक्र-वंशिमून्तस्यायत्वारो मायाः, हरिद्रा-खन्नन-कर्षम-किरागसद्द्यायत्वारो खोभाः, यदाह —

'जलरेणुपुढविपव्ययराईसिरसी चर्चविष्ठी कोष्ठी।
तिनिसलयाकदृद्धियसेश्रत्यंभीवमी माणी॥१॥
मायावलेष्टगीसृत्तिमिंढसिंगचणवंसिसृत्रसमा।
लोष्ठी इलिइखंजणकहमिकमिरागसारिच्छी॥२॥इति॥८॥

षय कवायाचां जेतव्यत्वस्पदर्शियतुं दोवानाइ—

तवीपतापकः क्रोधः क्रोधो वैरस्य कारणम्। दुर्गतेर्वर्तनी क्रोधः क्रोधः शमसुखार्गला ॥ ६॥

तनेति तेषु कवायेषु क्रोधः प्रथमकवाय उपतापयति शरीर-

⁽१) जनरेषुष्ठकोपर्वतराजिषडयचत्वविधः क्रोधः। तिनियवताकारास्त्रकमेवस्तक्कोपमो मानः॥१॥ सायाववेखगोसूतिकामेठकष्टक्रवनवंशिसूबसमा। बोभो एरिहाखझनकर्दमकामिरागयडयः॥१॥

मनसी रत्युपतापकः, तथा, वैरस्य परस्ररीपघातालानी विरोधस्य सभूम-परग्ररामयीरिव कारणम्,तथा, दुर्गतेर्नरकस्वचायास्तयो-रिव वर्तनी मार्गः क्रीधः; तथा, ग्रमसुखस्य प्रश्रमानम्दस्यात्मनि प्रविगतीऽर्गतेवार्गसा, तदुपरोधकारित्वात्। पुनः पुनः क्रीधग्रहणं तस्यातिदीस्यज्ञापनार्थम् ॥ ८ ॥

खः परोपतापकारिलेऽपि क्रोधस्य क्रमानुदृष्टान्तेन स्वोप-तापकलं समर्थयते,—

उत्पद्यमानः प्रथमं दह्येव खमाश्रयम् । क्रोधः क्रशानुवरपञ्चादन्यं दहति वा नवा ॥ १०॥

तयाविधकारणसंपाते चलाद्यमानः क्रोधः क्रमानुवत् सं स्वकीयमात्रयं, यत्र स चलाद्यते तं, नियमेन दहति, पश्चात् क्रमानुवदेवान्यं दाह्यान्तरं दहति वा नवा, परस्य द्यमाधील-त्वादिना साईद्वमादिवत् दन्धुमश्रकात्वात्।

प्रवासरञ्जोकाः,—

٤٢

मिर्जितं पूर्वकोत्या यद् वर्षे रष्टिभिक्ष्मया।

तपस्तत् तत्त्वणादेव दष्टति क्रोधपावकः ॥ १ ॥

यमक्पं पयः प्राज्यपुष्यसंभारसंचितम्।

प्रमषेविषसंपर्कादयेव्यं तत्त्वणाद् भवेदः॥ २ ॥

चारित्रचित्ररचनां विचित्रगुषधारिणीम्।

समुक्तपैन् क्रोधधूमो ग्रामलीकुरुतेतराम्॥ ३ ॥

यो वैराग्यभमीपचपुटै: समरसोऽर्जित: ।

गानपत्रपुटामेन क्रोधेनोस्नृष्यते स किम् १॥ ४॥

प्रवर्धमान: क्रोधोऽयं किमकार्यं करोति न १।

अन्ने हि हारका हैपायनक्रोधानले समित्॥ ५॥

क्राध्यतः कार्यमिहियों न सा क्रोधिनवस्थना।

जन्मान्तरार्जितोर्जिस्वकमण: खलु तरफलम्॥ ६॥

स्वस्य लोकह्योच्छित्ये नागाय स्वपरार्थयोः।

धिगहो ! दधित क्रोधं भरीरेषु भरीरिण:॥ ७॥

क्रोधान्याः पश्च निम्नन्ति पितरं मातरं गुक्म्।

सुद्धदं सोदरं दारानाक्षानमिप निर्मृषाः॥ ८॥।

क्रोधस सक्षम्का तस्त्रयोपायसुपदियति— क्रोधवक्रेस्तद्ञाय यमनाय शुभात्मभिः। श्रयणीया चमैकेव संयमारामसारणिः॥ ११॥

यसात् क्रोध एवंविधस्तसात् क्रोधवक्रेरक्राय भटिति शम-नाय शान्तये शभाक्षभः पुर्श्याक्षभः, प्रक्रायश्रष्णं भटिति क्रोधोपश्रमोपदेशार्थम्, क्रोधो प्रियमनेवाप्रतिष्ठतः सन् विवर्ध-मानो दवानस १व पश्चात् निवारियतुमशक्यः, यदाष्ठ—

> 'ज्ञच्योवं वस्योवं ज्ञान्मयोवं वसाययोवं च। न इ भे वीससियव्यं योवं पि इ तं बहुं होई ॥ १ ॥

⁽१) ऋषक्षोवं वनसोधनन्तिकोवं षषायस्रोवं प। न खसु भवता निवस्तितव्यं स्तोबन्धि तदु वक्ष भवति ॥ १ ॥

ययणीया यात्रयितव्या एकेंव चमा। न हि चमामन्तरेष कोधीपयमीपायी जगत्यस्ति, कोधफलसंप्रदानं तु वैरहेतुत्वेन प्रत्युत कोधहिं हितुः, न तु तत्र्ययमाय इत्येकयञ्चम्। चमां विश्वनिष्ट—संयमारामसार्णः संयम एव नवनवानां संयम-व्यानानां तद्रणामारोपहेतुत्वेन तदृि हितुत्वेन चारामी विचित्र-तद्मसमूहात्मकस्तस्य सार्णः कुष्या संयमारामहिं हितुत्या पुष्प-फलप्राप्तिहेतुत्रया च। चमा हि प्रयान्तवाहिताद्रूपा चिन्तपरिणतिः सा सार्णित्वेन दृषिता, नवनवप्रयमपरम्पराप्रवाहदृष्ठत्वात्।

त्रवान्तरञ्जोकाः —

भपकारिजने कोपो निरोहं प्रकात कथम्।

गकाते सत्तामाहालगाद यहा भावनयाऽनया ॥ १ ॥

भाष्टीकत्यात्मनः पापं यो मां बाधितुमिच्छति।

स्वकर्मनिष्टितायाक्षे कः कुप्येद बालिगोऽपि सन् ॥ २ ॥

प्रकुप्याम्यपकारिभ्य इति चेदाश्रयस्त्व।

तत् किं न कुप्यसि खस्य कर्मणे दुःखडेतवे॥ ३ ॥

उपेच्य लोष्टचेतारं लोष्टं दश्चति मण्डलः।

मगारिः शरमाप्रेच्य शरदीतारमिच्छति॥ ४ ॥

यैः परः प्रेरितः कूर्यमेद्धं कुप्यति कर्मभिः।

तान्युपेच्य परे कुध्यन् किं श्रये भवणित्रयम् ॥ ५ ॥

श्रूयते श्रीमहावीरः चान्ये केच्छेषु जिमवान्।

प्रयक्षेनागतां चान्तिं वोदं किमिव नेच्छिस ॥ ६ ॥

वैसीकाप्रस्वयत्राणचमाचेदात्रिताः चमाम । कदलीतुष्यसत्त्वस्य चमा तव न किं चमा ?॥ ७॥ तया कि नाक्षया: पुरुषं यथा कोऽपि न बाधते ?। खप्रमादमिदानीं त् शोषवङ्गीकृष चमाम ॥ ८ ॥ क्रोधात्यस्य स्विष्णचच्छासस्य च नामारम्। ्तस्मात् क्रोधं परित्यच्य भजोक्क्यलियां पदम् ॥ ८ ॥ मद्यपि: क्रोधसंयुक्तो निष्कीधः कूरगब्ड्कः। फ्टिषं सुप्ता देवताभिर्ववन्दे कुरगड्डकः ॥ १० ॥ पबन्तदेवेचः शक्केत्यमानो विचिन्तयेत । चेत् तथ्यमेतत् कः कोपोऽय मिय्योक्यसभावितम् ॥ ११ ॥ वधायोपस्थितेऽन्यस्मिन् इसेद् विस्मितमानसः। वधे मलर्मसंसाध्ये व्या कृत्यति बालियः ॥ १२ ॥ निइन्त्स्याते ध्यायेदायुषः चय एव नः। तदसी निर्भयः पापात् करोति सतमारणम् ॥ १३ ॥ सर्वपुरुवार्धचौर कोपे कोपो न चेत तव। धिक लां खल्पापराधेऽपि परै कोपपरायणम् ॥ १४॥ सर्वेन्द्रियम्बानिकरं विचेत् ं कोपं प्रसर्पन्तिसवीयसर्पम् । विद्यां सुधीर्जाङ्गलिकीमिवान-वद्यां चमां संततमाद्भियेत ॥१५॥११॥

मानवधायस्य स्वरूपमाष्ट्र---

विनयश्रुतशीलानां विवर्गस्य च घातकः। विवेकालोचनं लुम्पन् मानोऽस्यक्करणो नृणाम् ॥१२॥

विनयस गुर्वोदिषूपचारस्य चाः, स्रतं च विद्या, शीलं च सुस्यभावता, तेषां घातकः। जात्यादिमदाभातो हि पिशाचिकप्रायो

न गुर्वादीनां विनीतो भवति। भविनीतस गुरूनग्रुत्रूषमाचो

न विद्यां प्रतिसभते। भत्यत्व सर्वजनावज्ञाकारी स्त्रस्य दुःस्त्रभावतां प्रकटयति। न केवलं विनयादीनामेव घातको मानो
यावत् निवर्गस्य धर्मार्थकामस्य चणस्य। मदावित्तसस्य हि निन्द्रयजयः, तदधीनस्र धर्मः कयं स्यात् १। भर्योऽपि राजादिसेवापरायत्तवृत्तिर्मानस्त्रस्य वयं स्यात् १। कामस्तु मार्दवमूल
एव, तत् कयं मानस्त्रस्य स्थाणाविव भवेत् १। किञ्च, भन्योऽत्यः
क्रियतेऽनिनेत्यस्य स्रत्यस्य स्थाणाविव भवेत् १। किञ्च, भन्योऽत्यः
क्रियतेऽनिनेत्यस्य स्त्रस्य स्थाणाविव भवेत् १। किञ्च, भन्योऽत्यः
स्वर्मन्। किं तत् १। विवेककोचनं विवेकः क्रत्याकत्यविचारणं
स एव कोचनम्, "एकं हि चञ्चरमसं सङ्जो विवेकः" इति
वचनात्। मानवतो हि वृद्यवामकुर्वाणस्य विवेककोचनलोपनमवस्यंभावि, तिस्रांस्य सत्यस्य स्वर्णस्य मानस्य सुवचमेव॥ १२॥

दरानी मानस्य भेदानुषदर्भयंस्तत्पत्तमादः— जातिलाभक्तलेश्वयंबलक्षपतपःश्रुतैः । सुर्वन् मदं पुनस्तानि हीनानि लभते जनः ॥१३॥ जातिय साभवेत्यादिहन्दः, तैमैदं मदिसिचित्ततां कुर्धन्, तान्येव जात्यादीनि जन्मान्तरे शीनानि सभते।

प्रवासरञ्जोकाः---

जातिभेदान नैकविधानुत्तमाधममध्यमान्। दृष्टा को नाम क्रवींत जात जातिमदं सुधी: ॥ १ ॥ बन्नमां कारियाप्रीति श्रीनामाप्रीति कर्मतः। तवाशास्त्र तिकीं जातिं की नामासाय मायत ॥ २ ॥ चन्तरायचयादेव साभी भवति नान्यया। तत्र वस्तत्त्वज्ञी न साभमदमुद्रहेत् ॥ ३ ॥ परप्रसादशक्त्यादिभवे लाभे महत्वपि। न लाभगटसच्छन्ति महातानः कणचन ॥ ४ ॥ चक्क नीनानिप प्रस्य प्रजाश्रीशीलशालिन:। न कर्तव्यः कुलमटो महाकुलभवैरिप ॥ ५ ॥ किं कुलेन कुशीलस्य सुशीलस्यापि तेन किम। एवं विदन कुलमदं विदध्याद् न विचच्च : ॥ ४ ॥ त्रता विभवनैष्वर्थसंपदं वच्चधारिषः। पुरवासधनादीनामैखर्थे कीह्यो सदः॥ ७॥ गुबो ज्वलादपि भ्रम्बेद् दोषवन्तमपि श्रयेत । क्रियोसस्त्रीवदैष्वर्यं न मदाय विवेकिनाम ॥ ८॥ महाबलोऽपि रोगादीरबलः क्रियते चणात । इत्यनित्ये बले पंसां युक्तो बलमदी निष्ट ॥ ८ ॥

चतुर्धः प्रकाशः।

यसनारिण जरसि मृत्यो कर्मणसान्तरे।

प्रवसायित्, ततो इन्तः ! तेषां यसमदो सुधा ॥ १० ॥

सप्तधातुमये देहे चयापच यविर्मणि।

जरावजाभिभाव्यस्य को कपस्य मदं वहित् ॥ ११ ॥

सनत्कुमारस्य कपं तत्त्वयं च विचारयन्।

को वा सक्त थः स्त्रिऽणि कुर्याद् कपमदं किल ॥ १२ ॥

नाभेयस्य तपोनिष्ठां श्रुता वीरजिनस्य च।

को नाम स्त्रस्यतपि स्त्रकीये मदमात्रयेत् ॥ १३ ॥

येनैव तपसा चुत्रोत् तरसा कर्मसंचयः।

तेनैव मददिन्धेन वर्धते कर्मसंचयः॥ १४ ॥

स्त्रद्वा रचितान्यन्यैः शास्त्रास्थान्नाय सीलया।

सर्वन्नोऽस्मीति मदवान् स्त्रकीयाङ्गः नि खादति॥ १५ ॥

श्रीमहणधरेन्द्राणां श्रुता निर्माणधार्षः।

कः श्रयेत् श्रुतमदं सक्त प्रस्त्रयो जनः॥ १६ ॥

कः श्रयेत् श्रुतमदं सक्त प्रस्त्रयो जनः॥ १६ ॥

केचित्तु ऐष्वर्धतपसीः स्थाने वास्तस्यनुह्मिदौ पठिन्त, छप-दिमन्ति च,—

द्रमकैरिव च दुष्कभैकासुपकारिनिमित्तकं परजनस्य।
काला यद् वाक्रभ्यकमवाप्यते को मदस्तेन ॥ १ ॥
गर्वे परप्रसादात्मकेन वाक्रभ्यकेन यः कुर्यात्।
तहाक्रभ्यकविगमे शोक्रससुदयः परास्थाति ॥ २ ॥

⁽१) च भ - व भर्म चः।

तथा --

याच्योद्गाष्ट्रयमयस्तिविचारबार्यावधारबाद्येषु । बुद्याक्वविधिविकाल्येष्यमन्तपर्यायवदेषु ॥ २ ॥ पूर्वपुरुषसिंद्यानां विज्ञानातिश्रयसागरसमन्तम् । खुला सांप्रतपुरुषाः कद्यं खबुद्या सदं यान्ति ? ॥४॥१२॥

मानस्य सक्तपं भेदां य प्रतिपाच, रदानीं समानप्रतिपचभूतं मादेव मानवयोपायसुपदियति,—

उत्सर्पयन् दोषणाखा गुणमूलान्यधी नयन् । उन्मूलनीयो मानदुस्तन्मार्दवसरित्सवैः॥ १४॥

मान एव हुर्दुम चन्नतिविशेषधारिलेन। मानहमयी: साधर्म्य-माइ,—उद्मवयदूष्यं नयन् दोषा एव प्रसर्वशीसलेन शाखा दोषशाखास्ताः, गुणा एव मूलानि गुणमूलानि तान्यधी नयन् न्यक्षवन्। के ब्यूसनीयः ! मार्दवसरित्प्रवेमी देवनेव सततवाहि-तया सरित् तस्ताः प्रवेः प्रसरेः। मदद्रमो हि यथा यथा वर्धते तथा तथा गुणमूलानि तिरोदधाति, दोषशाखास विस्तारयति। तदयं कुठारादिभिवसूलयितुमशक्तो मार्दवभावनासरिजवाहिण समूलसुक्तनीय इत्यर्थः।

प्रवास्तरज्ञीकाः---

मार्दवं नाम सदुता तश्रीषत्यनिविधनम् । मानस्य पुनरीदत्यं साक्ष्यमनुपाधिकम् ॥ १ ॥ पानाः सृगिद् यत यत्नी हत्यं जात्यादिगोचरम्।
तत्र तस्य प्रतीकारहेतोमिद्वमात्रयेत्॥ २॥
सर्वत्र मार्दवं तुर्योत् पूज्येषु तु विग्रेषतः।
येन पापाद् विमुख्येत पूज्यपूजाव्यतिकमात्॥ ॥
मानादः बाहुवित्वंदो लताभिरिव पापभिः।
मार्दवात् तत्त्वणं सृक्षः सद्यः संजातक्षेवलः॥ ॥
चक्रवर्ती त्यक्तसङ्गो वैरिणामिप वेश्मसु।
भिचाये यात्यहो ! मानच्छेदायासदु मार्दवम्॥ ५॥
चक्रवर्त्वित त्यक्तमानियं च वरिवस्यति॥ ६॥
एवं च मानविषयं परिस्थ्य दोषं
प्रात्वा च मार्दवनिषवण्यं गुणीचम्।
मानं विहाय यतिभर्मविश्वष्ठपं
सद्यः समात्रयत मार्दवमिकतानाः ।॥ ०॥१॥॥

इदानीं मायाकषायस्वरूपमाइ—

असून्टतस्य जननी परशुः शीलशाखिनः ।

जन्मभूमिरविद्यानां माया दुर्गतिकारणम् ॥१५॥

चस्तृतस्थातृतस्थ जननीव जननी, मायामन्तरेण प्रायेणास्-तृतस्थाभावात्, मायां इति वच्चमाणं संबध्यते, माया वच्चना-लाकः परिणामः, तथा, परग्रः कुठारः शीलं सुस्वभावता तदेव ८८ याखी तस्य परश्ररिव परश्रः, च्छेदकलात्; तथा जन्मभूमि-दत्पत्तिस्थानम्, कासाम् ? पविद्यानां मिथ्याज्ञानानाम् । सा च दुर्गतेः कारणमिति प्रधानफलनिर्देशः ॥ १५॥

परवचनाधं प्रयुक्ताया मायाया: परमार्थत: खवचनमेव फलमित्याच-

> कौटिल्यपटवः पापा मायया वकत्रक्तयः। भुवनं वञ्चयमाना वञ्चयन्ते खमेव हि ॥१६॥

सायया खतीयकवायेष भुवनं जगद् वश्चयमानाः प्रतारयन्तः स्वनेवाकानमेव वश्चयन्ते । वे ? पापाः पापकर्मकारिषः । पाप-कर्मनिश्चवार्थमेव बक्वहत्तयः, यथा बको सत्यादिवश्वनार्थं सन्दं सन्दं विचेष्टते तथा तेऽपि जगद्वश्वनार्थं तथा चेष्टन्ते यथा बक-सहमा भवन्ति । ननु मायया जगद्वश्वनम्, तस्यास निष्ठवः, इति कृत इयन्तं भारं ते वोदुं समर्थाः ? इत्याह—कौटिष्यपटवः कौटिष्यपटवरिको हि न कदाचित् परं वश्चयते, नवा कदाचिद् निष्ठुत इति,कौटिष्यपटवे तु हयं भवति परवश्चनं वश्चनाष्टादनं चेति ।

प्रवासरञ्जीका:---

क्रूटषाष्गुख्योगेन च्छलाद् विखस्तघातनात्। ष्मर्थलोभाच राजानो वश्वयन्तेऽखिलं जनम्॥१॥ तिलक्षेमुद्रया मन्तै: चामतादर्भनेन च। षम्तःश्रून्या बह्वःसारा वश्वयन्ते दिजा जनम्॥२॥ कूटाः कूटतुलामानाशुक्रियाकारियोगतः । यश्यको जनं मुग्धं मायाभाजो विश्वग्जनाः॥ ३॥ षटामौर्ष्डाशिखाभस्रवस्कानाम्यादिधार्यै:। सुन्धे त्राहं गर्धवन्ते पाखण्डा दृदि नास्तिकाः ॥ ४ ॥ चरत्ताभिभीवद्वावलीलागतिविलोकनै:। कामिनो रञ्जयन्तीभिर्वेध्याभिर्वेश्वाते जगत्॥ ५॥ मतार्य कूटै: शपथै: कला कूटकपर्दिकाम्। भनवन्तः प्रतार्यन्ते दुरोदरपरायणैः ॥ ६॥ दम्पती पितरः पुत्राः सोदर्थाः सृष्टदो निजाः। रेगा भृत्यास्त्रयान्धेऽपि माययाऽन्धोन्धवञ्चकाः॥ ७॥ ष्ठेलुस्धा गतप्रणा वन्दकारा मलिस्त्चाः। भइनिधं जागरूकाञ्छलयन्ति प्रसादिनम् ॥ ८॥ वारवद्यान्यनासैव स्वकर्मफलजीविन:। माययाऽलीकगपयै: कुर्वते साधुवश्वनम् ॥ ८ ॥ घ्यन्तरादिक्योनिस्या दृष्टा प्राय: प्रमादिन:। क्रूराम्ऋनैबेद्दिविधेबीधन्ते मानवान् पश्न्। १०॥ मसारादयो जलचरान्छनात् खापत्यभचकाः। बध्यन्ते धीवरैस्तेऽपि माययाऽऽनायपाणिभिः॥ ११॥ नानोपायैर्मृगयुभिर्वश्वनप्रवर्णेजेखाः । निवधानी विनाधानी प्राणिन: खलचारिण: ॥ १२ ॥ नभग्नरा भूरिभेदा वराका लावकादय:। बध्यक्ते माययाऽत्युचैः खल्पकगासग्रभुभिः ॥ १३ ॥

तदेवं सर्वेकोकेऽपि परवञ्चकतापराः। खस्य धर्मे सद्गतिं च नागयन्तः स्ववञ्चकाः॥ १४॥ तया,—

तिर्यग्जाते: परं बीजमपवर्गपुरार्गेला । विष्वासद्भ्रमदावाग्निर्माया श्रेया मनीषिभिः ॥ १५ ॥ मिजनाथ: पूर्वभवे कत्वा मायां तनीयसीम् । मायामस्यमनुरुखाय स्त्रीत्वं प्राप जगत्पति: ॥१६॥१६॥

द्दानी मायाजयाय तम्मतिपचभूतमार्जवसुपदियनाद्य-तदार्जवमहीषध्या जगदानन्दद्देतुना । जयेळागद्द्रोद्यकारी मायां विषधरीमिव ॥१०॥

यतो माया एवंविधा तत् तस्माद् मायां विषधरीमिव जयेत्।
मायाविषधर्योः साधम्यमाइ—जगदद्रोइकरीं जगतो जङ्गमलोकस्य द्रोडोऽपकारस्तं करोतीत्येवंशीला जगद्द्रोइकरी ताम्।
केन जयेत्? पार्जवमहीषध्या पार्जवमकीटिखं तदेव महानुभावा
पोषधिमहौषधिस्तया। उभयोः साधम्यमाइ—जगदानन्दहेत्ना
जगतो जंगमलोकस्य यथायधं य पानन्दः कायारोग्यप्रभवः प्रीतिविश्रेषो वश्वकत्वपरिहारेष कषायजयाद् मोचक्ष्पय तस्य हेत्ना
कार्यन।

· प्रवासरश्चोकाः—

षार्जवं सरतः पत्या सितापुर्याः प्रकीर्तितः। षाचारविस्तरः श्रेषो बाह्या षपि यदृचिरे॥१॥

चतुर्धः प्रकाशः।

सर्वे जिद्यां सत्युपदमार्जवं ब्रह्मचः पदम्। एतावाञ्ज्ञानविषयः प्रसापः किं करिष्यति ? ॥२॥ इति । भवेयुरार्जवजुषी लोकेऽपि प्रीतिकारणम्। क्षुटिलाद्दिजमी हि जम्तव: पदागादिव ॥ ३ ॥ मजिह्मचित्तहसीनां भववासस्रशामपि। चक्रतिमं स्क्रिसुखं खसंवेदां महातानाम् ॥ ४ ॥ कौटिखगङ्गा क्लिष्टमनसां वचकात्मनाम्। परव्यापादनिष्ठानां स्वप्नेऽपि स्थात् कुतः सुखम् ॥ ५ ॥ समयविद्यावैदुषेऽधिगतासु कलासु च। धन्यानासुपजायित बालकानासिवाजेवम् ॥ ६ ॥ श्रज्ञानामपि बालानामार्जवं प्रीतिहतवे । किं पुन: सर्वेगास्त्रार्थेपरिनिष्ठितचेतसाम् ? ॥ ७ ॥ स्वाभाविकी हि ऋजुता क्षित्रमा कुटिलात्मता। ततः स्वाभाविकं धर्में हिला कः क्रतिमं त्रयेत्॥ ८॥ क्रम्पेश्रान्यवक्रोक्तिवस्रनाप्रवर्षे जने। धन्याः वेचिद् निर्विकाराः सुवर्णप्रतिमा दव ॥ ८ ॥ त्रताब्धिपारप्राप्तोऽपि गौतमो गणसहरः। पन्नो! ग्रैच द्वात्रीषीदार्जवाद् भगवद्भरः॥ १०॥ षशेषमपि दुष्तर्भ ऋच्वालोचनया चिपेत्। कुटिलालीचनां कुर्वेत्रस्पीयोऽपि विवर्धयेत्॥ ११ ॥ काये वचिस चित्ते च समन्तात् कुटिलालनाम्। न मोत्तः, किन्तु मोत्तः स्थात् सर्वत्राकुटिसालनाम् ॥१२॥ दित निगदितसुगं कर्म कौटिखभाजाः मृज्यिपिकतभाजां चानवद्यं चरित्रम् । तदुभयमि बुद्या संस्थ्यम् सृत्तिकामो निरुपममृजुभावं संयथेच्छुद्यवृद्धिः ॥१२॥१०॥

ददानीं सोभववायसक्पमाइ---

भाकरः सर्वदोषाणां गुणग्रसनराचसः।

कन्दो व्यसनवद्गीनां लोभ: सर्वार्थवाधक: ॥१८॥

षाकरः खानिः सर्वदीषाणां प्राणातिपातादीनां 'लोहादीना-मिव' इति गम्यते ; गुणानां न्नानादीनां प्राणिनामिव यद् यसनं कवलनं तत्र राज्यस इव राज्यसः ; तथा, कन्दो मूलाधोऽवयवः, कासां ?, व्यसनविद्यीनां व्यसनानि दुःखानि तान्येव विद्ययस्तासाम्, लोभयतुर्यकषायः, तस्य स्वरूपसंग्रहमाह—सर्वार्थवाधकः सर्वेषा-मध्यन्त इत्ययी धर्मार्थकाममोज्ञलचणास्तेषां वाधकः प्रतिकृतः । लोभस्य सर्वदीषाकरत्वम्, गुणघातकत्वम्, व्यसनहित्तःं सर्व-पुरुषार्थघातकत्वं च प्रसिद्यमिव ॥ १८॥

लोभस दुर्जंयलं श्लोकचयेणाह— धनहीनः शतमेकं सहस्रं शतवानिष । सहस्राधिपतिर्लेचं कोटिं लचेश्वरोऽपि च ॥१८॥ कोटीश्वरो नरेन्द्रस्वं नरेन्द्रस्वक्रवर्तिताम् । चक्रवर्ती च देवत्वं देवोऽपीन्द्रत्वमिच्छति ॥२०॥ द्रन्द्रत्वेऽपि हि संप्राप्ते यदिक्का न निवर्तते।
मूले लघीयांसाक्कोमः सराव द्रव वर्धते॥ २१॥
स्रष्टम्।
प्रवास्तरक्षोकाः—

हिंसेव सर्वेपापानां मिथ्यात्वमिव कर्मणाम्। राजयस्मेव रोगाणां लोभः सर्वागसां गुरः ॥ १ ॥ घरो। लोभस्य साम्त्राच्यमेकच्छतं महीतले। तरवोऽपि निधिं प्राप्य पादै: प्रच्छादयन्ति यत ॥ २ ॥ श्रपि द्रविणलोभेन ते द्वित्रिचत्रिक्तियाः। खकीयान्यधितिष्ठन्ति प्राग्निधानानि मुच्छेया॥ ३॥ भुजङ्गग्रहगोधाखुमुख्याः पञ्चेन्द्रिया प्रि। धनलोभेन लीयन्ते निधानस्थानभूमिषु ॥ ४ ॥ पियाचसुह्रसप्रेतभूतयचादयी धनम्। स्वकीयं परकीयं वाऽप्यधितिष्ठन्ति लीभतः ॥ ५ ॥ भूषणोद्यानवाप्यादी मुर्च्छितास्त्रिद्या पपि। चुला तत्रैव जायम्ते प्रव्योकायादियोनिषु ॥ ६ ॥ प्राप्योपधान्तमो इलं क्रोधादिवजये सति। लोभांशमावदोषेण पतन्ति यतयोऽपि हि ॥ ७ ॥ एकामिषाभिसावेण सारमेया इव द्रुतम्। सोदर्या प्रवि युध्यन्ते धनलेशजिष्टचया ॥ ८॥ सोभाद् यामाद्रिसीमानमुह्म्य गतसीष्ट्रदा:। याम्या नियुक्ता राजानो वैरायन्ते परस्ररम ॥ ८ ॥

हासधीकदेवहर्षानसतोऽप्याक्तानि स्कुटम्।
स्वामिनोऽग्रे लोभवन्तो नाटयन्ति नटा दव ॥ १० ॥
पारभ्यते पूर्यितुं लोभगतीं यथा यथा।
तथा तथा महन्ति सुहुरेष विवर्धते ॥ ११ ॥
प्रि नामेष पूर्येत पयोभिः पयसां पतिः।
न तु त्रेलोक्यराज्येऽपि प्राप्ते लोभः प्रपूर्यते ॥ १२ ॥
पनन्ता भोजनाच्छादविषयद्रव्यस्चयाः।
भुकास्तथापि लोभस्य नांघोऽपि परिपूर्यते ॥ १३ ॥
लोभस्यक्तो यदि तदा तपोभिरफलैरलम्।
लोभस्यक्तो न चेत् तिह तपोभिरफलैरलम् ॥ १४ ॥
स्वित्या शास्त्रसर्वसं मयैतदवधारितम्।
लोभस्यैकस्य हानाय प्रयत्त महामितः ॥१५॥१८॥२०॥२१॥

नोभसक्पं निक्य तक्षयोपायसुपदिभति—

लोभसागरमुद्देलमितवेलं महामितः । संतोषसितुबस्थेन प्रसरनं निवारयेत् ॥२२॥

सीभ एवापाप्तपारत्वेन सागरस्तम्, उद्देशसुद्रतवेसं तत्तदुत्-कालिकावस्त्वेन विद्वसेच्छायम्, पतिवेशं स्थ्यम्, एतच 'निवारयेत्' इति क्रियाया विशेषणम् । 'प्रसरन्तम्' इति स्तीभसागरस्य विशे-षणम् । महामितर्मुनिः । निवारणकारणसुपदिश्वति—संतोष-सेतुवस्थेन संतोषो स्तोभप्रतिपचभूतो मनोधर्मः स एव सेतुवस्थो भिन्निः - निवारणकार्यस्थाः

| Dāna Kriyā Kaumudī, Fasc. 12 @ /10/ each | | | 1 | 4 |
|--|---|---|----------------|-------|
| Dasa Rupa (Text), Fasc. 2-3, @/10/ each | ••• | ••• | | - 4 |
| Dharmabindu, Fasc. 1, @ /10/ each | | | 0 | 10 |
| Dictionary of the Kashmiri Language, Part I | _ :::. , | ••• | 15 | 0 |
| Gadadhara Paddhati Kalasara Vol. 1, Fasc. 1-7 | @ /10/ each | • • • | 4 | - 6 |
| l'itto Acharasarah Vol. II, Fasc. 1-4 (| @ /10/ each | • • • | 3 | 2 |
| Gobhiliya Grihya Sutra, Vol. 1 @ /10/ ench | | ••• | 8 | 2 |
| Ditto Vol. 11. Fasc2 @ 1/4/ ea | | | 2 | 8 |
| Ditto (Appendix) Gobhila Parisista | • • • | • | 2 | 10 |
| Ditto Grihya Sangraha | 12 | | 0 l/-each 2 | 10 |
| Gopotha Brahman of Atharva Veda (Text and E | ngusu), ra- | c. 1-1, (y | 1 | 14 |
| Haralata | • ••• | ••• | | 4 |
| Institutes of Vishnu (Text), Fasc 12, /1/ each | | • • • | | 8 |
| Kala Madhava (Text), Fasc. 1-4, @ /10/ each | ••• | ••• | 2 | 6 |
| Kala Viveka, Fasc. 1-7 @ /10/ each | ••• | | i | 4 |
| Karmapradiph, Fasc. I | | 1 | | 8. |
| Katantra, Fasc 1-6 @ /12/ each | | | 4 14 | o. |
| Katha Sarit Sagara (English), Fasc 1-14 @ 1/- c | encu | ••• | | 10 |
| Kavi Kalpa Lata, Fasc. 1 | ••• | • • • • | 0 | 8 |
| Kavindravacana Samuceyah | ••• | • • • | | 14 |
| Kiranavali, Fasc. 1-3 @ /10/ each | ••• | • • | 6 | 10 |
| Kurma Purana, Fusc. 1-9 @ /10/ each | ••• | • ••• | 3 | 2 |
| *Lalita Vistara (Text), Fasc. 2-6 @ /10/ each * Ditto (English), Fasc. 1-3 @ 1/- each | | ••• | | ō |
| * Ditto (English), Fasc. 1-3 @ 1/- each Madana Parijata, Fasc. 1-11 @ /10/ each | • • • | | მ | 14 |
| Mahli-bhasya-pradipodyota, Vol. 1, Fasc. 1-9; V | al II Kana | | | |
| Fasc. 1-10 (2) /10/ each | | . 1-12, 10 | 19 | 6 |
| Ditto Vol. IV, Fasc. : @ //4; each | ••• | ••• | 3 | 12 |
| Maitra, or Maitrayianiya Upanishad, Fasc. 1 | ••• | ••• | 0 | 10 |
| Manutika Sangraha, Fasc. 1-3 @ /10/ each | ••• | | 1 | 14 |
| Markandeya Purana, (English) Fasc. 1-9 (3 1/- | | *** | | |
| *Markaudeya Purana (Text), Fasc. 4-7 @ /10/ es | | ••• | 2 | |
| 'Minimisa Dargana, (Text) Fasc. 9, 11-17 (@ /1- | | | , | 0, |
| Mineral of Court seition (travelists) Book 1 4 @ 1 | / weah | | b | |
| Mugdhabodha Vyakarana, Vol. I, Fasc. 1-7 (2) | /10/ much | ••• | 4 | 6 |
| Nirukta (2nd edition), Vol. 1, Fasc. 1-2 @ 1/41 | , 10, Ololi | ••• | | - |
| *Nirukta (old edition), Vol. I, Fasc. 1, 2, 4, 5: | R. Vol II | | | |
| III, Fasc. 16; Vol. IV, Fasc. 18@/10/ each | | | 13 | 2 |
| Nityacirapadhati, Fasc 1-7 @ /10/ each | • ••• | ••• | 4 | |
| Nityacarapradipa, Vol. 1, Fasc. 1-8, Vol. 11, Fasc. | no. 14 @ /1 | 0 / each | 7 | . 8 |
| Nusmua Tapani of Atharva-Veda (Text), Fasc. i | 1-3 @ / LU/ e | adtı | 1 | 14 |
| Nyayabindutika, Fasc. 1 @ /10/ each | | | 0 | - 10 |
| Nyaya Vartika Tatparya Parisudhi, Fasc. 1-4 @ | 1/10/ each | | 2 | 8 |
| * xyayavārtika, (Text), Fasc. 2-7 @ /10/ each | | | 3 | 12 |
| | | | · 2 | . 6 |
| Padumawati, Fasc. 1-6 @ 2/ each | ••• | • | 12 | 0 |
| Paragara Smrti, Vol. I, Fasc. 2-8; Vol. II, Fa | inc. 1-6; Ve | | _ | |
| r'usc. 16 @ /10/ ench | ••• | | 11 | . 10 |
| Paragara, Institutes of (English) @ 1/- each | • | | 1 | |
| *Paricista Pravan (Text), Fasc. 5 @ /10/ each | | ••• | (|)](|
| Pariksamukha Sutram | | | 1 | (|
| Prabandhacintamuni (English) Fasc. 1-8 @ 1/4 | / ench | | 8 | 1 1 |
| Prakrita-Paingalam, Fasc. 1 7 @ /10/ each | ·· | · | | |
| Prakrita Lakshanan | | | | 1 8 |
| Prthviraj Vijaya, Fasc. 1 | ••• | | · · (| - 10 |
| Rasarnavam, Fasc. 1-3 | | | ; | 3 12 |
| Ravisiddhanta Manjari, Fasc. 1 | | | 0 | . 10 |
| Saddarsana-Samuccaya, Fasc. 1-3 @ /10/ each | ••• | • • • | 1 | 1 14 |
| Sädukti-karna-mrita, Fasc 1 @ /10/ each | • • | •••• | |) 10 |
| Samaraicea Kaha Fase. 1-7, @ /10/ each | | | | 4 ' (|
| *Samvada Santita, Vol. , Fasc. 1-4, 6-10; | Vol. 2. Fas | e. 2:-6 ; 1 | | |
| Fasc. 17; Vol. 4, Fasc. 16; Vol. 5, Fasc 1 | -8 @ /10/e | ach | 2 | 1) |
| *Saukara Vijaya (Text) Fasc. 2-3 @ /10/ ench | · · · · · · · · · · · · · · · · · · · | | | 1 |
| *Sankhya Aphorisms of Kapila (English), Fasc. | 2 | ••• | ••• | 1 |
| *Sankhya Pravachana Bhashya, Fasc. 2 | | ••• | | 0 1 |
| Saukhya Sutra Viitti, Paso. 1-4 (4) /10/ each | | | | 2 |
| Ditto English) Fasc. 1-3 @ 1/ | | | | 3 |
| Siva Parinahya, Fasc. 12 | | ••• | ••• | 1 |
| Sie Buddhist Nyava Teasta | | • | | 0 1 |
| SIX DUMMING IVINYA ITACCS | • • • • • | • • • | • • | ٠. |

| _ | | | | | | |
|--|-----------------|----------------------|-------------------|---------|--------------|----------|
| Smriti Prakasha, Fasc. 1 | | ••• | ••• | • • • | . 0 | 10 |
| Sraddha Kriya Kaumudi, Fasc. 1 6 @ /10 |)/ ench | | ••• | ••• | | 12 10 |
| Srauta Sutra of Latyayana (Text), Finc. 1- | | | ••• | ••• | | 14 |
| Sri Surisarvasvam, Fasc. 1-3 @ /i0/ each | | ••• | ••• | ••• | | Ü |
| Sucruta Sambitá, Eng.) Fasc. 1 @ 1 es | ton . | *** | ••• | ••• | | 6 |
| Suddhikaumudi, Fasc. 1-4 @ /10/ each | ••• | | ••• | ••• | | 6 |
| Sundaranandam Kavyam | ••• | ••• | | | 2 | 8 |
| Suryya Siddhanta Faso, 1-2 @ 1-1 each Syainika Sastra | | ••• | • • • • | | | 0 |
| · l'aitteriya Saihhita, (Text) Fasc. 17-45 (| 2 /10/ eac | | ••• | | | 2 |
| *Taittiriya Aranyaka of Black Yajpur Vec | la (Text), | Fasc. 511 | @/10/ eac | h. | | 6 |
| Taittreya Brahmana, (Text), Fasc. 1.24 (4 | 10/ eaul | 1 | | | | . 0 |
| Taittiriva Pratisakhva (Text), Fasc. 18 (| 2) /](·/ eac | b | | | 1 | 14 |
| Tandya Brahmana, (Text), Fasc. 18-18 (| /10/ eacl | 4 | | ••• | 8 | 12 |
| The transfer of the Contract o | I/ Anni | | | ••• | 17 | 8 |
| *I'attva Cintamani, Vol. I, Fasc. 2-9, Vo | l II, Fasc | s. 4-10, Va | il. III, Fasc | . 1–2, | | . 6 |
| * l'attva Cintamani, Vol. I, Fasc. 2-9, Vo Vol. [V, Fasc. 1, Vol. V, Fasc. 1-5, Part | IV, Vol. | II, Fasc. 1 | -12 @ /10/ | FRUİL | 31 | 14 |
| Tattva Chikamani Didinici Frakas, Filmo. | 1 · U. 182 / II | '/ PAUL | | •• | 8 | 12 |
| Tattva Cintamani Didhiti Vivriti, Vol. I, | Fasc. 1- | s; Yul. I | , Fasc. I | -3, | 7 | |
| Vol. III, Fasc, 1 @ /10/ each | • • | ••• | ••• | ••• | í | 4 |
| Tuttvarthadhigama Sutram, Fasc. 2-3 (| | | ••• | . ••• | 2 | -8 |
| Tirthacintamoni, Fasc, 1-4, @ /10/ each | | | ••• | ••• | ī | 14 |
| Trikāņda-Maņdanam, Fasc. 1-3 @ /10/ ec Tul'si Satsai, Fasc. 1-5 @ /10/ each | | ••• | ••• | | 8 | 2 |
| Upamita-bhava-prapañoa-kathā, Fasc. 1-1 | i @ /10/ | enuli - | ••• | ••• | 8 | 19 |
| TT | 1 48/40 1/- | Analı . | ••• | | 6 | 0 |
| Valialagram Fact 1 | | | | | 0 | 10 |
| Vajjalaggam, Fasc.1 Vallāla Carita, Fasc.1 @ /10/ Varaha Purana (Text), Fasc. 2-14 @ /10 | | | ••• | ••• | 0 | 16 |
| Vallala Carita, Fasc 1 @ /10/ Varaha Purana (Text), Fasc, 2-14 @ /10 Varaa Kriya Kaumudi, Fasc, 1-6 @ /10 | / each | | ••• | . ••• | , 8 , | .2 |
| Varsa Kriya Kaumudi, Pasc 1-6 /9/1 | 0/ each | *** * 1 1 1 | | | 8 . | 12 |
| Vayit Pitrapa, (Text, Vol. 1, Past. 1.0: | vot, it, F | m io. 1~/, (4 | R \IO\ avon | ••• | 8 | 2 |
| *Vedanta Sutras (Text), Fasc 7-13@/10 | / each | | · '••• | ••• | 4 | 8 |
| Vidhāna Pārijata, Faso. 1-8 Vol-11. F | asc. 2 🐠 / | 10/ each | • • • • | `••• | b | 10 |
| Ditto Vol. II. Fast. Z.D (2) | 1/9/ | ••• | • • • | ••• | 5 0 | 10 |
| Ditto Vol. III, Fasc. 1 | ••• | | *** | ••• | ŏ | 10 |
| Vishahitam, Fasc. 1 Vivadaratnakara, Fasc. 1-7 @ /10/ each | • | | · ••• | ••• | 4 | ัช |
| Value Museum Mill Pillana, Baic, 1.00 (4) | /(U/ @ACU | | | ••• | 3 | 12 |
| *Vrhannaradiya Purana (Text , Faso. 8-6 | @ /10/ es | rch | | ••• | 2 | 8 |
| Yogasistra Pasc. 1-5 | ••• | ••• | | ••• | 5 | 0 |
| Yoga Sutra of Patanjali (Text and Englis | h , Fasc. | 1-5 @ 1/ ea | ch | • • • | 5 | 0 |
| | | | , | | | |
| | tan Series | • | | | ٠ . | ^ |
| Amarkosha, Fasc 1-2 | ••• | ••• | | ••• | 4 | 0 |
| Amartika Kamdhenuh Baudhastotrasangraha, Vol. I | | ••• | ••• | ••• | 1 2 | 0 |
| Bauquastotrasaigrana, voi. 1 | Fore 1 4 | <u></u> | ٠٠٠ | ••• | 4 | 6 |
| A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Nyayabindu (A Bilinguel Index) | F 450, 11-9 | (eg 1/- exc | | ••• | i | ő |
| Nyayabindu of Dharmakirti, Fasc. 1-2 | | ••• | ••• | ••• | 2 | ő |
| Pag-Sam S'hi Tin, Farc. 1-4 @ 1/- cach | • • • | ••• | ••• | ••• | - | 0 |
| Prajna Pradipah | | | ••• | | i | 0 |
| Rtogs brjod dpag hkhri S'ifi (Tib. & Sa | ns. Avadá | na Kalpalı | ta) Vol. I. | | | |
| Fasc. 1-13; Vol. II. Fasc. 1-12 @ 1 | /- each | | | | 25 | 0 |
| Sher-Phyin, Vol. I, Fasc 1.5; Vol. II, F | asc. 1-8; | Vol. 111, F | anc 1.6, 🥱 | l/ eacl | 1.14 | 6 |
| Timed-Kun-Din | ••• | | | • • • | 1 | 0 |
| - | | | | | | |
| Nation of Canabait Manuscaints Page | 1.98 🕰 1. | esob | | | 35 | 0 |
| Notice of Sanskrit Manuscripts, Fasc. Ditto ditto (Palm-leaf and selecte | | | . each | ••• | งถ ห | 0 |
| Ditto ditto (Palm-leaf and selecte Nepalese Buddhist Sanskrit Literature, | | | | • • • | ត | ő |
| Report on the Search of Sanskrit M33., | 1895-1900 | 1901-190 | s. and 1906- | | •- | • |
| @/8/ each | | | ., | ••• | 1 | 8 |
| | ka must | he made | namable to | tha " | | |
| N.B.—All Cheques, Money Orders, & Asiatic Society," only. | 20. HUBE | ne mara l | Myanie to | niia | 1 1 614 | ME |
| Waterio pocied), omit. | | | | 8-4- | 18. | |
| | | | | | | |

This book is a preservation photocopy.

It was produced on Hammermill Laser Print natural white, a 60 # book weight acid-free archival paper which meets the requirements of ANSI/NISO Z39.48-1992 (permanence of paper)

Preservation photocopying and binding
by
Acme Bookbinding
Charlestown, Massachusetts
1996







